

वर्तमान

मम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की एकात्म भावना और अखण्ड सस्कृति के निर्माण का सारा श्रेय सस्कृत-भाषा को है, जिसने कैलास से रामेश्वरम् तथा पश्चिम सुदूर से पूर्व सागर तक के जनमानस को एक साँचे में ढाल दिया था। आज उसी सस्कृत की तरह राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथे रखने की शक्ति यदि किसी भाषा में है, तो वह राष्ट्रभाषा हिन्दी है। राष्ट्रभाषा देश की आत्मा होती है, जिसे राष्ट्र-स्थी शरीर की सभी धमनियों से रक्त-प्राप्ति आवश्यक है। दूसरी बात कि अब हिन्दी को स्वयं इस प्रकार समर्थ हीना है, जिसके माध्यम से चाहे तो कोई भी समस्त भारतीय साहित्य और सस्कृति को समझ ले। इन्ही दृष्टिकोणों के अनुसार विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने ग्रन्थ-प्रकाशन का श्रीगणेश किया था और निश्चय किया था कि दक्षिण के चारों भाषाओं (तेलुगु, तमिल, कन्नड़ और मलयालम) की रामायणों के हिन्दी-अनुवाद यहाँ से प्रकाशित किये जायें। आज हमें प्रमन्नता है कि परिषद् ने तेलुगु की 'रगनाथ रामायण' को प्रकाशित तो किया ही, अब तमिल की 'कव-रामायण' का भी हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित कर अपना सकल्प पूरा कर लिया।

यह 'कंब रामायण' परिषद् की अनुवाद-योजना का बारहवाँ ग्रन्थ है। परिषद् ने इसके पहले जर्मन, फ्रैंच, अँगरेजी, सस्कृत और तेलुगु-भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये थे। यह तमिल से अनूदित है, जिसका साहित्य, सस्कृत को छोड़कर, सभी जीवित भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्राचीन है। आज भी दक्षिण की सभी भाषाओं के साहित्य से तमिल-साहित्य सुसम्पन्न और सुष्ठु माना जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तमिल का महाकाव्य है, जो बारह सौ वर्ष (कुछ के मतों से आठ सौ वर्ष) पुराना है। इस महाकाव्य की रचना-शैली वाणभट्ट की 'कादम्बरी' की-सी है, किन्तु इसका रचना-आधार वाल्मीकीय रामायण है। यद्यपि 'कव-रामायण' वाल्मीकीय रामायण का अनुगामी है, तथापि दाक्षिणात्य सस्कृति से यह ओत-प्रोत है, जो वाल्मीकीय में दृष्टिगोचर नहीं होती। यह एक महान् आश्चर्य है कि काव्य के सौष्ठव की दृष्टि सं भी यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से जरा भी घटकर नहीं है। हमारे ऐसे कथन की यथार्थता प्रबुद्ध पाठक स्वयं इसमें आँकेंगे। किन्तु, आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद आजतक दुनिया के किसी भी भाषा में नहीं छपा था, यहाँतक कि अँगरेजी-भाषा में भी नहीं। हिन्दी में इसका अनुवाद कराकर मर्वप्रथम प्रकाशित करने का सौभाग्य परिषद् को ही है।

परिषद् ने जब 'कव रामायण' के अनुवाद कराने का निश्चय किया, तब एक जटिल समस्या नामने आई कि अनुवाद किसमें कराया जाय? क्योंकि दक्षिण की भाषाओंमें भी दुर्लभ तमिल-भाषा है और उसके काव्यों में भी अत्युच्च महाकाव्य 'कव रामायण' है, जिसका सर्वोच्च हिन्दी-अनुवाद केवल तमिल और हिन्दी जाननेवाला नहीं कर सकता था। इसके लिए उक्त दोनों भाषाओं के साहित्य - मर्मज के साथ-साथ सम्झूत-माहित्य के

तत्त्वदर्शी विद्वान् की आवश्यकता थी। किन्तु, इन सारे गुणों के रहते भी यदि वह व्यक्ति लेखन-कला में दक्ष न हुआ, तो भी समस्या उलझी ही रह जाने का भय था। किन्तु, ऐसे उपर्युक्त अनुवादक को ढूँढ़ निकालने का सारा श्रेय श्रीअवधनन्दनजी को है। ये विहार-प्रदेश के ही निवासी हैं, पर उन समय ये दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा (मद्रास) के माध्यम से तमिलभाषी ज्ञेन्म में हिन्दी-प्रचार का काम कर रहे थे। परिपद् के अनुरोध पर इन्होंने तेलगु और तमिल—दोनों की रामायणों के अनुवाद करा देने का जिम्मा लिया और तदनुसार तमिल रामायण के अनुवाद का काम श्री न० बी० राजगोपालन जैसे योग्य व्यक्ति को मापकर इसके सम्पादन का भार स्वयं संभाला। श्रीअवधनन्दनजी के ऐसे महयोग के लिए परिपद् सदा इनका आभारी है।

श्री न० बी० राजगोपालन तमिलनाड के तिरुचिरापल्ली जिले के निवासी हैं। आपने तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर प्राच्यकला-शाला-जैसी संस्था में संस्कृत-साहित्य के माध्यम से व्याकरण, न्याय और मीमांसा-शास्त्र का अध्ययन किया है। आपने काचीपुरी में परमहम-परिवाजक श्रीरग रामानुज महादेशिक और उ० बीर राघवाचार्य-सदृश महाविद्वानों से वेदान्त-दर्शन का भी अध्ययन किया। आपने फिर काशी-विश्वविद्यालय से हिन्दी में तथा मद्रास-विश्वविद्यालय से तमिल में एम० ए० की उच्च उपाधि प्राप्त की। आप तमिल, तेलगु संस्कृत, अङ्गरेजी, हिन्दी और खूबी यह कि उर्दू के भी सुलेखक हैं। आजकल आप केन्द्रीय हिन्दी शिक्षक-महाविद्यालय, आगरा में प्राध्यापक हैं। इसके पहले आप प्रेसीडेंसी कॉलेज (मद्रास) और दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा (मद्रास) में भी अध्यापन का कार्य कर चुके हैं।

कव रामायण दम हजार श्लोकों का एक वृहत्काव्य महाकाव्य है, जो छह काण्डों में विभक्त है। अतः, इसका प्रकाशन हम दो भागों में कर रहे हैं, जिससे ग्रन्थ का आकार-प्रकार सुहावना बना रहे। यह पहला भाग वालकाड से किञ्चिन्धाकाड तक है। दूसरे भाग में केवल दो काण्ड होंगे—सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड। किन्तु, दोनों भागों के आकार प्रायः नमान होंगे, क्योंकि केवल युद्धकाण्ड ही लगभग तीन काण्डों के वरावर है। आज हिन्दी-जगत् के समक्ष ‘कव रामायण’ के इस पहले भाग को प्रस्तुत करते हुए हमें पूरा नतोप है और विश्वास है कि हिन्दी के प्रकाशनों में यह चार चाँड लगायेगा। आप इसमें महाकवि कम्बन की कवित्व-शक्ति की पराकाष्ठा का दर्शन कर अपने को निश्चय ही कृतार्थ मानेंगे, ऐमा मेरा विश्वास है। परिपद् का यह प्रकाशन उत्तर और दक्षिण में ‘नये सेतु’ का निर्माण करेगा और हमारे नाट् की चिर एकात्मनिष्ठा को अधिकाधिक सुदृढ़ करेगा।

विहार-राष्ट्रभाषा-परिपद्

पौय, कृष्णा एकादशी, २०६८ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र ‘माधव’

सचालक

प्रेर्स्तावना

वहुत दिनों से मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि तमिल-साहित्य के कुछ प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया जाय, जिससे हिन्दीभाषा-भाषी जनता को तमिल-भाषा के प्राचीन साहित्य का रसास्वादन करने तथा वहाँ की समृद्ध संस्कृति एवं विचार-धारा को समझने का अवसर मिले। किन्तु, किसी योग्य प्रकाशक के अभाव में यह कार्य संभव नहीं था। सन् १९५५ ई० में मेरी भेंट आदरणीय श्रीशिवपूजन सहायजी से हुई। उस समय वे विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के सचालक थे। जब मैंने उनसे इस विषय की चर्चा की, तब वे वहुत प्रसन्न हुए और परिषद् की ओर से ऐसे ग्रन्थों को प्रकाशित करने का आश्वासन भी किया। उसी वर्ष २७ जुलाई को उनका एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि राष्ट्रभाषा-परिषद् ने दक्षिण भारत की चारों भाषाओं में प्रचलित रामायण का हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया है। योग्य अनुवादक चुनने तथा अनुवाद के सशोधन आदि का भार उन्होंने मुझे सौंपा था। मैं उस समय दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा की तमिलनाड़-शाखा के मन्त्री की हैमियत से कार्य कर रहा था और तिरुचिरापल्ली में रहता था। महायजी का पत्र पाकर मैं उत्ताह से भर गया और योग्य अनुवादकों की तलाश करने लगा।

दक्षिण में चार प्रधान भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनका अपना-अपना साहित्य है। वे हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम। तमिल मद्रास-राज्य में, मद्रास नगर तथा उसके दक्षिण में कन्याकुमारी तक बोली जाती है। तेलुगु आन्ध्रदेश की भाषा है और मद्रास के उत्तर में विजगापट्टम् तक तथा हैदराबाद में बोली जाती है। कन्नड मैसूर-राज्य की भाषा है और मद्रास-राज्य के पश्चिम में अरब समुद्र के तट तक बोली जाती है। मलयालम केरल-प्रान्त की भाषा है और दक्षिण में तिरुवनन्तपुरम् (त्रिवेन्द्रम्) से अरब सागर के किनारे-किनारे कासरगोड तक बोली जाती है। ये चारों भाषाएँ द्रविड़-परिवार की हैं और आर्य-परिवार की भाषाओं से वहुत मिलन हैं। तमिल को छोड़कर शेष तीन भाषाओं पर संस्कृत का वहुत प्रभाव पड़ा है और उन्होंने संस्कृत से वहुत-सं शब्द ग्रहण किये हैं। इन चारों भाषाओं में तमिल सबसे प्राचीन है और उसका प्राचीन साहित्य सबसे अधिक समृद्ध है।

उपर्युक्त चारों प्रान्तों में रामकथा का प्रचार है और चारों भाषाओं में रामायण की रचना हुई है। किन्तु, मलयालम रामायण एक आधुनिक रचना है और वाल्मीकि रामायण का छायानुवाद-मान्त्र है। मलयालम रामायण रामानुजन् एपुत्तचन् नामक किमी कवि की रचना है, जो ईसवी-सन् १६वीं और १७वीं शती के मध्य वर्तमान थे। उन्होंने अपनी रामायण अध्यात्मरामायण के आधार पर लिखी है, जिसकी भाषा सन्कृत-गमित है। कन्नड की सबसे प्राचीन रामायण ‘पप रामायण’ के नाम से प्रसिद्ध है और ‘पप’ नामक एक जैनकवि की रचना है। पप ने रामकथा में वहुत हेर-फेर किया है और जैन दर्शनोंने

उसकी रचना की है, अतएव वह निश्चय हुआ कि इस समय उक्त दोनों रामायणों का अनुवाद स्थगित रखा जाय और तेलुगु से रगनाथ रामायण तथा तमिल से कव रामायण का अनुवाद कराया जाय। ये दोनों रामायण बाल्मीकि रामायण की कथा के आधार पर लिखे गये हैं, किन्तु दोनों की रचना में पर्यात मौलिकता प्रदर्शित की गई है।

विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की इसी योजना के अनुसार रगनाथ रामायण के हिन्दी-अनुवाद का कार्य मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज के हिन्दी-अध्यापक श्री ए० चौ० कामाक्षिराव, एम० ए०, बी० बी० एल० को सांपा गया। प्रसन्नता की बात है कि रगनाथ रामायण का हिन्दी-अनुवाद परिषद् की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

कव रामायण तमिल-भाषा की एक अत्यन्त लोकप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है और भारतीय भाषाओं में जितनी रामायणे उपलब्ध हैं, उनमें सबसे प्राचीन है। जनश्रुति के अनुसार कवन का जन्म ईसा की नवीं शताब्दी (कुछ लोग उनका जन्म वारहवी शताब्दी में मानते हैं) में हुआ था। उनकी भाषा अत्यन्त प्रबाहपूर्ण, योंजस्विनी तथा आलंकारिक है। वह तमिल की प्राचीन शैली का एक बहुत सुन्दर नमूना है। कवि ने अपनी रचना में सख्त तथा तमिल-अलकारों और सुहावरों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। अतः, उसके अनुवाद के लिए एक ऐसे व्यक्ति को बावश्यकता थी, जो सख्त, तमिल और हिन्दी तीनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखता हो तथा जो वैष्णव-सप्रदाय की विचारधारा से भी परिच्छित हो। सौभाग्य से इस कार्य के लिए हमें श्री न० बी० राजगोपालनजी मिल गये, जो सख्त में मद्रास-विश्वविद्यालय के शिरोमणि परीक्षोत्तीर्ण हैं, हिन्दी में 'प्रबीण है' तथा तमिल का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। अभी हाल में उन्होंने तमिल में भी एम० ए० की परीक्षा पास कर ली है। उनके अथक परिश्रम का ही यह फल है कि कव रामायण का हिन्दी-अनुवाद हिन्दीभाषी जनता के समुख उपस्थित किया जा रहा है।

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद का कार्य साधारणतः कठिन होता है और किसी काव्य का अनुवाद करने में तो वह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। कवन की भाषा नवीं शती की है और प्राचीन तमिल शैली की है, जिसे 'शेनू तमिल' कहते हैं। अनुवादक का लक्ष्य यह था कि जहाँतक हो सके, मूल का सौन्दर्य नष्ट न होने पाये और कवन की वर्णन-शैली में फर्क न पड़े। स्वतंत्र अनुवाद करने से मूल की विशेषता नष्ट हो जाने का भय था। इसी कारण अनेक स्थानों में अनुवाद की भाषा उलझी हुई और अस्वाभाविक दिखाई देगी। पाठक इसके लिए क्षमा करेगे।

अबतक सपूर्ण कव रामायण का अनुवाद किसी भी भाषा में नहीं हुआ है। वह प्रमन्त्रता का विषय है कि ऐसे आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित करने का सर्वप्रथम गौरव राष्ट्रभाषा हिन्दी को ग्रात हो रहा है। विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् भी वधाई वा पात्र है, जिसने सर्वप्रथम इन महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने उपर लेकर उसे नफलतापूर्वक सुपन्न किया है।

भूमिका

तमिल-साहित्य ३००० वर्ष पुराना माना जाता है। ईसा-पूर्व चौथी शती तक उसमें काव्य, नाटक तथा गीति-साहित्य का विस्तृत प्रणयन हो चुका था। इस भाषा का नवंप्रथम व्याकरण, जो 'तोलकाप्पियम्' के नाम है प्रसिद्ध है, ईसवी-सन् पूर्व तीसरी शती में लिखा गया था। यह एक वृद्धाकार लक्षण-ग्रन्थ है और अब उपलब्ध तमिल-ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इस ग्रन्थ में तमिल-भाषा के व्याकरण के अतिरिक्त काव्य-पद्धतियों, छद्म, अलाकार एवं काव्य में वर्ण्य विषय-वस्तु (जिसे तमिल में 'पोस्ल्' कहते हैं) का विशद विवेचन है। तमिल-व्याकरण में 'पोस्ल्' के दो विभाग किये गये हैं—'अहम्' और 'पुरम्'। अहम् में शृंगार-रस का पोषण होता है, और 'पुरम्' में शृंगारेतर रसों का पोषण होता है, विशेष कर बीर रस का। अहम् और पुरम् मनुष्य के जीवन के अतरंग एवं वहिरंग पक्ष के प्रतिपादक हैं। यह विभाजन तमिल-काव्यशास्त्र की विलक्षणता है, जो अन्य किसी भाषा के साहित्य में प्राप्त नहीं होता।

तमिल-साहित्य का आदिकाल 'सधम् काल' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि साहित्य की अभिवृद्धि के लिए मदुरा के पाडिय राजाओं ने, एक के पश्चात् एक, तीन 'सधम्' स्थापित किये थे। अपने समय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एव कवि इस सधम् के सदस्य होते थे। सधम् का कार्य कवियों की रचनाओं की समीक्षा करके उनपर प्रामाणिकता एवं श्रेष्ठता की मुहर लगाना होता था। सधम् द्वारा स्वीकृत रचनाओं को ही लोक में प्रतिष्ठा मिलती थी। यह विश्वास प्रचलित है कि इन तीनों संघमों में कुल ६५७ कवि-सदस्य बने थे और हजारों वर्ष तक इन सधमों ने कार्य किया था। इस काल के कुछ कवियों की रचनाएँ पृथक्-पृथक्-पुस्तकों में समृद्धी हैं।

ईसवी-सन् पूर्व तीसरी शती से ईमा की छठी शताब्दी तक तमिल-देश में जैन तथा वौद्ध धर्मों का विस्तार रहा। जैन तथा वौद्ध कवियों ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे थे और उनके द्वारा अपने धर्म का प्रचार तथा तमिल-भाषा की सेवा की। ईमा की दूसरी और तीसरी शताब्दियों में तमिल में पाँच महाकाव्य रचे गये, जिनके नाम हैं—१ शिलाप धिकारम्, २ मणिमेखलै, ३ जीवकचिन्तामणि, ४ वलयापति तथा ५ कुडलकेशी। इनमें से प्रथम दो वौद्ध कवियों की रचनाएँ हैं और तमिल की विशिष्ट कला के परिचायक हैं। 'जीवकचिन्तामणि' किसी जैनकवि की रचना है। इसका छठ सस्कृत के वर्णवृत्तों पर आधृत है और अलाकार भी सस्कृत-साहित्यशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अपने काव्य-गोन्दर्य के कारण यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत लोकप्रिय बना था। 'कुडलकेशी' और 'वलयापति' — ये दोनों काव्य अब अनुपलब्ध हैं।

ईसा की छठी शती से तमिल-देश में भक्ति का आनंदोलन जार पकड़न लगा और वौद्ध तथा जैनधर्मों का प्रभाव कम होने लगा। छठी तथा तंरहवीं शतियों में मध्य तमिलनाड में अनेक वैष्णव तथा शौक मत उत्पन्न हुए, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर काव्य-रचना

के माध्यम साथ विष्णु तथा शिव-भक्ति की पीयूष-धारा वहाँ है, जिसने दक्षिण भारत-मात्र को ही नहीं बरन् सारे भारतवर्ष को प्रभावित किया और हिन्दू जनता को मुक्ति का एक नवीन मार्ग दिखलाया। पीछे चलकर इन धाराओं ने हिन्दी-जगत् एवं हिन्दी-साहित्य को भी आसावित कर दिया।

वैष्णवधर्म के अनुयायी वारह सत हुए, जिन्हें 'आलवार' कहते हैं। आलवार शब्द, का अर्थ होता है 'ज्ञानी'। उन्होंने भगवान् विष्णु को परम तत्त्व मानकर उनकी उपासना की और उनकी प्रशस्ता में सहस्रों सुन्दर तथा मधुर गीत गाये। इन गीतों की संख्या चार हजार है, जो तमिल में 'नालायिरप्रवधम्' या 'दिव्यप्रवधम्' के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्रीमद्भारामानुजाचार्य इन्हीं आलवारों द्वारा प्रतिपादित वैष्णव धर्म के अनुयायी थे।

जिस समय वैष्णव सत भगवान् विष्णु को अपना आराध्य देव मानकर उनकी भक्ति का प्रचार कर रहे थे, प्रायः उभी समय शैव मत भगवान् शिव के गुणानुवाद में अपनी अमृतमय वाणी को सफल बना रहे थे। इस मत में ६३ सत हुए। जिन्हें 'नायनमार' कहते हैं। इन्होंने भगवान् शिव की प्रशस्ता में हजारों ललित एवं गेय पद रचे, जो आज भी शिवभक्तों की अमूल्य निधि हैं। इनके द्वारा विरचित विपुल साहित्य वारह खड़ों में विभाजित है।

कवन का स्थान तमिल-साहित्य में अत्यन्त श्रेष्ठ है और वे कविचक्कवर्ती के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना 'रामायण', जो 'कव रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है, १० हजार में अधिक पदों का एक विशाल ग्रन्थ है।

कवन का समय निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् उन्हें ईसवी नवीं शताब्दी का मानते हैं, किन्तु अधिक प्रामाणिक समय वारहवीं शताब्दी है।^१ इस समय तक वारह आलवार हो चुके थे और यामुन, रामानुज आदि आचार्यों की परम्परा भी चल पड़ी थी। इन आचार्यों ने भक्ति एवं प्रपत्ति का शास्त्रीय विवेचन किया। कवन वैष्णव थे, प्रमुख आलवार 'नम्मालवार' की उन्होंने प्रस्तुति की है और उनके काव्य में यत्र-तत्र इन आलवार की श्रीसूक्तियों की छाया दृष्टिगत होती है, तो भी कवन ने अपने काव्य को केवल साप्रदायिक नहीं बनाया है। प्रो० टी० पी० मीनाचिसुन्दरम् के अनुसार कव रामायण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। ग्रन्थारम्भ में तथा प्रलेक काड के आदि में मगलाचरण के जो पद्य हैं, उनमें यह तथ्य प्रकट होता है। कवि ने परमात्मा का वर्णन शिव और विष्णु के रूप से भी अतीत, केवल सृष्टिकर्ता के रूप में किया है। किन्तु, रामचन्द्र को उस परमात्मा का अवतार ही माना है।

इसका परिणाम वह हुआ कि शैवी और वैष्णवी के मध्य 'कव रामायण' का आदर हुआ और इन दोनों सम्प्रदायों में जो वैमनस्य था, उसके दूर होने में सहायता मिली।

कवन का जन्मवृत्त कुछ निश्चित शात नहीं हुआ है। उनके सबध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जिनकी प्रामाणिकता उद्देहास्पद है। कवि ने कहीं भी अपना

^१ प्रो० टी० पी० मीनाचिसुन्दरम्—(तमिल-विमाग-ग्रन्थ, अन्नामलै-विश्वविद्यालय) इसी को प्रामाणिक मानते हैं।—अनु०

परिचय नहीं दिया है, किन्तु उन्होंने अपनी रामायण में तिरुवेण्येयनल्लूर नामक ग्राम के 'शडयप्पवल्लर' नामक एक दानी और यशस्वी व्यक्ति का उल्लेख कई स्थानों पर किया है। अनुमान किया जाता है कि इसी उदार व्यक्ति ने महाकवि कंवन को आश्रय दिया था, जिसकी कृतज्ञता में महाकवि ने अपने काव्य में उस व्यक्ति का स्मरण किया है। यह ज्ञात होता है कि कवन चौल और चेर राजाओं के दरवार में गये थे, लेकिन अपनी महान् कृति को किसी राजा को अर्पित नहीं किया।

कवन की रामायण तमिल-साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति एवं एक बृहद् ग्रन्थ है।^१ तमिल, हिन्दी, अँगरेजी आदि के साहित्यों के बड़े विद्वान् श्री वी० वी० एस० अय्यर ने लिखा है कि 'यह (कव रामायण) विश्व-साहित्य में उत्तम कृति है, 'इलियड' और 'पैरेडाइस लास्ट' और महाभारत से ही नहीं, वरन् मूलकाव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना में भी यह अधिक सुन्दर है। यह केवल आदरातिरेक से कही हुई उक्ति नहीं है, वरन् अनेक वर्षों तक किये गये गहन अध्ययन से धीरे-धीरे पुष्ट हुआ विचार है।'^२

कव रामायण वाल्मीकि रामायण का अनुवाद-मात्र नहीं है, उसका छायानुवाद कहना भी सगत नहीं है। कथानक-मात्र मूल से लिया गया है, लेकिन घटनाओं में सैकड़ों परिवर्तन किये गये हैं। प्रत्येक घटना के चित्रण में, परिस्थितियों को उपस्थित करने में, पात्रों के सम्माप्ति में, प्राकृतिक दृश्यों के उपस्थापन में एवं पात्रों की मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति में कंवन ने पर्याप्त सौलिकता दिखलाई है। तमिल-भाषा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कवन ने मौलिकता प्रदर्शित की है। छद्मविधान में, अलकारों के प्रयोग में तथा शब्द-गुम्फन में अपूर्व साँदर्य प्रकट किया है। सीता-राम-विवाह, शूर्पणखा-प्रसग, वालिवध, हनुमान् के द्वारा सीता-सदर्शन, इन्द्रजित् का वध, राम-रावण-युद्ध इत्यादि प्रसगों में प्रत्येक अपनी विशिष्ट सुन्दरता के कारण अत्यन्त आकर्षक हुआ है। प्रत्येक प्रसग अपने में सपूर्ण-मा लगता है, प्रत्येक में काफी नाटकीयता है, प्रत्येक घटना का आरम्भ, विकास और परिसमाप्ति एक निश्चित क्रम से विकसित होते हैं। यह शिल्प-विधान कवन के काव्य की एक विशिष्टता है।

राम के चरित्र को कवन ने जिस ढग से चिन्तित किया है, वह विशेष अध्ययन का विषय है। वाल्मीकि के समुख यह प्रश्न था कि लोकोत्तर आदर्श पुरुष कौन है? उन्हें 'पुरुषोत्तम' की खोज थी। नारद तथा ब्रह्मा से उन्हें ऐसे पुरुषोत्तम का परिचय प्राप्त हुआ। रामचरित का गान करके वाल्मीकि ने ससार के समुख 'पुरुष पुरातन' की ही नहीं, अपितु एक 'महामानव' का चित्र उपस्थित किया था। कवन के युग तक आतं-आतं वही आदर्श महामानव परमात्मा के अवतार के त्वय में प्रतिष्ठित हो चुका था। यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि केवल राम-नाम का जप-मात्र अपवर्गप्रद हो सकता है। वैष्णव भक्ति का ज्यो-ज्यो प्रचार समाज में बढ़ा, त्यो-त्यो राम के प्रति यास्था अधिकाधिक बढ़मूल होती गई।

१. डॉ० आर० पी० सेतुपिलै, (तमिल-विभागाध्यक्ष मद्रास-विश्वविद्यालय) का थंगेंग्जा ने ने 'तमिल लिटरेचर'।

२. श्री वी० वी० एस० अय्यर, 'कव रामायणम्—एस्टॉर्डी।'

कवन ने समयुगीन भावनाओं को भली भाँति पहचाना था। जनता की भक्तिपूर्ण भावना के कारण राम के चरित्र में जो महत्ता और परम-परिपूर्णत्व उत्पन्न हो गये थे उन्हें इस कुशल कवि ने अपने काव्य के द्वारा परिपुष्ट कर दिया। यह कोई साधारण कार्य नहीं था। कंवल यह कहते रहने से कि राम परमात्मा हैं या स्थान-स्थान पर दैवी विशेषणों को जोड़ते रहने से यह ज्ञान हो सकता है कि राम परमात्मा के अवतार हैं, किन्तु उसमें पाठकों पर राम के चरित्र का मानवोचित प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं है। रस-पोषण के मार्ग में इस प्रकार की पुनरुक्ति से वाधा पड़ने की सम्भावना है। राम के दैवी तत्त्व का माहित्यिक प्रभाव उत्पन्न करना, पूरे काव्य में सब प्रसगों के मध्य उस दैवी तत्त्व का निर्वाह करना एव साथ ही मानव-जीवन की विविध सुख-दुःखात्मक परिस्थितियों के साथ उस दैवी तत्त्व की सगति विठाना—यह एक अनन्यसुलभ प्रतिभावान् महाकवि का ही कार्य है। कवन ऐसे ही कवि थे । कव रामायण का कोई भी प्रसग इसका प्रमाण हो सकता है।

कवन ने वालकाड में युद्धकाड तक छह काडों की रचना की। पौराणिकों के कारण अनेक प्रक्षेप भी इसमें जुड़ गये हैं। किन्तु, इन प्रक्षेपों को पहचानना उतना दुष्कर नहीं है, क्योंकि कवन की भाषा और प्रतिपादन की शैली विलक्षण होती है, उनका अनुकरण नहीं हो सकता। अब उपलब्ध ग्रन्थ में १०,०५० पद्म हैं। एक उत्तरकाड प्राप्त हुआ है, जो कवन के समकालिक एक अन्य महाकवि 'ओड्डकूत्तन' - विरचित माना जाता है।

तमिलनाड में ही नहीं, उसके बाहर भी धीरे-धीरे इस रामायण का प्रचार हुआ। तजाऊर जिले में स्थित तिस्यापणान्दाल मठ की एक शाखा काशी में है। उस मठ में आज से तीन-माढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व कुमरगुरुपर नामक एक तमिल सत रहते थे, जो तुलसीदासजी के समकालीन थे। वे नित्य प्रति सध्या के समय गगा-तट पर कव रामायण की व्याख्या हिन्दी में उनाया करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी उन्हीं दिनों काशी में रामचरित-मानस की रचना कर रहे थे। दक्षिण के लोगों में यह विश्वास प्रचलित है कि तुलसीदासजी ने मानस लिखने में अनेक स्थलों पर कव रामायण से प्रेरणा प्राप्त की थी। इस कथन की प्रामाणिकता निर्विवाद नहीं है। किन्तु, इतना तो सत्य है कि हुलसी और कवन की कृतियों में कई घटनाओं में आश्चर्यजनक समानता दिखाई पड़ती है।^१

अनुवाद का काम अनेक कारणों से कठिन होता है। पद्मकाव्य का अनुवाद और भी बहुत श्रमसाध्य है। कवन की कृति वास्तवी शाताव्दी की तमिल-शैली में लिखी गई है, उसका आधुनिक हिन्दी में यह अनुवाद लगभग पाँच वर्ष के अध्यवसाय से सम्पन्न हो नका है। मूल की अभिव्यक्तिगत सौंदर्य को भाषातर में उनीं रूप में प्रस्तुत करना असम्भव है। कवन के भावगत सौंदर्य की किंचित् मल्लक-मात्र सभव हो सकी है। तमिल-भाषा की एक विशेषता यह है कि उसमें मिश्रवाक्य की रचना नहीं होती। सभी सरल

^१ डॉ० एम० शक्तरनन्दनायुड (हिन्दी-विमाणाच्चन, मद्रास-विश्वविद्यालय) का प्रवन्ध 'कवन और उन्होंना पृ० १०७-१०८।

वाक्य होते हैं। पूर्वकालिक कृदन्तों के सहारे लम्बे-से-लम्बे वाक्य लिखे जा सकते हैं। हिन्दी में ऐसा सभव नहीं है। हिन्दी में कृदन्त-विशेषण के द्वारा भूत और भविष्य काल को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस कारण कवन के कुछ लम्बे वर्णनों का अनुवाद यथामूल प्रस्तुत करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव हुआ।

मूल में अनेक वृक्षों, लताओं, पशुओं, पक्षियों और विविध वस्तुओं का उल्लेख आया है। कहीं-कहीं मछलियों की अनेक जातियों और स्वभाव का वर्णन आया है। युद्ध-वर्णन में अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों तथा विविध व्यापारों का वर्णन हुआ है। इन सबका हिन्दी-अनुवाद यथामूल उपस्थित करने की भरपूर चेष्टा की गई है, फिर भी हिन्दी में उपयुक्त शब्दों के न मिलने के कारण कहीं कुछ नये शब्द गढ़ने पड़े हैं, कहीं तमिल का ही नाम देना पड़ा है।

यदि इस अनुवाद से मूल के सांदर्य की थोड़ी-सी झलक भी पाठक पा सकेंगे, तो यह लेखक अपने को कृतार्थ समझेगा।

इस अनुवाद-कार्य में कई विद्वानों के परामर्श सुने प्राप्त हुए हैं। प० अवध-नन्दन ने पूरी पाङ्गुलिपि को देखकर उसका सपादन किया और कई सुझाव देने की कृपा की। वै० सु० गोपालकृष्णमाचार्य की कव रामायण-व्याख्या बहुत उपकारक रही। समय-समय पर अनेक तमिल तथा हिन्दी-विद्वानों ने सुने इस कार्य में मार्गदर्शन प्रदान किया है। इन सबके प्रति मैं हृदय से धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

विहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इस अनुवाद को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया है। इससे न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी की, अपितु तमिल-भाषा की भी सेवा हो रही है। परिषद् को मेरे धन्यवाद हैं।

न० वी० राजगोपालन

विषय-सूची

वालकांड

			पृष्ठ
		मगलाचरण	
अध्याय	१	नदीपटल	१
,	२	कोशलदेश पटल	३
,	३	नगर पटल	६
,	४	शासन पटल	१४
,	५	शुभावतार पटल	२३
,	६	समर्पण पटल	२५
,	७	ताडकावध पटल	३८
,	८	यज्ञ पटल	४१
,	९	अहल्या पटल	५०
,	१०	मिथिला-दर्शन पटल	५७
,	११	वश-महिमा-वर्णन पटल	६७
,	१२	धनुभींग पटल	८६
,	१३	दशरथ-प्रस्थान पटल	९७
,	१४	चद्रशैल पटल	१०७
,	१५	पुष्पचयन पटल	११६
,	१६	जलकीडा पटल	१२२
,	१७	मद्यपान पटल	१२५
,	१८	अग्रयान पटल	१३३
,	१९	बीथी-विहार पटल	१३७
,	२०	प्रसाधन पटल	१४४
,	२१	शुभविवाह पटल	१४६
,	२२	परशुराम पटल	१६१
		अयोध्याकांड	
		मगलाचरण	१६६
अध्याय	१	मत्रणा पटल	१६६
,	२	मथरा-घड्यन्त्र पटल	१७६
,	३	कैकेयी पटल	१८८
,	४	नगर-निष्क्रमण पटल	२००
,	५	तैल-निमज्जन पटल	२४४
,	६	गगा पटल	२४५
,	७	बन-प्रवेश पटल	२४४
,	८	चित्रकूट पटल	२४८
,	९	चिता-शयन पटल	२५५

अयोध्याकांड

			पृष्ठ
		मगलाचरण	
अध्याय	१	मत्रणा पटल	१६६
,	२	मथरा-घड्यन्त्र पटल	१७६
,	३	कैकेयी पटल	१८८
,	४	नगर-निष्क्रमण पटल	२००
,	५	तैल-निमज्जन पटल	२४४
,	६	गगा पटल	२४५
,	७	बन-प्रवेश पटल	२४४
,	८	चित्रकूट पटल	२४८
,	९	चिता-शयन पटल	२५५

अध्याय	१०	वन-प्रस्थान पटल	२६६
,,	११	युह पटल	२७५
,,	१२	पादुका-पद्माभिषेक पटल अरण्यकांड	२८३
		मगलाचरण	२८४
अध्याय	१	चिराध-वध पटल	२८४
,	२	शरभग-दहत्याग पटल	३०७
,	३	अगस्त्य-पटल	३१३
,	४	जटायु-दर्शन पटल	३१८
,	५	शूप्यणखा पटल	३२२
,	६	खर-वध पटल	३३४
,	७	मारीच-वध पटल	३५८
,	८	मीताहरण पटल	३८६
,	९	जटायु-मरण पटल	३९४
,	१०	बयोमुखी पटल	४१०
,	११	कवन्व पटल	४२०
,	१२	शकरी-सुक्ति पटल	४२६
		क्रिज्ञन्धाकांड	
		मगलाचरण	४३१
अध्याय	१	पपा पटल	४३१
,	२	हनुमान् पटल	४३६
,	३	सख्य पटल	४४१
,	४	मालवृक्ष-छेदन पटल	४४८
,	५	दुदुभि पटल	४५२
,	६	बाभरण-दर्शन पटल	४५३
,	७	वालि वध पटल	४५८
,	८	शासन पटल	४६५
,	९	वर्षाकाल पटल	४८०
,	१०	क्रिज्ञन्धा पटल	४८३
,	११	मेना-सुवर्णन पटल	५०८
,	१२	अन्वेषणार्थं प्रेषण पटल	५१२
,	१३	विल-निष्क्रमण पटल	५२१
,	१४	मार्ग-गमन पटल	५२४
,	१५	सपाति पटल	५३४
,	१६	महंद्र-शैल पटल	५४१

कंब रामायण

बालकांड

मंगलाचरण काव्य-पीठिका

हम उस भगवान् की ही शरण मे हें, जो समस्त लोकों का मर्जन, उनकी रक्षा और उनका विनाश—ये तीनों क्रीडाएँ निरतर करता रहता है ।

बडे-बडे आत्मजानी भी उस परमात्मा के पूर्ण स्वरूप को नहीं जान सकते उस परमात्मा (के तत्त्व) को समझाना मेरे जैसे (मदबुद्धि) व्यक्ति के लिए असभव हे, फिर भी शास्त्रों मे प्रतिपादित त्रिगुणों (सत्त्व, रज और तम) मे—जिनका प्रतिरूप बनकर वह परमात्मा त्रिमूर्ति के रूप मे प्रकट हुआ, उनमे से प्रथम गुण के स्वरूप (विष्णु) भगवान् के कल्याणकारक गुणों के सागर मे गोते लगाना तो उत्तम ही है ।

जिन जानियों ने आरम्भ तथा समाप्ति मे 'हरिः ऽँ' कहकर नित्य और अनन्त वेदों को अधिगत (प्राप्त) कर लिया है और जो अपने परिपक्व ज्ञान के कारण समार-त्यागी बन चुके हैं, वे महानुभाव उस (विष्णु) भगवान् के उन चरणों को, जो सन्मार्ग पर चलनेवाले भक्तों के उद्धारक हैं, छोड़कर अन्य किसी से प्रेम नहीं करते ।

अकलक विजयश्री से विभूषित (श्रीरामचन्द्र) के गुणों का वर्णन करने की अभिलाषा मैं कर रहा हूँ, यह ऐसा ही है, जैसा कि कोई विल्जी, धोर गर्जन करनेवाले ऊँची तरणों से भरे द्वीरसागर के निकट पहुँचकर उसके समस्त द्वीर को पी जाने की अभिलाषा करे ।

'अभिशाप' की वाणी से (उस दिन) सत तालवृक्षों को एक माथ भेदन कर देनेवाले (श्रीराम) की महान् गाथा आविर्भूत हो गई थी, उस गाथा को मधुर काव्य के रूप मे कहनेवाले (वाल्मीकि) की वाणी जिस देश मे सुस्थिर हो चुकी है, वही मैं भी अपने (अर्थगमीर्य-हीन) सरल तथा दुर्वल शब्दों मे इसगा काव्य रचना चाहता हूँ—यह भी कैसा (बुद्धिहीन) प्रयास है ।

१. क्रौच को मारनेवाले व्याध के प्रति वाल्मीकि के मुँह से जो अभिशाप-चनन निकल पड़ा था, वर्ती रामायण का प्रथम मंगलाचरण भी हुआ ।

(मेरी इन मूर्खता पर) सभाग मेरा उपहास करेगा और इससे मेरा अपवश होगा, फिर भी मैं गमचरित का गान करने लगा हूँ; इनका प्रयोजन यही है कि सत्यजान नथा अलौकिक प्रतिभा से नपन्न (वाल्मीकि महर्पि) के दिव्य काव्य का महत्त्व और भी अधिक प्रकट हो।

जिन (सुदृढ़द्वय व्याक्तियों) के बान विविध प्रकार की रसमय कविता सुनने के आदि हो चुके हैं, उन्हें मेरी कविता उसी प्रकार (कर्कश) लगेगी, जिस प्रकार 'याल'^१ (वीणा) के मधुर स्वर को सुनते हुए सुख हो खड़े रहनेवाले अशुण^२ के कानों में 'पटह' (चमड़े के टोल) की ध्वनि लगे।

(काव्य. नाटक और सगीत-हप्पी) त्रिविध तमिल-वाङ्मय का जिन्होंने भली भाँति अध्ययन किया है, उन उत्तम विद्वानों और कवियों से मैं निवेदन करना चाहता हूँ—“क्या उन्मत्तों के बचन मठ दुष्टिवालों के बचन तथा भजजनों के बचन, इनकी परीक्षा करना उचित हो नकता है ?”

बालक (खेलने तमय) धरती पर घर्ठाडे बनाते हैं। जिन में कोठरियाँ, आँगन, नृत्यशाला आदि स्थानों को कुछ टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं में दिखाने की चेष्टा करते हैं (उन्हें देखकर) व्या कुशल कारीगर (उन घर्ठाडों के शिल्प-शास्त्र के अनुकूल न होने से) कुछ होंगे ? किंचित् भी काव्य-ज्ञान से गहित मैं, जो वह कुछ काव्य रचने लगा हूँ। इस पर व्या मर्मज्ञ विद्वान् कुछ होंगे ?

देववाणी (सस्तृत) में जिन तीन महापुरुषों^३ ने रामायण की रचना की है, उनमें प्रथम कवि वारमी (वाल्मीकि) महर्पि की रचना के अनुसार ही मैंने तमिल-पदों में यह रामायण रची है।

धर्म-रक्षा के लिए, परम पुरुष ने जो अवतार लिये थे, उनमें से रामावतार का वर्णन करनेवाला वह प्रसिद्ध बाव्य ‘जडैयाय वल्लर’^४ के ग्राम ‘तिरुवेण्णेय नल्लूर’ में निर्मित हुआ। (२-११)

^१ 'याल' एक प्रकार की चीला। प्राचीन तमिल-साहित्य में याल का प्रायः उल्लेख हुआ है। यह माना जाता था कि याल का स्वर सुनकर हिरन मञ्चुरवत्सा हो जाता था और उसके बाद पटह की कर्कश ध्वनि का वह सुहन नहीं कर सकता था और कमी-कमी वैसी ध्वनि सुनने पर अपने प्राण भी होड़ देता था।

^२ हिन्दन की एक जाति।

^३ सस्तृत के नीन गनापयकर्त्ता हैं—वाल्मीकि, वसिष्ठ और दोषाद्यन। दुष्ट विद्वान् वसिष्ठ के स्थान पर व्यास का नाम लेते हैं, जिन्होंने 'अध्यान्मरामायण' की रचना की थी। कव ने भी कई स्थानों में अध्यान्मरामायण का अनुकरण किया है।

^४ शंडैप्प वल्लर एक धर्मी और ददार व्यक्ति थे। उन्होंने महाकवि कंवर को आश्रय दिया था। व्यक्ति वाद को महाकवि कंवर चोलराजा के आश्रय में भी रहे थे, तथापि अपने प्रथम आश्रयदाता का हो नमरह दृष्टिकोण साथ उन्होंने इन इच्छाके आश्रम में कई स्थानों में किया है।

अध्याय ४

नदी पटल

[कोशल देश का वर्णन करने के लिए प्रस्तुत होकर कवि पहले उस देश का हरा-भरा करनेवाली सरयू नदी का वर्णन कर रहा है ।]

कोशल देश में, जहाँ बड़े ही अपराधकर्मी (पुरुषों की) पचेन्द्रिय-रूपी वाण एवं रत्नहारों से विभूषित युवतियों के कटाक्ष-रूपी वाण—ये दोनों मन्मार्ग की सीमा को लाँघ-कर कभी नहीं चलते, उस समस्त भूप्रदेश को सुशोभित करती हुई सरयू नदी वहती है ।

भस्मधारी (शिव) के रगवाले मेघ ने, गगनमार्ग से चलकर, समुद्र के जल का पान किया और (जल पीकर) वज्र पर लक्ष्मी को धारण करनेवाले विलक्षण कातिपूर्ण विष्णु का रंग पाकर लौटा ।

मेघ उमड़कर उठा और हिमाचल के ऊपर छा गया, मानो सागर ही, यह सोचकर कि शिवजी का संसुर यह (हिमाचल) पर्वत सर्यातिप से सतत हो रहा है और उस ताप से उसकी रक्षा करनी चाहिए, हिमाचल पर फैल गया हो ।

मेघ ने जलधाराएँ क्या वरसाईं, एक महान् दाता के सदृश अपनी समस्त सपत्ति को ही लुटा दिया । (वह दृश्य ऐसा था कि) आकाश ने जब देखा कि यह भारी हिमाचल^१ (पर्वत) स्वर्णमय है, तो उस सोने को खोदकर निकालने के उद्देश्य से अपने चाँदी के बने हथौडे उस पर मार रहा हो ।

वर्षा के जल की धारा बड़े बेग से धरती पर प्रवाहित हो चली और उसने सर्वत्र शीतलता उत्पन्न कर दी, मानो मनु के उपदिष्ट धर्म-मार्ग पर चलनेवाले किसी प्रजावत्सल और गौरव-संपन्न राजा की कीर्त्ति ही सर्वत्र फैल रही हो, अथवा चतुर्वेदों को पूरा अधिगत किये हुए व्राह्मण के हाथ में प्रदत्त दान (का यश) हो ।

हिमाचल के ऊपर से वर्षा को धारा प्रवल बेग के साथ नीच वह चली ओर किसी रूपाजीवा (वेश्या) नारी के समान वह (पर्वत की) शिखा, हृदय तथा पाद से सलग्न होती हुई उसकी सीमा से बाहर चली गई, क्षण-भर के लिए वह पर्वत से लगी रही, परन्तु दूसरे ही क्षण वहाँ की सभी वस्तुओं को अपने साथ बहाकर आगे बढ़ गई ।

वर्षा का प्रवाह हिमाचल के रक्ष, मौर-पख, हाथियों के दाँत, स्वर्ण, चन्दन आदि अमूल्य पदार्थों को समेटकर ले चला, जिससे वह वाणिज्य करनेवाले व्यक्ति की समानता करने लगा ।

वह प्रवाह कभी रंग-विरगे पुष्पों से भर जाता, कभी मृदु मकरद उम पर छा जाते, कभी मधु धारा, कभी हाथियों का मटजल और कभी लोहित धारु उममे मिले

^१ प्राचीन तमिल-साहित्य में हिमाचल और मेर पर्वत दानों को कभी-कभी एक ही माना गया है, अत यहाँ हिमाचल को (मेर के जैसे) सोने का पहाड़ कहा गया है ।

दिखाई पड़ते। यो अपने इन विविध रंगों के कारण वह (प्रवाह) गगन पर चमकनेवाले इन्द्र-वनुप की-सी शोभा दिखाने लगा।

वह प्रवाह कभी बड़े-बड़े प्रस्तर-खड़ों को लुटकाता हुआ, कभी गगनचुम्बी वृक्षों को उखाड़ता हुआ और कभी अपने ममीप-स्थित पत्र-शाखा जैसी सभी वस्तुओं को उठाये हुए चल रहा था वह प्रवाह भी क्या था? जब श्रीरामचन्द्र समुद्र पार करके लंका में पहुँचना चाहते थे, तब (वह प्रवाह) हिल्लोलो से भरे हुए समुद्र में सेतु वॉधने का आयोजन करनेवाली वानर-सेना ही जान पड़ता था। (अर्थात्, पत्थरों तथा वृक्षों से भरा हुआ वह प्रवाह समुद्र पर पुल वॉधनेवाली वानर-सेना के सदृश दीखता था।)

उसके मीठे जल पर भौंरो और मक्खियों का झुण्ड मँडराता हुआ दिखाई पड़ता था, वह प्रवाह किनारों को लाँधकर उद्वाम उमंग के साथ वह चला, उसका अन्तर भाग स्वच्छ नहीं था और (वह) मागुवान^१ के बड़े-बड़े वृक्षों को गिराता हुआ ढौङा जा रहा था, जैसे कोई मध्यप डकार लेते हुए भागा जा रहा हो।

उम प्रवाह में बड़े-बड़े मृग थे, भारी मुखवाले मत्त गज थे, वह भयकर कोलाहल करता हुआ अपने आगे-आगे ध्वजाओं के ममान वहुत-सी लताओं^२ को बहाता चला जा रहा था (इन सबसे वह प्रवाह) ऐसा लगता था, मानो समुद्र पर चढ़ाई करने के लिए कोई बड़ी सेना को माथ लिये जा रहा हो।

[वर्षा-प्रवाह का वर्णन करने के पश्चात् अब कवि सरयू नदी का विशेष वर्णन करता है।]

ज्ञुव्य जलर्धि से परिवृत् इस धरती पर जीवन धारण करनेवाले जो प्राणी हैं, उनके लिए मरवनदी मातृस्तन्य-सदृश है। सर्ववश के नरेश जिस महान् सद्धर्म का पालन अनादि काल में करते था रहे थे, उनी वर्म का पालन वह नदी भी कर रही है।

मरवृ की धारा, कोशल देश की गमणियों के बनाये सुगधपूर्ण, कुकुम, केसर, कोष्ठ (एक सुगधित द्रव्य) इलायची, शीतल चटन, मिन्द्र, नागरमोथा, गुग्गुल, मोम आदि पदाथा के मिलने से बहुत ही सुगवित रहती है। (जब स्त्रियाँ नदी में स्नान करती थीं, तब ये बन्धुएँ उमके प्रवाह में मिल जाती थीं और नदी का जल सुगन्धित हो जाता था।)

मरवृ की वाढ़, अपने जल-स्पी वाणों के कारण आसपास रहनेवाले व्याध लोंगों के छोटे-बड़े गाँवों में बड़ी हलचल मचा देती है। वह व्याध-नारियों को अपनी छाती पीटकर रंगे-कलपने हुए भागने पर वाध्य कर देती है। ऐसे समय में वह नदी गन्धुओं के लिए भयकर (किसी) वीर नरेश की सेना का दृश्य उपस्थित करती है।

^१ मध्यप अर जल-प्रवाह दोनों के समान विशेषण दिये गये हैं। सागुवान पेड़ को तमिल में 'तेक्कु' कहते हैं। इस शब्द को क्रिया के त्वय में रम्बन पर दूसरा अर्थ निकलता है। 'डकार लेते हुए', मध्यप के पत्र में, वह अर्थ सगत होता है।

^२ तमिल में 'कोटि' शब्द का अर्थ होता है 'लता'। शब्दशब्देष से उमका दूसरा अर्थ 'ध्वजा' भी होता है। मूल म इस शब्द का प्रयोग करने के विनाशकार दिखाया गया है।

वह नदी, किनारे के छोटे-छोटे गाँधों में से, जमा हुआ गाटा और सुगंधित दही, दूध, मक्खन और धी को छीको के साथ ही उठा ले जाती है (वहाँ ले जाती है), कदंब-बृक्षों को गिरा देती है, हिरनी के समान भीरु नयनवाली खालिनों के उक्कल वहा ले जाती है। प्रबल वेग से वहती हुई वह नदी, कालिय नाग पर, जो अपने फनों और वारियों से भयकर लगता है—नाचनेवाले कृष्ण की समानता करती है।

सरयू का वह प्रबल प्रवाह अपने मार्ग में (गाँधों) के किवाड़ों को ढकलकर आगे बढ़ जाता है, कृषक उसे देखते ही आनन्दित हो जाते हैं और हाथ उठा-उठाकर आनन्द-रव करने लगते हैं, नदी का पूरा भरा हुआ अग्रभाग किनारों से उमड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है, उसके ऊपर भौंडे-भौंडे मँडराते जाते हैं, वह यत्र-तत्र मोर्तियों और रत्नों को बिखेर देता है, बाढ़ को रोकने के लिए जहाँ-तहाँ गाड़े हुए खूंटों को बीची-रूपी अपने विशाल हाथों से उखाड़ता हुआ, लहलहाते हुए खेतों से भरे 'मरुदम्'^१ (कहलाने-वाले) प्रदेश में ऐसे आ पहुँचता, जैसे कोई मत्तगज मदजल वहाता हुआ आया हो।

हिमाचल के ऊपर से आया हुआ वह प्रवाह, पर्वत (कुरिंजि) के पदाथों का पर्वत की तलहटी पर के अरण्य (मुल्ले) प्रदेश में बहा ले जाता है और अरण्य के पदाथों को खेतों और बगीचों से भरे हुए (मरुदम्) प्रदेश से लाकर फैला देता है तथा समुद्री तट (नेयदल) प्रदेश को अपनी उपजाऊ मिट्टी के द्वारा लहलहाते खेतों में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार, वह पर्वत अरण्य, खेतों आदि की वस्तुओं को अपने-अपने स्थानों में हटा-हटाकर दूसरे स्थानों पर रख देता है। देव, मनुष्य, पशु-पक्षी तथा स्थावर—इन चार प्रकार की योनियों में भ्रमण करते रहनेवाले प्राणियों के साथ जिस प्रकार उनके सचित्र क्रम (पाप और पुण्य) लगे चलते हैं और उन्हें मिन्न-मिन्न योनियों में उत्पन्न होने के लिए वाध्य करते हैं, उसी प्रकार यह नदी भी विभिन्न भू-प्रदेशों के पदाथों को स्थानान्तरित करती हुई आगे बढ़ती है।

नदी की बाढ़ को बढ़ते हुए देखकर कृपकजन आनन्दित हो उठते हैं और 'पटह'^२ बजाकर उसको सूचना देते हैं। वह नदी अपनी बीचियों से जल-विदुथों तथा स्वर्ण और मोर्तियों को बिखेरती हुई, धरती को चीरती हुई, नालों की शाखा-प्रशाखाओं में बैटकर वहती हुई इस प्रकार दौड़ चलती है, जिस प्रकार किसी पुण्यवान् मनुष्य की वशावली विभक्त होकर विकसित हो रही हो।

सरयू का प्रवाह हिमाचल पर उत्पन्न हुआ, वहाँ से चलकर वह समुद्र में जा मिला। वह आरभ में एक ही रहा, परन्तु धीरे-धीरे असंख्य नालों, नहरों, तालाबों और

^१ तमिल-लक्ष्मणकार भूमि को पाँच प्रकारों में विभाजित करते हैं—(१) कुरिंजि—पार्वतीय प्रणग, (२) मुल्लै—अग्रण्य-प्रदेश, (३) मरुदम्—नदियों के जल से सिचित समतल प्रदेश, (४) नेयदल—समुद्री तट और (५) पालै—वाल्मीय प्रदेश या मरुभूमि।

^२ प्राचीन तमिल देश में नहरों और नालों की रखवाली करने के लिए 'मल्ल' नामक लोग नियुक्त थे, नदी में जब पानी आता था, तब वे पटह-बाधों को बजाकर लोगों को सचना देते थे तिससे तट पर के गाँवों के लोग सचना पाकर सावधान हो जाते थे।

कूपों में वैट गया। अनन्त वडों के द्वारा प्रतिपाद्यमान जो अपरिमेय परब्रह्म है, वह एक और अद्वितीय होकर भी विभिन्न मतवादों के सिद्धान्तों के द्वारा बहुधा प्रतिपादित है और तद्विधयक ज्ञान अनेक रूपों में विभक्त हो गया है। उसी प्रकार सरयू नदी भी अनेक धाराओं में विभक्त हो गई है।

सरयू का प्रवाह मकरन्द वरसानेवाले उपवनों में, घने चपा-चनों में, कमल-भरी वाषियों में, सुरभिमय तडागों में, माधवी लता-कुंजों से धिरे क्रमुक (सुपारी)-वनों में, एवं लहलहाते खेतों में, सर्वत्र ऐसा वह चला, जैसे प्राणियों के नाना प्रकार के शरीरों में प्राण वहा करता है। (१-२०)

अध्याय ३

कोशलदेश पटल

महर्षि वाल्मीकि ने अतिपरिष्कृत और सुन्दर इलोकों में रामायण की रचना की है, जो देवताओं के लिए भी कर्णमृत के समान है। उस काव्य में वर्णित कोशल देश की महिमा, प्रेम से विवश होकर मैं गा रहा हूँ, किन्तु यह कार्य मेरे लिए वैसा ही दुष्कर है, जैसा गूँगे व्यक्ति के लिए बोलने का प्रयास करना।

वह कोशल देश बड़ा ही वैभवपूर्ण है, वहाँ के खेतों की मेड़ों पर मोती और नालों के जल में शख विखरे रहते हैं, तीव्र जल-धाराओं के किनारों पर सोने के ढेले पड़े रहते हैं, उन नालों में जहाँ भैंसें गोता लगाये पड़ी रहती हैं, रक्तवर्ण के कमल-पुष्प बड़े ही सुन्दर दृश्य उपस्थित करते हैं, जोतने के उपरान्त जब खेत समतल बना दिये जाते हैं, तब वहाँ मणियाँ चमकने लगती हैं, इतना ही नहो, शालि-धान के खेतों में जहाँ निरन्तर जल का मिन्चाव होता रहता है, हस आकर विश्राम करने लगते हैं, गन्ते के खेतों में रक्तवर्ण लाल-लाल मीठा मधु वहता रहता है और पुष्प-वाटिकाओं में झुण्ड-के-झुण्ड भौंरे मैंडराते रहते हैं।

वहाँ जीवन का कोलाहल खूब सुनाई पड़ता है, एक ओर गन्ते पेरने से ईख का रस, फरने के जल के समान, शब्द करता हुआ प्रवाहित होता है, तो दूसरी ओर नदियों के तट पर चरनेवाले शख-कीटों के बोलने की ध्वनि सुनाई पड़ती है, एक ओर वडे-वडे वैल व्यायम में टकराकर बड़ा शब्द उत्पन्न करते हैं, तो दूसरी ओर तालाबों में महाकाय भैंसों के उतरने से जलास्फालन का शब्द होता है। इस प्रकार, नाना प्रकार की ध्वनियों का एक विचित्र कोलाहल उस 'मरुदम्' प्रदेश में सदा होता रहता है।

लहलहाते खेतों और सुन्दर वृक्षों का वह प्रदेश भी कैसा गमीर है, मानो कोई राजा दरवार में मिहानन पर आमीन हो और उसके सामने मोर नाच रहे हों, कमल-लतिकायें दीप लिये खड़ी हो मेघ मर्दल बजाते हों, ब्रमर गुजार करके मधुर वीणा का स्वर सुनाने ही नदी के जल पर उठ-उठकर गिरनेवाली चचल लहरें यवनिका का दृश्य उपस्थित

करती हो और कुबलय-पुष्पो का समुदाय अपने विशाल नयनों (पखुडियों) को खोलकर इस सुमधुर दृश्य को मंत्र-सुग्रह होकर देखता खड़ा है ।

वहाँ के विकसित कमल-पुष्पों पर भ्रमर तथा लद्धमी देवी विश्राम करती हैं, पुष्पमालाओं से अलंकृत रसिक-जनों पर रमणियों के कटाक्ष तथा कामठेव के बाण आधान करते हैं, बड़ी-बड़ी मेघराशियों से गिरनेवाली जलधाराएँ प्रवाल तथा मोतियों की सपटा उत्पन्न करती हैं, वहाँ के निवासियों की जिह्वा पर मदा सत्यवचन तथा शास्त्र-चर्चा निवाग करती है ।

शख-कीट तालाबों में (निर्भय होकर) विश्राम करते हैं, (क्योंकि) भें (उन्हे कष्ट न देकर) वृद्धों की शीतल छाया में विश्राम कर रही हैं, भ्रमर (नगर-निवासियों की पुष्पमालाओं पर) विश्राम करते हैं, (क्योंकि) लद्धमी देवी कमल-पुष्प पर विश्राम कर रही हैं, सीपियाँ (खेत की) मेड़ों पर विश्राम करती हैं, (क्योंकि) कछुए कीचड़ में विश्राम कर रहे हैं, हम धान के अंवारों पर विश्राम करते हैं, (क्योंकि) मोर (उन्हे कष्ट न देकर) उपवनों में विश्राम कर रहे हैं ।

(उस देश के वैभव की कितनी प्रशसा करूँ ?) वहाँ खेतों में हल जोतने पर सोना निकल पड़ता है, उसको समतल बनाने पर रख विखर जाते हैं, शख मोती उगलते हैं, धान की सुनहली वालियाँ हैं, मछलियाँ हैं और कोमल पत्तेवाले गन्ने हैं, भ्रमरों, कमल-पुष्पों एवं कृषकों के हर्षोत्सुल्ल मुखों से परिपूर्ण वह देश कितना नयनाभिगम है ?

प्रभात के समय मधुर स्वरवाले 'याल'-वाद्य (एक प्रकार की बीणा) को हाथ में लेकर, मृदग की ध्वनि के साथ जब मधु-पान से मस्त गर्वैये गाने लगते हैं, तब उम संगीत-लहरी को सुनकर रजत-प्रासादों में, सुनहली धूप की छटा विखरनेवाले स्वर्ण-पर्यंकों पर निद्रामध मधुर-पख के जैसे नयनवाली तरुणियाँ, जाग उठती हैं ।

वहाँ एक और कोल्हुओं से गन्ने का रस निर्भर के रूप में वहता है, तो दृग्गी और नारियल के कटे हुए धौदों से मीठा रस प्रवाहित होता है, कही उपवनों में पके हुए फलों का मीठा रस चू रहा है, तो कही पुष्पों से मकरन्द फरकर नीचे गिर रहा है । ये सभी रस मिलकर, लहराती हुई धारा बनकर, जब म्सुद्र में जा गिरते हैं तब मसुद्र के मीन उन रसों को पीकर मस्त हो जाते हैं ।

मधु पीकर मस्त हुए कृषक लोग खेत निराने जाते हैं, वहाँ वे खेतों में फोधों के माथ उगे हुए कमल, कुमुद आदि पुष्पों में, मधुर स्वरवाली कृषक-वालाओं के नयन, कर चरण आदि अंगों की छटा देखते हुए निराना भल जाते हैं और यो ही इधर-उधर फिरते रहते हैं । नीच जन जब स्त्रियों पर आसक्त हो जाते हैं, तब उम आसक्ति को किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ते ।

वहाँ की रमणियों के सौन्दर्य का क्या कहना ? उनके मधुर स्वर, मनोहर कटाक्ष, जो कटार के जैसे पैने हैं, पुरुषों के मन को हर लेते हैं उनकी विद्युत की-नीच छटा अवर्णनीय है, उनके केश पुष्प, कस्तूरी आदि सुग्रहित द्रव्यों से सुवासित हैं, जब वे नदियों में स्नान करती हैं तो नदी का जल उनके केशों की सुग्रहि से सुवासित हो जाता है,

इतना ही नहीं, जब वह जल समुद्र में जाकर गिरता है, तब मारे समुद्र की दुर्गन्धि को अपनी इन सुगंधि में मिटा देता है।

वहाँ पुरुष अतिस्तप्तवान् हैं, उनके कानों और अन्य अगों में कुण्डल आदि आभूषण शोभा ढेते हैं, उनके शरीर चन्दन, कर्पूर आदि से लिप्त रहते हैं, जब वे नदियों में स्नान करते हैं, तब नदियाँ इन सुगंधित द्रव्यों से भर जाती हैं और जिन खेतों को वे भीचती हैं, उनकी मिट्ठी भी सुवासित होकर कर्पूर आदि की गध विखेरती है, जिस कारण ने भौंरो के सुण्ड सदा उस मिट्ठी पर ही मँड़राते रहते हैं।

मीन के समान नेत्रवाली कृषक-वालाओं के पीछे-पीछे राजहंसिनियाँ, उनकी चाल का अनुकरण करती हुई, भटक जाती हैं, तो कमल की बेज पर सौये हुए अपने बच्चों को भी भूल जाती हैं, हँस-शिशु निद्रा से उठकर भूख से चिल्ला उठते हैं, उन्हे देखकर भैंसों को अपने बछड़ों की याद आ जाती है और उनके स्तनों से दूध स्रुति होने लगता है, उस दूध को पीकर हँस-शिशु तृप्त हो जाते हैं फिर हरे-हरे मेढ़क लोरियाँ गाकर उन्हे मुला ढेते हैं।

वहाँ के उद्यानों में कहीं कोयल का जोड़ा, एक दूसरे को प्यार करता हुआ बेठा है, कहीं सुन्दर मयूर नाच रहे हैं, उन उद्यानों की शोभा, विशालनयन नर्तकियों की नत्यशालाओं के लिए भी शू गार है, प्रातःकाल के समय मधुपान से मस्त भ्रमर भी सध्यागीत गा उठते हैं (भ्रमात-गीत गाने की सुध उन्हें नहीं रहती), पकज-पर्यंकों में सौये हुए राजहंस उस ध्वनि को सुनकर अचानक जाग उठते हैं।

कोशल देश के निवासी मनोविनोदों में अपना समय व्यतीत करते हैं। कहीं नभी चुणों से सपन्न अपने-अपने योग्य सुन्दरियों के साथ युवक विवाह-संवध करते हैं, कहीं लोग चील के साथ उड़नेवाली परछाई के जैसे सगीत का रसास्वादन करते हुए मस्त होते हैं (अर्थात् सगीत साहित्य का उसी प्रकार अनुमरण करता है, जिस प्रकार छाया उड़नेवाले पक्षी का अनुमरण करती है), कहीं रसिकजन अमृत से भी श्रेष्ठ काव्य-माधुर्य का पान करने में सलझ हैं, कहीं अतिथि-सत्कार हो रहे हैं, जहाँ गृहस्थजन अतिथियों की मुखाकृति को देखकर ही उनके मनोभाव समझ लेते हैं और उन्हें उचित उपचार से सतृत कर आनन्द प्राप्त करते हैं।

कहीं लोग एकत्र होकर सुगों का शुद्ध देखते हैं, पूर्व-वैर न होने पर भी, वे कुक्कुट एक दूसरे पर बड़ा क्रोध दिखाते हैं, उनके मन में रोप भरा है, सिर पर की कल्पिंगी उनकी लाल-लाल आँखों से भी अधिक रक्तिम होकर चमकती है, टाँगों में बँधी छोटी-छोटी पंनी छुरियों ने वे एक दूसरे पर चोट करने हुए अमन्द उत्साह से घनघोर दुद्ध लगते हैं व कुक्कुट यदि अपने वीरता-पूर्ण जीवन में कोई कमी रखते हैं, तो यही कि व जीवन की मार्घबता को नहीं पहचानते।

कहीं लांग भैंसों को लड़ाकर उमका तमाशा देखते हैं, लाल आँखवाले वे भैंसे बड़े गोप के नाथ एक दूसरे पर आधात करते हैं और एक दूसरे को ढकेलने की चेष्टा करते हैं, ऐसा प्रतीत होता है, मानो विश्व के नाना षट्ठार्थों को एक स्प वना देनेवाला घोर

अधिकार अब दो पक्षों में विभक्त होकर इन भैंसों के भयंकर रूप में आ गया हो और लड़ रहा हो, उस युद्ध को देखनेवाले दर्शक जब प्रसन्नता से अङ्गहास कर उठते हैं और मिर हिलाने लगते हैं, तब उनके सिर के फूलों पर बैठे हुए भ्रमर गूँजते हुए उड़ जाते हैं वहाँ जो कोलाहल होता है, उसका शब्द मेघ-मंडल तक गूँज उठता है।

किसान खेतों को हल से जीतते हैं, वे बड़े-बड़े बलवान् बैलों को जोर-जोर से हाँक लगाते हुए ललकारते हैं, उनकी ललकारों की गंभीर ध्वनि से कमल के नाल दृट-दृटकर गिर जाते हैं, मोती और सोना धरती से फूट निकलते हैं, मणियाँ विखर जाती हैं; 'चलचल' नामक सीप मुँह खोलकर रो उठते हैं; हल की धारियों में तेरती हुई मछलियाँ छूटपटाती हुई उछल पड़ती हैं, कछुए अपने पैरों और सिर को अपने पेट में समेटकर निःस्तब्ध हो पड़ जाते हैं और मीन खेतों से भागकर नालों के गहरे जल में छिप जाते हैं।

बड़ी-बड़ी नौकाएँ, जो अमूल्य वस्तुओं को लेकर विदेशी में गई थीं और वहाँ अपने बोझ उतारकर वापस लौट आई हैं, समुद्र-तट पर पड़ी हैं, मानो भारी बोझ ढोने से दुखती हुई अपनी लंबी पीठ को आराम दे रही हो। ये नौकाएँ भी उस पृथ्वी के ही समान दीखती हैं, जो मनु-नीति का अनुसरण करनेवाले, उचित स्थान पर क्रोध दिखानेवाले, दड़ का भी उचित प्रयोग करनेवाले, इच्छाहीन, धर्मज्ञ और प्रजावत्मल राजा के द्वारा सुरक्षित होने के कारण पाप-भार से मुक्त हो गई हों।

धान की कटी बालियों का ढेर आसमान को छूता हुआ पड़ा है, कृपक लोग, (हाँकनेवाले के) सकेतों को समझकर चलनेवाले बैलों के द्वारा उन बालियों की दौनी करके धान निकाल लेते हैं, दरिद्रों को दान देने के बाद बचा हुआ धान गाड़ियों में लादकर अपने घर ले जाते हैं, जिससे अतिथियों तथा कुटुम्ब के सग वे भरपेट भोजन कर सके। गाड़ियाँ जब धान लादकर चलती हैं, तब भार के मारे पहिये धौम जाते हैं, मानो धरती भी उस बोझ के आगे अपनी पीठ मरोड़ रही हो।

उस देश में सभी आवश्यक पदार्थ उपजते हैं, धान के खेतों में धान, महँकत वागों में पके फल, बाँगर भूमि में चना आदि अनाज, लताओं में फल, कट-मूल—जो मिट्टी के भीतर से खोदकर निकाले जाते हैं—आदि वहाँ पर होते हैं, जिन्हे कृपक उसी प्रकार बटोर लेते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्टों से मधु को एकत्र कर लेते हैं।

उस देश के सभी प्रान्तों में अन्न का सदाचरत बड़ी धूम से चलता है, ब्रातणों को भोजन देने के उपरान्त गृहस्थजन अपने अतिथियों तथा बंधुओं के माथ स्वयं भोजन करते हैं, भोजन के पदार्थ में तीन श्रेष्ठ फल^१ (आम, कटहल और केला), विविध रसमय दाल उस दाल को हुबो देनेवाला धी, लाल-लाल दही के टुकडे, खाँड़ इत्यादि होते हैं और इन व्यजनों से धिरा हुआ भात होता है।

भ्रमर उम प्रदेश में निरन्तर निवास करते हैं क्योंकि वहाँ की कार्मिनियों के

^१ तमिल देश के तीन प्रधान फल हैं—आम, कटहल और केले। इन्हीं तीन पलों का वर्णन तमिल-साहित्य में प्राय मिलता है।

पक्ज ममान मुख-मडल पर जो काजल-अकित रमणीय नवन हैं, उन्हें वे भ्रमरियाँ समझ लेते हैं और उन्हीं की सगति की कामना करते हुए सदा वही मँडराते रहते हैं।

कामचंद्र जिन पुन्धों को विचलित नहीं कर सकता, उन्हे भी वहाँ की युवतियों का दृष्टि-पात अवीर बना देता है, उनके मनोज्ञ स्तन, सामने आनेवाले पुरुषों का सिर इस तरह झुका देते हैं, जैसे मालिक अपने नौकरों पर क्रोध करके उनका सिर नीचे कर देता है। उधर नारियल के घौटों से जो मधु-धारा वहती है, उसे पीकर मोटे मीन मस्त पड़े रहते हैं।

धरती पर चलनेवाले काले वाद्लों जैसी मैसें, नदी के ठड़े जल में गोता लगाती हुई अपने बछड़ों को याद करती हैं, तो उनके थनों से दूध स्वित होने लगता है; जब वह दूध नदी के जल ने मिलकर खेतों में पहुँचता है, तब उसी दुर्ध-धारा से सिचकर धान का शस्य बढ़ता है।

वहाँ की अति समृद्ध पाक-शालाओं में बड़े-बड़े भाड़ों में चावल पकाया जाता है, चावल धोने का पानी कल-कल शब्द करता हुआ वहाँ से बहकर क्रमुक-बन में होकर लाल धान के खेतों में पहुँचता है और अकुरों को पुष्ट करता है।

कूड़े के ढेरों पर बैठे हुए और सिर पर कलौंगी से शोभायमान लाल मुर्गे जब अपने नखों ने कूड़े को कुरेटते हैं, तब उसमें से चमकती हुई मणियाँ विसर जाती हैं, चिड़ियाँ उन्हे जुगनू समझकर अपने धोसलों में लाकर रखती हैं।

अहीर तश्णियाँ उज्ज्वल और गाढ़े दही को अपने सुन्दर करो से हिला-हिलाकर मथती हैं, तब मथानों की ध्वनि रह-रहकर जोर से उमड़ पड़ती है, उनके हाथों में पड़े शश के नक्काशीदार नफेड करन बोल उठते हैं, और उनकी पतली कमर आगे बढ़-बढ़कर लचक जाती हैं।

फुलवारियों में तोने बोलते हैं, पुष्ठों में भ्रमर गाते हैं, जलाशयों में पक्षियों का मधुर कलरव होता है दानों लोगों के घरों में अतिथियों के भोजन के लिए धान कूटनेवाली औरतें गृहस्थ की प्रशसा में गीत गाती रहती हैं।

भोली और काली आँखोवाली वालिकाएँ नदी से मोतियों को अपने चुल्लू में भर-भरकर ले आती हैं और घर के आँगन में उनसे घराँदे बनाकर खेलती हैं, इस तरह विस्तरे हुए मोती गुवाक (सुपारी) के फलों में मिल जाते हैं, और गुवाक साफ करनेवाले लोग उन मोतियों को अमार बस्तु समझकर फेंक देते हैं।

टेहे नींगों और कठोर कपालवाले भेड़ों के बलवान् जोडे जब परस्पर मिडकर लड़ते हैं, तब उनके टकराने की कर्कश ध्वनि से दूरस्थ पर्वत-शृंगों पर रहनेवाले मेघों में विजली क्रौंध जाती है।

पर्वतों के बीच अरण्यों में जंगली हाथियों को फँसानेवाले वीर शिकारी कठघरे बनाकर उनमें हाथियों के भुण्ड को—बच्चोंवाली हथनियों से उन्हें अलग करके—फँसा लेते हैं, और जब उन मत्त हाथियों को सुदृढ़ शृंखलाओं से वे वीर बाँधने लगते हैं, तब वहाँ बड़ा विकट कोलाहल होता है, उन कोलाहल को सुनकर नरोंवर में हमिनी के साथ क्रीड़ा रहनेवाले मगल (हम) दृग्कर भाग खड़े होते हैं।

किसान लोग जब भूमि से कद-मूल खोदकर निकालते हैं, तब उन कंडो के साथ कई श्रेष्ठ रक्त भी निकल पड़ते हैं, फलों के भार से भुकी हुई आम्रवृक्षों की डालियों से निरन्तर मधु-धारा वहती रहती है, सदा कमल-पुष्पों से प्रेम करनेवाले हम 'पुन्ने' (नामक) पुष्पों से आकृष्ट होकर उनके पास अटक जाते हैं।

कृषक-रमणियों 'कुरवै' नृत्य (एक प्रकार का लोक-नृत्य) करती हुई गाती हैं, उनके गायन का मधुर स्वर सुनकर खालों के आँगन में बैधे हुए बछड़े, जो बौसुरी का नाट सुनने के अभ्यस्त हैं, निद्रा-निमग्न हो जाते हैं, वहाँ की स्त्रियों के राग सुनकर खेतों की रखवाली करनेवाले कृषक बेसुध हो जाते हैं।

पहाड़ों पर उगे हुए वाँस, हवा के झोके खाकर टकराने लगते हैं, उनकी चोट खाकर शहद के बड़े-बड़े छत्तों से शहद वह निकलता है, ऊँची चट्टानों पर से गिरती हुई मधु की धारा ऐसी लगती है, मानो कोई विशाल सर्प चट्टानों से लटक रहा हो, यह मधु की धारा कुमुद-पुष्पों से भरे मर में जा गिरती है, तो (शख) कीट उसे पीकर तृप्त होते हैं।

वहाँ की सुन्दरियाँ, जिनके विशाल नयन और अर्द्धचन्द्र सदृश ललाट हैं, वे विद्या एवं धन से सपने हैं, अतः जो कोई दुःखी पुरुष उनके यहाँ आता है, उसे धन आदि देकर सतुष्ट करती हैं, वे सदा इस तरह के धर्म-कर्मों में निरत रहती हैं, उनका अन्य कोई दैनिक कार्य नहीं है।

भोजनालयों में, जहाँ रोज अनांगिनत अतिथियों को भोजन दिया जाता है, अर्द्धचन्द्राकार कटारों से काटी गई तरकारियों, दालों और मोती के दानों जैसे चावलों की वडी-बड़ी राशियाँ लगी रहती हैं।

वहाँ के निवासियों की विभूतियों का वर्णन कौन कर सकता है ? वडी-बड़ी नावे विदेशों से अनन्त निधियाँ ला देती हैं, धरती शस्य के रूप में अनन्त समृद्धि देती है, खाने श्रेष्ठ रक्त प्रदान करती हैं तथा उनके विभिन्न कुल उन्हे दुर्लभ सदाचार की शिक्षा देते हैं।

वहाँ कही भी कोई पाप-कृत्य नहीं होता, अतः किसी की अकाल-मृत्यु नहीं होती ; लोगों के चित्त विशुद्ध रहते हैं, अतः किसी के मन में वेर या द्वेष-भाव नहीं रहता ; वहाँ के निवासी धर्म-कृत्यों को छोड़ अन्य कोई कार्य नहीं करते, अतः सदा प्रजा की उन्नति ही होती रहती है।

(उस देश में) नदियों के प्रवाह के मिवाय अन्य कोई अपना मार्ग छोटकर नहीं चलता ; नारियों की कुंकुमपत्र-रेखाओं से चित्रित (पुरुषों की) भुजाओं को छोटकर अन्य किसी वस्तु का (धान की राशियों पर लगाये गये निशान आदि) चिह्न नहीं मिटता, रमणियों के कटि-प्रदेश के अतिरिक्त अन्य कोई क्षुद्र नहीं होता, नारियों के पुष्पालकृत घुँघराले और सुगधित केशों को छोड़कर और कोई विक्षित (विखरा हुआ या पागल) नहीं दीखता।

अगरु का धूम, पाकशालाओं का धूम, गुड़ की भटियों का धूम एवं घट-धर्वनि ने गुंजायमान यज्ञशालाओं का धूम—ये सब मिलकर मेघ वन जाते हैं और (अयोध्या के) गगन में फैल जाते हैं।

उम देश की नारियों की छटा प्रातकर मयूर (गव से) सचरण करते हैं, उनके बद्धों पर शोभावमान गलाभरणों की कानि पाकर सूर्यांतप (आनन्द से) सर्वत्र फैल जाता है। उनके देशों की शोभा पाकर मेघ (अभिमान से) गगन पर चढ़ जाते हैं और उनके नेत्रों की छवि प्राप्त कर जलाशयों में मीन (हर्ष से) इधर-उधर तैरते हैं।

मगंवर्ग में नारियों जब अपनी दृष्टी-भी सूदम कटि के साथ लहरों को उद्देलित करती हुई गोता लगाती हैं। तब उनके रक्ताधर को ढेखकर हुमुद सिल पड़ते हैं; जल पर चलनेवाले हैं ऐस की-सी गतिवाली नारियों के मुख की समता करते हुए कमल खिल जाते हैं।

वहाँ की वर्णिताओं के कटाक्ष अपने उपमानीभूत सभी वस्तुओं का उपहास करते हैं, उनकी गति हर्थिनी की गति का उपहास करती है; परस्पर सटे हुए उनके उच्चत उरोज पञ्ज की कलियों का उपहास करते हैं; और उनके सुन्दर मुख पोडश कलाओं में पूर्ण चन्द्रभा का उपहास करते हैं।

वहाँ जो रक्त विखरे हैं, उनकी काति खूब की किरणों से भी विलक्षण है, वहाँ की रमणियों के स्तन नारियल के शीतल फलों से भी विलक्षण हैं, उनके उज्ज्वल दुकूल दूध पर पड़े झाग से भी विलक्षण हैं और उनके विवाहोत्सवों में वजनेवाले नगाड़े काले वादलों (के गर्जन) से भी विलक्षण हैं।

उम देश के हरे-हरे उपवनों की समता कर नकती है, केवल काली घटाएँ, खेतों में लगे धान के अवारों की समता कर नकता है, केवल पर्वत वहाँ के वाँधों से धिरे हुए विशाल जलाशयों की समता कर नकता है, केवल अपार जलराशि समुद्र, और, अनन्त निरियों ने सपन्न उम कोशल देश की समता कर सकता है, केवल देवलोक।

जो धानों को गशियाँ नहीं हैं वे मोतियों के ढेर हैं, जो मोतियों के ढेर नहीं हैं वे समुद्र में निकाले गये नमक के ढेर हैं, जो नमक के ढेर नहीं, वे नदियों से निकली अमूल्य वस्तुओं के नमूह हैं, और जो उन वस्तुओं के नमूह नहीं हैं, वे सैकत श्रेणियों हैं जहाँ रक्त विखरे पड़े हैं।

वालिकाएँ जहाँ कन्दुक-क्रोडा करती हैं, वे चन्दन के वाग नहीं हैं, परन्तु चपक-पुण्यों के उपवन हैं—(वालिकाओं के शरीर की सुगंधि पाकर चन्दन-बन भी चपक-उपवन के समान महँक उठते हैं), मयूरवाहन सुन्दर सुब्रह्मण्यम् (कार्त्तिकेय) के जैसे वहाँ के वालक जहाँ वनुर्विद्या आटि कलाओं का अभ्यास करते हैं वे नन्दन बन नहीं हैं, परन्तु मकरन्द-भरे रजनीगंधा के बन हैं—(उन वालकों के शरीर से भी रजनीगन्धा की-सी सुरभि पाकर पगिजात-बन भी रजनीगन्धा की फुलवारी के समान महँकने लगता है।)

वहाँ के कोकिल उन सुन्दरियों की कठध्वनि का अनुकरण करते हुए बोल उठते हैं मग्न उनके नृत्य का अनुकरण करते हुए नाचने लगते हैं और सीप उनके दाँतों के उपमान होनेवाले मोती उगलते हैं।

(उस देश के) मद्य-विक्रेताओं के वहाँ मद्य पवास मात्रा में मौजूद रहता है, उन मध्यों का पान करनेवाले कृषकों के वहाँ खेती के उपयुक्त सभी आवश्यक साधन

उपस्थित रहते हैं, विवाह-मंगल में व्यस्त युवकों के घरों में उम समय के अनुकूल मगल-वाद्य बजते रहते हैं, और, संगीत-कला-निपुण 'वाण' (एक गायक जाति) लोगों के घरों में धुमावदार 'किलै' (एक प्रकार की बीणा)-वाद्य विद्यमान रहते हैं।

वहाँ पुध्य-मालाएँ शीतल नव मधु वरसाती हैं, जल-पोत उत्कृष्ट गङ्गों को (विदेशों से लाकर) वरसाते हैं, हवाएँ प्राणों को स्थिर रखनेवाला अमृत वरसाती हैं और कवियों की वाणी कर्ण-पेय मधुर कवित्व रस वरसाती है।

पुध्पों से अलकृत केशों और मुक्ता-मालाओं से भूषित वक्षों से अतिरमणीय दिखनेवाली कामिनियों को उद्यानों में देखकर वडे कलापवाले मधूर भ्रम में पड़ जाते हैं कि वे भी मधूरी हैं और इसलिए युवकों के मन के जैसे ही वे मधूर भी उनके पीछे-पीछे चलने लगते हैं।

उस देश में दान का महत्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई भी याचक नहीं है, शरता का महत्व नहीं, क्योंकि वहाँ शुद्ध नहीं होते, सत्यवचन का महत्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई कभी असत्य-भाषण नहीं करता, और, पडितों का भी महत्व नहीं, क्योंकि वहाँ के सभी लोग वहुश्रुत तथा ज्ञानी हैं।

तिल, जौ, सामा, कुलथी आदि धान्यों से भरी हुई गाडियाँ और नमक के खेतों से नमक लादकर लानेवाली गाडियाँ, वहाँ की गलियों में पहुँचकर एक दूसरे की कतारों में इस प्रकार खो जाती हैं कि उन्हे अलग-अलग पहचानना कठिन हो जाता है।

वहाँ के विभिन्न प्रान्तों में उत्पन्न होनेवाले खाँड, शहद, दही, मद्य आदि पदार्थ दूसरे प्रान्तों में यो स्थानान्तरित होते रहते हैं, जैसे मोक्ष-प्राप्ति के उपाय से वच्चित प्राणी अपने किये कर्मों के फल भोगते हुए विभिन्न जन्म ग्रहण कर भटकते रहते हैं।

यज्ञों को देखने के लिए आई हुई जन-मडली और मेलों को देखने के लिए आई हुई जन-मडली—दोनों, सगीत और वाँसुरी की ध्वनियों से प्रतिध्वनित होनेवाली गलियों में इस तरह मिल जाती हैं. जैसे अलग-अलग दिशाओं से वहती हुई दो नदियाँ एक स्थान पर आकर मिल जाती हों।

शख-ध्वनि, मृदग का नाद, पटहों का रख आदि स्वर, खेतों में वडे-वडे वैलों को हाँकनेवाले कृपकों की हाँक में समा जाते हैं।

माताएँ अपने नन्हे बच्चों को दूध पिलाकर अपने हाथ से अन्न उठाकर खिलाती हैं, उन बच्चों के मुँह से लार उनके बक्ष पर गिरती है, जहाँ (विष्णु भगवान् के) पौँच आयुधों के चिह्नेवाली माला पड़ी है, अन्न उठाते समय उन नारियों के मुकुलित होनेवाले कर यो दीखते हैं, जैसे चन्द्र की काति से पकज मुकुलित हो रहे हीं।

वहाँ के लोग शीलवान् हैं, इसलिए उनका मौन्दर्य नित नवीन रहता है, व सत्यवादी हैं, इसलिए वहाँ नीति स्थिर रहती है, वहाँ त्रियों का आदर होता है, इनलिए धर्म सुरक्षित रहता है, और, वर्षा समय पर होती है, क्योंकि वहाँ की नियाँ पर्वत आचरणवाली हैं।

उम विशाल कोशल दश की, जो उपवनों ने विग हुन्ना र गीमा दा पता छो-

भी नहीं लगा सकता, मरव् नदी अपनी अनन्त शाखा-प्रशाखाओं ने वहती हुई उस सीमा को खोज रही है, फिर भी उसे पहचान नहीं पाई है।

यह कोशल देश इतना पुण्यभूमि है कि यदि प्रभजन के आधात से समुद्र की जलराशि भूमि पर चढ़ आवे, तो भी उस देश की कोई हानि नहीं हो सकती। ऐसे कोशल का वर्णन करने के पश्चात् अब हम अयोध्या नगर का वर्णन करेंगे। (१—६१)

अध्याय ३

नगर पटल

अयोध्या नगरी सस्कृत भाषा के महाकवियों तथा विद्वानों द्वारा रस-भरे, सार-गर्भित, मधुर शब्दों में वर्णित हुई है, जिन स्वर्गलोक की प्राप्ति की इच्छा से असंख्य लोकों के निवासी तपस्या में लीन रहते हैं, उस स्वर्ग के निवासी भी अयोध्या नगरी का निवास प्राप्त करने की कामना करते रहते हैं।

क्या वह अयोध्या नगरी भूदेवी का मुख है या उसका तिलक है? अथवा उसके नवन है? उसके स्तनों पर सुशोभित मनोहर रत्नहार है? अथवा उस भूदेवी के प्राणों का निवास है?

क्या वह नगरी लक्ष्मी देवी का आवास-भूत अर्थ सुन्दर कमल है? या वह स्वर्णमजूपा है, जिसके भीतर विष्णु भगवान् के वक्ष पर प्रकाशित होनेवाले कौस्तुभ मणि जैसे सुन्दर रत्न रखे हुए हैं? अथवा वह देवलोक से भी ऊँचा वैदुष्ठधाम ही है? कदाचित् यह वह स्थान है, जहाँ प्रलय के समय सारी सृष्टि समा जाती है। इस नगर के सम्बन्ध में और क्या कहें?

अपने अधींग में उमा देवी को स्थापित करनेवाले (परमशिव) दो देवियों (श्री और भूमि) के पति अहुलनीय (विष्णु) भगवान् तथा क्षमाधन देव (व्रह्मा) ने भी इस अयोध्या की समानता करनेवाला दूसरा नगर नहीं देखा। चन्द्र तथा सूर्य भी इसके उपमान हो सकनेवाले एक नगर को देखने की प्रवल इच्छा से प्रेरित होकर ही निर्निमेप नवनों से अभी तक अतरिक्ष में धूम रहे हैं अन्यथा उनके इस प्रकार भ्रमण करने का दूसरा कारण क्या हो सकता है?

व्रह्मदेव ने वहुप्रशसित इस रमणीय अयोध्यापुरी का निर्माण करने के हेतु तीक्ष्ण वज्रायुध धारण करनेवाले (देवन्द्र) की नगरी अमरावती एव कुवेर की राजधानी (अलकापुरी) की सुष्टि करके पहले ही नगर-निर्माण का अन्यास कर लिया था, मय आदि देवशिल्पी भी इस नगर की शोभा देखकर लज्जित हो गये और शिल्पकला में अपनी हार स्वीकार कर सकल्पमात्र से सुष्टि करनेवाली अपनी शक्ति को भूल वैठे, तो मेघ-मडल को छुनेवाले इन प्रासादों का वर्णन कैसे किया जाय?

अपरिमेय देवों में यह अर्थ प्रतिपादित हुआ है कि (इस सनार में) 'जो पुण्य

कर्म करते हैं, वे परलोक में आनन्द प्राप्त करते हैं'—वैसे धर्म का पालन करते हुए इस पृथ्वी पर श्रीराघव के अतिरिक्त और किन्होने बड़ा तप किया है ? धर्म के त्राता, अनिर्वचनीय गुणों से भूषित (रामचन्द्र) ने जिस नगर में रहकर सप्त लोकों की रक्षा की, उम अयोध्या से भी बढ़कर सुखप्रद स्थान द्वाग कोई हो सकता है—ऐसा मानना भी क्या उचित है ?

महान् करुणा (भगवान् की करुणा) और धर्म की महायता से पचेन्द्रिय-स्पी अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, उत्तरोत्तर बढ़नेवाली तपस्या और ज्ञान प्राप्त करनेवाले महापुरुष जिस भगवान् की शरण में जाते हैं, वह असृण नयनवाले विष्णु इस नगर में अवतीर्ण हुए ओर (सीता देवी के रूप में रहनेवाली) लक्ष्मी के साथ यहाँ रहकर अनन्त काल तक लोक-पालन करते रहे, तो इस अयोध्या की समता कर सकनेवाला स्वर्णमय नगर देवलोक में भी कहाँ मिल सकता है ?

सभी राज्यों के नरेश उसी अयोध्या में एकत्र रहते हैं, सभी श्रेष्ठ आभरण और दुर्लभ रत्न वही पर होते हैं, बड़ी जंजीरों से बँधे मत्त गज, तुरंग, रथ आदि इस ससार की सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ वही पर होती हैं, मुनि, देव, यज्ञ, विद्याधर आदि सब उसी नगर में जमा रहते हैं, तो उस नगर की उपमा किसके साथ हो सकती है ? ऐसे नगरी के विषय में क्या मुझ जैसा व्यक्ति कुछ कह सकता है ?

[नीचे के छह पद्यों में नगर के प्राचीर का वर्णन है ।]

हिमावृत, अति उन्नत पर्वत-श्रेणियों में भी शिल्प-शास्त्र के अनुसार वने चतुष्कोण आकारवाले पर्वत इस सृष्टि में कही नहीं हैं, अतः (अयोध्या के) उस प्राचीर का उपमान भी कही नहीं है, वे स्वर्णमय प्राचीर उन विद्वानों के उन्नत ज्ञान के मद्दश हैं, जिन्होने बड़ी तत्परता के साथ सर्व शास्त्रों का अध्ययन किया हो ।

गमीर ज्ञान से भी उसका स्वरूप तथा अंत नहीं जाना जा सकता, अतः वह प्राचीर वेदों के समान है, उसके अति उन्नत शिखर अपर लोक तक पहुँचते हैं, अतः वह देवों के समान है, पचेन्द्रिय-तुल्य वलवान् यंत्रों को अपने वश में रखने के कारण वह मुनियों के समान है, रक्षा करने में वह हरिणवाहना कन्या (दुर्गा देवी) के समान है, शूलायुधों को धारण करने के कारण वह कालिका के समान है, अपनी विशालता के कारण वह सभी महान् पदार्थों के समान है, किसी के लिए भी अगम्य (पहुँच के बाहर) होने के कारण वह स्वयं भगवान् के समान है ।

अपर उठा हुआ वह प्राचीर अतिरिक्त में पहुँच गया है, मानो वह देखना चाहता है कि क्या देवताओं का निवास (स्वर्णपुरी) इस अयोध्या से भी अधिक सुन्दर है जिस नगर में मधुर-स्वरवाली ऐसी अमर्य रमणियाँ हैं, जिनके पद-नख, लाक्षा-रस से अकित श्रेणी में रखे हुए चंद्रों के मद्दश हैं, पद रक्त-कमल तुल्य हैं, कटियाँ नाल-तुल्य हैं, उरोज छोटे नारियल के समान हैं तथा जिनकी भुजाएँ लचीले कोमल वाँस के नद्दश मुकुमार हैं ।

वह प्राचीर उस नगर के चक्रवर्ती के ही समान है, क्योंकि वह समार के मापकदट से युक्त है—(चक्रवर्ती वेन्द्रदड से युक्त हो सारे समार की रक्षा करता है, उमी प्रकार प्राचीर

भी अपने भीतर दड़ो से युक्त है), वह शत्रुओं के मुकुटधारी शिरों को काट देता है— (राजा अपने शस्त्रों से और प्राचीर अपने भीतर लगे हुए यत्रों में शत्रु का शिर छेदन करता है ।), वह मानव-शास्त्र के अनुसार स्थित है— (राजा मनु के प्रतिपादित वर्ष पर चलते हैं और प्राचीर मानवों के शिल्प-शास्त्र के अनुसार बनता है), वह इस प्रकार (नगर की) सुरक्षा करता है कि कोई (शत्रु) आँख उठाकर भी उसे देख नहीं सकता , वह अल्पन्त बलिष्ठ है , वहाँ धनुष, तलवार आदि का अभ्यास होता रहता है , वहाँ कठोर तत्र— (राजतंत्र तथा सेना का प्रबंध) रहता है , वह शत्रुओं के लिए दुर्जय है , महा औन्नत्य (ऊँचाई) से युक्त है तथा चक्र— (शासन-चक्र तथा यत्र) चलाता रहता है ।

उस प्राचीर में निष्ठुर त्रिशूल, प्राणधातक खड़ा, धनुष, फरसा, गदा, चक्र, तोमर, मूसल, मेघ के गर्जन के सदृश भयकर 'कवण्कल' (पत्थर फेंकनेवाला यत्र) इत्यादि अनेक कल-पुरजे और यत्र लगे हैं, जो मशकों को, पक्षिराज (गरुड़) को, तीव्रगामी हवा को, अहित विचारवाले के मन को भी भग्न करनेवाले हैं ।

अष्ट दिशाओं में भी अधकार को हटाकर सुन्दर रूप में प्रकाश फैलानेवाले सूर्य के कुल में उत्पन्न जो राजा हैं, वे आभरणों की अपेक्षा यश को ही उत्कृष्ट (आभर आभरण) माननेवाले हैं; अत. वे अच्छे चरित्रवाले बनकर ससार के प्राणियों की रक्षा में निरत रहते हैं, उनका शासन-चक्र, अनुपम वेत्रदड तथा आशा, अष्ट दिशाओं में तथा ऊपर के लोकों में भी फैलकर रक्षा करते हैं । इसलिए, उस नगर के चारों ओर जो प्राचीर बनाई गई है, वह अलकार-मात्र है ।

[नीचे के आठ पद्मों में परिखा (खाई) का वर्णन है ।]

बब हम जिस परिखा (खाई) का वर्णन करने लगे हैं, वह उस उन्नत प्राचीर को इस प्रकार घेरे हुए पड़ी है, जिस प्रकार उन्नत चक्रवाल पर्वत को घेरकर उत्तुग तरणों से भरा मागर पड़ा रहता है । वह (परिखा) वारनारी के मन के समान गहरी, अस्त्विता के समान स्वच्छता-हीन (गदी), कुलीन कन्याओं के जघन-तट के समान किमी के लिए भी अगम्य होकर सुरक्षित, तथा ऐसे मगरों से भरी है, जो (लोगों को) मन्मार्ग से हटाकर दूरे मार्ग पर खींच ले चलनेवाली इद्रियों के समान प्रवल हैं ।

गगन में सचरण करनेवाला मेघ-समुदाय, उस विशाल तथा पाताल तक गमीर परिखा को देखकर समझता है कि यही भयकर समुद्र है, और वहाँ उतरकर जल भर लेता है, फिर ऊपर उठकर उस प्राचीर को देखकर समझता है कि यह कोई गगनोन्नत पर्वत है और वही पर अपनी जलधाराएँ वरसाने लगता है ।

ऊँचे प्राचीर के बाहर स्थित विशाल परिखा में अपनी सुरभि को चारों ओर फेंकता हुआ पक्ज-बन खिला हुआ है, वह ऐसा लगता है, मानों मानिनियों के उज्ज्वल वदनों में जो कमल पहले परास्त हो गये थे, वे अब अपने समस्त बल को एकत्र करके युद्ध करने के लिए आ जुटे हों और उस प्राचीर को घेरकर पड़े हों ।

बड़ी कुशलता के साथ लगाये गये यत्रों में शोभित उस प्राचीर के चारों ओर

धरती को भेदकर जो परिखा बनाई गई है, उसके भीतर बड़े-बड़े मगर निवास करते हैं और ऊपर उठ-उठकर इस प्रकार छुवकियाँ लगाते रहते हैं, जिस प्रकार अतिगमीर ममुद्र के मध्य, अदम्य मद से झ़्वेहुए हाथी हों।

वे मगर, चोखे करवालों की जैसी अपनी पूँछों को हिलाने हुए जाज्वल्यमान नेत्रों से चिनगारियाँ उगलते हुए, एक दूसरे के साथ चढ़ा-ऊपरी करते हुए. आगे बढ़ते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे युद्धरग में क्रोधोन्मत्त राक्षस दूट पड़े हों।

वह परिखा चक्रवर्ती की सेना की जैसी है, क्योंकि वहाँ उड़ते हुए हम पची श्वेत छत्रों के सदृश हैं, वहाँ के भयकर मगर, ग्रहों से घिरे हुए पर्वताकार हाथियों के सदृश हैं, नालदंडों के साथ स्पृहित होनेवाले कमल-पुष्प घोड़ों के सदृश हैं, तथा वहाँ के मीन त्रिशृ़ल, करवाल आदि शस्त्रों के सदृश हैं।

उस खाई के किनारे पर चाँदी के चबूतरे बने हैं और उन चबूतरों के मध्य फर्श पर स्वर्ण और स्फटिक-खड़ विछेह हैं, इस कारण, देवताओं के लिए भी यह अमभव है कि वे उम स्वच्छ धरती और उस खाई के स्वच्छ जल को पृथक्-पृथक् पहचान सकें।

विचार करने पर ऐसा लगता है कि उस अति विशाल तथा दीर्घ परिखा-रूपी समुद्र के निकट फैले हुए बनों को, समुद्र के निकट स्थिर होकर पड़े हुए घनोभूत अधकार कह सकते हैं, वे उपवन उस स्वर्णमय प्राचीर की नीले रंग की साड़ी के समान हैं।

उस नगर के चारों दिशाओं में चार नगर-द्वार हैं, जो दिगतों में रहनेवाले गजों के समान खड़े हैं, पूर्वकाल में स्वर्गलोक को नापनेवाले त्रिविक्रम के चरण में भी अधिक उन्नत होकर, समस्त सपत्नियों से भरी इस धरती पर रहनेवाले प्राणियों को सन्मार्ग पर चलाते रहने के कारण वे चारों नगर-द्वार चारों वेदों की समानता करते हैं।

कबूतरी के बुलाते रहने पर भी कबूतर उसके पास जाकर प्यार में उसका आलिंगन नहीं करता, किंतु वहाँ पर निर्मित एक कपोती की प्रतिमा के पास (उसे मजीब समझकर) सुख हो खड़ा रहता है। यह देखकर कबूतरी रुठकर अकलक स्वर्णमय स्वर्गलोक में स्थित, पुण्यवान् लोगों के निवासभूत कल्पक-उद्यान में जा छिपती है।

[यहाँ से तीन पद्मों में नगर के गोपुर (शिखर) का वर्णन किया गया है।]

कटे हुए पत्थरों को चुनकर भित्तियाँ बनाई गई हैं, जिनके ऊपर स्फटिक पत्थर लगाये गये हैं, उनके ऊपर चमकते हुए स्वर्ण-पत्र विछाये गये हैं, जिनके मध्य काति विशेषते हुए विविध रत्न जड़े हुए हैं, उन भित्तियों के ऊपर रुचिर रजतमय आडे की छत रखी गई हैं, जिनके ऊपर वज्रमय स्तम्भ खड़े कर दिये गये हैं।

उन खंभों के ऊपर मरकत जड़ी हुई छतें विछाई गई हैं, उन छतों पर होरक-पत्थर चुने गये हैं, स्वर्ण-पत्रों और विद्युत के समान चमकने रत्नों ने निर्मित मिह वी प्रतिमाएँ यत्र-तत्र रखी गई हैं, उन मिहों के ऊपर गोमेदक की छत विछाई गई है।

उम छत के ऊपर एक दूसरी मजिल निर्मित है, इन प्रकार नात मजिलें बनी थीं जो इस भाँति विशाल थीं, मानों सत्यलों के निवासियों के रहने के लिए ही बनाई गई हीं।

शिल्प-शास्त्र के अनुमार निर्मित वह स्वर्ण-पत्रों से आवृत गोपुर अपनी काति को ऊपर के सत लोकों तक फेंकता है, उस गोपुर पर माणिक्य-मय कलश रखते हैं। वह गोपुर ऐमा लगता है, मानो भूमिदेवी को सुकुट पहनाया गया हो।

धबल प्रासाद, जिनपर सफेद कौड़ियों को पकाकर बनाये गये चूने की पुताई की गई है और जो इतने उज्ज्वल हैं कि उनके समुख चन्द्रमा भी काला दीखता है, ऐसे लगते हैं, मानो भयकर प्रभजन के चलने से कीर सागर से उत्तुग तरगें ऊपर की ओर उठ आई हो।

(उन धबल सौधों के उपरिभाग में) विटियोवाले सुन्दर कवूतरों के रहने के लिए दरवे (कवूतरों के आवास) बने हुए हैं, जिनमें सोने के पत्र लगाये गये हैं, धबल प्रासाद पर ये सुनहले ताक ऐसे लगते हैं, मानो हिमाचल के शिखर पर अकलक रुद्ध की प्रभातकालीन सुनहली किरणों के पुळे पड़े हो।

(उस नगर में) इस प्रकार के असर्व कोटि प्रासाद हैं, जिनमें हीरकमय सुन्दर खमों के मस्तकों पर मरकत-मय छतों को सुचारू रूप से विठाकर उन छतों पर सजीव दीखनेवाले चित्र अकित किये गये हैं वे प्रासाद ऐसे हैं कि स्वर्ग-लोक के निवासी भी उन्हे देखकर विस्मित हो जाते हैं।

(उस नगर में) ऐसे अनेक सौध हैं, जिनके चन्द्रकातमय तल पर चन्द्रन के खमे खड़े करके, उनके प्रवालमय मस्तकों पर रक्तवर्ण के माणिक्य-मय शहतीर रखे गये हैं और जिनकी दीवारे इडनील रत्नों से जड़ी हैं।

वे प्रासाद ऐसे हैं कि उनके खमों के पाठ कमल के आकार के हैं, वे नाग-लोक के मर्पों को छूनेवाले हैं, अतिमनोहर दर्शनीय अलकारों में भरे हैं विशाल अतराल (खाली स्थान) में युक्त हैं वाहर में सोने के उपकरणों से अलकृत हैं अतः वे (प्रासाद) वारनारियों की तुलना करते हैं।

(वारनारियाँ) जिनके पाद कमल के नमान होते हैं. जो कामी पुरुषों (चेटों)⁹ का आलिंगन करती हैं सुन्दर अलकारों से सुशोभित होती हैं, उनका अतर प्रेम से शत्र्य होता है पर वाहर स्वर्णाभरणों से भूषित रहती हैं।

उन मनोहर प्रासादों के भीतर जानेवाले व्यक्ति उनकी शोभा पर मुख्य होकर निर्निमेप नयनों में उसे देखते रह जाते हैं और जब दोवारों की काति उन व्यक्तियों पर पड़ती हैं तब वे देवों के नमान दीखते हैं, अत. अपनी ऊँचाई के कारण देवलोक में भी पहुँचे हुए वे प्रासाद उन दिव्य विमानों के जैसे ही हैं जो मक्तुपमात्र में नव दिशाओं में चले जाते हैं।

वे प्रासाद, जो मनोहर आभरण-भूषित रमणियाँ और मालाधारी पुरुषों के आवास हैं और धर्म-मार्ग में कभी विचलित न होनेवाले (गृहस्थों) के आवास हैं रल और स्वर्ण के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से नहीं बने हैं वे अपनी काति से सूर्य को भी परास्त करनेवाले हैं।

गगन तक उन्नत, अपार सपत्नि से युक्त, अति प्रसिद्ध तथा देवीप्यमान काति से

⁹ तनिल में 'चेट शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) शेषनाग, (२) चेट या देश्यप्रेमी। प्रासाद और वारनारी, इन्हों, चेटों को आलिंगन करते हैं।

पूर्ण वे प्रासाद, उस नगर के उन निवासियों के समान हैं, जो त्रुटिहीन धर्म-मार्ग पर चलनेवाले हैं और चक्रवर्ती दशरथ के ही समान गुणवाले हैं।

वे प्रासाद, जिनमें करनों के समान मुक्ताहार भूलत रहते हैं, विशाल मंधों के समान पताकाएँ फहरती रहती हैं, बड़े-बड़े रत्नों के समुदायों से दुक्त हैं, पीतस्त्रणों से भरे हैं, सुन्दर मयूरों से निवासित हैं और पर्वतों की समानता करते हैं।

अग्रह के धूम से सम्यक् मिले हुए और मेघों से पृथक् न पहचानने योग्य जां ध्वज-पट हैं, उनके साथ खड़े हुए दीर्घ दड़ों के सिरों पर स्थित त्रिशूल इस प्रकार चमकते हैं, जैसे दिन के समय कौधती हुई विजलियों की पक्कियाँ हो।

उन प्रासादों में, जहाँ डमरु-समान कटिवाली, पीन स्तनोवाली, मयूर-सदृश रमणियों के चरण-युगल में बजनेवाले नूपुरों की ध्वनि मुखरित होती रहती है, बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ लगी हुई हैं, जिनमें मुक्ताहार लटक रहे हैं, वह दृश्य ऐसा है, मार्ना कल्पवृक्ष अपने सुरभित पुष्पहारों के साथ खड़ा हो।

उन्नत पर्वतों के मध्य-स्थित ध्वजाएँ कटली-चन के समान ग्रह-मडल तक उठी हुई फहरा रही हैं, गगन का चन्द्रमा (कृष्णपक्ष में) दिन में जो कातिहीन होकर क्षीण होता हुआ भुकता जाता है, वह इसीलिए कि वे ध्वजाएँ उसे रगड़-रगड़कर (क्षीण और कातिहीन) बना देती हैं।

जो स्वर्ण से बनाये गये दृढ़ मडप नहीं हैं, वे पुष्पों के बने कुञ्ज-भवन ही हैं, जो सभा-भवन नहीं हैं, वे प्रासाद ही हैं, जो क्रीड़ा-पर्वत नहीं, वे रत्नमय कुटीर ही हैं, जो (भवनों के) आँगन नहीं, वे मुक्ता-वितान ही हैं।

यति उज्ज्वल स्वच्छ स्वर्ण से निर्मित उस अविनश्वर श्रेष्ठ नगर (अयोध्या) की छाया, विजली के समान, दीप-शिखा के समान तथा सूर्य के किरण-पुञ्ज के समान स्वर्ण-लोक पर जाकर पड़ती है, अतएव वह देवलोक भी स्वर्णनगर बन गया है।

गगन में प्रकाशित होनेवाला वर्तुल प्रकाश-पुज सूर्योदय-काल में अति दीर्घ हो, मध्याह में अति सकुचित हो, तथा सध्या में पुनः दीर्घ बनकर दिखाई देता है। अत वह (सूर्य) वर्तुलाकार स्वर्ण-प्राचीरों तथा अग्नि-कण-सदृश माणिक्यों में सुचारू रूप में निर्मित उस अयोध्या नगर की परछाई जेमा ही लगता है।

सुनिर्मित मेखला से भूषित सुन्दरियाँ वहाँ के स्वर्ण-प्रामाणों में अग्रह-धूम प्रसारित करती रहती हैं, उस धूम से भरे हुए मेघ समुद्र पर छा जाते हैं तो वह विशाल गामग भी सुगंधित हो उठता है, उन मेघों से गिरनेवाली जलधारा के विषय में अब और क्या कहा जाये ?

उन वालिकाओं की, जिनके अलक-जाल अभी-धर्मी (वणी के) वधन के उपदुक्त हो रहे हैं, अस्पष्ट उच्चरित वोली, सुन्दर वैष्ण-नाद के समान है, उन श्रुतियों की, जो अलक-जाल से सुशोभित हैं, वोली मकर-चीणा की ध्वनि के समान है और प्रांद गमणियों की वोली, मधु वैचनेवालों के सगीत के समान है।

आँखों से चिनगारियों निकालनेवाले (मटमत्त) गङ्ग अपने पंगे ने धरनी को

खरोच-खरोचकर गड्ढे बना देते हैं, जिससे मनोहर राजकुमारों का क्रीड़ा-स्थल असमतल (ऊबड़-खावड) हो जाता है, फिर (खेलते हुए राजकुमारों के शरीरों से गिरनेवाले) सुगंध-चूंचों से वे मव गड्ढे पट जाते हैं।

युवतियाँ गेड़ खेलती हैं, तब उनके आभरणों से मोती गिरकर धरती पर विखर जाते हैं उन गिरे हुए मोतियों को असर्व्य परिजन द्विहार-द्विहारकर एक ओर डालते रहते हैं, इस प्रकार एकत्र मोतियों की राशियाँ शीतल काति विखेरती हुई चन्द्र को भी मट बना देती हैं।

नृत्यशालाओं में सुन्दरियाँ नृत्य करती हैं, उनके काले कटाक्ष-स्पी वरछे कामुक व्यक्तियों के हृदयों को खाते हैं (अर्थात् उनके हृदयों पर चोट करते हैं), फिर उन पुरुषों के प्राण, उन रमणियों की कटि के समान ही क्षीण होने लगते हैं और (उन रमणियों के प्रति) मोह बढ़ने लगता है।

कुछ उपवन सदोविकसित पुरुषों से मधु प्रवाहित करते हैं, उम मधु का पान करने की इच्छा से दक्षिण पवन और ब्रह्मर मट-मद गति से (उन उपवनों में) प्रविष्ट होते हैं, उनके प्रविष्ट होते ही विरह से पीडित रमणियों के तपतं हुए स्तन पीड़ा से कृश हो जाते हैं।

वक्र आकृतिवाली मकर-वीणा से उठनेवाले मधुर स्वर (रमणियों के) मनोहर सगीत के साथ ध्वनित होते रहते हैं, उस सगीत के अनुकूल ही चर्म से ढके (मृदग आदि) वादा वज उठते हैं, (उस सगीत को सुनकर) रमणियों के साथ बोलते रहनेवाले शुक आँखें बढ़ कर सोने लगते हैं।

गाँठदार धनुप मे युक्त ललाट (अर्थात्, सुपुष्ट भोहो से सुशोभित) और विव-फल के समान लाल अधर, इन (दोनों) से शोभायमान सुन्दरियों के घने कमल-पुष्प-सद्वश चरणों के आधात पाकर, जिनपर मृदुल महावर आदि से अलकरण किया गया है, (पुरुषों की) बलिष्ठ सुजाएँ लाल हो उठती हैं।

उम नगर मे, जहाँ (नारी-मणियों की मुख-काति के कारण) समय का ज्ञान होना भी कठिन है, मत्र के द्वारा बदनीय (सद्गुणवती) युवतियों के दीप-समान उज्ज्वल शरीर की काति को देखने की इच्छा से ही चित्रों में अकित प्रतिमाएँ भी अपलक हो खड़ी रहती हैं।

शीतल कमल-पुष्प पर निवास करनेवाली (लक्ष्मी) देवी के विश्राम-स्थल के मद्वश बने हुए (अयोध्या के) प्रासादों मे अधकार को हटाता हुआ व्यापक काति-पुज क्या पुष्ट शिखाओं से युक्त धृत-वीपों से निकलता है, या रक्ष-दीपों से निकलता है, अथवा सुन्दरियों के शरीर से ही निकलता है ?

नृत्य मे कुशल युवतियाँ, मर्दल-ताल, सगीत आदि के अनुरूप, शास्त्र-सम्मत ढग से, विविध पदगतियाँ दिखाती हैं, उनकी पद-गतियों का विश्लेषण करके उन्हे समझानेवाले, उन रमणियों के मजीर (पायल) ही नहीं, वहाँ के अश्वों के चरण भी हैं।^१

^१ वहाँ के अश्व मी उनकी पदगति का अनुकरण करके नाचने लगते हैं।

(वहाँ की रमणियों के मुख-मंडल पर) मंदहास उत्पन्न होते रहते हैं , (उनको देखकर) कामुकों के मन में काम-चेदना उत्पन्न होती रहती है , इतना ही नहीं , (उन रमणियों के) मृदु स्तनों पर मुक्ताहार और रक्तस्वर्ण के हार निरतर पड़े रहते हैं , जिस कारण उनकी कटियाँ दिन-दिन क्षीण होती रहती हैं ।

अपने-अपने स्थानों में निरंतर नशे में चूर रहनेवाले तथा मनोहर गतिवाले बाल राजहस हैं , कमल-पुष्प हैं , तडागों में स्थित मीन हैं , भ्रमरियों से युक्त भ्रमर हैं , पुष्प-केसरों का आस्वाद लेनेवाले मत्त गज हैं ; और इनके अतिरिक्त रमणियों के नेत्र हैं ।

पर्वत की समता करनेवाले मत्तगजों से , जिनके भय से आँखों से आग उगलनेवाले सिंह भी सिंहनियों के साथ पर्वत की कदराओं में (छिपे) रहते हैं , विविध मदजल का प्रवाह ज्यो-ज्यों वहता है , त्यो-त्यो भूमि भी गहरी होती जाती है , उस (मदजल) से जो कीचड़ उत्पन्न होता है , उसमें ऊँची ध्वजावाले सुहृद रथ भी धौस जाते हैं ।

अपने को अलकृत करनेवाले जन अपने जिन पुष्पहारों को उतारकर फेंक देते हैं , वे नर्तनशील रमणियों के नूपुरों में उलझ जाते हैं ; अपने प्रियतम के साथ विहार में भग्न होकर सुन्दरियाँ अपने स्तनों पर से जिन चन्दन आदि के लेपों को उतारकर फेंक देती हैं , उन लेपों के कारण मार्ग पर चलनेवाले लोग फिसल जाते हैं ।

अश्व , कभी न थकनेवाले अपने खुरों से धरती को कुरेदते रहत हैं , जिससे धूलि उड़कर (उन अश्वों के रत्नालंकारों और सवारों के रत्नाभरणों के) रत्नों पर छा जाती है , इस प्रकार मद पड़ी हुई रत्न-काति को अश्वारोही पुरुषों की भुजाओं के पुष्पहारों से गिरनेवाला मधु फिर चमका देता है ।

अदम्य मत्तगजों का मदजल ‘वेंग’ पुष्प के सदृश महँकता है , उच्च कुल में उत्पन्न रमणियों के मुख कुमुद-गध से युक्त हैं , सुन्दरियों के अलक-जाल विविध पुष्पों की सुरभि से सुगंधित हैं , और (उस नगर-वासियों के) आभरणों से अपार कातिजाल छिटकता रहता है ।

अनेक नगरों में से देव-नगरी (अमरावती) के विषय में क्या कहे , जो इस (अयोध्या नगरी) के उपमान के रूप में बनी हुई है ? वह अमरावती तो किसी भी गुण से उसकी समता नहीं करती है । स्वयं अलकापुरी भी , जो इस नगर के समान सब वस्तुएँ दे सकती है , यहाँ की पण्यवीथी (वाजार) को देखकर परास्त हो जाती है ।

पुरुष-समाज में मुखरित बीर-बलय शब्द करते रहते हैं , वरछे चमकते रहते हैं ; कातिपूर्ण रत्नाभरण धूप फैलाते रहते हैं , कस्तूरी , चंदन आदि अत्यधिक सुरभि को फैलाते रहते हैं ; मुक्ताएँ काँधती रहती हैं , भ्रमर गाते रहते हैं ।

(उस नगर में) शाखों के नाद , शृंगों के नाद , मकर-वीणा आदि वादों के नाद , मर्दल का नाद , किन्नर-वादा का नाद , छिद्रवाले वादों (शहनाई , वाँसुरी आदि) के नाद तथा विविध प्रकार के वाजों के नाद , इस प्रकार उमड़ते रहते हैं कि समुद्र का धोप भी उन शब्द से मंद पड़ जाता है ।

(सामत) राजाओं के द्वारा (उस नगर में) दिये जानेवाले राजस्व तथा अन्य द्रव्यों को मापकर लज्जे के लिए मढप देने हैं , हम-सम मदगतिवाली रमणियों के नृत्य

के लिए मडप बने हैं, स्मरण रखने में कठिन तथा महान् घोड़ों का अध्ययन करने के लिए मडप निर्मित हैं तथा अपूर्व कलाओं के अध्ययन के लिए पाठशाला-मडप भी निर्मित हैं।

(उस नगरी की) उन विशाल वीथियों से, जहाँ सूर्य के समान प्रकाशित होनेवाले उज्ज्वल रत्नों के तोरण वैधे हैं, दिशाएँ छोटी हैं, मटजल के प्रवाह धूर से दिखाई पड़नेवाले पर्वत-निर्मलों से बड़े हैं; तुरंगों की पक्कियाँ समुद्र से भी अधिक विशाल हैं।

अपने शिखरों से वरमतं वादलों को छूनेवाले, तोरणों से अलंकृत प्रासादों में सुन्दरियों के उज्ज्वल बदन चमकते रहते हैं, उन बदनों में (दृष्टि-स्पी) शर चमकते रहते हैं, वे शर मिंह-सद्वश (पुरुषों) के बज्जे में गड़ जाते हैं।

स्वर्णमय अलकरणों से युक्त रथों की ध्वनि, घोड़ों की किंकिणियों की ध्वनि, राजाओं के वीर-बलयों की ध्वनि—मिलकर, विलक्षण शब्द उत्पन्न करते हैं, (उनके साथ-साथ जब) मधुर मंद्वास-युक्त युवतियों के नृपुर बज उठते हैं, तब (उस ध्वनि को सुनकर) नदी के उन घाटों में, जहाँ कन्याएँ स्नान करती हैं, कमलों में विश्राम करनेवाले हस भी बोल उठते हैं।

उस पुरातन नगरी में, कुछ (रमणियों) का समय, प्रणय-कलह में, (उस प्रणय-कलह के समाप्त होने पर) समागम के सुख में, प्राणों से भी अधिक मधुर सगीत में, गायिकाओं के गान सुनने में, विशाल जलाशयों में क्रीड़ा करने में, स्नानानंतर सुन्दर सुमनों को धारण करने आदि कायाँ में ही व्यतीत होता है।

उस महान् नगर के कुछ (पुरुषों) का समय, चिंघाड़ते हुए बलवान् मत्तगजों पर धीरता के साथ चढ़कर उन्हें चलाने में ऊपर उठे हुए खुरवाले (अपने आगे के पैरों को ऊपर उठानेवाले) घोड़ों तथा रथों पर आरूढ़ होकर उन्हें चलाने में तथा दारिद्र्य के कारण याचना करनेवालों को पर्यात रूप से दान देने आदि कायाँ में ही व्यतीत होता है।

उस विशाल नगर में, कुछ (पुरुषों) का समय, एक गज को ढूसरे गज से लड़ाने में; गाँठदार धनुष आदि शस्त्रों के अभ्यास में, दीर्घ केसरवाले अश्वों पर वैठकर विहार करने में तथा युद्धकला का अध्ययन करने आदि जैसे कायाँ में ही व्यतीत होता है।

उस मनोहर नगर में, कुछ (रमणियों) का समय, सुन्दर उद्यानों में पुष्पों का चयन करने में, अपने प्रियतमों के सरोवरों में हरिणियों के जैसे उछलते हुए क्रीड़ा करने में, अपने सुखों के स्वाभाविक रक्त वर्ण को और बढ़ाते हुए मद्यपान करने में तथा अपने प्रियतमों के निकट सदेश भेजने आदि कायाँ में व्यतीत होता है।

जिस प्रकार श्वेतवर्ण के मेघ विशाल गगन-मार्ग से सत्वर चलकर, मीनों से सुशोभित समुद्र के जल को पीते हैं, उसी प्रकार वहाँ के पुरातन प्रासादों पर लगी हुई ध्वजाएँ, गगन-पथ में ऊँची उठकर आकाश-गगा के जल को पीकर (उसे) सुखा देती हैं।

सुहृद तोरणों से अलंकृत गोपुर-द्वार और स्वर्ण के बने तीनों प्राचीर, देव-लोक से भी ऊँचे होकर ऐसे खड़े हैं कि उससे ऊपर बढ़ने के लिए अवकाश न होने के कारण इक गये हैं, वे ऐसे लगते हैं, मानों पर्वताकार भुजावाले वीरों के सद्गुणों से प्राप्त वश ही हैं।

वहाँ के बनो में, खेतो में, समुद्र-सदृश खाइयो में, उन तडागो में, जहाँ सुन्दरियाँ कीड़ा करती हैं, निर्झगे और जलस्रोतों से युक्त पर्वतों में, प्रासादों के उपरी भाग में सुकाओं के बने वितानों में, वीणा के समान स्वरयुक्त भ्रमरों से सुखरित उद्यानों में इन सब स्थानों में पुण्यों और पल्लवों की सेजें विछी रहती हैं।

उस नगर में, चर्म के बने नगाडे आदि वाद्य प्रतिदिन ऐसे वज उठते हैं कि स्वच्छ जल वरसानेवाले मेघ और तरंगों से पूर्ण समुद्र भी डर जाते हैं, वहाँ के निवासियों में चौरों का भय न होने से, संपत्ति की रक्षा करनेवाले रक्षक नहीं हैं वहाँ याचकों के न होने में कोई दाता भी नहीं है।

वहाँ कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो विद्यावान् न हो, इसलिए वहाँ पृथक् रूप से विद्याओं में पूर्ण पारगत कहने योग्य व्यक्ति कोई नहीं है और उन विद्याओं में निपुण न होनेवाला (अपडित) भी कोई नहीं है, वहाँ के सब लोग सब प्रकार के ऐश्वर्य से सपने हैं, इसलिए (पृथक् रूप से) धनिक कहने योग्य व्यक्ति भी कोई नहीं है और निर्धन भी कोई नहीं है।

वह नगर ऐसा स्थान है, जहाँ विद्यारूपी एक बीज अंकुरित होकर, श्रवण किये जानेवाले अपार शास्त्ररूपी शाखाओं को फैलाकर, अपूर्व तपस्या-रूपी पत्रों को विस्तारित करके, प्रेमरूपी कली से युक्त होकर, धर्मरूपी पुण्य को विकसित करके, फिर आनन्द-स्पी विलक्षण फल प्रदान करता है। (१-७५)



अध्याय ४

शासन पटल

गरिमा-भरे उम अयोध्या नगर में राजाधिराज दशरथ महाराज राज्य करते थे, उनका नीतिपूर्ण शासन सातों लोकों में निर्विरोध चलता था, वही सर्वद के अवतार चक्रवर्तीं महाराज दशरथ, इस महान् गाथा के नायक, श्रीरामचन्द्र के योग्य पिता थे।

सत्य, ज्ञान, करुणा, क्रमा, पराक्रम, दान, नीतिपरायणता आदि सभी गुण उनके वशीभूत थे। अन्य राजाओं में ये गुण होते भी हैं, तो वे अपूर्ण ही रहते हैं पर महाराज दशरथ के पास वे पूर्णता को पहुँच चुके थे।

अपार समुद्र से परिवेषित इस धरातल पर ऐसा कोई भी नर नहीं था, जो महाराज के द्वारा प्रवाहित दान-जल से सिंचित न हुआ हो। वेद-विहित मार्गों पर चलनेवाले राजाओं के लिए जो भी यजादि कर्म करणीय हैं और जिन्हे अवतक अन्य कोई राजा पुरे तौर पर नहीं कर सका था, उन्हें दशरथ ने सपने किया।

वे प्रजा पर माता के समान ममता रखनेवाले थे, लोक-हित करने में स्वयं तपस्या के समान थे। सभी को मद्गति देनेवालों में पुत्र के समान आगे रहनेवाले थे। (दुर्जनों के

लिए) व्याधि के नमान थे, तो (नज़नों के लिए) औपव के भमान भी थे और सूदम तत्त्वज्ञान में तो वे स्वयं ज्ञान के ही नमान थे ।

दान-हृषी नौका पर चट्टकर उन्होंने याचक-त्पी भसुद को पार किया था , अपनी द्विं-हृषी नौका ने गभीर ज्ञान से परिपूर्ण दुस्तर शास्त्र-नागर को पार किया था , अपने खड्ग-हृषी नौका के द्वारा शत्रु-हृषी ससुद का संतरण किया था तथा मासारिक मोग-बैभव के मसुद को, उसमें मन-भर गोता लगाते हुए ही पार किया था ।

उनके शासन-चक्र में पक्षी, मृग तथा वेश्याओं के हृदय, जब एक ही मार्ग पर चलते थे । इन प्रकार, महागज दशरथ अमर बीर्त्ति-मपन, महान् दानी तथा अनुपम पराक्रमी थे ।

उनका राज्य भी कैसा था ? पृथ्वी के सीमात पर स्थित चक्रवाल पर्वत उनके राज्य के प्राचीर बने थे , अनन्त नागर उनके राज्य की परिधि बना था पृथ्वी पर स्थित कुल-पर्वत उनके विविध रत्नमय प्रासाद बने थे , मानों सागरी पृथ्वी ही उनके लिए अयोध्या नगरी बन गई थी ।

ज्योही महाराज दशरथ अपने शत्रुओं का बल-पराक्रम ठीक-ठीक आँककर अपना भाला उन पर चलाने के लिए तेज करने लगते थे, त्योही वे शत्रुनरेश उनके चरणों पर आ गिरते थे और उन राजाओं के रत्नजटित बड़े मुकुटों से महाराज के चरण-बलय^१ घिस जाते थे ।

दशरथ का विशाल श्वेतछत्र अत्यन्त उन्नत तथा उच्चल था, पृथ्वी की सारी प्रजा को वह शीतल छाया प्रदान करता था तथा कही भी अधिकार को रहने नहीं देता था । उमकी उपस्थिति में गगन में चमकनेवाले चन्द्रमा की क्या आवश्यकता थी ॥

रत्नजटित वामूषणों से सुशोभित वे चक्रवर्ती (दशरथ) सिंह-महश पराक्रमी थे और नभी प्राणियों की रक्षा अपने ही प्राणों के समान करते थे मानों भारी चर-अचर सुष्ठि उनके ब्रह्म में आनन्द से निद्रामग्न हो ।

पर्वत के समान उन्नत भुजाओंवाले दशरथ का शासन-चक्र उष्ण-किरण सूर्य के नमान ही कँचा था , वह भुवन-भर में सच्चरण करता हुआ सर्वप्राणियों की रक्षा करता था ।

भुवन में कही भी कोई ऐसा वीर नहीं रहा जो युद्ध में दशरथ का सामना कर सके मर्दल (वाव) के आकार की दशरथ की भुजाएँ युद्ध करने के लिए फड़क उठती थीं । जैसे कोई गगीव किसान अपनी छोटी-मी खेती की बड़ी सावधानी में देख-भाल करता है, वैसे ही दशरथ अपनी प्रजा की रक्षा करते थे । (१—१२)



^१ चरण-चलन : प्राचीन नमिल राजा लोग अपने दाहिने पैर में सोने का एक कड़ा पहनते थे, जो उनकी वीरता का चिङ्ग होता था ।

अध्याय ५

शुभावतार

एक दिन दशरथ, ब्रह्म-ममान तपस्त्री वसिष्ठ को प्रणाम करके कहने लगे—
मेरे लिए माता, पिता, दयालु भगवान्, ऐहिक, आमुष्मिक सुख—मत्र कुछ आप ही हैं।

मेरे पूर्व पुरुषों ने ससार की रक्षा इस प्रकार की थी कि उनकी कीर्ति मदा अक्षय वनी हुई है ; उनके कारण इस वश का यश सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल बना हुआ है, अब भी मैं आपकी कृपा से इस विशाल धरती की उसी प्रकार से रक्षा कर रहा हूँ।

मैं सभी शत्रुओं का नाशकर साठ सहस्र वर्ष तक शासन करता रहा हूँ। अब मुझे इस वात के अतिरिक्त अन्य कोई भी चिन्ता नहीं है कि मेरे पश्चात् यह ममार गामक के अभाव में दुःख पायेगा।

(मेरे शासन में) महान् तपस्या-सप्तन मुनि तथा विप्र विना किमी विघ्न-वाधा के सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे हैं, मेरे पश्चात् (सरक्षक के न होने ने) मत्र लोग बहुत दुःख पायेंगे—यही वात मेरे मन में गहरी व्यथा उत्पन्न कर रही है।

उस चक्रवर्ती ने, जिसके विराट् प्रासाद के द्वार पर नगाडे बजते रहते हैं और जो मणिमय सुकृट धारण किये हुए हैं, जब यह वात कही, तब कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) सोचने लगे।

तरंगायित ज्ञीर-सागर के मध्य शेषनाग की पीठ पर नील पर्वत के सदृश शयन करनेवाले, महान् मेघ-सदृश विष्णु भगवान् ने दुःख से पीड़ित देवों को यह वचन दिया था कि दूसरों को विनाश में निरत (रावण आदि) राज्ञों का मै वध करूँगा।

स्वर्ग-वासी देवता असुरों के आतंक से पीड़ित होकर नीलकठ (शकर) के पास गये और प्रार्थना की कि हे भगवन्, असुरों से हमारी रक्षा कीजिए। शिवजी ने उत्तर दिया—‘हमसे यह कार्य नहीं हो सकता।’ तब शिवजी को भी साथ लेकर देवता ब्रह्मा के पास गये।

देवताओं का समाज उत्तर दिशा में चलकर मेरु पर्वत पर स्थित गत्तमय मडप में पहुँचा, जहाँ चतुर्मुख (ब्रह्मा) निवास करते हैं। ब्रह्मा की प्रस्तुति करके उन्होंने गज्ञों के आतंक तथा अपनी दुःख की कहानी उनमें कह सुनाई।

तब ब्रह्मा ने शिवजी से कहा—एक बार रावण का पुत्र मेघनाद दृढ़ को वटी बनाकर लंका ले गया था, मैंने उसे (मेघनाद में) छुड़ाया था। (अब आगे मैं वैमा कोई कार्य नहीं कर सकता)।

वीस करों तथा दस शिरों से युक्त, मद्भुद्धि-रूपी सपत्नि से हीन उम (रावण) के बल का प्रतिकार हमसे सभव नहो, नील मेघ के सदृश नयनवाले दयानागर विष्णु भगवान् ही युद्ध करके (असुर-वाधाओं का) निवारण करेंगे तो हमार निन्मार हो सकता है—इन प्रकार विचार कर—

उन्होंने ऊँची तरगों में प्रिति ज्ञीर-मागर में योग-निद्रा में शयन बरनेवाले

उन्नत मग्नकृत पर्वत-मद्वश विष्णु का अपने मन में ध्यान किया, और कर-कमल जोड़कर खड़े रहे । उम समय त्रानियों को परमगति प्रदान करनेवाले (विष्णु) भगवान् ।

गरुड़ पर आमीन होकर उनके सम्मुख प्रकट हुए, जैसे कोई नीलमेघ, विकमित कमलपुजो^१ के माथ, दीप्तिमान् सूर्य और चन्द्रमा को अपने दोनों पाश्वा में धारण किये, विकमित कमल पर आमीन लक्ष्मी के सुग, स्वर्ण पर्वत पर चढ़ आया हो ।

नीलकठ और कमलामन (ब्रह्मा) अन्य देवताओं के साथ उठ खड़े हुए और विष्णु भगवान् के सम्मुख आकर उनकी स्तुति करने लगे । वे ज्यो-ज्यो स्तुति करते, त्यों-त्यों उनका आनन्द वद्धता ही जाता और वे सब विष्णु के चरणों में नत हो गये ।

(उन देवताओं ने) तुलसीदल-शोभित विष्णु के चरण-कमलों को वारी-वारी से अपने मस्तक पर धारण किया और यह मानकर कि राक्षसों का नाश अभी हो गया, उमंग ने भर गये और आनन्द-मंदिरा का पान करके मस्त हो गये और नाचने, गाने तथा इधर-उधर दौड़ने भी लगे ।

स्वर्णगिरि से उत्तरनेवाले मेघ के समान मेरे स्वामी^२ (विष्णु भगवान्) गरुड़ की भुजाओं पर से नीचे उत्तर आये और गगनचुंबी मडप में आ विराजे । वहाँ मिह की आकृति-वाले मोने के मिंहासन पर आसीन हुए ।

ब्रह्माजी के माथ देवर्पिं, स्वर्ग-वासी (देवता) तथा चन्द्र को अपनी जटा पर धारण किये त्रिशूलधारी शिव, सब विस्मयाविष्ट हो और उमग से भरकर भगवान् के निकट उपस्थित हुए और अत्याचारी राक्षसों के क्रूर कृत्यों का वर्णन करने लगे ।

हे लक्ष्मीनाथ ! शरीर-वल से परिपूर्ण वशानन (रावण) तथा उसके अनुज आदि राक्षसों के कारण स्वर्गवासी और मर्त्यलोक के निवासी अपने कर्तव्य कर्म भी नहीं कर पा रहे हैं । अब हमें जीने का मार्ग नहीं मिल रहा है—यों कहकर उन्होने ठड़ी आह भरी ।

जब देवताओं ने ये वचन कहे, तब चन्द्र एव मधु-भरे पुष्पों को अपनी जटा में धारण करनेवाले शिवजी ने उन देवों को अपने हाथ से मौन रहने का सकेत करते हुए स्वय स्वामी की ओर देखकर, इस प्रकार निवेदन करने लगे—

अरुण नयनों से शोभित है प्रसु । राक्षस कहलानेवाले ये लोग, हमारे द्वारा दिये गये शक्तिशाली वरों के प्रसाद से तीनों सुवनों को आहत कर रहे हैं । अब (यदि आप उनका) सहार नहीं करेंगे, तो क्षणमात्र में वे तीनों सुवनों को मिटा देंगे ।

शिवजी के यों कहने पर देवों ने भगवान् की स्तुति की, तब अत्यत सुगंधित तथा सुन्दर तुलसी की माला वारण किये हुए विष्णु ने उनसे कहा—आपलोग दुख मत कीजिए, मैं धरणी पर वचक जनों के शिर काटकर (आपको) दुख-मुक्त करूँगा, आप मेरी एक वात सुनिए—

स्वर्ण के निवासी आप सब बानर-रूप वारण कर कानों, पर्वतों, और सुगंध-भरे उपवनों में, दलवल के साथ, जाकर रहिए । क्षीर-सागरशायी विष्णु ने दया करके आगे कहा—

^१ कमलपञ्ज—कर, चरण आदि, सूर्य और चन्द्रमा—शख और चक्र, स्वर्ण का पर्वत—गरुड़ ।

^२ कवर विष्णु-मक्त थे, इसलिए उन्होने 'मैं स्वामी' कहकर स्वोधित किया है ।

मायावी नीच गत्तमों के बर और उनके जीवन को अपने तीद्धि शरों से विनष्ट करने के लिए हम, चतुरग सेना-रूपी मागर के प्रभु दशरथ के पुत्र बनकर धरती पर जन्म लेंगे ।

शख, चक्र एव आदिशेष (जिसका विप बड़वामि को भी भुलसा देता है) मेरे अनुज बनकर मेरी चरण-सेवा करेंगे । इस प्रकार, हम प्राचीरों से आवृत अयोध्या में अवतार लेंगे ।

भगवान् के इस प्रकार कहने पर (वे देवता) यह जानकर कि सुग्रीव तुलसी-धारी विष्णु ने हमारी रक्षा की, आनन्द से उछल पड़े, और कृतज्ञता-सज्जक मगल-गीत गाने लगे ।

हमारी विपत्तियाँ दूर हो गई—यह सोचकर इन्द्र आनंदित हो दठा परिशुद्ध कमलपुष्प पर निवास करनेवाले (ब्रह्मदेव), चन्द्रशेखर (शिव) और ऊंचे स्वर्ण के निवामी (देवता) कहने लगे कि हमारी अवनति (नीची अवस्था) का अत हो गया । विष्णु भगवान् ने, जिन्होंने विशाल भूमि को अपने अन्तर्गत कर लिया था, गरुड पर चरण रखा ।

मेरे प्रभु के गरुड पर सवार होकर चले जाने के पश्चात् पितामह ने देवताओं में कहा—रीछों के राजा जाववान, जो कि मेरे अशभूत हैं, पहले ही धरती पर अवतरित हो चुके हैं । विष्णु के कथनानुसार आप सब भी पृथ्वी पर अवतार लीजिए ।

इन्द्र ने कहा—शत्रुओं के लिए अशनितुल्य (वालि) तथा उमका पुत्र (अङ्गद) मेरे अश हैं, सूर्य ने कहा कि उम (वालि) का अनुज (सुग्रीव) मेरा अश है और अग्निदेव ने 'नील' को अपना अश बतलाया ।

वायुदेव ने कहा कि 'मारुति' मेरा अश है, दूसरे देवता भी (शत्रुओं का) विध्वस करनेवाले वानर बनकर भूमि पर जाने को मन्दद्वय हो गये, शिवजी ने भी वायु के अशभूत हनुमान् को ही अपना अश बताया, देवताओं ने अपने-अपने अश को लेकर अन्यान्य दिशाओं में भी जन्म लिया ।

कृपालु कमलनयन (विष्णु भगवान्) के कथनानुसार ही कमलामन (वला), नीलकठ (शिव) तथा अन्य देवताओं के अश, मनोहर काननों में ओर अन्य भू-प्रदेशों में वानर बनकर अवतरित हुए । इस प्रकार, अपने-अपने अश के रूप में पुत्रों की उत्तम करनेवाले देवता अपने-अपने स्थान को लौट गये ।

पूर्वकाल में निष्पत्र इस वृत्तान्त को मन में विचारकर विमिष्ठ ने वहा पर्वत-समान बलिष्ठ भुजावाले नृपते । तुम चिन्ता मत करो, जो यज चौदह भुवनों पर जानन करनेवाले पुत्रों को दे सकता है, उसे अविलव सपन्न करो, तो हुम्हारी मनोव्यया वर हो जायगी ।

जब विमिष्ठ ने इस प्रकार कहा, तब वडी उमग से भरे हुए नजार्धगज (दशरथ) ने उस महान् ऋषि के चरणों पर नतमन्तक होकर निवेदन किया—मैं तो आपकी ही शरण में रहता हूँ, मुझे कोई दुःख किस तरह सता सकता है? उम यज के लिए मेरे बरने योग्य कार्य क्या-क्या हैं, कहने की कृपा कीजिए ।

ढोप-रहित देवो और अन्य (दानव, दैत्य, मनुष्य, मृग आदि) लोगों को भी जन्म देनेवाले काश्यप के पुत्र, विभाड़क मुनि हैं. जो गगाधारी शिव के लिए भी सूत्य हैं। वे महान् वेदों के ज्ञान तथा धर्माचरण में अपने पिता की समानता करनेवाले हैं।

शास्त्रज्ञान. नीतिमार्ग तथा सत्याचरण में जो चहुमुख ब्रह्मा के समान हैं, जिसके निर पर एक सींग है और जो समार के सभी मनुष्यों को पशु-तुल्य समझते हैं, अब वहाँ आये और पुत्र कामेष्टि-यज सपादन करे।

आदिशेष के सहस्र फणों पर स्थित इस पृथ्वी के सभी मानवों को पशुवत् समझने-वाले महान् तपस्वी, ब्रह्मदेव एव शिवजी की भी प्रशंसा के योग्य, उस शान्त महर्पि (ऋष्य-शृग) के द्वारा यदि यज सपन्न हो, तो तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगे।

महर्पि वसिष्ठ के इस प्रकार कहते ही, उनके चरण-कमलों की बन्दना कर, चक्रवर्ती दशरथ ने विनती की—हे प्रभो ! अकलंक, गुणों से भूषित वह महान् तपस्वी ऋष्य-शृग वहाँ रहते हैं । अब मेरा कार्य क्या है ? बताइए।

(वसिष्ठ ने कहा) —न्वायभुव मनु के वश में उत्पन्न उत्तानपाद नामक नरपति के, पूत नामक वडे-वडे पापों को मिटानेवाले, पुत्र रोमपाद नामक राजा रहते हैं, जो शासन के योग्य सभी आवश्यक गुणों से विशिष्ट हैं। प्रेम एव शीतल कृपा के आगार हैं और (शत्रुओं के लिए) सभी प्रकार से द्वजेय हैं।

उम रोमपाद द्वारा शासित राज्य में दीर्घकाल से वर्षा नहीं हुई थी, इस कारण जब वडा अकाल पड़ा तब उन नरेश ने वडे-वडे शास्त्रज्ञ ऋषियों को बुलाकर महादान दिये। फिर भी वर्षा नहीं हुई, तब ऋषियों ने उन रोमपाद से कहा कि जब इस देश में ऋष्यशृग आयेंगे, तब अवश्य वहाँ वर्षा होगी।

राजा विचार करने लगे कि भूतल के सभी मनुष्यों को पशुवत् माननेवाले, निष्कलक गुण-भरे उन तपस्वी को यहाँ ले आने का उपाय क्या है ? तब उज्ज्वल ललाट, दीर्घ नयन, रक्ताधर. मोती के तुल्य दौत तथा मट्टु स्तन-चुगल से शोभित कुछ वारवनिताओं ने आकर राजा से निवेदन किया — हम जाकर उस तपस्वी को यहाँ ले आयेंगे।

उनका कथन सुनकर रोमपाद प्रसन्न हुए और आभूषण, बल्ल, शुम द्रव्य आदि देकर कहा कि हिमकर को भी लजानेवाले ललाट, वलिष्ठ वॉस-जैसी भुजाओं, कृश कटि, पीन स्तनों, काले केशों भीत नेत्रों और विवाधर से दुक्त पुष्पलता-तुल्य नारियों, तुमलोंग जाकर उन्हें ले आओ। वे नारियाँ राजा को नमस्कार कर रथ पर चढ़कर चलीं।

न्वर्णभरणों से विभूषित वे नारियाँ कई योजन पारकर, उस स्थान पर पहुँचीं, जो ऋष्यशृग के आश्रम में एक योजन दूर था। वहाँ वे पर्णकुटी बनाकर तपस्वियों के जंग गृहने लगीं।

काले और दीर्घनयनोवाली वे वारवनिताएँ, उम भातपस्वी ऋष्यशृग के पिता की अनुपस्थिति में उनके आश्रम में जा पहुँचीं। उन्हें देखकर ऋष्यशृग ने समझा कि ये भी समार के लोगों को मृग समान मानकर अरप्य में तपस्या करनेवाले ऋषि हैं और उनका उचित सत्वार किया।

ऋष्यशृंग ने उन्हें अर्घ्य आदि उपचारों के साथ उचित आसन दिये। उनमें मधुर वारे की, पलाश-पुष्प-सद्दा अधरवाली वे नारियाँ मुनि को प्रणाम करके शीघ्र ही अपनी पर्णशाला को लौट आईं।

सुन्दर आभूषण पहनी हुई उन रमणियों ने कुछ दिनों के पश्चात् देवामृत संभी मधुर कटहल, केले तथा आम के फलों के साथ भी नारियल भी उस ऋषि को प्रेम के साथ समर्पित किये और विनती की कि हे अपूर्व तपस्सपन्न, आप इनका भोजन करें।

इसी प्रकार जब कुछ काल व्यतीत हो गया, तब एक दिन सुन्दर और उज्ज्वल ललाटवाली उन रमणियों ने ऋष्यशृंग से विनती की कि हे ऋषि। आप हमारे आश्रम में पधारे। मुनि भी उनके साथ चल पड़े।

अपने मन के ही समान दूसरों को मोह में डालनेवाली वे रमणियों उमग-भरी और आश्चर्य-चकित होकर, उस श्रेष्ठगुणभूषित मुनि को साथ लेकर दीर्घ मार्ग पारकर यह कहती हुई चली कि ‘हे महर्षे ! वह देखो, वह, वही हमारा आश्रम है।’

मव विभूतियों से सपन (राजा रोमपाद के) नगर में उस ऋषिश्रेष्ठ के पदार्पण करने के पहले ही आकाश के बादलों ने, नीलकठ के कंठस्थ विष जैसे काले होकर, धोर गर्जन के साथ ऐसी वृष्टि की कि तालाब, नदी आदि सभी जलाशय जल से परिप्लावित हो गये।

गगन पर उमड़कर काले मेघों के वर्षा करने से नदियों और तलावों की प्यास दुख गई। ईख, लाल धान आदि की फसले लहलहाने और बढ़ने लगी। यह ढंगकर उस समय रोमपाद नरेश ने विचार किया कि—

विवफल के समान अधर, कमलतुल्य बदन, मोती के जैसे स्वच्छ दॉत, धूम के समान काले केशपाश—इनसे शोभित वारवनिताओं के प्रयत्न से, काम, क्रोध और मोह इन तीनों से रहित हो उन्नत हुए ऋष्यशृंग महर्षि उस नगर में पधार रहे हैं।

सुगठित भुजाओंवाले वह रोमपाद, वेदों के ज्ञाता मुनियों और अपनी मेना के साथ दो योजन आगे बढ़कर (वहाँ) सुगंधित केशवाली रमणियों के मध्य तप के बड़े पर्वत के समान ऋष्यशृंग मुनि के सम्मुख पहुँचा।

‘अब हमारा त्राण हो गया’—यो कहता हुआ आनन्द के साथ वह ऋष्यशृंग के चरणों पर गिरा, उसके नयनों से अशु वहने लगे, फिर (राजा के चरणों पर गिरकर) नमस्कार कर उठनेवाली उन वेश्याओं में उसने कहा—तुम लोगों ने अपने प्रयत्न में मेरी विपदा दूर की है।

जब रोमपाद और मुनिगण वहाँ आये, तब ऋष्यशृंग को यह जान हुआ कि वह सब कपट है। उस समय देवता भी भयभीत हो उठे, (परन्तु) गेमपाद नरश की प्रार्थना के कारण महर्षि मर्यादा का उल्लंघन न करनेवाले तरगायित मसुद्र के समान स्थित रहे।

ब्रह्म-समान खड़गधारी उस नरेश ने उस मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम किया और (ब्रह्म-वृष्टि से हानेवाली) अपनी विपदा, जिसे कोई भी दूर नहीं कर सका था और जो प्रथ ऋषि

के आगमन ने दूर हो गई थी, कह मुनाई। गजा के बार-बार प्रार्थना करने पर वृषभ के मन का साग कोथ दूर हो गया।

विशुद्ध जानी और वग्प्रदाता उन महातपस्वी ने दया करके उम नरेश को आशीर्वाद दिये अब गजा तत्त्वज्ञानी मुनियो-महित ग्रथ पर आहट होकर जीव ही नगर जा पहुँचा।

रोमपाद उम वृषभश्रेष्ठ के साथ अलकृत नगर में पहुँचे, मुनि को अपने स्वर्णमय प्रान्ताड में ले जाकर एक अनुपम निहानन पर उन्हे आनीन कराय।

उम नरेश ने, इम प्रकार मे कि कोई त्रुटि न रह जाय, अर्व आदि सभी उपचार किये और आनन्दित हो पलाश-मम अधर-दुक्ष शाता नामक अपनी पुत्री को बेटों के विवाह ने (उन मुनि को) दान किया।

वनिष्ठ ने कहा—हे राजन् उम अगदंश की भारी विपत्तियाँ अब मिट गई हैं, वहाँ वर्षा होने लगी हैं, जिसमे वहाँ का दुर्भिज्ज दूर हो गया है। महातपस्वी और जानी व (मुनि) राजा के द्वाग दान में दत्त शान्ता नामक नारी की सेवार्ण पाते हुए उमी स्थान पर गहत हैं।

वनिष्ठ के यह कहते ही महाराज दशरथ ने उनके चरणों में प्रणाम करके कहा कि मैं अभी जाकर उन (वृषभश्रग महर्षि) को ले आता हूँ। (उन नमय) राजा लोग उनकी सुति कर रहे थे, सुमन्त्र आदि महान् भेदा-शक्ति-सुपन्न मत्रिगण दशरथ के प्रति नतमस्तक हो गये जब दशरथ ग्रथ पर चढ़े, तब दंवताओं ने उन्हे आशीर्वाद दिये और यह विचारकर कि हमारी विपदाएँ आज से मिट गई, उनपर पुष्पवर्पा की।

‘काहल’ और अन्य बाद समुद्र से भी बढ़कर धोप करने लगे; वन्दी-मागव तथा बद्याठी ब्राह्मणों ने राजा की प्रशाना की और आशीर्वाद दिये। मधुर अवरवाली रमणियों ने उनकी जय-जयकार की और उनके आयुष्मान् होने के गीत गाये। समुद्र-नुल्य सेना से घिरे हुए गजा दशरथ दीर्घ मार्ग पार करके सूर्य के जैसे (तेजस्वी) चक्रवर्ती रोमपाद के देश में जा पहुँचे।

चर्ग ने रोमपाद को नमाचार दिया कि चक्रवर्ती दशरथ, जिनका वश शाखा-प्रशाखाओं में बढ़कर व्यात हो गया है, (नगर के) निकट आ पहुँचे हैं। (वह सुनकर) रोमपाद वीर-कक्षण पहनकर उनकी अगवानी करने चला दृढ धनुष धारण करनेवाली सागर समान उसकी विशाल सेना भी उसे देखकर चली, मागव स्तुर्ति-पाठ करने लगे, बड़ी उमग के नाथ वह एक बोजन दूर तक गया।

अपने नमुख आनेवाले वीर रोमपाद को देखकर दशरथ मेघ-गर्जन करनेवाले अपने रथ में उत्तर पड़े। उस नमय रोमपाद दशरथ के चरणों पर आ गिरा। अपने हृदय में प्रेम की बाढ़-सी उत्पन्न करते हुए दशरथ ने उन्हे उठाकर गले लगा लिया; रोमपाद ने आनन्द में भग्नकर तीदण-धार भाला धारण किये हुए चक्रवर्ती दशरथ से निंवदन किया—

बलवान् भुजाओं से विशिष्ट वह रोमपाद, जिसके भाले की चोट से शत्रु शव-नात्र रह जाते हैं, वो बहने लगा—देवलोक वी रक्षा करनेवाले भाले से दुक्ष हैं राजन्।

मेरे बडे तप के फलस्वरूप ही आपका यहाँ पदार्पण हुआ ह, अथवा इस गज्य का ही यह पुण्य-फल है। फिर, वह मधुवर्षा करनेवाले पुष्पों की मालाएँ पहने हुए चक्रवर्ती दशरथ को गत्तमय रथ पर आसीन कराकर अपने नगर में ले आया।

घनी पुष्पमाला को धारण करनेवाला रोमपाद, हाटक नामक स्वर्ण में निर्मित अपने प्रकाशमान प्रासाद के एक मठप में पहुँचा, वहाँ रक्तकमल के समान चण्डवाली, प्रतिभा-समान सुन्दर रमणियाँ जयगान कर रही थी, स्वर्णमय भिहासन पर चक्रवर्ती दशरथ को, जिनके भाले में जयमाला लिपटी हुई थी, विठाकर (अर्थ आदि) सभी उपचारों के साथ भोजन कराया। महाराज दशरथ, जिन्होने देवलोक की रक्षा की थी, (रोमपाद के स्वागत-सत्कार से बहुत) आनन्दित हुए।

उपचार के पश्चात् सुगंधित चंदन दिया। दशरथ को देख रोमपाद ने पूछा - आपके यहाँ पधारने का कारण क्या है, कृपाकर बताइए। जब दशरथ ने मारा वृत्तान्त कह सुनाया, तब नरेश (रोमपाद) ने विनती की कि हे मनोहर सुकटधारी राजन्। ईर्ष्या (आदि दुगुणों) से रहित महान् तपोधन ऋष्यशृग को मैं वहाँ (अयोध्या में) ले जाऊँगा। (इसके बाद) दशरथ रथ पर सवार हो अपनी सेना के साथ अयोध्या जा पहुँचे।

दशरथ के चले जाने पर वीर रोमपाद वेद-स्वरूप मुनिवर के निवास पर पहुँचा और उनके चरण-कमलों को अपने स्वर्ण-मुकुट पर धारण किया। ऋष्यशृग ने उससे उमके वहाँ आने का उद्देश्य पूछा, तो उत्तर दिया सुझे एक वर दीजिए। मुनि से पूछा— कौन मा वर ?

रोमपाद ने विनती की — उज्ज्वल कीर्तिमान्, नीतिज, शासक दशरथ जो कद्दूतर की रक्षा के निमित्त तुला पर अपने शरीर को रखनेवाले उदारगुण शिवि के प्रमिद्ध वश में उत्पन्न हुए हैं, जिनका मन धर्म में सुस्थिर है, जिनके भाले ने देवों को पीड़ा देनेवाले असुरों के बल को नष्ट किया था, उनके गत्तखच्चित अद्वालिकाओं में शोभित अयोध्या नगर को (आप एक बार) जाकर और फिर लौटने की कृपा करें।

तपस्वी ऋष्यशृग ने कहा कि हमने वह वर दिया (स्वीकार किया), अब तुम गथ ले आओ। तब तीक्ष्णधार भाला धारण करनेवाले रोमपाद ने उनके चरणों को प्रणाम किया और कहा कि अब राजाधिराज (दशरथ) की चिन्ता मिटी। वह गर्जन करनेवाले गथ को ले आया और निवेदन किया कि हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ ! आप सुन्दर ललाट, लच्छमी-मद्दण शाता के साथ इस रथ पर सवार हो जाइए।

वक्त धनुष को धारण करनेवाला रोमपाद हाथ जोड़कर खड़ा गहा। ऋष्यशृग मुनि जो अप्रव वेदों के समान थे अपनो पत्नी शाता के गाथ रथ पर (आसीन हो) अयोध्या की दिशा में चल पडे। उनके साथ शान्तस्वरूप अनेक ऋषि उनका अनुगमन करने हुए चले।

धर्मदेवता, इद्रादि देवगण यह सौन्दर्णे लगे कि उत्तेजित राक्षसों के अत्याचारों का विध्वम करनेवाले (समस्त सृष्टि) के आदिभूत भगवान् जिन उपाय ने (इस मर्यालांक में) अवतरित हो, वह उपाय (ये मुनिवर) अवश्य करने की कृपा करेगे—यह नोचकर अत्यन्त आनन्दित हो उठे और दुदुभि वजाकर श्रेष्ठ पुष्पों की वर्षा की।

उसी समय दूतो ने अयोध्या पहुँचकर पर्वत-समान भुजावाले राजाधिराज (दशरथ) को ऋष्यशृंग के आगमन का समाचार दिया। यह समाचार सुनने ही दशरथ भी आनन्द-स्पी असीम पारावार में गोते लगाने लगे।

चक्रवर्ती (दशरथ) कृदकर उठे, रथ पर सवार हुए और ऋष्यशृंग के स्वागत के लिए प्रस्थान किया। देवों ने पुष्पवृष्टि की, सुनिगण आशीर्वाद देने लगे नगाड़े वजे, और अन्य कई प्रकार के वादा भी बजने लगे, पाप-कर्म समूल नष्ट हो गये।

चक्रवर्ती दशरथ ने, जिसके नगाड़े भीषण गर्जन करते थे विचार किया कि अब मेरे मन की पर्वत-समान चिन्ता मिट गई और (नगर में) तीन योजन दूर आगे बढ़कर उम सुनि का स्वागत किया।

जिन्हें देखने ने ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त तपस्याएँ एक निष्कलक (व्यक्ति का) रूप धारण करके आई हों, वे अपने कटि के बल्कल एवं (ऊपर धारण किये) अजिन (हरिण-चर्म) के साथ अत्यन्त गभीर दीख रहे थे।

जो देवताओं के कष्टों और राज्ञों के बल को मिटाने के कार्य में समर्थ थे एवं जिनके विशाल करों में यथाविधि छत्र, ब्रह्मदड और कमंडल शोभित थे।

(ऋष्यशृंग के दर्शन होते ही) चक्रवर्ती उसी स्थान पर रथ से उतर पड़े और पैदल चलकर (उन सुनिवर के) युगल चरण-कमलों पर जा गिरे। उन सुनि ने जो चतुर्वेद-स्पी लता के फैजाने के लिए अलान के समान थे अर्थगमित वाक्यों में (राजा को) आशीर्वाद दिये।

दशरथ ने मेघ के समान दान देनेवाले अपने दोनों हाथ जोड़कर अन्य ऋषियों को भी नमस्कार किया और उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। गभीर जल में रहनेवाली मछली के समान नयन में युक्त शान्ता के साथ ज्ञानी (ऋष्यशृंग) को रथ पर आमीन कराकर यथाविधि (अयोध्या को) ले आये।

मुकुटधारी चक्रवर्ती (दशरथ) कमल जैमे सुख एवं मौन्दर्यवाली रमणियों की जय-जयकार के साथ सुनिवर को साथ लेकर शीघ्र ही अयोध्या पहुँच गये, जहाँ (उनके स्वागत में) नगाड़े गरज रहे थे।

(वसिष्ठ महर्षि) जिन्होंने चोर के समान पापकर्म में निरत पाचो इद्रियों को अपने वश में कर लिया था और श्रेष्ठ ऋष्यशृंग, जो मूर्त्तिमान् वेदों-जैमे थे, आपस में ऐसे मिले कि सारी राज-सम्भा दीस हो उठी।

दशरथ ने उन वेद-समान ऋषिश्रेष्ठ ऋष्यशृंग को श्रेष्ठ रत्नमडप में ले जाकर निष्कलक स्वच्छ रत्नखन्नित आसन पर विठाया और सभी कर्तव्य उपचार आनन्द के साथ सुसंपन्न किये, फिर ये बचन कहे —

हैं श्रेष्ठों में श्रेष्ठ। धर्म एवं तपस्या के जैमे शोभायमान पावन रूप। (आपके यहाँ पधारने से) मेरा पुरातन वश, जो आपकी कृपा से उज्ज्वल हो उठा है, अब आगे भी बढ़ता रहेगा और शासन पर स्थिर रहेगा मैंने पिछले जन्म में जो तप किये, वे भी अब विफल नहीं होंगे।

दशरथ के ये वचन कहते ही ऋष्यशृंग उन्हें उत्तमित दृष्टि में दंखकर बोले— राजाओं के राजन्, सुनो, हम्हे वर्मिष्ठ नामक एक महान् तपस्वी की महायता प्राप्त है तुम्हारे कार्य पुण्यमय हैं, क्या तुम्हारी समानता इस सासार के द्वित्रिय कर सकते हैं ?

इसी प्रकार के विविध मीठे वचनों को कहकर पूछा—पर्वत के समान दृढ़ धनुष धारण करनेवाली स्फीत भुजाओवाले (हे गजन) तुमने मुझे यहाँ जो बुलाया है क्या वह अश्वमेध यज्ञ करने के लिए ही, स्पष्ट कहो ।

(दशरथ ने निवेदन किया) मैंने अनेक वर्षों तक, विना किसी कष्ट के धरती का भार उठाया है, अवतक मेरे कोई सतान नहीं हुई (जो मेरे बाद इस भार का बहन करे), आप हमें समुद्र से घिरी हुई इस पृथ्वी की रक्षा करनेवाले पुत्र दीजिए और मुझे अमल यशस्वी बनाइए ।

दशरथ के इस प्रकार वचन कहते ही, ऋष्यशृंग ने कहा—राजन् । तुम चिन्ता मत करो, एकमात्र इस मर्याद-लोक की ही क्या, चतुर्दश भुवनों की रक्षा करनेवाले महावली पुत्रों का प्रदान करनेवाला यज्ञ करने के लिए अभी, इसी स्थान पर, सन्नद्ध हो जाओ ।

उस यज्ञ के लिए आवश्यक सभी वस्तुएं (सेवकगण) शीघ्र ही ले आये, चक्रवर्ती (दशरथ) भी परिशुद्ध (सरयू) नदी में स्नान करके वेदशास्त्रोक्त विधान से विना किसी त्रुटि के सम्यक् रीति से बनाई गई यज्ञशाला में जा पहुँचे ।

शब्दायमान हो वहनेवाली तीनों अग्नियों को प्रज्जलित करके उसमें आहुति देने लगे । वारह माम व्यतीत होने के पश्चात् देव-वादा वज उठे, देवगण विशाल आकाश में इस प्रकार छा गये कि कहीं थोड़ी भी जगह खाली नहीं रही ।

विकसित कमल जैसे कातिमय वदनवाले देवता, सुगंधित कल्पवृक्ष के पुष्प वरमा रहे थे, (उसी समय) सद्गुणों से विभूषित ऋष्यशृंग ने भी उस अग्नि के मध्य पुत्र-दात्री आहुतियों का होम किया ।

उसी समय (उस होमकुड़ में) एक भूत प्रकट हुआ, जिसके केश धधकनेवाली अग्नि के समान थे और जिसके नेत्र लाल थे, वह एक मनोहर सोने के थाल में पवित्र मधुर सुधा-सदृश एक पिंड लिये हुए होम की अग्नि से शोधता के साथ उपर को उठा,

उसने थाल को धरती पर रख दिया और पुनः होमाग्नि में अदृश्य हो गया । तपस्वी ऋष्यशृंग ने दशरथ से कहा—इस (भूत के) द्विये हुए अमृतम् पदार्थ को यथाक्रम अपनी पल्लियों को दो ।

उन मुनिवर के आजानुमान ही दशरथ चक्रवर्ती ने उस अमृत-पिंड का एक भाग धूम के सदृश काले, कोमल और धूँधुराले अलको तथाविंवफल के समान अधरोवाली लावण्य-पूर्ण कौसल्या को दिया । उस समय शख्खनि हो रही थी ।

उस कोशल देश पर जहाँ के तालाबों, नदियों और वागों में हम विचरण हैं शासन करनेवाले दशरथ चक्रवर्ती ने वचे हुए पिंड का आधा भाग केक्य-गजकुमारी कैकवी के हाथ में दिया, तब देवता आनन्दोच्चारण कर गहे थे ।

(इसके बाद) दशरथ चक्रवर्ती ने, जो शत्रुओं के हृदयों में कपन उत्पन्न करने-

बाले बल में विभूषित थे और निमि नामक चक्रवर्ती के श्रेष्ठ वश में उत्सन्न थे, उस अमृत-पिंड का बच्चा हुआ भाग सुमित्रा को दिया। दंवपति इद्ध यह नमस्कर कि अब मेरा शत्रु मिट गया अपने साथियों के साथ हर्ष-रव कर उठा।

ओर, उदार स्वभाववाले उन चक्रवर्तीं ने थाल में अमृत पिंड के जो दुकड़े (पिंड को तोड़ने पर) खिलाए थे उन्हें भी सुमित्रा देवी को दे दिया, (इस समय) शत्रुओं के बास अग और समार के अन्य सभी प्राणियों के दक्षिण अग फड़क उठे।

अश्वमेध यज्ञ तथा पुत्रकांपिष्ठ यज्ञ के सभी कार्य सुनि ने संपन्न कराये। यज्ञ नमात होने पर नव लोगों में अपनी प्रशस्ता मुनन् हुए समार का शानन करनेवाले दशरथ आनन्द के साथ (यज्ञ-मडप में) बाहर आये।

विविध-विहित यज्ञ-कर्म यज्ञ नमात हुए, तब मर्दल आदि वाद्य जोरों से बज उठे, (गक्षांसों के अत्याचारों के कारण) दुख भोगनेवाले दुख-सुक्त हुए, चक्रवर्तीं सभी मडप में आ पहुँचे।

(राजा दशरथ ने) वंदों के अनुसार सब विहित कर्म अपने कुलदेवता विष्णु-भगवान् को समर्पित किये,^१ उसी विधान के अनुसार देवताओं को भी हविर्भाग दिये, तथा महामहिम श्रेष्ठ विप्रों को भी अपने करों में स्वर्ण-दान दिये।

(यज्ञ में उपस्थित) गजाओं को बन, रथ, धोड़े अमूल्य सुन्दर वस्त्र आदि प्रत्येक की योग्यता के अनुसार भेट किये, फिर वाजे-गाजे के साथ नगवृ नदी के सुन्दर घाट पर पहुँचे और (अधर्मपर्ण) स्नान किया।

नगाड़े यज्ञ रहे थे, मुक्ता-मडित श्वेतच्छुत ऊपर छाया दे रहा था, राजे वंदे हुए आ रहे थे, इन प्रकार दशरथ गजमभा में आ पहुँचे अपने वेदज्ञान से ब्रह्मा को भी लजानेवाले वसिष्ठ महर्पि के चरणों पर नत हुए।

फिर तपस्वी वसिष्ठ की आजा मे, हिंन के सीग जैमे सीग से शोभायमान ऋष्यशृङ्ख के चरणों को प्रणाम करके ये बच्चन कहे—हे तपस्विवर। (आप की कृपा से) मैं कृनकार्य हो गया इन्हें वटकर प्राप्य फल मेरे लिए और क्या हो सकते हैं ?

हे प्रभो ! आपकी कृपा मे यह जन दुखमुक्त हो, कृतार्थ हो गया। (दशरथ की वात सुनकर) ऋष्यशृङ्ख मन में आनंदित हुए और आशीर्वाद दिये। अपने साथ आये हुए सुन्निगण के नहित वंश में वेठकर (गोमपाठ की नगरी के लिए) चल पड़े।

दशरथ नरेश ने दुखों ने मुक्त हो फिर एक बार नम्रता के साथ मुनियों के चरणों की बढ़ना की, वे (मुनिवर) आनंदित हो, आशीर्वाद हेतु हुए वहाँ में (अपने-अपने म्यानों को) चले गये। दशरथ चक्रवर्तीं सुखी जीवन विताने लगे।

कुछ दिन व्यतीत होने पर चक्रवर्तीं की तीनों पत्नियों गर्भधारण का बलेश अनुभव अगते लगी। उनके अनुपम सुन्दर मुख ही नहीं, परन्तु उनके मनोहर शरीर भी चन्द्र के समान कातिपूर्ण दीखने लगे।

^१ वंशांकों के बीच यह प्रथा प्रचलित है कि कोमी कार्य करने के बाद उसे भगवान् विष्णु को समर्पित कर देते हैं। इने 'सात्त्विक त्याग' कहते हैं।

जब उन गर्भवती देवियों के प्रसव का उपद्रुक्त समय आया, तब विशाल भू-देवी आनंदित हुई ; पुनर्वसु नक्षत्र और देवी से प्रशमित कर्कटक लग्न, दोनों आनन्द में उछलने लगे ।

सिद्ध, यक्ष, यक्षी की देवियाँ, तत्त्वज्ञानी ऋषिगण, देवगण, नित्यसूर्यगण^१ पर्क्ष-पक्षि में (खडे) आनंदित हो जयघोष कर उठे, धर्म-देवता का मनस्ताप मिट गया और वह आनन्द से भर गया ।

सद्गुणों से भरी कौसल्या देवी ने, काजल और नव मंधां की छटा दिखानेवाली उम तेजोमय विष्णु को जन्म दिया, जो समस्त सृष्टि को अपने उद्गम में लीन कर लेता है और जो महान् वेदों के लिए भी ज्ञानातीत है, (उसके जन्म से) मसार की विसृति बढ़ गई ।

देवता लोग दसों दिशाओं में और आकाश में स्थित हो आनन्द-घोष कर रहे थे, इन्द्र आदि प्रणाम करके जय-जयकार कर रहे थे, ऐसे 'पुष्प नक्षत्र' और 'मीन लग्न' से दुक्ष शुभ घड़ी में निष्कलक केकय-राजपुत्री ने एक पुत्र को जन्म दिया ।

कल्पवृक्ष के अधिष्ठिति, पर्वतों के पर्खों को काटनेवाले इन्द्र तथा उनके माथी अतरिक्ष में आनन्द-नाद कर रहे थे । वॉटी में रहनेवाले नर्प (आश्लेषा नक्षत्र^२) के साथ 'कर्कटक' (लग्न) ने भी नया जीवन पाया, पट्टमहिपियों में सबसे छोटी, कोमल लता-तुल्य सुमित्रा ने लक्ष्मण को जन्म दिया ।

आदिशेष के सहस्र फणों से बहन की गई भूमि आनन्द से नाच उठी, वट नाथ करने लगे ; सिंहराशि और मधा नक्षत्र ने ऊँचा जीवन पाया, (इसी समय) विष क समान काले नयनोवाली सुमित्रा ने एक दूसरे पुत्र को जन्म दिया ।

'राज्ञस मिट गये'—इस खयाल से आनंदित हो अप्सराएँ नाच उठी, किन्नर अपने अमृत-मधुर स्वर में गा उठे, विविध वादा वजने लगे, देवगण (आनन्द से) इधर-उधर दौड़ने लगे ।

रानियों की सखियाँ दौड़कर दशरथ के पास गई, पुत्र-जन्म का समाचार सुनाकर आनन्द-नृत्य किया, (ज्यौतिष में निपुण) ब्राह्मणों ने एकत्र होकर नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति का अवलोकन करके कहा कि अब यह ससार दुःखों से मुक्त हो जायगा ।

सुखपट्ट^३ से सुशोभित गज के समान गमीर और नीतियुक्त प्रीरामचन्द्र के शुभावतार के समय मेष (चैत्र) मास था, तिथि नवमी थी, नक्षत्र पुनर्वसु था, श्रेष्ठ लग्न

१. वैष्णवों के अनुसार श्रीवैकुण्ठ में विष्णु की चरण-स्तोत्र करनेवाले गम्भीर, अनन्त, विश्वकेशन आदि भक्त 'नित्यसूरि' कहे जाते हैं । भगवान् की आशा से ये लोक-कर्त्याण के लिए कभी-कभी पृथ्वी पर अवतार भी लेते हैं ।

२. लक्ष्मण का जन्म कर्कट राशि और आश्लेषा नक्षत्र में हुआ था । आश्लेषा नक्षत्र र्षकार होता है । साँप और केकड़े की मिश्रता वत्तलाकर कवि ने चमन्कार दिग्गजा है ।

कर्कटक था ग्रहस्थानों की परीक्षा करके देखने पर (विभित हुआ कि) स्यारहवे गह में चार ग्रह उच्च स्थान में थे ।

ज्योतिःपियों ने श्रीरामचन्द्र की जन्म-पत्री तेयार कर दी , फिर अन्य राजकुमारों की जन्मपत्रियाँ भी उपयुक्त क्रम से परीक्षा करके, स्वर्ण-फलक पर लिखकर, अत्यन्त चतुर दंबगृह वृहस्पति की प्रशस्ता करते हुए, पढ़ सुनाईं ।

दशरथ चक्रवर्ती ने आनन्द से (सरयू नदी में) स्नान किया , अन्न तथा वस्त्र दान दिये, फिर जब श्वेत शख वज रहे थे, तब वर्षिष्ठ सुनि को भी साथ लेकर अपने श्रेष्ठ कुमारों के सुख देखे ।

दशरथ महाराज ने दिढोग पिटवा दिया और आज्ञा दी कि 'राज्य-भर में सात वया के लिए लगान माफ कर दिया जाय अन्न-भाँडारों के किवाड़ खोल दिये जायें, ताकि गरीब अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार अन्न उठा ले जायें ।

(यह भी आज्ञा दी कि) युद्ध-कार्य बन्द हो जाये (कारागह में) वही शत्रु-गजाओं को मुक्त कर दिया जाय और वे अपने-अपने राज्य को छले जायें , व्राह्णों के नियमाचरण विना विन्न के पूर्ण हो , (मटिरो में प्रतिष्ठित) देवता विशेष रीति से किये जानेवाले उत्तरों से सतुष्ट किये जायें ।

देवालयों का संस्कार किया जाय , व्राह्णों के निवासों, चौराहो और अन्य मार्ग-नान्धियों का नव-निर्माण हो , प्रातः एव सध्या के समय (देवालयों के) देवाताओं को मनोहर पुष्पहार समर्पित किये जायें ।

(चक्रवर्ती के यह) आज्ञा दें ही दिढोग पीटनेवालों ने हाथियों पर वेठकर श्रुतिसुखद दिढोरे पीटकर सर्वत्र राजाज्ञा सुना दी नगर-निवासी और विद्युलता के समान क्षीणकटि नारियों आनन्द-मागर में झूव गईं ।

नगर-निवासी प्रेम से भरकर आनन्द-नाद कर उठे , उनके शरीर पुलकायमान हो गये आर स्वद-विन्दुओं से भर गये , गजा के मामने आकर जिन-जिन ने यह शुभ समाचार सुनाया उन सबको वहमूल्य मेट दी गई , कदाचित् उनके मन में यह विश्वास हो गया कि (राजकुमारों के स्वयं स्वयं विष्णु भगवान् ही अवतरित हुए हैं ।

विशाल अयोध्या नगर में नारियों के झुड़, सखियों के समुदाय, पुरुषों के सघ तथा मित्रों के बल ने अतीव आनन्द के साथ तेल चन्दन, धी, कस्तूरी तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य अयोध्या की वीथियों में छिड़के ।

उस प्रकार उस महानगरी के निवासियों ने बारह दिनों तक उत्सव मनाया और अपने मन में उमड़नेवाले आनन्द के कारण अपने-आपको भूल गये , तेरहवे दिन अमर और नत्य तपन्यावाले वर्षिष्ठ ने (वालकों का) नामकरण करने की सोची ।

मगर के साथ दुड़ करने समय जब गजराज के कर ढीले पड़ गये, तब उसने त्योही आदिषेप पर शयन करनेवाले आदिमूल भगवान् विष्णु का स्मरण किया, त्योही आकर उसकी रक्षा करनेवाले उस परमार्थभूत विष्णु भगवान् का (वर्षिष्ठ ने) 'श्रीराम' नाम रखा ।

अभीष्ट फल देनेवाले वसिष्ठ ने, जिनके लिए वंदों के यथार्थ तत्त्व हस्तामलक के समान थे, (रामचन्द्र के बाद) अवतरित दूसरे ज्योति-पुज का 'भरत' नाम रखा ।

(जिसके उत्पन्न होते ही) वंचक (राज्ञस) लोग मिट गये और देवता लोग तर गये, भूमिदेवी करोड़ों कष्टों से मुक्त हुईं, उस अजेय और महावली ज्योतिर्मय पुत्र का नाम 'लक्ष्मण' रखा ।

ज्योतिःस्वरूप चौथा वालक ऐसा लगता था, मानो मौतियों के पुज के मध्य रक्त-कमल विकसा हो । शत्रुओं का नाशक समझकर कुलगुरु ने उसका 'शत्रुघ्न' नाम रखा ।

भूलकर भी असत्य पर न चलनेवाले (वसिष्ठ) मुनि ने जब उत्कृष्ट वेदमत्रों का उच्चारण करके (चारों वालकों का) नामकरण किया, तब दान-नदियों ने चक्रवर्तीं के हाथों से प्रवाहित होकर वेदशास्त्रों में निपुण त्राहणों के मत्य थथों से भरे हुए हृदय-स्पी समुद्र को भर दिया ।

समस्त ससार पर शासन करनेवाले राजाधिराज दशरथ (अपने ज्येष्ठ) कुमार से इस प्रकार प्रेम करते थे, मानो नीलोत्पलों के मध्य विराजमान रक्तकमल जैसे अतीव सुन्दर लगनेवाले श्रीरामचन्द्र के अतिरिक्त उन्हे दूसरे प्राण एव शरीर ही न हो ।

चारों कुमार, जिनकी तीतली बोली से अमृत वरसता था, अपनी सुन्दर विकापित गति से भूमिदेवी की शोभा बढ़ाते हुए उसी प्रकार बढ़ने लगे, जिस प्रकार अधकार को दूर करते हुए सूर्य बढ़ता है और स्वरों की ध्वनि के साथ चारों वेद (ससार में) बढ़ते हैं ।

समय आने पर ध्वल चन्द्र से विभूषित शकर समान वसिष्ठ मुनि ने यथाविधि उनके चूडाकरण तथा उपनयन-स्कार कराये । (फिर) अमर वेदों एव अनन्त शास्त्रों का इस प्रकार से अध्ययन कराया कि उनके ज्ञान की कोई सीमा ही नहीं रही ।

देवताओं के एकमात्र नेता रामचन्द्र ने अपने भाइयों के साथ हाथी, रथ, घोड़ आदि सवारी तथा इसी प्रकार की अन्य (क्षत्रियोच्चित) विद्याओं की शिक्षा यथाविधि प्राप्त की और शत्रुओं का नाश करनेवाली सेना सचालन कि रीति तथा धनुर्विद्या का भी अभ्यास किया ।

वेदों के ज्ञाता मुनि, देवता, भूमिदेवी और उस नगर के सभी निवासी, वह सोचकर कि इन (राजकुमारों) से हमारे कष्ट एव उनके कारण-भूत पाप और पुण्य कर्म भी मिट जायेंगे, उनके निकट से हटना नहीं चाहते थे ।

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण नदियों में, मेघों सं आवृत (ऊचे वृक्षों से भरे) उपवनों में और तड़ागों में साथ-साथ सचरण करते थे, जैसे ताने के साथ भरनी का सूत मिल गया हो, इससे भूमिदेवी कि तपस्याएँ प्रकट होती थीं ।

भरत और शत्रुघ्न एक क्षण के लिए भी एक दूसरे से अलग नहीं होते थे, नथ या घोड़े की सवारी करते समय या वेद-शास्त्रों का अध्ययन करते समय नदा एव नाथ रहते थे । वे दोनों मेरे (लेखक के) स्वामी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के (जोड़े) जैसे रहते थे ।

पराक्रमी राम और भरत अपने ब्रह्मज लक्ष्मण और शत्रुघ्न के आय (प्रार्नादिन) बहुत संवेद नगर से बाहर सुगंध-भरे उपवनों में दयालु मुनियों के पास (अध्ययन गृह)

जाते और स्यान्त के समय अपने सुन्दर नगर में लोट आते उम समय उनका स्वागत करने-वाले नागरिक जन आनन्द के कारण मेघों के अगमन से उत्सुकित होनेवाले शस्य के समान दिखाई देते थे।

अग्रेष्वापुरी की नारियाँ, वहाँ के पुरुष, जो उन नारियों के पीन स्तनों के अनुहृष्ट ही वृत्तिष्ठ थे, तथा उनके वधुजन, कौसल्या एवं दशरथ के महश ही अपने इष्टदेवों से प्रार्थना करते कि ये कुमार चिरजीवी हो।

वेदों के लिए अगोचर अनन्य नमान श्रीरामचन्द्र और उनके साथ सदा लगे रहनेवाले लद्धमण को आते देखकर लोग उपमा देते हुए कहते थे कि (रामचन्द्र को देखने में ही ऐसा प्रतीत होता है) मानो नीलमसुद्र या कालमेघ उज्ज्वल विकमित कमलपुंज से शोभावमान हो, उत्तर दिशा में स्थित मेर पर्वत के साथ आ रहा हो।

हमारे स्वामी रामचन्द्र अपने समक्ष आनेवाले नागरिकों को देखकर अपने मुख-कमल को विकमित कर बड़ी कृपा के माथ पूछते कि तुम्हारे कार्य क्या हैं? कोई कष्ट तो तुम्हें नहीं हैं? तुम लोगों की शृंहिणियाँ एवं ज्ञानवान् सतति सुखी और स्वस्थ हैं न?

नगर-निवासी उत्तर देते—स्वामिन्। हम वैङ्मभाग्यवान् हैं, आपके समान राजा को पाने पर हमें किस बात का अभाव हो सकता है? हमारे लिए सुखी जीवन प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं (हमारी यही कामना है कि) जबतक ब्रह्म जीवित रहे, तबतक आप हमारी आत्माओं पर एवं सप्तद्वोप विशिष्ट भूतल पर शासन करते रहें।

इस प्रकार, उन सुन्दर नगर के निवासियों की प्रशस्ता प्राप्त करते हुए तथा अपने भाइयों के द्वारा अनुगत रहते हुए त्रिमूर्तियों के नेता श्रीरामचन्द्र जीवन विताने लगे।

राजाधिराज दशरथ समस्त समार को अपने श्वेत छत्र की छाया में आश्रय देते हुए, नगाड़ों की जय-ध्वनि सुनते हुए, सुनियों के द्वारा प्रशस्ति होते हुए, नि.सीम आनन्द-नागर में गोते लगाते रहते। (१—१३८)

◎

अध्याय ६

समर्पण पटल

(दशरथ चक्रवर्ती) आकाश को छूनेवाले रत्न-खर्चित सभा-मडप में आये। पुष्पभाग से लंडे कल्पवृक्ष से सुशांतित स्वर्गलोक के निवासियों को उम मडप को देखकर इन्हें सभा-मडप की भ्राति हो गई।

(मडप में पहुँचकर महाराज दशरथ) पर्गशुद्ध धार कोमल (गद्वार) मिहासन पर विगजमान हुए। (उन्हें देखकर) गगन में सच्चरण वरनेवाली अमराओं को यह सदेह हो गया कि वही उनके अविरप्ति इन्हें है फिर (दशरथ के) हजार नवन न होने से उनका नुदंह दूर हुआ।

उस सिंहवली दशरथ के सामने एकाएक वडे क्रोधी विश्वामित्र ऋषि आ उपस्थित हुए, जिन्होंने कभी सभी प्राणियों और लोकों का अलग मर्जन करके नये देवगण तथा नये ब्रह्मा की भी सृष्टि करने का उपक्रम किया था ।

मुनि के आने ही, दशरथ खट अपने आसन से उठकर उनके चरणों में नत हुए. जैसे कमलासन (ब्रह्मा) के आगमन पर इद्र उठ खड़ा हुआ हो, तब दशरथ के बद्ध पर (उनके उठने के साथ) हार भी हिलडुलकर यो किरण फेंकने लगे, जिसमें सूर्य की काति भी परास्त हो जाती थी ।

(दशरथ ने मुनि को) प्रणाम कर उन्हे रत्नों से जड़े हुए स्वर्णामिन पर वडे प्रेम से विठाया और उनके चरणकमल-युगल की अर्चना करके, हाथ जोड़कर कहा कि (आपके आगमन से) मेरे प्राग्नव्य कर्म की परंपरा अभी दूट गई । (अर्थात्, मैं कर्म-वंधन में मुक्त हो गया ।

हे महात्मन् । आप इस नगर में सुलभता से पधारे और मैं आपकी परिक्रमा करके आपको प्रणाम कर सका, इस सौभाग्य का कारण यदि इग्न देश का किया हुआ तप माने, तो वह नहीं है, या मेरे किये अच्छे कर्म माने, तो वह भी नहीं है, हाँ इसका कारण मेरे पूर्वजों के द्वारा किया हुआ तप ही हो सकता है । जब दशरथ ने इस प्रकार कहा, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

शत्रुओं का वध करके उनके मास से युक्त भाला धारण करनेवाले, हे (दशरथ) । मुझ जैसे मुनियों और देवताओं पर यदि कोई विपदा आ पड़े, तो सभी पर्वतों का उपहास करनेवाला ध्वल हिमाचल, क्षीरसागर, कमलासन के नगर (सत्य लोक) तथा कल्पवृक्ष से सुशोभित अमरावती के सदृश सुन्दर अद्वालिकाओं में विभूषित अयोध्या नगरी को छोड़ शरण देनेवाला स्थान क्या अन्य कोई हो सकता है ?

हे चक्रवर्ती ! मनोहर कल्पवृक्ष कि छाया में, जहाँ सुगंधित मधु यन्त्र-तत्र विखरा रहता है, वैठकर शासन करनेवाला इद्र जब राज्य से वंचित होकर तुम्हारे श्वेतच्छव्र की छाया में शरणागत हुआ था और अपने कष्ट बताकर सहायता की अभ्यर्थना करते हुए तुम्हारे सम्मुख आया था, तब तुमने ही तो उसपर कृपाद्वयि फेरकर कुलपर्वत-भमान भुजाओं से युक्त 'शत्रव' नामक असुर का समूल नाश करके इद्र को उसका राज्य दिलवाया था इन्द्र आज जो राज्य कर रहा है, वह तुम्हारा दिया हुआ ही तो है ।

जब विश्वामित्र महर्षि ने इस प्रकार कहा, तब दशरथ के हृदय में धानन्द का एक समुद्र-सा उमड़ पड़ा, जिसका अत कोई देख नहीं सकता था, उन्होंने हाथ जोड़कर मुनि में विनती की कि राज्यभार प्राप्त करने का जो फल हो सकता है, वह (आपके दर्शनों से) मुझे प्राप्त ही चुका, अब मुझे जो करना हो, उसकी आजा दें, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ, उस यज्ञ की रक्षा उन राक्षसों में बर्नी है, जो उसमें विघ्न डालने आयेंगे, जिस प्रकार काम, क्रोध आदि दुर्गुण, मुनियों को डराते हुए उनके पास आ पहुँचते हैं, तुम अपने चार पुत्रों में श्यामल (श्रीरामचन्द्र) को, युद्ध में अडिग रहकर उन राक्षसों में मेरे यज्ञ की रक्षा करने का आदेश देन्वर मेरे साथ भेज दा ।

इन प्रकार विश्वामित्र ने दशरथ के नन में पीड़ा उत्पन्न बरत हुए कहा, मानो यम ही प्राणों भी याचना कर रहा हो ।

अपरिमेय नपन्या-सुपन्न विश्वामित्र के बचन (दशरथ को) ऐसे लगे, मानो शत्रु-प्रतुक्ष भाले ने उत्पन्न नर्मन्यान के धाव में लूक खुल गया हो । अतर की पीड़ा में निकाले जानेवाले उनके प्राण ठोलायमान हो उठे जिसमें उन्हें ऐसी बेद्धना हुई कि कोई जन्म का अधा अँखें पावर फिर खो वैठा हो ।

निरतर वहनेवाले मधु के छत्ते के समान मधुबाबी मालाओं से सुशोभित उम चकवर्ती ने किनी प्रकार अपनी पीड़ा को द्वावर मुनि ने निवेदन किया—हे महात्मन् ! वह यम तो अभी छोटा है, शत्रु चलाने का अस्याम भी इसे नहीं है, यदि राज्यमो का वध ही आपका उद्देश्य हो, तो अपनी जटा के एक ओर से गंगा को प्रवाहित करनेवाला शिव, चतुर्मुख व्रहा अथवा पुरुष भी आकर विमलारी वर्णे, तो उन विम्बा का भी विष्व वनकर मैं आजके यज्ञ की रक्षा बर्हगा । आप यज्ञ करने के लिए प्रन्तु हो जायें ।

दशरथ के इन प्रकार कहते ही मुनि, जो किनी समय अपर सृष्टि करने के लिए उत्तर हो गये थे क्रोध ने उबल पड़े देवता यह आशका करने लगे कि सृष्टि का अन्तकाल आ गया है, आकाश से चमकनेवाला सूर्य भी अदृश्य हो गया, जहाँ-तहाँ स्यावर बन्दुर्म भी धूर्णायित होने लगी । (मुनि की) भौहों के घने कोने (उनके) उठे हुए लक्षाट पर फैज गये, नवन रक्ष कर्ण हो गये, नभी दिशाओं में अँधेरा छा गया ।

मुनि (विश्वामित्र) को दृढ़ जानकर (वसिष्ठ ने) उनमें प्रार्थना की कि हे मुनि, ज्ञाम न्यैं और (दशरथ ने) कहा—जब तुम्हारे पुत्र को अप्राप्य हित स्वय आकर प्राप्त हो रहा है तब क्या उनका अवगोध करना उचित दै ?

हे गजन् ! आज वह समय आया है, जब तुम्हारे पुत्र श्रीराम को अनन्त विद्याएँ उनी प्रश्नार प्राप्त हो रही हैं जिन प्रकार वर्षा ने बड़ी हुई नदी की धाराएँ (स्वय) नागर में जा मिलनी हैं । (वसिष्ठ के) ये बचन सुनकर—

और गुरु की आज्ञा मानकर जयशील नरपति ने (अपने सेवकों को) आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर गम वाँ यहाँ ले आओ सेवकों ने जाकर राम से निवेदन किया कि चक्रवर्ती आपकी दुज्जा रहे हैं नमाचार पाकर ज्ञानातीत श्रीरामचन्द्र अपने पिता के निकट आये ।

दशरथजी ने गमचन्द्र को तथा उनके साथ आये हुए भाई लक्ष्मण को, चारों बैंगों में निषात विश्वामित्र वो दिखाकर कहा—प्रभो ! इनके सत्पिता आप ही हैं अनुरन माना आप ही हैं नैने इन्हें आपके सुपुर्द कर दिया, इनके अनुकूल जो भी कार्य हो, इनमें लीजिए । वो अहकर मुनिवर को अपने पुत्र नाम पिये ।

कुमारों को प्राप्त करके (कामादि) दुरुणों ने रहित विश्वामित्र का क्रोध शान्त हो गया । उन्होंने (दशरथ को) आशीर्वाद दिया । फिर कुमारों ने कहा—चलो अब हम जान्त्र यज्ञ मन्त्रन करेंगे । तीनों वहाँ से चलने को उद्यत हुए ।

नभी लोकों की रक्षा बरवाले (राम) ने विजयप्रद खड़ग अपनी कटि से बाँधा

सत्य के समान ही दो^० अन्नय तूषीर अपनी पर्वत-जैसी दोनों ऊँची भुजाओं में बौद्ध और (वाम कर मे) विजय देनेवाला धनुष धारण किया ।

(रामचन्द्र) अपने अनुज के साथ मभी प्रकार से (आयुरो मे) मन्त्रद्ध हो विश्वामित्र की छाया के समान उनका अनुसरण करते हुए, अयोध्या का ऊँचा स्वर्णमय प्राचीर पारकर यों चले, मानों पिता दशरथ के प्राण शरीर छोड़कर जा रहे हों ।

(वे तीनो) अयोध्या नगरी को, जिसकी समानता करने में देवताओं की अमरावती भी असमर्थ थी, पारकर सरयू नदी पर पहुँचे, जिसमें हमों का कल्पोल नृत्यशाला में नर्तकियों के मजीरों की ध्वनि-सा प्रतीत होता था ।

(वे लोग) एक उपवन में ठहर गये, जिसके चारों तरफ के खेतों में ईख के डठलों के परस्पर संघर्ष से निकला हुआ मधुरस खेत की मेडों को पारकर वह रहा था और जहाँ क भ्रमर कुड्मल-समान स्तनोवाली रमणियों के केशपाश-जैसे दीखते थे ।

जब सात सुनहले धोडों के रथ पर सवार होनेवाला सूर्य, अपने शिखरों पर ठहरे हुए मेघों के कारण, सुखपट्टधारी गज के जैसे शोभायमान दीखनेवाले उदयाचल की दृढ़ चोटी पर पहुँचा, तब वे (तीनो) सरयू के पार पहुँच गये ।

श्रीराम ने एक वन को देखा, जहाँ ऐसे यज्ञ होते थे, जिनमें देवता स्वयं आकर अपनी इच्छा से आहुति ग्रहण करते थे, जहाँ का सारा वन धुएँ से भगा हुआ था, चरम तत्त्वों के जाता भगवान् श्रीरामचन्द्र ने दिव्य और महातपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा कि यह कौन-सा वन है ? (१-२४)



अध्याय ७

ताडका-वध पटल

(विश्वामित्र ने कहा—) यह वही स्थान है, जहाँ मन्मथ ने चंद्रशेखर शिव पर पुण्य-वाण चलाये थे और शिव के ललाट-नेत्र की क्रोधाग्नि ने उसे जलाकर भस्म कर दिया था । उसी समय से वह (मन्मथ) अपने कुसुम-समान त्रग के दग्ध हो जाने में अनग बन गया ।

हे देवों के अधिष्ठाता ! जब हस्तिचर्म धारण करनेवाले (शिवजी) ने उन मन्मथ को जलाकर भस्म कर दिया, तब उसका शरीर राख बनकर इस स्थान में विश्वर गया । इसी-लिए इस प्रान्त को अनग देश कहते हैं और इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'कामाश्रम' पड़ गया है ।

आसक्ति, इच्छा आदि का समूल नाश करके आत्मज्ञान के इन्हूँव (भक्त लोग) जन्म-मरण के चक्कर में मुक्ति पाने के लिए जिस (शिव) का ध्यान करते हैं, उन्हीं (शिवजी) ने स्वयं इस स्थान पर रहकर तपस्या की थी फिर इस स्थान की पवित्रता का क्या बना ?

विश्वामित्र की बात सुनकर राम और लक्ष्मण आश्चर्य में पड़ गये ; फिर तीनों उम स्थान में पहुँचे , वहाँ पहुँचकर उन्होंने, उनके स्वागत के लिए आये हुए सन्मार्गधन मुनियों की मत्सगति में पूरा दिन व्यतीत किया और (दूसरे दिन) जब विस्तृत किरणों से प्रकाशमान सूर्य उदयाचल के शिखर पर चढ़ने लगा, तब (वे वहाँ से प्रस्थान करके) एक मरुस्थल में पहुँचे, जो (धूप में) तप रहा था ।

उम मरुस्थल में ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य कोई ऋतु नहीं होती थी; वहाँ सूर्यदेव भूमि का समस्त सार पीने के लिए विजय-ध्वजा फहराते हुए संचरण करते थे , गरमी के ताप के कारण वह स्थान ऐसा हो गया था कि यहि अग्निदेव भी उसका स्मरण करें, तो उनका मन भी कुम्हला उठे और उसकी ओर देखें, तो उनके नेत्र भी झुलस जायें ।

यहि कोई उम मरुभूमि की उण्ठता का वर्णन करना चाहे, तो वर्णन करनेवाले की जिह्वा झुज्जम जाय , वहाँ पहुँचकर (मारी सृष्टि को) आवृत कर फैलनेवाला अंधकार तथा अतरिक्ष-रूपी आवरण भी झुलम जाये , वहाँ उदय होने पर सूर्य भी झुलस जाय , मेघ झुज्जम जाये , विजली और वज्र भी झुलम जाये , ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो वहाँ पहुँचकर झुलम न जाय ।

वहि वालुकामय प्रदेश उन योद्धाओं के हृदय के समान ही सर्वदा तपता रहता था और कभी टड़ा नहीं होता था, जो लड़ने की शक्ति खोकर, वाणों एवं भालों की वर्षा को महते हुए युद्ध-क्षेत्र में पड़े हों और जो वचक शत्रुओं के कुकूत्वों के कारण अपना मान-रूपी श्रेष्ठ रूप खो वैठे हों ।

उम वीहड़ प्रदेश में कहीं सूखे हुए सेंधुड, अगरु आदि के वृक्ष खड़े थे, जिनके तना को चीरकर भूत के जैना काला अगम निकल रहा था , कहीं पत्तों से रहित वाँस के फट जाने से श्वेत मोती विखर रहे थे , कहीं विपैखे नागों के मुख से गिरे माणिक्य विकीर्ण हो रहे थे ।

भृ-माता उम स्थान से हट नहीं सकती थी , क्योंकि वह अचला हैं , (उस स्थान की अधिष्ठात्री देवी) कालिका भी वहाँ से हट नहीं सकती थी , क्योंकि उन्हें अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए , उम स्थान के ऊपर सूर्य का रथ भी दौड़ नहीं पाता था , वहाँ के आकाश में वेत्र भी नहीं जा सकते थे, न वहाँ वायु का सचरण हो सकता था ।

वहाँ (वर्षकों के) नेत्रों को झुलसानेवाली विपास्नि उगलनेवाला आदिशेष, आकाश को चीरनेवाली विजली के समान चमकदार माणिक्य विखेरता था । जब धरती की छाती को विदीर्ण करनेवाली सूर्य की प्रचण्ड किरणें उन माणिक्यों पर पड़ती थीं, तब ऐसा लगता था मानो भू-देवी के शरीर में खुले हुए धावों से रक्त निकल रहा हो ।

व्याकुल करनेवाली ज्ञुवा में वैचैन होकर बड़ा अजगर जीव-जतुओं को निगलने के लिए अपना मँह खोलकर वहाँ पड़ा रहता था , गर्जन करनेवाला बलवान् हाथी गगन पर जलनेवाले उर्य की उण किरणों में रक्षा पाने के लिए छाया की खोज में इधर-उधर भागता था और सामने अजगर के खुले सुख को देखकर उसके भीतर शीघ्रता से प्रवेश कर जाता था ।

उम वालुका-भूमि में जहाँ अग्निदेव अपनी अद्वलनीय उण्ठता के साथ शासन

करते थे, कौए और हाथी भी भुलसकर काले हो जाते थे और यन्त्र-तन्त्र पड़े रहते थे, जिन्हें देखने से ऐसा लगता था, मानो उस मरुभूमि से उठकर सारे गगन में छा जानेवाली उष्णता के कारण मेघ-समूह जल-भुनकर जहाँ-तहाँ गिरे पड़े हों।

उस स्थान में जो मृग-मरीचिका संचरण करती थी, उसे देखने से भ्रम होता था कि वरुणदेव ही यह सोचकर वहाँ आ पहुँचे हो कि (उस मरुभूमि की) उष्णता कहीं बढ़कर गगन को भी न छू ले और कहीं देवलोक भी न जल जाय । (अर्थात्) देवताओं पर अनुग्रह करके ही वे वहाँ आ पहुँचे थे ।

उस सतत भूमि पर जो ग्रीष्म-रूपी राजा राज्य करता था, उसके बेठने के लिए बनाये गये सुनहरे पैरवाले स्फटिक-सिंहासन के समान ही, वह मृग-मरीचिका ऊपर उठी हुई दिखाई देती थी ।

वह धरती इस प्रकार शुष्क थी, जिस प्रकार उन आत्मजानियों का हृदय (शुष्क) होता है, जो (पुण्य और पाप-रूपी) दुख-दायक विविध कर्मों को मिटाकर तथा दुर्निवार्य काम, क्रोध और मोह-रूपी वाधाजनक तीनों मोर्चों को पार कर, भक्ति-मार्ग पर चलते ह अथवा उन नारियों के मन के समान (शुष्क) था, जो सुवर्ण के लिए अपना शरीर बेच देती हैं ।

तपानेवाली गरमी में भुलसे हुए छोटे-छोटे ककड वहाँ विखरे पड़े थे, (गरमी के कारण) धरती में जो दरारें पड़ गई थी, वे पाताल-लोक तक चली गई थी, इस प्रकार लंबी राह मिल जाने के कारण जगत् की तपानेवाली सूर्य-किरणें श्रेष्ठ माणिक्य से विभूषित सर्पराज के लोक में भी अनायास ही पहुँच जाती थी ।

जब इस प्रकार जलनेवाली बालुकामय उस भूमि में तीनों पहुँचे, तब विश्वामित्र ने सोचा कि यद्यपि राम और लक्ष्मण अपार शक्ति-सपन्न हैं, तथापि वे पुण्य से भी अधिक कोमल हैं, अतः (इस मरुभूमि में चलने में) उन्हें किंचित् कष्ट हो सकता है ।

(यह सोचकर) विश्वामित्र ने उनके मुखों की ओर दृष्टि डाली । इगित को सहज ही जलनेवाले वे कुमार भी अपनी और देखनेवाले विश्वामित्र के चरणों के निकट जा पहुँचे । तब विश्वामित्र ने उन्हें ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत दो विद्याएँ (बला तथा अतिवला) सिखाई । दोनों ने उन मंत्रों का जप किया ।

जब वे उन मंत्रों का जप करते हुए चलन लगे, तब प्रलयाग्नि को भी पराजित करनेवाली भीषण अग्नि से उत्तस उस प्रदेश में यात्रा करना उसी प्रकार सखल हो गया, जैसे स्वच्छ तथा शीतल जल में चलना होता है । उस समय भक्तों की इच्छा पूरी करनेवाले (श्रीराम) ने विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा—

हे जानशिरोमणे । क्या यह प्रदेश, भैंकरों से भरी हुई गगा को पुण्यमाला के रूप में अपनी जटा में धारण करनेवाले (शिव) की ललाट-दृष्टि पटने से इस प्रकार जल गया है, अथवा कोई और कारण है ? क्या कारण है कि यह प्रदेश किसी निन्दनीय अत्याचारी नरेश के राज्य से भी अधिक उजड़ा हुआ पड़ा है ?

(राम के) यह प्रश्न पूछने पर विश्वामित्र ने उत्तर किया — एवं एन्हीं नहीं जा-

वृत्तान्त हुम्ह सुनाता है, जो अच्छे-अच्छे प्राणियों को मारकर खा जाती है, जिसका रूप यमराज के जैसा भयकर है और जिसमें हजार मटमत्त हाथियों का बल है।

वृक्षों के कुल में सुकेतु नामक निर्मल स्त्रभाववाला एक व्यक्ति उत्पन्न हुआ था, जो अपने बल से भारे समार को चकित कर देता था, जिसका क्रोध अग्नि के समान जलानेवाला था, जो मांह में रहित था और जो हाथी जैसा बलवान् होने पर भी बड़ा कृपालु था।

सुकेतु के कोई सतान नहीं थी, इसलिए वह बहुत चिन्तित रहता था। उसने (मतान-प्राप्ति के लिए) एक लवी अवधि तक कमल-पुष्प पर आसीन ब्रह्मदेव के निमित्त कड़ी तपस्या की।

हे सद्गम ज्ञानद्युक्त (गमचन्द्र) ! (सुकेतु के तपस्या करते समय) वेदों के आश्रय ब्रह्मदेव उसके समुख प्रकट हुए और पूछा कि तुम्हारा अभीष्ट क्या है ? सुकेतु ने प्रार्थना की कि मेरे कोई पुत्र नहीं इसलिए मैं दुखी हूँ। पुत्र-प्राप्ति का वर दीजिए। ब्रह्मा ने उत्तर दिया—तुम्हारे कोई पुत्र नहीं होगा, एक पुत्री ही होगी।

तुम्हारे एक ऐसी पुत्री होगी, जो कमल-पुष्प पर निवास करनेवाली सरस्वती के मटश नित्य-योवना मधूर-जैसी सुन्दर, लक्ष्मी की समता करनेवाली तथा एक हजार मत्त हाथियों के बल से युक्त होगी। तुम चिन्ता छोड़कर अपने घर जाओ।

ब्रह्मदेव के वरदान के अनुमार उसके एक पुत्री हुई। जब वह पुत्री कमल-पुष्प-वानिनी सुन्दर लक्ष्मी के सदृश युवती हुई, तब सुकेतु ने सोचा कि इसके अनुकूल पति कौन हो सकता है ? अत मे अपनी ही जाति के अधिपति सुठ नामक यक्ष से उसका विवाह कर दिया।

सुठ और उमकी पत्नी ताड़का, रात-दिन आनन्द सागर में झूँवे रहते। उनके सुख की कोह सीमा नहीं गही।

बहुत दिन बीतने पर, लक्ष्मी-समान उम ताड़का के गर्भ से पर्वत-सदृश भुजायोवाला मार्गीच एव मल्ल-युद्ध में निपुण सुवाहु उत्पन्न हुए, जिनके जन्म से सारा समार भव ने कॉप गया।

ये दोनों कुमार माया म, वचना में और अपार बल में इस प्रकार उत्तराति करते गये कि उन्होंने अपनी माँ से भी बढ़कर इन कलायों का अभ्यास कर लिया और उससे भी आगे बढ़ गये। उनका पिता सुठ, जिसका क्रोध जलानेवाला होता था, आनन्द की अधिकता के कारण—

दुर्गुणों ने भरं असुरों का अत्याचार मिटानेवाले तथा विन्नुवध सागर को एक ही कुल्तू में भरकर पी जानेवाले महातपस्त्री (बगस्त्र) के आश्रम में पहुँचकर ऊँचे वृक्षों को जड़ में उखाड़कर फँकने लगा।

अधिक स्वृहणीय तपस्या करनेवाले सुनि जिस आश्रम में रहते थे, वहाँ के दृष्णमार रुद्र ऋष्य आदि (जातियों के) हिरण्यों को मारकर खा लिया और ऊँचे 'सुरपुत्रा' आदि वृक्षों को तोड़ दिया। इसपर महातपस्त्री (बगस्त्र) ने क्रोध से अपनी अग्निमय दृष्टि फेरकर देखा तां वह जलकर भन्न हो गया।

स्वर्ण-ककण धारण करनेवाली उम ताड़का ने जब सुन्द की मृत्यु का समाचार सुना, तब वह भयकर अभिं के समान क्रोध से भर गई और यह कहते हुए कि उस मुनि का समूल नाश कर दूँगी, अपने दोनों पुत्रों के साथ अगस्त्य के आश्रम में जा पहुँची।

वे तीनों बड़ा भीषण गर्जन करते हुए और चिल्ला-चिल्लाकर अगस्त्य मुनि को पुकारते हुए (आश्रम में) जा पहुँचे। (उन्हे देखकर) वज्र, प्रलयाभि और युगान्तकाल के पवन भी भयत्रस्त हो उठे, देवता (भय के कारण) कान्तिहीन हो गये; सूर्य तथा चन्द्र भीत हो गये; विद्युत्-युक्त मेघ भी थरथराने लगे और व्रह्मा०८ दूटने-सा लगा।

तमिल-भाषा-रूपी अपरिमेय सुमुद्र को लानेवाले^१ उस मुनि (अगस्त्य) ने अपने नेत्रों से क्रोधाभिं वरसाते हुए हुकार भरा और वज्र से भी कठोर ध्वनि में उन्हे शाप दिया कि विनाश का कार्य करने के कारण हम लोग तुरन्त राक्षस बनकर पर्तित हो जाओ।

तुरन्त (वे तीनों) ऐसे राक्षस बन गये, जिनके नेत्रों से पिघले हुए ताँबे के समान क्रोधाभिं निकल रही थी, जो इस ससार तथा देवलोक के निवासियों को मारकर खातं हुए तथा उन्हे भयभीत करते हुए ससार में विचरने लगे।

उस समय उस मुनि के क्रोध तथा उनके दिये हुए अभिशाप का प्रतिकार करने में असमर्थ होने के कारण वे वहाँ से हट गये और सुमाली^२ नामक राक्षसराज के पास आ पहुँचे, सुवाहु और मारीच ने सुमाली से निवेदन किया कि हम आपके पुत्र के समान आपकी सेवा में रहेंगे।

उस पातकी ताड़का के पुत्र, एक लंबी अवधि तक छिपे रहे। जब रावण ने उत्पन्न होकर तपस्या के द्वारा महान् बल प्राप्त किया और उन दोनों को मामा कहकर सर्वोधित किया। तब, वे बाहर निकल आये और सभी लोकों का विघ्न स करते हुए प्रलय-काल के प्रभजन के समान विचरने लगे।

१. दक्षिण में यह कथा प्रसिद्ध कि है स्टूल-भाषा कीभिवृद्धि करने के लिए कार्णी म श्रपियों का एक सघ स्थापित हुआ था। अगस्त्य भी उस सघ के सदस्य थे। एक बार अन्य श्रपियों के साथ अगस्त्य का विकट मतभेद हो गया। इस पर अगस्त्य उस मंघ से पृथक् हो गये और उन श्रपियों का गर्व चूर्ण करने का निश्चय किया। उन्होंने शिवजी के निकट पहुँचकर अपना अभीष्ट सुनित किया। उसी समय, जिस मठप में अगस्त्य शिवजी के साथ वार्तालाप कर रहे थे, वहाँ एक दिश्य सुगन्ध फैल गई। अगस्त्य ने जब उसके सवन में शिवजी से पूछा, तो शिवजी उन्हे उस मठप के एक कोने में ले गये, जहाँ तालपत्रों का एक द्वर लगा हुआ था। उस द्वर को ढाढ़ने ही अगस्त्य के मुँह से 'तमिल' शब्द निकल पड़ा, जिसका अर्थ होता है मधुर। उन तालपत्रों पर जो भाषा लिखी हुई थी, उसका नाम उसी समय से तमिल हो गया। अगस्त्य ने शिवजी से तमिल-भाषा का उपदेश प्राप्त किया और दक्षिण दिशा में चले आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने 'पोदियमले' को पहाड़ी पर अपना आश्रम स्थापित किया और तमिल-भाषा के दो व्याकरण लिखे। २ पेरअगत्तियम (बड़ा अगस्तीयम) क्षौर २. शिशुअगत्तियम (लघु अगस्तीयम)। फिर, उन्होंने अपने बाहर शिष्यों को उस व्याकरण का उपदेश दिया। इस प्रकार, उन्होंने तमिल की अभिवृद्धि की। उपर्युक्त पथ में इनी कथा जो आगे मंकेत है। —अनु०

२. सुमाली रावण की माता केवर्णा का पिता था, जो पाताल में रहता था।

इमके पश्चान् ताड़का अपने अति प्रचड़ पुत्रों में अलग होकर, इस वन में आकर रहने लगी तपस्वी अगस्त्य के क्षोध का न्मरण करके उसका मन अग्नि के नमान धधकता रहता है और इस वन के प्रान्तों में अग्नि की ज्वालाएँ फैली रहती हैं।

चाहे भारी वरती को उखाड़ फेंकना हो, चाहे सभी समुद्रों के जल को पी लेना हो, या गगन को ढाह देना हो—यह ताड़का सबमें समर्थ है, वह जो चाहे कर सकती है, उसके लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं, वह ऐसी लगती है, मानो सख्या और परिमाणहीन पाप ही इस त्वी का त्यप धारण करके आ गये हों।

यदि कोई चलने-फिरनेवाला ऐसा नसुङ्ग हो, जिसके पास दो बड़े पर्वत हो, जिसमें विष निकल रहा हो जिसमें वज्रध्वनि से भी अधिक भीषण गर्जन हो, जिसके पास प्रजय-काल की अग्नि एवं दो अर्ध-चन्द्र^१ हो, तो उस त्वी के भीषण शरीर से उसकी उपमा हो सकती है।

जिन सुन्दर भुजाओं को देखकर पुक्ष भी त्वीत्व की कामना करते हैं, (जिससे कि उन भुजाओं का वालिगन प्राप्त कर सकें) ऐसी भुजा-विशिष्ट (हे राम)। काले नाग को कक्षण के त्यप में पहननेवाली, हाथ में शूलायुध धारण करनेवाली और अरण्य में निवास करनेवाली उस कठोर त्वी का नाम है—ताड़का।

लोभ नामक एकमात्र दुर्गुण यदि किसी के मन में जमकर वैठ जाय, तो वह असख्य मद्गुणों को मिटा देता है, उसी प्रकार अकथनीय अत्याचार करनेवाली उस राज्ञीसी ने इस विशाल भू-प्रदेश का विघ्नम कर डाला है, जहाँ पहले शस्य और वृक्षों की विस्तृत सपत्ति भरी पड़ी थी।

हे पुष्य-मालाओं से सुशोभित मेघ-सदृश (राम)। यह ताड़का लकेश्वर (रावण) की आज्ञा के अधीन रहती है, उसके दोनों पुत्र पर्वत के समान बलशाली होने के कारण मेरे लिए बड़ी वाधा वन गये हैं और मेरा यज्ञ अपवित्र कर देते हैं। यह (ताड़का) सभी प्राणियों को उनके हुल-समेत मिटाती हुई अगदेश-भर में विचरण करती रहती है।

विश्वामित्र ने कहा—हे पुरातन लोकों की रक्षा करते हुए सन्मार्ग पर चलनेवाले, सभी जन को अपने प्राण-समान समझनेवाले, सत्यकृतिवान् चक्रवर्ती (दशरथ) के पुत्र। अब उसके विषय में अधिक क्या कहूँ? वह कुछ ही दिनों में यहाँ के सभी प्राणियों को अपने उद्धर में समा लेगी।

विश्वामित्र की वात सुनकर पाचजन्य (शख) धारण करनेवाले, (वास) हस्त में वन्य धारण किये हुए (श्रीरामचन्द्र) ने सुग्रीषित पुण्यों से शोभायमान अपने मिर को हिलाकर पूछा—इस प्रकार का अत्याचार करनेवाली वह (राज्ञीसी) कहाँ रहती है?

पचेन्द्रियों द्वारा अपने वश में रखनेवाले (विश्वामित्र) ने पर्वत, हाथी तथा ऋषम-नदृश (गमचन्द्र) के वचन सुने और उत्तर दिया कि हे तात! यहाँ से निकट ही वह रहती है। उनके इतना कहने के पूर्व ही वह (ताड़का) स्वयं वहाँ आ उपस्थित हुई, मानो अग्नि-ज्वालाओं से भरा हुआ कोई अग्निमय पर्वत ही आ उपस्थित हुआ हो।

^१ दो अर्ध-चन्द्र ताड़का के सुन्दर से बाहर निकले हुए दो टेंडे दाँतों के उपमान हैं।

जब वह (ताड़का) चली आ रही थी, तब उसके नृपुर-अलकृत पैरों के नीचे द्व-कर पर्वत धरती के भीतर धॅस रहे थे, जिससे धरती के तल में अस्त-व्यस्तता दत्त्यन्न हो रही थी और पहाड़ों के धॅस जाने से वने गड्ढों में समुद्र का जल भर रहा था। अस्ति के समान तथा निर्भीक यमराज भी उससे डरकर बिल के अन्दर जा छिपा था और अचल कहे जाने-वाले पर्वत भी (उसकी गति के बेग से उखड़-उखड़कर) उसके पीछे-पीछे उड़ते हुए आ रहे थे।

वेदों की विरोधिनी उस ताड़का की भौहों के कोने कुछ कपित हो रहे थे, उसका गुहा-सदृश मुँह वद था, उसके मुँह के दोनों छोरों पर दो लवे दाँत, दो अर्धचंद्रों के समान, बाहर निकले हुए दिखाई दे रहे थे।

उसने मदजल वहानेवाले वडे-वडे हाथियों को लेकर तथा उनकी सूँड़ों को एक दूसरे से बौधकर उनका हार बनाकर अपने गले में पहन रखा था, अतः (चलते समय) उसकी कमर लचक रही थी। जब उसने भयकर गर्जन किया, तब देवलोक, दसो दिशाएँ, मातो लोक—मभी भयभीत होकर थरथराने लगे, (उसका) गर्जन सुनकर स्वय वज्र-ध्वनि भी डर गई।

गरजनेवाले मेघों के सदृश वह ताड़का उन तीनों (राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र) को देखकर अद्वाहाम कर उठी, फिर अपने तीन पैनी नोकोवाले, यम के समान भयकर विश्वल पर दृष्टि रखती हुई और दाँतों को पीसती हुई, खुली हुई गुफा के समान अपना मुँह खोलकर कहने लगी—

मुझ दुर्दम वलशालिनी के शासन में रहनेवाले इस बन के मभी प्राणियों को मैने खा डाला है, अब मेरे लिए स्वादिष्ठ भोजन दुर्लभ हो गया है। क्या इसी कारण से विधि से प्रेरित होकर गरने के लिए तुम लोग यहाँ आये हो, बताओ।

(यह कहते हुए) जब उसने अपनी आँखें खोलकर देखा, तब मेघ चूर-चूर होकर नीचे गिर पडे, जब उसने क्रोध से भरकर अपना पैर पटका तब गगनस्पर्शी पर्वत भी टूट-फूट गये, चढ़मा के सुट्ट नुकीले छोरों के सदृश वडे दाँतों को पीसती हुई वह क्रोध में यह कहकर दौड़ी कि इस भाले में इनकी छाती फाड़ हूँगी।

महात्मा (विश्वामित्र) चाहते थे कि उस ताड़का का वध किया जाव, तथापि मदगुण-सपन्न (राम) ने उसको मारने के लिए अपने तीखे शिरों का प्रयोग नहीं किया (क्योंकि) यद्यपि वह उसके प्राण हरने के लिए उदात थी त-पापि उस महाभाग ने अपने मन में सोचा कि यह स्त्री है।

घने, मटमैले केशों और श्वेत दाँतोवाली (ताड़का) शूल फक्कर मारने ने लिए उदात थी, फिर भी मालाओं में विभूषित (राम) उसका वध करने की इच्छा न बरने हुए त्रुपचाप खड़े रहे। उनके मनोभाव को समझकर चतुर्वंदन कौशिक ने कहा-

हे रत्नविभूषित (श्रीराम)। जितने पापमृत्यु हो सकत है, वे स्वय यह बन चुकी है, इसने हम तपस्त्वयों को इनलिए विना खाये छोट दिया है कि हमारे शरीर नाम-रहित फीके और डठल-मात्र हैं। क्या इन अत्याचारिणी को भी स्त्री नममना उचित है?

लजाशील न्त्री का वध करना उपहास का कारण हो सकता है, (परन्तु) इस (ताड़का) का नाम लेने मात्र में पोद्धयुक्त वज्रगानों का साग सुजवल नहीं हो जाता है। फिर पौन्त्र नाम्ब गुण (इस ताड़का के अतिरिक्त) अन्त्र कहाँ स्थित है ?

इद्व इसने हार गया असुर तथा स्वर्गवासी देवता इसमें अपनी सेना के पराजित होने पर हारकर भाग गये, यदि इसकी भुजाएँ मरण पर्वत की तुलना करती हैं, तो पोद्धय ने पुन्ह पौन्त्र और इसमें क्या अतर है ?

गजाधिराज के प्रिय पुत्र (राम)। और एक वृत्तान्त तुमको सुनाना वाकी है, उम्मी भी सुन लो। प्राचीन काल में कभी ऐसा हुआ इस प्रकार अनन्त तपस्यायुक्त विश्वामित्र अहने लगे—

मृगु नामक तपस्वी की मीन जैमे सुन्दर नयनोवाली पत्नी ख्याति ने, वलवान् अमुरों पर द्वा करके उन्हे छिपा रखा था और (उन्हे मारने के लिए दौड़कर उनके पीछे आनेवाले) चक्रपाणि विष्णु से उन्हे बचाया था, तब विष्णु ने उस नारी का वध किया था।

देवाधिराज इद्व ने अपने बत्रायुध से कुमति नामक न्त्री का वध किया था, जो देवलोक तथा भू-लोक के सभी निवासियों को अपना आहार बनाती थी।

न्त्री-हत्या के उस कार्य से विष्णु तथा इन्द्र को इतनी कीर्ति प्राप्त हुई जिसका वर्णन हम नहीं कर सकते। उन्हें क्या किमी तरह का अपवाद मिला था ? है पुष्यों की धनी माला पहने हुए (राम) ! तुम्हीं बताओ।

अपने अत्यत वलशाली शासन-चक्र से समस्त पृथ्वी पर राज्य करनेवाले सूर्यवश में उल्लंघन गरिमामय (रामचंद्र)। जिसने महात्माओं ने विरोध किया, जिनने इस धरती के सहित प्राणियों का वध किया और दृष्टापूर्वक धर्म का विनाश किया, क्या उस ताड़का के लिए पौन्त्र (पुरुषत्व) गुण भी आवश्यक है ? (अर्थात् इसमें बढ़कर पुन्ह पौन्त्र कौन हो सकता है ?)

हे यम के समान भग्यकर ग्रालधारी (राम)। यम तो यह विचार करके ही कि प्राणियों का विविध-विहित जीवन-काल समाप्त हुआ या नहीं, उनके पुण्य कर्मों का भी ख्याल बनके, उन्हें अमरलोक में ले जाता है परन्तु यह ताड़का तो प्राणियों की गध पाने ही उन्हें खा डालने की इच्छा रखती है भला क्या इसमें बढ़कर भी कोई दूसरा यम हो सकता है ?

हे प्रभो ! अनेक जीवित प्राणियों को एक साथ अपने मुँह में डालकर चवा जाने में बढ़कर अबम तथा कठोर कृत्य और क्या हो सकता है ? इस ताड़का को जूँड़ा वॉधने-गोपन उंगीवाली तथा भोली-भाली न्त्री मानके ने हमारी निर्वलता ही प्रकट होगी।

गाश्वत वर्म का विचार करके ही मैंने तुम से (यह सब) कहा है, ऐसा मत नमको कि इन ताड़का के साथ द्वैप-भाव रखने के कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ। तुम जो इस पर क्रोधगति हो रहे हो वह वर्म नहीं है। इस गच्छनी का सहार करो। —इस प्रकार मृनि ने (राम ने) कहा।

उन्होंने विश्वामित्र के ये वचन सुनकर कहा—हे सत्यस्वरूप ! यदि धर्म-विरुद्ध

कार्य भी करना आवश्यक हो जाय और आप उमे करने का अंदेश दे, तो आपका वचन वेद-वाक्य मानकर करना ही मेरे लिए परम धर्म है।

स्त्री-रूप में भी अग्नि के समान भयकर उस ताड़का ने, गगा (मग्नि १) के मधुर प्रवाह से शोभित कोशल देश के राजकुमार (रामचंद्र) का मनोभाव जान लिया और (अपने) कठोर नयनों में क्रोधाग्नि प्रज्वलित करते हुए अपने रक्तवर्ण हाथ के शत्राग्नि-रूपी तीच्छाग्नि को (रामचंद्र के ऊपर) फेंका ।

नवीन यम-स्वरूपिणी उस ताड़का ने जाज्वल्यमान तीन फलोवाले त्रिशूल-रूपी प्रलयंकर अग्नि को फेंका, वह त्रिशूल (रामचंद्र की ओर) इस प्रकार बढ़ा, मानो पूर्णचंद्र को ग्रसने के लिए राहु आ रहा हो ।

उस क्षण विष्णु के अवतारभूत (राम) ने किस तरह तीर उठाकर उसका प्रयोग किया और कब अपने धनुष को झुकाया, वह किसी ने नहीं देखा । मवने इतना ही देखा कि ताड़का ने यम के हाथों में छीनकर जिस शूल को गम पर फेंका था, वह शूल दो टृकड़े होकर नीचे पड़ा है ।

(इसके पश्चात्) अवकार तथा मेघों की समता करनेवाली, काले रगवाली उस ताड़का ने बड़े-बड़े पत्थरों को अपने हाथों से उठा-उठाकर इतना वरमाया कि समुद्र भी उन पत्थरों से पट जाय । पर, वीर (राम) ने पत्थरों की उम वर्षा को अपने धनुष में की गई शर-वर्षा से एकदम गोक दिया ।

नीलवर्ण (श्रीराम) ने सुनि के शाप के समान अत्यन्त तीक्ष्ण तथा जलानेवाले एक शर को उम अधकार-रूपिणी ताड़का के ऊपर ज्यो ही प्रयोग किया, त्यो ही वह तीर ताड़का के वज्र-पर्वत के समान कठोर छाती में बुसकर उसी प्रकार दूसरी ओर निकल गया, जिस प्रकार मजनों का उपदेश मूर्ख-जनों के हृदय को पार कर निकल जाता है ।

अत्यन्त उत्तम स्वर्णमय मेरु पर्वत के समान गभीर (रामचंद्र) के तीक्ष्ण अनी वाले वाणों का प्रलयकारी प्रभजन ज्यो ही उठा, त्यो ही ताड़का इस प्रकार (मृत हो) गिर पड़ी जिस प्रकार गगन में गरजते हुए तथा पत्थरों की वर्षा करते हुए प्रलयकालिक मेघ प्रभजन में आहत हो, अपनी विजली के साथ पृथ्वी पर आ गिरा हो ।

जब गुफा-जैमा अपना मुँह खोलकर ताड़का, जिसके बड़े-बड़े डाँतों न कड़ प्राणियों के माम लगे हुए थे नीचे गिरी तब उसके शरीर में जो रक्त प्रवाहित हुआ, उसमें वहाँ की धूल-भरी वीहड मरुभूमि भी भिंचित हो गई, उसका गिरना क्या था । उस भिंगे पर मुकुट धारण करनेवाले (गवण) को उसके सर्वनाश की सचना ही यी मानो उन द्विन उस (गवण) की विजय-पताका ही टृकर धरती पर गिर गई हो ।

ताड़का के कठोर वक्ष स्थल में तीर लगने में जो रक्त-प्रवाह हुआ, उसमें वह मार बन अपना रूप बदलकर नमुद्र बन गया । उन बन में फैली हुई रक्त की बाहू देखने में ऐसा प्रतीत हुआ मानो नध्याकालिक लालिमायुक्त गगन आधाग्नीन हो पुरुषी पर गिर पड़ा हो ।

सुगंधित बमल-पुष्प पर वैठनेवाले द्वारा के समान मृणि (वैश्वाग्नि) की ब्राह्मा-

वा पालन जूँचे गलमय न्वर्णमरण इहनसेवाले काकुल्य (रामचंद्र) ने जो प्रथम शुद्ध किया उसमें यस बीं जो अवतार गक्कनों का रक्त पीने की अभिलापा रखते हुए भी न्वड्गाडि आवुववगरी गक्कनों से भयभीत होकर रहता था गक्कनों के रक्त का थोड़ा सा न्वाद मिला।

जब देवताओं ने सुनि (विश्वामित्र) के निकट आकर कहा कि आज हमने अपना आश्रय-स्थान बापन पा लिया है आपको भी अब कोई वाधा नहीं रही इसलिए अब आप चक्रवर्ती के दुमरों बीं दिव्य ब्रह्म प्रदान करें। फिर, उन्होंने धनुर्धरी काल-मेघ नदी (श्रीगम) पर पुष्टी की वर्षा की और उन्हें व्याडियाँ देकर वहाँ में विदा किया। (१—७६)

४

अध्याय ८

यज्ञ पटल

जब देवताओं की पुष्टवर्षा में वह उष्ण मरुप्रदेश शीतल हो गया, तब दूसरों के लिए दुर्लभ तपन्या से सपने विश्वामित्र ने (गम-लक्ष्मण के साथ) बड़ी सरलता से उसे यार कर लिया फिर उन्होंने उस महानुभाव (गमचंद्र) को ऐसे अन्ध दिये, जो निरुच्छण्यन्तल्लूर के निवासी तथा महान् दानी शडेयापवल्लर बीं भूलोकवामियों के दागिद्वारोंग बीं दूर करनेवाले औपध-स्वरूप वचन के समान अमोघ थे।

मध्यमी ओर चिकालज मुनिवर ने जो-जो अन्ध, उनके मत्रों को बताकर, महानुभाव (राम) को दिये, वे जब बड़ी उमग के नाथ वैसे ही उनके पास आ पहुँचे, जैसे शुद्ध मन में किये गये नत्यों के फल दूसरे जन्म में स्वयं अपने कर्त्ताओं को प्राप्त हो जाते हैं।

(देवान्नों ने श्रीगमचंद्र से निवेदन किया कि) हे वीर ! हम आपके आश्रय में आ पहुँचे हैं, अब आपको छोड़कर अन्यत्र नहीं जायेंगे, आप विधि के द्वनुभार जो भी अंदेश हमें देंगे हम उनका पालन आपके भाई लक्ष्मण के समान करेंगे। उन्होंने भी यह वचन मुनिर अपनी स्त्रीछनि दे दी। तब से वे देवान्न नीलकम्ल-दृश्य (श्रीगम) की सेवा में निरन्त हुए।

इन घटनाओं के पश्चात वे लोग दो कोन आगे चले, वहाँ एक बड़ा शोर सुनार्द पड़ा जो कमश उनके निकट आने लगा। तब उन्होंने सुनि मे पूछा कि ‘हे महात्मन् ! यह छनि कैसी है ?’ तपन्या ने अपने कर्मों को मिटा देवेवाले सुनि (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया—

१ निरवगणन्तर के गटेग्यवल्लर अवि के आश्रदाता थे और समय-समय पर वन देकर उनकी सहायता करते थे। अवि ने स्थान-स्थान पर उनका स्मरण करके उनके प्रति अपनी वृत्तिका प्रकद

‘मानम (मानम-सरोवर) से निकलनेवाली (और इमीलिए) मग्नु’ कहलाने-वाली, देवताओं से भी प्रशंस्यमान नदी यहाँ बहती है, जिसमें गोमती नामक नदी आकर मिलती है, उन दोनों के मिलने से ही यह ध्वनि उत्पन्न होती है।’ उनके (विश्वामित्र के) यह कहने पर तीनों आगे बढ़े और भवगार में पार उतारनेवाली एक परिव्रत नदी के पास पहुँचे।

उस महानुभाव ने विश्वामित्र से पूछा कि हे देवगण से स्तुत्य मुनि ! यह बटी पावन नदी कौन-सी है ? वे बोले—“कमलामन ब्रह्मा ने प्राचीन काल में कुश नामक एक प्रतापी तथा गुणशील राजा को जन्म दिया था। उसके अपनी धर्मपत्नी से चार पुत्र हुए। उनके नाम थे—कुश, कुशनाभ, सद्गुणविशिष्ट आधूर्त और जयशील वसु। इनमें से कुश कौशाकी नगर में, कुशनाभ महोदय नामक नगर में, आधूर्त दोपहीन धर्मवन नामक नगर में और वसु गिरिव्रज नामक नगर में राज करते थे।

उनमें से कुशनाभ के एक सौ लड़कियाँ उत्पन्न हुईं, जो मिष्ठमापी, सुन्दर हीठी-वाली और मठगुणी में विभूषित थीं। वे जब सयानी हुईं, तब एक दिन अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुईं एक उपवन में जा पहुँचीं। उसी समय वायुदेव वहाँ आये और उनके सौन्दर्य पर सुख होकर उन कन्याओं से कहा —

‘हे आम की फँक के समान नुकिले नयनयुक्त कन्याओं ! मैं मकरकेनु (मन्मथ) के सुके हुए धनुप से निकले हुए पुष्प-बाणों में विद्ध हो गया हूँ, (अतः) तुमलोग मुझमें विवाह कर लो।’ तब उन कन्याओं ने उत्तर दिया कि आप जाकर हमारे पिता में यह वात कहे, यदि वे कन्यादान करके हमें आपकी पत्नी बनायेंगे, तो हम आपके सग जा सकती हैं। यह सुनकर वायुदेव बहुत कुद्ध हुए और उनकी पीठों को तोड़कर उन्हें कृवड बना दिया, जिसमें सुन्दर प्रकाशमान कक्षण पहनी हुई वे कन्याएँ धरती पर गिर पड़ीं।

जब वायुदेव चले गये, तब वे कन्याएँ किसी प्रकार घिसटती हुई अपने पिता के पास पहुँचीं और करुणा-भरी वाणी में सारा वृत्तात कह सुनाया, राजा ने उन दीर्घ वेशीवाली अपनी कन्याओं को आश्वासन दिया और महान् तपस्वी चृलि के पुत्र जानी ब्रह्मदन से उनका विवाह कर दिया।

उस ब्रह्मदत्त के कर-कमल का स्पर्श पाने ही उनका कृवड मिट गया और उन्होंने अपना पूर्व सौन्दर्य प्राप्त कर लिया। पूरी पृथ्वी पर शासन करनेवाले कुशनाभ ने अपुत्र होने के कारण सुनियो की महायता से एक यज किया। उस यज्ञुष्ट के मन्त्र भ गाधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसकी तीत्रगामी अश्वगेना (प्रसिद्ध) हुई।

कुशनाभ गाधि को राज्य देकर स्वर्ग मिथारा प्रसिद्ध महोदय नगर में राज्य करनेवाले गाधि के मैं और मुझमें पहले कौशिकी नामक एक कन्या उत्पन्न हुईं। राजाओं के राजा गाधि ने कौशिकी का विवाह भगु महर्षि के पुत्र ऋचीक के साथ कर दिया। जिनकी तपस्या की समानता स्वयं उनके पिता भी नहीं कर सकते थे। वह वेदज्ञ कुछ समय तक धर्म, अर्थ और काम को सम्पन्न कर फिर वही तपस्या करने ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए।

जब कौशिकी वा प्रिय पति उसको छांटकर स्वर्ग चला गया तब वह पर्ति-

विदोग नदी मह मनो । वह भी नदी का रूप वारण कर पति की अनुगामिनी हुई । तपस्त्रियों में प्रवान अृचीक मुनि ने उसे देखकर आशीर्वाद दिया कि तुम इसी भूतल पर रहो जिसमे भूतलवानी तुमसे (तुमसे स्नान करके) अपने दुःख मिटा सकें और ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकें ।

मेरी ही ज्येष्ठ वहन कोशिकी इस महान् नदी के रूप मे भूतल पर रह रही है । विश्वामित्र से यह कथा सुनकर वह उत्तम कुमार (राम) तथा उनके अनुज लद्मण आश्चर्य मे पड़ गये । कुछ दूर आगे जाने पर उन्हे एक उपवन दिखाई दिया, जहाँ मेघ आकर विश्राम करते थे, उनके प्रछन्ने पर कि वह कौन-सा उपवन है । महान् तपस्त्री विश्वामित्र कहने लगे—

वह उपवन उतना ही विशुद्ध है, जितना उन नारियों का सुख होता है, जो अपने पति के अतिरिक्त अन्य किनी देव या तपस्या को नहीं मानती । और सुनो, अरुण-नयनों-वाले श्रीविष्णु, जिनका स्वरूप चार वेदों, देवताओं तथा मुनियों के लिए भी अजेय है, कभी इस स्थान मे रहकर तपस्या करते थे ।

भूलोक तथा देवलोक के निवासी वधनों मे मुक्त होने के लिए जिसका नाम जयते हैं और जिसकी माया के रहस्य को कोई भी नहीं जान पाता, वही प्रसिद्ध अमल मूर्ति (विष्णु) ने इन स्थान पर एक सो कल्प तक धोर तपस्या की थी ।

जिस समय वे इस उपवन मे तप कर रहे थे, उस समय महावलि नामक एक राजा ने स्वर्ग और भूलोक दोनों को अपने अधीन कर लिया । वह महावलि उन महावराह के समान वलवान् था जिसने इस भूतल को अपने एक वक्र दन्त पर अनायास ही उठा लिया था ।

‘संमार मे उमको कोई भी पराजित कर सकेगा’, ऐसी शका से मुक्त होकर, तपस्या मे निरत उन चक्रवर्ती ने ऐसा एक महायज्ञ सपने का निश्चय किया, जो देवताओं के लिए भी अनाध्य हो और जो धृत आदि होम-इन्द्रियों से सपूर्ण हो । उसने निश्चय किया कि वह उन यज्ञ से अपनी भूमि तथा अन्य सभी भूमिति ब्राह्मणों को दे देगा ।

देवों ने जब इस यज्ञ का समाचार सुना, तब इस उपवन मे आये । यहाँ तपस्या मे निरत विष्णु को प्रणाम करके प्रार्थना की कि हे भगवन् । आप उम अत्याचारी महावलि के दुर्कृत्यों को रोकिए । विष्णु ने भी ऐसा करने की समर्पिति दे दी ।

नीलवर्ण तथा सद्गुणों ने विभूषित विष्णु, त्रिकालज्ञ कश्यप और अदिति के पुत्र के रूप मे अवतरित हुए । वे वामन-रूप मे य जैमे एक वडे बटवृक्ष को अपने भीतर छिपाये हुए एक छोटा-सा बीज हो ।

अद्भुत गुणों एव कार्यों से दुक्त (विष्णु), हाथ मे अर्पित लिये हुए एक वामन का रूप धारण करके चले । इसका तत्त्व देवल ब्रानी ही जानते हैं उनकी यह आकृति ब्रह्म के ज्ञान-स्वरूप ही थी ।

नभी लोकों को जीतनेवाले महावलि ने जब यह समाचार सुना कि एक वामन मूर्ति उमके यहाँ आये हैं, तब वह आश्चर्य-चकित हो गया उसने उठकर उनका स्वागत किया और कहा—हे पर्मित । आपसे श्रेष्ठ ब्राह्मण समार मे दूसरा नहीं है, आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया ।

पोरुषपवान् महावलि की वात सुनकर मर्वज वामन ने कहा—तुमने याचकों की इच्छा से भी अधिक दान दिये हैं । (इसलिए) हे दीर्घ करवाले । अब याचक वनकर तुम्हारे समीप जो आये, वही महान् हैं और जो न आये, वह केसे महान् हो सकता हैं ?

यह सुनकर महावलि आनन्दित हुआ और उत्तर में उमने पूछा—कहिए अब आपके लिए मैं क्या करूँ ? महावलि के इतना कहते ही वामन ने कहा—यदि देसको, तो तीन पग भूमि-मात्र सुझे दो । वामन के 'दो' कहने के प्रवृ ही वज्ञ न कहा—'दिया । इतने में शुक्राचार्य ने उसे गोका ।

(शुक्र ने कहा) राजन् । जिस वामन-रूप का हम सामन देख रहे हैं, यह छल-मात्र है । यह मत सोचो कि जल-भरे मेव-महण नीलवणवाला यह वामन साधारण मनुष्य है । यह वह पुरुष है, जिसन कभी सभी अडों को तथा (उसमें रहनेवाले) सभी वस्तु-समूह को निगल लिया था । इस मर्म को समझो ।

(वलि ने कहा) आप यह नहीं देख रहे हैं कि मेरा कर दान दने के लिए उपर उठा हुआ है और मेरे समुख जलसमृद्ध मेघ जैसे विष्णु का कर दान लेने के लिए नीचे फैला हुआ है, जो उनकी महत्ता के अनुकूल नहीं है । अब इसमें वढ़कर मेरा गीर्ग और क्या हो सकता है ?

आदर-योग्य, सन्मार्ग वतानेवाले वर्मशास्त्रों के जाता (दान देने समय) यह नहीं सोचते कि यह (दान माँगनेवाला) अपना है या पराया, वे तो यह कहते हैं कि मेरे इस दान को कोई उत्तम व्यक्ति आगे बढ़कर ग्रहण करे । इस वामन के समान योग्य व्यक्ति और कोन हो सकता है ?

आप वेल्ली^१ कहलाते हैं, इसलिए आपने इस प्रकार कहा । उत्तम नर याचकों के सभी अभीष्टों को पूर्ण करते हैं । यदि कोई उनके प्राण भी माँगे, भले ही किसी याचक के लिए ऐसा दान माँगना अनुचित है, तो वे अपने प्राणों का भी दान कर देते हैं ।

हे पितृ-तुल्य ! समार में प्राण-रहित लोग (वास्तव में) मृत नहीं हैं परन्तु जो प्राणों का त्याग न करते हुए भी दूसरों से याचना करते हैं, वे ही मृत हैं । जो शरीर त्याग कर मृत कहलात हैं, वे मृत होने पर भी यदि दानी हो, तो अमर बन जाते हैं । ऐसे दानियों के सिवा समार में कोन जीवित रहने योग्य हैं ?

वे (वास्तव में) शत्रु नहीं होते, जो उत्तरोत्तर बढ़नेवाली हाँन उत्पन्न कर देते हैं । दानियों के मच्चे शत्रु वे ही होते हैं, जो दान देने समय उनको रोकते हैं । वे दृमगं की ही नहीं, प्रत्युत अपनी भी हानि करते हैं । दाता का दान देने से गोकने के समान पापकृत्य दृमग नहीं है ।

(धर्मशास्त्रों के) वचनों के अनुमार जब सर्पात्त अपन वश में रहती हैं तब दान देना चाहिए और इस लोक में यज तथा उस धर्म का फल—पुण्य भी ग्रात करने का प्रयत्न करना चाहिए । इस प्रकार प्रयत्न करनेवाली के अत्यन्त शत्रु वे लोग ही होते हैं जो यह कहवर उन्हें दान देने से मना करते हैं कि लोभ गुण का त्याग मन करो ।

^१ तमिल में वेल्ली का अर्थ 'शुक्र नया 'बड़ान' दोनों होते हैं ।

हे मद्भूषित शुक्र दान देने न्मय वाधा डालनेवाले निष्टुर ! किसी वाचक को देने के पूर्व 'मत दो' कहकर किसी दाता को गेकना क्या तुम्हें शोभा देता है ? तुम्हारे इस कार्य के न्म्हारे बन्दु भी बन्न और अन्न से वर्चित हों जायेगे ।

इस प्रकार कहकर महावलि ने शुक्राचार्य के सभी वचनों को यह समझकर कि मत्री कठोर हड्डयाला है अन्वीकार कर दिया और (वामन से) वह कहते हुए कि तुम्हीं तीन पग (भूमि) नापकर के लो उम वामन के छोटने हाथ म जल दे दिया ।

मर्गवर वा स्वच्छ जल ज्यो ही वामन के हाथ से गिरा, त्यो ही वह वामन-मूर्ति, जिसना बोनापन उमके माता-पिता की भी घृणा का विषय हो न चला था, इस प्रकार गगन तक ऊजा बढ़ गया कि मामने खड़े रहकर उन देखनेवाले लोग विन्मय और भय मे छूट गये । वह उसी प्रकार बढ़ता चला गया जिन प्रकार उत्तम पात्र को दिये गये दान का फल बढ़ता चला जाता है ।

उम वर्ण का जा पग बरती पर रहा वह नमस्त्र विश्व पर छा गया और धरती के छोटी होते के कारण और आगे नहीं फैल सका । दूसरा पग जो गगन-भर से छाकर स्वर्णलोक को भी पार भर गया था आगे बढ़ते के लिए और स्थान न पाने के कारण नाट पड़ा ।

नमस्त्र सुनल और गगन-मडल को अपने दो पगों के अन्तर्गत कर लेने के कारण तीनरे पग के लिए स्थान ही बाकी न रहा । उम तीसरे पग के लिए भक्त महावलि का सिर ही स्थान बना । हे बनुप-शोभित भूजावाले (गमचन्द्र) ! तुलसी-माला से विभूषित मिरवाले चिष्णु (सचमुच) बहुत छोटे हैं ।^०

बन्नप्रथा ने तीनों लोनों का गज्ज इन्द्र का स्वत्व कहकर उसे दे दिया और स्वयं कीर्त्ति-शामग में जाकर शयन करने लगे । जहाँ उनके सुवनव्यापी चरण लद्धमी देवी के कर-स्पर्श से लाल डिग्वार्ड देते हैं ।

बसवन्थनों को समूल नष्ट करनेवाले (गमचन्द्र) ! इस उपवन में चिष्णु भगवान् ने नपन्धा की यी अत जो भक्ति-शिवा के नाथ इन प्रदेश के दशन करते हैं, वे फिर जन्म नहीं प्रहण करेंगे । ब्रदीक्त चिधि ने यज बन्ने के निर्मित भेरे लिए इस आश्रम से बहुकर अन्त छोड़ उचित स्थान नहीं है ।

इनी स्थान में रहकर मे अपना यज करेंगा यह कहकर विश्वामित्र उम सुन्दर उपवन म पहुँचे और यज के उपकरण एकत्र करके गमणीय व्यप-चिशिष्ट गम तथा लद्धमण और रक्षा के लिए निरुत्त करने अपना यज करने लगे ।

देवताओं को उद्दिष्ट करके विश्वामित्र ने छह दिनों तक ऐसा यज किया, जो दूसरों के लिए दुःख था भूमि की रक्षा करनेवाले वशरथ चक्रवर्ती के दन दोनों कुमारों ने उस यज और रक्षा इस प्रकार की ज्येष्ठ पलके नेत्रों की रक्षा करती है ।

यज और रक्षा करते हुए वृपम-नमान वली उन दोनों कुमारों में ज्येष्ठ ने सर्वज

माव रहे हैं जिभावानु व चमगा भजार के लिए बहुत बड़ा होने पर भी मक्कों के निर के सामने बहुत छोटा बन चका = ।

मुनिवर के निकट जाकर पूछा— ह अवर्णनीय गुण-विभूषित मुने । आपने जिन अत्याचारी गद्दासों के सम्बन्ध में कहा था, वे कव आयेगे ।”

बिश्वामित्र मौन व्रत वारण किये हुए थे, इमलिए कुछ उत्तर नहीं दिया । दुष्ट-निषुण कुमार उन्हे प्रणाम करके यजशाला से बाहर आये और आकाश की ओर दखा । वहों (आकाश में) राक्षस लोग वर्पकाल के काले मेघों के समान गंजन कर रहे थे, जिसे सुनकर वज्र भी डर जाय ।

उन राक्षसों ने बाण चलाये, भाले फेंक, आग और पानी वरसाये, बड़-बड़ पहाड़ उखाड़कर फेंके, निन्दा-वचन कहे, डराया, धमकाया, कुठार, परशु आई आयुधों का प्रयोग किया, एक नहीं, ऐसे अनेक माया-कृत्य किये ।

(राक्षसों द्वारा) क्रोध के साथ फेंके हुए आयुधों से, जिनम (मार गये) प्राणियों के मास लगे हुए थे, प्रलय-काल की वर्षा के समान मार बन-प्रदेश ढक गया । चारों ओर से राक्षस-सेना घिर आई और आकाश पर छा गई । (यह दृश्य ऐसा था) मानो मछलियों से भरे हुए लहराते समुद्र ने ही गगन को ढक लिया हो ।

राक्षस-सेनाएँ, जिनमें बाण एवं चमकनेवाले खड़ग बहुत ही धने दिखाई दे रहे थे, मारू बाजा बजाती हुई मचरण कर रही थी, मानो वे प्रलय-काल में उठी हुई तथा गंजन करनेवाली अनुपम घटा ही हो ।

राक्षसों के मेंह के दोनों ओर वराहदन्त निकले हुए थे, वे क्रोध से ओंठ चवा रहे थे, उनके बाल रक्तवर्ण थे और नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं । इस प्रकार के उन राक्षसों की ओर सकेत करके रामचन्द्र ने लक्षण से कहा—जटाधारी मुनि ने जिन राक्षसों के विषय में कहा था, वे ये ही हैं ।

उन राक्षसों के आतं ही क्रोध से अग्न-ज्वाला विखंगत हुए लक्षण ने आँखों के कोरों से गगन की ओर देखा और फिर अपने धनुप की ओर दखा फिर राम को प्रणाम करके कहा—अभी इसी स्थान पर आप इन राक्षसों को दुकड़े-दुकड़े हाँकर गिरते हुए देखेंगे ।

धूम्रवर्ण एवं शलधारी राक्षस कही होमकुण्ड की अग्नि गं मास ओं रक्त न डाल द, यह सोचकर कमललोचन (राम) ने अपने शरों से उस मुनि-श्रेष्ठ के निवास के ऊपर एक दूसरी छत-सी बना डाली ।

क्षीरसागर के भथत समय उसमें स हलाहल विष निवलकर जव सृष्टि का विनाश करने लगा था, तब देवता लोग जिस प्रकार भयभीत हो चढ़चढ़ (शिव) की शरण में गये थे उसी प्रकार महा तपस्वी मुनि भी वच्कराक्षसों से भयभीत हो रामचन्द्र से बोले—‘ह अजनवर्ण । हम आपकी शरण में हैं, हमें अभय दान दीजिए ।

तब कमललोचन (राम) ने यह कहकर कि आपलोग व्याकुल मत होइए—उन्हे अपनो मुजाही की छाया में ले लिया और अपने धनुप की दिव प्रलवना को अपने कान तक खीचकर मारे भत्तल को (उन राक्षसों के) रक्त का समुद्र बनाना और उनके मिरों के पहाड़ बनाय ।

लक्ष्मी के प्रियतम (श्रीगम) के दिव्य अङ्गों ने भयकर ताड़का से उत्पन्न दोनों वीरों में प्रथम मारीच को समुद्र में फेंक दिया और दूसरे मुवाहु को यमलोक में पहुँचा दिया ।

पुष्पगुच्छों की मालाओं से सुशोभित (रामचन्द्र) ने जो वाण वरसाये, उन वाणों से द्वाण-भर में नाग अतिरिक्त भर गया । (वचे हुए राज्ञ) यह सांचकर कि ये दोनों राघववीर अब लाशी के पर्वत पर चढ़कर हमं (जीवित) पकड़ लेंगे, अहमहसिका से (आपस में चढ़ा-उफगी करते हुए) वहाँ से भाग चले ।

बत्र के समान भयकर गम के वाण भागते हुए गज्जों का पीछा करते हुए चले तब उन गज्जों की शिरोहीन धडे तड़प-तड़पकर नाचने लगी, भृत-पिशाच भी, जो शव-भक्षण करने आये थे मेरे (लंखक के) प्रभु (रामचन्द्र) का यश गाने लगे; मासमक्षी पक्षियों का एक चंदोवा-सा वहाँ तन गया ।

(देवताओं से की गई) पुष्पवर्षा (उन पक्षियों के) चंदोंवे को चीरती हुई नीचे वरन पड़ी गगन में मेघों के समान हु दुभि गरज उठी इन्द्रादि देवता एकत्र हो गये और नुन्दर धनुंयांरी (गमचन्द्र) की जय-जयकार करने लगे ।

पावन तपस्वियों ने आशीष-स्पी पुष्पों की वर्षा की तथा उस कानन के वृद्धों ने भी पुष्पों व्ही वर्षा की । विश्वामित्र ने उसी समय अपना यज्ञ यथाविधि समाप्त किया और मृदित मन में (गमचन्द्र से) ये वारं कही—

सभी भुवनों का भर्जन करनेवाले तथा (प्रलय के समय) उन्हें अपने उदर में रख-कर उनकी रक्षा करनेवाले तुम्ही हो । आज तुमने मेरे इस छोटे-से यज्ञ की रक्षा की । मैं वही मानता हूँ कि यह सब मेरे पुष्पों का फल है नहीं तो इस छोटे-से यज्ञ की रक्षा तुम्हारे लिए कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं है ।

(दूसरे दिन प्रात काल) पुष्पों से भरे उस वन में, अपूर्व तपस्याशील अनेक व्रूपियों के माथ निवास करनेवाले पर्वत-समान सद्गुणों से पूर्ण विश्वामित्र के समुख कौसल्या-पुत्र उपस्थित हुए और प्रणाम करके पूछा—‘आज मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आज्ञा दीर्जाएं ।

हे पुत्र, वर्दि मैं किन्हीं काया को हु माध्य समझकर तुम मे करने के लिए कहता भी हूँ, तो व तुम्हारे लिए हु माध्य नहीं होते । अभी (कुछ) वडे कार्य करने वाकी हैं, जिन्हे वाह में किया जा रक्ता है । अभी हम विशाल और जल-सपन्न खेतों से घिरे हुए मिथिला नगर में जायेंगे और वहाँ जाकर महागज जनक से किये जानेवाले यज्ञ का सदर्शन करेंगे । चलो । विश्वामित्र के यह कहने ही तीनों चल पड़े । (६—५६)



अध्याय ६

अहल्या पटल

व तीनों (महर्षि विश्वामित्र एव राम-लक्ष्मण) शोण (मान २) नदी-त्पी नारी के निकट जा पहुँचे । विविध रक्तों (से सुशोभित) तथा चंदन, अगर आदि सुगंध-द्रव्यों से सुरभित सिकता-राशि ही उम शोण-रमणी के स्तन थे, सुकोमल लताएँ उमकी कटि थी, (भ्रमर-कुल से) गुजरित नव विकसित पुष्प-पत्तियाँ उसकी मेखला बनी थीं, उम स्थान में फैली हुई काली मिट्टी उसके केशपाश थी, निकटस्थ पर्वतों की परिक्रमा करती हुई उसकी जो नहरं वह रही थी, वे उसके नूपुरथे । इस प्रकार, वह नदी-नारी शोभायमान थी ।

ज्यो ही वे तीनी शोण नदी के तट पर पहुँचे, त्यो ही सूर्य भी अस्त हो गया, मानो वह अगले दिन प्रातःकाल उदित होते समय उन तीनों को शीतलता पहुँचाना चाहता हो और अपनी स्वाभाविक उष्णता को शात करने के लिए, अरुण^१ के नयनों से भी तीव्र गति से जानेवाले अपने घोड़ो-सहित, पश्चिम सागर में छूट गया हो ।

(पत्नियों के) कलरव से भरे मरोवरों में सुरभिमय दीर्घ नालवाले बड़ कमल-पुष्प खिले हैं, जो (प्यासे भ्रमरों को तृप्त करने के कारण) धर्म के आलय-स्वरूप हैं । वे कमल सूर्यस्त होते ही अपने दल-कपाटों को बद कर लेते हैं, तो आश्रय की खोज में विलव से आये हुए मस्त भ्रमर अपनी भ्रमरियों के साथ, उन पुष्पों से लौट जाते हैं और शोण नदी के तीरस्थ सुगंधित पुष्प-भरे उद्यानों में विश्राम पाते हैं । वे तीनों रात्रि में विश्राम करने के लिए उसी उद्यान में प्रविष्ट हुए ।

श्रीराधव ने विश्वामित्र से प्रश्न किया—यह कैसा उद्यान है? तपस्वी एव कर्म-वधन से विमुक्त (विश्वामित्र) महर्षि ने उत्तर दिया—पुगतन काल में काश्यप महर्षि की पत्नी दिति ने अपने असुर-पुत्रों के शोक में इसी स्थान में तप किया था ।

[यहाँ से आगे २५० पदों भं इस उद्यान का इतिहास वर्णित है ।]

कालमेघ की समता करनेवाले मेरे (लेखक के) स्वामी (महाविष्णु) इस बड़गांड से परे परमपद स्थान में रहते हैं । एक विद्याधर-स्त्री उस परमधाम में पहुँच गई और पुढ़रीक के कोमल आवास में रहनेवाली लक्ष्मी का स्तवन किया । लक्ष्मी देवी ने प्रसन्न होकर एक पुष्पहार उम विद्याधर-रमणी को दिया, जो पुष्पमधु ने पूर्णित एव भ्रमरों में त्रुक्त थे ।

उस विद्याधर-कन्या ने लक्ष्मी देवी के प्रसाद-भूत उम पुष्पहार को अपनी वीणा में बॉध लिया और ब्रह्मलोक की लौट आई । इसी समय अतिक्रोधी हुर्वासा मुनि उनके गम्मुख आये । उन्होंने उम कन्या को लक्ष्मी देवी की भक्ता जानकर उसके क्षणों वी बढ़ना की ।^२

उम विवाहर-कन्या ने दुर्वासा महर्षि ने कहा—हे महिमामय महर्षे । इसे लों । वह पुष्पहार श्रीमहालद्धमी के सुकुट का भूषण था, जो (लद्धमी) सुष्टि तथा स्थिति के कारण-भूत, मारे विश्व को निगलने और उगलनेवाले, उस विष्णु भगवान् के विशाल वज्र पर आमीन रहती हैं । मैं तुमको प्रेम से इसे देती हूँ । यह कहकर उसने उस हार को दुर्वासा के हाथ में दे दिया ।

दुर्वासा ने नोचा सभी देवों की स्वार्मिनी लद्धमी देवी ने जो हार अपन सुकुट पर बारण किया था, उसे प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला है, न जाने पूर्वजन्म में मैंने कौन-ना बड़ा तप किया था, दुर्वासा अत्यन्त आनन्दित होकर नर्तन करने लगे अपने को कर्म-विमुक्त समझने लगे और अन्त में देवलोक में जा पहुँचे ।

वहाँ इन्द्र अपने समस्त वैभव के साथ ऐरावत हाथी पर सवार होकर स्वर्ग-वीथि में जा रहा था । उस दृश्य को देखकर दुर्वासा विस्मय तथा आनन्द से भर गये । (वह दृश्य कैसा था १) मानों कोई रजत-पर्वत हो, जिस पर जलपूर्ण बाढ़ल छाये हैं, नहन्तो विकसित कमलपुष्प भी फैले हों और जिनपर सूर्य की स्वर्णिम किरणों की आभा पड़ रही हो ऐरावत का वैमा ही भव्य दृश्य था ।

रभा मेनका, तिलोत्तमा, उर्वशी—ये अप्सराएँ इन्द्र के आगे-आगे नृत्य करती हुई जा रही थीं उनकी वाणी इतनी मधुर थी कि इन्द्र-रस भी फीका पड़ गया था, उनके पल्लव-कोमल चरण मन्मथ के पुष्पवाणी से भरे तृणीर जैसे थे उनके नृपुर मधुर नाद करते थे, तथा साथ-साथ सगीत भी हो रहा था ।

इन्द्र के दोनों पाश्वों में चामर हुल रहे थे, वह दृश्य ऐसा था, मानों किसी वडे नीलम के पर्वत के दोनों ओर चट्ठकिरणों का पुज सचरण कर रहा हो, उसके शिर पर भव्य ऊंचे छत्र ऐसा शोभित था, जैसे पूर्णचट्र अपनी ज्योत्स्ना फैलाता हुआ स्थिर खड़ा हो ।

मेरी ताल, शख आदि वाजे ऐसा नाद उत्पन्न कर रहे थे, जिसमें मगल-गीत भी छूट जाने थे । चतुर्वेदों का धोष ममुद्र गर्जन के समान हो रहा था । इन्द्र का वह मनोहर वीथि-विहार (ज्ञलूस)^१ ऐसा आ रहा था, मानो वह नारे विश्व को (आनन्द में) डुवो देगा ।

उपमा-रहित (दुर्वासा) सुनि इस वैभव को देख हर्षित हुए और विद्याधर-कन्या का दिया हुआ पुष्पहार इन्द्र को उपहार दिया । इन्द्र ने अपने हाथ में रखे अकुश से उस हार को उठा लिया और उसे ऐरावत के मिर पर डाल दिया । ऐरावत ने अपनी सूँड़ से उसे खीचकर पैरों तले रौंद दिया ।

यह देखते ही दुर्वासा सुनि की आँखों से कठोर क्रोधाभि की ज्वाला उमड़ पड़ी । मारे अडगोल जलकर भस्म हो जायेंगे—ऐसी आशका में भयभीत होकर देवता विखरकर भाग गये चूर्ण-चट्र भी अपनी गति रोककर म्थिर खड़े हो गये, अष्ट दिशाओं में घोंवेंग फैल गया, मारे लोंक चक्कर काटने लगे ।

उम दुर्वासा महर्षि की सौमों से बुबों निकलने लगा, व क्रोध ने अद्वाम कर

^१ नगिन में जृजृन के लिए ‘पर्वान’ शब्द का प्रयोग होता है । वहाँ उसके लिए वीथि-विहार शब्द का प्रयोग किया गया है ।—नन०

उठ, जैसे त्रिपुर-दाह के समय शिवजी हँस रहे हो । उनकी भोह उनके विशाल भाल पर चढ़ गई, (उन्होने अपनी) आँखों से ज्वाला उगलते हुए ऐसा गर्जन किया, जिसमें स्वयं बज्र भी डर गया । उन्होने कहा—हे पापिष्ठ शतमख । सुन—

पच महासूतों के नायक, भूमि-वल्लभ एव अनुपम बेदी के प्रभु महाविष्णु के बज पर आमीन आदिलहमी के द्वारा यह हार प्रेम के साथ धारण किया गया था और विद्याधर-कन्या ने उनसे इसे प्राप्त किया था । बड़ी तपस्या की महिमा के कारण मैंने उनमें यह हार प्राप्त किया ।

तेरे इस वैभव को देखकर मैं आनन्दित हुआ और आठर के साथ वह हार तुम्हें प्रदान किया, कितु तूने इसका अनादर किया, अतः तेरी मारी निधियाँ ओग अपार सप्तति समुद्र में छूट जायें तथा तू महिमाहीन होकर दुःखी बन जा ।—क्रोधी मुनि ने इस प्रकार इन्द्र को शाप दिया ।

(दुर्वासा के शाप देत ही) रभा आदि अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, नो निधियाँ, सुरभि पशु, श्वत अश्व, पर्वताकार मत्तगज (ऐरावत) इत्यादि सभी संपत्तियाँ इन्द्र के पास सं हट गईं और उर्मियों से आकुल समुद्र में जाकर छिप गईं ।

क्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप के कारण स्वर्ग आदि सभी लोकों को दण्डिता पीड़ित करने लगी । तब सभी देवगण, अर्धनारीश्वर एव चतुर्मुख को माथ लेकर श्रीविष्णु भगवान के समीप पहुँचे, जिनका बज्र रक्त-कमल पर आमीन महालहमी तथा श्रीवित्स के चिह्नों से अकित है ।

नवविकमित कमल से उत्पन्न ब्रह्मा तथा शिव प्रभृति अन्य देवों ने दुर्वासा के कठोर शाप की बात बतलाई और प्रार्थना की कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं ह अतएव आप हम सबकी रक्षा करें । तब सभी लोकों को नापदेवाले (उस त्रिविक्रम) ने प्रेम से कहा—‘डरो नहीं ।—

तुमलोग असुरों को अपने साथ मिलाकर, गर्जन करनेवाले सागर को मथों, मन्दर पर्वत को मथानी बनाओ, वासुकि सर्प को रससी बनाओ, शीतल चन्द्रमा को मथानी की टेक बनाओ और ओपधियों से भरकर इस सागर का मथन करो और उसमें से अमृत को निकालो ।

हम भी उस स्थान पर आयेंगे । तुमलोग शीघ्र ही अपना कार्य आरभ कर दा । विष्णु के ये वचन सुनकर देवता उनकी प्रशंसा करने लगे और दण्डिता से मुक्त होने की बात सोचकर आनंद से नाचने लगे ।

देवता मदर पर्वत को उखाड़ लाये, उसमें वासुकि नाग वो लंपेटा, चट्र को टेक बनाया, ओपधियों से (समुद्र को) भग और जीरमागर को मथने लगे, तो उनमें उथल-पुथल मच गई । भूमि डोल उठी, भूमि के नीचे स्थित आदिशेष भी मरोड़ खाने लगा ।

धर्म-राहत व्यक्तियों के मन जिन नदियों को जान भी नहीं नकर, एने राघुण में युक्त (विष्णु भगवान्) ने महान् कूर्म का स्पष्ट धारण किया, अपने नहनों वर्लिङ दरों वा

फेलाकर हट खड़े रहे ध्रूमनेवाला मदर पर्वत उनकी पीठ पर था। इस प्रकार, उन्होंने दुर्वाना के शाप से नष्ट हुई सभी वस्तुओं को पुनः प्राप्त किया।

सभी खोई हुई वस्तुएँ प्रसु (विष्णु भगवान्) की दृष्टि से पुनः प्रकट हुईं। उम ममय सुर तथा असुर आपम से कलह करने लगे। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर असुरों का विनाश किया और सुरों ने अमृत का पान किया।

श्रीधर मूर्त्ति ने हलाहल विप एव चक्रकला वृपभ-वाहन (शकर) को दिया, पचवृद्ध तथा अन्य उद्घट वस्तुएँ इन्ड्र को प्रदान किया, शेष पुष्पक आदि सप्ततीयों को अन्यान्य देवों को दिया और लक्ष्मी देवी तथा कौन्तुभमणि को अपने हृदय का हार बनाया।

उम ममय, दिति अपने पुत्र असुरों के विनाश से अत्यन्त दुःखित हुई। उसने अपने पर्ति कश्यप ऋषि के निकट पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनसे प्रार्थना की कि इन्द्रादि देवों के पद्मवत्र मे मेरे पुत्र मारे गये हैं। इसलिए एक ऐसा पुत्र प्रदान करो, जो उन देवों को मिटाने मे समर्थ हो।

कश्यप ने दिति की प्रार्थना सुनकर कहा—तुम्हें पुत्र का वरदान देता हूँ, तुम पृथ्वी पर जाकर एक महत्व वर्प तक कड़ी तपस्या करोगी, तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। दिति तपस्या करने लगी।

इन्ड्र ने दिति की तपस्या की वात सुनी। वह उसकी परिचर्या मे लग गया। एक बार तपस्या से श्रान्त होकर जब दिति लेटी हुई थी, तब सूक्ष्म रूप धारण करके इन्ड्र उसके गर्भ मे प्रविष्ट हुआ और दिति के गर्भस्थ शिशु के सात खड़ कर दिये। दिति जगकर नोने लगी, तब इन्ड्र ने उन सातों खड़ों को सप्त मस्तू बना दिया।

यही वह स्थान है, जो दिति की तपस्या से पवित्र हुआ है। यहाँ का शरवण (नरकड़ों का वन) ही उमा और शकर के पुत्र सुव्रह्मण्य (कार्त्तिक) का उद्भव-स्थान है, जिन्हे आदिवायु एव गगा देवी भी भरण नहीं कर सकी थी। इस प्रकार, विश्वामित्र ने श्रीगमच्छ को कथा सुनाई।^१

फिर सूर्योदेव, यम के सदृश काल अधकार को हटाकर, सप्तार की रक्षा करते हुए अपने गथ पर आसू होकर, सहस्रों किरणों के साथ नील सागर से उदित हुए, जैसे विष्णु की नाभि ने व्रक्षा को लिये हुए आटिकमल निकला हो।

सूर्योदय होते ही चिमूर्त्तियों के सदृश वे तीनों (विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण) वहाँ से प्रस्थान कर चले और दोनों कूलों पर अपनी उमड़ती लहरों से टकराती हुई वहनेवाली सुदूर गगा नदी को देखा, जो रक्त नेत्र तथा वृपभ-वाहन शकर की 'कोण्णी' तथा 'कोण्डे' फूलों ने अलकृत घने जटाजट से निकलने के कारण, सुनहली धारा युक्त कावेरी^२ नदी के नमान है।

गवव ने विश्वामित्र से कहा— पितृ-सदृश ऋषीश्वर। इस महान् नदी की

^१ यह कथा विनार के नाम कालिदास-इन कुमारसभव मे वर्णित है।

^२ जंतरी की धारा सुनहली होती है। गगा की धारा भी गिरजी की जटा के फूलों तथा रक्त नेत्रों की धारा पड़ने ने सुनहली दोषती है।

महिमा वताइए। विश्वामित्र कहने लगे—मेरे पालक राजकुमार। पुराने काल में तुम्हारे श्रेष्ठ सूर्यकुल में सगर नामक चक्रवर्ती उत्पन्न हुए थे, जिन्होने अपनी वलिष्ठ भुजाओं और अयोध्या नगरी में रहते हुए सागी पृथ्वी पर शासन किया था।

उस विजयी चक्रवर्ती के दो पत्नियाँ थीं। विदर्भ देश में उत्पन्न पत्नी में ‘असमजस’ नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र ‘अशुमान्’ था। उनकी दूसरी पत्नी, गरुड़ की भणिनी सुकुमारी ‘सुमति’ थी, जिसके धर्मपरायण साठ हजार वलवान् पुत्र हुए।

अत्यत पराक्रमी सगर चक्रवर्ती अपने सभी पुत्रों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ करने लगे। देवता लोग इससे असतुष्ट हो उठे और देवेंद्र से यह समाचार निवेदित किया। इन्द्र ने जाकर यज्ञ के सुन्दर अश्व को पकड़ लिया और उसे ले जाकर पाताल में तपश्चय करनेवाले कपिल महर्षि के पीछे छिपा दिया।

तीव्र गति से चलनेवाले उस यज्ञाश्व के पीछे-पीछे अशुमान् जा रहा था। इन्द्र द्वारा उस अश्व का अपहरण होते ही वह आश्चर्य-चकित हुआ। इन्द्र के द्वारा अपहरण को नहीं जानने के कारण वह सर्वत्र भूलोक में उसकी खोज करना रहा, किंतु असफल रहा। अत में अपने पितामह सगर के पास आकर सारा वृत्तांत कहा।

अशुमान् से समाचार पाकर सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों से यह समाचार कहा, तो वे वडवारिन के समान कोपाग्नि से जल उठे और समस्त पृथ्वी पर धोंड की खोज करके अन्त में (पृथ्वी को) खोदते-खोदते पाताल में उत्तर पड़े।

कहते हैं कि वे साठ सहस्र सगर-पुत्र उत्तर दिशा में खोदने लगे और शतयोजन चौड़ा और शतयोजन गहरा गर्त्त खोद डाला। पाताल में पहुँचकर उन्होंने महातपस्वी कपिल के पीछे अपना यज्ञाश्व देखा। वे आग की तरह कोध से जल उठे और कपिल महर्षि को गाली देने लगे। वे इस प्रकार अहकार से भरकर उन (महर्षि) के निकट जापहुँचे।

(उनकी वाते सुनकर) उस मुनि ने अत्यन्त उमड़ते हुए कोध के साथ अग्निसदृश अपनी आँखें खोलकर उन्हें देखा। तब, परमाश्व के मदहाम से जिस प्रकार तीनों पुरजलकर भस्म हो गये थे, उसी प्रकार व साठ हजार राजकुमार जलकर भस्मावशेष हो गये। चरों ने यह समाचार सगर चक्रवर्ती को दिया।

सगर, पुत्र-शोक से अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने अपने शोक का अन्त न पाने पर भी अपने कर्त्तव्य का स्मरण करत हुए अपने पोत्र अशुमान् को बुलाया और कहा—वे (पुत्र) तो मिट गये, अब क्या आरंभ किये हुए यज्ञ-कृत्य को रोकना उचित होगा? अशुमान् अपने पितामह के यज्ञ की पूर्ति के निमित्त चल पड़ा और कपिल के निवाम-रथान पाताल में जा पहुँचा।

पाताल में अपने मृत पितृव्यो (चाचाओं) की भन्मगणियों को देख वह उद्घाट हो उठा। फिर, कपिल मुनि के चरण-कमलों पर नत होकर खटा रहा; तब मुनि ने अश्व को ले जाने की आज्ञा दे दी और अश्व किस प्रकार वहाँ आया था इसमा नाग वृत्तात भी कह सुनाया।

नव के द्वारा प्रशंसित (गमचन्द्र)। उस निष्कलक सुनिके वचन सुनकर अशुमान् ने आदर के साथ उनकी बढ़ना की और अश्व लेकर लोट आया। नगर ने यज धूर्ण किया। कुछ नमय उपगान अशुमान् को राज्य मोपकर चक्रवर्ती दिवगत हो गये।

नगर-पुत्रों के द्वाग खांडे जाने ने मकर-मत्स्यों में प्रेरित मसुद ही 'मार' कहलाया। अशुमान् अप्रतिम परग्रहम के साथ भूमि का शासन करता रहा। उसके दीर्घवंश में भगीरथ नामक कुमार अवतरित हुआ।

वे चक्रवर्ती भगीरथ भमन्त वर्गी पर अपना एकमात्र शासन-चक्र चलातं रहे। एक बाग उन्होंने वसिष्ठ में अपने पूर्वज नगर-कुमारों की मृत्यु का वृत्तान्त सुना। तब उन्होंने वसिष्ठ के चरणतल को मिर ने लगाकर प्रणाम किया और निवेदन किया—

कपिल की कठोर कोषाभि मे मेरे पूर्वज इम्बु हुए और दीर्घकाल ने निष्प (नरक) मे पड़े हैं। मैं उनके उद्धार के लिए तपस्या करना चाहता हूँ। कृपया आप तपस्या का क्रम मुझे बतला दे। मुनिवर ने कहा—

हे भूमि-पालको के प्रभु! तुम ब्रह्मा को लक्ष्य करके अपने प्रपितामहो के उद्धार के निमित्त निरतर कई दिनों तक अश्रान्त तपस्या करो।

तब भगीरथ नारी पृथ्वी वा भार अपने मत्री सुमत्र को मोपकर हिमालय के बक मे जा पहुँचे। जब उन्होंने दम महन्त वर्ष तक कठिन तपस्या की तब आदिकमल मे उद्भूत ब्रह्मा प्रकट हुए।

ब्रह्मा ने भगीरथ ने कहा—तुम्हारी इम बड़ी तपस्या से मैं संतुष्ट हुआ। महान् तपस्यी कपिल के क्रोध ने तुम्हारे पूर्वपुरुष जल गये थे। यदि उनके भस्मावशेष आकाश-गगा के प्रवाह मे मिंचित हों, तो वे भद्रगति को प्राप्त होंगे।

विशाल गगन मे वहनेवाली गगा नदी यदि भूमि पर उतर आयगी, तो उसके बेग का चिन्त्र के अतिरिक्त और कोई वहन नहीं कर सकता। अत शिवजी को लक्ष्य कर नुम तपस्या करो। वह कहकर विश्व के निर्माता ब्रह्मदेव अदृश्य हुए।

फिर, भगीरथ ने शिवजी का ध्यान करने हुए पूर्वोक्त नमय तक ही (दम महस्त वर्ष) तप किया। अभि-भमान कातियुक्त देव (शिवजी) वहाँ पहुँचे और यह कहकर अदृश्य हो गये कि हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। उसके पश्चात् पाँच महस्त वर्ष तक गगा देवी को लक्ष्य कर भगीरथ ने तप किया।

नदियों म श्रेष्ठतम (गगा) नदी तर्ण नारी का त्प धारण कर भगीरथ के सम्मुख प्रकट हुई और उसने कहा—नम किम प्रयोजन के निमित्त यह कठोर तप कर रहे हो? उत्तुग तरग-भरित (गगा) प्रवाह यदि न्वर्ग ने भूमि पर उतर आयगा, तो उनका बेग कौन नह भनेगा? शिव ने जो वचन कहा है, वह चिनोद-मात्र है, उससे कुछ नहीं होगा। दुवारा नुम शिवजी की तपस्या ज्ञे और ठीक ढग ने यह जान लो कि शिव गगा के बेग को सहने के लिए सद्द्व है या नहीं।

गगा के वचन सुनकर वह (भगीरथ) खिन्नमन हो गया और फिर जाकर दी सहस्र वर्ष न्वर्गमय जटावाले एव अभि-ज्वाला-न्वर्ण (शिवजी) को लक्ष्य करके तप किया।

तब भगवान् (शिवजी) उसके सम्मुख प्रत्यक्ष हुए और उसकी डच्छा के विषय में पूछा । भगीरथ ने निवेदन किया—मेरे प्रभु ! गगा नदी ने कहा है कि उनके वेग औरोंके लेने का आपका पूर्व वचन केवल विनोद-मात्र है, तो तथ्य क्या है, बतलाइए । यह सुनकर उन्होने (शकर ने) उत्तर दिया—डरो नहीं, मैं गंगा को इस प्रकार गेक लूँगा कि उसकी एक बूँद भी नहीं विखरेगी । और फिर, वे (शिवजी) अदृश्य हो गये । तब उसने (भगीरथ ने) गंगा को लद्य करके ढाई हजार वर्ष तक कड़ी तपस्या की ।

उस राजा ने क्रमशः पत्ते, भस्म, जल, पवन, सूर्य-किरण—इनका आहार करते हुए और फिर इनका भी त्याग करके तीस सहस्र वर्ष तक महान् श्रद्धा के साथ तपस्या की ।

(भगीरथ की तपस्या पूर्ण होते ही) श्रेष्ठ नदी आकाश से भू-लोक में आकर प्रकट हुई । वह इस प्रकार गर्जन करती हुई उतरी कि ब्रह्मदेव का मत्यलोक और इन्द्रादि देवों का स्वर्गलोक भी कौप उठे । पार्वती के पति (शिवजी) ने अपने विलक्षण जटाजट में उसे पूर्णरूप से छिपा लिया ।

धाम की नोंक पर पड़ी हुई ओस की घोड़ के समान, भगवान् (शकर) की जटा में उस श्रेष्ठ नदी को छिपे हुए देखकर वह (भगीरथ) अत्यन्त विश्रम के साथ सिर भुकाये मौन खड़ा रहा । उन्होने (शकर ने) उसे धीरज वँधाते हुए कहा कि डगे नहीं अब गगा मेरी जटा के मध्य में है, और फिर उसके एक थोड़े-मे अश को बाहर निकलने दिया । गगा का वह अंश भूमि पर उत्तर पड़ा ।

आगे-आगे राजा चलने लगा और उसके पीछे-पीछे गगा, मृत सगर-पुत्रों को सद्गति देने की उमंग में, बड़ी तेजी से वह चली, उसने मार्ग में तपोनिगत जहनु महर्षि के यज वास कर दिया । जहनु ने क्रोधाविष्ट होकर गगा-प्रवाह को चुल्लू में भग्न की लिया ।

उस दृश्य को देखकर वेदज मुनि विस्मित रह गये । उसने (भगीरथ ने) जहु को नमस्कार करके गगा को लाने का मारा वृत्तात कह सुनाया, तब जहनु ने द्रवी-भूत होकर कान के मार्ग से गगा को बाहर निकाल दिया, तब वह मृतक गजपुत्रों की भस्मराशि पर उछलती हुई वह चली ।

‘निरय’ (नामक नरक) में पड़े हुए सगर-कुमार अनन्त मार्ग (स्वर्गलांक) में जा पहुँचे । इस दृश्य को देखकर आनन्दित स्वर्गवामियों (देवों) ने सुगन्धित पुणों की वर्षा की । नगाड़े वज उठे । तब, भगीरथ अयोध्यापुरी को लौट आया ।

(विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा)— है नृपकुमार । उस अण्डगोल से परं विद्यमान, समस्त विश्व को एक ही पग में नापनेवाले (त्रिविक्रम) के बमल-करण में निस्स्तुत होकर कमलभव (ब्रह्मा) के कमडल में जो जल संचित हुआ था वही भगीरथ की तपस्या से लाया जाकर गगा नदी के रूप में भूतल पर आया है ।

भगीरथ ने अपने पितरो की सद्गति के लिए अनेक सहस्र वपा नक्त तपस्या वरके वह जल भूतल पर लाया, अतः यह नदी भागीरथी कहलाई और जहनु महर्षि के दर्श मार्ग ने वहने के कारण यह जाह्नवी कहलाई ।

(विश्वामित्र ने) गगा को कहानी कह सुनाई, तो वे (राम और लक्ष्मण) नुकर आश्चर्य और आनन्द में डूब गये । फिर, वे गगा को पार कर विशाला नामक नगर में पहुँचे जहाँ के पर्वत-सदृश भुजावाले नरेश ने उनका आठ्ग-नहित स्वागत किया और (विश्वामित्र के) चरणों की बन्दना की । तीनों कुछ समय उस स्थान में ठहरे और (फिर) आगे बढ़ चले ।

वे तीनों मिथिला देश में जा पहुँचे, जहाँ खेतों में असर्ख्य कमलपुष्प निद्रा में जग उठे थे । (जहाँ) खेतों को निराने में लगी हुई कृपक-नारियों के भाले-सदृश नुकीले एवं दीर्घ चचल नयनों की परछाईं पानी में पड़ती थीं, जिन्हें देखकर सारस पक्षी भ्राति से उन्हे 'क्यल' मीन ममक लेते थे और उन परछाइयों पर अपनी चोच मारने लगते थे, किन्तु मीन न पाकर लज्जित हो जाते थे ।

[नीचे विदेह देश के उद्यानों का वर्णन है ।]

(विदेह देश के) उद्यान कैसे हैं ?

वडे-वडे असर्ख्य वाँधों के जलमार्गों से होकर जल वहता है, तो मृदग-नाद होता है, अशोकवृक्ष अपने नवीन पुष्पों के रूप में उज्ज्वल दीप लिये खड़े हैं, तार के सदृश मधु-धारा वहनेवाले पुष्प-रूपी वीणा में भ्रमर सगीत गाते हैं तथा मधूर अपने पख फैलाकर नाचते हैं ।

वहाँ के खेतों में पक्ज-पुष्प के साथ नीलोत्पल कां देखकर कृपक भ्राति से उन्हे किसी रमणी का वदन तथा नयन ममक लेते हैं और (उनमे) आकृष्ट हो उनके समीप आ पहुँचते हैं, किन्तु वहाँ रमणी के बड़ले केवल पुष्प को देखकर खीझ उठते हैं और उन पुष्पों को उखाड़कर फेंक देते हैं । ऐसे उखाडे गये पुष्प वहाँ वहुत-से पड़े हुए हैं ।

उस देश की कोकिलकठी रमणियाँ जब मटगति से चलती हैं, तब वहाँ के हस (उनकी गति में) उन्हे अपनी ही जाति की समककर उनके पीछे चल पड़ते हैं, वे रमणियाँ जब नदियों में न्नान करती हैं, तब उनके शरीर का कुकुम-रूप जल में मिल जाता है और जलचर पक्षी उन रगों से लिम होकर विविध हश्य उपस्थित करते हैं, एक ही जाति के पक्षी उनके (विविध रगों के) कारण एक दूसरे को अन्य जाति का पक्षी ममक लेते हैं तथा (आपस में) कलह करने लगते हैं, सध्या हीने पर कमलपुष्प तो निंदित ही जाते हैं, किन्तु कलह करनेवाले पक्षी शब्द करते हुए जागरित ही रहते हैं ।

कभी पक्कि वाँधकर चलनेवाली बड़ी-बड़ी भेंसों के थनों से वहता हुआ दूध, वहाँ की नदियों में प्रवाहित होता है, कभी तट पर रहनेवाले आम के पेड़ों से उनके फलों का रस फरकर वहता है, तो कभी कोल्हू में पेरे जानेवाले गन्ने का रस ही वह चलता है और कभी वाहत मधु के छुत्तों से शहद गिरकर उन नदियों में प्रवाहित हो पड़ता है । इन वस्तुओं के कारण शीतल जल के बहने के लिए उनमे (नदियों में) स्थान ही नहीं रह गया है ।

वहाँ की दृत्य-शालाओं में जलद-समान शीतल दृष्टिवाली रमणियाँ नाचती हैं, जिनके पर्वत-सदृश ननों के भार में नत ने भी सूक्ष्म (उनकी) कटियाँ लचक-लचक जाती हैं ।

उनके नृत्यों के साथ सगीत तथा मृदग-ताल की ध्वनियाँ होती रहती हैं जिन (शब्दों) गम्भीरकर भैसें भागकर नदियों में जा गिरती हैं, जिनके कारण (पानी में) उथल-पुथल उत्पन्न हो जाती है, जिससे मीन उछल-उछलकर तट पर के नारियल, गुवाक (मुपाटी) व्रादि वृक्षों के पत्तों पर जा गिरते हैं।

वहाँ के सरोवरों में कोमलागी सुन्दरियाँ (जब) भाले-सदृश अपनी थाँखे मीच-कर और जलमग्न होकर ऊपर उठती हैं, तब वे क्षीर-सागर के मध्यने के समय जल में उपर उठती हुई लक्ष्मी देवी का दृश्य उपस्थित करती हैं। उनके करों के श्वेत कगन वहाँ के जल-पक्षियों के साथ बोल उठते हैं। उन सरोवरों में भ्रमर सुगंधित पुष्प की कलियों वो भेदकर भीतर पहुँचते हैं तथा मधुपान करके मत्त रहते हैं।

इस प्रकार के मिथिला देश में वे तीनों जा पहुँचे और प्राचीरों से आवृत, ऊँची ध्वजाओं से अलंकृत उम मिथिला नगर के बाहर आकर ठहरे। वहाँ एक उजडे हुए स्थान में उन्होंने एक ऊँचा प्रस्तर पड़ा देखा, जो गृहस्थ-धर्म में च्युत होकर अभिशप्त हो पड़ी रहनेवाली गौतम-पत्नी अहल्या का ही रूप था।

उस प्रस्तर पर काकुत्स्थ (श्रीरामचन्द्र) की चरण-धूलि जा लगी, तुरन्त ही वह (अहल्या देवी) प्रस्तर-रूप छोड़कर अपना पूर्व स्वरूप धारण करके उठ खड़ी हुई, जैसे कोई नर, अविदा-मोह की मिटानेवाला तत्त्वज्ञान पाने पर मायावृत स्पष्ट छोड़ दे और यथार्थ आत्म-स्वरूप को पहचान ले और भगवान् के चरणों को प्राप्त हो जाय। महासुनि (विश्वामित्र) कहने लगे—

गगन से भूतले पर गगा को ले आनेवाले भगीरथ के वश में उत्पन्न (रामचन्द्र)। यह विद्युत-समान नारी, जो अत्यन्त आनन्द के साथ एक और खड़ी है, उम गौतम मुनि की पत्नी अहल्या है, जिस (मुनि) ने पापकर्म करनेवाले देवेन्द्र को महल रक्त-वर्ण नेत्र दिये थे।

सुनहली जटावाले (विश्वामित्र) का कथन सुनकर, पकज पर विद्युत-दर्युति के साथ आसीन लक्ष्मी के बल्लभ (रामचन्द्र) ने आश्चर्य से कहा—इस समार की भी कैसी प्रकृति है? इस प्रकार की घटनाएँ क्यों होती हैं? क्या ये प्रवृजनमों के कमों का परिणाम हैं अथवा उन कर्मों के अतिरिक्त कोई और भी कारण हैं? समार की माता-नद्दी अहल्या की ऐसी दशा क्यों हुई?

रामचन्द्र की बात सुनकर जानी (विश्वामित्र) ने कहा—शुभाश्रय! सुनो. पुराने समय में वज्रधारी इन्द्र कभी दुर्गण-रहित सयमी गौतम महर्षि वी मृग के समान नयनोवाली पत्नी अहल्या के सौर्य पर मुख्य हुआ और उसके न्तर्नों का न्यर्ण प्राप्त ररना चाहा।

अहल्या के नयन-रूपी भाले तथा मन्मथ के बाण इन्द्र को पीड़ित करने लगे; उसने मोचा, किसी भी उपाय से अहल्या की सगति प्राप्त करनी चाहिए, एवं दिन उसने कामाख होकर गौतम मुनि ने अहल्या को प्रुद्धक किया और मत्य-स्वन्द गौतम का दण धारण कर उसके पास जा पहेंचा।

वह अहल्या की सर्गति में सुराखित नवमधु का महान् आनन्द पा रहा था, उभी नमय अहल्या को अनुभव हुआ कि वह इन्द्र है, तो भी उसने उसे अनुचित कृत्य मानकर दूर नहीं किया उभी नमय त्रिनेत्र (शिवजी) के नमान नर्व-शक्तिमान् गौतम मुनि भी शीघ्र वहाँ लौट जाये ।

गौतम धनुर्वाण नहीं चला जाता थे, किन्तु प्रतिकार-रहित शाय देने में अत्यन्त नमर्थ थे । उनको देखकर अस्ति अपवश पाई हुई (अहल्या) भयमील हो खड़ी रही, इन्द्र काँपता हुआ त्रिलूपी के जैसे वहाँ से धीरे-धीरे खिमकते लगा ।

तदा तटन्ध उशा से रहनेवाले परिशुद्ध गौतम महर्षि ने अरिन उगलती हुई और्खों ने देखा कि मारी घटनाएँ समझ गये और हुम्हारे (राम के) दाणों के समान तीक्ष्ण बचन (इन्द्र के प्रति) अह—‘हुम्हारे शरीर से एक हजार नारियों के चिह्न-त्प अवयव उत्पन्न हों ।’ बज-मात्र ने इन्द्र का शरीर उन अवयवों ने भर गया ।

इन्द्र नभी का उपहास-पात्र हो गया । अस्ति अपवश लेकर वह लजित हुआ और वहाँ से चला गया । तब गौतम ने खुक्खमारी अहल्या को देखकर कहा—‘वारनारी के नद्या आचरण बरनेवाली तुम पत्थर बन जाओ ।’ अहल्या पत्थर बनकर गिरने लगी ।

(उम नमय) उसने गौतम ने प्रार्थना की कि हे अस्तिमय रुद्र-समान मुनिवर । (छोटों के) अपाधों को क्रमा करना महान् व्यक्तियों का स्वभाव होता है । अतः, मुझे क्रमा और मेरे शाय का अत बद देख होगा बताओ ।

तब गौतम ने कहा—‘भ्रमणे मेरे पुष्पहार धारण बरनेवाले वशरथ-पुत्र (श्रीराम-चद्र) जब इन स्थान पर आयेंगे, तब उनकी पद-रज का स्पर्श होने ही हुम्हारा उद्धार होगा ।

जाय ने विकृताग इन्द्र को देखकर सभी देवता ब्रह्मा को अपने साथ लेकर गौतम मुनि के पास आये और उसने ग्रार्थना करने लगे । देवताओं की प्रार्थना सुनकर सभी गौतम जान हुए आग इन्द्र के शरीर पर के महव चौ-चिह्नों को सहन नयन बना दिये । अहल्या प्रस्तर के त्प में पड़ी रही ।

हे मेघ-समान क्रातिन्द्र (गमचन्द्र) ! प्राचीन काल में ऐसी घटना घटी थी । अब तुम इन क्षूल पर अव्याप्ति कर्मी सभव हो नक्ती है ? कदापि नहीं । वहाँ अजन पर्वत की जसी ताड़ा से तुमने जो दुष्क किया उसमें हुम्हारा हस्त-कोशल देखा था, अब यहाँ हुम्हारे चरणों वा कोशल देख रहा हूँ ।

श्वासल पुच्छ (राम-चन्द्र) ने, जिसके अरुण चरणों ने अनन्त उपकार होता है उनके (विश्वामित्र के) समन्व बचन तुन्हें अहल्या के प्रति कहा—हे माता ! तुम अब महान नपन्धी (गौतम) की नेंग मे निरन हो जाओ । जिसने उनके मन ने हुम्हारे प्रति

करुणा उत्पन्न हा। वीच मे आये कष्टों को स्मरण करके दुःखी मत होओ। अब तुम अपने पति के आश्रम मे जाओ। यां कहकर अहल्या के चरणों की चन्दना की।

आगे चलकर वे सब गौतम मुनि के आश्रम मे जा पहुँचे, गातम उन आतिथियों के आगमन से अत्यन्त हर्षित हुए और आगे बढ़कर आदर के साथ उनका स्वागत किया और सब प्रकार मे उनका सत्कार किया। तब गाधिपुत्र ने उन तपस्त्रियों मे कहा -

अजनवर्ण (रामचन्द्र) की चरण-धूलि लगी नहीं कि अहल्या अपने पूर्व स्वस्त्र मे खड़ी हो गई, उसने अपने मन मे कोई पाप नहीं किया था, अत अब तुम उसे स्वीकार करो। गाधिपुत्र के ऐसा कहने पर ब्रह्मदेव के समान उम (गौतम) ने अहल्या को स्वीकार कर लिया।

सकल सद्गुणों से पूरित (रामचन्द्र) ने गौतम की परिकमा करके उनके चरण-कमलों को प्रणाम किया और अहल्या को उन्हे माँप दिया। फिर, तपस्त्री (विश्वामित्र) के साथ मिथिला नगरी के निकट जा पहुँचे और उसके मणिमय प्राचीर को देखा। (१—८६)



आध्यात्म ३०

मिथिला-दर्शन पटल

प्रहरियों से सुरक्षित वह मिथिला नगरी अपनी ऊँची और मनोहर ध्वजा-स्तंभी हाथों को ऊँचा उठाये हुए हैं, मानो उम कमल-नयन (रामचन्द्र) को यह कहकर आहान कर रही हो कि 'सुनहली आभावाली लद्धमी मंगी तपस्या के प्रभाव से अपना निवास कमल-पुष्प को छोड़कर यहाँ अवतीर्ण हुई है अतः आप शीघ्र आइए।'

उन्होंने देखा कि उम नगर के ऊँचे-ऊँचे प्रासादों पर सुदर ध्वजाओं की पक्कियाँ नृत्य कर रही हैं, वे ऐसी लगती हैं, मानो धर्मस्तंभी दूत मे संडेश पाकर, अनुपम सुदर्शी जानकी का पाणिग्रहण करने के लिए योग्य वर (रामचन्द्र) को आत हुए देखकर गगन-तल मे आमराएँ आनन्द से नाच रही हो।

उस नगर मे कही दो मत्त गज आपम मे टकरा रह हैं, जो दो पहाड़ों के ऊपर दीखते हैं जिनके बड़े-बड़े श्वेत दत वज्र के गमान हैं और जिनकी आँखों मे कोपाग्नि निरुल रही है, मानो प्रेमी दपति मन्मथ के वाणों मे चिढ़ हीकर (एक दमरे मे) मिलने चले तो और इतने मे प्रणय-कलह मे लग गये हो।

उन्होंने देखा कि जब सूर्य अन्तगत होने लगता है तब वनों का आकाश ढीर मागर के जैसा दीख पड़ता है, ऊँचे प्रासादों पर उड़नेवाली ध्वजाएँ रंगो वा न्यर्ग बदलती हुई गीली होती रहती हैं और माथ-माथ मेघों के समान ही फैने हुए ब्रगु ध्रुम के न्यर्ग ने सूखती भी रहती हैं।

मन्मथ सीता दंबी का नित्र खीचना चान्ता^१ और जमून म जमनी हेत्तरी^२

दुश्वांता है, लेकिन वह बंचागा नीताजी के अबयवों के सौदर्य को अकित करने में सर्वथा असमर्थ हो हारकर रह जाना है। ऐसी अनुपम सुधरी को अपने अक में पाकर मिथिला नगरी अपने स्वर्णमय प्राचीगों के साथ ऐसी शोभायमान है जैसे लक्ष्मी का निवासभूत कमल-पुष्प ही हो। ऐसी उन नगरी में वे तीनों प्रविष्ट हुए।

वे तीनों मिथिला की विशाल वीथियों से होकर जाने लगे, जहाँ चन्द्रोपम ललाट-वाली नारियों एव पुरुषों के नक्षमय आभरण विखरे पड़े रहते थे (समागम-काल में वे उन आभरणों को बाधाजनक पाकर उतारकर फेंक देते हैं), वे वीथियाँ देखने में ऐसी लगती थीं, जैसे तमिल-भाषा के पिता (अगस्त्य) मुनिवर के पी जाने पर रत्नमय मसुद्र का तल हो, या गत्रि दे नक्षमय घने नक्षत्रों में जड़ा हुआ आकाश हो।

वे लोग वहाँ वीथियों में जाने लगे, जहाँ लोहे के अकृशों को भी तोड़ देने-वाले पर्वत-मद्वाश मत्तगज मट जल बहाते थे, जब उम मट-जल की धारा वह चलती थी। तब लगाम में रहनेवाले घोड़ों के मुँह से जो क्षाग गिरता था, उसके मिलने से उस धारा का त्प बदल जाता था। फिर, गर्थों के निरतर दौड़ने से कीचड़ बनता था और अनन्तर (उनके सखने के बाद) धूल फैल जाती थी। यो उन विथियों की आङ्गृति क्षण-क्षण में परिवर्तित होती रहती थी।

वे तीनों मिथिला की उन विशाल वीथियों में जाने लगे, जहाँ रति की बेला में मधुरभाषी रमणियों न अपने पुष्प-हार फेंक दिये थे, जिन से मधु-धारा वह रही थी और जिनपर भ्रमर मँडग रहे थे। वे सुरक्षाई हुई पुष्पमालाएँ उन कोसलागी नारियों की जैसी ही लगती थीं जो निरतर तुल्यानुगाग-भरे अपने प्रेमियों के साथ काम-समर कर चुकने पर अत्यत श्रात हो पड़ी रहती हैं।

उन्होंने निथिला नगर की स्वर्णमय नृत्यशालाएँ देखी, जिनमें ‘याकू’* (वीणा के जैसा एक तत्री-चाय) के धृत-मधुर तारों के नाद, मधुर कठ मे गाये हुए गीत, उँगली से छेड़ जानेवाली ‘मकरवीणा’ की ध्वनि — ये सब एक दूसरे से एकश्रुति होकर गुजित होते थे और जहाँ अन्ति और नास्ति का सदेह उत्पन्न करनेवाली सूक्ष्म-कटि रमणियों नृत्य करती थीं, जिनके हाथों के मार्ग पर उनके नवन चलते तथा उनके नवनों के मार्ग पर उनके मन (के भाव) चलत थे।

उन्होंने देखा — मरकत-मद्वाश गुबाह (सुपारी) के बृक्षों में शुद्ध प्रवाल जैसे फल लगे हैं। उन बृक्षों में भूले लगे हैं, उन में सुन्दर नारियाँ भूल रही हैं; भूले बार-बार उधर ने उधर और उधर ने उधर आते जाने रहते हैं और यह स्मरण दिलाते हैं कि पापी जन भी उनी प्रकार पुन-पुन उन मनार में आते-जाते रहते हैं। उन रमणियों के पुष्पहारों पर ने उड़े हुए भ्रमर गुजार भरते हैं मानों उनमें लचकती हुई सूक्ष्म कटियों पर दया उत्पन्न होने ने वे चिल्लिया उठे हों।

* प्राचीन तन्त्रिका-साहित्य में चार प्रकार के यान्-चाय प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं— (१) वेरियाक् (२) ब्रमण्यान् (३) गोद्वान् (४) जगोद्वान्, जिनमें क्रमशः २१, १६, १४ और ७ तंत्रियाँ होतीं थीं।—३२०

उन तीनों ने मिथिला नगर की पण्यवीथि (वाजार) देखी, जहाँ दोना और अपार रल, स्वर्ण, मोती, कवरी मृग के केश, अरण्य में उत्पन्न अगरु की लकड़ी, मयूर-पख हाथी के दाँत—इनके अवार लगे थे । वह हाट ऐसी लगती थी, जैसे कावेरी नदी हाँ, जिसके दोनों तटों पर कृपको ने मोती, अगरु आदि एकत्र कर उनकी राशियाँ बना दी हो ।

उस नगर में रमणियाँ नुकीले और छोटे नाखूनबाले अपने को मल कर-पल्लवों को दुखाती हुई वीणा की खँटियों को बुमाती थीं और प्रबहमाण मधु-वारा सद्वश त्रियों को कसती थीं, वे अपने हाथ की उँगलियों के माथ मन को भी सलग्न करके, उज्ज्वल मद्हाग विखरती हुई विस्पष्ट स्वर-युक्त सगीत-रूपी स्वच्छ मधु को पान करती थीं, उस सगीत का पान करते हुए वे तीनों आनंद से आगे बढ़ चले ।

कहीं उन्होंने अतिवेग से दौड़ते हुए घोड़ों की पक्कि देखी, जां कुम्हार के ढाग बुमाये गये चाक के समान वर्तुल आकार में दौड़ रही थी । (वह पक्कि) महा-पुरुषों की मित्रता के ही समान अट्ट गतिबाली थी तथा जानियों की बुद्धि के सद्वश एकाग्र थी । वे घोड़े ऐसे दौड़ते थे कि उनका आकार स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता था ।

उन्होंने ऊँचे प्रासादों के फरोखों में अनेक उदीयमान पूर्णचद्र देखे, जों पने भाल, मन्मथ का धनुष, भ्रमर-कुल से संकुल नील केशों का जूँड़ा—उनसे शोभायमान थे तथा दीर्घकाल का कलंक भी जिनसे मिट गया था ।

उन्होंने अनेक मनोहर कमल भी देखे, जों स्फटिक-चपकों में भरे नवसुरभित मद्य का पान करके हास प्रकट करते हुए मस्ती से अर्थहीन बच्चन बकते थे और अपने प्रियतमों के प्रति मान करने जाकर हँस पड़ते थे ।

[उपर्युक्त दोनों पद्मों में वारनारियों का वर्णन है ।]

वारनारियाँ गेद खेल रही थीं । शारीरिक सुख के माथ ही धन भी प्राप्त करनेवाली, सर्पफन-तुल्य जघनबाली वेश्याओं के मन के जैसे ही स्फटिकवर्णबाले, कदुक भी अपना स्वाभाविक रंग छिपाते थे । वे (कदुक) उनकी कज्जलांकित ओंखों की छाया पटने से काले तथा उनकी लाल हथेलियों की छाया में लाल होते रहते थे ।

उन्होंने कई दृयूतशालाएँ भी देखी, जहाँ भाले-जैगी नुकीली आँखोंबाली सुन्दर वेश्याएँ चौसर खेलती थीं । वे अपने हाथ के कगन, कर्णाभरण, रलहाग, कर्लिंगदेश की बनी अमूल्य चादर, मकरबीणा आदि को भी दाँब पर रख देती थीं । (खेलत-खेलते थक जाने ने) उनके पुष्पालंकृत केशपाश शिथिल हो जाते थे और स्फटिक के बने कुच्चे के आकार की मुहरें उनकी हथेली की छाया से लाल दिखाई देती थीं ।

उस नगर में कई वावलियाँ भी थीं, जिनमें अनुपम अगोबाली सुन्दरियाँ प्रानंद से स्नान करती थीं । उस समय वहाँ के कमल, नीलकमल रक्तसुगुड जल पर फैली हुई ‘बल्लै’ लता के पत्ते, नीलोत्पल, लाल-लाल ‘किंडै’ (नामक पोंदे), तरंगे मीन आदि जलवर्ती वस्तुएँ (उनके अगों की सुन्दरता देख) लज्जित हो दुख अनुभव करती थीं ।

कहीं तरुण पुरुष खट्टग चलाने वा अभ्यास बरन थे । उनकी भुजाओं पर चट्टग

लेप तथा पीनन्तनी नारियों के आलिगन से उत्पन्न चिह्न अर्कित थे। उनका खड़ग-प्रयोग वह न्मरण दिलाता था कि मनुष्य का मन भी विषयभाँगी इट्रियों के द्वारा आकृष्ट होकर मोह-ग्रस्त हो इसी प्रकार भटकता रहता है।

उन्होंने यत्र-तत्र दुबक-नमूह भी देखे, जिनका शरीर सूर्य के समान उज्ज्वल था, जिनका मन इतना उदार था कि वे माँगने पर कोई भी अभीष्ट वस्तु दे देते थे; जिनके लाल कर्गे में बनुष्य थे और जिनके केश, अपनी माननी प्रेर्यमियों के चरणों पर झुकने से महावर लगकर लाल हो गये थे। उन्हें देखने से ऐसा लगता था, मानो स्वयं मन्मथ शिवजी के नेत्र से बचकर सृतल पर आ गया हो।

उन्होंने मिथिला नगर की फुलवारियों को देखा और वहाँ पुण्य-च्छयन करती हुड़ मनुष्य की समानता करनेवाली तरणियों को भी देखा। वे तरणियों तोती से चाशनी जैसी मीठी बोली में समाप्त कर रही थीं। उनके सोटर्य से अप्सराएँ भी लजा जाती थीं। उनकी गति की कमनीयता से हम भी पगान्त हो जाते थे और भ्रमर उन तरणियों की विजय पर हर्षनाड़ कर उठते थे।

उन्होंने चतुर्गिनी नेना-विर्द्धिष्ठ जनक महाराज के स्वर्णमय प्रासाद के चारों ओर एक विशाल खाई देखी, जिनमें देवों के निवास-योग्य उन्नत अट्टालिकाओं की परछाई पड़ती रहती थी और जहाँ देवनगर अमरावती की सुन्दरता उत्पन्न हो रही थी। तरगायमान वह खाई उमड़ती हुड़ गगा नदी के समान गमीर थी।

वे तीनों राजप्रासाद में कन्याघृष्ण की अट्टालिका के अग्रभाग को देखकर वही खड़ हो गये, उम अट्टालिका में हम और हसिनियाँ-इस प्रकार परस्पर मिलकर विचरण हो दें जैसे स्वर्ण और उनकी आभा, पुण्य और उमकी सुवास, भ्रयरों का भोज्य मधु और उमकी मिष्टा तथा सुगुम्फित कवि-बचन तथा उमकी रनमयता।

अब हम नीताजी का वर्णन करना चाहते हैं, किन्तु कैसे करे? कमलासन ब्रह्मदेव न लेकर नभी (व्यक्ति) किसी जारी का उपमान देने समय लड़भी का उल्लेख करते हैं वही लड़भी न्यून नीता का ह्य लेकर अवतीर्ण हुई हैं तां उनका उपमान कहाँ से और कैसे दृढ़ा जाय?

पार्वती प्रभूति दर्दियाँ भी मिर पर कर जोड़कर, सकल सद्गुण-सपन्न सीता को प्रणाम करती हैं। वैमी नीता को जो भी देखते हैं, वे कभी उम सुन्दरता का पार नहीं पाते हैं, मानव नमकत है, हाय! हम देवताओं के समान निर्निमेप दृष्टि से नहीं देख सकते, और, देवता लोग न्मकत हैं विं हम अपनी इन दो आँखों से नीता के सोटर्य को कैसे देख सकते हैं (अर्थात् उनके लिए दो आँखें पर्याप्त नहीं हैं)?

नीताजी के वे चचल नयन हरिण को भी अपने सोटर्य-गुण से मात करते हैं। विजयगील भाला और तलचार भी उन नयनों की छटा से पगास्त हो जाते हैं, अन्य नारियों के नयनों के उपमान-भूत 'क्यल' मीन भी उनमें डरते हैं। उग समय (रामचन्द्र के लिए) नीताजी मदर पर्वत के मथने ने कल्लोलित समृद्धि से उत्पन्न अमृत नहीं, परन्तु उम कन्याघृष्ण ने उन प्रासाद ने उत्पन्न अमृत थी।

यदि व्रह्मदेव से प्रार्थना की जाय कि गथ-मद्वश पीनजघनवाली ऐसी ही एक अन्य तरणी की सुषिटि कीजिए, तो वह चतुर्मुख भी वैसी सुषिटि नहीं कर सकेगा। अ मृतभोजी देवगण ही क्यों न प्रार्थना करे, मागर अमृत नामक दिव्य ओपघ भले ही दुवाग ढे ढे, किन्तु ऐसी मनोहर रूपवती लक्ष्मी को कहाँ से लायगा?

कातिपूर्ण भाले के फल के जैसे नयनोवाली मेनका आदि आमरां, जिनपर भवग के शासक इन्द्र तथा अन्य देवता भी सुख होन रहत हैं, इन नीताजी के शगीर-सार्वदा को देखकर मन मसोसकर रह जाती है। अब उन अणगाओं के गुख-चन्द्र के लिए सर्वदा दिन ही रहता है (अर्थात् दिन में चन्द्रमा जिस तरह कातिहीन दीखता है, उसी प्रकार भीता की छवि के सामने वे कातिहीन हो गई है)।

कमल-पुष्प पर निवास करनेवाली यह देवी इस धरती पर उत्तर आई है। उसके लिए किन्होने वड़ी तपस्या की थी? क्या वह असख्य व्रात्यण थे या स्वयं धर्मदेवता थे, या सारा सासार था, या स्वर्ग था, अथवा नभी देवता ही थे, जिन्होने ऐसी तपस्या की थी? हम कह नहीं सकते कि यह किनकी तपस्या का फल है।

अनुपम रूपवती नारियों सीताजी की देवा में सलाम रहती थी, व उन्ह, रक्त-कमल समान करवाली। हरिणोपमे। माता। मधुतुल्य। अपूर्व अमृतमद्वश। आदि शब्दों में सबोधित करती थी। सीताजी के चरण जहाँ-जहाँ पड़ते थे, वहाँ वे, आगे-आगे पुष्प गर्श विखेरती चलती थी। उन पराग-भार से लड़े पुष्पों के मध्य सीताजी विलक्षण काति में शोभायमान दीखती थी।

स्वर्णमय किंकिणी, रत्नहार, पुष्पमालाएँ, विशाल नितवों पर पड़ी मंखलाएँ—इनमें भूषित लता-जैसी उनकी सहचरियों उनके सार्वदा को सुख होकर देखती रह जाती थी। उन सहचरियों के मध्य सीताजी ऐसी लगती थी, मानो कर्णीड़ों छोटी विजलियों के बीच वडी विद्युत् गज्य कर रही हो।

‘सबको मारनेवाले भाले तथा यम को भी पराजित करनेवाला कोई है’—यह जनश्रुति सगार में उत्पन्न करने के लिए ही सीताजी ने वैसे नयन पाये हैं। उनमें अवर्णनीय हैं, उस सुन्दर कन्यास्पी फल (सीता) को देखकर पर्वत, दीवारें, प्रस्तर, पेड़-पौधे जैसे अचेतन पदार्थ भी द्रवित हो जाते हैं (तो चेतनों की बात ही क्या?)।

पुरुषों की वासी आँखे जिन कार्मिनियों को देखकर उसमग ने भर जाती हैं, व रमणियों भी सीताजी के रूप-सार्वदा को देख-देखकर आनंदित होती रहती है। नारियों के मन में भी रूप-लालसा (आकर्षण) उत्पन्न करनेवाली अमृत-नमान नीताजी हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्र को न जाने कैसी लगेगी?

कर्णाभरण आदि आभृपण पहले से ही जलद-शीतल नगनद्वक्तु दुन्दरियों के शूलान की वस्तु रह चुके हैं, किन्तु अब उस सीताजी के जन्म ने सार्वदा के माध्यन (व आभृपण) नई शोभा से शोभित हो रहे हैं।

अकल्पनीय सोर्दर्य-युक्त सीताजी कन्या-प्रामाण पर रह रही थी। उस महाभाग (गम) द्वारा उग (सीता) पर पड़ी थी और उसकी दृष्टि उग महाभाग पर, तग नारानन्द और तार-

की आँखे एक दूसरे को पीले लगीं उनकी प्रज्ञा भी अपना आश्रय छोड़कर एक दूसरे में
जा मिली।

(सीताजी के) नवन-त्पी दो अद्वितीय वरछे (रामचन्द्र की) पुष्ट भुजाओं में
जा गईं। सुखमित होनेवाले वीर पट-कक्षण पहले हुए (रामचन्द्र) के वधन नवन भी मोहिनी-
तृतीय उन देवी के त्तेनों में गड़ गये।

न्य-माधुर्य को पीलेवाले नवन-पाश से ठोनों के मन बंध गये और उस बधन के
द्वारा खिंचे जाकर हड़ बनुप-धारी महाभाग तथा तुकीली दृष्टियुक्त तरणी एक दूसरे के हृदय
में पहुँच गये।

नृदीविहीन (सीता) एवं दोपर्गहित (नाम)। दो शरीर, किन्तु एक प्राण हो
गये। विराल ज्ञानभाग में वाचिशेष के पर्यक पर भाध रहनेवाले वे दोनों एक दूसरे से
वियुक्त हों गये थे अब पुनः सयुक्त हो रहे हैं, तो फिर उनके प्रेम का वर्णन करना क्या
आवश्यक है ?

उम अनीम सुन्दर की भुजाओं का आलिगन नहीं पा सकी, अतः स्वर्ण-कक्षण-
धारिणी (सीता) प्रतिमा के जैसे स्थिर खड़ी रह गई। उधर सीताजी की सृति, मन की
दृढ़ता तथा शरीर-मांदर्य को नाय लेकर कुमार भी सुनिवर का अनुभरण करते हुए आगे चले
ओंग दृष्टि-पथ से बोझले हों गये।

अपने नवन-मार्ग में सुरगन्धित पुण्यधारी (रामचन्द्र) के बद्धय होते ही (सीताजी
के) मन नामक मत्तगज वा वृत्ति नामक वकुश भी हट गया। एवं चन्द्रकला-सदृश ललाट से
शोभित उनके क्रीति की क्या दशा हुई ? (क्षी-सुलभ लज्जा, सकोच आदि गुण भी छोड़
चले ।)

विष्णु के अवतार-भूत (रामचन्द्र) के सम्मुख होते ही सीता के मन और शरीर
उनकी ततु-नृद्देश कर्ट के जैसे ही कपित हो उठे। प्रेम की व्याधि उनके नवन-मार्ग से शरीर
में जा पहुँची और हुर्च ही नारे शगीर में इस तरह फैल गई, जैसे दध में जामन फैल जाता है।

सीता देवी काम-व्याधि ने पीड़ित हुई। क्षण-क्षण वर्धमान उम व्याधि को वे
किसी पर प्रबृद्ध भी नहीं कर सकती थी। मूक व्याधि के समान अपनी पीड़ा को मन में ही
छिपाये व अति व्याकुल हो उठी। उसी समय मन्मथ ने भी एक वाण उनके मन में छोड़ा,
मानो जलत आग में किसी ने इधन डाल दिया हो।

सीताजों की आँखें कान के ऊज्ज्वल ताटकों तक फैल जाती थीं और बिना तेल
लगाये तथा यिना आग में तपाये ही तीक्ष्ण फलवाले वरछे की जंसी लगती थी। ऐसे नवन से
शोभित (देवेही) अब आग में पड़ी लता के मद्दरा झुलश गई। उनके केशपाश ढीले
होकर विकर गये और बन्त्र भी अग्नि ने नीचे फिल फूँ।

विवोग-व्याधि ने पीड़ित होने के कारण (सीता) अपनी मेखला, शख-निर्मित
मग्न शरीर की काति, मन की दृढ़ता न्यृति आदि नव खो वैठी। (क्षीरसागर मधन
च गढ़) अपनी स्मृति सप्तक्ष देवताओं को देकर समृद्ध जिम प्रकार कातिहीन हो गया था,

सखियों ने देखा कि स्वर्ण-ताटक धारिणी, मयूर-मट्टश उसके आभरण स्त्री हों रहे ह, उनकी लज्जा भी गलित हो रही है, स्तनों पर मन्मथ-वाण का आघात होने से व शंग-विद्ध हरिणी के समान तड़प रही है। उम दशा को ग्रास सीता को वे बढ़ी कठिनाई ने उपचार के लिए ले गई।

जिनके भीन-तुल्य नयन ताटक-युक्त कानों के साथ मदा समर करते रहते थे, उनको (सखियों ने) कोमल शश्या पर लिटा दिया, जिसपर उनके कर-चरण मट्टश ही, अति मृदु पल्लव तथा पुष्पदल विछाये गये थे और अतिशीतल ओस की वंदें भी छिड़काई गई थीं।

सुगधि से भरे नवपुष्पों की उस सेज पर जब वे लेटी, तब उनके शरीर-ताप से वह शश्या झुलसकर ऐसी हो गई, जैसे पाला पड़ने पर कमलों से भरा सर्गेवर या राहुग्रस्त होने पर चन्द्रमा।

पर्वत की चोटी पर मेघ-वर्षा के समान सीताजी के स्तनों पर उनके दीर्घ नयनों से मोती की धारा फरने लगी। धनुष-सद्वश भाहों से शोभित उनके ललाट पर स्वंद-विदु छा जाते, किंतु दूसरे ही क्षण भट्टी से निकले हुए धुएँ के जैसे उनके उष्ण उच्छ्वासों के लगने से तुरत सूख जाते थे।

कठोर हृदयवाले वन्य व्याध के शर से आहत मयूर की जां दशा होती है, वही उनकी भी हो गई। विरह की अभि मे लता-सुकुमार उनका शरीर झुलन गया और उम पुष्प-पर्यंक पर लुढ़क गया।

उन्हें वे कोमल पुष्प भी काटे जैसे लगे। चदन का लेप शरीर के ताप स जलकर चिनगारी बनकर गिर पड़ा। आभरणों के भीतर के डोरे जलकर टूट गये और पर्यंक पर के पल्लव झुलसकर काले हो गये।

सीताजी की धाइयाँ, दासियों, माता, वहने—सब उनकी बेदना को देखकर बहुत ही व्याकुल हुईं। उनकी सभक्ष में नहीं आया कि उन्हें कोन-सी व्याधि है। उन्होंने मोचा कि किसी की नजर लग गई है और वे नीराजन करके वह दोप दूर करने की चेष्टा करने लगीं।

सखियाँ पर्खे झल रही थीं, पर पर्खे की हवा से उनका विरह-ताप शात न हुआ, और बढ़ता ही गया, जिससे उनके आभरण तथा शरीर पर के पुष्पहार, जो अब तक कुम्हलाये-से दीख पड़ते थे, अब झुलस गये और कुछ जलने भी लगे। उस समय सीताजी का वह दृश्य ऐसा था, मानो कोई सोने की प्रतिमा तपाईं जाकर पिघल रही हो।

वे विरह में प्रलाप करने लगीं। वह उनके (रामचन्द्र के) हृषि-ताप्य वा स्मरण करती हुई, कभी उनके क्षेणी को पुष्पालवृत्त अधकार-वन कहती, उनके दोनों भुजाओं को दो स्त्रभ या मरकत-रत्नमय दो पर्वत कहती, उनके नवनों को कमल-पुष्प कहती, और कभी कहती कि यह तो कोई मेघ इन्द्र-वनुष के नाथ ही वाकाश ने धन्ती पर उत्तर आया है।

वह बहती—जो सुन्दर पुरुष मंग हृदय म प्रवेश करके मरी मर्नादृष्टा

चित लज्जा आदि गुणों को गलाकर मेरे प्राणों के नाथ ही पी गया है उमकी पर्वतांपस
भुजाओं में आश्रित बनुप इन्द्र-धनुप नहीं है और वह पुरुष मन्मथ भी नहीं है।

ब्रह्म मैं अपनी नारी-निनग्न रमणीयता, स्वाभाविक लज्जा, मन की स्मृति—इन्हें कहा
भी नहीं देख पा रही हूँ अत. जो पुरुष अपने को मल पठां को दुखाते हुए धरती पर चल
रहा है, वह अवश्य ही एक चोर है, जो नेत्रमार्ग ने हृदय में प्रवेश करने में निषुण है।

इन्द्रनील-तुल्य केश, चन्द्र-मद्यश मुख लवी भुजाएँ, सुन्दर नीलरत्न-पर्वत के
जेंम उनके कधि, वे मेरे प्राणों को पीनेवाले नहीं हैं किंतु इन मव्वमें बढ़कर उनकी वह
मुक्कान है, जो मेरे प्राणों को पी रही है।

विशाल उज्ज्वल तथा देखनेवालों के प्राण हरनेवाला उनका वक्ष तथा भव्य
तामरम-मद्यश उनके चरण ही नहीं, किंतु मन्त्र हाथी की जैमी उनकी पदगति भी है जो, मेरे
मन में अमिट त्प में अकित हो गई है।

मैं क्या कहूँ? वह पुरुष देवलोक का निवासी नहीं है क्योंकि उनके पक्ष-
नयनों की पलकें सर्वित होती हैं उनके विशाल कर में बनुष था तथा उनके वक्ष पर
यजोपवीत भी था अत. वह युवक अवश्य कोई राजकुमार ही है।

वह राजकुमार मेरे कौमार्य-रूपी बड़े प्रकार^१ को दाहकर चला गया है, जिसमें
मेरे सहजात महिलाओंचित लज्जा सकोच आदि गुण सुरक्षित थे और मन की दृष्टा-रूपी यत्र
भी मुरक्का के लिए सचालित होते थे। क्या मैं अपने वे विरह-व्याकुल प्राण त्यागने के पूर्व
फिर एक बार उन सुन्दर पुरुष के दर्शन कर सकूँगी?

इम प्रकार के वचन कहती हुड़ी (भीताजी) उन्मत्त-सी प्रलाप करने लगी, वे
कभी कहती—देखो वह सुन्दर (कुमार) वहाँ मेरे सामने खड़ा है, फिर कहती, हाय।
वह बद्धश्य हो गया है। वे अपने विरह-उत्तम मन में विविध प्रकार की कल्पनाएँ करने
लगी।

उम समय (मृद्घि के) आदिकाल से ही उष्ण किरणों को विखेनेवाला सूर्य,
मानो हमगतिवाली सुकुमारी नीता के विरह-ताप की आँच को सह नहीं सका, अतएव
काँपनेवाले अपने दीर्घ करो को संमेटकर समुद्र से जा छवा।

उनी समय मध्या-रूपी कालदेव, पुष्पो की सुगन्धित लेकर वहनेवाले मलयानिल-
रूपी पाश को लिये हुए, रक्त गगन-रूपी लाल-लाल केश और अधकार-रूपी अपने काले रूप
को लेकर आ पहुँचा और समार में अपूर्व उम देवी को और अधिक सताने लगा।

वह सध्याकाल एक भूत के समान बढ़ने लगा। उनके पास आकाश में शब्द
करनेवाले विहग-रूपी 'पटह' था। भूमि पर गर्जन करता हुआ सागर रूपी नृपुर था,
आनमान वी लाली उमका रक्त था और उनके पास पापमय अधकार-रूपी काला कवच था।
इन प्रकार, वह देखने में अति भयकर लगता था।

^१ यहाँ किसी दश की गत में वे जो प्राचीन वाल से दिल्ली के नगरों के प्राकारों में मुरक्का के निमित्त^२ नहीं हैं।

मरोबर-स्पी अभि मे तपा हुआ, सुगध-पुष्पों के मधु-स्पी विष मे दुखा हुआ वह मद मारत सचरण करता हुआ आया और मन्मथ के बाणों ने विछु उनके शरीर मे जा लगा, जिससे मीता अत्यन्त अधीर हो उठी और सध्याकालीन गगन को देखकर डर गई कि वह यस का ही भयकर रूप न हो ।

वह सध्याकाल काले रंग के साथ बढ़ता हुआ आया । मीता सोचने लगी कि दुःखपूर्ण युवतियों के प्राण हरनेवाला यह कौन है ? काला मसुद है ? कालमंब है ? बहुत बड़ा इन्द्रनील पर्वत है ? ‘काया’ पुण है ? नीलकुमुद है ? या नीलोत्पल पुण है ? उनके सामने राज्ञों के झुण्ड जैसे रात्रिकाल बढ़ता आया । (मीताजी गात्रि को सर्वोधित करके कहती हैं) है गत्रि-स्पी कालमर्प । ये नक्त्र तुम्हारे विषदत हैं, मलय-ममीर तुम्हारी फुफकार है, अरुण गगन तुम्हार मुँह का विषकोश है । इनको लेकर तुम कहाँ से आये हो ?

मन्मथ-स्पी अहेरी पहले से ही सुझपर तीर छोटने से विगत नहीं हो रहा ह, तुम भी क्यों अब अपना मुँह बाये मेरी ओर बढ़ रहे हो ? मेरे दो प्राण नहीं हैं, एक ही है, मैं किसी प्रकार से मन्मथ के बाणों से बचने की चेष्टा बर रही हैं, दृतन म तुम कहाँ से आ निकले ? मुझसे तुम्हारा क्या विरोध है ? क्यों तुम स्त्री-हत्या का पाप अपने ऊपर लेना चाहते हो ?

यह दुःखद अधकार जो बढ़ता चला आ रहा ह, विश्व-भर गे व्यात होनेवाला हलाहल तो नहीं है ? समुद्र ही तो नहीं है, जो उमडता चला आ रहा ह ? या उन (रामचन्द्र) का नीलवर्ण ही तो नहीं है, जो सभी लोगों के द्वाग स्मरण किये जाने के कारण सर्वत्र फैल रहा है ? अथवा यह यमराज का रंग ह, जिसको अजन के साथ मिलाकर गगन ओर भूतल पर लीपा जा रहा है ?

उसी समय अपने जोडे से विलग होकर एक क्रान्त पक्षी शब्द करने लगा । (मीता उसको सर्वोधित कर कहती है) —मेरे द्वाष्टपथ मे क्षण-भर के लिए स्थित होकर वे ओकल हो गये । उन्हे रोककर रखनेवाला कोई नहीं रहा । मुझ निम्नहाय पर द्वयान बरके गात्रि के अधकार मे छिपा हुआ मन्मथ मुझपर बाण चला रहा है । तुम भी मुझे क्यों नहाने आये हो ? क्या उसी निष्ठुर कामदेव ने तुम्हें यह कर्म मिखा दिया ह ? अथवा मेर पूर्वजन्म-कृत पाप ही तुम्हारे रूप मे अब मुझे नहाने आये हैं ?

इस प्रकार सोचती हुई (मीता) जब बहुत दुःखी हो रही थी, तब सखियां ने उन्ह गगनस्पशी प्रासाद के ऊपर एक चन्द्रकान्त-वेदिका पर लिटा दिया । अति प्रकाशमान धृतदीपों को उष्णतावर्धक समझकर वहाँ से हटा दिया और तेल-रहित रत्नदीपों को ला रखा जिनके प्रकाश से रात्रि का समय भी दिन के नमान हो गया ।

उसी समय चद्र उदित हुआ । जब देवताओं ने, अपना भोजन अमृत को प्राप्त करने के लिए, मदर पर्वत से बासुकि मर्प को लेपेटकर मसुद का मथन किया था, नव मसुद से गगन-तल पर उठे हुए जलकिन्दु तथा रत्नजाल नक्त्रों से भी अधिक चमक उठे थे, उन समय मसुद ने अमृत का रवर्ण-कलश जिस प्रकार उपर निकला था उसी प्रकार अब चद्र मसुद से ऊपर उठने लगा ।

मृष्टि के आरभ में समस्त विश्व को अपने उदर में आलीन करके जब विष्णु बट-पत्र पर लेटे थे, तब उनकी नाभि-रूपी समुद्र से एक कमल निकला था, जिनपर ब्रह्मदेव भ्रमर बनकर चार वैदों का गान करते हुए बैठे थे। नमुद्र और चट्रमा के उदय होने का दृश्य देना था, माना वीचि-भरा एक अन्य समुद्र शंखतकमल को लेकर शोभायमान हो रहा हो।

आकाश पर नक्षत्र विन्दियों के समान चमकते थे, जिनके मध्य उज्ज्वल चन्द्र निशा के अधकार को चाटता हुआ बढ़ रहा था, उस समय प्राची दिशा की चट्रिका, रजतमय मगल-कलश के समीप रखे हुए कोमल क्रमुकपत्र के समान फैली हुई थी। न जाने, शुक-भाषिणी सीता के लिए वह क्या बनकर रहेगी ?

सध्याराग-रूपी अपने हाथों को फैलाकर समस्त विश्व को आवृत्त करनेवाला जो अधकार था, उसको निगलने के लिए शीतल चन्द्रमा उदित हुआ। उसकी चन्द्रिका सर्वत्र इम प्रकार फैली, जिस प्रकार विशाल जलाशयों तथा खेतों से भरे तिरुप्पणैनल्लूर ग्राम के निवासी 'शद्यपवल्लर की कीर्ति नम, धरती तथा दिशाओं में व्याप्त हो रही हो।

नमुद्र के जल से विशद उज्ज्वल चन्द्रमा नामक एक चतुर बद्ध निकला है। वह अपने करों को ऊपर फैलाकर अतिश्वेत चन्द्रिका रूपी सुधा (चूना) से समस्त ब्रह्माड को पीत रहा है, क्योंकि विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न वह अडगोल बहुत पुराना हो गया है और उसे अब नया बनाना है।

इनी समय कमल-पुष्प सुकुलित हो गये, जिससे लहमी तथा गुजार भरनेवाला भ्रमर-कुल तिरोहित हो गया। (उसके पश्चात) रक्कड़सुद सिर उठाकर ऐसे विकसित हुए, जैसे सर्वत्र अपने आज्ञा-चक्र को सचालित करनेवाले चक्रवर्ती राजा के हटते ही अनेक सामन्त नरेश अपना-अपना स्वतंत्र अधिकार चलाने लगते हैं।

(बढ़ते हुए चन्द्र को डेखकर विरह-तस सीता देवी कहने लगी)—समस्त विश्व को निगलकर बढ़नेवाले अधकार-रूपी काले रग की अग्नि में तुम श्वेत रग की अग्नि बनकर निकले हो। उस मायामय पुन्द्रोत्तम से समुद्र, रूप-रग में हार गया है, इधर मैं भी लोक मार्ग के चिर्छ चलकर उनके प्रेम में अपने को खो बैठी हूँ। इस प्रकार, दुःखी होनेवाले हम दोनों (नमुद्र और सीता) पर तुम निष्ठुरता कर रहे हों।

मागर में उत्पन्न है चन्द्र ! तुम तो कठोर नहीं हो, क्योंकि तुम किसी की हत्या करनेवाले नहीं हो। तुम्हारा जन्म द्वीर समुद्र से हुआ है और तुम्हारे सहोदर हैं अमृत तथा गजगामिनी सुन्दरी लक्ष्मी। ऐसे तुम, क्या अब मुझे जलाने पर तुले हो ?

उपर उठा हुआ चन्द्र-किरण-रूपी हथौड़ा सीता के सुकुमार स्तनों पर चोट करने लगा। जैसे कोई हमिनी आग में गिर पड़ी हो उसी प्रकार सीता कमल-पुष्पों की सेज पर तड़पने लगी।

जब चन्द्र-किरण लगातार चोट करने लगी, तब उनका शरीर तस हुआ, शिथिज हुआ और मेज पर लुटक गया। उनके म्पर्श से कमलदल भुलम गये। उस शुक-भाषिणी देवी नी वह दशा हुई।

ज्यो ज्यो मतिव्यों सुगन्धित चन्दन आदि वा लेप उनके शरीर पर लगाती थी

त्यो-त्यो उनका ताप बढ़ता ही जाता था । वे तड़फड़ा उठीं । पखा कलन में उनके कोमल स्तनों में गरमी बढ़ गई ; क्या समार में काम-व्याधि का औषध भी कही है ?

सीता के शरीर-ताप ने कोमल पुष्पों की सेज भुलाकर काली पड़ जाती थी, तां माता से भी बढ़कर ममता रखनेवाली उनकी टासियाँ सहस्रों शश्याएँ मजा देती थीं ।

मनोहर कन्यावास में पुष्पों की मेज पर हंसिनी-सदृश पड़ी सीता इस प्रकार विरह-विह्वल हो रही थी । उधर उनके घिनुक-जैसी देह-लावण्य को देखने में उम बुमार की क्या दशा हुई, उसका भी थोड़ा वर्णन करेंगे ।

जब ये (विश्वामित्र, रामचन्द्र और लक्ष्मण) महाराज (जनक) के सम्मुख आये, तब उन्होने अत्यन्त आनन्द के साथ उन तीनों की अगवानी की तथा अपने भोग-वैभव से अमरावती की समता करनेवाले गगन-चुंबी प्रासाद में उन्हे ठहराया ।

वीर पुरुष (श्रीराम) की चरण-धूलि के स्पर्श में शाप-मुक्त होनेवाली अहल्या के पुत्र महर्षि (शतानन्द) वहाँ पधारे, मानों समस्त तपस्याएँ साकार होकर आ गई हों ।

कुमारों ने उस आगत तपस्वी को आदर के साथ नमस्कार किया । अनंत मदगुण-पूर्ण (शतानन्द) मुनि ने आशीष दिये और कौशिक के निकट आये ।

गौतम के सत्युन्ने महान् तपस्वी विश्वामित्र को देखकर कहा—इस मिथिला की भूमि ने कैसी तपस्या की थी कि आपके यहाँ पदार्पण का फल उसको प्राप्त हुआ ?

शीतल कमल पर आसीन पुनीत ब्रह्मदेव की समानता करनेवाले, सर्वमैत्री की भावना से पूर्ण तथा महान् तपस्वी शतानन्द में सर्वज्ञ (विश्वामित्र) ने कहा—‘हे तपस्विन सुनें, इस उदार गमचन्द्र ने ब्रजघोष करनेवाली ताड़का का शरीर, मेरा यज्ञ तथा आपकी माता का शाप—तीनों को समाप्त किया है और मेरे मन का क्लेश दूर किया है ।

यह सुनकर शतानन्द ने उत्तर दिया—‘हे तपोधन ! यदि आपकी कृपा रहे, तो इन दोनों वीरों के लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं है । इस प्रकार कहकर—

उन्होने श्रीरामचन्द्र के चन्द्रसुख की ओर देखा, जो अतगी-पुष्प नीलकात मणि नील समुद्र, नीले मेघ तथा नीलोत्पल के समान था, और बोले—

‘ह सुगन्धित पुष्पों की माला पहने हुए प्रभो ! मे आपको एक वृत्तात सुनाता हूँ सुनें । अपूर्व तपस्या करनेवाले ये विश्वामित्र पहले भृतल के राजा बनकर अनेक वर्षों तक नीति से शासन करते रहे ।

राजधर्म में निरत रहने समय एक बार ये आखेट करने के लिए एक घने अरण्य में गये और वहाँ अति प्रख्यात वसिष्ठ महर्षि के निकट जा पहुँचे ।

अरुधती के पति (वसिष्ठ) ने विश्वामित्र नरेश का उच्चित सत्कार किया तभा वैठने के लिए समुच्चित आसन दिया । जब कौशिक वैठे, तब उनको भोजन देने के उद्देश्य में वसिष्ठ ने अपनी सुरभि (गाय) को छुलाया और उसे आदेश दिया वि वह अमृत नद्य भोज्य पदार्थ दे । सुरभि ने आज्ञा के अनुमार तत्काल नभी बन्दुँ उपर्युक्त छर दी ।

उस मुनिवर (वसिष्ठ) ने कौशिक नरेश तथा उनकी मैना वा पद्मन भोजन कराया और कहा—‘आपलोग भर-पेट खाइए । उनके भोजन उसने के उपनात सवासित

पुण्य और श्रेष्ठ चन्दन-लेप भी दिये तब व वहुत सदुष्ट हुए। फिर कुछ सोचकर कहने लगे—
हे तपस्विन्! आप अपने स्थान से उठे भी नहीं, तो भी इस टिव्य धेनु ने मेरी
मारी मेना को पवित्र तथा विद्या भाजन प्रदान कर दिया ऐसी विशेषता से युक्त है यह
गाव। शास्त्रों के पारगत वेदन पड़िनों का कहना है कि सभी उत्तम वस्तुएँ गजाओं के ही
भांग के योग्य होती हैं।

वह धेनु आप जैसे ब्राह्मणों के लिए रखने-योग्य नहीं है। अतः, यह सुरभि सुर्खे
दे दीजिए। कौशिक के ये वचन सुनकर वसिष्ठ कृष्ण तत्र कृष्ण भी कहे विना मौन
रहे। फिर कहा—हे शत्रु-भयकर शत्रुधारी राजन्! मैं वत्कलधारी सुनि हूँ। सुर्खे
यह अधिकार नहीं है कि मैं इने और किमी को दूँ। यदि वह स्वयं आपके पास जाय, तो
उसे ले जायें।

यह सुनकर ‘आप के कथनानुसार ही करूँगा’—कहते हुए कौशिक उठे। उन्होंने
वह उत्ताह में उन सुरभि को बैध लिया और चलने लगे। तो सुरभि वधन तोड़कर वसिष्ठ के
पास आ पहुँची और उनने पृष्ठा—ब्या आपने सुर्खे विश्वामित्र को दे दिया है। वेदादि सभी
तत्त्वों के पारगत (वसिष्ठ) ने कहा—

मैंने विश्वामित्र को दिया नहीं। वह विजयी नरेश स्वयं ही तुम्हें ले जाना
चाहता है। यह सुनते ही सुरभि क्रोध में भर गई तथा वसिष्ठ में यह कहरी हुई कि
आप देखें, वज्रनाद के नमान भेरी वजानेवाली इन सारी मैना को मैं किस प्रकार नष्ट कर
देती हूँ और उनने अपने रोंगटे खंड कर लिये।

तत्क्षण उन कपिला बेनु ने हथियारों के नाथ वर्वर, किंगत, चीन, शोणक आदि
विविध जाति के देसिक उत्तम किये। उन सेनिकों ने कौशिक की वलवती सेना का सहार
कर दिया। यह देखकर विश्वामित्र के पुत्र कुछ हो उठे।

यह सुरभि की शक्ति नहीं, श्रुतिशास्त्र में पड़ित वसिष्ठ की ही माया है। यह
कहते हुए उन व्याशिक-कुमारों ने वसिष्ठ का मिर काटने के लिए उन्हें आ घेरा। तब वसिष्ठ ने
उनको क्रोधार्पण की ज्वाला से भरी दृष्टि में देखा, तत्काल वे सब मृत होकर गिर पडे।

कौशिक ने अपने नौ पुत्रों को मरते हुए देखा तो वे धृत डालने से भड़की हुई
अग्नि के नमान उत्र हो उठे। वे रथ पर बैठकर आये और अपने धनुष को खूब झुका-
कर वसिष्ठ पर एक के पश्चात् एक करके अतिवेग से तीर बरनाने लगे। वसिष्ठ ने अपने
हाथ के ब्रह्मदड को आजा दी कि वह उन तीरों को रोक ले।

(कौशिक ने) माधारण शशों से लेकर दिव्य अल्पों तक अपने अन्यत्त सभी
आयुधों का प्रयोग किया पर वसिष्ठ वा ब्रह्मदड सभी को निगलकर उज्ज्वल हो खड़ा
रहा। तब कौशिक ने मंर को धनुष बनानेवाले (शिव) का ध्यान किया शिव मान्त्रात् हुए
तथा एक वलिष्ठ अल्प ढेकर चले गये।^१

कौशिक ने उम छान्न वा प्रयोग किया। उमे देख देवता डर गये कि अब

^१ तंव गमायण के कुछ नस्कर्त्ता में यह पद्धति नहीं मिलता।—ग्रनु०

तीनों लोक जल जायेंगे, अत. वे उस अस्त्र को आंते हुए देखकर स्वयं आगे बढ़े तथा उम स्वयं ही निगल लिया। उम अस्त्र की ज्वालाएँ उनके शरीर के भीतर में बाहर निकलने लगी, जिनमें वे और भी तेजस्वी हो निखर उठे। विद्युंभक रुद्रास्त्र की यह दशा हुई।

कौशिक ने यह सब देखा। वे सोचने लगे—वर्दों के ज्ञाता महर्षियों के वश में जो शक्ति तथा तेज रहते हैं, वे अन्य (लोगों) के पास नहीं होते। समस्त पृथ्वी पर राज्य करने की शक्ति भी उम ब्रह्मानज के सामने कुछ भी नहीं। यह सोचकर उन्होंने कठिन तपस्या करने की ठानी और इद्र की दिशा में (प्राची में) चले गये।

गजाओं के अधिराज (विश्वामित्र) महिमामय (वर्मिष्ठ) की विजय का ही स्मरण करते हुए चले और घोर तपस्या करने लगे। यह देखकर इड डग और अप्सराओं में श्रेष्ठ तिलोत्तमा को उनकी तपस्या भग करने के लिए भेजा।

कौशिक उम सुन्दरी के रूप को देखकर काम-पीडित हो उठे, काम-नमुद्र में छूटकर अपनी सुध-बृध खो वैठे और उमकी सगति में असख्य दिन विताये। जब उनका विवेक जागा, तब काम-भोग को विष के समान मानकर वे अद्वाह कर उठे।

यब कौशिक ने जाना कि यह सब इद्र की बचना है, उन्होंने कुछ ही तिलोत्तमा को शाप दिया कि वह मनुष्य-योनि में जन्म ले। लाल नेत्रों और क्रोब-भरे मन को लेकर वे वहाँ से चल खड़े हुए और यम-दिशा (दक्षिण) की ओर चले गये।

कौशिक दक्षिण दिशा में तप कर रहे थे। उसी समय अयोध्या के राजा त्रिशकुने अपने गुरु वर्मिष्ठ से प्रार्थना की कि मैं सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ, आप मेरी इच्छा पूरी करें। उन्होंने उत्तर दिया कि मुझसे यह कार्य नहीं हो सकता।

वर्मिष्ठ के ऐसा कहने पर त्रिशकु बोला—यदि आपने यह कार्य नहीं हो सकता है, तो मैं किसी अन्य व्यक्ति की महायता से अपनी अभीष्ट-मिथि के लिए यज्ञ करूँगा। इम पर वसिष्ठ ने कुछ होकर उने शाप दिया कि तुम अपने प्राचीन गुरु को छोड़कर दग्ध का आश्रय खोज रहे हो, अत तुम चडाल बन जाओ।

(शतानद ने रागचद्र को आगे की कहानी सुनाई) है वत्स ! ब्रह्मा के मानस-पुत्र (वर्मिष्ठ) के शाप में गजाधिराज त्रिशकु का वह तेज मिट गया, जिसने सूर्य भी लजित होता था। सूर्योदय-नेता के विकसित क्षमल-मद्दश उमके मुख की वह कांति नष्ट हो गई। वह चडाल बन गया, जिसके रूप की सर्वत्र निन्दा होती है।

उमके रतहार मुकुट तथा अन्य आभण लोहे के बन गये, उमके बन्ध नथ यजोपवीत चर्ममय हो गये। उमका शरीर मलिन हो गया और उमका गंदर्थ मिट गया। जब वह इम रूप को लेकर अयोध्या को लौटा, तब सभी लोग उमका धिक्कार बरने लगे। तब दुखी होकर वह अरण्य में चला गया।

कुछ दिनों के उपरात वह उमी अरण्य में तप करनेवाले विश्वामित्र के आश्रम के पास आया। विश्वामित्र के पूछने पर कि तुम कौन हो वर्ण आये हैं ? त्रिशकु ने नमस्कार करके अपनी मारी कहानी सुनाई।

विश्वामित्र त्रिशक का वृत्तात सुनकर हँग पर्दे और योक्ते— यम उन्ना ही।

उहनों, मैं एक बड़ा यज्ञ करूँगा और तुम्हें मदेह स्वर्ग पहुँचा दूँगा । उन्होंने बडे-बडे ऋषियों को बुलाया उनका निमंत्रण पाकर आमपास के सभी सुनि आ गये ।

किंतु वसिष्ठ के पुत्रों ने कह दिया—‘हमने यह कही नहीं पढ़ा है कि कोई ज्ञात्रिय किसी चडाल के लिए यज्ञ कराये ।’ हम इस यज्ञ के लिए नहीं आयेंगे । (यह सुनकर) उन्होंने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि वे नीच कर्म करनेवाले व्याघ बन जायें । तुरत वसिष्ठ-कुमार व्याघ बनकर जगलों से भटकने लगे । विश्वामित्र यज्ञ करने लगे और देवताओं को हविर्माण स्वीकार करने के लिए बुलाया ।

(परन्तु) देवों ने उस यज्ञ की निंदा की कि यह यज्ञ एक चाडाल के निमित्त किया जा रहा है और इसका हविर्माण लेने के लिए उनसे शीघ्र आने को कहा जा रहा है । वे इस पर हँसे और हँसकर रह गये । किंतु विश्वामित्र रुकनेवाले नहीं थे । उन्होंने कहा—‘मैं अपने तपोबल से कहता हूँ कि तुम स्वर्ग जाओ, इसके लिए किसी की सहायता आवश्यक नहीं ।’ त्रिशकु स्वर्ग पर चढ़ने लगा ।

जब वह स्वर्ग में पहुँचा, तब उमे देखकर देवता क्रुद्ध हो उठे । ‘यह चंडाल स्वर्ग में कैसे रह सकता है ? यह भृतल पर लौट जाय ।’—यों कहकर उमे नीचे गिरा दिया । निराधार हो आँधा गिरता हुआ त्रिशकु कौशिक को संवोधित करके चिल्लाया कि हे सुनि, मेरी रक्षा करो । तब विश्वामित्र यज्ञ के जैसे गर्जन में अङ्गहास करते हुए बोले—‘वही ठहर । वहों ठहर ।’

उन्होंने कहा—देवगण ने मेरा निरादर किया है । अब मैं अपर स्वर्गलोक तथा उसके लिए इन्द्र आदि देवों की नई सुष्टि करूँगा नया आकाश सिरज़ूँगा ; जिसमें नये मर्याद, नये चब्द तथा नये ग्रह एव नये नक्षत्र अपने पूरे प्रकाश-महित दक्षिण दिशा से उत्तर की ओर सचरण करते रहेंगे । इतना ही नहीं, मैं सभी स्थावर तथा जगम वस्तुओं की भी प्रति-सुष्टि करूँगा ।

मधु-भरे कल्पक वृक्ष का स्वामी इद्र, चतुर्मुख ब्रह्मदेव, नीलकण्ठ महादेव तथा अन्य देव और सुनिगण नव मिलकर विश्वामित्र के समीप आ पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि हे सुनिवर ! हमें ज्ञामा करें । शरणागत की रक्षा करने की आपकी यह प्रतिज्ञा नितान्त धर्मसंगत है, अतः त्रिशकु तारागण के मध्य प्रकाशमान हो स्थित रहेगा ।

फिर उन्होंने उनमे कहा—आप उत्तम राजविंशि हैं । आपकी महिमा को जानते हुए (सत्ताईम नक्षत्रों में ने) पाँच नक्षत्र दक्षिण दिशा में आकर स्थित हींगे । यह कहकर देवगण चला गया । तदुपरांत वे तपोनिगत (कौशिक) शीघ्र ही महामसुड के अधिष्ठाता वन्धु की दिशा (पश्चिम) में गये और वहाँ तपस्या करने लगे ।

अवगीप नामक एक महाराज थे, जिनके पास धनुष-वाण तथा दृढ़ खड्ग धारण किये विशाल मैना थी, जो सुधाम मधुर भाषण करते थे, और जो ससार के समस्त प्राणिवर्ग के लिए प्राण-ममान ही प्रिय थे । वे एकवार नर-मेघ करने का उपक्रम करने लगे । गतवर्ध एक वालक को क्य बरने के उद्देश्य में वे सपत्निवान नरेश स्वर्णरथ पर आसू द्वारा अग्नियों में (वालक को) टूँटने हुए चले ।

वह विजयी नरेण ऋचीक मुनि के पुष्प-पल्लवों से पूर्ण उपवन में जा पहुँचे तथा उनसे उनके एक पुत्र को माँगा। ऋचीक के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ का विक्रय करने के लिए माता सम्मत नहीं हुई, क्योंकि माता का स्नेह कनिष्ठ पुत्र पर अधिक होता है। पिता (ऋचीक) उपेष्ठ पुत्र से अधिक ममता रखने के कारण उसका विक्रय करने को गजी नहीं हुए। माता-पिता दोनों से उपेक्षित मध्यम पुत्र शुनःशेष अपनी अमहाय वशा पर रथ्य हैं पड़ा और अवरीप से बोला—

मेरे पोषणकर्ता पिता (ऋचीक) को अभीष्ट द्रव्य दो, जिससे उनका सारा दारिद्र्य दूर हो जाये। फिर अपने पिता को नमस्कार करके शुनःशेष अवरीप के निर्विग्रीध चलने-वाले रलजटित रथ पर चढ़कर चल पड़ा। डतने में प्रखर किरणीबाला सर्य आकाश की चोटी पर जा पहुँचा।

दोपहर हो जाने से राजा उस स्थान पर (विश्वामित्र के तपोवन के निकट) रथ में उत्तर गये और मध्याहोचित नित्य-कर्म करने लगे। सद्गुण शुनःशेष ने भी अपने नित्य-कर्म करने के निमित्त जाकर वहाँ निष्कलकच्चित् विश्वामित्र को देखा और उनके चरणों पर मिर रख दिया।

मृत्यु-भय-ग्रस्त तथा चरणों पर नत, उस मुनि-कुमार पर उत्तम गुणवान् मुनि की मधुर दृष्टि पड़ी। उन्होंने उससे कहा—कहो, तुम्हारे भय का कारण क्या है? शुनःशेष ने निवेदन किया—हे धर्म के तत्त्वज! आपकी अग्रजा मेरी माता तथा मेरे पिता ने वडी संपत्ति के बदले में मुझे अवरीप को दे दिया है।

अपनी भगिनी और वहनोई के ऐसे कर्म को सुनकर मुनिवर (विश्वामित्र) ने शुनःशेष को अभय-वचन देकर कहा—तुम दुःखी मत होओ। मैं तुम्हारी प्राण-रक्षा करूँगा। फिर, उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि उनमें से कोई अवरीप के नर-मेघ के लिए आये। पर उनके सभी पुत्र उसके लिए सम्मत न होकर वहाँ से खिसक गये। यह देखकर—

विश्वामित्र के दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो गये, जिनसे उत्थकालीन सर्य भी लजित हो गया। उनके मन में क्रोध-ताप भर गया और उनके रोम-रोम से चिनगारियाँ निकली, तो उनकी आँच से बड़वाणि भी झुलस गई। उन्होंने अपने पुत्रों को शाप दिया—हे निष्ठुर चित्तवालो! तुम लोग अमम्य पुलिन्द बनकर अरण्यों में कष्ट भोगो।

वसिष्ठ महामुनि के कोप से जो चार पुत्र पहले बच गये थे, उन्हें अन्व व्याध बनाने के पश्चात् उन्होंने अपने अच्छे भाँजे को आश्वासन दिया कि तुम अपने मन की पीटा छोड़ो मैं अभी तुम्हें दो मत्रों का उपदेश देता हूँ। फिर मत्रोपदेश करके कहा—

(शतानद ने रामचन्द्र से कहा)—हे मधुपूर्ण मृदु पुष्पो मे अलघृत (राम)! विश्वामित्र ने शुनःशेष को यह निर्देश दिया कि तुम अवरीप के सम जाओ और जब युप-स्तम्भ के साथ तुम्हे (याग-पशु के रूप में) बौधा जाय, तब इन मत्रों का जप करो, तरत ही ब्रह्मा, स्वर्द्धादि देवता अपना-अपना हविर्माण लेने के लिए आ जायेंगे। इसमें तुम्हारे प्राप वच्चेंगे तथा राजा का यज्ञ भी पूरा हो जायगा। शुनःशेष संतप्त हो विश्वामित्र की प्रशंसा करता हुआ वहाँ से विदा हुआ।

उम सुनिकुमार ने बंदज्ञ श्रृंपि के कथनानुसार ही यज्ञ में मत्र का जप किया। तुरत ही विशाल पञ्च-युक्त गच्छ हम, ऋषभ वादि वाहनों के अधिष्ठाता त्रिदेव, अन्य देव परिवार-ममेत, उम यज्ञशाला से आ उपस्थित हुए और उम सुनि-कुमार के प्राणों की तथा वडविहित यज्ञ की भी रक्षा की। अब सुनिवर (विश्वामित्र) भी उत्तर दिशा की ओर चल पड़े।

उत्तर दिशा में पहुँचकर विश्वामित्र तपोमग्न हुए। अपने कर-कमल से नासिका को बन्द किया, डडा को पिगला^१ से दवाया और हृदय में एकाद्वय प्रणव का ध्यान करते रहे। इन प्रकार, अनेक वर्ष (ध्यान-मग्न) रहने पर कुडलिनी मूल की अस्ति से उनका महन्तार स्फुटित हुआ और उनके कपाल में तमपुज उठे और सभी लोकों को आवृत करने लगे जिन्हें सभी डर गये।

उनके कपाल से उत्थित वह धुयाँ विश्व-भर में ऐसे फैल गया, जैसे त्रिपुर-दाह करनेवाले (शिव) ने गजासुर का महार करके उमके चर्म को अपने शरीर से ममेट लिया हो, या प्रलय-मेघ ही विर आये हों।

सभी लोक अधकार में छूट गये। अति प्रखर सर्व के किरण-जाल भी उम तम ने अदृश्य ही गये। दिव्यालों तथा धरणी को धारण करनेवाले दिव्याजों की आँखें उम गाढ़ अधकार में अधी हो गईं।

नम म, जहाँ ससार के जीवन-प्रद घन-समूह धिरे रहते हैं, वहाँ अब धुयाँ भर गया। इनने धरती के नभी चर-अच्चर, पदार्थ-समुदाय भयभीत हो उठे। खर-किरण (सर्व) के कर कही भी आगे न बढ़ सके और सर्वत् मार्ग को रुद्ध पाकर लौट आये। सभी देवता धर-धर कौपने लगे।

पुडरीक पर स्थित ब्रह्मदेव, गच्छवाहन विष्णु, वृषभ पर मच्चरण करनेवाले शकर, वज्रधारी इन्द्र तथा अन्य देवता पृथक्-पृथक् चलकर उम तपोधन के समीप आ पहुँचे।

अर्धचंद्र को गिर पर धारण करनेवाले (शिव), हरित त्रुलसीमाला-वारी (विष्णु) तथा उम विष्णु के नामि-कमल पर आसीन ब्रह्मा—इन तीनों ने विश्वामित्र से कहा—हे महान् तण्णीवन। हम्हारे अर्तिरिक्त अन्य कौन ऐसा है, जो वेदों का पारगत हो।

उनके बचन सुनकर विश्वामित्र अपना निर नवाकर, दोनों कर-कमल जोड़े खड़े रहे और वह कहकर कि अमीष पुण्य-फल सुझे अभी प्राप्त हुआ है, आनन्द से फूल उठे। फिर, सभी देव अपने-अपने स्थान पर जा पहुँचे।

वह प्राचीन युग की घटना है। इन कौशिक के समान नपोमहिमा से लुक्त अन्य ओड़ नहीं हैं। इम नियमनिष्ठ नीतिज्ञ की करणा आप दोनों को मिली है। अब आपके लिए अनभव कार्य दृष्ट भी नहीं है। अनतगुण-पूर्ण शतानन्द ने इन शब्दों में राम-लक्ष्मण औं विश्वामित्र की कहानी सुनाई।

गौतम के प्रियपुत्र शतानन्द के सुख से वह वृत्तान्त अवण करके वे दोनों वीर

^१ डडा औं पिगला ने दवाना—वह गुवायु की एक प्रक्रिया है।

विस्मय तथा आनन्द से भर गये । उन्होंने उन तपरवी के चरणों की बन्दना की ओर व उन्हें आशीष देकर अपने आवास को लौटे ।

विश्वामित्र तथा लक्ष्मण जब अपनी-अपनी शम्भा पर जाकर लैटे, तब गमनन्द किसी तमोमय फल के समान ऐसे रह गये कि वहाँ पर केवल निशा थीं, चन्द्र था एवं नन्द या मीता (की स्मृति) थीं तथा स्वयं राम थे ।

(राम मोचने लगे) कदाचित् कोई विजली मेघ ने अलग होकर नारी के सुन्दर रूप से आ उपस्थित हुई है । वहुत मोचने पर भी मेरे समझ नहीं पा रहा हूँ कि यह क्या है क्या नहीं है ? उस रूप को मेरे अपने नेत्रों और मन में अकित देख रहा हूँ ।

उस सुन्दरी (सीता) के नयन उस क्षीरसमुद्र के जैसे प्रकाशमान हैं जहाँ कालवर्ण विष्णु आदिशेष पर लेटे रहते हैं । अब वह सुन्दरी मेरे हृदय-रूपी ब्रह्मल में आ विगजी है । अतः, कदाचित् वह पक्षज-निवासिनी लड़मी ही है ।

यद्यपि मुझपर वह रमणी करणाहीन है, तथापि मेरा मन उमपर मुख्य ही गया है । उसने भयदायक काम-पीड़ा उत्पन्न करनेवाले अपने विष-मदृश नयनों से मुझे पी-मा लिया है अतः अब मुझे इस ससार के सभी चर-अचर वस्तु-ममूँ उसी रमणी के सोने के गग म अकित-से दीखते हैं ।

यद्यपि मैं अपने इस अभाग वक्त ये उस सुन्दरी के स्वर्ण-कलण-तुल्य स्तनों का— जहाँ पर आभरण स्पष्टित होते रहते हैं—आलिंगन नहीं कर पाया हूँ, तथापि मेरे सोचता हैं कि क्या मैं फिर उसकी उज्ज्वल चन्द्रिका जैसी हँसी को तथा उसके विवरकल-तुल्य शंधर को कभी देख सकूँगा ?

मनोहर मेखला से भूषित रथ-सदृश नितव एक है, खड्ग-जैसे ठो-ठो नयन हैं दो पीन स्तन भी हैं तथा मुख पर अकित मदहास भी एक है । हाय ! अपने पराक्रम में प्रख्यात यम-सदृश (मुझे मारने के लिए) क्या इतने आयुधों की आवश्यकता है ?

रसपूर्ण इन्नु को धनुष बनाकर और सुन्दरी को व्याज बनाकर यदि मन्मथ मुझ पर पुष्पवाणों की वर्पा करे तथा मुझे परास्त कर दे, तो अब शौर्य नामक गुण किसीं पान चेता ।

यह चाँदनी ऐसी फैली है, मानों क्षीर-समुद्र का गमीर जल समार वां निगलने के लिए उमड़ पड़ा हो । ज्यो-ज्यो मैं उस रमणी का स्मरण करता हूँ, त्यो-त्यो वह चौड़नी जैसे प्राणों को समूल उखाड़ने लगती है । क्या समार मेरे इच्छत रग का विष भी होता है ?

क्या मेरा शुद्ध मन भी मन्मार्ग से हटकर अनैतिक मार्ग पर चल सकता है ? (नहीं) अब यदि यह मन इस नारी पर सुख हुआ है, तो इसका बारण वही है कि वह चाशनी (मिसरी) जैसी मधुर बोलीचाली तथा सोने के रगनाली वाला वृमारी ही है । इनमें कोई मन्देह नहीं है ।

इतने में रात्रि व्यतीत हुई, चन्द्र पश्चिम समुद्र में ड्रव गया, मानों गर्वनाल-रूपी राजा के मरने पर उसका उज्ज्वल श्वेतच्छुच्र गिर गया हो, वा पश्चिम दिशा रूपी नारी के अति प्रकाशमान भाल पर रहनेवाला वर्जल आभग्न खो गया हो ।

अपने प्रियतम चन्द्र के चले जाने पर उसकी प्रेयसी दिशा-नारियों ने मानो अपने शरीर पर लगे हुए मनोज्ञ श्वेतचन्द्रन रस को शोक के कारण पीछा दिया हो, त्योही चन्द्र के अन्तज्ञत हांते ही उसकी चन्द्रिका भी अदृश्य हो गई।

सधन पुष्पहार को वारण करनेवाले पुरुषोत्तम (श्रीरामचन्द्र) जिस समय काम-पीडा से इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे, उसी समय रक्तवर्ण उष्ण-किरण (सूर्य) व्याकुल-हृदय कमलिनी-स्त्री अपनी प्रियतमा का मुख विकसित करता हुआ उदित हुआ, मानो लाल विन्दियों से अलकृत अधकार-स्त्री मत्तगज का चर्म धारण करनेवाले, उदय-पर्वत-स्त्री रुद्र के भाल का अग्नि-नेत्र ही खुल गया हो।

उस महान् उदयाचल के समस्त शिखरों पर वालसूर्य की अरुण-किरणे फैल गई, मानो नूर्य के अति वेगवान् तथा शक्तिशाली हरे रंग के धोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूलि ही उदयाचल पर फैल रही है और अर्ध्य-प्रदान के लिए द्विजों के हाथ में लिये हुए मधुसच्चित पुष्प तथा जल के प्रवाह में वह धूलि मिक्क हो रही हो (अथवा) मानो उष्ण-किरण (सूर्य) प्राची (स्त्री) दिग्गज (के मस्तक) पर सिंदूर का तिलक लगा रहा हो।

जिस प्रकार शत्रु की विजय करने या धन कमाने के लिए दूर देशों में गये हुए ग्राण-गमान अपने प्रिय पति को सुन्दर रथों पर चढ़कर वापस लौटते हुए देखकर माध्वी पर्तियों के मन आनन्द से भर जाते हैं और उनकी काति लौट आती है, उसी प्रकार कमलिनी-कुल के मुख विकसित हुए। उन कमलों के कारण मरोबर भी सौदर्य से संपन्न हो गये।

आकाश-स्त्री रगसन्ध पर असर्व वेदो-सहित किन्नरों के गाते हुए, सभी लोकों द्वारा स्तोत्र-पाठ होते हुए, देवों, मुनियों तथा ब्राह्मणों के हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए एव मागर-स्त्री गर्जन करनेवाले 'मर्दल'^१ के वज्रं हुए, सूर्य की किरणें चारों ओर फैल गईं, मानो उज्ज्वल सूर्य-स्त्री ललाट-नेत्र से सुशोभित रुद्र ही नृत्य कर रहा हो और उसकी लाल जटाएँ चारों ओर विखरी हों।

विनाशकागी चक्रायुध को त्यागकर अनुपम वर्तुल तथा दृढ़ धनुष को धारण करनेवाले श्यामल (गमचन्द्र) जो सहस्रफन (आदिशेष) के महस्त माणिक्य-दीपों से जाज्वल्यमान शेष-शश्या का त्याग कर अब वियोग-स्त्री गमीर समुद्र में लेंटे हुए थे। एक चक्र-रथवाला सर्व जब अपने को मल करो ने उनके चरण धीरे-धीरे सहलाने लगा, तब वे व्याकुल निद्रा का त्याग कर उठे ओर गत्रि-स्त्री समुद्र के तट पर पहुँचे।

वह रजनी भी ऐसी धीरी, मानो एक कल्प व्यतीत हुआ हो। निद्रा से उठकर मत्तगज के समान वे नित्य-कर्म ने निवृत्त हुए। किर, श्रुति-मद्वश महातपस्वी (विश्वामित्र) के चरणों पर न त हुए। तब वे अपने प्रिय भाई लक्ष्मण को साथ लेकर सुगन्धित पुष्पहार तथा रत्न-किरीट ने अलकृत जनक महाराज की बड़ी यजशाला में जा पहुँचे।

उन जनक महागज ने क्रमानुसार वेदोक्त यजकर्म को सपन्न किया। चारों ओर मेघ-गर्जन जैसे नगाड़ों के वज्रं समय, इन्द्र के समान वे चल पड़े और चन्द्रमंडल को हूँने-

^१ मर्दन, एक प्रकार का दोल या नगाड़ा।

बाले अपने प्रासाद में आये । (वहाँ) गलखाचित उत्तम भडप में आमीन हुए तथा उनके पाश्व में महातपस्ती (विश्वामित्र) सुन्दर विजयमाला धारण किये हुए धनुर्हस्त (गमचन्द्र) और उनके अनुज (लक्ष्मण) आमीन हुए ।

जनक महाराज ने वहाँ पर आमीन उत्तमकुल चक्रवर्ती-कुमारों को ऐसे दंखा जैसे वे अपनी आँखों से उन दोनों के मुख-लावण्य को पी रहे हों । फिर, तपस्ती विश्वामित्र के सम्मुख सिर नवाकर प्रश्न किया—हे पूज्यपाद ! ये कौन हैं ? विश्वामित्र ने उत्तर दिया—ये दोनों कुमार महिमामय दशरथ के पुत्र हैं । तुम्हारे यज तेज के दर्शनार्थ आये हैं । तुम्हारे पास रहनेवाले शिव-धनुष को भी वे देखेंगे । फिर, वे उन दोनों कुमारों की महिमा का विवाह करने लगे । (१-१५७)



अध्याय ३४

वंश-महिमा-वर्णन

सूर्य के प्रथम पुत्र मनु को कौन नहीं जानता ? इन्होंके वश में एक ऐसे नरण (पृथु चक्रवर्ती) उत्तम हुआ था, जिसने सभी प्राणियों को भूख से बचाने के लिए अपने तेजस्वी धनुष की सहायता से धेनु-रूप धारण किये हुए पृथ्वी से दुर्ग्रह प्राप्त किया था ।

नवरत्न-खचित मनोहरकिरीटधारी (हे जनक) । इसी वंश के एक इसरे नरेश (इच्छाकु) ने जगत् की व्याधियों तथा पापों को मिटात हुए अनंक वर्ष-पर्यन्त ब्रह्मा की उपासना की थी और ब्रह्मा की कृपा से आदिशेष पर शयन करनेवाली उम परम ज्योति को हम जैसे लोगों के भी दर्शन का विषय बनाते हुए, मनोज श्रीरंगविमान-महित उग परम ज्योति को (पृथ्वी पर) ला दिया था । उन महाराज को जो नहीं जानते, वे अज्ञ हैं ।

इन्ही कुमारों के वश में पहले एक दूसरा राजा उत्तम हुआ था । दवन्द्र ने अपने शत्रु असुरों को पराजित करने में असमर्य हो, उम राजा में प्रार्थना की कि वह उन

असुरों से स्वर्ग की रक्षा करे । तब इन्द्र को अभयदान देकर वह नरेश हाथ में धनुष-वाण लेकर गवा था तथा असुरों को युद्ध में हराया था । स्वयं इन्द्र वृषभ का आकार लेकर (युद्ध में) उस नरेश का वाहन बना था । (वह 'ककुत्स्य' नामक इन्द्रकुल के राजा की कहानी है ।)

उम (ककुत्स्य) महाराज के पश्चात् जो महान् व्यक्ति इस वश में उत्पन्न हुए थे, उनका वर्णन करना मेरे लिए समव नहीं है । इसी वश में एक ऐसा नरेश उत्पन्न हुआ था, जिनने अपने पलित केशों, सकुचित चर्म तथा वार्ढक्य को दूर कर दिया था । जिनने तरगों से शब्दायमान क्षीरमागर को बड़े पर्वत से मधकर अमृत निकाला था और देवेन्द्र को अमर बनाया था । उमकी कीर्ति शब्दों में वर्णित नहीं हो सकती है । (इस पद्म में वर्णित राजा कौन है यह मूल कथानक में नहीं है ।)

युद्ध नमात करके भाले को कोश में ही रखनेवाले (हे जनक) । अब तुमसे युद्ध करने के लिए कोई सन्नद्ध नहीं है । इन राजकुमारों के ऐसे अनेक पूर्वज हुए हैं, जिनका आशाचक त्रिभुवन में चलता था और जिनमें असर्व श्रेष्ठ गुण थे । उनमें एक (माधाता) ने इस प्रकार शामन किया था कि महज वैरी व्याघ्र तथा हिरण एक ही घाट पर जल पिया करते थे ।

अनेक विजयी गजाओं के द्वारा विद्वत् चरणवाले (हे जनक) । सहनशील देवता और दानव एक बार युद्ध करने लगे थे, तब इन्हीं के वशज एक नरेश ने—जिसने बटोक्त गीति ने अपने राज्य पर अभियक्त होकर उसके चिह्नभूत रल-किरीट तथा हार वारण किये थे—प्रकाशमान धनुष धारण करके, धर्मदेवता के समान एकाकी सचरण करता हुआ अमगवती की रक्षा की थी । (यह कदाचित् 'मुचुकुट' नामक राजा है ।)

हे विदुत-सद्वा ज्योतियुक्त दीर्घश्लधारी (जनक) । इस वश के राजाओं की, जो मोन्डर्यवधक वीरकक्षण धारण करनेवाले थे और जो सब प्यारे प्राणियों के प्राण-समान रहकर भूलोक पर शामन करते थे, हम क्या प्रशंसा कर सकते हैं ? इन्हीं में से एक (शिवि) ने एक पक्षी के प्राणों के बढ़ले में अपने प्राण दे दिये थे ।

शत्रु-नरेशों के शरीर मेंदनेवाले शलधारी, हे नृपवर ! इस वश के नरेशों ने (एकवार अश्वमेव अश्व के खां जाने पर) बड़े-बड़े पर्वतों को रास्ते के रोड़ों के समान उड़ा दिया था । इन भूलोक को एक ऊँचा टीला बनाते हुए लवण-जल से भरे सागर को खोदा था । इनकी महिमा को जताने के लिए और क्या कहे ? (यह सगर-कुमारों से सबद्ध घटना ह ।)

हे (शत्रुओं के) माम-मिक्त कार्तिवाले शल को वारण करनेवाले । जब अनतशेष ही उम वश के महत्त्व का विवान नहीं कर सकते हैं तो क्या वह मेरे लिए सुलभ हो सकता है ? पुण्य-भृपित शिवजी के मस्तक पर जो पवित्र गगा आकर ठहरी थी, उसे स्वर्ग से भूतल पर ले आनंदवाला नन्द भी इनी वश में उत्पन्न हुआ था ।

बलक-गहित पूर्णचन्द्र-नमान उज्ज्वल वेतच्छत्रधारी (हे जनक) । इस वश के एवं नन्द ने जलचरण ने भर्ग मागर से धिगी हुई धरती को हरतामलक के समान अपने वश

में कर लिया था। उग्ने वंदोक्त विधान से एक मो दुष्कर यज्ञ सपन्न र्किये थे, जिसमें देवन्द्र भी सकट में पड़ गया था। (कुछ विद्वानों का कहना है कि इसमें वर्णित नरेण 'नहुप' है।)

इस वश में कोई एसा नरेण हुआ था, जिसने चन्द्र को जीता था, किसी ने चद्र को परास्त किया था, किसी ने वाण में दुँट^१ नामक असुर को मारा था और रघु नामक राजा ने इन्द्र को परास्त करके आगे की दिशाओं पर विजय प्राप्त की थी।

इस वश के अज नामक राजा ने अपने धनु-स्पी मदरपवत् को मथनी ननावर शत्रुराजकुल-रूपी समुद्र का मथन किया था और मल्लयुद्ध में कुशल उम राजा ने ज्योतिर्मय मदहास से शोभायमान इन्द्रुमती-स्पी लक्ष्मी देवी को, अपने कधं का उमी प्रकार आभग्न बनाया था,

जिस प्रकार अधकार-समान वर्णवाले विष्णु ने (लक्ष्मी को अपना आभग्न) बनाया था। विविध वाय-घोष से मुखरित राजद्वारवाले (हे जनक)। ऐसा कोई नहीं है, जो अज महाराज के पुत्र दशरथ को नहीं जानता। उन दशरथ के ही ये दोनों पुत्र हैं। यदि चतुर्मुख व्रहा भी इनकी महिमा का यथावत् वर्णन करने लगें, तो उन्हें भी (इनकी महिमा का) पार पाना कठिन है। फिर, भी सुझसे जहाँतक हो सकेगा, मैं उमका वर्णन करूँगा।

जाज्वल्यमान विष्णुचक्र-तुल्य सर्य जिस प्रकार ओमकणों को परास्त करता है, उसी प्रकार वे दशरथ महागज शत्रु-राजाओं को पराजित कर समस्त प्राणी-वर्ग के अविपन्न जीवन विताने में सहायक हुए हैं। अपने हाथ के धनुप के अतिरिक्त अन्य कोई उनका साथी नहीं है (ऐसे पराकमी हैं वे)। वर्म ही उनका कवच है। उन्होंने अपनी नीति से स्वयं मनु को भी जीत लिया है। वे दशरथ सत्तानहीन होने के कारण बहुत दुःखी न।

फिर, दशरथ ने उम ऋष्यशृंग मुनीश्वर की महायता से अपने दुःख से निन्तार पाना चाहा, जो पहले कभी धनुधाकार भाल, मधुरभाषी विवाधर, काले और दीर्घ नयन, मूल्य पर दिये जानेवाले विशाल जघन, विद्युललता-सदृश विकपित कटि से गोभायमान वेश्यायों को स्तन-रूपी शृंगवाले मृग समझकर उनपर मोहित हुए थे और अपने आश्रम को छोड़ उनके साथ ही (रोमपाद के यहाँ) आ गये थे।

दशरथ ने ऋष्यशृंग के चरणों पर नत हो प्रार्थना की (हे मुनि!) गंगी तपो-हीनता के कारण, कच्चुक-वद्ध स्तनवाली मंगी पक्षियों के पवित्र गर्भ से पुण्यालकार के योग्य मस्तकवाले पुत्र उत्पन्न नहीं हुए हैं। अतः, आप मुझे ऐसे मत्पुत्र प्रदान करें, जो गंगे वाड़ समुद्र से आवेषित इस धरणी का शासन कर सके।

ये वचन सुनकर ऋष्यशृंग ने कहा — मैं तुम्हें ऐसे पुत्र प्रदान करूँगा जो इस धरणी का ही नहो, परन्तु सभी लोकों की रक्षा अनायाम ही कर सकेंगे। (इसके लिए) देवताओं के हविर्माण प्राप्त करने योग्य यज्ञ करना चाहिए, उसके लिए आवश्यक वन्याँ मग्न चरं।

दशरथ ने त्वरित ही पुत्र-प्राप्ति के निमित्त-भूत यज्र के लिए आवश्यक सब पदार्थ सम्महीन करा दिये । महान् तपस्वी (ऋष्यशृग) ने पुत्रकामेष्टि-यज्ञ मम्पन्न किया । उस यागाभिसंस्कृतगण का नायक महाभूत, प्रकाशमान सुन्दर थाल में अमृत-तुल्य श्वेत खीर लेकर निकला ।

गुणों में अपना उपमान न रखनेवाले दशरथ ने बेंदों के तत्त्वज्ञ ऋष्यशृग की आज्ञा में स्वर्णपात्र-सहित उस अन्न को क्रमशः रमणीय ललाट-युक्त अपनी तीनों पत्नियों को चार भागों में बॉटकर दिया ।

महान् पापों के पाप के कारण तथा अनन्त बेंदों में कथित धर्मों के धर्म (पुण्य) के कारण अरुण अधरवाली कोशल्या ने इस नीलसमुद्र (राम) को जन्म दिया, जिसके विशाल हस्त में 'कटक' (आभरण) भूषित हैं तथा जिसका सुन्दर रूप चित्र में अंकित करने में असम्भव है ।

कंकय-नरेश की पुत्री (कैकेयी) ने भगत नामक पुत्र को जन्म दिया, जो अनिवार्य नीतिधर्म-त्वपी अनुपम नदियों के द्वारा भरा गया गभीर समुद्र है, अनिन्दनीय सद्गुण-संपन्न है और मौन्दर्य में भी इस (रामचन्द्र) की समता करनेवाला है ।

इन दोनों रानियों में कनिष्ठा (सुमित्रा) ने दो पुत्रों (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) को जन्म दिया जों अपूर्व शक्ति-सपन्न हैं तथा धर्मधाती असुरों को भी कृपा देनेवाले हैं । स्वर्णभय मंसु और उन्नत रजतमय हिमाचल दोनों वटि धनुष धारण करके खड़े हो, तो उन दोनों कुमारों की समानता कर सकेंगे ।

चतुर्वेदों के तुल्य व चारों कुमार सभी विषयों के परिज्ञान में सरस्वती से भी बढ़ कर हैं । वनुर्विद्या में ऐसे हैं कि स्वयं धनुर्वंद भी उनमें परास्त होकर, उनके वशीभूत शत्रु के समान उनकी मेवा में निरत रहता है । वे (चारों वालक) राका-चन्द्र के उदय-काल में आनन्द-धोप के साथ उमड़नेवाले तरगपूर्ण समुद्र के जैसे वद्वतं रहे हैं ।

शत्रुओं का विनाश हो जाने से अब कोश में रखे हुए दीर्घ शूलवाले (हैं जनक) । ये दोनों नाममात्र में उस दशरथ के कुमार हैं, जो (दशरथ) कर देनेवाले सभी नरेशों के द्वारा विनिष्ट तथा वीर-बलयधारी चरणवाले हैं और जो अत्यन्त द्वमाशील हैं । वस्तुतः, इनका उपनयन-सस्कार करके बेंदों की शिक्षा देकर इन्हे पालनेवाले वसिष्ठ ही हैं ।

मैंने सोचा कि मेरे वज्र में अधिक विन्द्र उपस्थित करनेवाले अत्याचारी राज्यसों को इन दोनों कुमारों के द्वारा में मिटा दूँगा । ज्योही मैं इन पुष्पकोमल चरणवाले सुकुमार कुमारों को लेकर अरण्य में गया, ज्योही अमृत शक्तिशालिनी ताड़का नामक राज्यसी स्वयं नामने आ गई ।

३ गजन् । तरगायित ससुद्र जैसे इस श्यामल पुरुष-श्रेष्ठ की इन दीर्घ तथा पुष्ट नील भुजाओं का बल भी तो तुम देखो । इसका एक वाण, युद्ध-रग में लाल-लाल अग्निवर्षा करनेवाले नयनीवाली उस ताड़का का हृव्य चीरकर, पर्वत को भेदकर, वृक्षों को काटकर, वर्ती द्वा चीरता हुआ चला गया ।

गगन के रगवाले तथा आग की लपटों के जंगे वालों से मरे हुए, जलते हुए-से

लगनेवाले (राज्ञमों के) जो सिर कट-कटकर पर्वताकार गिर, उनकी कोई गणना ही नहीं रही । उस ताड़का का एक पुत्र (सुवाहु) एक ही वाण संपर्लोक जा पहुँचा । दूसरा पुत्र (मागीच) कहाँ जा गिरा, उसका पता नहीं है । मैं अपना यज भी सपन्न करके अब यहाँ आ पहुँचा हूँ ।

हे राजन् । यह जानो कि हम इनकी महिमा जानने में भी अगमर्थ हैं । मैं अपनी तपस्या के फलस्वरूप इन्हें ऐसे अस्त्र प्राप्त करके दे सका हूँ, जो समुद्र तथा पर्वत-सहित माझ ससार को जला सकत हैं । वे सभी अस्त्र इनकी आज्ञा के पालक दास बने हुए हैं ।

इनके कमल-सदृश, वीर-वलय-भूषित चरण की रज ही गौतम की पक्षी को (शाप-मुक्त करके) पूर्वरूप प्रदान करनेवाली है । सुझे अपने प्राणों से भी बटकर इस श्यामल पर प्रेम है ।

ऐसा है इस रामचन्द्र का दिव्य चरित तथा भुजवल—यां विश्वामित्र ने कहा ।

(१-२६)

४

अध्याय ३२

धनुर्भग पटल

तब जनक ने विश्वामित्र के प्रति ये वचन कहे—आपको मैं क्या बताऊँ ? मैंने उम मायावी धनुप को प्रणवन्ध कर रखा है, जिसमें मैं अब अपने इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता । भेग मन (इस श्रीगमचन्द्र को देखकर, उसे मीता के योग्य वर समझकर और शिव-धनुप की बात स्मरण करके) अत्यन्त अधीर हो रहा है । यदि यह कुमार धनुप पर डोरी चढ़ा सके, तो मैं दुख-सागर को पारकर जाऊँगा तथा मेरी पुत्री भी भास्यवती होगी ।

यो कहकर जनक ने अपने ममुख स्थित कुछ सेवकों को आदेश दिया कि पर्वत-सदृश उस धनुप को यहाँ ले आओ । ‘यथाजा कहकर चार सेवक टौड़कर उस आयुधागार में गये, जहाँ स्वर्ण-वलयों से अलकृत वह धनुप रखा था ।

अतिवलशाली गज-जैसे शरीरवाले, पहाड़-जैसे पुष्ट तथा लोमश कधोवाले नाठ सहस्र वीर, घड़े-घड़े वर्त्तों पर रखकर उस धनुप को उठा लाये ।

वह धनुप लाया गया, तो विशाल धरती (जहाँ पर एक दीर्घकाल से वह धनुप रखा हुआ था) अपनी पीठ की पीड़ा दूर कर सकी । (उसे देखकर) सुदृढ़ खड़ा ऊचा में गिर भी लज्जित हो गया । समुद्र जैसी जनता शोर-गुल करती हुई उस धनुप को देखने के लिए उमड़ आई । ऐसा लगा कि उस विशाल धनुप को गमने योग्य याली स्थान कही भी नहीं है ।

कुछ लोग कहते थे—शखचक्र-विभूषित हस्तवाला, मिह-सदृश यह (विष्णु जा अवतार रामचन्द्र) यदि इस शिव-धनुप पर टौरी न चढ़ा सके, तो समार में इने तू रमने

बाला भी कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा। यदि आज ही यह कुमार इसे चढ़ा दे, तो सीताजी का शुभ-विवाह नुसपन्न हो जाएगा।

कुछ लोग कहते थे—इस धनुष कहना धोखा है, यह सोने का पहाड़ मेरू है। कुछ कहते थे—त्रिवा ने इसे अपने हाथों से स्पर्श करके नहीं बनाया, किन्तु अपने महान् तप के प्रभाव ने ही इसे निर्मित किया है और कुछ कहते थे—न जाने पूर्व काल में इसे कौन चढ़ाता था?

कुछ लोग कहते थे—दृढ़ मेंक को ही इस धनुष का आकार दिया गया है, या पूर्वकाल में जिस मदरपर्वत से क्षीरमागर को मथा गया था, वही पर्वत इस धनुष के रूप में यहाँ पड़ा है, या प्रभावशाली, प्रकाशमान सर्पराज (आदिशेष) ही है यह, या गगनस्थ दीर्घ इन्द्र-वनुष ही अब किसी प्रकार यहाँ आ गिरा है।

कुछ कहते थे—महाराज ने इसे ले आने की आज्ञा ही क्यों दी? इसे प्रणवध बनानेवाले उनके जैसा बुद्धिहीन व्यक्ति कोई है क्या? कुछ कहते—पूर्व-पुण्य से ही यह कार्य पूर्ण हाँ भी सकता है। कुछ कहते—क्या सीता ने अपने (विवाह के) लिए दाँव पर गड़े गये इस वनुष को कभी देखा भी है?

कुछ कहते—इस वनुष से छोड़े गये वाण का लक्ष्य कौन हो सकता है? कुछ कहते—उस महान् धनुष को अपनी कन्या के सामर्थ्य के अनुरूप ही बनाया है। कुछ कहते—चक्रायुध धारण करनेवाला (महाविष्णु) क्या निश्चय ही इस धनुष को सुका सकता है? कुछ कहते—यह पूर्वजन्म-कृत पाप ही है (जो प्रणवध होकर यहाँ पड़ा है)।

वहाँ एक नर-नारी इस प्रकार के बच्चन कह रहे थे, तब सेवको ने वह धनुष जनक के मम्मुख रखा, जिनसे धरित्री की पीठ नीचे को धूँस गई। उस धनुष को देखते ही वहाँ के गजाओं की भुजाएँ, यह सोचकर कि ‘इसे कोन चढ़ा सकता है?’ कौपने लगी।

जनक महाराज (कभी) क्लभ जैसे उस वीरकुमार (राम) के सौन्दर्य को देखत कभी दुःख देनेवाले उस वडे धनुष को देखते, फिर अपनी पुत्री (सीता) की ओर देखत। उनके मन की अधीरता को जानकर शतानन्द कहने लगे—

मेर को धनुष बनानेवाले शिवजी, अपने पार्श्व में रहनेवाली उमा का अपमान करनेवाले दक्ष के यज्ञ में, ज्ञमारहित क्रोध के साथ, इसी धनुष को लेकर गये थे।

(शिवजी के किये गये आवातों से उन देवताओं के) दाँत और हाथ टूटकर गिर पड़े। वे देवता भागे और अनात स्थानों में जा छिपे। दक्ष की यागाभियाँ ध्वस्त हो गईं तब जाकर त्रिनेत्र तथा अष्टमुजावाले द्वड का क्रोध शान्त हुआ।

उसके बाद शिवजी ने देवों की थगथगहट देखी। उन देवों की आयु अभी शेष थी। अत (शिवजी ने) उस दृढ़ वनुष को इस वृपभ-समान वीर जनक के बंश में उत्पन्न एवं वन्दुग्राहनी नरेण को दिया।

इस वनुष की बठोगता के बारे में सुर्ख कहना ही क्या है? दीर्घजटाधारी (शिव)

तुल्य है मुनिवर (विश्वामित्र) । आपसे बढ़कर सर्वज दूसरा कौन है ? अब रथ के मद्दण जघनवाली जनक की पुत्री इस सीता का वृत्तान्त भी मुनिए ।

एक बार हमने यज्ञ करने का उपक्रम करके लोह-समान दीर्घ शृंगद्वय से भूषित दंग वृपभो के अतिभारी कधो पर स्फटिकमय जुआ रखा और उससे असर्व रत्न-खच्चित हल को वाँधा और उसमें हीरे की बनी फाल लगाकर हृद भूमि को जोता ।

जोततं समय फाल के भिरे पर उदीयमान कातिपूर्ण-सूर्य की जेसी एक सुन्दरी निकल पड़ी, मानो भूमि स्वय नारी की आकृति धारण कर निकल आई हो । वह इतनी सुन्दरी थी कि क्षीराभ्य से स्वच्छ अमृत के साथ उत्पन्न लक्ष्मी भी अपने को छोटी मानकर दूर हटकर खड़ी हो जाय तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करे ।

इस कन्या के गुणों के सवध में क्या बताऊँ ? सभी मदगुण इस लतागी के पास रहकर नव जीवन पाना चाहते हैं और चढ़ा-ऊपरी करते हुए इसके पास था पहुँचते ह । रूप-सौन्दर्य वडी तपस्या करके ऐसी कन्या को प्राप्त कर सका है । विशाल कर्णभरणों में अलकृत इस कन्या के आविर्भाव से अन्य सभी सुन्दरियाँ वेसे ही शोभाहीन हो गईं, जैसे सूर्य से प्रकाशमान नम से गगा के भूमि पर उतर आने से अन्य नदियाँ प्रभावहीन हो गई थी ।

ह सर्वज । (जो सीता का पाणिग्रहण करना चाहता है, उसे) धनुर्विद्या का चारुं अपने व्यापार में प्रकट करना होगा और (उसके लिए) भाग्य का भी बल होना आवश्यक है । ये दोनों (बल) किसी के पास एक साथ नहीं रहते, उनके पृथक्-पृथक् होने पर भी पृथ्वी के सभी राजाओं ने इस सीता को प्राप्त करना चाहा, जैसे समुद्र में निकली हुई लक्ष्मी को सभी देवताओं ने अपनाना चाहा था । ऐसे आश्चर्य का विषय ससार में और क्या होगा ।

अपनी सूँड़ से मद-जल वहानेवाले मत्तगज के जेसे राजा अपनी भारी संनाथी-समेत, कोलाहल मचाते हुए, समुद्र के समान आते और सीता का पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट करत । उनके उत्तर में हम कहत—व्याघ्रचर्म को कटि में तथा गजचर्म को उत्तरीय के रूप में धारण करनेवाले (शिवजी) ने शुद्ध में जिस धनुष का प्रयोग किया था, उसे चढ़ानेवाला ही इस सीता का बर हो सकता है ।

वाणी-रूपी धनुष से लोक की रक्षा करनेवाले (हे विश्वामित्र) । व राजा इस कठोर (शिव) धनुष को चढ़ाने में असमर्थ हुए । परन्तु, वे मन्मथ के छोटे-से ईख के वनुप (के वाणों) को भी महने में असमर्थ थे, इसलिए वे कर्णभरण-विभूषित उस सीताजी को बहुत चाहने लगे, जिसके विवाह के लिए शिवधनुष पण बनाया गया था, अतः वे हमारे साथ युद्ध करने आये ।

हमारे महाराज (जनक) की सेना इस ग्रकार घटती गई जैसे किसी दाता राजा की यशःप्रद सपत्नि घटती है । किन्तु, गुजायमान भ्रमरों से अलवृत वेघराली लटी ने मुशोभित सीता के मोह से आये हुए उन राजाओं की सेनाएँ उनकी इच्छा के नहश ही विफल हुईं ।

उज्ज्वल किरणीटधारी देवो ने जब देखा कि वलशाली सुन्दर मुजावाले थे (जनक) वृपभवाहन (शिव) के धनुष के कारण उत्पन्न शुद्ध में शिथिल पड़ रहे हैं, तब उन्होंने कृपा द्वाके इन्हें चतुरग मेना प्रदान की। उस नेना को देखते ही वे शत्रु राजा डरकर इस प्रकार भाग, जैसे गत में उल्लू को देखकर कौए डरकर भाग जाते हैं।

तब मेर अवतार अन्य कोई राजा इस शिव-धनुष के पास भी नहीं फटका। वे नथी नंश जो डर के मारे भाग खड़े हुए थे, कभी नहीं लौटे। हम यही सोचते रह गये कि अब नीता का विवाह नहीं होनेवाला है। यदि वह कुमार (राम) धनुष चढ़ा दे तो वडा हित होगा और पुण्यमालालकृत नीता का लावण्य व्यर्थ नहीं जायगा।—शतानंद यों कहकर कृप हो रहे।

अप्रवर्त तपस्की (विश्वामित्र) ने उस सुनि के बचनों पर विचार किया, फिर जटालकृत अपना निर हिलाया और युद्ध-कला में निपुण वृपभतुल्य राम के सुख की ओर निहारा। चित्र की प्रतिमा-जैसे सौन्दर्यवान् (रामचन्द्र) ने विश्वामित्र के मन का विचार नाइकर उस दीर्घ शिव-वनु पर दृष्टिपात किया।

प्रदर्शित धृत की आर्हति पाकर जैसे प्रज्वलित अग्नि ऊपर उठती है वैसे ही रामचन्द्र अपना आमने छोड़ उठ खड़े हुए और (वनुष की ओर) पग धरने लगे। तब देवगण ने वनुमेंग हो गया। अहकर धोष किया। शत्रुघ्नि (काम, क्रोध और मोह) को परान्त वरनेवाले अधियो ने उन्हें आशीष दिये।

एवंत्र तप-नपन्न सुनि की आङ्गा पाकर श्रीराम ने अभी शिव-धनुष को चढ़ाया भी नहीं था कि अनग (मन्मथ) ने मनोहर आभूषणों से भूषित तरुणियों के हृदय में तीर मार-मारकर नहत्वा धनुषों को तोड़ दिया।

वहाँ वी नारियाँ कहे प्रकार की बाते करने लगी। कोई कहती—यह सामने रखा हुआ धनुष भीतर ने बहुत ही कठोर है। और कोई कहती—यदि लज्जाशील नीता के मनोहर लाल कर को इन कुमार (राम) का विशाल हाथ न छुए तो (अर्थात्, इन दोनों वा विवाह न हो तो) कात ललाटवाली (नीता) का जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

कुछ नारियाँ अपने करों को जोड़कर कहती—यदि मत्तगज-समान वह राजकुमार हमारी ओर्हों को आनंदशु से भरते हुए इस वनुष को न चढ़ा दे, तो हम कस्तूरीगध-युक्त रेशोवाली नीता के नाथ जलानेवाली अग्नि में डूब जायेंगी।

बोई अहती—ये बदान्य महाराज (जनक) यदि नीता का विवाह करना चाहते, तो इन नज़कुमार को देखते ही वह अहकर कि 'मेरी कन्या नीता से विवाह कर लो,' यहते ही अपनी कन्या उन्हें दे देन। उलटे इन्होंने गगा को जटा में वाँवनेवाले (शिवजी) के मनुष को लाकर इन कुमार के नामने रख दिया है, वह कैसा भोलापन है?

^१ मन्दृत-न्याय में अरि-दृष्टि प्रतिष्ठित है। नमिल-न्यायों में प्रावा काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ, मात्स्य—^२ एवं उत्तर कुमुदी गो जनन मार और लोभ के अन्वेत मानकर 'जनुकृत' का प्रयोग होना है। —अनु०

कोई कहती—इस तत्त्वज मुनि से लज्जा नहीं है। कोई कहती—इस जनक म वढ़कर कठोर अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। यह श्रेष्ठ कुमार यदि इस धनुष को न भुकाव तो पीनस्तनी सीता भाग्यहीन हो जायगी।

मयूर-सदृश नारियाँ इस प्रकार कह रही थीं। उधर साधुजन शुभवच्चन बह रहे थे। स्वर्ग में देवता आनंदित हो रहे थे। तब वे (गम) नाग (मत्तगज) तथा नाग (पर्वत) को लजाते हुए आगे पग बढ़ाते हुए चले।

उन्होंने बड़े स्वर्ण-पर्वत-सदृश उस धनुष को इस प्रकार उठाया, मानो वे सुवर्ण-चूडियाँ पहनी हुई दुर्लभ रत्न-समान (सीता) को पहनाने के लिए कोई दीर्घ पुष्पमाला उठा रहे ही।

देखने में बाधा पड़ी, इस भय से सभी दर्शक निर्निमेष नयनों में देख रहे थे, किन्तु वे लोग यह देख और समझ भी नहीं पाये कि कब उन्होंने धनुष के एक मिरे को पैर से टबाया और कब उसको भुकाकर दूसरे मिरे पर डोरी चढ़ा दी। उन्होंने केवल धनुष का उठाना देखा और उसके टूटने की ध्वनि सुनी।

उस ध्वनि को सुनते ही देवता डर गये कि ब्रह्माड ही फट गया है। वे चिन्ता करने लगे कि अब हम किसकी शरण में जायें। अब इस पृथ्वी की क्या दशा हुई। मैं क्या कहूँ। नीचे इस पृथ्वी को अपने सिरपर ढोनेवाला, इसका मूल स्वरूप आदिशेष भी यो भयभीत हुआ, मानो उसके सिर पर बज्र गिर पड़ा हो।

‘जयशील, शत्रु-भयकर, शत्रुधारी जनक को आज पुण्यफल प्राप्त हुआ है’—यह सोचकर देवों ने पुष्प-वर्षा की। मेघों ने सोने की वर्षा की। भाग-भरे सभी समुद्रों ने विविध रत्नों को विखेरकर आनन्द-घोष किया। मुनियों ने आशीष दिये।

मिथिला नगरी में श्वेतशख तथा अमृतनादयुक्त विविध वादा वज उठे। पुष्प-मालाएँ, आभरण, चदन, सुगध-चूर्ण, सुगध-द्रव्य, समुद्रों से उत्पन्न उज्ज्वल मुक्ताएँ, स्वर्ण मणियों, उत्तम वस्त्र आदि वस्तुएँ वहाँ के लोग दान करने लगे। वह नगर ऐसा लगा जैसे पर्वकाल में (पूर्णिमा या अमावास्या के दिन) समुद्र उमड़ पड़ा हो।

भाले के जैसे नुकीले नयन और रात्रि में शोभायमान चट्ठोपम वदनवाली रमणियाँ। वर्षा ऋतु में गगन के नीर-भरे वादलों को देखकर नाचन्वाली मयूरों की जैसी नाच उठी। उस समय सुनाद-भरी मकरबीणा की सगीत-सुधा वरसने लगी और मदहास तथा वर्णभरणों की चमक चारों ओर छा गई।

मानिनी नारियों ने, जिनके रक्तवण और काले सुन्दर नयन मर्ती से भरे थे अपना मान छोड़कर अपने-अपने प्रियतम का आलिगन कर लिया। विशाल समुद्र म जैसे सफेद वादल पानी पिये, वैसे ही दारद्रों ने जनक-महाराज की सर्पात्त को भर लिया।

नर्तकों के मधुर गीत, रमणियों के अमृत गीत, तत्री-वादा वजान्वालों की मकर-बीणा में उत्पन्न मधु-सदृश दिव्य गीत तथा वशी के विविध गीत—इन गवका पान वरते हुए देवता अपने शरीर और प्राण के जड़ीभूत होने से यो खड़े रहे, मानो चिन्ह ही हो।

देवलोक की अप्सराएँ प्रभु के धनुष तोटने वा अद्भुत हश्य देखने वे लिए

भूतल पर उनर आई तथा अगो के व्यापार में आबार में, नाच में, गान में—सभी प्रकार ने भूतल की नारियों के साथ एकाकार हो गई और पृथ्वी की ललनाओं का (अप्सरा नमस्कार) आजिंगन करने लगी किन्तु इन ललनाओं को अपनी पलके स्फित बरते हुए दंगड़ विष्णव-विमुख हो गई ।

(दर्शकों में से) कुछ कहते—देखो, यह दशरथ का पुत्र है । कुछ कहते, यह अमलनयन है (विष्णु का भी एक नाम अमलनयन या 'पुण्डरीकाक्ष' है) । कुछ कहते—इसका शरीर ही आत्मेत्ह है और (अतसी) पुष्प की तुलना करता है । कुछ कहते—यह मनुष्य नहीं है, मीन-भरे नमुद्र का निवासी विष्णु ही है किन्तु सपार भ्रम में पड़ा है (इनको पहचान नहीं रहा है) ।

कुछ कहते—इन कुमार (के मौन्दर्य) को देखने के लिए उस कुमारी (सीता) को सहस्र नयन चाहिए और उस लतागी (मीता के मौन्दर्य) को देखने के लिए इस पुनर्ज्ञेषु बो भी वैसे ही सहस्र नयन चाहिए । फिर कहते—देखो, इसका भाई भी किनना मुन्द्र है । इनको प्राप्त करके पृथ्वी अत्यत पुण्यवती हुई है । और, कुछ कहते—इन नगर में इन कुमारों को ले आनेवाले मुनिवर (विश्वामित्र) को हम सभी नमस्कार करें ।

वहाँ राजदरवार में यह दृश्य था । उधर चन्द्र और रात्रि के चले जाने पर (नम के) पुनर्दर्शन की अभिलाषा में, प्राणों को कुछ रोककर वैठी हुई उस लघुकटि, पीन उगोज, लाल रेखाओं ने युक्त और काले भाले जैसे तीक्ष्ण नयन तथा स्वर्ण-कक्षण में दुर्जामित नीता की आवश्या हुई, अब हम इसका वर्णन करेंगे ।

वह सीता दोलायमान प्राणों के साथ (उष्णता से) शरीर को गलानेवाली पुष्प-शश्या को छोड़कर स्वर्णामरणों से अलकृत चेरियों से घिरी हुई वहाँ से उठी और सुन्दर अमल-नगरोवर के तट पर एक स्फटिक-प्रासाद में, चन्द्रकात में उत्पन्न शीतल जल से छिड़नाई हुई कोमल शश्या पर, वड़ी कठिनाई से जा लेटी ।

(विरहत्ताप ने पीड़ित वह कहने लगी) शीतल सुरभित कमललताओं । ऐसा प्रनीत होता है कि एक वाला की विरह-शश्या को समझने की उदारता हमसे है, इसीलिए तुमने अपने पत्तों की हृटा में (उस श्रीरामचन्द्र के शरीर का) अपूर्व रग दिखाकर मेरी मनोव्यथा को कुछ कम किया है, किन्तु मेरे पल्लव-समान रग का हरण करनेवाले (उन नमचन्द्र) के नेंद्रों की आतरिक काति को भी (अपने दलों में) दिखाकर मेरे प्राणों को लौटाने ने क्यों पीछे हटती हो ?

(उन राम की भुजाओं को देखकर) लजिजत मेरु-मद्वश उनका धनुष तथा उन्हीं डोंगी पर सचरण करनेवाले उनके हस्त, स्वभ-मद्वश उनके स्कध, वाणों से भरा तर्ह उच्चवज्ज्ञ चन्द्रिका-जैश वज्ञापवीत और जयमाला में अलकृत उनका वक्ष—ये सब किरंदेवनं ज्ञः मिलेंगे, तो मेरे प्राण भी देखे जा सकेंगे । (अर्थात्, तभी मेरे प्राण वर्चेंगे, अन्यथा अदृश्य हो जायेंगे) ।

नमोनड़िल ने प्रब्राह्ममान चन्द्रमा और उसके साथ भ्रमरावृत पुण्यमालाघारी केशों

मेरे अलकृत दीर्घधनुर्धारी एक मेघ आया था, जो अपने दो नयनों से मंग प्राणस्पी जल का उठाकर पी गया। वह मेघ मेरे हृदय में अब भी छाया हुआ है और मटा छाया रहगा।

निष्ठुर मन्मथ ने ऐसे तीच्छण बाण मेरे हृदय पर मारे हैं, जो तल को जलाने-वाली अग्नि के समान मेरे प्राण हरकर चले गये हैं और उसे पीड़ित कर रहे हैं। अब मैं अत्यत व्याकुल हो रही हूँ, ऐसी दशा में पास आकर सुक्ष अवला को जो अभयदान न दे, जो यह न कहे कि 'डरो मत, डरो मत'—उसका पौरुष भी कोई पौरुष है?

हे कभी कृष्ण न होनेवाले (मेरे) स्तन। उमड़ते-उमड़त रहकर तुमने क्या काम किया? उदय न होनेवाले (अर्थात्, सर्वदा एक जैसे चमकनेवाले) चन्द्र-जैसा कातिमान वदनवाले, (शिव के) कठोर धनुष को उठानेवाले उस महाप्रभु (राम) के बद्ध का गाढ़ालिंगन बढ़ि प्राप्त करना चाहते हो, तो उसके लिए उचित तपस्या करो।

यह चन्द्रमा कहाँ से निकल आया है, जो मेरे ऐसे स्तनों पर विष वरमा रहा है, जिनमें मेरे हृदय में अनग के द्वारा छोड़े गये शरों से उत्पन्न विरह-पीड़ा उमड़ रही है। विष वरमाने पर भी यह रात्रि-काल म उदित होनेवाला चन्द्र^१ नहीं है, क्योंकि इसके मव्य कलक नहीं दीखता।

हे मेरे हृदय। अनंग ने निकट आकर, कुछ हो शर वरमाये, उनके विष से जलाये जाकर भी मेरे ये प्राण जले नहीं हैं, किन्तु ये (प्राण) मेरे शरीर से निकलकर उष्ण मटजल वरमानेवाले काले हाथी के जैसे दीखनेवाले उस युवक (गम) के चरणों^२ की णरण में पहुँच गये थे। वे प्राण फिर लौटकर कैसे आये?

मानो गगनगत-मेघ विजली के साथ, इस धरती पर उतर पड़ा हो, ऐसा ही दीखनेवाला वह इवेत यजोपवीतधारी राजकुमार (रामचन्द्र) आया और चला गया। वह यद्यपि मेरे हृदय-गत है, तथापि मैं उसे जान नहीं पाती कि वह कोन है? वह यद्यपि मेरे नयन-गत है, तथापि मैं उसे देख नहीं पाती। यह क्यों?

उदार समुद्र में उत्पन्न, अन्यत्र दुर्लभ अमृत को पाकर भी उसे मनोहर स्वर्णकलश में न भरकर वहा देनेवाले मर्ख के समान मैं रह गई और उस कुमार की महान् वलिष्ठ भुजाओं को देखते ही आलिंगन में न बाँधकर मैंने उसे हाथ में जाने दिया। अब वहुत कहने में क्या प्रयोजन?

मोने के लेप-जैसे चिह्न-भरे स्तनोवाली (मीता), उपयुक्त प्रकार में कहती हुई, अत्यन्त व्याकुल हो, मिसक-मिसककर रोने और दुख-मागर में ड्रवते लगी। उतने में मुदित-मन और अजन-अजित नयनोवाली एक सखी पर्वत-जैसे धनुष के तोड़े जाने का समाचार लेकर आई। उसका वर्णन हम अभी करेंगे।

विशाल सरोवर में उत्पन्न नील कुड़ी समान नयनोवाली माला नामक सखी लच्छती हुई विजली की-मी शीघ्रता से आई, उसके रक्षय कठड़ाग और कण्ठस्परण इन्द्रधनुष का

^१ रामचन्द्र का मुख हो मोता को नष्टि में फिर रहा है, जिस वह चलम समझती है।

^२ 'विष्णुपद' के दो अर्थ होते हैं—(१) म्वर्ग तथा (२) राम के चरण। दृढ़ु प्राप्त करने पर प्राप्त किए जाने वाले में आये, वह सकेत है।

दृश्य उपस्थित कर रहे थे, तथा उसके घने पुष्प-भरित केश तथा वक्ष नीचे खिमके पड़ते थे।

वह नर्खी आई तो उसने सीताजी के चरणों का नमन्कार भी नहीं किया और शोर मचाने लगी। असीम आनन्द ने भरी हुई वह नाचने-गाने लगी। उसे देख सीता ने पछा—है सुन्दरि। तेरे मन में वह कौन आनन्द है। ऐसी कथा बात हुई है, जो त इतना आनन्दित है। तब वह नर्खी सीता के चरणों की बड़ना कर कहने लगी—

गज, रथ, तुरंग के भ्रमुद्र से युक्त विपुल विद्या-सपने मेव-मद्वश (दान-वर्पा करनेवाले) वर्ग में युक्त दशरथ नामक एक छत्रधारी चक्रवर्ती है। उनका पुत्र पुष्पवाणी द्वान् प्रेम उत्पन्न करनेवाले मन्मथ में भी अधिक सुन्दर है।

उन कुमार की भुजाएँ नालवृद्ध के जैसे बढ़ी हुई हैं। उसे देखने से मन्देह उत्पन्न होता है कि कहीं अनन्त पर शयन बरदेवाले विष्णु भगवान् ही तो इस स्प में नहीं आये हैं। उनका नाम है 'गम। वह थोर उसका अनुज प्रशाननीय मुनिवर विश्वामित्र के सम इस नगर में आये हैं।

बलय-विभूषित भुजावाला वह महापुरुष शिवजी का धनुष देखने के लिए आया है—वह नमाचार विश्वामित्र ने पाकर जनक ने वह धनुष लाने का आदेश दिया। वह धनुष लाया गया। तो उस पुरुषप्रेष्ठ ने उस पर डाँगी चढ़ा दी। तब देवलोक भी कौप उठा।

क्षण-भर में उसे पेर से द्वाकर अपने भुजवल ने ऐसा भुक्ता दिया, मानों उस धनुष को चढ़ाने का उसे पहले ने ही अन्यान ग्रहा हो। तब देवताओं ने उसकी प्रशंसा की, और पुष्प-वर्पा की वह धनुष टूटकर ऐसा गिरा कि गजदग्धार उस शब्द से कौप उठा।

उन नर्खी ने जब वह कहा कि विश्वामित्र के साथ आया हुआ राजकुमार मेववर्ण दे और कमलनयन विष्णु की छटावाला है। तब सीता का वह सन्देह दूर हो गया कि वह वही राजकुमार है, जिसे पहले दिन उसने देखा था। या कोई अन्य। सीताजी का निनिव (आनन्द ने) ऐसा बढ़ गया कि मेखला टूट गई।

(सीता की वह दशा देखकर मरियाँ आपस में कहने लगी) कोई कहती— 'इसके कटि नहीं है।' तो दूसरी कहती कि 'नहीं, इसके कटि है।' सीता के मुकुमार नन उमग ने उभर उठे। यो आनन्द होती हुई उसने मन में निश्चय कर लिया कि इस नर्खी के कहे लक्षणों ने लगता है कि अवश्य वही राजकुमार है। पर, यदि धनुष तोड़नेवाला व्यक्ति कोई अन्य होगा तो मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी।

विरह-वेदना ने पीड़ित सीता की दशा ऐसी हुई। उधर जनक महाराज ब्रह्मा के द्वारा निर्मित धनुष द्वाने से उत्पन्न व्यक्ति सुनकर अत्यत आनन्दित हुए और विश्वामित्र ने कहा—

‘मैं भगवन्। क्या आप इन कुमार का विवाह अविलब, आज ही, कर देना चाहते हों या नर्वन इन निवाह त्रा दिनोंग पिटवाकर तथा मुखरित वीर-वलयधारी और गरजनेवाली नेनाओं-सहित दशरथ चक्रवर्ती का भी यहाँ इलाने के पश्चात् विवाह सपादित करना चाहते हों। आप कृपया बतायें।

मल्लयुद्ध में निपुण उस जनक के यो कहने पर महातपस्वी (विश्वामित्र) ने अपना मत प्रकट किया कि दशरथ का भी यहाँ आना अच्छा होगा । अति आनन्द-भगित राजा ने वहाँ का सारा वृत्तात दशरथ से कहने का आदेश देकर, विवाहोत्सव के लिए निमत्रण-पत्र-सहित, दूतों को अयोध्या रवाना किया । (१-६६)



अध्याय ३३

दशरथ-प्रस्थान पटल

जनक के द्वारा प्रेषित वे दूत अतिवेग से, पवन के जैसे चलकर, वज्र-व्वनि करने-वाले नगाड़ों से प्रतिघनित अयोध्यापुरी में आ पहुँचे और दशरथ चक्रवर्ती के उस प्रामाद के द्वार पर गये, जहाँ चक्रवर्ती के चरणों की वन्दना करने के लिए आये हुए राजा लोग अति भीड़ के कारण भीतर जाने का मार्ग न पाकर वही (द्वार पर ही) एकत्र हो गये थे और (भीड़ के कारण) उनके किरीट एक दूसरे से रगड़ खा रहे थे ।

(अत मे) दूतों को चक्रवर्ती की कृपा प्राप्त हुई और वे यथाविधि राजा के सम्मुख जाकर उनके अति उज्ज्वल चरण-युगाल को नमस्कार किया तथा उनकी सृति की । फिर बोले—हे महाराज । आपके पुत्र जवसे विश्वामित्र के साथ चले, तवसे जो घटनाएँ घटित हुईं, उन्हें हम आपको सुनाते हैं । यह कहकर (उन्होंने) समस्त वृत्तात कह सुनाया ।

सारा वृत्तात सुनाने के पश्चात् उन्होंने अपने साथ लाये हुए पत्र को दशरथ के हाथ में दिया और कहा कि हे अनतगुणसपत्र । यह उम जनक महाराज द्वारा प्रेपित पत्र है । दरवार में स्थित एक पडित ने उस पत्र को आनंद के साथ ले लिया । तब मुखरित वीर-बलय पहने हुए (दशरथ) चक्रवर्ती ने उम पत्र को पढ़ने की आज्ञा दी ।

जनक ने ताल-पत्र पर उनके (दशरथ के) ज्येष्ठ पुत्र की धनुर्विद्या-चातुर्गी का जो चित्र अकित करके भेजा था, उसके अपने श्रुति-पट पर अकित होते ही दशरथ की वज्र-यम सुजाएँ पर्वत के जैमे फूल उठी और (सुजा के) बलय अपना मुँह वाये अपने स्थानों से खिसक गये ।

जयप्रद शूलधारी (दशरथ) चक्रवर्ती ने कहा—उम दिन यहाँ एक वटी व्वनि प्रतिघनित हुई थी, वह क्या उसी धनुष के टूटने की थी, जिसका प्रयोग धनी दीर्घ जटा-धारी, विशाल गण-सहित (शिवजी ने) दक्ष-यज्ञ के समय मातों लोकों को पगजित करने हुए किया था ?

पर्वत-सदृश पुष्ट सुजावाले (दशरथ) ने उपर्युक्त वचन सभी दरवारियों से कहा । फिर अनुरूप नादविशिष्ट वीर-बलयधारी दूतों को स्वर्णमय आभग्न, वन्न आदि निरतर और अधिकाधिक मात्रा में दिलाते रहे ।

उन्होंने आजा दी कि हाथियों पर बंठकर नगाडे बजाये जायें और इस बात की धोणगा की जाय कि न्यूवरशी मेरे पूर्वजों के पुण्य-फल से उत्तम मन्मथ जैसे श्रीराम अवजहाँ हैं। उस मिथिला नगरी की ओर हमारी सेनाएँ तथा राजसमूह पहले प्रस्थान करे।

बल्लुवन^० ने आति वंगवान् अश्व-हृषी तरग-द्युक्त (सिना-रुणि) समुद्रमेधू-धूमकर उपर्युक्त धोपणा सुनाई, (डीव उसी प्रकार, जिस प्रकार) पूर्वकाल में जब मधुनाकी तुलनी-पुण्यमाला से विभूषित शिरवाले विष्णु भगवान् ने (बलि का) दान स्वीकार करते हुए नमन लोंगों जो नापा था और जाववान् ने उसकी धोपणा धूम-धूमकर प्रकाशित की थी।

नगाडे का हुमुल शब्द कानों में पड़ने के पहले ही, मनोहर कंकण पहने हुई नारियाँ, चुन्द्र पुरुष भाले के (प्रयोग से) निपुण राजकुमार, विजयी नरेश, सभी आनन्द ने वाँ उमरित हो उठे, जैसे प्रभजन से आहत नमुद्र हो।

बृप्तम-समान गभीर पञ्चतिवाले (दशरथ) की सेनावाहिनी, जिसकी विशालता ने ऐसा जान पड़ता था कि घर्ती पर थोड़ा भी खाली स्थान नहीं है, इस प्रकार चली, जैसे अल्पान्त के नमय प्रलय-नाश से विकारित होकर नमुद्र सभी वस्तुओं को मिटाकर उमड़ता हुआ बांग ढड़ रहा हो।

(उन सेना के मध्य) डडे के ऊपर फैले हुए लंचे श्वेतच्छुत्र यत्र-तत्र ऐसे लगते थे, मानों अनुरुग हनु दुर्द-समान श्वेत आति विवेते हुए उड़ रहे हों। नम में छाई हुई कैंची पताकाओं का स्मूह ऐसा लगता था, मानों सारा आकाश (सर्प के समान) अपनी केचुली उत्तम गिर रहा हो।

हन्तिसेना के ऊपर उड़नेवाली श्वेत वस्त्रों की ध्वजाएँ उन मेंघों की तरह लगती थीं, जो अपनी सूँड में मदजल वहनेवाले हाथियों की सेना को आति से नमुद्र नमन्दन अत्यन्त लोंगते हुए उमड़ आये हो और जल पीने के लिए नीचे उतर रहे हों।

(नर-नारियों वे) आमरणों से बालातप छिटक रहा था। वह बालातप मधूर-पद्मों ने वस्ते छुंडों की छाया को हटाता हुआ फैल रहा था। वे मधूर-छुंड्र मेघ की शोमा ने निटाने हुए विकसित हो गये थे। उन मेघों को परास्त करते हुए पुंजीभूत नगाडे बज उठने थे।

वे विकिपीधारी अश्व, जिनपर रमणियाँ नवार होकर जा रही थीं, हसों को लेकर चलनेवाली तरग-द्युक्त नदी के प्रवाह-जैने लगते थे। स्वर्णाभरण-भूषित, परस्पर सघड-मान त्तनोंवाली, बुँदुकाजी अलचों से युक्त रमणियाँ चिजली की जैसी थीं और उनके बाहन—छोटी-छोटी हथिनियाँ नेदों की जैसी थीं।

एक दूसरे ओं वक्ता देने हुए, वही भीड़ लगाकर चलने के कारण रमणियों के मटे हुए कुचों पर ने कुट्टम-लेप तथा पुण्यों की सुंदर पवत-जैसी भुजाओं पर के चटन-लेप, मार्ग

में स्थान-स्थान पर गिर रहे थे, जिसमें उस सेना-समुद्र का मार्ग कोमल पर्वत के महश शोभित हो रहा था।

चाशनी से भी अधिक मीठी बोलीबाले लाल अंधगो में शोभित रमणियों के आँचल में छिपे हुए यम (अर्थात्, काल की तरह मण-पीडा उत्पन्न करनेवाले स्तन) मुक्तार्थी से विभूषित होने से राका की चटिका फैलाते थे और बहुल गलहारों से विभूषित होने में प्रातःकालिक बालातप फैलाते थे।

उस सेना के पुरुष सुरभित कुतलबाले थे, पर्वतों को लजानेवाले थे, मोने के आभूषणों से विभूषित थे तथा धनुष और खड्ग धारण किये थे। वे अपनी लता जेमी कटिवाली प्रेयसियों के संग ऐसे चले, जैसे सुन्दर हथिनियों का अनुमरण करते हुए मत्तगज चलते हैं।

कुछ रमणियाँ पालकियों में बैठकर जा रही थीं। सुरभित, मनोहर तथा नव-विकसित पुष्पों से भरे हुए मेघों का दृश्य उपस्थित करनेवाले केशों से विभूषित उन रमणियों के मुखमात्र (उन पालकियों में से) दिखाई पड़ते थे, जिसमें ऐसा लगता था, मानो अनेक पूर्ण-चन्द्र विमानों पर चढ़कर जा रहे हों।

प्रबहमाण मदजल की वर्षी थमती नहीं थी। उससे जो कीचड उत्पन्न हो जाता था, उसमें मुखपट्ठधारी हाथी फैस जाते थे और पागल हो जाते थे, वे (उन कीचड से) बाहर न निकल सकने के कारण धनी तरगोबाले समुद्र के समान शब्दायमान नशनोबाली अपनी सूँडों को उठा-उठाकर टटोलने थे, मानो त्रिगजों को खोज रहे हों।

घोड़ों को पक्कियाँ किंकिणियों के कलरब तथा टापों के ताल के माथ फॉटसी हुईं जा रही थीं। देवों के समान ही उनके पैर धरती को छू नहीं रहे थे। उनकी चाल वार-नारियों के मन के समान थी, जो (बाहर से अधिक प्रेम दिखाने पर भी) अतर से प्रेम-रहित होती हैं। (भाव यह है कि जिस प्रकार वारनारियों का मन बाहर से कुछ और, भीतर से कुछ और होता है, उसी प्रकार घोड़ों के पैर पुरुषी को छूते हुए भी न छूते-से लगते थे।)

कुछ मानवती स्त्रियाँ (जो अपने पतियों से रुठी हुई थीं) अपनी दृष्टि अपने पति पर नहीं डालती थीं, वे नि-श्वास भरती थीं, उनकी भाँहे तनी हुई थीं, पल्लव-सयुक्त पुष्प भी नहीं पहने थीं। वे अपने पतियों के संग ऐसे चल रही थीं, मानो उन (पतियों) के प्राण ही जा रहे हों।

करने के समान मद-धारा प्रवाहित करनेवाले गडस्थलयुक्त, अकुश का नाम सुनते ही कोषाग्नि उगलनेवाले निर्भीक हस्तिगण, पर्वतों को अपना प्रतिद्रन्दी समझकर उनमें टकरा जाते थे। बड़े-बड़े वृक्षों को तोड़कर नीचे गिरा देते थे और कभी उनको रगड़ने हुए निकल जाते थे। वे ऐसे चलते थे, जैसे कोई नदी-प्रवाह हो।

सभी हु-ख-मग्न प्राणियों के आलवन-भृत, करणाद्र वे (दशरथ) अभी प्रस्थान के लिए उठे भी नहीं (क्योंकि वे इनी प्रतीक्षा में थे कि अयोध्या की सारी मेना पहले प्रस्थान कर जाये, तो उनके पीछे चलें) कि उधर धरती में कोई खाली झग्न नहीं है ऐना भाव

उत्तर ऋती हुई जो नेना अयोध्या में निकलकर मिथिला के मार्ग से चली, उसका अग्रभाग ध्वजाकित प्राचीर में आवृत मिथिला नगर के पास जा पहुँचा (अर्थात्, वह सेना एकड़म अयोध्या ने मिथिला तक के मार्ग से फैल गई) ।

दर्शकों का मन सुख करनेवाले जूने हुए रथ भ्रमर-कुल-सकुल कुतलोवाली रमणियों के बदन-समृद्ध के कारण ऐसे लगते थे, मानो कमल-पुष्पों से सुशोभित सरोवर ही जा रहे हों ।

रथ में वैठी हुई एक सुन्दरी, अति प्रेम के कारण अपने रथ के साथ-साथ डग भरन हुए आनेवाले युवक की ओर देखने लगी, तो उस चुन्दरी की आँखों से लगा हुआ (बाला) अजन, उस युवक के लिए मधुर अमृत बन गया ।

बाल-हरिण की जैसी दृष्टिवाली (अपनी प्रेयसी) से विछुड़कर जानेवाले एक पुरुष ने पानी और कीचड़ से भरे 'मस्त' प्रदेश में हमों तथा कोमल कमलों को देखा, तो (अपनी प्रेमिणा की पठगति एवं पैरों का स्मरण करके) उसका मन अकेलेपन का अनुभव करके अत्यत व्याकुल हो उठा ।

उस नेना में शख तथा भैरियाँ मेघ-जैसी वज रही थी, वे उज्ज्वल श्वेतच्छुत्रों तथा चामरों की वहुलता के कारण गगानदी की समानता कर रही थी । ओह ! इस सुन्दर पुष्पी पर कसे-कैसे गजचिह्न नवंत्र दिखाई दें ।

वहाँ की निष्ठभाषिणी तथा श्रेष्ठ देव-रमणियाँ जैसी लावण्यवती स्त्रियाँ, प्राण पीने-(हरन) वाले अतितीक्ष्णनेत्र नामक यम के योर्य शूलायुधों को युवकों के हृदयों पर फेंक गही थीं जिससे वह नेना ऐसी दीखती थीं, मानों वह युद्ध-द्वोत्र में ही हो ।

(बीरो की) सुजाएँ परस्पर सटी हुई थीं, जैसे पत्थर के खमे एक दूसरे के माथ खड़े हों । करवाल मटे हुए थे, जमे गगन में विजलियाँ सटी हुई हों । (उनके) पद सटे हुए थे जैसे कमल नटे हुए हों । पठाति नना सटी हुई थीं, जैसे मिहों की पक्कियाँ सटी हुई हों ।

(किसी रमणी की चौगिया में) कसे हुए स्तनों से गडे हुए अपने नयनों को हटाने में अनमर्य, चमकता चेहरावाला एक युवक अपने आगे के मार्ग पर हृषि नहीं रख पाता हैं वार अर्थे की तरह वडे वर्लिट हाथी ने जाकर टकरा जाता है ।

भौगियावाले और फौँदकर दौड़नेवाले एक घोड़े के उछलने से, उसपर आसीन बाँड़ मयृगी-जैसी छटावाली सुन्दरी, अपना सतुलन खोकर नीचे गिरने लगी । इतने में गङ्ग उद्गमहृदय (युवक) ने लांझत्वम जैसी अपनी लवी बाँहों से उसे मँभाल लिया और उस सुन्दरी को वर्गी पर उनारे विना वैसे ही अपने अक में भरकर जड़बत् खड़ा रह गया ।

(अपने) दुगल ब्रह्मलों को दुखाती हुई चलनेवाली तथा (युवकों के) मन को दुखानेवाली शर-दृश्य काले ननों से युक्त रमणी को देखकर एक (युवक) कह उठा—'देखो, तून सुन्दरी के पीन और मनाहर उरोज-न्पी मदजलनावी हाथी को बाँधने के लिए पर्यात विगाल स्थान (बन्न) कही है व्या ॥'

अपने घुँघराले वालों पर वैठे हुए भ्रमरों को उड़ाकर, उन्हे गुज्जारित करते हुए मदजल वहानेवाले गज के समान एक युवक एक सुन्दरी के काले और नुकीले नयनों को देखता है और फिर अपने हाथ के भाले की ओर देखता है ।^१

तरग-समान काली और लम्बी घुँघराली अलको, कमल-समान छोट पदों तथा करवाल-समान काले नयनों से शोभित एक रमणी को देखकर कोई युवक पूछता है—परस्पर मटे हुए, आभरण-भूषित स्तनों तथा ककण-भूषित टीर्घ वाहुओं से शोभायमान है सुन्दरी, तुम अपनी कटि को कहाँ भूल आईं ?

एक तरुणी ऐसी है, जो अपने नयनों से ही—जो यम के जैसे ही (दर्शकों के) प्राण हरनेवाले थे—वाते करती है, लेकिन अपना मुँह खोलकर कोई वात नहीं कहती है । उससे एक युवक पूछता है—है सुन्दरी, जब तुम किसी नदी की धारा में खड़ी (फँसी) रह जाओगी, तब तुम्हारे सुन्दर करों को पकड़कर किनारे पर पहुँचानेवाला कौन होगा ? (अर्थात् यदि तुम वात नहीं करोगी, तो तुम्हे बचाने की चेष्टा भी कौन करेगा ?)

(उस सेना के) छेट, जो इतना भारी बोझ ले जा रहे थे, जिसे उत्तारना भी कठिन था, स्वच्छ तथा मीठे पल्लवों को कभी नहीं खाते थे, किन्तु कड़वे (नीम आदि पेड़ों के) पत्ते ही खोजते हुए, मध्य पीने में निरत नरों के जैसे ही (लड़खड़ात हुए) चल रहे थे । उनके मुख उनके हृदय के जैसे ही सूखे थे ।

लाल नेत्र और गाढ़े अधकार-जैसे शरीरवाले वर्वर (जाति के लोग) भारी बोझों को उठाये हुए ऐसे चल रहे थे, जैसे मत्तगज अपने कधे पर अकुश और अपने को वाँधने के लिए उपयुक्त बड़े आलान भी उठाकर लिये जा रहे हों ।

(एक) मत्तगज मस्त होकर अड़ गया और किसी हथिनी पर सूड बढ़ाने लगा । तब उस हथिनी पर वैठी हुई कुछ लियाँ भयभीत होकर अपनी आँखों को हथेलियों से मूँदने लगी । किन्तु, उनकी विशाल आँखें उन हथेलियों में समा नहीं पाई, तो व बहुत रुक्ष होकर रह गईं ।

ऐसी हथिनियों के ऊपर, जिनकी पूँछ पृथ्वी को छूती है, वैठे हुए मेखला-भूषित रमणियों के मध्य बौने भी जा रहे हैं, जैसे सदोविकमित मनोहर पुष्प-समृह के मध्य कछुआं पर वैठकर मंदक जा रहे हों ।

एक अश्व, पुण्यलता-सदृश एक सुन्दरी को अपनी पीठ पर लेकर अपने पैरों को झुका-झुकाकर फाँद रहा है । वडे आलान सं बैधा रहनेवाला एक हाथी उसके पीछे टौड़ता है, तो भी वह अश्व उसके कावू में नहीं आता । वह हश्य ऐसा है, मानो वह अश्व यह सोचकर कि यह सुन्दरी इस धरती पर रहने योग्य नहीं है, किन्तु देवेश के योग्य है उसे उड़ाकर स्वर्ग की ओर ले जाना चाहता है ।

(कवि कहते हैं) मेरे पितृसमान श्रीराम ने शिव-धनुष को तोटा र्योही वह

^१ यह सकेत है—वह युवक यह देखना चाहता है कि उसका भाला भी उन सुन्दरी के नपन-जना पना र या नहीं ।

मधुर समाचार पुरुषों ने सुनाया, त्योहाँ अत्यत आनंद में विभींत होकर वहाँ की नारियों (विवाह और देखने के लिए) ऐसे दौड़ी कि अपने दीर्घ तथा मनोहर केशपाशों के खुल जाने पर भी उन्हें बाँधने की या मेखला की मणियों के टूटकर गिर जाने पर भी उन्हें उठाने की सुध नहीं रही ।

मत्त हन्तियों तथा क्रामिनियों से शक्ति रहनेवाले विप्रजन हाथों में छाता ओर कमड़ल लिये हुए (प्राणयाम के समय) नासिका पर लगे रहनेवाले अपने हाथ को (चलने समय भी) नीचे की ओर नहीं गिराकर उच्चक-उच्चककर डग भरते हुए (अर्थात्, ऐड़ी को पृथकी पर न लगाकर नावधानी से अशुद्ध व्यानों से बचकर प्रयत्नपूर्वक डग रखते हुए) आगे-आगे निकले जा रहे हैं ।

सुरभित पुष्पधारी कुतलों में सुर्खामित कुछ नारियों अपने नयनों में (श्रीरामचन्द्र आ) प्रतिविव देखकर समझती हैं कि स्वयं श्रीराम ही आ गये हैं और कहती हैं कि 'हमारा व्यागत करने के लिए हम्हीं आ गये हों, आओ, हमारे रथ में बैठे जाओ', यों कहकर रथ की ओर अपना हाथ सुकाकर संकेत करती हैं ।

शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े बड़े-बड़े नगांड़—सर्वत्र भरे हुए हैं । उनके कोलाहल में एक का कहना दूसरा सुन नहीं पाता, अतः सब गूँगे के जैसे चल रहे हैं ।

अत्यत कीने मकड़े के जाल-जैसे वस्त्र पहने हुई, भ्रमर से गुजरित पुरुषों से अलकृत वेशोवाली रमणियों का समूह अपने पेरों की पायलों की झनझनाहट के कारण पक्षियों के कलरव से भरे तालाव की समानता करता है ।

न्वच्छ तरणों में शोभित समुद्र से अद्भुत लद्धी की समता करनेवाली कुछ नारियों कीने वन्त्र में जब ढेखती हैं तब उनकी आँखों को देखकर पुरुषों के नयन कोलाहल उठते हैं मानो मन्त्रजों के मढ़ को देखकर मोद-भरे भ्रमर कोलाहल भर रहे हो ।^१

(पुरुषों के) प्राणों को भेदकर चलनेवाली तीक्ष्ण नील नयनोवाली नारियों के न्युग उल्लें (नामक) वाद के समान बज रहे हैं । उनके लिए सहायक वाद बनकर घोड़े हिनहिनाने लगते हैं, जैसे (आकाश में) उठनेवाले मेघ गर्जन कर रहे हो ।

पृथकी देवी के हृदय को पुलकित करती हुई अपना मृदुपट रखनेवाली रमणियों के उज्ज्वल सुख को देखकर कुछ युवकों के नयन, वह समझकर आनंदित हो रहे हैं कि विकसित ब्रह्मल-पुण्यों ने मोदमत्त भ्रमर विहरण कर रहे हैं । उन युवकों की भावना से मन्मथ भी आनंदित हो रहा है ।

मन के लिए भी अगोचर (अतिमूर्छम) कटि, मनोहर श्रेष्ठ प्रवाल जैसे बधर तथा विमल^२ गम जैसे मधुर वचनवाली तर्शणियों के वसकर बाँधे हुए लाल नारियल-जैसे कुचों से

गिरा हुआ सुगध-लेप और (सेना के पैरों से उठी) धूल—दोनों मिलकर (आकाश में) भर गये ।

बड़े-बड़े चित्रमय रथों पर सवार हो उपर्युक्त प्रकार के असख्य नग और नार्मियों, बड़ा शोर मचाते हुए अपने मार्ग में आगे बढ़ते जा रहे हैं ।

लगाम-लगे घोड़े, रथ तथा वीर, सर्वत्र दल वॉधकर तंजी के साथ चल रहे हैं ; उससे अति शीघ्रता से ऊपर उठी हुई धूल सर्वत्र फैल गई है और बादलों के जलधारा वग्माने-बाले सजल रब्रों में भी जाकर भर गई है, तथा दिशाओं में स्थित गजों के मटजलप्रवाही रघ्रों में भी धुस गई है ।

(उस सेना के वीरों ने) ढाल पकड़े हुए अपने वाये हाथ में (दाहिने हाथ में रहनेवाले) चमकते हुए करवाल को भी पकड़ रखा है, और रुचिर रत्नमय सोने के कड़ों से भूषित (अपने) दायें हाथ से, 'कटक (नामक पदभूषण) में शोभित अपनी पत्नियों की चूड़ियों से अलंकृत कर-पत्तलव को पकड़कर स्वर्ण-मुखपट्टों से विमूर्पित हाथियों के मटजल के कारण सिलौए (बने) रास्ते पर धीरे-धीरे पैर रखने हुए जा रहे थे ।

खेतों में, सरोवरों में तथा छोटे-छोटे जलाशयों में बहुलता से खिले हुए कुमुद, उत्पल, रक्तकमल आदि (सुन्दरियों के) हाथ, चेहरे, मुख तथा नयन की छवियाँ उपस्थित करते हैं, जिन्हे देखकर वे रमणियाँ अपने पतियों से प्रार्थना करती हैं कि ये पुण्य तांडकर हमें ला दो ।

पक्कियों में वॉधे गये घोड़ों पर से कुछ सुन्दरियों पृथ्वी पर उत्तर गईं । इतने में मत्तगज को निकट आने देखकर, डर गईं । (उनके) मुगधित केशभार शिथिल हाँ खिसक पड़े । श्रेष्ठ रत्नाभरण टूटकर गिर गये और मनोहर कटि-वस्त्र भी ढीले पड़कर शरीर से खिसकने लगे, तो अपने पत्तलव-करों से अपने ढीले वस्त्रों को पकड़कर मयूरों के समान लड़खड़ाती हुई, मार्ग से हट गईं ।

छत्र, हाथी, मयूर-पखों के बने पखे और छ्वजाओं के समूह ने मिल-जुलकर समस्त खाली स्थानों को आवृत कर लिया है और अधकार उत्पन्न कर दिया है । हथियार, किरीट और आभूषण अपनी आभा में धूप फैला रहे हैं । अतः, उस सेना के मार्ग पर एक साथ ही रात्रि तथा दिन भी वर्तमान हो रहे हैं ।

'पलाश पुण्य-सदृश अधर, मुक्ता-सदृश दॉत, तथा मदहास से सुशोभित सुन्दरियों के रमणीय मुख (नामक) कमल पर के तीक्ष्ण खड्ग (नयन) भीड़ को चीरकर निकल जायेंगे, अतः तुमलोग मार्ग छोड़कर हट जाओ' इस प्रकार कहते हुए सूर्य-समान उज्ज्वल शरीरवाले पुरुष मार्ग छोड़ देते हैं ।

दुस्तर भीड़ के कारण मार्ग में, मुक्ताहार और रत्नहार इटकर विखरे हुए हैं । कलाप नामक सोलह लड़ियोंवाली मेखला से आवृत तथा सर्पफण-मदृश जघनवाली रमणियों (मार्ग पर विखरे हुए मोतियों और रत्नों के पैरों में चुभने में) लड़खड़ाती हैं, तो उनके स्वर्णमय नूपुर भी गी उठते हैं 'हमसे इन मार्ग पर चला नहीं जायगा'—यो कहर वे मार्ग के मध्य म रुकी रह जाती हैं ।

उन्नम वाव जव मंध के जैसे धोर गर्जन कर उठते हैं, तब गाड़ियों में जुते हुए बड़-बड़े वेज़ भड़क उठते हैं, हस पक्षियों के सद्श रमणियों इधर-उधर भाग जाती हैं, वैल नम्मियों ने बैंधे हुए मामानों को इधर-उधर विखेरकर वधन-सुक्त हो जाते हैं, जैसे योगी नमार के वर्णों ने सुक्त हो जाते हैं।

पर्वत-जैन हाथी कही-बही जलाशयों को ढेखते ही उनमें उत्तर पड़ते थे, तब उनके महावत हवा के जैने तेज़ चलनेवाले कमान के गोलों से उन्हें मारते थे, फिर भी वे हाथी उन चाँदों की परवाह किये बिना (किसी रमणी के) कर्से हुए स्तन-समान कुभौं और दाँतों को बाहर किये हुए खड़े रह जाते थे मानो क्षीरसागर में तालवृक्ष-सद्श शुडवाला ऐरावत रुड़ा हो।

काली मिट्टी-जैसे केशों, श्वल-तुल्य नंत्रों, अमृतवर्षी कुमुद-तुल्य रक्ताधरों से विभूषित गायिकाओं के साथ, उत्कृष्ट वीणा-बादन में चतुर 'वाण' (कहलानेवाले गायक), किन्दरों के समान घोड़ों पर सवार होकर 'नैवल्ल' (नामक) राग का विशुद्ध आलाप करते हुए जा रहे थे, मानी श्रोतायों के आनों में मधु की वर्षा कर रहे हो।

महावत के अकुश उठाते ही निर्मर-युक्त पर्वत-समान हाथी बिगड़ उठता था और लोग तितर-वितर हो जाते थे। मट-भरे छोटी आँखोंवाले बाल-हाथियों पर के ब्रह्मर, जिनके पख़ फ़ले हुए थे, दूसरे हाथी पर जा बैठते थे और फिर किसी हथिनी के पीछे-पीछे उड़कर उनपर बैठी हुई किसी रमणी की विखरी अलको से टकरा जाते थे।

चक्रवर्ती की प्रेयनियों रवाना हुईं, तो पूर्णचढ़ के दर्शन से उमड़े हुए नील समुद्र के समान भेरियाँ बज उठीं। हाथी, रथ नाव्यशील अश्व, रक्तरजित शूल समान नवन-युक्त नारियाँ और नर पक्ति बाँधकर रमणीय ढग से शीघ्रगति के साथ चलने लगे।

तालावों में विकसित मनोहर कमल-बन के मध्य शोभायमान किसी हसिनी के समान देक्यराज-पुत्री, सहस्रो गणिकाओं के झुड़ से घिरी हुई, अति सावधानी के साथ, गलों ने अलकृत शिविका में आनीन हो चली, तब मधु-मधुर सगीत होने लगे, (उनके रूप को देखकर) देवलोक की मुन्दगियाँ भी लज्जित हो गईं।

अवागण ही अग्नि-ज्वाला उगलनेवाली क्रोधी आँखोंवाले, वेत्रदड़धारी तथा (आपाद) लटकनेवाले अँगरखा पहने हुए कच्चुकी, उन मधुरभायिणी तथा अपूर्व सौदर्य-विभिष्ट नियों के पद-मार्ग की यथाक्रम रखवाली करते हुए जा रहे थे, जो किकिणी-भूषित गोंडों पर या पैदल ही जा रही थीं।

निर्चिर नृपुर पहने हुई खच्चरों पर सवार, लाल रेखाओं से युक्त कमल-सद्श विशाल केत्रवाली दो महब्ब नारियों से घिरी हुईं, तुगल (लहमण और शत्रुघ्न) बच्चों को जन्म देनेवाली (सुमित्रा) देवी, नीलगल-खांचित शिविका में बैठकर ऐसी चली कि दर्शक नमकने लगे कि जल-भरे बाढ़ल पर चमकनेवाली विद्युल्लता ही जा रही है, उस समय वीपागान भी हो रहे थे।

अपने मनोहर करों में मधुर हम, छोटे शुक, सारकाएँ, प्रतिभाएँ नद्य आवरण ने निकले हुए शब्द-समान चामर बाड़ि बन्दुओं को लिये हुए असख्य नारियों (सुमित्रा के)

पाश्वर्म में जा रही थी । उनको देखने से ऐसा लगता था कि मत ममुद्रो से घिरी इस पृथ्वी पर अब अन्यत्र कही स्त्री ही नहीं रह गई है (अर्थात्, सब यही आ एकत्र हो गई है ।)

महाभाग (रामचन्द्र) को जन्म देनेवाली (कौशल्या दबी) (एक रत्नमय) शिविका पर सवार होकर चली, तो ऐसा लगा, मानो उज्ज्वल श्वेत दत तथा सेमल के फूल-जैसे अधरवाले (कौशल्या के) वदन को देखकर, धवल चन्द्रमा की भ्राति से असख्य नक्षत्र आ एकत्र हुए हों । निपुण गायक भ्रमर गुजार-सदृश ‘पाड़ि’ (नामक) राग अलाप रहे थे और देवगण (कौशल्या को) नमस्कार कर रहे थे ।

कुबड़े, बौने, ठिंगने तथा दासियाँ इनको लेकर दूध-जैसे सफेद धोड़ हस-पक्षियों के समान धरती पर चल रहे थे । भ्रमर, मधुमक्खी आदि से भरे पुष्पों से अलकृत केशोवाली रमणियाँ उनके पाश्वों में चल रही थीं ।

कली-जैसे स्तनों और अवर्णनीय लक्ष्मी से भी अधिक सोदर्य से विशिष्ट साठ सहस्र नारीयाँ, प्रचाल, रत्न, स्वर्ण, उज्ज्वल मरकत, मुक्ता तथा अन्य अनुपम अलकरणों से युक्त चित्रस्थ प्रतिमाओं के समान, गाड़ियों में सवार हों (कौशल्या देवी को) घेरकर चलीं ।

पातिव्रत्य से श्रेष्ठ अरुन्धती के पति (वसिष्ठ) छत्र की छाया में, मुक्ता-खच्चित शिविका में बैठकर, हसवाहन ब्रह्मदेव के सदृश चले । कर्णों के द्वारा अमृत-सदृश शास्त्रों को अधाकर पीये हुए तथा अपने हाथों से देवताओं को हवि देने का सामर्थ्य रखनेवाले दो सहस्र ब्राह्मण उन्हें घेरकर चले ।

युद्ध में समर्थ हाथी, धोड़े, सुन्दर रथ, स्वर्णमय वीर-वलयधारी पदार्थ, उन (वसिष्ठ) के आगे-पीछे, ऐसे जा रहे थे, मानो महान् पर्वत को धंरकर समुद्र जा रहा हो । जयलक्ष्मी से सुशोभित वक्षवाले, देवसेना को भी वेधने में चतुर तीरन्तज अतिरथी, दोनों वीर (भरत और शत्रुघ्न) वसिष्ठ के आगे-पीछे इस प्रकार जा रहे थे, जैसे विश्वामित्र के आगे और पीछे राम और लक्ष्मण जा रहे हों ।

मुक्ता तथा मनोहर हीरे से खच्चित आभरण धारण किये हुए (दशरथ) चक्रवर्ती ने अपने नित्य कर्म पूरे किये । चक्रायुध धारण करनेवाले विष्णु के पद अपने शिर पर रखे । ब्राह्मणों को अनन्त रत्न, स्वर्ण, गायों की पक्कियाँ, भूमि आदि आदर के साथ दान कर एक अच्छे मुहूर्त में प्रस्थान किया ।

आठ सहस्र ब्राह्मण रक्ष-कलश हाथ में लिये हुए, अर्थगमीर वेद-मन्त्रों का पाठ करते हुए, दुर्बां से मत्रपूत जल का प्रोक्षण करते हुए, आशीष दे रहे थे । मगल-वचन कहने-वाली, मधुर अरुण सुखवाली, भारी रक्ष-खच्चित मेखला धारण करनेवाली, वदीजन की परपरा में उत्पन्न, अनेक रमणियाँ प्रस्तुति गा रही थीं ।

(उस समय) कुछ लोग कहते थे कि यह शख वयो वज रहा ह । कुछ कहते थे कि कदाचित् राजा प्रस्थान कर चुके हैं । यो कहते हुए बड़ी भीड़ लगाकर राजा लोग आये ? (उनमें से) कुछ कहते कि चक्रवर्ती ने मेरा अवलोकन किया और कुछ कहते कि हाय । मेरा वुडल गिर पटा । कुछ सुझपर चक्रवर्ती का कटाक्ष नहीं पड़ा । कोई कहता, हाय । मेरा वुडल गिर पटा । कुछ

बहते, अब उन चक्रवर्ती के समीप पहुँचना दुष्कर है। यों, चक्रवर्ती के चारों ओर राजा लोगों की भीड़ एकत्र हो गई।

स्वर्ण-कक्षयधारिणी रमणियों को लेकर स्वर्ण-किंकिणीधारी अश्व-समृद्ध (चक्रवर्ती के) चारों ओर ऐसे जा रहा था, मानो कमल-पुष्पों से भरा समुद्र हो। विजयी शूलधारी राजाओं के अन्नहस्त-रूपी कमल सुकुलित हो (नमस्कार की मुद्रा में) खड़े थे। इनसे पिरे हुए चक्रवर्ती, अपर सूर्य के महश रथ पर चढ़कर चले।

उम समय (दशरथ की सेना से) उठी हुई धूलि-राशि ने अतगल को भर दिया और गगन में जा लगी और फिर वहाँ से लौटकर भी विशाल दिशाओं को यो आवृत कर लिया कि लोगों को एक दूसरे को पहचानना भी कठिन हो गया। फिर, वह सगर-पुत्रों से वेष-ना करती हुई जाकर (उनके द्वारा खोदे गये) तरगायित समुद्र को भी भरने लगी।

शखबादी, मधुर वॉसुरी, शृग-वादी, ताल, काहल, मगल-भेरी -- इनसे उत्पन्न ध्वनियों ने मंद-गर्जन को भी दबा दिया। मौर-पखों के झालर, छत्र आदि ने सूर्य की किरणों को वहाँ आने से गोक दिया। चट्ठमा वहाँ के श्वेतच्छत्रों को देखकर लज्जा से हट गया। यों दशरथ देवताओं को भी चकित करनेवाले वैभव के माथ चले।

इन्द्र के समान दशरथ चक्रवर्ती जब जा रहे थे, तब मत्रगान के शब्द दक्षिणावर्त शब्द^३ के शब्द, व्राह्मणों के आशीर्वाद के शब्द, गर्जन करनेवाले नगाड़ों के शब्द, आलान-न्तभ को तोड़ देनेवाले वलवान् हाथियों के शब्द, समय की माप रखनेवाले 'घटिक' (नामक लोगों) के वेला-सूचक शब्द—भी दिशाओं में सर्वत्र गूँज उठे।

जिन किनी भी दिशा में दृष्टि जाती, वहाँ वीर-वलयधारी नरेश अपने कमल-जैसे हाथ जोड़ चक्रवर्ती की दिशा में ही (इस विचार से) देखते हुए खड़े रहते थे कि चक्रवर्ती का कटाक्ष उनपर पड़े। एक दूसरे को धका देते हुए चलनेवाले अनेक हाथी, रथ, घोड़े पदाति सुनिक — इनके कारण उठी हुई धूल गगन और वरती को भरती चली।

पदाति सैनिक, हाथी, रथ, अश्व इन चारों से खूब भरी हुई सेना यदि अपने ध्यान में आगे वढ़ भी जाना चाहे, तो उसके जासे के लिए मार्ग नहीं था, समुद्र जल-रूपी वन्द्र ने आवृत धरती भी (उस सेना के भाग में) अपनी पीठ लचकाने लगी। अब कहो, इस चक्रवर्ती को (अपने वर्मपूर्ण शासन में) भूमि-भार हरनेवाला कैसे कहा जाय?

वे चक्रवर्ती इस प्रकार दो योजन दूर चलकर, स्वर्णमय (मेरु) पर्वत-सदृश चट्ठ-शैल की तराई में जाकर ठहरे। चतुरगिनी सेना भी वही ठहर गई। उस (सेना) में रहनेवाली रमणियों के देश मन्मथ के बाहन^४ वने हुए हाथी (अर्थात्, अधकार) के जैसे थे, तथा उनके दोनों न्तन, (क्रमशः) मन्मथ के बाण वने हुए पुष्पों और मलयपर्वत पर के चट्ठन के लेप ने सुगन्धित हो उठे थे। (१-८२)



^३ शब्द बनावन्ह होने द, दक्षिणावन्ह शब्द अधिक मगलशब्द माना जाता है।

^४ तमिन्नन्दाहिन्य में कर्त्ता-ही अन्यकार को मन्मद का बाहन कहा गया है।

आश्याय ३४

चंद्रशैल पटल

(हाथियों पर वेठी सुन्दरियाँ अपने पतियों के सहार नीचे दत्तर पर्दा) तब मुक्ताहार-विभूषित, मेरु को भी अपने गुरुत्व से पराजित करनेवाले (अपने ग्रियतम के) प्राणों को हरने के इच्छुक सारिका-तुल्य मधुर बोलीबाली कुछ रमणियों ने. दृढ़ धनुर्धारी मन्मथ के आश्रयभूत अपने स्तनों को, अपने पतियों की भुजाओं के साथ (आलिगन में) वाँध दिया, डधर उँचे और गगन-चुव्वी बटवृक्ष को भी तोड़नेवाले, मरोवर को जाने के इच्छुक, दृढ़ धनुर्धारी मन्मथ-समान हीरों की ले चलनेवाले कुछ हाथी^१ भी देवदारु तथा चदन के वृक्षों से वाँध दिये गये ।

जो शत्रु सम्मुख होकर युद्ध करने से नहीं दवता, उसे कोई चतुर नरेश असावधानी-रहित विवेक के साथ राजत्र से उखाड़ देता है । उसी प्रकार (उँचे पेड़ से वैध हुए) एक हाथी ने मेघ-मडल को अपनी शाखाओं से छूनेवाले सुन्दर वृक्ष के तने को, समूल उखाड़ दिया और चलने लगा ।

कृष्ण (अपनी माता यशोदा द्वारा ऊखल से वैधे जाने पर) अपने पीछे ऊखल को भी लुढ़काते हुए, अति पुष्ट तनावाले दुगल अर्जुनवृक्षों के मध्य से होकर निकल गये थे और दोनों वृक्षों को बीच से तोड़कर गिरा दिया था, उसी प्रकार एक हाथी अपनी (पिछली) टाँग से वैधे आलान-स्तम्भ को भी खीचता हुआ, वहाँ खड़े दो आम्रवृक्षों के मध्य से होकर निकल गया और एक साथ दोनों पेड़ों को गिराता हुआ चला गया ।

(हाथी के मन में) वैर उत्पन्न कर देनेवाले कोप को दूर करने के लिए, मीठी बोली बोलकर निपुणता के साथ उसको वश में लानेवाला कोई महावत, किसी (गजा के) मत्री जैसा था, और वह हाथी, विविध शास्त्रों के अनुकूल हित-वचन धीरे-धीरे कहने पर भी उसे न सुननेवाले किसी (उद्धत) राजा के जैसा था ।

(कोई हाथी किसी जगली हाथी की गव पाकर कुद्द हो उठता है और उसकी खोज में निकल पड़ता है ।) अकुश से आहत कोई मत्त गज अपने शत्रु हाथी को न देखकर मेघ के जैसे गरजता हुआ, बनगज के मार्ग का अनुसरण करता हुआ बातुबेग से चल पड़ा (क्रोध के आवेश में वह अपने मार्ग में आये विविध प्राणियों को मारता हुआ चला), तो वाज, चील आदि पक्षी झुण्ड वौंवकर उसके पीछे-पीछे उड़े । वह दृश्य ऐसा था जैसे किसी नदी के मार्ग में दूसरी नदी की धारा वह चली हो ।

वहुत-ने हाथियों की पक्कियाँ जहाँ वैधी हुई थीं, उस स्थान म कही से (नतपर्णी वृक्षों की) मदजल की-सो गंध आई, तो एक हाथी पागल हो उठा ओग अपने को द्वानं-वाले अकुश को झटके से दूर हटाकर मदगध की दिशा में बोट चला और पुष्पों में लटे (सप्तर्णी) वृक्ष को उखाड़, अपने अगले दोनों पैरों से रोदकर चूर-चूर कर दिया ।

अमरहुग गज उनके मध्य मिद्राकित सकीर्ण ललाटवाली हथिनियाँ और हाथी के बच्चे झुण्ड वाँधकर खड़े थे। वृक्षों में भग हुआ वह अरण्य (हाथियों के) एक वृथ-जैमा खड़ा था और वह चन्द्रशैल उम वृथ का पति जैसा खड़ा था।

‘विशद जानवाले उत्तम जन, नीच जनों की सर्गति करने पर, उन नीच जनों के वृद्ध-विकारजनक दुर्गुणों को ढल देते हैं — यह कथन ठीक ही है क्योंकि (सोने के चक्रवाले रथ) अपने स्वर्णमय चक्रों के मार्ग में पड़नेवाले काले पत्थरों को भी रगड़-रगड़कर अपने (सुनहले) रग में छुक्क कर देते थे।

जगली मधुर (उन सेना की) सुन्दरियों के विव-समान अरुण अधरों को देखकर वह नमक्षते थे कि वे वीरवहूटी^१ कां मुख में दठाये हुए हैं। कदाचित् इसी आति से रमणीय मेखलायारिणी हरिणनयनोवाली उन रमणियों के सुनहले लावण्य को देखते हुए वे घृम रहे थे।

गतिशील घोड़ों ने उत्तरकर हस-गति से चलकर, घनी वृक्षों की छाया में जाकर ठहरनेवाली छियाँ अपने शरीर पर के कलाप, (सोलह लड़ियोंवाली) मेखलाओं, व्याणीपर तथा अन्य आमृपणों की चमक के कारण पुष्पित लताओं जैसी सुशोभित हो गही थीं।

यात्रा करने से थकी हुई छियाँ स्फटिक-प्रस्तरों पर लेटकर सो गई, तो अमरों के झुण्ड उनके कोमल चग्णों तथा मुखों पर उन्हे नघन ढलवाला कमल नमझकर, मँडराने लगे। (दूसरे) स्फटिक-शिलायों में उनके प्रतिविवों को देखकर सखियाँ इस अम में पड़ गईं कि वही वान्तविक छियाँ तो नहीं हैं।

(जिन प्रकार) विद्युत से शोभित मेघ उम चन्द्रशैल से लगे रहते हैं, उसी प्रकार जब हथिनियाँ वरती से लगकर बैठ गईं। तब लता-नमान नारियों उनपर से उतरी। शब्द करनेवाले अपने नपुगों के माथ वे अपने निवास-गृहों (खेमों) में ऐसे चली, मानों वे लचमी हो, जिनकी कटि की समानता डमर भी नहीं कर सकता — अपना निवास कमल-पुष्प छोड़कर उन गृहों में जा रही हों।

पुष्टिवर्धक दाना खाने में खब पुष्ट, तुरुफ्कों के द्वारा कई नगरों से लाये गये, यों शब्द करनेवाले अर्ति सुन्दर और बलिष्ठ अश्व, भूमि-देवी के हृदय को अलकृत करने-वाले ग्न्नहार के समान अश्व-शालाओं में बौधे गये।

जहाँ-तहाँ लवे परं लगाये गये, मानो जल की वीचियाँ खड़ी कर दी गई हों। हाट नजाइ गई मानो नमुद्रों को ही मँवारकर रख दिया गया हो। वृक्षों के मध्य हाथियों को बौधा गया मानों वादलों को ही लाकर खड़ा कर दिया गया हो। घोड़ों को दीन्धनों में बौधा गया, मानों पवनों को ही बौध रखा गया हो।

नर्तनशील भद्र की जैसी गतिवाली और हरिण की आँखों के जेमी नेत्रवाली (रम्पर्पर्स) तथा तीक्ष्ण जलधारी घोड़ा (अपना-अपना स्थान न पहचान लेने के कारण)

भटक रहे थे, (फिर) भेरी के नाड और दूर तक सुनाई पड़नवाले शख के रव सुनकर तथा ध्वजाओं को ढेखकर पहचान मके कि दशरथ चक्रवर्ती का आवाम कौन-मा है, फिर वहाँ पहुँच गये ।

(सेना के) पैरों ने उठी हुई धूलि (रमणियों के) मनोहर और उज्ज्वल शगीर पर छा गई । दुवक कुमार दध के साग के समान वस्त्रों से (अपनी प्रियतमाओं के शगीर पर से) धूलि पोछने लगे, उससे वे तरुणियाँ ऐसी चमकी, जैसे चित्रकार ने अपने घर के चित्रों को पोछकर नया बना दिया हो ।

हाथी पर मवार हो आनेवाले गजकुमार, ऊँचे पर्वतों पर से (समतल) भूमि पर उत्तर आनेवाले मिहों के जैसे ही नीचे उतरे तथा विशाल तालपत्र-जैसे बने हुए चामरो-महित चलकर, अति सुन्दर ढग से बनाये गये डेरो में प्रविष्ट हुए ।

श्वेत वस्त्रों की वनी पताकाओं से युक्त उन आवामों में, मदहास और सुगंधि में भरी सुन्दरियों के बदन ऐसे लगते थे, जैसे मेघों से भरे आकाश में गहनेवाले चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रतिविव, चारों तरफ उठी हुई तरगोवाले समुद्र के धवल जल के भीतर से दिखाई दे रहे हों ।

कोई मत्तगज धूल में लोट जाता और उठकर आकाश को छूता हुआ-गा ऊँचा खड़ा हो जाता । फिर, अपने काले रंग को ढकनेवाली सफेद धूलि को शगीर के एक पार्श्व में से पोछ देता, किंतु दूसरे पार्श्व में उस धूलि से लिप वह ऐसा चला आता, मानो शिवजी को अपने पार्श्व में लेकर विष्णु भगवान् ही आ रहे हों ।

दुरुण व्यक्तियों के साथ (अविचार के कारण) मिलकर रहने पर भी चतुर सज्जन उनके स्वभाव को पहचानने पर जिस प्रकार उन्हे एक दम छोड़कर अलग हो जाते हैं उसी प्रकार वेगवान् अश्व अर्ति सूक्ष्म धूलि पर लोट जाते और झट उठकर, उस धूलि को फाड़कर, दूर हट जाते ।

(भूमि, नारी और धन—इनकी कामना-रूपी) तीन प्रकार के पाश को तोड़कर, उत्तम गुणवान् योगी, अपने योग-वल में, अपने स्वरूप को पहचानते हैं, इहलोक तथा परलोक के फल को पहचानते हैं तथा अपने लक्ष्य-स्थान 'मोक्ष' के स्वरूप को भी पहचानकर उसकी ओर नेजी से बढ़ते हुए सन्माग में चलते हैं । उन योगियों के समान ही, धोड़ भी, तीन गुणवाली रसियों के बधन को तोड़कर, अश्वपाल की दक्षता के कारण, अपने कार्य को पहचानते हुए अपने (लक्ष्य) स्थान को जानकर उसकी ओर दौड़ चलते थे, पर (अश्वारोही की) आजा से दबकर बापम लोट आते थे ।

जब कलकल करती हुई वीचियाँ इस प्रकार ऊँची उठती ह कि उनसे छिटककर जल किनारे के झीलों में जा गिरता है, तब उनके माय ऊपर फेंके गये पुष्ट मीन भी उछलकर चमक उठते हैं, उसी प्रकार जब आकाश में गिरते हुए दृहाने के जैसे (देरों के) पर्वत हवा के झोके खाकर उड़ते थे, तब परदों के भीतर गोटी च्यूलनेवाली मियाँ दे वाले नेत्र उन मीनों के समान ही चमक उठते थे ।

स्वच्छ जलवाली नदियाँ, अपने प्रवाह के सूख जाने पर भी स्वादन में थोड़ा-थोड़ा

जलदान करती रहती हैं। वे उम डाना के समान हैं जो (डान में सागी सपन्नि देकर निर्भय बनने के पश्चात् भी) याचकों को अपना वधु नमस्कर. ‘नाही’ नहीं कहता है, किंतु अपने पान वर्जी हुई सपत्ति ने मेरी ही कुछ दान देना ही रहता है।

वीर योद्धा जिनके बद्र पर रत्नखचिन (स्वर्ण) हार ऐसे लगाने थे जैसे अभि के नग विजली सचरण कर रही हो, जब अपने घने वौंधे गये केशों को हिलाने हुए, नव सुवासित डेरों में प्रवेश करते थे, तब पर्वत की कढ़गाओं में प्रविष्ट होनेवाले मिहों के समान लगाने थे।

गूल और बगह-दत के जैसे (तीच्छ) डॉतोवाले, रक्त-केशों से भरे अपने माथे पर अनुपम (अतिरक्त वण) इगुलिक धारण किये हुए वड़े-वड़े हाथी (अपने शरीर पर बैधी) विविध घटियों को व्विनित बनाते हुए जब तरग-भरे प्रवाह को हिलोरने लगाने थे, तब वे ऐसे लगाने थे जैसे मधु और कैटम मनोहर नीलमसुद्र का आलोड़न कर रहे हों।

काले-काले मनगज उन्हें ठीक-ठीक मार्ग पर चलानेवालों (महावतों) के स्क्रेनों वो नहीं मानते थे और (अपने) दोनों ओर खड़े अपनी जातिवालों (हार्थियों) के द्वाग वाहर निकलने के लिए प्रेरित किये जाने पर भी, बे-परवाही के माथ, जलाशयों में ही पड़े रहते थे। वे (हाथी) वेश्याओं के मेंखलाचित जघन-तटों में ही मन दन (कासुक) जनों के जैसे थे, जो ठीक मार्ग पर चलनेवाले (शुद्धजनों) के उपदेशों को नहीं मानते और नमवयन्त्र नार्थियों के द्वाग (वेश्या-न्यूहों से) वाहर निकलने को प्रेरित किये जाने पर भी उसकी परवाह नहीं करते।

थ्रेषु वन्धों से भूपित कटिवाली रमणियों के माथ, पुरुष, पाकशालाओं से जलती हुई व्यग्र की लकड़ियाँ ले आने थे और आग जलाकर धुआँ उठाने थे जिससे वे सूर्य के आतप ओं भी मट छर देंते थे। इन व्यारण में उनके ठहरने का वह पुरातन स्थान, गर्जन न करने-वाले मेंजे ने आवृत, विगाल मसुद्र के जैना ही था।

कठग-युज पर्वतों में निवास करनेवाले विवाहग (उम सेना के नर-नारियों को) देववने दे लिए आने और उनके सादर्य को देखकर वों आश्चर्य से पड़ जाते थे कि अपने नाथी-नगियों वों भी भूल जाते थे। इस प्रकार, सुन्दर राजकुमारों और तक्षणियों के जम-गट ने वह सेना ऐसी लगती थी, मानो व्यमगलोक ही भूल से धरती पर उतर आया हो।

तदपियों अपने स्थान पर आने के पूर्व ही (मार्ग की थकावट के कारण) लेटे हुए पुरुषों ने रुठ जाती थी। वह मान दनके मीदर्य को बद्ध देता था। तब वे कभी तीते ने मधुर माण्ड बनने लगती तभी अपने नूपुरों से मधुर नाट उत्पन्न करती हुई, धूप को भी लजानेवाली अपनी स्वर्णिम बाति वों आगे-आगे फैलाती हुई चलने लगती, मानो मधूरों का कुड़ ती रिहार छर रहा हो।

इच्छ वीर पुरुष जब अपनी भुजाओं के ऊंसे ही उच्चत उम (चन्द्रशैल) पर्वत के परिमग्नों को निहारने हुए भयकर मिहों के नमान धूमते थे, तब उनके उभय पदों के वीर-चलय वर्त उठते थे। उनके पुष्पहारों पर के भ्रमग शुब्द बरते हुए उड़ जाने थे उनके पाश्व-

में खड़ग चमक उठते थे और लाल गल जड़े हुए उनके अगढ़ गहरकर दीपिमान हा उठते थे ।

(धरती को चारों ओर से) घेरकर पड़े हुए समुद्र जैसे उज्ज्वल गत्त-भगित स्वर्णिम (मेरु) पर्वत को पकड़ने के लिए आ पहुँचे हों, उसी प्रकार वह सेना उमड़कर आई और उस पर्वत-प्रात में ठहर गई । अब हम उस चन्द्रशैल के स्प का वर्णन करेंगे जिसे गजागण, उनकी पत्नियाँ, राजकुमार और लता-समान कुमारियाँ—सब मिलकर देखने लगे थे ।

दीर्घ दतवाले गज, अपनी तालवृक्ष-सदृश सूँडों को बढ़ाकर, स्वर्गलोक में स्थित कातिपूर्ण कल्पवृक्ष की छँची शाखाओं को, जिनपर अनेक भ्रमर सगीत गाते हुए नृत्य करते रहते थे, पत्तों सहित तोड़कर अपने प्राण-समान हथिनियों को ढे देते थे ।

प्रबाल-सम लाल मुँह, जिनसे राग विकसित होते थे, तथा शीतल कुबलय-पुष्प-समान नयनों से युक्त कुर्दिजि-प्रदेश (पार्वत्य-प्रदेश) की सुन्दरियों को ऋतु-परिवर्तन की सूचना देनेवाले भ्रमर 'वेंगे' (नामक) वृक्ष के पुष्पों से अधाकर गगन के नक्त्रों पर यह सौचकर लपक पड़ते थे कि ये भी नवमधु देनेवाले 'सुरपुत्रा' के फूल हैं ।

'नक्त्र' नामक हथिनी-सहित 'श्वेत चन्द्र' नामक हाथी अपनी दोनों कोटियों (धनुष की नोक) रूपी सुन्दर वक्त दतों से मधु-धाराएँ वहा देता था (अर्थात्, उस पर्वत के शहद के छक्कों में चन्द्र अपनी कोटियों को गड़ाकर उनसे मधु-धाराओं को वहा देता था) । वे धाराएँ नालों के रूप में वह चलती थीं । खेती करनेवाले किसान उन धाराओं का मार्ग बदलकर उनमें आकाशगंगा के जल को वहा ढेते और उसमें धान के अपने खेतों को मीचते थे ।

उस पर्वत को लौंघ न मकने के कारण उमकी तलहटी में ही अटककर रह जानेवाले चन्द्रमा-सूपी मुकुर में एक और से (धरती पर रहनेवाली) पर्वत की नियाँ अपने शृङ्गार को प्रतिविवित देखती थीं, तो दूसरी ओर में (स्वर्गलोक में रहनेवाली) अम्बगाँड़ अपना सौदर्य देखती थी ।

वहाँ के पर्वतीय पुरुष अपनी उन सुन्दरियों के ललाट के साथ चन्द्रमा की त्रुलना करके देखते थे जिन (रमणियों) के नेत्र उस शृङ्गायुध के समान थे, जो हवा निकालनेवाली भास्थियों की धधकती आग में तपाये विना तथा धार पर चिप और तेल चढ़ाये विना भी प्राण हर लेनेवाले थे ।

(वहाँ के क्षीपड़ों के) आँगन में भयकर सिह-शावक सुन्दर दृथिनियों के जाये हुए वच्चों के साथ खेलते रहते थे । वक्त वालचन्द्र भी उज्ज्वल ललाट-युक्त पर्वत-जाति की नारियों के वच्चों के साथ खेलता रहता था ।

उस पर्वत के इन्द्रनील से भरे तटों पर तथा वहाँ के विशाधरंग के कंश-भृषित सुन्दर शिरों पर, क्रमश अजन-पर्वततुल्य गजों को मारनेवाले बठोर गिर्ह के दृट चरणों के (लाल) निछु तथा (विशाधर) नियों के महावर-लगे कमल-चरणों के लगने में उत्तरा आद्व चिह्न दिखाई दे रहे थे ।

कों न कुछर मिथ्र गह जाने थे । उनके डाँतों की चमक वाहर नहीं दिखाई देती थी । उनके दीर्घ केश वधन से मुक्त होकर खिसक नहीं पड़ते थे । उनकी भैहि टेढ़ी होकर नहीं मिलती थी । अपनी पुष्प-कोसल हथेली और अपने स्वर को संवारकर (बीणा के) तारों को मेड़ती हुई वे अमृत वर्षा-मीं करती थीं । उनके उन सगीत को सुनकर किन्नर भी विस्मय-विसुग्ध हो जाते थे ।

मधु वहानेवाले पुष्प-हारों से भूषित तथा कानों के साथ सबध जोड़नेवाले करवाल-तुल्य नयन दे युक्त तर्शियाँ जब स्फटिक-देविकाओं पर आभीन होती थीं, तब उन ध्वल शिलाओं में उत्तम जलधाराएँ उन तर्शियों के कुकुम-लेप से मिलकर ऐसी लगती थीं, मानो अमृत गल्तों के बने चंचकों में मदा भरा गया हो ।

अपने पतियों के प्राणों को व्याकुल करती हुई, अजन-युक्त अश्रु बहाती हुई, स्थ-व्र और लाल करती हुई देवियों ने अपने केशों से मदार-पुष्पमालाओं को निकालकर फेंक दिया था । वे अम्लान और मधु भरी मालाएँ उम पर्वत पर यत्र-तत्र शोभायमान थीं ।

याम्रपल्लव के रगवाली पहाड़ी त्रियाँ सुकुलित क्रमुक-पत्रों से पुष्पमालाएँ डालकर अपने केशों-के नाथ उनकी तुलना करके देखती थीं । आभरण-भूषित देवागनाएँ अपने अभिजैने चमकते रत्न-खचित 'कटक' (नामक वाभूषणों) को उतारकर 'काँदल' (नामक पौधे) के पुष्पों को पहना दती थीं और अपने करों के नाथ उनकी तुलना करके देखती थीं ।

तीर चढ़ाये हुए धनुष के जेर्मी स्वर्दित भोहो के साथ (बीणा) तत्री से एक स्वर होकर मधुर गान करनेवाली तथा मधुरों के साथ नाचनेवाली देवियाँ (अपने प्रियतमों से) मान करती हुई अपने रत्नहारों को उतारकर फेंक देती थीं । (उम पर्वत पर के) वानर उन हारों को उठाकर पहन लेते थे और वानरियाँ उन्हे देख-देखकर आनंदित होती थीं ।

ऊँचे बढ़े हुए चडनवृद्धों ने युक्त मानु-प्रदेशों में स्थित गैरिक के लगने के कारण मनोहर दिव्याड़ देनेवाली लोभ-भरी हथिनियाँ महावर लगाये हुए-मीं दीखती थीं । (उम पर्वत पर के) उज्ज्वल पद्म-गारों को लाल काति (किरणें) फैजने से वहाँ के आकाश पर नदा लाली छाई रहती थीं ।

पुण्यी के अलकरण के निमित्त किरण-पुज-विशिष्ट मुक्ताओं को विखेरती हुई, पावती के प्रियतम (शिवजी) के शिर पर जो गगा उतरी थी उसकी समानता करती हुई, अनन्त न्यर्य को बढ़ाती हुई मोतियों के साथ आ गिरनेवाले निर्भरों की पक्कियाँ (उम चट्टग्रैल पर) ऐसी दृष्टिगत होती थीं जगे त्रिविक्रम के बज्ज पर उत्तरीय बन्ध लहरा रहे हों ।

'सुगपुना' के पुष्पों के साथ लवग-पुष्पों को भी सम्मिलित करके पहननेवाले तथा सर्व श्रमरों को उदास्य शुद्ध मधु का पान करनेवाले (वहाँ ठहरे हुए) उन लोगों ने अश्व-मुर्द्दी देवताओं को देखा जो विश्व-मिथुनों के सगीत सुनकर अपना प्रणय-कलह त्याग देते थे ।

उन लोगों ने देखा कि अस्त्रत मुद्रित दुक्कों के सुन्दर बज्जों पर आधात करनेवाले नन-नुगल जैसे अनुपम 'कोगु वृक्ष वी कलियों के निकट हैं । रमणियों की ही कटि के समान

के समान (पतली) शाखाएँ लचक रही हैं। उनमें भ्रमरियों ओर (उन लोगों के) केशों पर मंडराने की प्रकृतिवाले चचरीक नव विवाह का सबध जोड़ रहे हैं।

(उस पर्वत पर के) जलाशय को स्फटिक-भय स्थान समझकर, चृडामणि में सुशोभित, सुन्दर कमल तथा उज्ज्वल चढ़ जैसे बदनवाली (रमणियाँ) शीघ्रता से वहाँ चली जाती हैं और अपने उत्तरीय तथा कटि-वस्त्र को जल से भिगो लेती है। वह दृश्य देवकर वीर-बलयधारी युवक ताली वाजकर हँस पड़ते थे।

(उन लोगों ने) अनेक पुष्प शश्याये देखो। (विखरी हुई) पुष्पमालाएँ देखो। मनोहर वीरबहूटी-जैसी पान की पीक पड़ी देखो। प्राणों से भी अधिक प्यारे पतियों के विरह में मूर्छित विद्याधर-स्त्रियों के लेटने से भुलसी हुई पलजवों की सेजें भी देखो।

(उन्होंने देखा कि) देवनारियाँ सुगन्ध-भरे (पुष्पमय) झूलों पर झूल रही हैं। उन देवस्त्रियों के नीलकमल-जैसे वेंव अत्यन्त चचल हो धूम रहे हैं। उनके प्रवाल-जैसे मुँह पर मद हास विखर रहे हैं। उनके उभरे हुए पीन स्तनों पर अमूल्य रत्नहार डोल रहे हैं। मधुमत्त भ्रमर उनके केशों के मध्य शब्द करते हुए उड़ गहे हैं और उनके गत्त-खचित कर्णभरण डोला रहे हैं।

अपनी लज्जा को धन के लिए बेचनेवाली, स्वर्ण-आभरण पहने हुई (वार) नारियाँ, जिस प्रकार किसी पुरुष की सारी सपत्ति अपहरण करने के पश्चात् उसे सारहीन समझकर तिरस्कृत कर दूर कर देती हैं, उमी प्रकार सुन्दरबद्ना नारियों के प्रवाल-अधरों के द्वारा, विविध मर्दों का पान किये जाने के उपरान्त, लुटकाये हुए मधु-पात्रों को (उन लोगों ने) देखा।

रात्रि को दिन बनानेवाले प्रकाश से युक्त स्फटिक की शश्यओं पर, अति विशाल पुष्ट भुजाओंवाले देवगण जब धनुष को परास्त करनेवाली भृकुटि-युक्त अप्मरायी के साथ रति-कीड़ा करते थे, तब उपेक्षा से दूर फेंके गये कल्पक-पुष्पहारों और अन्य आभरणों को (उन लोगों ने) यत्र-तत्र पड़े देखा।

उस सेना की रमणियाँ कभी हथेली कं-जैसे विकमित होनेवाले उत्पल की कली को देखकर उसे फनवाला सर्प समझ लेती और डर से अपनी शूल-जैसी आँखों को बदकर लेती थी। (कभी) चिकने हीरे-भरे पत्थरों में पुष्पों के प्रतिविवों को देखकर उन्हे वास्तविक पुष्प समझ लेती और अपने पतियों से उन पुष्पों (प्रतिविवों) को ला देने की प्रार्थना करती थी।

कभी वे स्त्रियाँ अशोकबृक्ष के मनोहर पल्लवों को अपने नखों में नोचकर छोटे-छोटे ढुकडे बना डालती और उन्हे अपने गत्तन-तटों पर चिपकाती। कभी वे मधु-युक्त पुष्पों को चुनती, कभी कांतिमय गत्त-भरे उस पर्वत पर हमों के समान विशाल झग्ने में गोते लगाती।

[यहाँ से आगे नौ पद्यों तक मूल में यमक की ऋति सुन्दर छटा दिखाई गई है, अतः ऋथ की अपेक्षा शब्द-नुंकल पर कवि का अधिक ध्यान रहा है।]

उन पर्वत का सव्य भाग जो आम के कोमल पत्तिव के समान चमकता था वह (बान्तव में) नोने वा पत्र ही था । उसके (पर्वत के) दोनो पाश्वों में हरिण हाथी, मर्द आदि जन्म तथा लियों के कबूल जैसे वाँस, पुच्छाग आदि के वृक्ष लगे थे ।

अधकार-स्वरा बनाहो के शरीर पर (वहाँ गहनेवाली रमणियों के द्वारा उत्पादित) जो कुकुम-पक लग जाता, उसे वे आम, चदन आदि के पेड़ों पर रगड़कर हटा देते थे । देवलियाँ-जैसी मधुमाधिणी उन रमणियों के कारण वह विशाल पर्वत-प्रदेश स्वर्ग के ही सदृश था ।

वहाँ (चारे की खोज में) बड़े-बड़े मर्द सचरण करते थे तो बड़े-बड़े वाँस जड़े ने उड़ड़कर गिर पड़ते थे । वन्य-मृगों के भागन से धूलि उड़ने लगती थी । वहाँ के सूर्ने मुक्ताओं को माथ लेकर बड़े शब्द करते हुए वह चलते थे ।

प्रशस्त करवाल के-जैसे बठोर सिंहों की समानता करनेवाले (पुरुषों) की सुन्दर भुजाओं पर उज्ज्वल तथा लाल रेखायुक्त रमणियों के आभणालकृत स्तन लगने से तथा उन न्तर्नों पर के अग्र-चटन का लेप और मुक्ताहार लगने से (वे मुजाएँ) जिस प्रकार शोभित होती थी उसी प्रकार उन पर्वत-प्रदेश पर चटन, कुकुम आदि के वृक्ष शोभायमान थे ।

घने अरण्य से आवृत उन पर्वत पर गहनेवाला केले का वन वहाँ सचरण करती हुई देवनारियों की उच्चाओं के सदृश था वहाँ की (वन्य) लियाँ किन्नरों की-सी मधुरनाद-युक्त वीणा वा वादन चरती थी ।

मत्तगजों के मटजल का प्रवाह बड़े वनस्पतियों को गिराता हुआ वह रहा था, जिनमें यत्र-तत्र स्थिर पड़े हुए वृक्ष दिखाई देते थे, दूसरी ओर पहाड़ी नदियों में जल पीने के लिए पहाड़ी बकरे तथा अन्य मृग चलते हुए दिखाई पड़ते थे ।

वादों के निवासमूह पर्वत-प्रदेशों में बड़े बड़े 'पठह' वह सूचना देते हुए वज गंडे थे कि अब पर्वतवामी काले रंग की नारियों के द्वारा कद-मूल खोड़कर निकालने का समय आ गया है ।

बलिष्ठ गज जब उस पर्वत के जलाशय में डुबकी लगाते थे, तब (तट पर के) गीतल बठवृक्ष और नरोंवर की कमललताएँ विश्वस्त हो जाती थी, उग्र सिंह जहाँ दहलन रहत थे, ऐसे घने जगलों में आवृत उन पर्वत पर देववालाएँ आराम करती थीं तो उनके केशों में आनंद में बैठे रहते थे ।

उन पर्वत के ऊपर सेव-पक्षियाँ आकर ठहरती थीं, निचले भाग में पुण्य-प्रेणियाँ भरी रहती थीं । वह पर्वत ऐसा था जो विष्णु अपने हृदय पर लद्मी को धारण किये हुए विराजमान हो ।

पुष्पों पर मंडगत हुए मधु वा पान करनेवाले भ्रमरों के समान ही, तरुण और नर्दणियाँ युल-मिलन उन कई पर्वत के तट-प्रदेशों में कीड़ाएँ करते थे ।

(वहाँ गहनेवाले नर-नारी) उन पर्वत से उनरकर नीचे आने का विचार भी इस-

* पार्वती नाने ने लंगा रह निमालने वा मोमन थाने पर चमड़े के विविध व्राजों को बजाने लगते थे ।

लिए नहीं करते थे कि उस विचार-मात्र से उन्हें अत्यन्त पीड़ा होती थी। जिम प्रकार अपवर्ग-लोक में पहुँचे हुए मुक्तजन उम्म लोक के सुखानुभव के अतिरिक्त अन्य कोई विचार नहीं रखते, उसी प्रकार वे लोग उम्म पर्वत के ही वैभव में लीन रहते थे।

मेघों का विश्राम-स्थान बना हुआ वह पर्वत हाथी के सदृश था। गगन पर सचरण करता हुआ उष्ण किरणवाला सूर्य उस हाथी पर आक्रमण करनेवाले मिंह के महण था। नभ, जो सूर्यस्त के समय की लालिमा से भर गया था, सिंह के आधात में वहनेवाले रक्त के सदृश था।

बड़ी-बड़ी शाखाओं से युक्त वहाँ के बृक्ष नभ-लालिमा के प्रकाश में ऐसे लगते थे, मानों वे नये पल्लवों के भार से लद गये हो। अपने ऊपर सर्वत्र उम्म लालिमा के पड़ने में वह पर्वत रत्नों के पहाड़ जैसा लगता था।

नेत्रों को रमणीय दीखनेवाले दृश्यों तथा असर्व शिरों के कागण वह मुन्द्र पर्वत मनोहर चन्दन-रस से लिप्त बन्धवाले श्यामल (विष्णु) भगवान् के महण था।

प्राण एव शरीर के तुल्य परस्पर (प्रेम से भरे वे नर-नारी) गुजार भरते हुए मँडरानेवाले मधुपायी भ्रमर कुल के साथ, उस उन्नत पर्वत के प्रात में आ ठहरे। जैसे वे हाथी और हथिनी, सिंह और सिंहिनी, या हरिण और हरिणी ही हो।

गगन में सचरण करनेवाला, एकचक्रविशिष्ट रथवाला सूर्य-रूपी मिंह, जो तीक्ष्ण ताप-जनक दृष्टिवाला है, जिसके किरण-रूपी केसर हैं, जिनमें द्रूगों के केंके हुए तीर भी (छिपकर) खो जाते हैं तथा जो क्रोध से द्रूगों का विनाश करनेवाला है—अब अस्ताचल में प्रविष्ट हुआ। उसके अस्त होने पर घना अधकार, जो मिंह के डर से कही द्रू छिपा हुआ था, हाथियों के झुण्ड के समान वाहर निकला और सर्वत्र फैल गया।

मदार-पुष्प की सुगन्ध एव मधु-भरी मालाओं से अलकृत चक्रवर्ती (दशरथ) की सेना-वाहिनी रूपी गरजते हुए समुद्र में सर्वत्र दीपमालाएँ जल उठी, मानो लाल कमल खिल उठे हों।

शीतलता-युक्त रमणीय समुद्र की झाग-भरी वीचियों में से निकला हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा, नक्षत्रों से घिरा हुआ गगन में आकर चमकने लगा, मानो रुचिर चन्द्रिका के महण (उज्ज्वल) वालुका पर, कातिमय मुक्ताओं के साथ ध्वल शस्य सचरण कर रहा हो।

मत्स्यों की दुर्गन्धि से पूर्ण समुद्र ने एक ध्वल चन्द्रमा को पा लिया था, जिसे देखकर, ईर्ष्यावश उम्म सेना-समुद्र ने भी देवनारी-महण अपनी तरुणियों के मुख-रूपी असर्व चन्द्रमाओं ने अपने को प्रकाशित कर लिया।

जहाँ-जहाँ नर्तकियाँ नर्तन कर रही थीं वहाँ-वहाँ 'मार्जन वरने' के कागण मुद्र हुए मद्दल (वायो) का नाद, गायिकाओं का सगीत-नाद सगीत के आलाप के अनुकूल बजनेवाली तियों का नाद, हाथों से ताल देने से उत्पन्न नाद, गोठडार वाँसुरी का नाद—ये सभी नाद इस प्रकार उमड़ उठे कि स्वर्ग के निवासी भी आश्चर्य ने चकित गये।

ठडक के लिए रन्धाभरणों को हटाकर अपनी सखियों से प्रकाशमान मुक्तानारों वो लेकर अपने बन्ध पर पहननेवाली तथा अगरु-धूम में (पत्रभगों वो) मुख्यान्त्राली (वर्ण-

की नर्मणियाँ) शीतल मधु-भरी मलिलका-मालाओं को हटाकर सुग्रीव-युक्त तथा वने दलोंवाले 'बच्चमुर्हैं (बच्च) के पुष्पहारे को पहनने लगी ।

(उन पर्वत में) नये-नये (पकड़कर) लाये गये हाथियों को बौवनेवाले लोग जो गीत रचकर गाते थे उनका शब्द कही सुनाई पड़ता था, कही मव पीकर मत्त हुए पुरुष अपनी प्रेयमियों के साथ जो प्रलाप कर रहे थे, उमका शब्द था, कही वेश्याओं की मेखला का शब्द था और कही मटोन्मत्त गजों के वेसुध हो चिघाड़ने का शब्द हो रहा था ।

जना के द्वारा अपेक्षा, अमृत-समान रतिशालि के विषय का अनुभव करने, दुर्लभ अमृत-जैनी रमणियों के हृदय में उत्पन्न मान को ढंग करने, राग-युक्त गीतों को श्रवण कर उनके भाव को नवनों के नृत्याभिनव में देखने आदि कार्यों में ही (उनलोगों की) वह गत्रि व्यतीत हुई । (१-७३)



अध्याय ३४

पुष्प-चयन पटल

नक्षत्रों में एष रात्रि-स्पी खड्ग-दत्तवाले हिरण्यकशिषु पर क्रोध करके, पुजीभूत उण किरण-स्पी महस्त कर्गे को बाहर निकाले हुए, अपने उदयस्थान भूतपर्वत-स्पी सोने के स्तम्भ ने उज्ज्वल सर्व-स्पी नरमिह^१ निकाले ।

नित्य कमा को पूरा करने के उपरात, (दशरथ) चक्रवर्ती ने जव प्रस्थान किया, तब सभी राजा लोगों ने खड़े होकर नमस्कार किया । फिर, उनकी सेना-वाहिनी चलकर उम शोण नदी के निकट पहुँची जिनके तटों के ऊचे टीलों पर लहलहाते बन थे, टीलों के नीचे तलेयों में 'कक्षुनीर' (नामव लताएँ) फैली हुई थी और जिनके घाटों में कम्ललताएँ फैली हुई थीं ।

उम (शोण नदी के) स्थान पर पहुँचकर मारी सेना विश्राम करने को ठहर गई, (उभर) सर्व भी गगन-मडल के मध्य जा पहुँचा, गजा और गजकृमार अपनी-अपनी लियों के नाथ न्वच्छ जलाशयों ने जोभायमान शीतल तथा सुग्रीवित उद्यान में, भ्रमरों के विश्राम भूत ओमज्ज पुष्पों का चयन नथा जलविहार बनने के लिए गये ।

(उन उद्यान में उन मुन्डियों को देखकर) मव्र वहाँ से कदाचित् वह सोचकर दर हट गये कि (वे मुन्डियाँ) भ्र-स्पी सुदृढ वनुप के द्वारा अज्ञ रेखाओं से युक्त काली व्राण्ये-स्पी वाण चलाकर ही ही उन्हे आहत न कर दें । वे तरुणियाँ जब मञ्जुल नृपुरों को बजाती हुई डग भग्नी थीं तब हम (पुष्पों के मध्य) छिप जाते और गानेवाले भ्रमर (उन पुष्पों में) गुज्रन बनते हुए बाहर-डड़ जाते थे । ऐसा लगता था, मानो वे हस (उन तरुणियों की पद्धति में) लज्जिन हाँ पलायन कर रहे हों ।

^१ इस पद में नाचि बो निरुचभिषु और मये त्रो नरमिह-स्प बनलाया गया है ।

वे रमणियों अपनी मखियों के साथ मिलकर, अपने ग्रग लचकाकर नाचने लगा, तो पीले सोने के बने 'शुरुल' (नामक कर्णभरण) तथा भव्य 'कुले' (नामक कर्णभरण) एक साथ चमक उठे और (उनकी पुष्प-मालाओं में) वैठे हुए भ्रमर उड़कर गुजार भरने लगे ।

उन (नाचनेवाली स्त्रियों) को देखकर सुगंधित पुष्प-मालाओं से शोभित वक्ष-वाले पुरुष उन लता-सदृश नारियों को पुण्यित लताओं में पृथक् नहीं पहचान पाते थे औंग भ्रात होकर खडे रह जाते थे ।

रत्नों से खचित पीले स्वर्ण के आभरणों से अलकृत विशाल जघन, सगीतमय भाषण, शीतल पुष्प-मधु से युक्त केश—इनके साथ जब वे रमणियों भुण्ड वौधकर समीप आती, तो उनकी आहट सुनकर ही कोयले अपना मुँह बद कर लेती । वह उनके डर के कारण नहीं, किंतु लज्जा के कारण ही था । वाग्मी व्यक्तियों के सामने कौन सुँह खोल सकता है ?

वे सुन्दरियाँ अपने उन नेत्रों से, जो विष में अविक कठोर होने पर भी अमृत जैसे लगते थे, प्रेम के साथ देखकर और कमल-सदृश अपने करों से पकड़कर ऊँचे बढ़ हुए फूल के पौधों को जब भुकाने लगी, तब वे पौधे उनके नूपुर-भूपित चरणों पर सुकुमार पुष्पों को वरसाते हुए झट झुक गये । यदि जड़ वृक्षों की यह दशा हो, तो अब कौन ऐसा (चेतन) व्यक्ति होगा, जो लतातुल्य सूक्ष्मकटिवाली (स्त्रियों) के निकट झुके विना रह सके ?

कमल-पुष्प पर आसीन (लक्ष्मी) देवी-जैसी उन (सुन्दरियों) के ननोहर कमल-मदृश करो से छुए जाने पर सुरभित पुष्पालकृत केशवाले पुरुषों की पर्वत-समान भुजाएँ भी, जिनके बल से भयकर सिंह भी डर जाते हैं, भुककर रह जाती है, तो क्या यह भी कहने योग्य कोई विशेष बात है कि विकसित सुमनवाले पौधे (उन सुन्दरियों के स्पर्श से) भुक जाते हैं ?

मधुर नाद करनेवाले भ्रमरों ने देखा कि पुष्पलताएँ, नदियों या तालाबों में उत्पन्न न होनेवाले (उन रमणियों के) चन्द्रमुख-स्पी कमल-पुष्पों को कुवलय-पुष्पों के साथ खिलाये हुए खड़ी हैं, (अर्थात् वे स्त्रियाँ लतातुल्य हैं, उनके बदन कमल और नेत्र कुवलय हैं) । आश्चर्य में छावे वे भ्रमर (उन मुख, कमलों पर) ऐसे मँडराने लगे कि उड़ाने पर भी नहीं उड़ते थे । जो नवीनता के प्रेमी होते हैं, वे नई वस्तु को दखने पर क्या उन्हें छोड़ देंगे ?

कुछ लताएँ भुक-भुक जाती थीं, तो कुछ पुण्यित वृक्ष हाथ की पहुँच से भी ऊँचे होकर ऐसे खडे रहते थे, जैसे रुठे हुए हो और भुकना नहीं चाहते हों । वह दृश्य ऐसा या जैसे दृढ़ पर्वत-सदृश पुष्ट भुजाओंवाले उज्ज्वल शरीरवाले, विकसित पुष्पहार धारण करनेवाले पुरुषों के मध्य मयूर-सदृश कुछ (नारियों) खड़ी हों ।

पुष्पों के चुन लिये जाने पर शोभाहीन ठोकर भ्लान टिखाह पटनेवाली (शाखाओं को) देखकर चित्र की प्रतिमा (जैर्सी वे रमणिया) सीचती भी कि वे (शास्त्राएँ) हमारे पतियों की दृष्टि में सौदर्यहीन लगे गी, इनलिए वे अपने गलहार, मून्तामाला भेदला, कर्णभरण आदि उतारकर उनको पहना देती थीं और उन शीतल तथा सुन्मार शाखाओं दो प्यार-भरी दृष्टि से देखती रहती थीं ।

छने पुष्पों में बैठकर मधु का पान करके सचरण करते रहनेवाले भ्रमर, अब दुर्गाविन पुष्प मालाओं तथा कालियों को भी उतार देनेवाली (लियो) के रीते (खाली) केशों में ही रम्ते लगे और अपने प्रेम के पात्र पुष्पों पर नहीं जाते। बड़े लोग उत्तम स्थान में ही नभी भोग्य विषयों का अनुभव करते हैं।

अपने शरीर-मौर्य के कारण पुष्पानीन (लद्मी) दंबी का भी शृंगार बननेवाली (एक सुन्दरी) ध्वल स्फटिक-शिला में, कर में पुष्प लिये दिखाई पड़नेवाले अपने ही प्रतिविव को देखकर समझ वैठी कि वह कोई अन्य स्त्री है, जो मेरे पति की प्राण-समान प्रेयर्नी है। वह (अपने) दीर्घ नेत्रों से अश्रु वहाती हुई हाथ में पुष्प लिये वैसे ही खड़ी रह गई।^१

नेत्रों में विरे हुए चन्द्र के समान सुखवाली, अनुपम पुष्पलता-तुल्य (एक नारी) ने देखा कि एक गजा अपनी भुजा पर का पुष्पहार उतारकर मधूर-तुल्य किसी (नारी) को पहना रहा है, तब वह कच्छ के खुल जाने पर कटि को लचकानेवाले (भारी) स्तनों के अग्रभाग पर, शूल-जंजे नेत्रों में अश्रुवर्ण करती हुई^२ वहाँ खड़ी रही।

एक प्रेमी गजा मधूर की जी गति से आनेवाली अपनी प्रेयसी के मन की परीक्षा बनने की इच्छा में उस सुन्दर उद्यान के एक मावबीलता-कुञ्ज में जा छिपा। अपने पति के साथ निरतर रहनेवाली वह सुन्दरी, जो इनके पहले कभी उससे बिलग न हुई थी, अबानुल होंकर भटकते लगी, मानों प्राणों की खोज में शरीर चक्कर लगा रहा हो।

एक नारी, जो धृतमिक्त शूल धारण करनेवाले (अपने) पति से मान करके, इन प्रकार हो गई थी कि उसकी काजल-अकित काली आँखों में बहुत लाली उत्पन्न हो गई थी, अपने हाथ की पहुँच से कैचे रहनेवाले पुष्पों को देखकर एक कोयल से हाथ जोड़कर निनती बनने लगी कि इन पुष्पों को मेरे लिए तोड़ दो। (मान के कारण पति से न बहक जायल मेरे कहती है)।

ऊँचे नारियल के पेड़ पर लगे हुए फल को देखकर एक युवक ने कहा—‘आह! ये (फल) तदणियों के स्तनों^३ के समान हैं।’ (यह सुनकर) एक सुखधा, जो उसकी पली थी, ये नारियल किस नारी के स्तनों के जैमे हैं।^४ वह नांचती हुई क्रुद्ध हुई, सिसकियाँ लेने लगी और न्वेद-मित्त होंकर ठड़ी आहें भरने लगी।

युद्ध वा मदेश पाते ही फल उठनेवाली पर्वत-जंमी वलिष्ठ तथा सुन्दर भुजाओं में युक्त सन्मय-समान अपने पति को पुष्प तोड़ते हुए देखकर जलट-सदृश वेशवाली और

^१ इसमें यह अर्थ ध्वनित होता है कि उस स्त्री वा पति स्फटिक-शिला में उस नारी का प्रतिविव देखकर उसी को अपनी प्रेमनी समझ लेता है और उससे प्रेम करने लगता है। इसपर उसकी प्रेयसी उस प्रतिविव को अन्य नारी सननकर नहीं होती है।

^२ यह विनिधिन नाविका ह, जहाँ अपने-पति के स्तररूप में अन्य वहाती है।

^३ ‘तांत्रिकों के स्तन—यदुवचन के प्रयोग ने इन सुखधा नाविका को निंद्ह हुआ कि उसका पति अन्य मित्रा ने प्रेम रखता है।

कोकिल-जैसी वचनवाली उस स्त्री ने निकट आकर उसकी आखे वँद की, तो उम (पुरुष) ने पूछा—‘कौन है ?’^{१९} इसपर वह (नारी) अभि के जैसे निःश्वास भरने लगी ।

एक राजा मधु-भरे नवविकसित पुष्पों को (अपने हाथ में) लिये हुए खड़ा था । तब अलंक नारियों ने पक में अनुस्पन्दन, सुगाधित रक्तकमल-जैसे, अपने करों को एक माथ (उन पुष्पों को लेने के लिए) आगे बढ़ाया, तब वह गजा उनके मध्य, याचकों को कुछ न देनेवाले और ‘नाही’ भी न कहनेवाले कठोर लोभी के समान ही खड़ा गहा । (एक को देने पर अन्य सुन्दरियाँ रुठ जायेंगी, इस आशंका से पड़ा हुआ वह खड़ा रहा ।)

कञ्जलाकित नयनोवाली एक (रमणी) ने अपने सामने ही अपने प्राण-समान प्रसु को किसी दूसरी (स्त्री) का नाम लेते हुए पाया, तो उसने चुम्बनेवाले शूल जैगी (तीच्छन) दृष्टि से उसकी ओर देखा और वास्तविक लज्जा के भार से दबी हुई, सिर भुकाये, रोती हुई, कोमल पुष्पों को हाथ में लेकर सूँघा, तो उसके निःश्वास के स्पर्श से (वे पुष्प) झुलस गये ।

विजयशील रथवाला एक नरेश, जिसके सौदर्य को देखकर उसकी कुलीन पत्नियों के मनोश कमलोपम बटन पर के काजल-लगे नयन सुग्रह हो जाते थे, इधर-उधर धूमता हुआ उस महामत्त गज के समान लगता था, जिसके मदजल पर आसक्त हो भ्रमर मँडरा रहे हो ।

अनिन्दनीय रूप-युक्त एक नृपति ने, सन्ध्याकालीन उज्ज्वल अर्धचन्द्र के जैसे ललाटवाली (एक पत्नी) को तथा वदनीय पातिव्रत्य-युक्त (दूसरी पत्नी) को (अपने लाये गये पुष्पों में से) आधा-आधा भाग वॉटकर दिया, तो वे दोनों उन सुकुमार पुष्पों को नीचे फेंककर, आँखे लाल करती हुई ऐसे लौट चली, जैसे कलाप-युक्त मयूर जा रहे हो ।^{२०}

एक नारी उस उद्यान में, सर्वत्र मधु वहानेवाले सुगन्धित पुष्पों की खोज में इस प्रकार धूमती रही कि सहज गन्ध से युक्त अपने खुले हुए केशों की भी उसे सुध नहीं रही, अपने वस्त्रों का भी उसे ध्यान नहीं रहा, अपने सुकताहारों के टृट जाने से दूर-दूर तक विखरते हुए मोतियों की भी परवाह नहीं रही । (लोग उसे देखकर सोचते लगे) यह अपने प्राणों को खोज रही है या और कोई वस्तु ढूँढ रही है ?

‘याल’ (वीणा)-जैसी स्वरवाली तथा लद्धी देवी-जैसी (एक नारी) अतुलनीय वलशाली (अपने पति) नरेश के (प्रेम की भिज्जा में) भुके खड़े रहने पर भी स्वयं भुकी नहीं (अर्थात्, द्रवित नहीं हुई), फिर उम राजा के निराश होकर चले जाने के पश्चात् वह द्रवितमन हुई । अब अत्यन्त व्याकुल हो गम्भीर चतुर विचार करती हुई पहले उस राजा के स्थान पर अपने तोते को भेजा और (उमकी खोज करने के वहाने में) उमके पीछे-पीछे स्वयं चल पड़ी ।

सुन्दर पुष्प-माला से विभूषित वक्ष पर मन्मथ के पाँच वाण शत सहन्त्र होकर

गिरने लगे, जिसमें एवं नृपति का भन विचलित हो उठा। वह कर्तव्यविमूढ़ हो माघवी-लता से पूछने लगा कि क्या तुम मन्दार-पुष्प नहीं दे नकरी हो ? (अर्थात्, उन्मत्त-सा प्रजाप व्यक्त लगा)। इन प्रकार वह चन्दनाकित स्तनों एवं पुष्पालंकृत केशोंवाली (अपनी ग्रेसिका) के लिए विकल हो खड़ा रहा ।

एक सुन्दरी ने (अपने पति से) कोई अपगाध जान-दूँकर दूँद निकाला, जिससे वह अशमनीय कोप से भर गई और मान करने लगी। जब उसके पति ने उसके मान को देख लिया तब वह प्रबृद्ध आनन्दित हो उठी। वह वहाँ से दूर चली गई और सुगंधित पुष्पों को दृढ़-दृढ़कर उनकी माला बनाकर पहन लिया किन्तु मान की आशका से (अपनी पति के बापन न आने के कारण) आईने से अपना मोन्डर्य देखकर दुखी होने लगी ।

एक विरहिणी कहने लगी—मैं ऐसा अलकार नहीं कर सकी, जिसको देखने के लिए मैंग वह पति आ जाता, जिसके हाथ में यमराज को भोजन देनेवाला शूल रहता है । अब मैं इन शरीर के साथ जीवित नहीं रहना चाहती । इस उत्तम साज-शृंगार का क्या प्रयोजन है ? वह कहती हुई वह अपने आभग्न इस प्रकार उत्तारने लगी, जैसे उन्हें गायिका को दे देना चाहती हो (अर्थात् वह मरना चाहती है और अपने अमूल्य आभरणों को अपने प्रेमपात्र गायिका को दे देना चाहती हो) ।

(किन्नी न्यी का पालित तोता खो गया था) एक सुन्दरी समीपस्थ पुष्प-शाखा में छिपे हुए अपने तोता को पकड़ने के लिए ब्रवणशील पीत स्वर्ण के चघक को (तोते के लिए कुछ भोजन उसमें रखकर) हाथ में लिये इन प्रकार बल खाती हुई चलने लगी कि अनुक-वन्धन में न समाते हुए, उभड़नेवाले स्तनों का भार वहन करने की शक्ति न होने से उनकी सज्जम कटि लचक-लचक जाती हो ।

एक सुन्दरी ने राजहमिनी को देखा, उसकी पदगति को देखा और उसे वन्धु के समान ही अपने समीप आते हुए देखा । उसने सोचा कि यह मित्रता करने के लिए ही आ रही है, वह मेरी नखी हो सकती है । (फिर उसका सम्बोधन करके) कहा—तुम्हे देखने वाले हसंगे (व्याकि तुम वस्त्रहीन हो) यह उचित नहीं, तुम यह वस्त्र पहन लो,—वह अहंकर वह उस हसिनी को बत्त देने लगी ।

चाशुनी-जैमी मधुर वचनवाली, कीने वस्त्र धारण किये रहनेवाली एक नारी (कीने पट ने) अपने विशाल जघन-तट को देखकर वह माँचने लगी कि यह नाचते हुए नर्य के फन जैमा है और फिर वही फिरनेवाले मधुर को देखकर डर गई (क्योंकि मधुर नर्य पर स्पष्टंगा) । वह कट पुष्प-शाखाओं के मध्य जा छिपी और (लज्जा के कारण) पुष्पित शाखा-मध्य अपने हाथों ने नेत्र बन्द किये शिथिल खड़ी रही ।

अपना उपमान न रखनेवाली एक सुन्दरी अपनी सखी मेरे यह कहकर कि ‘है न्यर्ष-नुल्य मनु-स्मान लच्छी-मृद्यु चुन्दरी चुन्दरी पहचानो’—उन उद्यान में चयन करने वोग्य पुष्पभार ने लड़े एवं कुज के मध्य छिपी रही, (नखी जब उसे पहचान न सकी^१ तब) ‘अब

^१ उन्दरी: एप्टिन लताजा ने उतना साज रखना दी कि उस लताकुज में छिपा रहने पर उसे नहीं रखा जा सके ।

तो तुम मुझे देख लोगी'—कहती हुई उसके सुन्दर नीलकुबलय-जैसे नवनों का अपने हाथों से बन्द करके हँस पड़ी ।

एक उत्तम (नृपति) धनुष की डोरी को अगुस्ताने पर लगाये हुए दूसरे वलिष्ठ कर में एक रमणीय कोमल कमल-पुष्प लिये हुए केश-रूपी अन्धकार से घिरे नारियों के मुख रूपी कमल-चन के मध्य अरुण किरण-युक्त सूर्य के समान धूम रहा था ।

खेतों के पुष्ट, स्वच्छ रस से भरे इन्द्रु-रूपी लाल धनुष को हाथ में रखनेवाले मन्मथ भी जिनसे लज्जित होता था, ऐसे सुन्दर पुरुष अपनी मुग्धा पल्नियों के मीठे तथा प्रीतिजनक दिव्य गानों का ऐसे ही विवेचन कर रहे थे, जैसे वे शास्त्रों का विवेचन कर रहे हो ।

धनुष पर चढ़ाने योग्य वर्षि (तीर) हाथ में लिये हुए मन्मथ-रूपी खाला जब उद्यानों के भ्रमरों के नाद की मधुर वेणु बजाकर सकेत देने लगा, तब जैसे सध्याकाल में गायों के भुण्ड के मध्य वडे-वडे वृषभ चलते हैं, उसी प्रकार नीलकमल-जैसे काजल-लागे नेत्रोवाली नारियों के घेरे में राजा लोग चलने लगे ।

मन में (तपस्या के लिए) उत्साह से भरे हुए मुनियों के द्वारा यह वचन प्रसिद्ध हुआ है कि 'यदि हमें वचना चाहिए, तो मन्मथ के हाथ के धनुष से'—किन्तु (सच्ची वात यह है कि) पुष्प-लताओं से पुष्प चुननेवाली (एक नारी की) भाह का एक कोना-मात्र (उन मुनियों के धैर्य को हिला देने के लिए) पर्याप्त है । (अर्थात्, मन्मथ के धनुष से भी अधिक कठोर स्त्रियों के भौह-कमान हैं ।)

पुष्प-गध से सुवासित केश और रमणीय ललाटवाली एक (सुन्दरी) कदव-वृक्ष पर (पुष्प चुनने के लिए) चढ़े हुए (अपने) पति के मन में जा चढ़ी (अर्थात्, उसके मन में जाकर बैठ गई) । (उत्तरोत्तर) विकसित होनेवाले जान से जो महान हुए हैं, वे भी क्या पीन स्तनोवाली नारियों पर विजय पा सकते हैं ? (अर्थात्, उन्हें नहीं भूल सकते ।)

पुष्प-शाखा पर चढ़ा हुआ एक (पुरुष), देवताओं के लिए भी जिसका रूप चिरांत करना सभव नहीं था, ऐसी रूपवती (अपनी पत्नी) के सौन्दर्य में ही झड़ा रहा तथा उसी पर अपने नयन गड़ाये रहा और पुष्पों के बटले कलियों और पल्लवों को तोड़-तोड़कर उसे देने लगा ।

अनुपम मुद्गर-जैसी भुजाओंवाला एक पुरुष, भ्रमरों से अलड़त केशोवाली (अपनी पत्नी) का बदन देखकर उसके विव-समान मौह के स्पटन के द्वारा ही यह संकेत पाकर कि उस (नारी) के मन में कोप वसा है, अपने मन में व्याकुल हो उठा ।

इस प्रकार, व नर-नारी विशुद्ध तथा शीतल छाया देनेवाले उद्यान के पुष्पपुञ्ज का चयन करत-करते ऊब गये आर फिर धवल वीचियों से भरे निर्मल जल में कीड़ा करने की कामना रखते हुए (जलकीड़ा के लिए) उद्यत हुए । (१-३६)

अध्याय ४६

जलक्रीडा पटल

व उत्तम नर और अमरा-सदृश नारियों उम पुष्पोदान में निकलकर, शोभाय-मान पुण्यों में युक्त जलाशयों की ओर ऐसे चले आये, जैसे वन्य गज हथनियों के माथ चलते हैं। तब निर्मल स्वर्ग के निवासी देवता भी उन्हें देखकर लजित हो गये और भ्रमर गुंजार भगते हुए वहाँ में उड़ चले।

उनके जलक्रीडा करने वा वह दृश्य ऐसा था, जैसे पुराने काल में गगा से अलकृत जटावाले (शिव) के सदृश महान् नपस्ती (दुर्वासा) के शाप से देवेन्द्र का ऐश्वर्य अमराओं के माथ, उमड़ते हुए द्वीरमसुद्र में जा छवा हो।

बाले रग में युक्त कुवलय-पुण्य उन नारियों के नेत्र-पुण्यों के समान खिले थे, (तो) उन अलकृत स्पवति (नारियों) के नवन (उन) विकसित कुवलय के जैसे ही शोभित थे। रक्त कमल (उन) रमणियों के बदनों के जैसे ही खिले थे (तो) उन रमणियों के बदन (उन) रक्त कमल पुण्यों जैसे ही सुशोभित थे।

(व रमणियाँ केनी श्री १) कुछ रमणियाँ नालयुक्त कमल पर आसीन (लक्ष्मी-देवी) के नहग (अपने पतियों के) बदनों का गाढ़ालिंगन करनेवाली थीं, तो कुछ (अपने पतियों के) कधों का नहारा लिये हुए, विजयलक्ष्मी के सदृश दृष्टिगत होती थीं, कुछ जल को यो फैलाकर उछालती थीं कि वह ताड़िके पत्ते जैसा फैल जाता था, तो कुछ रमणियाँ पोठी मछलियों के उछलने पर भीत हों (अपने) पुरुषों का बालिंगन कर लेती थीं।

भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाली सुग्राहि से भरे सुग्राध-चूर्ण को तथा सुग्रधित तैल से युक्त बन्नरी को वे एक दूसरे पर छिड़कती थीं। कुछ एक दूसरे पर पुण्य-मालाएँ फेकती थीं और कुछ दूर्घटना-निर्मल जल का विम्ब-समान मुँह में भरकर अपने प्रेमियों पर फेकती थीं और कुछ पुड़रीक-समान करने को जोड़कर उनमें पानी भरकर दूसरों पर फेकती थीं।

विजली-समान कर्ट तथा चिकने वोम-जैसे कधोवाली (कुछ नारियों) (जल में दृश्यकी लगाकर ऊपर उठने पर) अपने बदन को ढूँकनेवाले पुण्यों-भरे केशों को हटाती हुई हन्तों को अपने माथ कीड़ा करने के लिए बुलाती थीं। कुछ रमणियाँ ऐसी श्री जो स्वर्ण-स्मान न्तरों पर (जल के) पुण्यों का स्पर्श होने से तड़प उठती थीं।

प्रवाल विवफल तथा कमल की समानता करनेवाले सगीत के अभ्यस्त रमणीय मुँह नया नीलकमल-जैसे मनोहर नवनों ने युक्त कटिहीन रमणियाँ (जल के) भीतर नहनेवाले बदल मीनों को ढेखकर अपने पतियों ने प्रछत्ती श्री कि 'क्या जलवागथों के भी नवन होते हैं ?'

भ्रमरों के आनन्द के कारण मध्यपूर्ण पुण्यों में शोभित धने केशोवाली, अप्सरा-समान एक तर्कणी अपने स्प वो नालाव (के जल) में प्रतिविवित ढेखकर यह सोचने लगी

कि यह सुन्दर ललाटवाली (कोई अन्य नारी है, जो) मेरे हँसने पर हँसती है, अतः मेरी वह मखी है, फिर आनन्द से अपने निर्दोष स्तनों का हार उतारकर उस प्रतिविव को देने लगी।

भ्रमरों से घिरे पुष्प-हारों से शोभित रमणियाँ (अपने) प्रियतमों की बज्र-मट्टश दृढ़ भुजाओं का आर्लिंगन करने की इच्छा से जलाशय के तट की ओर चलने लगी, तां वे गगनोन्नत पर्वतों पर रहनेवाले सुकुमार मधूरों के समान लगती थीं। उनके कणीभरणों की काति छिटक रही थी और श्रेष्ठ मुक्ताओं का हार (उनके ऊपर) प्रकाशमान था।

न जाने, उम जलकीड़ा के समय (पति के ढारा) क्या अपराध हुआ, जिसमें लाल रेखाओं से युक्त 'कयल' मीन जैसी आँखोवाली एक सुन्दरी अपनी आँखें (और भी) लाल करती हुई, क्रोध से जाकर कमलबन के भीतर छिप रही थीं और उमका पति यह नहीं पहचान सकने के कारण कि कौन पकज है और कौन उमकी पत्नी का मुख है, सदेह-ग्रस्त हो खड़ा रहा।

जव-जव वे सुन्दरियाँ जल म डुवकी लगाकर ऊपर उठती थीं, तव-तव (उनके) पत्त्वल-समान हाथों के स्वर्ण-क्रकण और शख-वलय भ्रमर के साथ बोल उठते थे। उनके भारी नितवों पर से अनेक लड़ियों की मेखलाएँ खिसक जाती थीं और उनके छाँटे पेरों से उलझ जाती थीं, तव वे रमणियाँ यह मोचकर कि पैरों से मॉप ही लिपट गये हैं, डर से थरथरा उठती।

वहाँ बत्तुल अगदों से भूषित विशाल भुजाओं से शोभायमान, पुष्पमालाधारी एक नृपति जल में मग्न हो क्रीड़ा करनेवाली नारियों के दल से घिरा हुआ इस प्रकार खड़ा था, जिस प्रकार मदरपर्वत (झीर सागर के) मथन के समय समुद्र से, अमृत के साथ उत्पन्न देवनारियों से घिरा हुआ खड़ा हो।

'तोड़ि' (नामक कक्षणों) से शोभित कमल-समान लाल-लाल कर, स्वच्छ हास-युक्त अरुण मुँह तथा लता-समान कटि-सहित सुन्दरियों के मध्य एक गजा इस प्रकार खड़ा था, जिस प्रकार सुगंधित कमल-भरे किनारोवाले वन-सरोवर में हथिनियों से घिरा हुआ कोई मत्तगज खड़ा हो।

अरण्य के मधूरों के गर्व को भी मिटानेवाले मादर्य से युक्त तथा निरन्तर वरमने-वाले मेघ की समानता करनेवाले दीर्घ केशों से विभूषित रमणियों के मध्य एक राजा इस प्रकार खड़ा था, जिस प्रकार आकाशगगा के मध्य अनेक स्थानों से चमकते हुए नक्त्रों से घिरा हुआ उज्ज्वल किरणोवाला चन्द्रमा खड़ा हो।

इन्हुंने का धनुप रखनेवाला बलिष्ठ भुजाशाली (मन्मथ) को (मादर्य) गुण के अतिरिक्त वाण भी देनेवाले दीर्घ नयनों से विभूषित एक मुख्या सखियों के द्वाग ब्रलकृत होकर, नारियों के मध्य इस प्रकार शोभायमान थी, जिस प्रकार विविध जलज-पुष्पों से प्रकाशित सरोवर में शतदल पुष्प (कमल) शोभित हो।

ये हड्ड तथा कठोन शर्ल हैं, नहीं ये तो चमकते हुए कर्वाल हैं — यों मन्मथ याग्य बदन पर मन्त्रमाण (विशाल) नयनों ने शोभायमान एक न्माहि मधूर-ज़गी मर्मयों

ने विरी हुई इस प्रकार खड़ी थी जिस प्रकार पत्तेवों तथा पुष्पों के साथ बढ़नेवाली लताओं ने विरी हुई, नगर में उत्तम बोमल पुष्पवाली कल्पिता है ।

ग्रथ में लिये हुए (अग्नजैसे) जघनवाली, नारिकेल-चृष्ण में लिये हुए (फल जैसे) स्तनोवाली अन्यत्र कही प्राप्त न होनेवाले मौन्दर्य से युक्त एक सुन्दरी, जल में मरन होने वाले इस प्रकार उठी कि ककुक में बैधे हुए उसके त्तन बाहर दिखाई देने लगे । तब उसका बदन निर्मल जल में दृश्यमान चन्द्र के प्रतिविव के सदृश शोभित हुआ ।

पर्वतों को परान्त करनेवाली भारी भुजाएँ, बख के अन्दर न समानेवाले विशाल जघन छटों के नमान स्तन—ये नव पग्स्यर धक्का देते हए सघर्षन्से करने लगे, जिससे (उन नरंगवर वा) जल तटों को पारकर फैल गया ।

लाल अधर इंकत हो गये, नेत्र लाल हो गये, शरीर का अगराग गलित हो गया, (कटि जे बैधा) बन्ध खिसक गया । कुकुमराग से लिप्त भारी स्तनोवाली रमणियाँ उस जलाशय में इस प्रकार मरन होने लगीं कि उस समय वह जलाशय भी प्रेम के साथ आलिंगित होनेवाले उनके पर्ति के नमान दीखता था ।

विशुद्ध ज्ञानवान् व्यक्ति के साथ सहवास करनेवाले (माधारण) नर भी ज्ञान प्राप्त करते हैं । वह अथवा ठीक ही है, उसी प्रकार (उस जलाशय के) मीन भी मधु, कस्तूरी, गालचृष्ण वा धुओं अगर लकड़ी का धुओं—इनकी गध ने सुवासित हो उठे थे । (उपर्युक्त कथन के लिए) इससे बढ़ने अव और क्या उदाहरण आवश्यक है ॥

बड़े गजाओं की देह से प्राप्त चन्दन-लेप, क्रीडा में निरत रमणियों से प्राप्त कुकुम-राग—इनमें भर जाने से वह मनोहर जलाशय ऐसा दिखाई पड़ता था । जैसे कोई नील मेघ आञ्जन वी लालिमा से रँग गया हो ।

शरीर पर के अगर, चन्दन आदि से बने अगराग के धुल जाने से चाशनी-जैसी मीठी बोली तथा विश्व-जैसे लाल अधर में शोभित वै मुन्दरियाँ भान पर चढ़ाये गये रत्न के नमान चम्क उठो ।

स्पटनेवाले मिह के नमान एक चीर की अच्छ स्वर्णभरण-भूषित भुजाओं पर आर्द्धचन्दन से लिखा गया चित्र जल का प्रवाह लगने से बुल गया । उसे ढेखकर एक तन्त्री के लाल रंगाओं से अकित काले नेत्र लाल हो उठे ।

काम-चेदना से जली हुई तथा नितव-भार से युक्त एक गमणी के देह ताप से तत होने, मकरद-पूर्ण नवविकासित तथा मधुनावी केशरवाले पुष्पों से युक्त वह तरणायमान गीतल जलाशय भी उछ हो उठा ।

अनुपम पुष्पों ने अलकृत भुजाओंवाले एक नरेश ने (अजलि मे) जल उठाकर एक गमणी के तंत्राकल केरो पर चढ़ाया, जैसे गत्पक्षज पर आमीन लहमी को श्रेष्ठगज अपने नाथ (नुङ्ड) मे जल-म्नान कन रहा हो ।

तदप इस कमल-पुष्पों पर वैठे थे । वे ऐसे लगते थे, मानों वह मोचकर कि वे अन्त इमानी चचल गति औं परान्त करनेवाली (सुन्दरियों) के मृदुल पदों की समानता कर रहे हैं द्वौर प्रचंद जरने हुए उन पुष्पों को (अपने फौंगे मे) राह रहे हों ।

चन्दन के बुल जाने पर नख-क्षतों के चिह्नों-सहित दृष्टिगत होनेवाले (उम रमणियों के) स्तन, सुन्दर धागो में लिपटे स्वर्णकलश-जैमे थे । उन कलशों को देखकर कितने पुरुषों के चित्त जल उठे—मेरे क्या कहूँ ?

चक्रधारी एक नरेश ने अपने दीर्घ धने दलवाले कमल-जैसे हस्त में (कुछ सब्जेत) प्रकट किया, उसको देखकर 'वीलि' (नामक लाल) फल के समान अधगवाली एक तन्त्री न अपनी सखी के कटाक्ष के द्वारा ही उसका उत्तर दिलाया ।

लहरों के आगे ढकेले जाने और उथल-पुथल होने से निर्मल जल में रक्त पकज झूँ-झूँव जाते थे, मानों वे कमल चितकवरे हरिण की नमानता करनेवाली उन (सुन्दरियों) के बदन की मदशता न कर सकने के कारण ही लज्जित हो अपने को (जल में) छिपा रहे हो ।

उपर्युक्त दृग से जलक्रीडा करने के पश्चात् वीर-बलयधारी पुरुष तथा स्त्रियाँ उस जलाशय से निकलकर, उसको शोभाहीन बनाते हुए किनारे पर आ गईं और योग्य वस्त्रों तथा आभरणों को पहना ।

जलक्रीडा के बाद (उनके बाहर) निकल आने से, वह जलाशय उम आकाश के मदश दीखने लगा, जिससे से तैरते हुए चन्द्र और नक्षत्र अदृश्य हो गये हो, या अन्तक उममें जो कमल-पुष्प (सुन्दरियों के बदन आदि) विकसित थे, वे अब उममें दूर हट गये हों ।

हरिण-सदृश नयनोवाली (रमणियों) ने पुरुषों-सहित जो जलक्रीडा की थी, उसको देखता हुआ उप्पकिरण (सूर्य) मीनों से पूर्ण समुद्र में समा गया, मानो वह स्वयं भी वैमा ही जलविहार करना चाहता हो ।

अपनी निर्वलता के कारण हारकर भी फिर अपने शत्रु पर चढ़ आनेवाले राजा के जैसे ही, सर्वत्र रमणियों के बदनों से पराजित हुआ चन्द्रमा, फिर प्रकट हुआ । (०-३३)



अध्याय ३४

मद्यपान पटल

सर्वत्र शीतल ज्योत्स्ना इन प्रकार फैल गई, मानो वह श्वेत रग के गदा की बाट हो, या सगीत ही साकार होकर जगत में फैल गया हो या (प्राणियों के) हृदय की नामना वहिर्गत हो गई हो ।

सम्मिलित रहनेवाले लोगों (नी-पुरुषों) के लिए सुखदायक मर्य बनकर विद्योग का दुख भोगनेवालों के लिए प्राण-पीड़क विष बनकर तथा प्रणय-कलह में कुँड़ व्यक्तियों के लिए महायक दृत बनकर, वह समृद्ध ज्योत्स्ना मन्मथ जी प्रार्थना ने नर्वत्र फैलने लगी ।

(उम चाँदनी में) मर्य नदियाँ गगा नदी के समान दृष्टिगत होती थी, नदी नमृद्ध

विव्यात कीरमसुद्र मे लगते थे, सब पर्वत अन्त भगवान् (शिव) के पर्वत (कैलास) के नमान दीखते थे उस चाँदी के प्रमाण के बारे मे हम और क्या कहे ?

मभी निर्मल दिगाएँ तथा उनमे रहनेवाले सब चेतन-अचेतन पदार्थ उस चट्ठिका की बढ़ मे श्वेत हो गये थे, मानो त्सुद्र मे धिरी यह वरती वज्र-मद्दश करवाल-युक्त मकर-चेतन (मन्मथ) के (जन्मदिवन के सूचक) श्वेतवन्न को धारण किये हुए शोभित हो रही हो ।

सब रमणियाँ, उज्ज्वल तारको के नद्दश मुक्ताओ (के बने चैटोवे) की छाया मे, मच्छाण नेहों के विश्रामन्थान बने हुए उद्यान-रूपी जवनिकातर मे, सरोवरो के समान चमकते हुए स्फटिको मे प्रकाशमान काननो ने और शोभायमान पुष्प-कुजों मे जा पहुँची ।

पुष्पों ने सुरभित कुतलवाली (रमणियाँ) पुष्पो की शव्याओ के (रति) समर मे आनन्द पाने का विचार करती हुई मनोहर स्वर्ण-चपको मे ढाले गये अमृत-मद्दश मद्य का जन बने लगी ।

नक्षत्रों मे शोभित गगन पर विहार करनेवाली (अप्मराएँ) तथा विद्याधर सुदरियाँ भी जिनकी सुन्दरता की समता नहीं कर सकती वैसी (सुन्दर) शरीरवाली तथा हरिणो को पगान्त करनेवाले नयनों ने युक्त वे (रमणियाँ) अपने मुख मे मद्य को इस प्रकार पीने लगी, मानो ब्रह्मगे मे धिरे पुष्प मे मधु ढाला जा रहा हो ।

वह चपक, जो विखरे हुए दृश्य के जैमे चन्द्र-किरणो से अक्रित था. (किसी रमणी के) व्यं व्यी मनोहर अरुण काति के पड़ने ने लाल दिखाई पड़ने लगा है । उस अनुपम सुदरी के मुख मे गिरा हुआ मद्य अमृत बनकर चमक उठा (अर्थात्, उसके श्वेत ढाँतो की छाया मे मद्य भी श्वेत हो उठा) तब उसकी अर्जन-लगी आँखे भी लाल हो गई ।

पुष्पमाला, 'पुनहु' (एक सुगन्धित द्रव्य), शीतल अगर का धूम, इनसे सुवासित कुतलवाली (रमणियाँ) जिन श्वेत मद्य का पान करती थी, वह (मद्य) अग्निकुण्ड मे डाले गये द्वामवृत के नमान अतर मे स्थित कामात्रि को भड़काकर बाहर प्रकट कर देता था ।

क्रातिपूर्ण ललाटवाली एक (मुन्द्री) स्वर्ण के बने शीतल सुगन्धित मद्य-भरे चपक मे अपने भव्य प्रतिविव ओ देखबन (यह समझकर कि कोई अन्य नारी मद्यपान कर नहीं है) वह उठी—‘हे नखी मेरे साथ तुम भी आनन्द से मद्यपान करो ।’ विप समान दीर्घ नपन तथा सुधा-नमान मधुगवाणी युक्त (तरणियों) के अज्ञान-सद्दश अज्ञान भी क्या कही हो सकता है ?

(वह दृष्ट न जाये) ऐसा डर उत्पन्न करनेवाली सूहमकटि-युक्त अप्सरा-समान कोई (मुन्द्री) अलब्धार विपाक्ष शल-सद्दश काले नयन रक्त मुख—इनमे सुशोभित हैम्ना हुआ वपना बड़न मद्य मे (प्रतिविविन) देखकर (यह समझकर कि यह कोई अन्य नारी है) वह उठी कि ‘हे पगली तू ने यह क्या काम किया ? यहाँ (सुराही मे) अधिक नाना ने मद्य के रहते हुए भी तू अर्थ ही जूँन का पान करती है’ और अपने दत-न्पी छुड़-र्णियों ओ प्रकट करती हुई हैन पड़ी ।

अनुपम लपवती अन्याद्ग (विच्चित्र) बड़ोरता रखनेवाले तथा हत्यारे शल की नमानता अर्देवाले नग्नो ने युक्त (एक रमणी) रत्नमय मधुपात्र मे श्वेत ज्योत्ना पड़ने

ने उसे मधु से भगा हुआ समझकर उठाकर पीने लगी, तो आसपास के सब लोग उसका उपहास करते हुए हँस पड़े, वह (बेचारी) अपने मन में बहुत लजित हुई ।

किंशुक पुष्प-समान सुखवाली एक (तरुणी), जिसका मृदु वचन ऐसा था कि उसे सुनकर लोग कहते थे कि 'बीणा तथा वणु को नाद-मात्रुरी देनेवाली इसकी ही बोली है ' नालसहित नीलकुवलय ^१ को भीतर रखनेवाले सुगंधित मदा-भरे पात्र में, अपने करवाल-तुल्य नयनों का प्रतिविव देखा और भ्रमर की भ्राति से उस (प्रतिविव) को उडाने लगी ।

वहाँ सोने का कर्णभूषण पहनी हुई, एक (तरुणी) ने मदा में दिखाई देनेवाले सुन्दर चन्द्र-प्रतिविव को अपने नयनों को सत्रुसि देती हुई देखा और उसे समझकर मधुर वचन कहने लगी—‘(है चन्द्र ।) तू आकाश के राहु नामक मर्प से डरकर यहाँ (उस मदा पात्र में) आ छिपा है, मैंने तुमें अभय प्रदान किया, तू डर मत ।’

नदी-वारा की भौंरी एक ही स्थान पर स्थिर खड़ी रह गई है, ऐसा अनुमान उत्पन्न करनेवाली नाभि से शोभित एक (तरुणी) ने रक्त-मधु की वर्षा करनेवाले पुष्पों के चैदोवे को चीरकर नीचे झरनेवाली धनी ज्योत्स्ना को देखा और (मदापान से) ज्ञानघ्रष्ट हो जाने के कारण अथवा छी-सहज अवोधता के कारण उसे मदा समझकर पात्र में भरने का प्रयत्न करने लगी ।

विजली के समान लचकती हुई कटिवाली एक (सुन्दरी) की उज्ज्वल अमृत-तुल्य मधुर वाणी बीच में ही (पूर्ण हुए बिना ही) स्खलित हो जाती थी। वह (नारी) अपने जघन पर की मेखला को हटाकर उसके स्थान में पुष्पहारों को पहनने लगी और स्वर्ण-हार को केशों में धारण करने लगी । (ये सब मदापान में मत्त व्यक्ति के कार्य हैं ।)

एक (रमणी) ने मदा-भरे रत्नखन्चित चूपक में हास्ययुक्त अपने बदन (के प्रतिविव) को देखकर यह सोचा कि गगन पर का चन्द्र मधु की कामना से (उस पात्र में) उत्तर आया है, वह उस (प्रतिविव) से कहने लगी—‘हृदय को आनन्द देनेवाले अपने पति के साथ जब मैं मान करूँगी, तब तुम यदि मुझे जलाओगे नहीं, किंतु शीतल ही वने रहोगे, तो मैं यह मदा तुम्हारों पीने के लिए ढूँगी ।’

तिल-पुष्प सद्ग सुन्दर नासिकावाली, आभूषण पहनी हुई एक रमणी नगे के कारण यह भी न जान सकी कि हाथ के काँप उठने से मदा आसन पर गिर गया हैं और यह सोच कर कि अभी पात्र में मदा है उसे हाथ से उठाकर अपने पद्माराग तुल्य वधर से लगा लिया ।

भुण्डों में मँडराते हुए भ्रमर आकाश में ऐसे फैले हुए थे, जैसे किसी बंदोभाई की मपन्नी की कामना करते हुए याचक आ जुटे हो । एक सुन्दरी मधुस्नात्री क्षमल-समान अपने अरुण मुँह को खोलकर मदा पीने से डरती थी (इसलिए कि कहीं भ्रमर मुँह में न बुग जाये), अतः चूपक में क्षमल के खोखले नाल को रखकर उसके द्वारा मदा (चूमकर) पीने लगी ।

एक (रमणी), जिसकी आँगे चर्मकोप में तत्क्षण निकाले गये खट्टग के समान चूपक उठती थी और जिनको देखकर जलपक्षियों से भरे क्षमल तडाग में रहनेवाले भीन

भी व्याकुल हो भाग खड़े होते थे जो न्यु ने पूर्ण पुण्य से अलवृत्त कोमल कुतलवाली और समृग-हुल्य थी, इनलिए मध्यपान नहीं करती थी कि उसके हृदय में निवास करनेवाला प्रेमी मध्यसेवी नहीं था ।

एक नारी क्रोध का अभिनय दिखानेवाले व्यक्ति के नामान ही यम-समान नेत्रों को लाल किये, ललाट पर टेंटों भौहों को चढ़ाये, चमकते ढाँतों को कटकटाती हुई सनोहर पल्लवों को पगास्त करनेवाले अपने करतलों से ताली बजाती थी ।

एक रमणी, कॉप्टे हुए अतिरिक्त अवर-विव को श्वेत ज्योत्स्ना पर क्रोध करनेवाले अपने ढाँतों से उबाये हुए, बहुत पैने और खून में लथपथ शूल-जैसी आँखों से घूर रही थी । उसकी देह से जो न्येद वह चला वह (शरीर में) बाहर उमड़ते हुए मद्द के समान ही दीखता था ।

किसी नारी के विवफल-मद्वश उमडे अवग से प्रकट होनेवाली लाली आँखों में जा चढ़ी । वह नोचती कुछ थी और कहती कुछ । उसके अनुपम कमल-हुल्य बदन पर भ्रू-रूपी बन्यु झुक गये । ललाट-हृषी चन्द्र भी बोन बरमान लगा ।

(किसी के) स्मृत के फूल-जैसे अधर की लाली छूट रही थी, ढाँतों से मधुर-रस (लाग) वह रहा था, न्तन-कुचक का वधन और नीवी-ववन ढीले पड़ रहे थे, लहराते हुए क्षेपाश छूटकर लटक रहे थे । उसके बदन से हान उत्पन्न हो गहा था । पति-समागम और मध्यपान—दोनों एक ही जैसे (लक्षणवाले) होते हैं ।

‘मुखर नृपुग्वाले मन्मथ मे मैं जो पीडित हूँ, इसे उम (मेरे प्रियतम) को बताऊँ ’ वों कहकर अपनी मखी को प्रियतम दे पान भेजती हुई रत्न-खच्चित मेखलावाली एक (रमणी) ने फिर प्रश्न किया—‘ह मखी क्या दृग् भी मेरे मन के जैसे ही (प्रियतम के जाम) रह जाओगी वा (शीघ्र नमाचार लेकर) लौट आओगी ।’

हरिण को भी मुख करनेवाले नयनोवाली एक (रमणी) ने किसी एक वलशाली नरेण के निकट, अपने अनुकूल रहनेवाली सभी सखियों को, एक दे पीछे एक को भेज दिया । फिर स्वय ही अक्षेली उम (प्रियतम) के पास चल पड़ी ।

मुगन्धित पुण्य-शश्वा की परतों पर, सीमा-रहित प्रेम-ससुद्र मे छूटी हुई मधु-भाषिणी एक (रमणी) ने अपने पति के मव नाम बतानेवाले तोंते को बहुत आनंदित होकर अक में भर लिया ।

उज्ज्वल ललाटवाली एक (रमणी) सुगंधित स्थान मे रहती हुई, अपने सगी तोंते को अक में लिये कह गही थी कि मेरे प्राण-नम (पति) को नू आज नहीं ला सका, फिर नू मेरी क्या नहायता कर सकता है ? मेरे लिए नू क्रौच पक्षी के समान (दुख को बढ़ाने-वाला) हो गया है और वह कुद्द होकर रो पड़ी ।

प्रियतम ने उसकी नौत वा नाम लेकर उसका सबोधन किया, तो स्वर्ण-कक्षण-धारिणी मधुर-नद्यश एक (रमणी) अक्षुग-नम ढाँतों को प्रकट करती हुई हैं पड़ी और ‘क्यल’ मैन-जैसे उसके नयनों मे अश्रुधारा बह चली ।

इच पुण्य ने अपने पूर्व व्यष्टाव के जग्य मान किये बैठी हुई अपनी प्रेयसी वा

मान दूर करने की इच्छा से उस (रमणी) की, नितवों पर फैली हुई मेखला को पकड़ा, तब स्वर्णवलय-भूषित उस (ल्ली) के नयनों में न समाकर मोती (जैसे आँगू) मर पड़े और दृट-कर त्रिखरे हुए मेखला के रत्नों के पास धरती पर जा गिरे ।

पुष्प-भार से चिकित्सित कुतलबाली (एक रमणी) अपने मन में चिकित्स प्रकार विचार करती हुई बैठी रही कि प्रियतम में साक्षात् होते ही उसमें मान करूँ या प्राणों को गलानेवाली विरह-पीड़ा को दूर करती हुई उससे मिलन का आनन्द उठाऊँ अश्रवा उसके गुणों का वीणा पर गान करूँ ।

एक (रमणी) जो अपनी सखियों पर अपने (पति के साथ हुए) मान को बचनों के द्वारा नहीं प्रकट कर सकी, (किन्तु उन्हे मान की वात जताकर प्रियतम के साथ सधि करा लेना चाहती थी) मकरवीणा पर, चिकित्सित कमल-समान अपने कर को लाल बनाती हुई फेरने लगी और अपने मन की वातें सगीत के द्वारा प्रकट करने लगी ।

पुष्पित शाखा समान एक सुन्दरी (अपने पति के न आने से) मिलनग्रन्थक रेखाएँ खीचने लगी, किन्तु उन रेखाओं के अपने अनुकूल फल न दिखाने से निश्चाम भग्ने लगी ।^१ अनग के अमोघ वाण में आहत होकर वह इस प्रकार पीडित हुई कि देखनेवाले 'इसके प्राण हैं या नहीं'—यह सदेह प्रकट करने लगे ।

कुदुक को शोभा देनेवाली और गुलियो से सुक्त एक (रमणी) ने विरह से उद्घिम्न होकर अपने सुन्दर (प्रियतम) के पास दृत भेजा । जब वह (प्रियतम) आ पहुँचा, तब उस सुन्दरी के नेत्र लाल हो गये और उसने कपाट बन्द करके मार्ग गेक दिया । न जाने उस सुन्दरी के मन में क्या विचार था ।

एक तरुणी, जो पुष्प-शब्द्या पर (मान किये हुए मोई-सी पटी थी) यह चाहने लगी कि अब मान छोड़ दे, किंतु उसकी इच्छा को, उसका पति (जो उसके मान से व्याकुल हो मैन पड़ा था) नहीं समझ सका । तब उस सुन्दरी ने एक झट्ठी और गडाई लेकर अपने हाथ-पैर फैलाती हुई यह प्रश्न किया कि कितनी घटिकाएँ वीत गई हैं ।

एक (सुन्दरी) उतावली हो उठी और महावर लगे पाँव में (अपने पति पर) आधात किया, तो उस (पति) के रोमाच हो आया, मानो (आनन्द के) नीर से मिक्क शरीर-रूपी उद्धान में रोपे गये प्रेम-बीज अकुरित हुए हो ।

शत्रु-नरेशों को सतानेवाले करवाल का धनी एक वीर, रमणी (अपनी पत्नी) के स्तनों को अपनी प्रकृति के विरुद्ध कृश^२ हुए देखकर मन में उमग में भर गया और आनन्द के कारण आपे से बाहर हो गया । उसका मुख चमक उठा और उसकी भुजाएँ फ़ज़ उठीं ।

एक अतिसुन्दर पुरुष ने देखा कि उसकी प्रेयसी पुष्प-शब्द्या पर पटी^३ जो मन्मथ

¹, विरहिणी नायिका आँगू बन्द करके बालू पर बर्तुल रेखा चींचनी है, यदि उन्मेवा के दोनों मिन्न जाये, तो यह मानती कि प्रियतम का मिलन होगा ; नहीं मिले, तो उन्मेवा अपशुन मान रेती ।

² यह ध्वनिन होता है कि उसके वियोग के कारण ही उनकी प्रेयसी में स्तन कृश हो गये थे । अपने प्रति गाढ़ प्रेम की यह सच्चना पाकर वह वीर अति हर्षित हुआ । —सनु०

के वाणों में स्वर्वंत्र आद्वृत-नी है और शश्या पर विछाये गये पल्लव झुलस गये हैं।^१ यह देख-कर उसका चित्त विभ्रात हो गया ।

एक शुभती के स्तन जो पोते हुए चबन-लेप को भी तपाकर सुखा देनेवाली उण्ठता से भरे थे, ऐसे लगते थे, मानो करवाल का व्यवमाय (ऊद्ध) करनेवाले किसी कुमार को लक्ष्य करके, ‘तुम देश की रक्षा करो’ कहकर बड़ों ने उसके अभिषेकार्थ (स्वर्ण के) जल-कलश रख डिये हैं ।

एक सुन्दरी ने, जो अपने प्राण-समान नायक के पास स्वयं अभिसार करना चाहती थी, सुखरित मजीर, विस्तृत मेखला तथा हीरे के बने हुए श्रेष्ठ आमरणों को उतार दिया और अपनाधी चन्द्र की ओर कुलमानेवाली दृष्टि से देखा ।^२

उधान की कोयल-जैसी एक सुन्दरी ने कोल्हू में पढ़े हुए मृदु गन्ने के समान (काम-च्यापि में पीडित) एक पुरुष को पुष्प के हार से वाँध डिया था, उस पुरुष की बज्र-सद्वश भुजाएँ उस वधन को तोड़ नहीं सकी । इस पुष्पहार की भी शक्ति कैसी थी ?

धने कुतलोंवाली एक (सुन्दरी) ने अपनी विरह-पीडा को जताने के लिए (चित्र में स्थित) मन्मथ को देखकर फिर एक (मखी) नारी की ओर देखा । उस (मखी) ने भी उस सुन्दरी वा मनोभाव समझकर, मधुसावी पुष्पहार धारण करनेवाले (पुरुष) के घर की ओर देखा ।^३

एक शूलधारी (तथा शत्रुओं के प्रति) क्रोधी राजा के पास, स्वर्ण का कर्णभूषण पहने हुई मयूर-सद्वश एक नारी त्वरित गति से जाने लगी । उसे (इस प्रकार आने के लिए) निमयण देनेवाला दृत चौन था । मन को द्रवित करनेवाला मवा था । रात्रि-काल था । अथवा मन्मथ ही था । विदित नहीं है ।

पूर्ण प्रेम के नामने परास्त हो मान करनेवाली अर्धचन्द्र-सद्वश ललाटवाली एक (सुन्दरी) ज्योही मेघ-सद्वश अपने नयनों में अश्रु वहाने लगी, त्योही प्रियतम ने आकर पूछा कि तुम्हें क्या हुआ है ? तुरत ही वह हँस उठी और मान को छोड़ वैठी ।

झुठलानेवाली कटि-नुक्त (अति सूक्ष्म कटिवाली) एक सुन्दरी ने मन से अपने प्रियतम को न हटाती हुड़ भी आलिंगन-वद्ध हाथों को हटा दिया । यह चिंचित्र कार्य पुरुष को हृदय में लगे शर के नमान दुखदायक था ।

एक क्रोमलाणी अपने प्रेमपात्र मखी का हाथ अपने हाथ में लिये हुए यह कहना चाहती थी कि तुम (मेरे प्रियतम के पान) दृढ़ बनकर (मन्देश ले) जाओ, किन्तु लज्जा की अविक्ता के कारण दीर्घ समय तक मोन रहकर मिमकियाँ भरती खड़ी रहो ।

^१ उसके विरह में तरती हुई नायिका के गीतोंचार के लिए विद्युते गये पल्लवों की यह दशा थी । इससे नायिका का प्रेमाधिक्य व्यक्ति है ।

^२ यह अवनिन है कि जोरां ने हिमक-अभिनार करने का इच्छा से यद्व करनेवाले आमरणों को दूर कर दिया और प्रकार करनेमात्रे चन्द्रमा को भी कातिहीन कर देना चाहा, जिससे नवंत्र अधकार हो जाय ।

^३ नायिका का यह रक्षण है कि वह मन्मथ के बालों से पांडित है और नवी उम्मी उम्मी को बचावे । सन्त्री का मञ्जन है कि वह उसके प्रियतम जो ले आयेगा ।

उत्तरोत्तर उमडने हुए प्रेमवाली एक (सुन्दरी) अपने प्राण-समान प्रियतम के व्यापारों के बारे में, सुभित पुष्पहार धारण करनेवाली एक अन्य स्त्री में कहना चाहती थी किन्तु लज्जा के कारण वैसा न करके कुछ असवढ़ बचन कहकर रह गई ।

प्रेमी और प्रेयसी परस्पर इस प्रकार गाढ़ आलिंगन में बैध गये । (वह दृश्य) ऐसा लगता था कि इनके मन एक ही प्रकृति के हैं, प्राण भी एक ही हैं परस्पर का प्रम भी एक समान है, अब इनके शरीर भी एक होकर रह गये ।

वाँस के जैसे कंधोवाली एक (रमणी) का मन, उसके प्रभु के सामने आकर उपस्थित होते ही आगे बढ़कर उसके पास पहुँच गया, किन्तु वह अपने चन्द्र-बदन को झुकाये खड़ी रही । उसका वैसा मुँह झुका लेना, उस पुरुष के लिए नया था. अतः उसके मन में कुछ आशंका उत्पन्न हुई ।^१

विकिम ललाटवाली एक (तरुणी) मान करने का आनन्द उठाना चाहती थी, (किन्तु पहले अपने पति से रूठकर उसके चले जाने के पश्चात्) वियोग में व्याकुल हो उठी । (प्रियतम को लाने जाकर भी) उस प्रियतम को लिये विना ही अकेली लोटी हुई मखी, मधुर संदानिल तथा रजनी-बेला के जैसे ही उसकी माता की भग्नानता करने लगी । (अर्थात् वह मखी, नायिका को मदानिल, रात्रि तथा माता के समान धिक्कारने लगी ।)

(अपने प्रियतम पर) दृढ़ प्रेमवाली एक (वाला) ने अपने पति के निकट भेजी गई दृती के साथ ही अपनी प्रजा को भी भेज दिया और टकटकी लगाये देखती खड़ी रही और (दूसरों की) कही वात को भी समझ नहीं सकी । वह इस प्रकार थी, मानो मध्या के समय किसी देवता का उमपर आवेश हो गया हो ।

(एक रमणी) अपने प्रियतम को भूल नहीं पाती थी । उसके आगमन की प्रतीक्षा करती हुई, पुण्यित शाखा-मद्दश उस बाला के मन की यह दशा हुई, मानो जन्म के साथ-साथ मृत्यु भी आ गई हो । (अर्थात्, उसके मन में आनन्द और दुःख दानों के भाव आते-जाते रहते थे ।) एक क्षण के लिए वह अपने घर से बाहर निकल आती और दूसरे ही क्षण घर के भीतर चली जाती, जैसे बादल के बीच में विजली चमक-चमककर छिप जाती हो ।

(एक तरुणी) वर्णन के लिए दुष्कर स्तनों पर मन्मथ के शरों के लगाने में उत्पन्न तीक्ष्ण व्रणों पर बलय-भूषित हस्त रखकर दबाती, गोती, हँसती और अपने दुख बताती हुई किसी नारी के पास जाकर उसमें दृती बनने की प्रार्थना करने लगती ।

एक नारी, यह मोन्चकर कि जो लोग हृदय में उत्पन्न हुईं पीड़ा (विरह दुख) की तथा उसके अभावों को पहले ने जानते हैं और उन्हे शब्दों से बताना आवश्यक नहीं है, शरीर से स्वेच्छ बहाने लगी, मन में उद्धिष्ठ हा उठी म्लान हुई थार (गग्या पर) लुटक गई फिर अपनी सखी की ओर निहारने लगी ।

स्तनवती तरुणियों की अपेक्षा तीनगुणा अधिक आनन्दित हीं मन्मथ उन रथानों

^१ इसका तात्पर्य यह है—नायिका के मन में मान उत्पन्न हुआ है, जब विचार में नायक भगविरा दुखा है ।

में विचरण करने लगा। कदाचित् उसने भी, चोर के जैसे उन नग-नारियों के मन में धुसकर उनके पिये हुए मव का पान किया होगा।

मधु-गध ने भरे विस्पटित पुष्प-हारों से अलकृत शिखावाले युवकों ने रति-कला-चन्द्र तरुणियों के बछों को उतारकर फेंक दिया। फ़िर, भरे हुए विशाल जघन की मेखला को भी अनादर क साथ दूर उठाकर फेंक दिया। जब अप्रकटनीय रहस्य-कृत्य होते हैं, तब पठहवाव^१ के जैसे वाचाल लोगों को साथ रखना उचित नहीं।

न्वर्ण की मनोहर मेखला तथा बन्ध इन दोनों वाह्य वस्तुओं को (किसी त्री ने) हटा दिया। इसमें आश्चर्य की क्या बात है? क्योंकि सुन्दर ललाटवाली उस (तरुणी) ने अपने अन्तरग में स्थित लज्जा को भी दूर कर दिया था। अनिर्वचनीय वैराग्य से युक्त दृढ़चित्त (नन्यासी) के समान ही अपने (अह) को दूर करने की प्रवृत्ति काम में भी होती है न?

अनुपम मन्मथ-समान एक पुरुष तथा पुष्प पर आसीन लद्मी के उपमान बनने योग्य एक तरुणी—दोनों अनग-समर में किसी से कोई हारनेवाले नहीं थे। जब उन दोनों के प्राण एक हैं और भाव (प्रजा) भी एक हैं, तब कौन किसको जीते?

(प्राण) हरण करनेवाले, युद्ध से प्रयुक्त होनेवाले खड़ग-समान नयनोवाली एक प्रगल्भा ने, कार्त्तिकेय के समान अपने सुन्दर पति को, घने पुष्पहारों से भूषित बन्ध को, अपने कर-कमलों में ढकते हुए देखा और कुछ होकर कह उठी—तुम अपने मन में स्थित प्राण-समान अपनी (एक दूसरी) प्रियतमा पर पदाधात होने की आशका से कपट करते हुए अपनी छाती को ढक रहे हो।

दृध के स्नाद और प्रवाल के रग से युक्त अधर, उभरे हुए उरोज, परस्पर समवृत्त करें। शूल-सट्टा नेत्र—इनने शोभायमान एक मृद्घगी ने, समुद्र के जैसे प्रेम से भरे चित्त तथा मेघ-नट्टा दीर्घ वाहुवाले एक युवक को ऐसा प्रेम-सुख दिया, मानो वह कोई अन्मग ही हो।

किसी पर्वतोद्यान के मयूर की समानता करनेवाली एक (रमणी) अपने प्रियतम के (पहले कभी कहे हुए) झूठे बच्चों को स्मरण कर मान करने लगी, किन्तु उसके उम मान के नाय प्रेम का जो युद्ध हुआ, उसमें प्रेम ही विजयी हुआ।

एक प्रमदा ने, जिसके नेत्र हत्या के ही स्वत्प ये और जिसका नितव मेखला के घेरे को भी भेटकर निकल पड़ता था, अपने प्रियतम का गाढ आँलिंगन करके उसकी पीठ की ओर यह मोचती हुई देखा कि कदाचित् उसके स्तन, पर्वत को परास्त करनेवाले पति के दृढ बन्ध को भी चीरकर बाहर न निकल याये हो।

युवतियों के नव वानन्द को युवकजन अनुभव करने लगे, कुकुम-लेप फर पड़े, रुतल-वध खिसक पड़े, शख-बलय बज उठे, मेखलाएँ (या नीवी-वधन) ढीले पड़ गये, नूपुर वहुत ऋचक कोलाहल मचाने लगे।

^१ पठहवाव = एक भूतार का दोल।

प्रेम ने दुःखदायक मान को इस प्रकार हटा दिया, जिस प्रकार किरण-युक्त सूर्य ओस को हटा देता है। तब आभरण-भूषित मयूर की छटावाली एक (तस्णी) ने उत्तावलेपन के साथ निढ़ा का बहाना करती हुई स्वप्न के व्याज से अपने पति का आलिंगन कर लिया।

वर्तुल, कान्तिपूर्ण मुखवाली एक मयूर (-समान स्त्री) तथा उसके पुरुष—दोनों ने, परस्पर समीप आने पर एक दूसरे को आलिंगन पास में वाँध लिया। फिर एकीभूत शगीरों को अलग न जानने के कारण उन्होंने एक दूसरे को छोड़ा नहीं। उधर रजनी-बेला जो बीत गई, उसे भी पहचाना नहीं।

अपूर्व उमंग से भरे मत्तगज-सदृश पुरुषों तथा काले कृतलोवाली रमणियों के उम समर में वह रात उसी प्रकार कट गई, जिस प्रकार परस्पर सघटमान पीन स्तन-युग का भार न सहन कर कटि कट जाति है (क्षीण हो जाती है)।

पुण्य-कर्म पूरा न करनेवाले व्यक्तियों की मध्यकाल में प्राप्त सपत्नि के समान ही चन्द्र अस्त हुआ। विशाल बीचियों से पूर्ण नील समुद्र में सूर्य उसी प्रकार प्रज्ज्वलित हो उदित हुआ, जिस प्रकार परम पुरुष (नारायण) के बक्ष पर प्रकाशमान (कौस्तुभ) रत्न हो।

(१-६७)



अध्याय ३६

अग्रयान (अगवानी) पटल

महाराज दशरथ—जो अनुच्छित मार्गों का कभी अवलम्बन न करनेवाले, अपूर्व बेटों में प्रतिपादित नीति का कभी त्याग न करनेवाले, सच्चरित्र, उत्कृष्ट जानी, उत्तम शासक, श्वेत छत्र से युक्त तथा राजाओं के अधिराज थे—अपनी उस (रेना) बाहिनी के साथ गगा नदी के किनारे जा पहुँचे, जिसमें मुखपट्ट-सहित हाथी के समान पर्यंतों में निकलनेवाली तथा वर्षाकालीन प्रवाह की जैसी बहनेवाली मद-जल की नदियाँ जाकर गिरती रहती हैं।

जब वाण आदि आयुधो-महित उम सेना-बाहिनी ने अधिक मात्रा में जल का पान किया, तब उस गगा नदी का—जिसकी रेत इतनी खब्बा थी कि फटी हुई जीभवाले नागों का लोक (पाताल) भी दृष्टिगत होता था—जल दहूत कम हो गया। उस समय लवण-समुद्र भी उस (गंगा के) खब्बा जल की प्यास से व्याकुल हो उठा। (अर्थात्, सेना के पीने पर गगा इतनी कृश हो गई कि समुद्र तक उसकी धारा न पहुँच सकी। इमलिए समुद्र उसकी प्यास से व्याकुल हो गया।)

विस्तृत पृथ्वी के शासक (दशरथ) उस स्थान से चलकर विशाल देतों ने घिरी हुई और अत्यन्त जल की समृद्धि से युक्त मिर्थिला नामक नगरी के निवट जा पहुँचे। उस समय खुब फौदनेवाले घोड़ों की नेना तथा शीतल कृष्णा से युद्ध, स्तम्भ-नमान अतिवृद्ध भुजावाले (राजा) ने जो किया उसका वर्णन आगे करेंगे।

'(दशनथ) महाराज आ पहुँचे हैं — यह समाचार पाकर मन में उमडती उमग के नाथ, आलान-न्तमभीं कों तोड़ देनेवाले मत्तगज रथ, लगाम-लगे धोड़े—इनके समुद्र से बिरे हुए (जनक) महाराज, देवन्द्र के वैभववाले दशरथ की वगवानी करने के लिए उठ आये जैसे चन्द्रमा सर्व के निकट आ रहा हो ।

गगाजल से सिक्त (कोशल) देश के अधिप (दशरथ) की सेनाएँ (मिथिला नगरी के पास) इस प्रकार आ पहुँची, जिस प्रकार अन्य सब समुद्र, अपने-अपने शखो के घोप करते हुए (क्षीर नागर के पास) आ पहुँचे हों । उम समय, उत्तम कन्या (सीता) और (अपनी पुत्री के रूप में) पाये हुए (जनक) महाराज की समुद्र नगरी (की प्रजा) इस प्रकार स्वागत के लिए आई, मानो पकज पर आमीन लद्धमी को जन्म देनेवाला क्षीर-नमुद्र (अन्य समुद्रों का स्वागत करने के लिए) आया हो ।

मकर-मीनों ने भरे हुए सात सख्यावाले विशाल महासमुद्र (सातों समुद्र) वर्ड अनन्त महागजों रथों, धोड़ों तथा पदार्तियों का रूप लेकर ससार-भर में उमडते हुए फैले, तो वे (आम के) पत्ते-जैसे शल को धारण करनेवाले (दशरथ) की सेना वा उपमान हो सकते हैं ।

फालगों से अलकृत श्वेत छत्रों तथा म्यूर-पखों के घने गुच्छों से आकाश ढक गया उससे सर्व का प्रकाश छिप गया और अदेग छा गया । वह सेना कमल-पुष्पों के अरुण वर्ण तथा श्वेत वर्ण से युक्त भरोवर के ही समान दीखती थी ।

कमलवानिनी लद्धमी, प्रख्यात तथा रद्वाहीन शास्त्रक (दशरथ) की ध्वजा में स्थित है या उनके अनुपम श्वेत छत्र में, उनके परम्परा में स्थित है या समुद्र के जैसे विस्तृत उम सेना के मध्य में, उनके बज्ज पर स्थित है या उनके ऊँचे किरीट में—वह कहाँ स्थित है, हम वह पहचान नहीं पा रहे हैं ।

(उम सेना में होनेवाले) सप्तम्बरों का नाव कचुकावद्ध उभरे स्तनोवाली नारियों वं केशों में स्थित भ्रमरों के नाव के मट्टग था । रथों का शब्द, श्वेत तरगों से भरे समुद्रों के गर्जन के समान था । भयकर हाथियों का गर्जन, वर्पाकालिक मेघों के गर्जन के समान था ।

(उम सेना के चलने से उठी हुई) धूल इस प्रकार फैली कि चारों ओर फैले हुए समुद्र को पाटकर टीले बनाती हुई, उपर के सात लोकों में भी भर गई । इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? लोकों को नापते समय चक्रधारी के चरण से अन्तरिक्ष में जो छेद हो गया था, उनी छेद वे द्वाग धूल ऊपर के सात लोकों में ही क्या, ब्रह्माड के परे भी तो पहुँच गई ।

(उम सेना क) दीर्घ छत्रों के मट्ट रहने में आकाश ढक गया और उनकी छाया ने अंद्रंग फैल गया, किन्तु उन दूर करना भी नुलभ ही था । (वयोकि) उन पृथ्वी-वर्णियों के सुन्दर गतखचित स्वर्णभिरण विजली की कान्ति दिखेरते थे इन्द्र-धनुष की कान्ति विखेरते थे सूर्यांतप की कान्ति दिखेरते थे थोर चान्द्रका की कान्ति भी विखेरते थे ।

निष्पलक नजायिगाज (दशरथ) के आगमन पर उनका स्वागत लगने के लिए दलशाली नथा चतुर दलुर्ध जनक महाराज पारे वढ़े । उनके मार्ग में जो धूल उड़ी,

वह लोगों से विखेरे जानेवाले सुगन्ध-चूर्ण, (याभरणों से गिरी हुई) न्वर्ण-रज तथा पुष्पों के मकरद की ही धूल थी ।

(राजा जनक के) मार्ग में स्थान-स्थान पर जो कीचड़ फेला था, वह वास्तव में सुगधित मधु (जो नर-नारियों के धारण किये पुष्पों से वहा था), कन्त्री (जो रमणियों के केशों से गिरी थी), सुवासित केसर-पुष्प तथा अगरु-काष्ठ को मिलाकर बनाया गया लेप कस्तूरी तथा अन्य सुगन्ध-द्रव्यों से सयुक्त चन्दन आदि के मिलाने से ही उत्पन्न हुआ था ।

(राजा जनक के) उस मार्ग में जो छाया पड़ रही थी, वह जयसूचक ध्वजाओं तथा ऊँचे वितानों से सयुक्त श्वेत छत्रों की ही छाया थी, जिसपर सुवासित मनोहर कुतलवती नारियों के रत्नखच्चित स्वर्णभरणों की उज्ज्वल कान्ति भी छिटककर अपूर्व रमणीयता उत्पन्न कर रही थी ।

सामने से आती हुई अनुपम बलशाली (दशरथ) की घटी स्ना के साथ, अधिकाधिक बढ़ते हुए आनन्द से युक्त (जनक) की मेना जा मिली । उस समय ऐसा घड़ा (आनन्द) घोप उठा, जैसा अनन्त गर्जन से भरे तरणित ममुद्र में नदी के गिरने से उत्पन्न होता है ।

आलान-स्तम्भों को भी तोड़ देनेवाले हाथियों की सेनायुक्त जनक उमग ने प्रेरित होकर अवर्णनीय सदगुणशाली तथा प्रजा के लिए पिता समान उस चक्रवर्ती (दशरथ) के सम्मुख अपने उदार मन की समता करनेवाले वडे गथ में आ पहुँचे ।

(दशरथ) के निकट पहुँचते ही जनक महराज अपने वडे रथ से उत्तर पड़े और अपने विशाल तथा सुन्दर सेना को पीछे ही छोड़कर, आगे बढ़े । (दशरथ ने) उन्ह रथ पर चटने का सकेत किया । उस सकेत को पाकर व सत्वर उनके रथ पर आस्ट हो गये, तब उस चक्रवर्ती ने मन में प्रमोद तथा मुख पर प्रफुल्लता के साथ (जनक का) आलिंगन कर लिया ।

व्याघ्र से स्वागत पाये हुए मिह के मद्वारा, सर्वोत्तम महागज दशरथ ने (जनक का) आलिंगन करके, उनके विशाल वन्धु-वर्ग और उनके अन्य परिवार के लोगों का कुशल निष्कलक चित्त से यथाक्रम पूछा । फिर (जनक से) यह कहकर कि आप आगे बढ़ें, उनके साथ ही (मिथिला में) आ पहुँचे ।

इस प्रकार, उन दोनों ने वडे मनोहर दग में (मिथिला नगर में) प्रवण किया, तब उस विशाल मिथिला नगर में उनके सम्मुख (स्वागतार्य) न्वय अपने ही उपमान वन्ने हुए, (रामचन्द्र) आये, जिन्होंने अपनी भुजाओं को फुलाकर अग्नि-तुल्य (वद्र) के न्वर्ण धनुष को तोड़ डाला था ।

देवों, मत्यों तथा नागों में वदित होते हुए, घनी वर्लिष्ट अश्व-सेना और अन्य योद्धाओं से घिरे हुए, पुरुषोत्तम (रामचन्द्र) अपने भाइं दो साथ लिये उस असरन सेनावाले (जनक) की नगरी में हरे रत्नखच्चित स्वर्ण-रथ पर आस्ट होकर समुख आ पहुँचे ।

जब दोनों योद्धा (राम और लक्ष्मण) अपने उच्च पिता के नमून्य प्राये तब उनके साथ, श्रेष्ठ सेनानी जनक की आज्ञा ने जो सेना आई थी, उसमें जिनमें २१५-

कितने नथ, कितने अश्व और कितनी हथिनियाँ थीं, इनकी गणना कौन कर सकता था ? वान्तव में उनकी गणना बरनेवाले तथा उस गणना के उपद्रुत अक जाननेवाले कौन हैं ?

नीलोत्पल कुवलय तथा सुगन्धित अतमी पुष्प की सदृशता करनेवाले, चित्र की प्रतिमा को भी लजानेवाले अनुपम रूप-विशिष्ट तथा देवों के द्वारा वंदित चरणवाले वे कुमार (राम) चक्रवर्ती के निकट यों आ पहुँचे, जैसे शरीर से पूर्व निकला हुआ प्राण फिर उमर्म आ मिले ।

मेनाओं के द्वारा अपनी चरण-बन्दना के उपरात, (श्रीराम ने) त्वरित गति से जाकर चक्रवर्ती (दशरथ) के मनोहर स्वर्ण-बलय-भूषित चरणों की बन्दना की । उनके (बन्दना करके) उठते ही, चक्रवर्ती ने उन्हे आलिंगन में वॉध लिया । उस समय मनु की-नी गरिमा भरे (चक्रवर्ती) की छाती के बीच, पर्वत-सदृश विलक्षण (शिव) धनुष को तोड़नेवाले दो वडे पर्वत (अर्थात् राम की भुजाएँ) छिप गये ।

दुर्निवार (शब्द आदि असुरों के द्वारा उत्पन्न) विपदाओं को भी दूर करने के कारण गगन तथा अष्ट दिशाओं में व्याप्त यशवाले नवसे श्रेष्ठ उस चक्रवर्ती ने फिर कनक वर्णवाले कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) के अपनी चरण-बन्दना करने ही उसे उठाकर पुष्पमालाओं में अलक्ष्म अपनी छाती से लगा लिया ।

घनी तथा दीर्घ जटावाले (शिव) के हाथ के धनुष को जिनकी विजयप्रद दीर्घ भुजाओं ने तोड़ा था वे उत्तम कुमार (राम) फिर अपनी जननी तथा अन्य माताओं को उसी प्रकार (अर्थात् जिस प्रकार दशरथ को किया था) प्रणाम कर खड़े हुए । उस समय उन माताओं के हृदय में जो उमर्गे उमड़ पड़ी, उनका वर्णन कौन कर सकता है ?

व्यान-दुक्त अपनी चरण-बन्दना करके खड़े हुए उस भरत को, जिसके उज्ज्वल नेंद्रों ने (आनन्द) अश्रु की धारा इस प्रकार वह रही थी, मानो उसके हृदय में स्थित (राम के प्रति) नतत ध्यानदुक्त अपार प्रेम ही उमड़ रहा हो, (श्रीराम ने) प्राणों में प्राण मिलाते हुए स्वर्णभरणी से भूषित अपने बद्ध से लगा लिया, जिस प्रकार पहले दशरथ चक्रवर्ती ने उन्हे आलिंगन में वॉध लिया था ।

श्यामल (राम) का अनुसरण करते हुए चलनेवाले (लक्ष्मण) तथा अपूर्व प्रेम में उत्कृष्ट (भरत) के अनुज (शत्रुघ्नि) अपने सुन्दर सुवासित केशवाले शिर से दोनों के बीर-बलय-भूषित चरणों का (अर्थात्, कमश. भरत और राम के चरणों का) स्पर्श किया ।

उत्तम राजनीति तथा शासन में कस्ण-दृष्टि—ये दोनों ही जिनकी सपत्ति हैं, ऐसे महागाज दशरथ के महज ही उत्तम शील-गुणसपन्न व चारों कुमार, वेद-प्रतिपादित धर्मों का प्रनुसरण करते हुए चार बदों के जैसे ही थे ।

उन चक्रवर्ती ने जिनका वेन्दड सवका माझी कहलाने योग्य था (अर्थात्, पञ्चपातहीन यानन करते थे) तथा जिनको सभी लोग अपनी-अपनी जननी ही मानते थे, (अर्थात् प्रजा पर मातृतुल्य करणा करनेवाले थे) अपने कुमार (राम) को आदेश दिया तब इन नारं (छत्र, चामर आदि) वंभव को माय लेकर तुम आरो बढो ।

हाथी-जैसे वीर नरनिकों वा (उन चारों कुमारों के प्रति) जो प्रेम था, उसको

हम ठीक-ठीक आँक नहीं सकते। उस समय उन योद्धाओं का जो स्वच्छ आनन्द था, वह कम था या उससे बढ़कर और कोई आनन्द हो भी सकता है, यह भी हम नहीं जानते। (हम इतना ही जानते हैं कि) पुष्पालकृत वेशवाले उन चारों कुमारों के अपने निकट आते ही, उस सेना की दशा उनके पिता (दशरथ) की जैसी ही हो गई।

राम के दोनों पार्श्वों में उनके प्यारे भाई, सेवा में निरतर निरत होकर, कभी कम न होनेवाले आनन्द के साथ, विजयशील अश्वों पर आरूढ़ हो आ रहे थे। उनके चलते समय शंखध्वनि के साथ घड़े-घड़े नगाड़े भी वज रहे थे, इस प्रकार (श्रीरामचन्द्र) अर्ति उन्नत रथ पर आरूढ़ हो चले।

(रामचन्द्र) प्राचीरों से आवृत मिथिला नगर की विशाल वीथियों में जा पहुँचे, जहाँ महावर-लगे मृदु पदवाली, प्रतिमा-समान सुन्दरियों का समूह चारों ओर मेघावृत ऊँची अद्वालिकाओं पर निरतर पक्षियों में एकत्र था तथा अपने विप-भरे नयनों से (राम पर) पुष्प-वर्षा कर रहा था।

वे सुन्दर प्रासाद, जहाँ (नारियों के) करों के कक्षण वज रहे थे, केशपाश शिथिल हो खिसक रहे थे, रक्तकमल से कोमल पदों के 'पाटक' नामक आभरण भरत (भरत-नाव्य-शास्त्र में प्रतिपादित ताल) को निरूपित कर रहे थे। कहीं नृत्यशालाएँ तो नहीं थीं, जिनमें ऐसी सुन्दरियाँ नृत्य करती हों, जिनके स्तन मदोण कुमोंवाले गजों के (ऊपर उठे हुए) दौतों को परास्त करनेवाले थे।

उस आदिदेव (अर्थात्, विष्णु के अवतारभूत राम) के निकट आने पर मन्मथ के वाणों से प्रेरित होकर, वहाँ आई हुई मनोहर कुतलोवाली नारियों—वालाओं में वृद्धाओं तक—की क्या दशा हुई, उसका वर्णन करेंगे। (१-३४)



अध्याय ३४

वीथी-विहार पटल

पुष्प (मधु) से आर्द्र केशोवाली अनेक स्त्रियाँ सर्वत्र त्वरित गति से वा एकत्र हुईं। उस समय उनके पुष्पों में स्थित भ्रमर गुजार कर रहे थे, नृपुर आदि पादाभरण शब्द कर रहे थे, उनका आना वैसा ही था, जैसे हरारणियाँ आ रही हों, मयूर-गण सचरण कर रहे हों, नक्षत्र-गण चमक रहे हों या विजलियाँ एकत्र हो गई हों।

दुर्लभ आभरणों से अलकृत नारियाँ, वधन से छूटकर गिरनेवाले अपने केशों की ओर ध्यान नहीं देती थीं, मेखलाओं का दृट-दृटकर गिरना भी नहीं देखती थीं। खिसकनेवाले पुष्प-समान अपने झनिने वस्त्रों को भी नहीं सेंभालती थीं। उनकी कटि लट्ठ-खड़ाती थीं, इस प्रकार एक दूसरे से 'हटो, हटो' कहती हुई मधुपान करनेवाले भ्रमणों के समान वे स्त्रियाँ घिर आईं।

नयनों में प्रेम नामक पदार्थ को ही (अर्थात् नाकार प्रेम को ही) (राम के स्प में) हम देख रही हैं। इस लड़ी-जन्म के फल को आज ही प्राप्त कर रही हैं यह सोचती हुई व नारियों इस प्रकार आईं जिस प्रकार हरिणों के भुड़, सारी पृथ्वी का पानी सूख जाने तथा आनंदश में वर्षा के भी न होने पर किसी स्थान पर पीने योग्य जल देखकर प्रेम से आ जूँह हों।

निम्न स्थल की ओर वह जानेवाली जलधारा के समान नील कुवलय-तुल्य तथा स्मुद्र ने भी विशाल नेत्रवाली वै स्त्रियाँ वहाँ आईं। उस समय उनके मञ्जुल नूपुर शब्द कर रहे थे मृदुल पुष्पहार हिल रहे थे उनकी सूक्ष्म कटि दुख रही थी। वै इस प्रकार दौड़ी, मानों वै अपने मन को जो राम के पास चला गया था, पकड़ने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ी आ रही हों।

‘नक्षर्ण को इसने निगल लिया है — (दर्शकों में) ऐसा भाव उत्पन्न करनेवाले तथा अहल्या को अनन्द देनेवाले पट-कुग और सुवासित केशोवाली सीता को प्राप्त करने के लिए शिवधनुष वो तोड़नेवाली फूली हुई भुजाएँ—उन्हें देखने के लिए उस राज-बीथी में जो नारियों एवं त्रुट हुई वै ऐसी लगती थी कि मधुमक्खियाँ शोर मचाती हुई अमृत पर धिर आई हों।

वै (गमच्छन्द) प्रकट स्प में तो बीथी में जा रहे थे, पर वस्तुतः वै ऐसे घोड़े जुते हुए रथ में जा रहे थे जो निर्निमेप खड़ी रहनेवाली उन नारियों के नेत्रों में फॉट जाते थे। अब उन्होंने सब लोगों को यह भली भाँति जता दिया कि महान् लोग उन्हे ‘कण्णन्’^१ क्यों बहते हैं।

व नारियाँ वह सोचकर (प्रेम की) बेदना से भी पीड़ित होती थी कि हाय। इस (नम) का रथ अब मन में भी अधिक बेग से दौड़ता चला जा रहा है। (कवि अहता है कि) पृथ्वी से भी परे जाकर स्वर्ग को पार करनेवाले (अर्थात्, त्रिविक्रिमावतार में विसुवन को नापनेवाले उम राम) को जिस सुन्दरी ने अपने दृष्टि-पथ में ही विठा लिया है, वही धन्य है।

एक मुन्दगी मिहरन सकांच शरीर का बब्ल, शख-बलय आदि को तथा अपना मन प्रदा नेज, लजा सुखता, सयम आदि अच्छे गुणों को—अपने प्राणों के अतिरिक्त अन्य कभी महिलोचित गुणों का त्वाग कर खड़ी रही।

(किसी नारी द्वे) कर्णभरण पर मचरण करनेवाले मीन-सट्टश नयनों से वर्षा के रहग अशु-वारा वह रही थी। वह ऐसे जूँह हुए स्तनों से सुशोभित थी, जिनके मध्य में एक धगा भी नहीं जा सकता था और जो मनमध के इन्द्रधनुष के वाणों से विक्षत थे।

वह (नारी) शिथिल हो इस प्रकार कुम्हलाई हुई कॉपती खड़ी रही जिस प्रकार उसकी विजली समान कटि कॉप रही थी ।

रुई जैसी मृदु उँगलियोवाली उन (रमणियो) के भाले जैसे दीर्घ नयनों ने अपने प्रभु (राम) के शरीर की कालिमा को प्राप्त किया था, या मेघ-समान शरीरवाले उम (राम) का वर्ण उन नारियों के अजनाच्छित नयनों के ढारा देखे जाने के कारण ही उम प्रकार (काला) हो गया था । हमको कुछ निश्चित रूप से विदित नहीं हुआ ।

आम के पह्लव-समान (अरुण) शरीरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक सुन्दरी मन्मथ को सर्वत्र पुष्प-वाणों की वर्षा करते हुए ढेखकर कह उठी— यह कौन है, जो चक्रवर्ती (दशरथ) की आज्ञा का तथा इस वीर (राम) के वनुश्चातुर्य का भी निगद्वर करता हुआ, आभरण-भूषित अवलाओं पर वाणों का प्रहार कर रहा है ।

लक्ष्मी की समता करनेवाली एक नारी, जिसके आभरण खिसककर गिर गये थे, और जो अपने शरीर को भी सँभाल नहीं पा रही थी, एक वस्त्र को ही पकड़े हुए इस प्रकार (राम के प्रेम में मग्न हो) खड़ी थी, मानों अपूर्व सौंदर्य को भली भाँति पहचाननेवाले किमी चित्रकार ने, शब्दों से अतीत तथा सभी प्रकार के ऐन्द्रिय अनुभवों से श्रेष्ठ कामानुभव को एक स्त्री के रूप में चित्रित कर दिया हो ।

प्राणहर शूल-सदृश तथा यम की समता करनेवाले नेत्रोवाली मयूर-हृल्य एक (सुन्दरी) इस प्रकार खड़ी थी कि उसकी धनुप जैसी भाँहों और ललाट से स्वेट वह रहा था, मारे शरीर में पीलापन छा गया था, मन शिथिल ही गया था, वह राम के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं देख पाती थी, इसलिए बोल उठी—‘क्या मेरे प्रभु अब्जेले ही जा रहे हैं ?’

अजन-जैसे काले कुतलोवाली, अरुण अधरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक रमणी ने (राम के प्रति प्रेमाधिक्य से) मन से द्रवित होती हुई, अपनी सखी से कहा—‘हे सखी ! वह वचक (राम) मेरे मन के भीतर आ पहुँचा है और मैंने नेत्र नामक उसके आगमन के ढार को दृढ़ता से बद कर दिया है जिसमें अब वह बाहर निकलकर नहीं जा सकता है, अब मैं पर्यक पर जाऊँगी ।’

गद्दी हुई प्रतिमा के समान एक सुन्दरी मांहिनी-सदृश अपने शरीर में चुभन-बाले मन्मथ-वाणों का भी व्यान नहीं करती थी, उसने यह भी नहीं जाना कि उसके आभरण और वस्त्र कैसे खिसक-खिसककर पृथक्-पृथक् हो गिर रहे हैं । वह उम धमल (राम) के रूप को (प्रेम के साथ) देखनेवाली (नारियों को) अपनी ओँसां में चिनगारियों उगलती हुई (ईर्ष्या और क्रोध के साथ) देख रही थी ।

गही थी पन (वहाँ एकत्र लियो के) काले केशपाश, कुचुकाकद्ध भारी स्तनं, नेखलावृत्त नितम्ब आदि के धने स्वप्न में छाये रहने से राम के स्वप्न को नहीं देख पाती थी, तब वह अर्तिविशाल नेत्रवती (उन गमणियों की सूक्ष्म) कटियों के मध्य से राम को देखने लगी ।

उन (मिथिता की) वीथियों में, कसे हुए खड़गवाले अनग के द्वाग फेंके गये पुष्प-वाण (नारियों के) मन को पार करके बाहर बिखरे पड़े थे । उन (नारियों) के (विरह-ज्वाला में) झुलझकर गिरे हुए आभरण, स्तनों पर स्वेच्छ आने से गिरे हुए कुकुम-लेप रिखमक्कर गिरी हुई मेखलाएँ, मुक्काहार, शख-चलय, दीर्घ केशों से ग्रस्त हुए पुष्प—इनसे गिरक्क म्यान वहाँ कही भी नहीं था ।

(उन नारियों में ने) जो (राम की) सुजाएँ देखने लगी, वे उन भुजाओं को ही देखती रह गईं जो वीर-क्रक्षण भूषित कमल-सृष्टि उनके चरणों को देखने लगी, वे उन चरणों को ही देखती रह गईं, (जो उनके) विशाल हाथों को देखने लगी, वे वैसी ही (उन हाथों का देखती हुई) अड़ी रह गईं । उन शूल-तुल्य नेत्रवतियों में कौन ऐसी थी जिन्ने (राम के) स्वप्न को पूर्ण स्वप्न में देखा हो ? (अर्थात्, भगवान् के अवतारभूत राम जो पूर्ण स्वप्न में किनी ने नहीं देखा है ।) वे नारियाँ विभिन्न धर्मों के उन अनुयायियों के समान थीं, जो अपने-अपने सिद्धातों के अनुसार भगवान् के किसी एक अश का ही व्यान करते रहते हैं ।

युद्धम कटि तथा दीर्घ कुतलोवाली एक सुन्दरी को जीवन-दान देते हुए उसका उद्धार करते हुए, उसके मन में (श्रीराम) अन्तर्भूत हो रह । समस्त सुवनों को अपने उदर में अन्तर्भूत करनेवाले (हमारे) प्रभु से बढ़कर, कहो, अब और कौन बड़ा हो नक्ता है ?

हिलनेवाले दीर्घ केश-भार तथा उत्तम आभरणों से सुशोभित एक तरुणी, अपनी पायल तथा नूपुरों को ध्वनित करती हुई, अति सुन्दर पुष्पित शाखा के सभान पग रखती हुई थाड़ और (राम को देखते ही प्रेम-पीडित) हो रोती हुई सखियों के हाथों पर (आह्वान होकर) चली गई । (अर्थात् प्रेम-व्याधि से पीडित उस नायिका को उसकी नवियाँ अपने हाथों पर उठाकर रोती हुई चली गई ।)

उस स्थान में 'कुड़मल' जैसे स्तनोवाली, आभरणालकृत एक युवती ने (राम का नम्बोधन करने) कहा—तुम्हारा हृदय लोहे के समान कठोर है, फिर भी तुमने एक सुधा (जो प्राप्त करने) के लिए मेरन्नदृश बनुप को तोड़ा है । हे पुण्यस्वरूप ! (मन्मथ) के इक्कु-धनुप को तोड़कर सुझे भी अपनायी न ।

जाजल ने अजित नवनोवाली तथा उज्ज्वल ललाटवती एक तरुणी ने कहा—
कलीनूत तपन्नावान् वह (राम) अपने रथ का त्याग कर मेरे नेत्रों के अत्यन्त निकट आ रहा है वह कोई इन्द्र-जाल है या स्वप्न ?

एक नारी ने, जिनके पास अपने मन के अर्तिरक्ष और कोइ दूत नहीं था और जिनके प्राप्त द्रवित हो उठे थे कहा—'कमलपुण्य के समान लाल रेखाओं से अंकित

नेत्रोवाली उम सीता ने न जाने कैसी तपस्या की थी (जिससे इस सुन्दर पुरुष को प्राप्त किया है) ?

त्रुटि-रहित प्रतिमा-समान एक सुन्दरी (राम के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण) तड़पकर रो उठी , उष्ण निःश्वास भरने लगी , शिथिल हो व्याकुलता के साथ, अपनी प्राण-सखी के प्रति हाथ जोड़कर कहने लगी—इस कुमार को क्या मन्मथ के द्वाग चित्र में अकित कराया जा सकता है ?

अरुण अधरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक नारी ने (अपने पास खड़े व्यक्तियों को देखकर) कहा—क्या, किसी मानव-मात्र में इस प्रकार के लक्षण हो सकते हैं ? (नहीं , अतः) यह विष्णु ही है , मैं तुम लोगों को यह समझा रही हूँ , इस कथन की सचाई को तुम लोग भविष्य से प्रत्यक्ष देखोगे ।

उज्ज्वल ललाटवाली एक सुन्दरी ने जिसके स्वर्ण नूपुर ओर हाथ के ककण खिसक रहे थे, जिसका मन द्रवित हो रहा था, बहुत म्लान होकर कहा—‘यह अनघ इस नगर में आया है, यह जनक महाराज की तपस्या का ही फल है ।’

अश्रुपूर्ण आँखों और स्वर्ण-भूषित कटिवाली एक रमणी ने, जो इतनी व्याकुल हो उठी थी कि उसका समस्त सौन्दर्य उसके शरीर को छोड़कर चला गया था, कहा—‘क्या यह सम्भव हो सकता है कि मुनियों तथा श्रेष्ठ राजाओं में घिरा हुआ यह कुमार (राम) अकेले ही, स्वप्न में, मेरे निकट आ जाये ?’

वन में निवास करनेवाले वर्षाकाल के मध्य की समता करनेवाली एक स्वर्णलता ने अपने मन के (राम के प्रति उत्पन्न) प्रेम को छिपाना चाहा , किन्तु मन्मथ ने उस बात को जान लिया । गुत बातों को मन जिस प्रकार छिपा लेता है, क्या उसी प्रकार मुख भी छिपा सकता है ? (अर्थात्, मन में छिपे हुए भाव को मुख की कान्ति प्रकट कर देती है ।)

दो दीर्घ नयनोवाली एक इन्दुमुखी (विरह-वाधा से उद्धिग्न हो) पुष्प-पर्यंक पर जा लेटी । वह बज्रनाद सुनकर डरे हुए साँप के जैसे विभ्रात होकर निःश्वास भरने लगी और उसके परस्पर धर्षमाण स्तन-द्वय पर स्वेद छा गया ।

लाल अतसी-पुष्प के सदृश, अमृत-पूर्ण अधरवाली वे सुन्दरियाँ (राम के प्रेम के कारण) पृथक्-पृथक् उद्धिग्न होती हुई विकल-प्राण हो गई , दुखती हुई सूख्म कटिवाली सीता के समान, आनन्द के कारण (राम को) जिन्होंने नहीं पाया है, वे कैसे जीयेगी ?

(एक नारी कहने लगी) स्वेद-भरे शरीर, व्याकुल प्राण तथा अत्यन्त बेदना के साथ पीड़ित होनेवाली इन नारियों में से किसी को इस परिशुद्ध पुरुष ने अपने आगन्त नेत्रों से प्रेम के साथ देखा तक नहीं । कदाचित् यह प्रेमहीन (कठोर) चित्तवाला है ।

उस नगर में नारियाँ असख्य थीं । इधर राम के मोन्दर्य की भी कोई नीरा नहीं थी, अतः सुन्दर धनुधर्मी मन्मथ भी क्या कर सकता था ? उसके हाथ के नव दाष तुक गये, तो उसने अपने खड़ग पर हाथ रखा (अर्थात्, खड़ग का प्रयोग करने लगा) ।

हम यह तो जानते हैं कि कस्तुरी ने सुवानित दीर्घ कृतलोचनी उन नग-

जैसे नासिंगे पर मन्मथ ने कैसे अन्त्र प्रशुत किये पर वह नहीं जानते कि बसन्तकालीन मन्त्रय ने स्वर्गवासिनियों के साथ कैसा चुदा किया। उसके बाण तो स्वर्ग की निवासिनी अमृताओं के हड्डों ने भी जा लगे होंगे।

(किसी नारी ने भहा) अपने पर मोहित होनेवाली किसी नारी से कुछ भी न चाहता हुआ; वह (गम) चला जा रहा है क्या वह उचित है? कल्पना आ होती है, वह जानता भी नहीं। क्या वह परिणत चित्तवाला (सबमें सफलता प्राप्त किया हुआ) और तत्त्वज्ञ है (जो किसी नारी की ओर दृष्टि नहीं उठाता है)? (नहीं, नहीं) वह तो बड़ा हत्याग है (जो इतनी नारियों को प्राण-पीड़ा दे रहा है)।

चन्दन रम ने लित उण स्तनो तथा डमह-समान मृदु कटि से शोभित एक उत्तम युवती अपने व्याणर तथा शगीर की सुविधा कर शिथिलता में चूर होकर गिर पड़ी, जिसे देखकर लोग नन्देह करने लगे कि वह बचेगी या नहीं।

चाशनी-जैसी नीठी गोलीवाली एक नारी उम वीर (गम) के रथ के पीछे-पीछे दौड़ने लगी, जिसने वैरों में वैरों ही छाले पड़ गये जैसे क्रमुक-बृक्ष पर लगाये गये झूले को सुलानेवाली किसी नारी के पर्णों में पड़े हों। (वह कुछ दूर जाकर) फिर लौट पड़ी, इनने उसने क्या प्राप्त कर लिया?

अपार प्रेम में मत्त होकर उन नारियों में मे एक ने दूसरी मे पूछा—क्या तुमने उम गम के मार्ग ने मेरे मन को भी जाते हए देखा था? जब कामना अत्यन्त तीव्र हो जाती है तब लज्जा भी शेष नहीं रहती।

वहाँ पर लक्ष्मी-मद्दश एक गमणी ने कहा—‘इम (गम) के पूर्वजों ने अपने गमणागत याचकों की गजा के लिए अपने प्यारे प्राणों का भी दान किया था। न जाने उम वरा ने उत्सन्न इम (गम) मे ऐसी कठोरता कहाँ से आ गई है कि यह हमारे प्यारे प्राणों जो हमें नहीं छोड़ता।’

(आम-पीड़ा मे उत्सन्न) भय मे विकल होती हुई एक सुन्दर ललाटवाली कहने लगी—(इनने) आयुधागार से स्थित गिव-धनुष को जो तोड़ा, वह घगर से सुवासित छुत्लाऊताली परिवर्त वाणी-युक्त मध्य-मद्दश नीता के प्रति प्रेम के कारण नहीं था किन्तु अपना धनु-आगज्ञ दिखाने के लिए ही था।

दीने केशोवाली एक गमणी ने, जिसके हाथ बन्ध तथा अन्य आभरण खिसके जा रहे थे तथा चिक्क घ्यारे प्राण भी जिथिज हो रहे थे कहा—मन्मथ के समान बलशाली इम विज्व न इनग कान हैं जो इम भयकर वन्दुर्धारी राम के नामने ही मेरे प्राण हर रहा है।

इन प्रकार नभी दिग्गजों मे नासियों विर आई थी। उधर श्रीगम उम नभा-मण्डप मे अन्य गजसूमानों के साथ जा पहुँचे जहाँ निप्कलुपर्चन्न वसिष्ठ तथा वेदपाण्ड चैरिंग विगाज्ज्ञान थे।

लक्ष्मीनाथक (गम) ने उन दोनों (स्त्रियों) के चरणों का इम प्रकार साष्टाग प्रजाम किया कि उनमे गवार इम प्रकार दिलने लगे जैसे बाढ़लों मे विजलियाँ चमक रही हीं और वर्षांचार्निक में वर चरनी पर आ लगा हीं।

धर्म की रक्षा के लिए अयोध्या में अवतीर्ण उम पुरुष के प्रणाम करने पर उन (महर्पिंयो) ने आमन ग्रहण करने की आज्ञा दी । उनकी आज्ञा पाकर वे पुण्याकार चित्रों से उत्कीर्ण एक आमन पर आमीन हुए और छाया के समान अपना अनुगमन करने वाले तीनों भाइयों के मध्य प्रकाशमान होने लगे ।

उसके पश्चात्, मानो चन्द्रमा सब नक्षत्रों के साथ गगन को प्रकाशित करता हुआ आया हो, यो दशरथ चक्रवर्ती अपने बन्धु-मित्रमहित, उम रक्षमय मण्डप में आये ।

(चक्रवर्ती ने) आकर महातपस्त्रियों (वसिष्ठ और कोशिक) के चरणों की बन्दना की और अपने वरमाये जानेवाले मधुपूर्ण पुष्पों से भी अधिक (मात्रा) म, ग्रादणों के आशीर्वाद पाकर, आमन पर इस प्रकार विराजे कि देवेन्द्र भी उन्हे दखकर लजित हो गया ।

गग, कोगु, कलिंग, कुलिंग, मिहल, चेर, दक्षिण राज्य (पाड्य), अग, चीन कुलिन्द, अवती, वग, मालव, चौल, महाराष्ट्र—इन देशों के गजा

वैभवयुक्त मगध, मत्स्य, म्लेच्छदेश, लाट, विर्भ, महाचीन तंगनदेश (ठकण या दक्षिण २), मगदेश (म्लेच्छ देशों में से एक), मोमक, मोनक तुरुषक कुरुदण—उन देशों के नरेश ,

आयुधहस्त माधव राजा, सप्तधा विभाजित कोकण, चेटी, तेलग (आन्ध्र) कर्नाटक इत्यादि नभ से आवृत पृथ्वी-भर के उच्चबल तथा दीर्घकिरीटधारी गजा लोग उम मण्डप में आ पहुँचे ।

मधुर इन्हु से भी अधिक मीठे बचनवाली रमणियों, (दशरथ के) पाश्वा में चामर डुला रही थी । वह दृश्य ऐसा था, मानो उनकी कीर्ति-स्पी वृक्ष के, जो उपर के (स्वर्ग आदि) लोकों में भी व्याप्त था, कोमल पल्लव हिल रहे हो ।

मैंडरानेवाले भ्रमर तथा मधुमक्खियों को आकृष्ट करनेवाली सुगन्ध ने युक्त मधु-पूर्ण पुष्पों से अलकृत केशवाली खियों, वाँसुरी की ध्वनि के साथ स्वर्ग मिलाकर जयगान कर रही थी । वे गान उनकी वाणी-सदृश वीणा को भी मात कर रहे थे ।

कठोर तथा भयकर नेत्रवाले हाथियों की सेना से युक्त (चक्रवर्ती) का अनुपम श्वेतच्छन्न, ऐसा शोभित हो रहा था, मानो चन्द्रमा अपनी वशजा मीता के शुभ विवाह उत्सव को देखने के लिए आ पहुँचा हो और करुणा से प्र्यं हो, फ्ला हुआ, ऊँचाई पर खटा हो ।

(चक्रवर्ती की) सेनाएँ अपार ममुद्र के समान व्याप होकर सर्वत्र ऐसी फली पड़ी थी कि किसी के उठकर जाने या हिलने-हुलने के लिए भी र्गति स्थान नहीं था । विजयप्रद मत्तगज सेना में युक्त उम (जनक) नरेश का नारा देश उम जनसमृद्धाय रे कान्द एक नगर-जैसा दीखने लगा ।

कात ललाटवाली मीता के पिता ने अमीम आदर तथा प्रेम के साथ आर्नान्दित हो अपनी समस्त सपत्ति को लुटाकर उनका आतिथ्य-नत्कार किया । उनका वह आर्नान्द्य रामचन्द्र और अन्य साधारण जनता, सभी के प्रति समान ही रहा । उनों द्वारा उनके आतिथ्य की महत्ता के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय, (१-५४)

अध्याय २०

प्रसाधन पटल

चक्रवर्ती (दशरथ) अपनी मजीब प्रतिमा-समान सुन्दर देवियों सहित आनन्द भरित हों, इस प्रकार आसीन थे, मानों अपनी देवियों के माथ देवेन्द्र ही विराजमान हों। उस समय विष्णु ने श्वेतच्छवि तथा नीतिपूर्ण शासन दड़युक्त जनक को मधुर हृषि ने देखकर कहा—‘आम के टिकोरे-जैसे नवनोवाली (सीता) को ले आइए ।’

(विष्णु के) यह कहते ही, (जनक ने) सुनि को प्रणाम किया और सुदित हांकर आमृपणों ने भूपिन कुछ दासियों को आदेश दिया कि वे नारियों की गानी (सीता) को ले आयें। मधु-समान वचनवाली वे ब्रियाँ, अपार प्रेम भे प्रेरित हो, तरित गति मे गई और सीता की सखियों को वह समाचार दिया ।

(सीता की सखियों ने) वह नहीं सोचा कि आभास्य आभरण, सुन्दरी (सीता) के रूप को छिपा देनेवाले ही हैं, जैसे नेत्रों के ऊपर और नीचे उम्रको छिपाने-वाली दो पलकें सौन्दर्य के लिए रखी गई हैं। उन सखियों ने सौन्दर्य का शृगार किया, मानों अमृत को मधुर बना रही हो । आह ! शब्दायमान वीचि-भरे समुद्र से घिरी इस पुश्क्री के लोग भी कैसी अज्ञता से भरे हैं ।

शांभा को बढ़ानेवाले (सीता के) कुतल ऐसे थे, मानों विष्णु (के अवतारभूत राम) का नीलवर्ण, जो उन (सीता) के हृदय मे भरा था, वही उमड़कर ऊपर उठ आया हो और चारों ओर अपनी छवि को फैला रहा हो । मेघ-मध्य विराजमान चन्द्र-कला के समान उम कुतल-भार के मध्य कोमल फूलों का गजरा रखा ।

जैने विधि के वश हो गगन के नद्यन्त चन्द्र-कला को धेरे रहते हैं, वैसे ही चमकते हुए माँग-फूल को (सीता के) ललाट पर बौधा, चन्द्र को जन्म देनेवाली ‘मेघ’ नामक माना ने (अपने बछड़े को चाटने के लिए) अपनी टेढ़ी जीभ को बाहर निकाला हो—वैने वी धने अवकाश समान अलकों पर वर्तुल आभरण (जो माथे पर केशों के किनारे-किनारे पहना जाता है) पहनाया ।

गगा-प्रवाह को जटा मे धारण करनेवाले (शिव) के भयकर धनुष को जिसने तोटा वह वीर क्या वही युवक है, जो मेरे स्त्रीत्व-हृषी अनुपम श्रेष्ठ गुण को चुराकर ले गया है और मुझे विश्व छोड़ गया अयत्रा वह वीर दृमरा कोई है ?—यों सोचती हुई (सीता का) मम जिन प्रकार भूल रहा था, उसी प्रकार भूलनेवाले कान के ‘कुलै’ नामक आभरण भी उन (सखियों) ने पहनाये ।

सीताजी हिंण नवनोवाली भभी नारियों के मगलमय कण्ठों के आभरण-मटश थी, तो उन (सीता) के कठ का हार कौन हो सकता है ? उम कठ में, जो ऐसा था मानों विष्णु के द्वारा धारण किया गया शख्त ही उम रूप मे वा स्थित हुया हो, (उन नारियों ने) अनेक दोष-रहित आभरण पहनाये ।

(सीता के) आभरणों जी शोभा को भी बढ़ानेवाले मूलों पर (पहनाये गये)

हार के बारे में क्या कहे ? क्या यह कह कि गगन के नज़रों में यांग्य नज़रों को चुनकर (उनका) हार बनाकर पहनाया गया है ? या कहे कि अति उज्ज्वल किरणवाले चन्द्र को काटकर हार बनाकर पहनाया गया है ? या यह कहे कि (सीता की) लजायुक्त हँसी की चन्द्रिका-जैसी काति ही इस प्रकार छिटकी पड़ी है ? मैं क्या कहूँ ?

जिन (सीता) के रक्त चरणों ने, सोन्दर्य की स्पर्धी म परास्त होकर शरण में आगे हुए रक्त कमलों को अरुणार्दि की मिज्जा दी थी उनके अमृत-समान शरीर की कार्ति पड़ने से मनोहर आभरण-युक्त स्तनों पर के श्वेत मोती भी लाल डिग्वार्ड पड़ते थे । जो अच्छे, लोगों की सगति में रहते हैं, वे भी अच्छे हो जाते हैं न ॥९

उन (सीता) की कटि अतिपुष्ट तथा अधिकाधिक उभरते रहनेवाले ई गूर (धात) के बने हुए कलश-समान स्तनों का भार बढ़ जाने से लच्चक उठती थी यदि (अपने प्रकाश में) चौंधियाकर दर्शकों की आँखों को बढ़ करानेवाली लाल काति से शुक्त पटमरगग-पुजां तथा मोतियों से खचित कोई वाँस हो, तो वह उन (सीता) की आभरण-भूषित झुजाओं की समता कर सकता है ।

चिकिसित पुष्पों से भूषित कृतलोवाली जानकी के पल्लव-कोमल वर नामक कमलों ने ऐसी तपस्या की है कि वे रामचन्द्र के अस्त्र हस्तों के द्वारा यथाविधि गृहीत होनेवाले हैं । ये कर मभी के प्रेम के पात्र हैं, रात्रि के समय भी मुकुलित नहीं होनेवाले हैं, यदी मोचकर उनकी सखियों ने बालातप-मट्टश कातिवाले पञ्च-परागों से खचित 'कटक' (नामक आभरण) उनके हाथों म पहनाया, मानो उन्होंने उनके करों की रक्षा के लिए उनमें रक्षा-बधन बौधा हो ।

(पाठों में) विभाजित केशोवाली (जानकी) के स्तन नामक दो आधायें (गये) स्वर्णकलशों पर, जिनमें एक-एक इन्डनील रत्न भी जड़ा था, उन सखियों ने कस्तूरी-लेप से पुण्यलता और अनग-धनुप को चिन्तित किया और विविध धर्म-मतों के ताग विचार्यमाण भगवान् के समान ही 'अस्ति' या 'नास्ति' की विच्चिकित्सा के कागण-भृत उनकी कटि के लिए विपदा उत्पन्न कर दी ।

छवि को छिटकानेवाले अत्यन्त सूक्ष्म कोशेय (रेशमी) वस्त्र की परतों में न आनेवाली (अतिसूक्ष्म) कटि पर मेखला तथा उपके नीचे, (मोतियों की लड़ी में बने) 'तारकपुज' (नामक आभरण) पहनाया । उन आभरणों के विविध रत्नों में जो कान्ति फट पड़ती थी, वह उन (सीता) के शरीर की काति में विलक्षण रहवार चारों ओर प्रस जाती थी, जिससे वे सखियाँ भी अपनी आँखों की ऊँटिं खोकर रत्नध रह जाती थीं ।

नाचनेवाले फणी के तुल्य जघन-तटवाली (सीता) के उन कमल-मट्टा चरणों में जो अतिकोमल, शिरीष पुष्प में भी अधिक कोमल थे और महावर के विना भी लाल

२. मूल में अतिम वाक्य में, 'शेष्वर' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसके इन्द्रे से दो जर्म जाते हैं—(१) लल्ल रंगवाने और (२) धन्द्ये । दोनों अर्थों को लेने से जतिग वास्तव का चमन्नार बदता ।—३.

दीखते थे, उन मरियों ने नूपुर पहनाये। वे नूपुर वार-वार बोल उठते थे। वे यह कह रहे थे कि ये (चरण) बहुत कोमल हैं, बहुत कोमल हैं।

जैसे वीच में विष रखकर उमके चारों ओर अमृत रखा हो, वैसे (नीताजी के) वे नयन, सीधे तथा लम्बे होकर कान तक फैल गये थे और उसके परे स्थान न मिलने से लौट पड़े थे। उनमें कुछ लाल-लाल रेखाएँ भी दिखाई देती थीं, उनमें छल या छिपाव न होने से वे मेघ के जैसे शीतल थे। उनमें जो रेखाएँ थीं, वे अजन की ही रेखाएँ थीं या उन कुमार (राम) के शरीर का ही वर्ण था, कुछ निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

(उन मरियों ने) मर्य-लोक की त्रियों, नाग-कन्याओं तथा स्वर्ण की सुन्दरियों के लिए तिलक जैसी (उन नीता) के ललाट पर तिलक अकित किया। दो पुष्ट नीलोत्यलो के नाथ विकसित कोई रक्तकमल हो और उसमें शुक्लपक्ष तृतीया का वर्धमान चन्द्र आ उपस्थित हुआ हो, और उन चन्द्र के मध्य एक नन्द्र उदित हुआ हो, यदि ऐसा कोई दश्य उत्पन्न हो जाय, तो उनमें नीताजी के तिलकातिक बदन की हुलना हो सकती है।

भ्रमर, मधुमक्खी आदि को आकृष्ट करनेवाले खिले हुए पुष्प, केशों में खोंसने वाय मृदुल पुष्प जूँड़े में वारण करने वाय गजरे, कपोलों पर धारण करने वाय वृत्तहीन अति मृदुल पुष्प—वास्थान पहनाया तथा कल्पवृक्ष के पहलव-जैसे चमकते हुए 'पुन्ना' (पुष्प) के स्वर्ण-धूलि-त्रुल्य पगाग कों सीता के केशों पर लगाया।

(इस प्रकार अलकार करने के उपरात, दृष्टि-दोष-परिहार करने के लिए उन मरियों ने) धृत-दीप की आरती उतारी जल-महित पुष्पों को (उनके ममुख) विखेरा, इष्ट-देवोंने प्रार्थनाएँ की, वेद-पारग त्रियों का स्वर्ण का ढान किया। छोटी पीली सरसों को माथे पर लगाया। नाववानी के नाथ बनाये गये (चूना और हल्दी को मिलाकर) रक्तवर्ण नीर की आरती उतारी। उन देवी की, जिन्हें अपने हाथों में ही रखकर मृग के समान ही उन मरियों ने अवनन्द पाला था परिक्रमा की, इस प्रकार उन मरियों ने उनका, 'दृष्टि-परिहार किया।

जो सीता शुकों को मिठे बोल निखाया करती थी, उनकी उम सुषमा को वे मरियों कमल-पुष्प ने मधु का पान करनेवाले भ्रमरों के समान देखती रही। उन (मरियों) की बाणी गदगड हो उठी। वे अपने सहज स्वभाव भी भूल गईं। चाहे पुरुष हो या त्रियों नवका मन एक (जैना) ही होता है न?

मेष-त्रुल्य केगवाली व मरियों, आभरणालकृत वक्षवाली उन सीता को देखकर आनन्दमत्त हा खड़ी रही जैसे पूर्णिमा के चन्द्र को देख रही हो। हरिणनयना त्रियों में भी कोई-कोई अवयव ही सुन्दर होता है (अर्थात्, किसी के सभी अवयवों का सुन्दर होना सम्भव नहीं है) जग भी प्रबान वा नोन्दर्य एक ही स्थान में एकत्र हो जाय, तो उसे देखकर कोन मुरल नहीं होगा।

प्रगते सुन्दर कर ने शख (शख-वल्य) वारण करने ने, कमल (वागियों का इडप-कमल तथा कमल-पुष्प) को आचार वनाचार गृहने से चर्वत्र व्यापक होकर, प्रत्येक के

द्वदय में पृथक्-पृथक् अंकित होकर रहने से असंधती के मटश मात्री सीता भी पुरुषोत्तम (श्रीराम) के समान ही थी । अब हम और क्या कहे ?

देवेन्द्र के शासन में रहनेवाली रभा आदि अप्सराएँ जा रही हो, उस प्रकार अमरुण सखियाँ सीताजी को चारों ओर से घेरकर चली । उस समय विशाल मेखलाएँ, पादजाल (नामक पाठ-आभरण), सर्प के आकार के नूपुर और कर-वलय बज उठे ।

बौने, ठिंगने, कुबड़े, दासियाँ सभी बड़ी भीड़ लगाकर आये और सीता के चरणों की चन्दना करके खड़े रहे । अक्षीण दीप के समान वह देवी रत्न-वितान की छाया में चलने लगी, मानों बाल-चन्द्र नक्षत्रों के साथ जा रहा हो ।

अपने आभरणों में लगे गत्तों की काति को आगे-आगे फेंकती हुई सीता उस प्रकार चली, मानो उन्हे जन्म देनेवाली भूदेवी ने वह सोचकर कि उसके चरण अति कोमल हैं, उनके मार्ग में पल्जव और पुष्प विखेर रही हो ।

उनके दोनों पाश्वों में डुलनेवाले कातिपूर्ण चामर उस प्रकार थे, मानों सीताजी के समान ही चलने की इच्छा से आये हुए हंस उनके वदनीय मदु चरणों की गति से पगस्त हो गये हों और बार-बार नीचे गिर-गिरकर उठ रहे हों । सीता यों चली, मानो अपने कलाप की काति को सर्वत्र विखेरता हुआ कोई मयूर चल रहा हो ।

सीता भूलोक आदि सब लोकों की युक्तियों के लिए आँख के तारे के समान प्रिय थी, ऐसी कन्या (अविवाहित सीता) के रूप को देखने के लिए मानों पुरुषोत्तम (राम) के कुलपुरुष सूर्य नम से उत्तर आया हो—उस प्रकार का था वह गत्तमय वितान, जिसकी छाया में सीता चल रही थी ।

पुजीभूत धनी स्वर्ण-कान्ति से युक्त कलाप, (सोलह लड़ियोवाली) मेखला, तथा अन्य रत्नखन्ति आभरणों से किरणे छिटक रही थी, देह की काति अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी, कटि लचक रही थी, उस प्रकार अपने प्रकाशमान छोटे पदों को उठाकर रखती हुई सीता आगे बढ़ी ।

उन देवी की शरीर-काति, उनके स्वर्ण-आभरणों की काति उनके पुण्यों की सुगन्ध तथा चन्दन की शीतलता, चारों ओर विजली की चमक-जैसी ही फैल रही थी जिन्हे देखकर अप्सराएँ और अमृत भी लड़िजत हो गंत थे । उस प्रकार सीता उस गत्तमय मण्डप में जा पहुँची, जहाँ गजमभा एकत्र थी ।

भारी स्तनों ने युक्त उनके उम पत्रित्र स्प को, जो जन्मशता के धमाव के काण (भूयभूत) वेदों के समान ही था, देखकर वाँस-जैसी भुजावाली रमणियों नया पुनर् सव लोग चित्र के समान निर्निमेप जीवन के लक्षणों से रहित (निर्जीव)-में नहे गए ।

समुद्र वर्णवाले (राम), जो अवतक इसी सदेह में पड़े थे कि जन्म तीव्र बन्धा वही रमणी है, जिसे उन्होंने पहले (गजप्रामाद पर) देखा था, या वह कोई अमरी न्यी है, अब अमृत-मय उन (सीता) को देखकर इस प्रकार आनन्द ने भर गये, जिस प्रकार देवेन्द्र, क्षीर-मारग के मथन के समय, इतना अधिक परिश्रम वर्के कि जिसमें उसके प्राण भी नहीं-

को छोड़ जाने के लिए नन्दद्व हो गये थे, हठात ही अमृत को उत्पन्न होने हुए देखकर आनन्द में भर गया हो।

अत्यत मनुष अमृत को (मौंचे में) ठालकर, पूर्वकृत सुकृतों के फल के समान निर्मित अरुण अधर तथा कोकिल-स्वर में युक्त यह कन्या, जो कन्या-प्राताद से राजमंडप में उत्तर आई है मेरे अतर में ही नहीं, बाहर भी स्थित है क्या ? इस प्रकार राम ने मन-ही-मन नांचा । (नीता राम के हृदय में तो पहले ने स्थित थी ही, अब वह बाहर भी है क्या, इसका संदेह राम को हुआ ।)

वर्णिष्ठ यह माँचकर अत्यत सुदित हुए कि हमारे कृत तप के फलस्वरूप राम के तप में आया हुआ व्यक्ति, शग्ग-चक्रधारी पुडरीकाज्ज जगदीश्वर (विष्णु) ही है, और यह व्यक्ति भी अरुण कमल पर आसीन (लद्धमी) देवी ही है ।

नमस्त धर्ती पर नमान तप में चलनेवाले शामन-चक्र से विशिष्ट चक्रवर्ती (दशरथ) धने कुतलावाली नीता को देखकर सोचते लगे—यद्यपि सत्यलोकों में मेरा शामन चलता है, फिर भी मैं वैभव और नमृद्धि की देवी (लद्धमी) को आज ही अपने वश में कर नका हूँ ।

‘नैवल’ नामक वादा-सदृश स्वर्वाली (सीता) के समीप में आतं ही भूमि के विजयी शामक दशरथ तथा तपस्त्रियों के कर (प्रणाम की मुद्रा में) उनके शिरों पर सुकृतिलिल ही उठे क्योंकि नव के मन तथा इन्द्रियों ने उन (नीता) को देवी के रूप में पहचाना । यह शरीर मन के अधीन ही रहता है न ?

(अपने आवान-भूत) कम्ल-पुष्प का त्याग कर, (जनक) राजा के स्वर्ण-प्रानाद में अवतरित हुई उन देवी ने पहले महान् तपस्त्रियों को नमस्कार किया, फिर सब राजाओं में श्रेष्ठ (दशरथ) के चरणकमलों की वन्दना की ओर आँखों से आनन्दाश्रु वहाने-वाले अपने पिता के नमीपत्थ आनन्द पर विराजमान हुईं ।

‘विष को अत्तर में रखनेवाले आम के टिकोरे के सदृश नयनवाली यह कन्या यदि कम्लामना (लद्धमी) ही है तो हरे पर्वत के नमान वलवान् राम, मेरु-मद्वश एक धनुप क्वा नात पहाड़ों को भी तोड़ मकरे हैं । इस प्रकार रथ की कील (अर्थात्, सब धर्म-कार्यों के प्रवान कारक) जैसे व्राह्मणोत्तम (वर्णिष्ठ वथवा विश्वामित्र) ने मोचा ।

(नीता ने) यह सुना तां या कि (राम ने) शिव-वनुप को चढ़ाकर उसे तोड़ डाला = किन्तु उनके नव के नवव में उनके मन में सशय अभी जेप था—(अर्थात्, यह वही गजकुमार है जिसे न्यून उन्होंने गजप्रानाद ने देखा था या कोई आर है, यह संदेह था) —उस पुनर्न नशय को द्र करने के हेतु नीता ने उस प्रभु (राम) को अपने अतर में ही नहीं, अब अपने करणों को मवान्ते के व्यान में आँख की कनखियों ने भी देख लिया ।

(नीता की) आली नया डीर्घ बनखियों ने जो दृष्टि-नदी श्रीराम-स्पी भरे हुए रमुद्र ने निमन हुई उसमें उनके चचत्र प्राण (जो वह वही गजकुमार है, या अन्य कोई है—उस नर ने विकल ही नहीं देय) अब स्थिरीभूत हो गये । राम के हृप को देखकर आभरण-कम्पिन नया न्यौन्तर वह नीता नि ज्वान भरने लगा ओर इस प्रकार आनन्द से फूल गड़े,

मानों कोई व्यक्ति अलभ्य अमृत को पाकर एकटम सवका म्यु ही पी जाये और आनन्द में फूल उठें ।

घने कुतलोवाली सीता ने यह जानकर कि धनुप को तोड़नेवाला कुमार उनके हृदय में स्थित वह 'चोर ही है, चिन्ता-सुक्त ही गर्द' वह उनकी ममता करने लगी जिन्होने जन्म-कारण अविद्या को दूर करनेवाली विद्या को (तत्त्वज्ञान को) प्राप्तकर परमात्म-स्वरूप को जान लिया हो और उम ज्ञान के परिणामस्वरूप व्रहानन्द-स्पी फल की प्राप्त कर लिया हो ।

(शत्रुओं के) विनाश में चतुर हाथियों की सेना से युक्त उम सभा में आसीन चक्रवर्ती (दशरथ) ने जान-सागर के पारंगत मुनि कौशिक को देखकर प्रश्न किया— हे उत्तम ! पुष्पलता-समान सूक्ष्म कटिवाली इस कन्या (सीता) के विवाह का अपार शुभप्रद दिन कौन-सा ह ? कृपया बतावें ।

'बालै' नामक घडे मीन तथा 'कयल' नामक छोट मीनों के उछलन से जहाँ भैसों के क्रमशः शिर तथा पीठ चिर जाती हैं, जहाँ के, 'बराल नामक वलिष्ठ मीन (समीप के नारियल, पुगी आदि पेड़ों के) विशाल पत्रों को फैलाते हुए उनपर उछल पड़ते हैं, ऐसे खेतों से समृद्ध (कोशल) देश के राजन्, विवाह के लिए शुभ दिन कल ही है ।— यो श्रेष्ठतपस्वी (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया ।

यह वचन सुनने के पश्चात्, दशरथ, तपस्वियों की आज्ञा लेकर वहाँ से चलने लगे । तब अन्य राजे हाथ जोड़कर खडे हो गये । उनका विलक्षण, गल-खचित, बुमावदार विजय-शाख वज उठा, उनके स्वर्ण-किरीट की काति वालातप के समान छिटक उठी, यो चलकर वे अपने आवास में जा पहुँचे ।

वह हसिनी (सीता) घडी कठिनाइयों से वहाँ में चली, तो रामचन्द्र भी वहाँ से चलकर स्वर्ण-प्रासाद रूपी पर्वत के भीतर जा पहुँचे, गलाभरण-भृपित गजे भी चले गये, महातपस्वी मुनिगण भी चले गये, उधर उज्ज्वल कातिमान सूर्य भी मेंरु-पर्वत के तट में अदृश्य हो गया । (१-४३)



अध्याय ३९

शुभ विवाह पटल

प्रस्त्रातकीर्ति जनक महाराज के आर्तिश्य के कारण, मदनावी गज रेणा में युक्त नरपतियों से ऊंचे कधोवाले बनिष्ठ वृमारो तक सभी ऐगा गजक रहे थे, मानों के मदेत ही स्वर्ग-लोक की नगरी (अग्रगति) में वा पहुँचे थे ।

नर्गंधर वो पा लिया हो, किन्तु उसमें उत्तरकर जल पीने का मार्ग न पाकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा हो—चर्ण-कक्षणधारिणी, कोकिलबाणी (सीता) की भी कही दशा हो गई ।

(सीता रात्रि का सम्बोधन कर कहती है—) हे निष्ठुर रजनी ! क्या ऐसे भी लोग होते हैं, जो निर्वल व्यक्तियों के प्राण हरने का वीरवाद (डीग मारना) करते रहते हैं ? (अर्थात्, तू ऐसा ही व्यक्ति है) सूर्य का उड़य होते ही मेरे प्रभु आ जायेगे, अतः तू शीत्र ही ग्रीत जा जिनमें प्रभात होने में विलम्ब न हो ।

हे मेरे मन ! नीलसूर्य-मद्दश (उन राम के) चरणों के सग ही तू चला गया और उनके आने के समय ही तू उनके साथ आनेवाला है । दीर्घ समय से मेरे सग रहनेवाले ने मन ! एक दिन के विलम्ब को भी न सहकर इस प्रकार छोड़ जानेवाले (व्यक्ति) भी क्या समार में होते हैं ?

तालबृक्ष पर गहनेवाले हैं (चकवा) पक्षी ! यह रात्रि, जो गर्जन करते हुए सप्त समुद्रों के मद्दश अपार (जान पड़ती) है, सुख, प्रवलशीला (अर्थात्, राम की प्राप्ति के लिए प्रवल करती हुई) के पाप के कारण वटि (रात्रि) व्यतीत न हो और प्रभात न होने पाये, तो क्या तू किञ्चित् भी न्यायान्याय का विचार न करके, एकाकी उड़ता हुआ (मेरी हत्या ने उत्पन्न) अपयश का भार ढोता फिरेगा ?

तीच्छ शूल और धर्मि की कठोरता तथा उष्णता को प्रकट करनेवाले आत्म के मद्दश ही छायी हुई हैं चाँदनी ! तू ही कह, क्या इन समार में ऐसे भी लोग होते हैं, जो निरपेक्ष अवलाओं के प्राण हरते रहते हैं ?

मुरभि और शीतलता के आगार उष्णता को फैलानेवाले मुहूर और प्रकाश-पूज-भूत चान्द्रिका नामक दत्त-समूह ने युक्त होकर मलय-पर्वत की ऊँची तथा बड़ी कढ़रा में निवास करनेवाले हैं दक्षिण अनिल नामक व्याघ्र । क्या तू आहार की खोज में मेरे निकट आया हे ?

वीथी में सच्चरण करनेवाला, कालमेव-मद्दश एक वीर है, जो दिन-रात मुर्मे छाँटता नहा है, वह कंसा न्याय है । उच्च कुल के राजकुमारों में क्या ऐसे भी होते हैं, जो कन्याओं के निकट आ पहुँचते हैं ?

वह कठोर पुरुष (गम) विश्वाम न करने योग्य कार्य करता रहता है, कस्णा-हीन = और मुर्मे अपने भग नहीं लेता है उम छलिया की भुजाओं से प्रेम करना भी क्या उचित है । (अन्यकाग-त्पी) इस आलिमा-पूर्ण समुद्र की सीमा भी नहीं दीख पड़ती है रात्रि का समय न जाने कितने युगों का होता है !

नगीत-नाट यमत नहीं है (आनन्द मनानेवाले लोग सगीत गा रहे हैं, जिसे चिरहिंसा सीता की बदना बट रही है, उनकी और सद्वेत है) दिन भी नहीं आता है, मेरी दिन्ता दर नहीं होती है यह रात्रि व्यतीत नहीं होती है मन की व्यथाएँ मिटती नहीं हैं, आनंद लगती नहीं है क्या इस प्रभार दुखित होना भी मेरे भाग्य से है ?

हे मसुद ! अपने शस्त्र (त्पी कवणों को) गिराता हुआ तू उठ-उठकर र्गन्ना है । तू अत्यन्त शिरिल तो जाने पर भी कभी नहीं सोता है । अतः क्या तू भी र्गवन्ना । र्गवगतिना । हे तो मन्मय के प्राणहारी वाणों से व्याकुल हैं ?

इस प्रकार विलाप करती हुई, पर्यंकपर लेटने में भी असमर्थ हो व्याकुलता के साथ सीता दुख भोग रही थी और उनके (लज्जा आदि) महज गुणों के कारण उनकी विकलता अधिक होती जा रही थी । ऐसी रात्रि के समय, उधर बनघ (गमचन्द्र) अपने प्रामाण में, भरे हुए अन्धकार में, क्या सोच रहे थे और क्या बोल रहे थे— यह अब कहेंगे ।

पहले (कन्या-प्रासाद पर) देखा, तब अनिवार्य प्रेम की प्रेरणा से नेत्रों (की लेखनी) को लेकर मन पर उसे अक्रिय कर लिया, फिर (बाज) सम्मुख ही मने उसे देखा, तो भी उस असमान सुन्दरी कन्या (के सार्वदर्श) का पार नहीं पा रहा है । जो विजली को देख रहे हो, वे अन्य व्यापारों पर कैसे दृष्टि रख सकते हैं ?

हे लक्ष्मी-तुल्य सीता के मुख-मण्डल (चन्द्र) ! सोचने पर जात होता है कि शाक और फल के उत्पादक काम-स्पी वीज के बढ़ने के लिए महायक खाद तू ही है (अर्थात्, चन्द्रमा काम को बढ़ाता है, जिससे विरहावस्था में शाक का और सयोगावस्था में फल का रस मिलता है ।) हे चन्द्र ! तूने यह क्या किया ? मुझ, एक व्यक्ति के नाथ क्या तू मित्रता नहीं कर सकता था ?

यह सर्वत्र व्याप्त अन्धकार ऐसा बढ़ गया है, मानो मेरे प्राणों को बाहर निकालने के लिए उस रमणी (सीता) के नयन ही इस प्रकार बढ़ गये हो । यह कभी क्षीण होनेवाला नहीं दीखता । यह अधिकाधिक इस प्रकार बढ़ रहा है, जिस प्रकार युद्ध में अपने प्रभु के मारे जाने पर भय के कारण युद्ध-रग से भाग खड़े होनेवाले सैनिक का अपयश बढ़ता जाता है ।

वन्य हरिण के से नयनवाली उस सुन्दरी के सग गये हुए मेरे मन । तूने मेरी चिन्ता कभी नहीं की । कदाचित् तेरा मार्ग अधिक लम्बा है (इसीमें अवतक नहीं लौटा है) वा उन्होंने (सीता ने) तेरी बात नहीं पूछी है, जिसमें तू अभी तक वही अटका हुआ हे, या तू भी मुझे भूल गया हे ।

कठोर विष थाँखो से आग उगलनेवाले, करवाल-जैसे तीक्ष्ण नर्प के दॉतों वो अपना आवाम बनाकर रहता है— यह कथन अतीत काल में सत्य था, किन्तु अब तो मेरे नयनों तथा मेरे मन में सदा अवस्थित (सीता की) कोमल दृष्टि में ही वह (विष) बगा हुआ है ।

पर्वत-प्रदेश, पुष्पो से भरे हुए सगेवरों के परिमग, विशाल उदान इत्यादि अनेक स्थान (खेलने योग्य) हैं, फिर भी अलम्ब्य अमृत से भी अधिक मीठे घोलवाली । और चमकन कुतलोवाली (सीता) के लिए क्रीड़ा का स्थान क्या मंग हृदय ही है ?

देवों के प्रभु (विष्णु के अवतार गम) इस प्रकार के मनोभावों ने नमय व्यतीत कर रहे थे, उधर (जनक ने) हाथियों पर ने वह दिवोग पिटवाया कि अमर्गे और मत्त करनेवाले कुतलोवाली (सीता) वा विवाह कल होनेवाला है । अत एषां गल्मी तथा वस्त्रों से मिथिला नगरी मजार्ह जाय ।

अजनवर्ज (गम) तथा कम्ल पर आनीन (मीता) देवी, कल परिपूर्ण मगल-चुन्न विवाह के डाग परम्पर मिलेंग—यह घोपणा होने ही दिनकर अपने अरण करो ने अबकान बो चीरते हुए ऐसे उदित हुआ मानो अपने वशज के विवाह के दर्शनार्थ ही आ गया हो ।

कुछ लोग वडनवार दौवने लगे । कुछ लोग खभां पर रग-विरंगे कपडे लंपट बन जाने लगे । कुछ पूर्ण कुभां पर बन्न लंपटने लगे मेघसर्गी अङ्गालिकाओं पर कुछ उज्ज्वल रत्न-र्खचित क्वचच डालने लगे । बेटों के तत्त्वज्ञ ब्राह्मणों को भोज देने के लिए कोई अमृतगंडोंपेन भाँजन बनाने लगे ।

हमिनी बी गतिवाली नानियों तथा वृपम की गतिवाले पुरुष उस नित्य नवीन नगरी ने केले ओर पुगीवृक्षों को स्थान-स्थान पर गाढ़ने लगे । कोई अति उत्तम मोतियों में ने चुन-चुनकर भारी मुक्काओं को पहनने लगे । कोई स्वर्णभरण और कोई रत्नाभरण पहनने लगे ।

कोई नुरावित चन्दन तथा अग्रह के अजन को बीथियों में छिड़कने लगे । कोई पुष्पों को (बीथियों में) विखेनने लगे । कोई इन्द्रवनुप को लजानेवाले विविध काति-पृण रत्नों में खचित प्रानादों पर अमृत्यु मुक्काओं की झालर लटकाने लगे ।

(कुछ लोगों ने) किण्ण-पुजों को विखेनेवाले भारी रलडीपों को ओर शीतल अकुरों ने पूर्ण पार्लिका नामक (मिट्टी के) पात्रों^१ को उन स्फटिक बेटिकाओं पर सजाया, जो (बेटिकाएँ) किनानों पर के सुनहले वर्ण ओर अपनी श्वेतता के कारण एक साथ धूप और चाँड़नी को फैला रही थीं ।

(कुछ लोगों ने) मठर पवत-मठश ऊँचे नीधों के थाँगों म, इन्द्रलोक में जिस प्राग नक्काओं की काति फैली रहती है, उसी प्रकार अनन्त काति फैलानेवाले भारी मोतियों बी लडियों को लटकाकर 'सुतु पेड़ल (चढ़ावे)'^२ लगाये, जिससे धूप रुक गई ।

कहीं कुछ दानियों ने हीरकी से खचित मगकत की बंदी पर स्वच्छ प्रकाशवाले नीप सजाये । चन्द्र को छूतेवाले उच्चत प्रानादों पर सूर्य-समान कातिवाली तथा सुनहले उड़ीवाली पताकाएँ लगाई ओर कोई अग्रह लकड़ी को जलाकर सुगध फैलाने लगी ।

कोई सुगध-पुष्पों को गाड़ियों पर लादकर ला रहे थे । कुछ लोग उपवनों में पक्कों और फलों की लादकर ला रहे थे । कुछ लोग 'कुर्गं' ^३ नामक नृत्य करते हुए अपने कड़जों बी बाति बी चारों ओर विखेर रहे थे, कुछ लोग अन्न-पिंडों को खाकर रृत हुए मत्तगांड़ों के माथों पर सुखपट्ठ बौध रहे थे ।

(कुछ नानियों) चन्दन का लेप (अपने शरीर पर) लगा रही थी, कोई श्रेष्ठ दन्त पहन नहीं थी, कोई पुष्पों को अपने केशों में मजा रही थी, निर्मल सुकूर के सामने खड़ी

होकर कुछ स्त्रियाँ अपने चन्द्र-समान मुखों पर तिलक लगा रही थीं कांड अपने जूँड़ में गजरे मजा रही थीं, कुछ सेमल की रुई जैसे अपने कोमल अधरों पर रक्तवर्ण लगा रही थीं।

मयूर-सदृश कुछ नारियाँ, जब शृंगार कर लेती थीं अपने पतियों में मान करती हुई अपने आभरण उतार फेकती, तब जो माँती, रत्न, शंख (बलय) प्रवाल-सदृश लाल और कोमल सुगंध-लेप, छूटे हुए पुष्प आर्ट गिर पड़ते थे कुछ दासियाँ उन मव वस्तुओं को इकट्ठा करके महलों के बाहर फेक देती थीं।

(कहीं) आगंतुक राजा लोग जमा थे, तो कहीं विप्र लोग टकट्टे थे, कहीं महुस्त्रवाली वीणा का सगीत आस्वाद करनेवाले (जमा थे), तो कहीं सचरण करनेवाले 'वाण' (जाति के गायक) एकत्र थे, कहीं झुण्ड वौंधकर चलनेवाली दासियाँ थीं, तो कहीं घटिका-यत्र में विवाह लम्भ के समय की गणना करनेवाले गणक लोग थे।

कहीं गणिकाएँ इकट्ठी थीं, कहीं पर कुछ लोग विविध कलाएँ (इन्द्रजाल आर्ट) दिखा रहे थे। कुछ लोग गजप्रामाद के छार पर एकत्र हो रहे थे, जहाँ विविध देश के गजाओं के आभरणों से गिरे हुए भारी माँती तथा दीर्घ किरीटों के गगड़ खाने में गिरे हुए रत्न और स्वर्ण-चूर्ण के अवार पड़े हुए थे।

कुछ ऐसे पुरुष धूम रहे थे, जिनकी ढालां में धूप और पेने शूलां से चॉदनी छिटक रही थीं। व युद्ध के लिए जानेवाले ऊँचे दाँतोंवाले मत्तगज के जैमं थे। कुछ सुन्दरियाँ, आनन्द-नृत्य कर रही थीं और अपने हास्य से पुरुषों के प्राण हर रही थीं।

उज्ज्वल रत्नों की चमक के कारण सर्वत्र ऐसा प्रकाश फैला था कि नवन-गोचर पदार्थ भी दृष्टि में नहीं आते थे। देवता और पुष्पालकृत केशवाली देवागनाएँ यह पहचान नहीं पाती थीं कि स्वर्गपुरी वहाँ (स्वर्ग में) हैं। अथवा यह (मिथिला) ही स्वर्गपुरी है और व्याकुल हो भटक रही थीं।

कुछ लोग रथों पर आते थे, कुछ शिविकाथों में आते थे, कुछ अन्य प्रकार के वाहनों पर आते थे, कुछ रत्नमय सुखपट्टों में अलवृत्त मेघ जग्न हाथियों पर आते थे, कुछ हथिनियों पर आते थे, कुछ पेंदल आते थे और कुछ गाड़ियों पर आते थे।

कुछ सुक्ताभरणों से भूषित थे, कुछ पुगाने पहने हुए रत्नभरणों को निकालकर नवीन श्रेष्ठ स्वर्णमय विविव आभरण पहने हुए थे, कुछ (नारियों) पुष्पमालाओं को धूंधराले केशों में पहने हुए थीं, कुछ चिन्चित्र अलकागयुक्त रंगमी वस्त्र धारण किये हुए थीं।

(कुछ सुन्दरियाँ) विप-समान नवनोवाली थीं, कुछ अमृतसगान वीलीवाली थीं, कुछ रक्त अधरवाली थीं, कुछ उज्ज्वल मद हासवाली थीं कुछ विशाल स्तन-भार से युक्त थीं कुछ मृद्दम कटिवाली थीं, कुछ हसगामिनी थीं थोर कुछ हर्यनियों के रहश चलने-वाली थीं।

उमर्मिथिला नगर की मर्त्तिड़ को एक ही न्यान पर, एक ही समय में एक दंखना अमभव है। उसके दारों में नोचना भी हुखरा है। प्रोह! वा विवाह-दिन उतना धूमचपूर्ण था, जितना प्रकाशमान स्वर्गलोक में देवता दे गृहट-धारण (गत्याभिरंज) त-उत्तम-दिन था।

जिसकी नीमा को पहचानना कठिन है, जिस पर स्वर्णपत्र छपे हैं, जो पर्वत के जैसे ऊँचा उठा है जिसमें विविध रूप खचित हैं वैसे मनोहर कक्षणधारिणी सीता के विवाह-योग्य नामग्री में परिपूर्ण उस मण्डप में राजाओं के अधिराज (दशरथ) आ पहुँचे।

श्वेतच्छ्रव चौड़नी छिटका रहा था आभग्न-समृह, आँखों को चौधियाने-बाले ऊर्य के जैने प्रकाश को छिटका रहा था। भ्रमर-समुदाय सगीत गा रहे थे। विजय-प्रद अश्वों की टाप में उठी हुई धूल गगन को टक रही थी। इस प्रकार (दशरथ) आ पहुँचे।

मंगल-भेरियाँ मेघ के समान गर्जन कर उठीं। शख-बाद भी वज उटे। तुरहियाँ उद्ध में जिस प्रकार धोप करती हैं, वैसे ही वज उठीं। ब्राह्मणों के द्वारा सच्चरित चहुवेद, गति के समय समुद्र के धोप के समान ही शब्दित हो रहे थे।

गथ, हाथी और धोड़े, झुण्ड-के-झुपड़, पृथक्-पृथक्-पक्षियों में चल रहे थे। विशाल नेना-युक्त दग्धथ की सेवा में निरन्तर लगे रहनेवाले राजा भी इन्द्र के समीपस्थ देवताओं के समान शोभित हो रहे थे।

चक्रवर्तीं इस प्रकार विवाह-मण्डप में आ पहुँचे और स्वच्छ स्वर्ण के रत्नखचित आमन पर विगजमान हुए। सुनि और गजा यथाक्रम आसीन हुए, जनक भी अपने वन्धुवर्ग-नहित आमन पर आ विगजे।

राजा, सुनि, स्वर्गवासी हम-समान मृदुर्गातिवाली लद्मी-सद्गुरु रमणियाँ, सब एकत्र थे, वह विलक्षण विवाह-मण्डप उम में पर्वत के तुल्य था, जिसके चारों ओर प्रकाश-पिण्ड धूमते रहते हैं।

‘मय’ के द्वारा प्राचीन काल में निर्मित उस मण्डप में मेघ थे (दाता लोग थे), विजालियाँ थीं (मुन्दर लियाँ थीं) अनुपम नक्षत्र थे (राजा थे), अन्य तारिकाओं के नघ (राजाओं के परिवार) भी थे दो प्रधान ज्योति-मण्डप, अर्थात् सर्य-चन्द्र भी थे (दशरथ और जनक थे), अत वह मण्डप मानों सुष्ठि के आदि में अज (ब्रह्मा) के द्वारा निर्मित अडगोल ही था।

आदरणीय तपस्यावाले सुनिवर सभी राजा देवता तथा अन्य जन उस मण्डप में एकत्र हुए थे अन् वह पृथ्वी स्वर्ग प्रभृति समस्त अडगोल को निगले हुए, विष्णु के नील-तन-दुलय उठर के सद्गुरु था।

भूलोक आदि भव लोकों के जन (विवाह देखने की इच्छा में) प्रेरित होकर उस मण्डप में इकट्ठे हुए। अब ओग व्या कहना है। अब हम मर्ष-पर्यंक अडगोल को छोड़कर (अद्यांत्या में) अवतीर्ण हुए गयव के काया का वर्णन करेंगे।

नमचन्द्र यथाविवि उन सत समुद्रों के जल में जिनमें शख-समृह संचरण बनत हैं तथा गाश्वत देवों ने प्रश्नित गगा प्रभृति नदियों के जल में स्नान किया।

पिं ब्रह्मा में तृण-पर्यंत समस्त प्राणवर्ग को उनके अनादि गाढ़ (अज्ञान के) अवश्यक ओं मिटाकर दीर्घ अपुनगर्वान्ति के मार्ग में (अपवर्ग में) पहुँचानेवाला अपने (अग्रित् विष्णु में) चिन्द्र-भूत चर्व-पुष्टि॑ का वाग्ण किया।

मीन के जैसे नेत्रवाली कन्याओं का, वद्ज ब्राह्मणों को वेद-र्विहत गीत से दान किया। निष्कलक तपस्यावाले अपने पूर्वज, जिनकी उपासना (कुलदेव के स्प म) करते रहे हैं, उन आदि ज्योतिस्वरूप (रगनाथ)^१ के चरणों को प्रणाम किया।

(राज्ञसों के द्वारा) नष्ट की जानेवाली तपस्या तथा धर्म के उद्भार के लिए निरन्तर वर्तमान रहनेवाली (भगवान् की) करुणा ही इस आकाश में आई हो, इस प्रकार भासित होनेवाले, चित्रित करने के लिए भी दुष्कर (अर्थात्, उतने सुन्दर राम) न अपने शरीर पर चन्दन-रग का लेप किया। वह दृश्य ऐसा था, मानों काले मेघ पर ज्योत्स्ना छा गई हो।

उमड़नेवाले अपार मागर ने मगलप्रद तथा सर्व कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा को अपने मध्य विकसित पाया हो, इस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए राम ने 'किंडै' (नामक लाल जटामासी), लाल स्वर्ण के हार और पुष्पमालाओं को ऐंठकर अपने देशों में धारण किया।

(राम के दोनों कानों में) दो कुण्डल इस प्रकार शोभित हुए, मानों गांत्रि और दिन में (सीता की) विरह-पीड़ा को देखकर, सूर्य और चन्द्रमा दृत वनकर (राम के पास) आये हो और सीता के मनोभावों को राम के कानों में कह रहे हो।

नील विष को कठ में धारण करनेवाले, परशु-आद्युधधारी (शिव) ने अपनी दीर्घ जटा पर चन्द्र की एक कला धारण की थी, अब (मानों उनकी शोभा को मट करने के लिए ही राम ने) सब ज्योतिर्मय देवताओं (सूर्य, अग्नि, नक्षत्र आदि) को अपने गिर पर धारण कर लिया हो, इस प्रकार (राम ने) 'चीरपट्ट' (नामक आभरण) तथा 'तिलक' (नामक आभरण) धारण किये।

(विष्णु के) चक्रायुव के निकटस्थ शख की समता करनेवाले, अति सुन्दर (रग के बदन के निकटस्थ) कठ में लता-मदृश उज्ज्वल मुक्ताहार शोभायमान था, वह ऐमा लगता था, मानों धने कोमल कुन्तलोवाली (सीता) के मदहान (रग क) मन में भर गय हो और अब शरीर के बाहर भी उमड़ रह हो।

(राम ने) अगद धारण किये, जिसमें पर्वतयों में जड़े हीर विद्यों के समान चमकत थे और लाल मार्णवय अग्नि के जैसे लगत थे अतः (उनकी) सुन्दर भुजाओं पर के अगद प्राचीन काल ग (जीरमागर के मध्यन के गमय) मन्दर को लपेटे रहनेवाले वासुकि सर्प के समान दिखाई देते थे।

मुक्ताओं की बड़ी-बड़ी मनोहर लाडियाँ (रग की) रक्षा करनेवाली दीघ-वाहुओं में वौधी गहर, व अतिविलक्षण आभरण मानों द्वारा बात के चक्र होंकि तीनों भृत्यों के अनादि प्रगु यही हैं।

उनके देखने योग्य (अर्ति सुन्दर) कर्ण में 'वटक आभृषण चमक उठे, मानों

चलनक वृद्ध अपने गाचों को दान देने के लिए, मध्य रत्न और स्वर्ण-चलयों को अपनी पुष्ट जान्हाओं से लिये खड़ा हो।

स्त्रूपर्ण वस्त्रापुष्ट की डेवी (लक्ष्मी) जिन वज्र घर निरहर क्रीड़ा बगती हैं, उनके मध्य तुम्हर हार ऐसे चमक रहे हैं जैसे विजली ने शोभायमान संघों के मध्य इन्द्र-द्वापर चमक रहा हो।

उनका उत्तरीय उन जानियों के निसल ज्ञान के समान उच्चल था, जो किसी वस्तु को अपनाने वा त्यागनेवाली स्थान इच्छा रखते हैं मानो गम की उत्तरांचर वटी हुड़ अनीम बचपा ही उनके मुक्तवाहार वी बाति के सदश ही उस उत्तरीय के त्प में पड़ती है।

जिनके समीप से जाना भी दुखर है ऐसे प्रबाश से पूर्ण तीन ज्योतियों (अर्थात् सर्व चन्द्र और अर्जि) वे जैमा चमकता हुआ उनका अजोषवीत मानो समार के सब लोगों को वह बताने के लिए ही तीन लुत्रों को एक त्प में वाँधवन बनाया गया हो कि त्रिसूतियों वा स्वत्व स्वयं वह राम ही हो।

(गम की कटि से उठन-बदन नामक आमरण वाँधा गया।) चारों दिशाओं से अत्यधिक स्वर्णिम आभा को फेंकता हुआ मध्य में एक बड़े रत्न से जाज्वल्यमन उठन-बदन रेता लगता था मानो एक इमरे अडगोल के स्पष्टा ब्रह्मा को उत्पन्न करनेवाला वह बड़ा स्वामी अनन्त विष्णु वी नामि से विश्विन हुआ हो।

उन्होंने अंतर्वर्ष का वैष्णव धारण किया मानो उच्चल गतों के आगाम रहमापूर्ण नील नमृद वो, (तरग-न्यी) दीर्घकरों के युक्त, शीतल शंक्तवर्ण के दीर्ग मागर ने ग्राउंगन-बद्ध वर लिया हो।

समृद्ध के जल में उत्पन्न सुक्ताएँ और उच्चल-नील रत्न जिस उरवाल में चमक रहे वह (उच्चल) उनके अमरीय स्वर्णपट्ट में वाँधा गया जैसे ऊचे स्वर्ण पर्वत (मंद) वी एरिक्सा अरनेवाला चूर्य एक ही न्यान पर न्यिर खड़ा रह गया हो।

उनकी कटि के षट् ने श्रेष्ठियों में जो सुक्ताएँ जड़ी थी उनकी उरवल काति वा पुज उत्तरोन्न विकासित होता हुआ चारों ओर विझर रहा था। कटि से एक रत्न-माला लटकाइ गई जो अमरीय रुद्रर स्पी दर्द के बालातप के नदृश चमक रही थी।

(उनकी जगाओं पर 'किंपुर्णि' नामक आमरण पहनाया गया जिसका आकार उन मृत्युवाले मन्त्र के नमान था।)

किंपुर्णि नामक आमरण में जो मन्त्र के अन्न का था, उनके नेत्रों के न्यान से रुचित गतों वी जानि दैत रही थी तथा डाँतों (वे न्यान में रुचित सुक्ताओं) की जानि चाँदनी के ननान छिट्ठ रही थी। नकाशीदार उस आमरण से चमकती विजली के समान सभी दिग्गाओं को आकाश में भर दिया।

माणिक्य-दीपों में प्रज्वलित पञ्चग-पर्यंक पर योगनिद्रा छोटकर जो (व्राण) अवतरित हुए ह, वे इस प्रकार देवकार्य के निमित्त विलक्षण अलकार ने सुशोभित हो गये ।

(त्रिमूर्ति-स्पी) तीन परम तत्त्वों में जो प्रधान है, जो सुष्टि का आदि कारण है जो समार के सवध को खागनेवालों के द्वारा प्रायमान ब्रह्मानन्द-स्वस्थ है तथा जो सर्व-पिता है, उस क्षीर-मागर में उत्पन्न अमृत-तुल्य (विष्णु के अशमत) श्रीगम ने जो अलकार किया था, उसका वर्णन करना क्या सम्भव है ?

अनेक महसूस गाये, पीत स्वर्ण, असीम भूमि नव गत्त आदि का सत्पुर्स्पी को दान दिया प्रशसनीय चतुर्वर्द ही जिनके धन हैं, वेसे (ब्राह्मणों) के द्वारा अभिनन्दित होत हुए (गम) रथ पर आस्ट द्वारा हुए ।

स्वर्ण की हुरीवाला, रजतमय योग्य चक्रों में अलकृत, हीरकों में खाँचत पीठिका-युक्त तथा चारों ओर से जडित नवरत्नों की काति में जाज्वल्यमान वह रथ, सर्व के एक-चक्र रथ की तुलना करता था ।

शास्त्रोक्त (उत्तम) लक्षणवाले, ध्यान के द्वारा जानने योग्य शांक में पूर्ण, प्रभृत मांडर्यवाले, धर्म आदि चार पुरुषाथों के जेसे चार अश्व, समार की प्रदृष्टि को जाननेवाल (गम) के रथ में जोते गये ।

इस प्रकार के रथ पर, अरुण के समान ही आनन्दाश्रु से पूर्ण नेत्रवाले भगत वन्न धारण करके (सारथि वनकर) आसीन हुए । वक्र वनुप-धारी लक्ष्मण तथा उनके वनुप शत्रुघ्न सुन्दर सोने की मृठवाले चामर डुलाने लगे ।

अन्यों के लिए दुर्लभ अति रमणीय आकाशवाले (गम) के अत्याधिक नाडर्य के वारण वैगा हुआ या शात मन से (गम के मार्दर्य का) चितन करते रहने के कारण वेमी दणा हुई—हम कुछ निश्चित रूप में नहीं जानत । चाहे जो भी कारण हो, (इन हृश्य औं देखकर) इस पृथ्वी के लोग अनिसेप (अर्यात , पलक न मारनेवाले देवता) हो गये ।

(मिथिला के लोगों ने) पुष्प वर्गमाये, सुगध-चूर्ण विखेग कातिवाले गत्त स्वर्ण, वस्त्र आदि (दान में) दिये उन मगल-पूर्ण नगर वे लोगों के ऐसे काया का क्वा कारण है, नहीं जानते । कठांचित्, उन्होंने (गम के) मार्दर्य (स्पी मग) जो छक्कर पी लिया हो । (जिसमें उन्मत्त होकर इस प्रकार के बायं कर रहे हो ।)

गम को देखनेवाली सब नारियाँ नवप्रहा खटी रही ओर उनके सब आभग्न गिमककर गिर गये वह हरय ऐसा या, मानों जागी न परनि जा दान बरके के पश्चात व अपने पहने हुए आभग्न भी लुटा रही हो ।

गमन्त समार के सब भाग्यगारी राजा लांग हाँथयों के झुट के बैंद (गम जो) देखकर आ रहे थे ओर निष्ठुर कापवाले नकुर्धांगी (गम) विजयी =नपनी (दशरथ) म अधिष्ठित मण्डप के निकट रथ ने जा पहुँचे जैन धर्म-करण सर्व जने महागेह पर जा पहुँचा हो ।

नहार डेने हुए जा रहे थे, मण्डप में पहुँचते ही उन्होंने (राम ने) महान् तपस्वी मुनिकरों को प्रणाम किया फिर नीति-न्रतयारी अपने पिता के चरणों को नमस्कार करके (उनके) पाञ्चर्व के आसन पर आसीन हो गये। तब—

मानों कोई अद्दण स्वर्ण की लता, एक धनुष और दो मछलियों से शोभायमान चन्द्र को उठाये हुए कलियों के साथ, रथ पर पूर्वादिशा में उदित हो रही हो, ऐसा हश्य उपस्थित करती हुई जानकी उम मण्डप के मध्य आ पहुँची, जैसे (लक्ष्मी) पहले तरंगायित कीर सागर में उत्पन्न होकर, फिर भूमि पर अवतरित हो गई हो और अब किसी पर्वत के मध्य आविर्भूत हो।

विभूतियों से समृद्ध तब देवता लोग (उस मण्डपों में) आसीन कुमार (राम) को देखकर कहने लगे—भरे हुए बड़े नागर को मथन करने से उत्पन्न, सुवासित कुंतलोंबाली (लक्ष्मी) ने त्रिस दिन (विष्णु को विवाह के चिह्नभूत) माला पहनाई थी, उस दिन में भी वह दिन अधिक मनोहर है।

जब गर्जन करनेवाले समुद्र से विर्गी हुई वरती की नारियों, देवागनाओं तथा नाग-कन्दाओं ने भी (नीता) का लावण्य अत्यधिक है, तो उनके विवाह के समय (उनके) बढ़े हुए नोढ़व का अल्प दुष्टिवाला मैं किस मुँह से वर्णन कर सकता हूँ?

(विवाह की वह) शामा देखने के लिए अतरिक्ष में इन्द्र, शची के साथ आ पहुँचा। चन्द्रजेतर (अपनी) उमा के नाथ आ पहुँचे कमलानन भी बाणी देवी के नाथ आ पहुँचे।

यज्ञोपवीत ने शोभित वक्षवाले अपार समुद्र के सदृश वेदजों के सघ से घिरे हुए वनिष्ठ परिपाटी के अनुमार उम समारोह-पूर्ण विवाह को सपन्न कराने के लिए निर्दोष उपकरण (आटि) लेकर आनन्द के नाथ आ पहुँचे।

(उन्होंने) तड़ुल^१ फँलाकर उमपर दभों को विछाया। बेंडीक्क विधान से (अग्नि-स्थापना के लिए उचित) स्थानों को निर्मित किया। कोमल पुष्पों को उन स्थानों के चारों ओर विस्तैरण। होमार्णि प्रज्ञलित की और अनादि वेदमन्त्रों का यथाविधि उच्चारण किया।

विवाह की देवी पर आकर विजयी दीर महानुभाव (राम) और प्रेमभरी (उनकी) समिनी, हनु-तुल्य गतिवाली (सीता) विवाहोचित आसन पर आसीन हो गये। एवं नाथ आसीन व दीनों क्रमग, व्रहानन्द और (उनके उपायभूत) योग की समता करते थे।

चक्रवर्ती के कुमार के नम्मुख (स्थित होकर) जनक ने कहा—‘परतत्व (विष्णु) तथा लक्ष्मी देवी के मद्दण नुम मंगी स्पवती पुत्री के मग चिंगजीवी रही। और, यह कहकर न्यन्त्र शीतल जन-वारा को (राम के) रक्तकमल सदृश विशाल हाथ में दिया। (अर्थात्, जनक ने अण्णी वन्या और नम के प्रति प्रदान किया।)

ब्राह्मणों के आशीर्वाद-घोष, आभरणों के सदृश मौदर्य को बद्वालेवाली नारी-मणियों के अभिनन्दन-गानों के घोष, पुष्पालंकृत शिखावाले राजाओं तथा बदनीय देवों के आशीर्वाद-घोष—इनके समान ही उत्तम शंख-बाद्य भी निनादित उठे ।

देवों के वरसाये कल्पक-पुष्प, राजाओं के वरसाये सोने के पुण्य, अन्य लोगों के वरसाये उज्ज्वल मोती और स्वयं विकसित पुष्प—इनसे यह पृथ्वी नक्षत्रों-से प्रकाशमान आकाश की तरह शोभित हो उठी ।

वीर (रामचन्द्र) ने, उस समय, सभी पवित्र मंत्रों का उच्चारण करके, प्रज्वलित अग्नि में धृत की आहुतियाँ दी और सुन्दरी (जानकी) के पत्त्वाव-कोमल पाणि का अपने विशाल शुभ हस्त से ग्रहण किया ।

उचित हीम करनेवाले, विशाल भुजाओं से शोभायमान (राम) के संग जब (सीता) प्रज्वलित अग्नि की परिक्रमा (भाँकरी) करने लगी, तब सहज मुग्धता से युक्त वह देवी ऐसी लगी, जैसे परिवर्त्तनशील जन्म-चक्र में कही ढेह, आत्मा का अनुग्रहण करनी जा रही हो । (आत्मा शरीर की खोज में जाती है, किन्तु शरीर आत्मा का अनुग्रहण नहो करता । यहाँ पर इस 'अभूतोपमा' में कवि की एक विलक्षण, किन्तु अतिसुन्दर उद्भावना है ।)

सुन्दर तीन धागों के ककण से युक्त उन दोनों ने होमार्गि की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया । अन्य कर्त्तव्य कर्म सम्पन्न किये । कातिपूर्ण मिल पर पट गङ्गा ।^१ फिर सम्पुत्र-स्थित, अच्चल पातिव्रत्यवाली अरुधती (नक्षत्र) को देखा ।

(राम ने) अन्य कर्त्तव्य पूरा करके, आनन्द-भरे, महातपस्वियों के चरणों से सिर लगाया । फिर, चक्रवर्ती (दशरथ) के चरणों की बदना की और म्वर्ण-ककणधारिणी सीता का कर अपने हाथ में लेकर अपने मनोहर भवन में जा पहुँचे ।

भैरियाँ गर्जन कर उठी, शख बज उठे, चतुर्वेदों के घोष हाँ उठे दंवता आनन्द-घोष कर उठे, विविध शास्त्र तथा अभिनन्दन-गीत प्रतिध्वनित हुए, भ्रग-समुदाय भी गृजाग कर उठे और समुद्र भी गर्जन कर उठे ।

(राम ने) केक्य-पुत्री के प्रकाशमान चरणों को, अपनी जननी के प्रति प्रेम न भी अधिक प्रेम के साथ नमस्कार किया । अपनी माता के चरणद्युग को भिर पर धारण किया और फिर निष्कलुप मन में सुमित्रा के चरणों को प्रणाम किया ।

हमिनी (सीता) ने भी उन तीनों देवियों के मनोहर म्वर्ण-महण चरण-कमलों को अपने भिर का भूषण बनाया । उन देवियों ने उमग भरे मन में कहा—वह (हमारे) कुनार का भव्य आभरण बनी रहेगी और अविचल पातिव्रत्यवती अह धनी भी इसे (आदग के रूप में) देखेंगी ।

फिर उन देवियों ने शस्त्र-वलयों से भृपिन कौकिल-न्यूरवाली जानकी जी जब

^१ दक्षिण में विवाह के समय धर्मिन-प्रदक्षिणा करने के पश्चात वह सिल पर भग्ना डाल्ना, ऐसा है, और वह उसके अंगठे का म्वर्ण उत्तर गत का उचारण करता है ।—अम ।

में भरकर कहा—रमणीय नवनवाले (राम) की पत्नी वनने योग्य उनके अतिरिक्त कोई दूसरी नागी कहाँ है ? मीता को देख-देखकर उनकी आँखें आनन्द में भर गड़ी और उनके मन उमग में भर गये ।

उन्होंने अपनी पुत्रवधु को आशीर्वाद दिया और कहा कि स्त्री-समुदाय के भूषण-जनी तुमको अनीम स्वर्ग, अमरत अपूर्व आभरण, (दासियों के रूप में) असर्व सुन्दरियाँ, विशाल भृप्रदेश आग अमृत्यु रेशमी वस्त्र आदि स्त्री-समुदाय के भूषण प्राप्त हो । यह कहकर उन्होंने कह आभग्न आदि उन्हें दिये ।

पवन ने तरगायिन मसुद्र-जैमे नील वर्णवाले करुणानसुद्र (राम) शास्त्र-समुद्र स्वरूप सुनियों का आडेश पाकर, आनन्द-समुद्र वने हुए मनवाली (मीता) के साथ अपने पुगतन पर्यंक ढींग-समुद्र जैमे पर्यंक पर जा पहुँचे ।

[इस पद्य में 'समावेशन' नामक विधान की ओर सकेत है, जिसमें दंपती त्रिव्यचर्य का पालन करते हुए एक साथ रहकर चार रात्रि व्यतीत करते हैं ।]

मीन मास (फाल्गुन) के उनरफाल्गुनी नद्यत्र-युक्त दिन में महस्त्र नामवाले मिह-नवश (गम) का विवाह सम्पन्न हुआ, और उनके योग्य मगलप्रद होमायि को वसिष्ठ सुनि ने समृद्ध किया ।

अबलक जयशाली (जनक) ने (दशरथ आदि) वन्धु-जनों से परामर्श करके निश्चय किया कि अपनी दूसरी पुत्री (जर्मिला) तथा अपने अनुज की दो पुत्रियाँ (माडवी और श्रीनकीर्ति) उन तीनों लक्ष्मी-नवश कन्याओं का विवाह राम के तीनों भाइयों के साथ कर दिया जाय ।

पुष्पमालावारी जनक और घृतानिक्त शश्लवारी कुशध्वज नामक उनके अनुज दोनों की तीन पुत्रियों के साथ, जो नभी योग्य गृणों से शोभित थीं, काजल लगी आँखोवाली थी और सुन्दरियों के मवश गमणीय थीं और प्राप्तवय थीं तीनों (लक्ष्मण, भगत और शत्रुघ्न) ने विवाह अर्ज लिया ।

उन नव (भाइयो) का विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् चक्रवर्ती (दशरथ) अनेक वर्षों में अर्जित अपने वशमात्र को छोड़कर उनके अतिरिक्त अन्य नव प्रकार की सम्पत्ति का दान अर्ज दिया और जिसने जो-जो और जितना भी माँगा उनको वह नव दे दिया ।

(उस प्रकार) दान करके चक्रवर्ती दशरथ विलक्षण तथा अमीम आनन्द को प्राप्त हुए किंवदं-गाव्यों के नर्मत तथा मत्तातपन्वी मुनियों के साथ उस (मिथिला) नगर में विद्याम अर्जते रहे । उस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए । उनके पश्चात् क्या घटित हुआ अह (वार्ग) रहे । (१-१०४)



अध्याय २२

परशुराम पटल

जनक-पुत्री के सग श्रीराम नानाविध भोगों का उचित प्रकार में अनुभव कर रहे थे । उस समय महातपस्वी कौशिक, वेद-विहित रीति से आशीर्वाद देकर, उत्तर दिशा में अत्युन्नत हिमालय की ओर चले ।

एक दिन वलशाली चक्रवर्ती (दशरथ) ने आदेश दिया कि हमारी मेना अब हमारे साथ सुन्दर (अयोध्या) नगर के लिए प्रस्थान करे । हाथियों के जैसे नरेशों में विदित होते हुए, वे एक अनुपम रथ पर आरूढ़ हुए ।

सर्व प्रकार के बलों से युक्त दशरथ (अयोध्या के) मार्ग पर वा पहुँचे, उस समय, उनके पुत्र तथा पुत्रवधुएँ उनके चरण की बदना करके उनके संग हो लिये । राजकुमार तथा अन्य लोग उनके पाश्वां में चलने लगे । मिथिला नगर की प्राचीन जनता भी उनके वियोग से ऐसा दुःख अनुभव करने लगी, जैसा प्राणों के वियोग से शरीर को होता है ।

दीर्घ किरीटधारी (दशरथ) यथाविधि आगे-आगे जा रहे थे और उस मनोहर महानगर मिथिला के निवासियों के मन उनके पीछे-पीछे चल रहे थे । उनके मध्य में, अपने ही सदृश (अपने) भाइयों के द्वारा अनुगत होते हुए, वीर (राम) मेघस्थ विजली-सदृश कटिवाली (सीता) के साथ सुन्दर ढग से चलने लगे ।

वे जब इस प्रकार जा रहे थे, तब मयूर उनके दक्षिण की ओर आये (जो शुभ-शकुन था) और कौए आदि पक्षी वाहूँ और जाकर उनके मार्ग में वाधा उपस्थित करने लगे (जो अपशकुन था) । यह देखकर गजतुल्य (दशरथ) यह सोचकर कि ‘मार्ग में कुछ वाधा उपस्थित होनेवाली है’, अपने आकाशस्पर्शी रथ के साथ आगे न बढ़कर मार्ग के मध्य में ही रुक गये ।

इस प्रकार रुककर उन्होने एक शकुन-शास्त्रज को ब्रुलाकर पूछा कि ये (शकुन) अच्छे हैं या कुछ विपदा आनेवाली है ? तुम निष्पक्ष होकर भच-भच वताओ । तब पर्वत-तुल्य भुजावाले उन चक्रवर्ती के समुख पक्षियों के सकेत को पहचाननेवाले उस व्यक्ति ने कहा—अब कुछ वाधा उपस्थित होनेवाली है, किन्तु फिर वह दूर हो जायगी ।

शकुनज यह कह ही रहा था इतने में (परशुराम), जिनकी जटाओं से आकाश के अन्धकार को दूर करनेवाली काति चारों ओर विखर रही थी, जिनके हाथ में फरगा था. जो चलनेवाले स्वर्ण-पर्वत के सदृश थे, जो अग्नि उगलतं थे, जो अग्नि के गमान भयकर नेत्रवाले थे और जो वज्र-सदृश कठोर वचन-युक्त थे, वहाँ आ पहुँचे ।

(उनको देखकर) उद्देलित समुद्र में फैसी हुई नौका के जैमे लोग डगमगा उठे, महान् दिग्गज, जो स्तंभ के जैमे धरती को धारे खड़े थे, डिग उठे, समुद्र वौखलाकर उमड़ गये और स्थानातरित होने लगे, स्वर्ण के निवासी भवभीत हो अपना-अपना न्यान छोड़ भागने लगे, रक्तस्वर्ण का एक धनुष भुकाकर, उसकी डोरी को चढ़ाकर टकागित करने वाला तथा उसपर तीव्र वाण चुन-चुनकर रखते हुए (परशुराम) आये ।

निकटस्थ लोग मोचने लगे—खुले हुए त्रण से प्रवाहित रक्त के जैसे (लाल) नेत्रों ने अग्नि-ज्वाला प्रमारित करनेवाले (उन परशुराम) का यह कोप किसलिए उत्पन्न हुआ ? क्या स्वर्ग की धरती पर गिराने के लिए ? भूलोक को आकाश में उठाने के लिए ? या असर्व प्राणियों को यम के मुख में डालने के लिए ? (किसलिए ये कोप कर रहे हैं ?)

युद्ध के मध्य तीव्र हो उठनेवाले परशु के अग्र भाग से अग्नि-शिखा प्रज्वलित हो उठी। जिससे रथावृद्ध होकर (मेर) पर्वत की परिक्रमा करनेवाला सूर्य भी दिग्भ्रात हो भटकने लगा। (उनके शरीर से) ऐसा प्रज्वलित तेज निकल पड़ा, मानों समुद्र में रहनेवाली बड़वाग्नि ही आकाश तक उठकर प्रज्वलित होती हुई धरती पर चली आ रही हो।

उनकी वलिष्ठ भुजाएँ दिगन्तों में जा फैली। चारों ओर विखरी हुई उनकी जटामय शिखा नभ को छू रही थी। इबेत चन्द्र भी उनके अतिनिकट दिखाई देता था। वे समुद्र, जल, अग्नि, वायु, भूमि, आकाश सबके विनाशकारी, वल्पात के समय में ताडव करनेवाले उमापति (रुद्र) की समता कर रहे थे।

(ऐसे वे परशुराम आ पहुँचे) जिनके पास अति तीव्र धारवाला ऐसा फरमा था, जिसका प्रयोग करके उन्होंने सैकत वेला-युक्त समुद्र से घिरे हुए समस्त भूलोक पर छा जानेवाली बलशाली सेना से विर्गिष्ट तथा पराक्रमी नरेशी से तिलकायमान (कार्त्तवीर्याजुन) रूपी सजीव महावृक्ष की एक सहस्र उन्नत भुजा-रूपी वज्रमय शाखाओं को काट दिया था।

क्षत्रिय-कुल पर एक वलक (जमर्दग्नि की हत्या के कारण) लग गया था, जिससे परशुराम ने भूलोक के राजसमूह का समूल नाश करते हुए अपने परशु से इकीस पीढ़ियों तक उनके प्राण हरे थे, भूमि के पापों का उन्मूलन किया था और उमड़ते समुद्र-जगे तरगायित उनके रक्त-प्रवाह में डूबकर अकेले ही गोता लगाया था।

क्षमास्वरूप महान् तपस्या तथा जलानेवाली अग्नि-स्वरूप महान् कोप—ये जिसमें अत्यधिक मात्रा में थे, अस्त्र-प्रयोग की स्पर्धा में जिनके सम्मुख शिथिल पड़कर कार्त्तिंकेय वीच में ही (स्पर्धा छोड़कर) चले गये थे और जिन्होंने क्रोध के साथ विलक्षण तीव्र वापों का प्रयोग करके उच्च शिखरवाले (क्रीच) पर्वत में ऐसा छेड़ कर दिया था, जो ऊँचे उड़नेवाले पक्षियों के लिए (याने-जाने का) एक सुन्दर मार्ग बन गया था।^३

जो अनायास ही पर्वतों को (भूमि में) धॅसा सकते थे, समुद्रों को वहा देने में नमर्थ थे और जिन्होंने मेघस्पर्शी पर्वत को भेद दिया था, वे परशुरामी वहाँ आ

^३ यह कथा प्रसिद्ध है कि सुमहारय और परशुराम ने शिवजी से अस्त्र-विद्या प्राप्त की। अस्त्र-विद्या की परोंजा के समय नुमहारय बाणों में क्रीच पर्वत को भेद नहीं सके। किन्तु परशुराम ने अपने बाणों का प्रयोग कर उसमें छेड़ कर दिया। उसके पश्चात् सुमहारय ने अपना माला फेंककर उस पर्वत को तोड़ दिया। उस पर्वत के शिखर के गिरने से इन्निए दिशा में सरोवर धस्त हो गये। तब वहाँ के हँस परशुराम-दृष्ट छेद ने मार्ग में क्रीच पर्वत के उत्तर में पहुँच गये और हिमाजल के मानस में निवास करने लगे।—अनु०

पहुँचे। प्रभु (रामचन्द्र) के जन्म के कारण-भूत दशरथ चक्रवर्ती ने उन्हें देखा और उम कठोर व्यक्ति के आगमन से आशंकित होकर भारी वेदना से ग्रस्त हो गये।

उमंग से चलनेवाली सेना भयग्रस्त हो इधर-उधर भागने लगी, उज्ज्वल भृकुटियों को परस्पर सम्मिलित कर (भैंहि सिकोडकर), आँखों से चिनगारियाँ उगलते हुए, वज्र के सदृश, अत्यन्त क्रौध के साथ, वे (परशुराम) रथ पर आनेवाले मिंह के समान कुमार के समुख आये, मनोहर नयनवाले नृप-कुमार (राम) भी यह सोचने लगे कि यह महात्मा कौन है? इतने में—

चक्रवर्ती (दशरथ) बीच में आ पहुँचे और अति सुन्दर सत्कार करके अपने सुवासित सिर को धरती पर लगाकर उनके चरणों को प्रणाम किया, किन्तु (उनकी परवाह न करके) वे अपने कोप का पार न पाकर कल्पांत की अग्नि-ज्वाला फैलाते हुए वीर (राम) के समुख आकर बोले—

जो धनुष दूट गया, उसकी शक्ति को मैं जानता हूँ। अब तुम्हारी स्वर्ण-भूषित भुजा के बल की परीक्षा करने की मेरी इच्छा है। युद्ध करके पुष्ट हुई मेरी भुजाओं में कुछ खुजलाहट भी हो रही है। यहाँ मेरे आगमन का कारण यही है; दूसरा कुछ नहीं।

जब वे (राम से) ये बचन कह रहे थे, तब चक्रवर्ती ने घबराकर उनमें निवेदन किया—आपने सारी भूमि को जीतकर एक सुनि (काश्यप) को दान कर दिया था। आप जैसे कृपालु के लिए शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी कोई वस्तु नहीं हैं, (तो) ये द्वुद्व मनुष्य किस वित्ते के हैं? अब यह (मेरा पुत्र) और मेरे प्राण आपकी शरणागत हैं।

(दशरथ ने आगे कहा—) आग उगलनेवाले परशु को धारण करनेवाले। महान् पापों को इच्छा-पूर्वक करनेवाले ही तो मरण के पात्र होकर (आपके द्वारा) मृत्यु प्राप्त करते हैं। क्या इस (राम) ने अहकार के मद में बुद्धि-भ्रष्ट होकर कोई अपराध किया है? युद्ध करने योग्य बलवानों के निकट न जाकर निर्वल व्यक्तियों के पास जाने से बलवानों के बल की क्या शोभा हो सकती है?

हे अपार तपस्या-सपन! आपने सप्तद्वीपमय पृथ्वी पर एकाधिकार प्राप्त करने के पश्चात् उसे (पृथ्वी को) 'लो, तुम इसे अपनाओ', कहकर (काश्यप को) दे दिया था। अब फिर ऐसा काम न कीजिए। विशाल शीतल मसुद्र से आवृत भूमि पर स्थित नरपतियों पर कृपा कीजिए और अपना कोप शात कीजिए। क्या आपका यह कोप उचित है?—यो विविध प्रकार की बातें कहीं।

(दशरथ ने आगे कहा—) उस पराक्रम से भी क्या होता है, जो निष्पक्ष न हो, केवल बढ़ा हुआ हो और सब लोग जिसकी निन्दा करते हों। क्या उस पराक्रम ने कोई धर्म-कर्म पूर्ण हो सकता है? बल या पराक्रम वही तो (नार्थक) होता है, जो धर्म-मार्ग पर स्थित हो और श्रेष्ठ यश से सयुक्त हो। हे पराक्रमी! (आप जो अब करने को उद्दित हो गए हैं) क्या यह पराक्रम कहलाने योग्य है?

'मेरा पुत्र (आप से) वैर करनेवाला नहीं है।' है उपलन्ति-मद्दण भुजावाले! यदि यह (पुत्र) प्राणहीन हो जाये, तो मैं अपने वधु-जन तथा प्रजा के साथ प्राण-त्याग

कर्स्गा और स्वर्ग प्राप्त करूँगा । हे महात्मन् । मैं आपका चरण-दाम हूँ । मेरे कुल सहित मुझे न मिटा दें । आप से मेरी यही विनती है ।

यो प्रार्थना करनेवाले अपने पैरों पर पड़े हुए (चक्रवर्ती) को (परशुराम ने) कुछ वस्तु ही नहीं समझा, किन्तु प्रज्ञलित दृष्टि ने देखकर व स्वर्ण रग के वस्त्रधारी (गम) के सम्मुख आ पहुँचे ; उनकी यह निष्ठुरता देखकर तथा अपना कोई उपाय फलीभूत होते न देखकर (दशरथ) विकल-प्राण हुए और विजली को देखे हुए साँप के समान मृद्धित हो गये ।

मानधन मुकुटधारी (चक्रवर्ती) की मूर्छा की कुछ परवाह न करनेवाले तथा स्वय उनको (परशुराम को) भी वैसी ही दशा में पहुँचानेवाला जो कर्म-परिपाक उन्हें घेर रहा था, उसे दूर करने का उपाय न जानेवाले उन्होंने (परशुराम ने) कहा—‘डमरुधारी उमापति वह पुराना का धनुष शक्तिहीन हो गया था । उसका पुराना वृत्तान्त तुम सुनो—

भूलोकवासियों के लिए अप्राप्य शिल्प-निषुणता से युक्त विश्वकर्मा ने पुरातन काल में एक चक्रवाले रथ पर आरूढ़ (सूर्य) की ऋति उत्पन्न करनेवाले, अति प्रकाशमान, तोड़ने में दुष्कर तथा सच्चरणशील मेघों से आवृत उत्तर में के बल में युक्त, दो अनुपम धनुष निर्मित किये ।

उनमें से एक को उमापति ने ग्रहण किया, दूसरे धनुष को, विराट्-रूप धारण कर मारं विश्व को नापनेवाले त्रिविक्रम (विष्णु) ने अपने सुन्दर कर में धारण किया । यह विषय जानकर देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि उन दोनों धनुषों में अधिक बलवान् कौन है ?

सुरभित कमल पर आसीन (ब्रह्मा) ने सोचा कि देवता लोग (दोनों धनुषों की परीक्षा लेने का) जो विचार कर रहे हैं, वह उचित ही है, और एक सफल उपाय के द्वारा उन शक्तिशाली धनुषों के व्याज से परब्रह्म के रूप में एक वनकर रहनेवाले उन दोनों देवों के मध्य धोर युद्ध उत्पन्न कर दिया ।

दोनों (शिव और विष्णु) दोनों धनुषों पर डोरी चढ़ाकर युद्ध करने लगे, तो सातों लोक भय-विकरित हो गये । दिशाएँ डगमगाने लगे । दोनों कोपाग्नि उगलने लगे । तब त्रिपुर का दाह करनेवाले (शिव) का धनुष कुछ टूट गया, इस पर वे (शिव) अधिक क्रोध से भर गये ।

(शिव) फिर युद्ध के लिए उदात् हुए, तो देवों ने उन्हें युद्ध में हटा दिया । ललाटनेत्र (शिव) ने अपना धनुष देवाधिदेव (इन्द्र) के हाथ में दे दिया ; उधर विजयशील नीलवर्णदेव (विष्णु) भी अपना धनुष महान् तपस्वी ऋचीक सुनि को देकर चले गये ।

ऋचीक ने वह धनुष मेरे पिता को दिया और अपने पिता से मैंने यह धनुष प्राप्त किया । हे वत्स ! यदि तुम इस मेरे धनुष को चढ़ा दोगे, तो तुम्हारी समता करनेवाला नृप अन्य कोई नहीं होगा । मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने को जो विचार कर रहा हूँ, वह भी छोड़ दूँगा और सुनो—

मडे हुए धनुष को तोड़नेवाला जो बल है, उस पर फूल उठना अच्छा नहीं है । हे मनुवशज ! और भी सुनो । (मेग) तुम क्षत्रियों के साथ पुराना वैर है, प्राचीन काल में

एक दानव-समान राजा ने मेरे निर्दोष पिता को क्रोध-हीन (तपस्वी) जानकर भी मारा था, तो मैंने कुद्द होकर—

इक्कीस बार, धरती के किंगीटधारी राजाओं को उग्र परशु की धार से समृल उखाड़ फेका। उनके शरीर से प्रवाहित रक्त-धारा में यथाविधि, अपने पिता के प्रति करणीय तर्पण-कृत्य पूरा किया। (उसके उपरान्त) अपने कोप को दबा दिया।

समस्त पृथ्वी को सुनिवर (काश्यप) को दान कर दिया, अपने बड़े-बड़े वैरियों को दबा दिया। बड़े तप में निरत होकर (महेन्द्र) नामक पर्वत पर निवास करता रहा। तुम्हारे शिवधनुष को तोड़ने की ध्वनि वहाँ पर सुनाई दी, तो कोप उत्पन्न हुआ और यहाँ आया हूँ। यदि तुम बलवान् हो, तो तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। पहले इस धनुष को चढ़ाओ—

(परशुराम के) इस प्रकार कहते ही, राम ने सुस्कराकर, प्रकाशमान बदन से कहा—नारायण ने अपने बल से जिस धनुष का अभ्यास किया था, वह मुझे दीजिए। परशुराम ने वह धनुष दिया। वीर (राम) ने उसे लिया और अपने सुजवल से उसे झुकाया, जिसे देख भारी धनी जटावाले (परशुराम) भी भयभीत हो गये। फिर (राम ने) कहा—

यद्यपि तुमने भूलोक के राजकुल का विनाश किया है, तो भी बेटज ऋषिवर के पुत्र हो, और तपस्वी का वेष धारण किया है, अत तुम (मेरे लिए) अवध्य हो, किन्तु मेरा वाण भी व्यर्थ न होनेवाला है, अतः इसका लद्य क्या हो—शीघ्र बताओ।

(राम के बचन सुनकर परशुराम ने कहा—) हे नीतिज्ञ ! कोप न करो, तुम मवके (मारे विश्व के) आदि (कारण) हो, मैंने तुम्हे पहचान लिया, हे तुलसीमालाधारी चक्रधारिन् ! श्वेत चन्द्र-कलाधारी (शिव) का धनुष टुकड़े-टुकड़े क्या हुआ, वह तो तुम्हारे पकड़ने के भी योग्य नहीं था।

स्वर्णमय वीर-ककण तथा रमणीयता से युक्त चरणवाले। तुम चक्रधारी (विष्णु) ही हो, यह सत्य है। अतः, अब (तुम्हारे रहते हुए) समार पर क्या विपदा आ मकती है ? मैंने जो धनुष तुम्हारे दिया है, वह भी तुम्हारे बल के लिए पर्याप्त नहीं है।

तुम्हारे द्वारा चढ़ाया हुआ यह वाण व्यर्थ न हो, इसलिए वह मेरे किंचं गये सब तप को मिटा दे। परशुराम के यह कहते ही, (श्रीराम का) हाथ किंचित् दीला पड़ गया। वह वाण भी जाकर उनकी सारी तपस्या को सँजोकर लौट आया।

तब, स्वच्छ नीलरल्व-वर्णवाले। मनोहर तुलसीमाला धारण करनेवाले। मन के प्राणभूत पुण्यस्वरूप। तुम्हारे सकलिप्त सब कार्य अनायास ही पूर्ण हो जायेंगे। अब मुझे आजा दो।—यह कहकर परशुराम प्रणाम करके चले गये।

पुनः प्रास प्रशावाले, विपदा से विमुक्त हो उल्लभित होनेवाले, मत्तगज की संनावाले (दशरथ) जो दुर्लभ विपत्-मागर को पार कर जुके थे अब आनन्द नामक बेला/रिन नमुद्र में दूध गये।

लेश मात्र प्रेम से भी रहित उन (परशुराम) के हाथ के धनुष को लेकर (उसके बढ़ते) उन्हे अनुपम व्यपयश देनेवाले उन महानुभाव (राम) को (दशरथ ने) अक में भर लिया, सिर सँधा तथा अपने सुन्दर नेत्रों के आनन्दाश्रु-रूपी कलश-धार से अभिप्रक्त किया ।

दशरथ ने सोचा—इस छांटी अवस्था में ही इसने जो अपूर्व कार्य किया है और पराक्रम दिखाया है, वह तीनों लोकों के निवासियों के लिए भी असाध्य है । निश्चय ही वह कुमार कर्म करनेवालों को ऐहिक और पारलौकिक फल प्रदान करनेवाला ‘परमतत्त्व’ है ।

तब राम ने पुण्यवर्षी करते हुए आगत देवताओं में सुन्दर शश्लधारी वरुण को देखकर, वह कहकर कि—इस महिमा-मय कठोर धनुष को सुरक्षित रखो, उस विष्णु के धनुष को उसे साँप दिया और आनन्द-धोप करनेवाली अपनी सेना को साथ लेकर प्रसिद्ध तथा जल-समृद्ध अयोध्या नगरी को जा पहुँचे ।

सब लोग अयोध्या पहुँचकर आनन्द से रहने लगे । तब एक दिन, पराक्रमशाली तथा मार्जना से दुक्त भेरी-बादों से प्रतिघनित सेनावाले चक्रवर्ती ने, (भरत से) अति सुन्दर तथा मगलप्रद वचन कहे —

तात । तुम्हारे मातामह, प्रमिङ शासक केक्याधिप तुम्हें देखना चाहते हैं, अतः आभरणों ने प्रकाशमान वक्षवाले ! सरोवरों में स्थित शख (कीटों) से प्रतिघनित केक्य देश को तुम जाओ ।

(दशरथ के) आदेश देते ही भरत ने उन्हे नमस्कार किया, फिर राम के चरण-कमलों को अपने सिर पर धारण किया और राम के अनन्यप्राण भरत उन्हे छोड़कर इस प्रकार चले, जैसे प्राणों को छोड़कर शरीर चला जा रहा हो ।

अयालयुक्त अश्वों तथा रथों से विशिष्ट एव शखों से प्रतिघनित सेनायुक्त ‘युधाजित्’ नामक राजा उनके साथ चले । भरत अपने अनुज (शत्रुघ्न) को साथ लेकर, सात दिनों में शीतल जल से समृद्ध केक्य देश में जा पहुँचे ।

भरत चले गये । चक्रवर्ती (दशरथ) त्रुटिहीन शासन करते रहे । देवों की तपस्या अभी शेष थी, जिससे आगे जो घटनाएँ घटित हुईं, अब उनका वर्णन करेंगे ।

कंब रामायण
अयोध्याकाण्ड

मंगलाचरण

कुब्जा (मथरा) तथा क्षात्र धर्मवाली विमाता (कैकेयी) के क्रूरतापूर्ण कार्य के कारण राज्य त्याग कर, अरण्य एव समुद्र को पारकर, रावण आदि के वध के द्वारा स्वर्गवासियों तथा पृथ्वीवासियों की विपदा को दूर करनेवाले चरणों से शोभायमान, हे प्रभो ! (हे राम !) शानी लोग कहते हैं कि तुम उन सब पदार्थों में, जो (पदार्थ) मूल प्रकृति से विवर्तित होकर अनत रूप में फैले हुए पञ्च महाभूतों के कार्य-रूप हैं, अंतर और बाहर म इस प्रकार परिव्यास होकर रहते हो, जिस प्रकार शरीर और प्राण रहते हैं तथा प्राण और बुद्धि रहते हैं ।



अध्याय ३

मंत्रणा पटल

दशरथ के कर्णमूल में एक केश, अपने काले रंग की छोड़कर श्वत रंग के माथ दिखाई पड़ा । वह ऐसा लगा, मानो उन (दशरथ) के कान में यह वात कहने के लिए आया हो कि हे राजन् । अब तुम्हारी अवस्था इस योग्य हो गई है कि तुम अपना राज्य अपने पुत्र (राम) को देकर तपस्या में निरत हो जाओ ।

मानो रावण के पाप ही (दशरथ के) पके केश-हृप में आये हो—यो भूमिपाल (दशरथ) ने अपना सुख आईने में देखते समय अपने पके हुए केश को देखा ।

अलकारों से भूषित, अधिक क्रीध मे भर, एव हौदोवाले वंड-वंड हाथियों में युक्त चक्रवर्ती (दशरथ), मेघों के समान नगाड़ों के गरजत तथा अपने चारों ओर अनि सुन्दर चामरों के हुलते हुए मन्त्रणा-गृह में आ पहुँचे ।

वहाँ पहुँचकर चक्रवर्ती ने अपने माथ आये (सामन्तो) नरेशों, अनुपम वधुजनी तथा परिवार के अन्य लोगों को मृदुल वचनों से वहाँ मे भेज दिया और एकात में इस प्रकार बैठे रहे, जिस प्रकार चक्रपाणि (विष्णु) तटस्थ रहकर ससार की रक्षा करने के निमित्त एकात में योग-निद्रा धारण करते हैं ।

उन चक्रवर्ती ने, जो चढ़ोपम तथा गगनोन्नत श्वेत छत्र के साथ समार की रक्षा करते थे, देवों के गुरु वृहस्पति के समान रहनेवाले अपने मन्त्रियों को बुला भेजा ।

उन समय वे वसिष्ठ मुनि मन्त्रणागृह में जा पहुँचे, जो सुन्दर वीर-ककण धारण करनेवाले चक्रवर्ती को पौरीहित्य-त्पीर्ण रक्षा देने तथा मार्ग-दर्शन करने के कारण अत्यधिक आदरणीय थे, देवों तथा मुनियों के लिए देवतुल्य थे, एव त्रिमूर्तियों के साथ चौथे देव के नद्दश थे ।

फिर वे मन्त्री लोग आ पहुँचे, जो कुलक्रम से (इच्छाकु-वश के राजाओं के) मन्त्री का कार्य करते आये थे, प्रभूत कला-सपन्न थे, वृद्धश्रुत थे, पुरुषार्थ-सपन्न थे, अपने हित की हानि होने की सभावना होने पर भी जो तटस्थता को नहीं त्यागनेवाले थे, क्रोध आदि दुर्गुणों को जिन्होंने मूल-सहित मिटा दिया था तथा अपूर्व धर्मों का आचरण करते थे ।

जो वर्तमान व्यापारों से भावी परिणामों का अनुमान लगाने में समर्थ थे, जो बुद्धिवल से युक्त थे, भाग्य का परिणाम होने पर भी भावी को बदलने का उपाय करने में चतुर थे, जो उत्तम कुल के योग्य सदाचार से युक्त थे, जिन्होंने अनेक अपूर्व शास्त्रों का अध्ययन किया था, जो अभिमान में चमरी-मृग के समान थे ।

वे ऐसे शीलवान् थे कि उचित काल, स्थान, नाधन आदि को शास्त्रानुकूल रीति से परखकर, दैव की अनुकूलता को भी देखकर, धर्म की उन्नति करनेवाले थे । वश देनेवाले कायों को जानकर उनके द्वारा राजा के पुरुषार्थों को बढ़ानेवाले थे ।

चक्रवर्ती के क्रुद्ध होने पर भी वे मन्त्री अपने प्राणों की रक्षा की चिन्ता नहीं करते थे, किन्तु राजा के क्रोध को सहकर भी अपने सिद्धान्त पर ढूँढ रहते थे और नीति का ही कथन करते थे । सन्मार्ग से कभी न डिगनेवाले थे । त्रिकाल के व्यापारों को जाननेवाले थे । (स्वयं विचार करके किये गये निर्णय को) एक ही बार प्रतिपादित करनेवाले थे ।

चक्रवर्ती के लाभ और हानि का विवेचन करके अन्त में वैद्य के समान (उनके हित को ही) सोचनेवाले थे । अकस्मात् कोई विपदा उत्पन्न होने पर पूर्व जन्म के सुकृत के समान आकर सहायता करनेवाले थे ।

सपत्ति से युक्त ऐसे मन्त्री यद्यपि साठ महस्त थे, तथापि चक्रवर्ती का हित करने के विषय में सबकी बुद्धि एक ही थी । वे अपूर्व मन्त्रणा-शक्ति से सपन्न थे । ऐसे वे मन्त्री वीचियों से भरे समुद्र के समान वहाँ आ पहुँचे ।

वे मन्त्री वथाक्रम आये । उन्होंने पहले महान् ज्ञानी वसिष्ठ को प्रणाम किया,

¹ अभिमान में चमरी-मृग के समान थे—अर्थात्, जिस प्रकार अपने केग खोकर चमरी-मृग जीवित नहीं रहता, उसी प्रकार वे भी अभिमान को खोकर जीवित रहनेवाले नहीं थे ।—अनु०

फिर अपने राजा को प्रणाम किया और यथोचित स्थान पर आसीन हुए। वे उचित शब्द तथा अर्थ के ज्ञान से युक्त चक्रवर्ती की कृपा-दृष्टि के पात्र बने।

इस प्रकार, जब वे आसीन हो गये, तब चक्रवर्ती ने उनके मुखों की ओर क्रम से देखकर कहा, मेरी एक चिरकालिक इच्छा है, मेरी बुद्धि के अनुकूल रहनेवाले आप लांग ध्यान से सुने—

मैं सूर्यकुल के उत्तम राजाओं की परपरा में स्थिर रहकर, आप लोगों की सहायता से साठ सहस्र वर्ष से शासन करता रहा हूँ।

मैंने कन्याओं के लिए योग्य पातित्रत्य रखनेवाली धरती का धर्मपूर्ण शासन किया है और अवतक संसार के प्राणियों का हित करता रहा हूँ। अब मैं अपने जीवन को सफल करना चाहता हूँ।

मैं तपस्या के योग्य वर्द्धक्य को प्राप्त कर चुका हूँ। अवतक मैं, फनवाले आदि-शेष, दिसगज, प्रसिद्ध कुलशैल—इन सब के भार को कम करके इस पृथ्वी का भार वहन करता रहा। किन्तु, अब इस भार को वहन करने की किंचित् भी शक्ति मुझमें नहीं रही।

मेरे कुल में उत्पन्न मेरे पूर्वज, अपने पुत्रों को राज्य का भार देकर स्वयं अरण्य में चले जाते थे और क्रूर इद्रिय-समुदाय को सयम में लाकर मोक्ष प्राप्त करते थे। ऐसं गजा (हमारे कुल में) असर्व उत्पन्न हुए हैं।

समुद्र से आवृत धरती में, स्वर्ग में, पाताल में, सर्वत्र मैंने शत्रुओं को परास्त किया। अब क्या मैं काम आदि अंतश्शत्रुओं के वशीभृत रहकर भय के साथ जीवन व्यतीत करूँगा ?

मैंने अलक्षक-रस (महावर) लंगे हुए कोमल चरणवाली कैकेयी के सारथ्य करते हुए रथ पर आरूढ़ होकर, कठोर क्रोधवाले दस राक्षसों के रथ को विघ्नस्त किया और उन राक्षसों को परास्त किया। ऐसे मेरे लिए, पचेन्द्रिय-रूपी रथों को, जिन पर मन-रूपी भूत आरूढ़ रहता है, परास्त करना क्या कठिन कार्य है ?

कोई (नक्त्रिय) जवतक वह शत्रुओं की सेना के साथ युद्ध करते हुए न मरे या उत्तम ज्ञान को प्राप्त न करे अथवा सप्ति की नश्वरता को देखकर समार की आसक्ति को न छोड़ दे, तबतक उसे मुक्ति नहीं प्राप्त होती।

इस ससार के लोगों के लिए इस गत्य को भूलने से बढ़कर हानिकारक विषय और कुछ नहीं है कि हमारी मृत्यु अवश्य होनेवाली है। यदि विगक्ति-रूपी नौका हमारी सहायता न करे, तो इस जीवन-रूपी समुद्र को हम कैसे पार कर सकते हैं ?

यदि महिमा से पूर्ण वैराग्य तथा उम (वैराग्य) से उत्पन्न होनेवाला सत्यजान—ये दोनों पर्ख हमारे पास हो, तो हम इस जीवन-रूपी कारागार से मुक्ति पा सकते हैं।

मेरा मन, सुख की परपरा के जैसे (अर्थात्, सुख की भ्राति उत्पन्न करते हुए) आनेवाले इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को मिटाकर मोक्ष नामक अनुपम माम्राज्य को पाना चाहता है। अब इस संसार के राज्य को वह (मेरा मन) नहीं चाहता।

आपलोगों को (मन्त्रियों के स्प में) पाने के कारण मैं मारे समार की

यथाविधि गङ्गा करस का और पुण्य-कार्य किये। यो, इस समार के जीवन में मेरी महायता करनेवाले आपलोंगों को, मेरे परलोक-जीवन के लिए भी कुछ महायता करनी है।

जब हम अपने पूर्वकृत पापों को अपार कर्त्तव्यापूर्ण तपस्या से दूर कर सकते हैं, तब कोन ऐसा मनुष्य होगा जो अनुपम अमृत को छोड़कर उसके विरोधी कठोर विषय का पान करेगा ?

आलान में वैष्ण द्वारे हुए मन्त्रगज की पीठ पर के मयूरपंखों तथा श्वेत छत्र की मुखद छाया शाश्वत नहीं होती। अनेक दिनों से आन्वादित होकर जो जूँड़ा हो गया है, उसके आन्वादन में अब क्या आनन्द आ सकता है ?

पुत्र न होने में मैं अनेक दिनों तक दुःखी रहा। मेरे उस दुःख को दूर करने के लिए गम उत्पन्न हुआ। अब मैं उसको प्रमच रखकर स्वयं इस समार की वाधा में मुक्त होने का उपाय करूँगा।

‘गम के पिता ने युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु नहीं प्राप्त की। अधिक वृद्ध होने पर भी वह आकृक्ति-हीन नहीं हुआ —ऐसा अपयश उत्पन्न हो, तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

गमचन्द्र जैसा पुत्र सुझे हुआ है और सीता जैसी लद्मी के साथ उसका विवाह होते हुए मैंने देखा है। अब मैं उस (गम) का विवाह कर्मा नामक गुणवाली भूदेवी के साथ होते हुए देखना चाहता हूँ।

भूमि नामक गौरवपूर्ण रमणी का तथा व्रस्ण कमल पर आसीन लद्मी का, अपने मनोनुकूल पति पाने का जो सोभाय होता है, उसके फलीभूत होने में विलम्ब करना उचित नहीं है।

अतः, मैं गम को राज्य देकर, अजान-जन्य इस जन्म को दूर करने के उपाय-भूत महान् तपस्या करने के लिए मैं अरण्य को जाऊँगा। इसके बारे में आपलोंगों का विचार क्या है ?—यों दशरथ ने कहा।

पुष्ट कघीवाले दशरथ के यो कहने पर मन्त्रियों के मन में आनन्द उमड़ उठा, किन्तु नाथ ही, उस समय चक्रवर्ती के वियोग को सोचकर, उनकी वही दशा हुई, जो दो वछड़ों के प्रति अपने प्रेम से व्याकुल होनेवाली गाय की होती है।

दुःखी होने पर भी मन्त्रियों ने सोचा कि चक्रवर्ती के लिए उस प्रकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई हितकर कार्य नहीं है, तथा विशाल ससार में रहनेवाले प्राणियों को गम के समान प्रिय अन्य कोई नहीं है, इस प्रकार सोचकर एव भावी प्रबल होने के कारण वे (मन्त्री) उस विचार से सहमत हुए।

वेदों के अधिष्ठाता चतुमुख के पुत्र (वमिष्ठ मुनि) ने, मन्त्रियों के विचारों को, अपने पुत्र पर अधिक अनुरक्त चक्रवर्ती के मन को तथा समार के प्राणियों के हित को तटस्थित के नाथ विचार कर चे बचन कहे—

हे चक्रवर्ती ! इसके पूर्व, तुम्हारे बश में उत्पन्न प्रमिद्ध चक्रवर्तियों में किसने श्रीराम जैसा पुत्र पाया था ? तुम शास्त्रों के ज्ञाता हो, तुम्हारे लिए ऐसा कार्य उचित ही है, हे विवेकशील ! तुमने वर्म के अनुकूल ही सोचा है।

हे महाभाग ! तुमने पुण्यकारक अनेक यज्ञ किये हैं । अब तुम्हें अपूर्व तपस्या करना ही उचित है । तुम्हारा पुत्र वीर-ककणधारी (राम) प्रुद्धी का इस प्रकार शासन करेगा कि सुन्दर (समुद्र-स्पी) मेखला-भूषित भूमि तुम्हारे वियोग से नेत्रहीन न होगी ।

‘धर्म ही (राम के रूप में) अवतीर्ण हुआ है’, इसके अतिरिक्त हम और क्या कह सकते हैं ? वह विजयी (राम), सारे पटाशों की सुष्ठि कर, उनकी रक्षा कर, फिर उनका विनाश करनेवाले त्रिदेवों के व्यापारों को भी सुधारेगा ।

हे बुद्धि-वल से युक्त । सौन्दर्य से सम्पन्न श्रीदेवी और भूदेवी, दोनों जिसको अपना प्राण-समान पति मानती हैं, वह केवल उनको तथा तुमको ही प्रिय नहीं है, अपिन् वह संसार के सब प्राणियों को प्रिय है ।

हे वीर ! उस (राम) के नाम का उच्चारण करने से ही प्रतिदिन के क्लेश दूर हो जाते हैं । इस कारण से, व्राह्मण आदि तुम्हारे पुत्र को, उनके सुख्त के फलस्वरूप उत्पन्न मानते हैं । (राम के प्रति) अन्य लोगों के प्रेम के बारे में और क्या कहना है ?

महान् कीर्ति से युक्त जानकी, भूदेवी से भी उत्तम है । लक्ष्मी, सरस्वती तथा पार्वती से भी उत्तम है । रामचन्द्र उस (सीता) के नयनों से भी उत्तम है । साधारण लोग तथा पडित, पिये जानेवाले जल और अपने प्राणों से भी बढ़कर उम (राम) को चाहते हैं ।

हे चक्रवर्ती ! मानवों, देवों तथा अन्य (नागों) के एव नर्वप्राणियों के दुःखों को दूर करके उनकी रक्षा करनेवाला, राम से बढ़कर और कोई नहीं है । अतः, विचार करने पर विदित होता है कि तुम्हारे लिए यही उचित है कि राम को राज्य देकर तपस्या करने के लिए जाओ ।

वसिष्ठ के ये वचन सुनकर, दशरथ को जो आनन्द हुआ, वह रामचन्द्र के जन्म पर, शिव-धनुष के टूटने पर और परशुराम के परास्त होने पर जो आनन्द हुआ था, उनसे भी बढ़कर था ।

दशरथ ने ऐसे आनन्द के साथ नयनों में अशु भरकर महिमामय गुरु वसिष्ठ के चरणों को नमस्कार किया और कहा—हे भगवन् । आपने अच्छा कहा । आपकी कृपा में ही मैं अवतक भूमि का भार वहन कर सका । यह कार्य राम के लिए कुछ कठिन नहीं होगा ।

हे पितृतुल्य ! आपके परामर्श से मेरे कुल के राजा लोग अमन्त यश के भागी बने और अनेक यज्ञ करके दीनों प्रकार के कर्मों से सुकृ हुए मुझे भी आपकी वही कृपा प्राप्त हुई है । — यो कहकर दशरथ आनन्दित हुए ।

निष्कलक तपस्या से सपन्न मुनिवर मौन हो रहे । तब सुमत ने गव विपरो का विचार करनेवाले मत्रियों के मुख से प्रकाशित उनके हृदय के भाव को जानकर, अपने कर जोड़कर राजा से यो निवेदन किया—

‘राम राज्य प्राप्त करेंगे’, इस समाचार से आनन्दित होनेवाले हृदयों को, तपस्या करने के लिए आपके जाने का समाचार जला रहा है । अपने कुल के पूर्वजों का धर्म त्यागना भी ठीक नहीं है । अतः धर्म ने बढ़कर निष्ठुर विप्र अन्य फृष्ट नहीं ।

आलान में बौधे जानेवाले मत्तगजों की सेना से युक्त राजाओं, नगर के लोगों, मन्त्रियों तथा मुनियों के हृदय-रूपी नगाड़ों को ध्वनित करते हुए (अर्थात्, आनन्दित करते हुए) आप, नीलरत्न-सदृश देह-कातिवाले अपने (राम) को राजा बनावें, फिर परलोक के अनुकूल व्यापार सपन्न करें ।

सुमत्र के इस प्रकार कहने पर चक्रवर्ती ने कहा—तुमने ठीक कहा; पहले राम को मुकुट पहनाकर फिर अन्य कर्तव्य करना है। तुम शीघ्र जाकर लक्ष्मी-सदृश (मीता) के पति को ले आओ ।

दशरथ के मन-सदृश वह सुमत्र, पुष्पमाला-भूपित चक्रवर्ती को प्रणाम करके, पर्वत-समान सौधों से युक्त राजबीथी में, त्वरित गति से, स्वर्णमय रथ को यो चलाता हुआ गया, मानों उसने सब लोकों को प्राप्त कर लिया हो और राम के प्राप्ताद में प्रविष्ट हुआ ।

उस प्राप्ताद में रामचन्द्र, नारियों में अमृत-समान मीता के साथ सुखासीन थे और उनके एक और, उनसे पृथक् न होनेवाले लक्ष्मण भी धनुप धारण करके खड़े थे। उस मधुर दृश्य को देखकर सुमत्र के नयन तथा मन भ्रमगो के समान सन्तुष्ट हो गये ।

रामचन्द्र को देखकर सुमत्र ने हाथ जोड़कर निंवेदन किया कि है प्रभु! इस समान के स्वामी (दशरथ) ने आदेश दिया है कि एक मुख्य कार्य के लिए मैं आपको ले आऊँ। यह सुनते ही कमलनयन प्रभु (राम) कठ उठे और सजल मेघ के समान चलकर ध्वजा से भूपित उस रथ पर आस्टड हो गये ।

नगाडे मेघ-पक्ति के समान वज उठे, सुन्दरियों की कलाइयों से फिसल पड़नेवाली शख की चूड़ियाँ वज उठी, देवगण, यह विचारकर कि हमारा अभीष्ट पूर्ण होनेवाला है, आनन्द-ध्वनि कर उठे, राम के शिर पर अविशित पुष्पमालाओं पर के भ्रमर गुजार कर उठे ।

सर्वत्र वाद्य-धोप भर गया, सगीत-नाद भर गया, मन्त्रमथ के वाण भर गये, प्रत्यन्चा के धोप भर गये। (वहाँ की रमणियों के) मनोभाव-रूपी वाढ, सयम के बौध को तोड़कर उमड़ उठी और वे रमणियाँ हरिणियों के समान सर्वत्र फैल गईं ।

दीर्घस्तमों से युक्त द्वारों में कमल-पुष्प—(अर्थात्, रमणियों के सुख), कु डलों एवं खुले हुए केश-पाशों के साथ, प्रासादों के ऊपर प्रकुप्ति हो रहे थे, तथा गवान्नों में भ्रमरों, करवालों, रक्त-सिक्क भालों तथा मीनी के साथ दिखाई पड़ रहे थे ।

पूर्णचन्द्र सदृश बदनवाले, कालमेघ-महश, देवाधिदेव (राम) के पर्वत-समान (दृढ़) वक्ष पर स्थित पुष्पमालाओं में, विंव-सदृश अधरवाली सुन्दरियों के, सयम, लज्जा आदि गुणों से अनुसुत, मीन (हुल्य नयन) मधुरगान करनेवाले भ्रमरों के साथ उलझे पड़े रहे ।

(जब रामचन्द्र बीथी में जा रहे थे, तब) मेघों के साथ चन्द्र नीचे की ओर झुक आया, जिनसे पुष्प वरस पड़े, उत्पल-समान नयनों की कोरों से मुक्ताकण वरस पड़े, झुलसे पुष्पों में युक्त पुष्ट स्तन (फूलकर) हारों के मध्य समा गये, विकसित कमल-पुष्पों

से संयुत चमकते हुए बल्ल गगन से मरक पडे—(अर्थात्, राम के सीटर्य को देखकर नारियाँ सुख हुई, जिससे उमके शरीर में अनेक काम-विकार उत्पन्न हो गये । मंघ-में ‘केश’, चन्द्र-से ‘बदन’, सुक्ताकण-से ‘अश्रु’, कमल-से ‘कर’, और गगन-में ‘कटि’ का अर्थ लगाना चाहिए ।)

चर्मय कोशों को हटाकर चमकनेवाले करवालों के जैसे चन्द्र शोभायमान हो रहे थे, (अर्थात् पलकों को खोलकर नेत्र चमक रहे थे, जिनसे नारियों के बदन शोभायमान हो रहे थे) । उन चन्द्रों को ढोनेवाली और भार से लचकनेवाली लताओं में दो-दो नारिकेल लगे थे (अर्थात्, स्तन थे), जिन पर ओस की वृद्धें फैल रही थीं (अर्थात्, स्वेदकण फैल रहे थे), और जिन पर सोने के पत्र यत्र-यत्र अकित थे (अर्थात्, सोने के रंग की चित्रियाँ पड़ी थीं) ।

उधर ऐसी घटनाएँ हो रही थीं, इधर पुरुष लोग, अपनी माँ का स्मरण कर आनन्दित होनेवाले गाय के बछडों के ममान (प्रसन्न) खडे थे, यों रामचन्द्र, अपने पवित्र शीलवाले अपने भाई के माथ, सुमत्र के द्वारा चलाये जानेवाले रथ पर सवार होकर, प्रसन्न मन से बैठे हुए चक्रवर्ती के निकट जा पहुँचे ।

रामचन्द्र ने महातपस्त्री (वसिष्ठ) को नमस्कार किया, फिर चक्रवर्ती के कमल-मद्दश चरणों को प्रणाम किया । तब चक्रवर्ती ने उमडते प्रेम के माथ आँखों से आनन्दाश्रु वहाने हुए सीता के बल्लभ (राम) को राज्यलद्धी के निवास-भूत अपने बक्ष से लगा लिया ।

दशरथ ने मगल के आवासभूत अपने पुत्र का आलिंगन क्या किया, वास्तव में उन्होंने समुद्र से आवृत पृथ्वी के भार को वहन करने की (रामचन्द्र की) शक्ति को आँकना चाहा और अपने बक्ष से उन (राम) के, लद्दमी तथा पुण्यमालाओं से विभूषित बक्ष को नापकर देखा ।

फिर, दशरथ ने राम को अपने पाश्व में विठा लिया और आनन्द और उमडते प्रेम के माथ उन्हे देखकर कहा - परशुराम के महान् यश को छोटा करनेवाले उन्नत कधों से युक्त (हे राम) । तुमको पुत्र के रूप में पाने से मुझे जो सबसे उत्तम फल प्राप्त होना है, उमके सपन्न होने का एक उपाय है । वह तुमगे ही पूर्ण हो गकता है ।

हे तात । मैं बहुत थक गया हूँ अवारणीय वार्द्धक्य भी मेरे शरीर में उत्पन्न हो गया है । तुम्हें मेरी ऐसी सहायता करनी चाहिए, जिससे मैं चित्ताजनक भू-भार नामन कठोर कारागार से मुक्त होकर अनुपम निष्ठेयम् (मुक्ति) के मार्ग पर जाऊँ और उज्जीवन प्राप्त कर मैंकूँ ।

महापुरुषों का कथन है कि नत्युत्र प्राप्त करना, अपार दुख ने मुक्त होने तथा उभय लोकों में आनन्द अनुभव करने का साधन है । तम तो धर्म-न्वरूप ही हो । तुम्हे पुत्र के रूप में पाकर भी मैं चिन्तित रहूँ, यह उचित नहीं । अन, मेरे प्रति नमान एक कर्तव्य है, उमे सुनो ।

१. विजिष्टाद्वैत के अनुसार ‘उज्जीवन’ मुक्त अत्मा की स्थिति वो रहते ।

हे पुत्र ! हमारे कुल के राजा लोग बुढ़ापा आंने पर राज्य-भार अपने पुत्रों को मौप देने थे और पचेंट्रियों के कारण उत्पन्न तीन शत्रुओं (अर्थात् , काम, क्रोध और मोह) को समल मिटाकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते थे ।

मैंने पूर्वजन्म के पुण्यो एव इस जन्म के यज्ञ आदि मत्कायों के फल से तुमको प्राप्त किया है । यदि अब भी मैं इस शामन की चिंता में निमग्न रहूँ, तो तुम्हें प्राप्त करने का फल पूर्ण कैसे होगा ?

यह राज्य-भार मेरे लिए अत्यत दुःखदायक हो गया है और मैं उस वृप्ति के समान पीड़ित हो रहा हूँ, जो एक ओर लँगड़ा रहा हो और दूसरी ओर वड़ा भार ढो रहा हो । मैं चाहता हूँ कि ऐसे भार से मुक्त होकर मोक्ष-साम्राज्य का अनुभव करूँ । हे तात ! मेरी इस इच्छा को पूर्ण करो ।

पूर्वकाल में (हमारे कुल के) एक पुरुष ने, अपने प्रपितामहों को सद्गति प्राप्त करने के उपाय में रहित देखकर, हमारे कुलनायक (अर्थात् , भगवान् नारायण) के चरण-कमल से उत्पन्न होनेवाली गगा नदी को लाकर अपने प्रपितामहों को अपुनरावृत्ति^१ से युक्त (मोक्ष) लोक में पहुँचा दिया था ।

अवार्य दुःख से मुक्ति पानेवाले इस पृथ्वी के राजा लोग नहीं हैं, देवलोग नहीं हैं, उन देवों के राजा स्वर्णमय वीर-वलय-धारी इन्द्र भी नहीं हैं, महान् तपस्वी भी नहीं हैं, किंतु वे ही लोग (दुःख से मुक्त होनेवाले) हैं, जिन्होंने आज्ञा का उल्लंघन न करनेवाले पुत्र को प्राप्त किया है ।

यही धर्म है । अतः, तुम यह विचार न करना कि राजा ने अपार दुःख के कारणभूत राज्य-भार को कपट से मुक्त पर डाल दिया । गरिमामय किरीट को धारण करके गजघर्ष का पालन करो, मैं तुम से यही चाहता हूँ ।

पिता के इस प्रकार कहने पर पुड़रीकान्न (राम) राज्य पर आमक्त नहीं हुए । ‘भूमि का भार बहन करना अपना कर्त्तव्य है’—यह भी वे जानते थे । फिर भी, आसक्त औंग विरक्ति दोनों से रहित होकर उन्होंने केवल यही विचार किया कि चक्रवर्तीं सोच-विचारकर जो आज्ञा देते हैं, उसे पूर्ण करना ही हमारा कर्त्तव्य है और वे अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहे ।

विजयसूक्त श्वेतच्छवि से शोभित चक्रवर्ती ने राम के हृदगत विचार को जान लिया और यह कहते हुए कि (हे राम) ‘मुझे यह बर दो’, राम को अपने प्राणों के साथ लगाकर उनका आर्लिंगन कर लिया । फिर, वे वेद-सद्वश मत्रियों से घिरे हुए मेरु-जैसे उन्नत अपने प्रामाण में जा पहुँचे ।

सुन्दर कधींवाले कुमार भी, उत्तम व्रात्यणों, राजाओं और नगर के प्रिय नर-नारियों से अनुसृत होते हुए, जाकर सुमत्र के रथ पर आसीन हुए और अपने विशाल मौघ में पहुँच गये ।

फिर चक्रवर्ती ने, स्वर्णमय पत्रों पर गस्त का चिह्न अकित करके, सब राजाओं

^१. अपुनरावृत्ति—जहाँ से लौटकर जीव फिर जन्म नहीं लेता है ।

को यह पत्री भेजी कि (राम के राज्याभिपेक के लिए) सब लोग आवे और बमिष्ट में कहा—हे भगवन् ! मनोहर वर्णयुक्त किरीट को राम के शिर पर रखने के लिए (अर्थात्, राज्यतिलक-उत्सव के लिए) आवश्यक प्रवध करने की कृपा करें ।

महान् तपस्त्री वसिष्ठ राजा का कथन सुनकर प्रसन्न हुए और शीघ्र एक रथ पर सवार होकर ब्राह्मण-समुदाय के साथ चले । दशरथ ने (उत्सव के लिए आगत) राजाओं को देखकर कहा—हे राजाओं ! सुनो, हमारे कुल-धर्म के अनुमार राम को राज्य की सपत्ति सौंप देना मेरे लिए बहुत आनन्द का विषय है ।

चक्रवर्ती के बचन-रूपी अमृत का पान करके सभी राजा आनन्द-मागर में झावने-उत्तराने लगे और एक दशा में नहीं रह पाये । उनके मन का आनन्द उनके गोम-गोम से प्रकट होने लगा । वे ऐसे हो गये, मानो सशरीर स्वर्ग में पहुँच गये हों ।

उन सबका चित्तन एक जैसा था । उन्हे ऐसा आनन्द हुआ, मानो राज्य उन्हीं को मिला हो । आनन्दित चित्त के साथ वे पक्षियों में आकर मुक्तामय श्वेतच्छ्रव को धारण करनेवाले चक्रवर्ती के चरणों पर नत हुए और हार्दिक प्रेम के साथ निवेदन किया कि हे प्रभो ! आपका विचार बहुत उत्तम है ।

यह उचित ही है कि जिस वीर ने इक्कीस बार क्षत्रियों के वश का नाश किया था, उसके पराक्रम को भी मिटानेवाले महावीर इस पृथ्वी का शासन-भार वहन करे ।

सब राजा लोगों ने इसके अनुकूल ही बचन कहे । उन बचनों को सुनकर चक्रवर्ती का मन आनन्द से भर गया । फिर, चक्रवर्ती ने अपनी प्रसन्नता को मन में ही दबाकर उन (राजाओं) के मनोभाव को दृढ़ रूप से जानने के लिए यह प्रश्न किया ।

हे नरेशो ! मैंने अपने पुत्र के प्रति प्रेम के कारण मुग्ध होकर यह बचन कहा, किंतु तुमने जो कहा है, वह क्या मेरे मन को प्रसन्न रखने के लिए ही कहा है या यथार्थ विचार से कहा है ? तुम लोगों ने किस कारण से राम को राज्य देना उचित समझा ?

जब चक्रवर्ती ने ऐसा प्रश्न किया, तब सभासदों ने राजा से कहा—हे राजन् ! आपके सद्गुण पुत्र के प्रति विविध देशों के लोग जो अपार प्रेम रखते हैं, उमके बारे में सुनिए ।

हे मनुवश के प्रभो ! दानशीलता, धर्मशीलता, सच्चित्रता, उत्तम ज्ञान, महात्माओं की सगति करने की सदिच्छा आदि सब सद्गुण आपके पुत्र में स्थिर स्वप्न से निवास करते हैं । मानों वे यह कह रहे हैं कि उसे (अर्थात्, आपके पुत्र को) अक्षय राज्य-पत्ति प्राप्त होगी ।

जब गाँव का जलाशय भर रहा हो गाँव के मध्य स्थित फल-वृक्ष फलिन हा रहे हो, मेघ वर्षा कर रहे हो, खेतों में नदी का जल वह रहा हो, तो उनको रोकने वी इन्द्रा कौन करेगा ?

तालवृक्ष के समान दीर्घ भुडोवाले हाथियों की गंना में युक्त (राजन) । आपके प्रति बहुत प्रेम रखनेवाली प्रजा से रामचन्द्र जितना प्रेम रखते हैं, उतना ही प्रेम, वह प्रजा भी राम के प्रति रखती है—इस प्रकार सभासदों ने कहा ।

सभासदों के यह कहने पर चक्रवर्ती के मन में आनन्द उमट पड़ा और नम रे-

प्रति उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। उन (चक्रवर्ती) के मन से सब चिंताएँ दूर हो गई और वे नृति से भर गये। उनके नयनों से (आनन्द के) अश्रु बहने लगे। फिर, सभानटों को देखकर चक्रवर्ती ने कहा—

निष्पक्षता, धर्मनिष्ठा, मच्चारित्य, दुष्कार्यों के प्रति धृणा इत्यादि सद्गुणों से भूषित है सभानट नरेशों। यह (राम) मेरा ही पुत्र नहीं, अपने आचारण से यह तुम मवके पुत्र के समान है। इसे अपनाकर तुम सब इसका हित करते रहो।

फिर, भभा को विसर्जित करके चक्रवर्ती (राम के राजतिलक के लिए) एक शुभ सुहृत्त निश्चित करने के विचार से ज्यौतिष-शास्त्र के पडितों को साथ लेकर एक पर्वत-मद्वा उन्नत मडप में जा पहुँचे।

उम समघ (राम के गज्य तिलक के) नमाचार को सुनकर चार दासियाँ, वही उमग से (कौशल्या के आवास की ओर) ढोड़ पड़ीं, तो उनके स्तनों के बधन खुल गये, केश-पाण विखर गये, वस्त्र खिसक गये, किन्तु उनकी सद्म कटियाँ किसी प्रकार नहीं टूटी।

वे चारों सुन्दरियाँ नाच उठीं। अपनी पूर्व-दशा को भूलकर गाने लगीं। जिस किसी को देखती थीं, उसको हाथ जोड़कर नमस्कार करती। इसका ध्यान उन्हें नहीं रहा कि वे क्या कह रही हैं। यों वे (कौशल्या के) प्रामाण के निकट जा पहुँचीं।

घनश्याम की जननी कौशल्या ने, अपने पास आई हुई उन दासियों को प्रेम से देखा और पूछा—हे विवफल-समान ओठेवाली रमणियाँ। तुमको देखने से विदित होता है कि तुम कोई शुभ समाचार लाई हो। शीघ्र कहो, वह क्या है।

तब दासियों ने निवेदन किया कि चक्रवर्ती तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को, यह कहकर कि 'नरेशों द्वाग तुम्हारे वीर-चलय-भूषित चरणों के वन्दित होते हुए तुम चिरकाल तक पृथ्वी का शासन करो'—अपने प्राचीन मुकुट को उन्हें पहनानेवाले हैं।

इस समाचार के सुनते ही कौशल्या के मन में 'राम को गज्य-सुपत्ति मिलनेवाली है।' इस विचार से जो व्यानन्द का सागर उमड़ा था, उसे, 'चक्रवर्ती राज्य त्याग कर (अग्न्य में) जानेवाले हैं।' इस विचार-रूपी वङ्गवानि ने सुखा दिया।

फिर भी, कौशल्या ने उन लियों को अपूर्व रत्नहार और धन दिये और अपने प्रेम के पात्र-भूत सुमित्रा को साथ लेकर चक्रधारी (भगवान् रगनाथ) के मदिर में जा पहुँची।

मदिर में पहुँचकर लक्ष्मी और भूदेवी-सहित उस भगवान् के, जो सब देवों के प्राण हैं जान हैं तथा (सब के) आदि कारण हैं, चरण-कमलों को प्रणाम किया।

सब लोकों को अपने उठर में अन्तर्भृत करनेवाले नारायण को अपने गर्भ में रखनेवाली उत्तम तपस्यामयी (कौशल्या) ने भगवान् से प्रार्थना की कि तुमने मुझे जो पुत्र दिया है उसपर अनुग्रह करना भी तुम्हारा ही कर्त्तव्य है।

यों प्रार्थना करके चारों ओंदों में प्रतिपादित विवान से उस नारायण की विशेष पूजा करके, उन्होंने (कौशल्या ने) उत्तम तपस्या से सम्पन्न लोगों को वत्स-युक्त धेनुएँ दान की।

उन्होंने व्राह्मणों को स्वर्ण, उत्तम रत्न, चट्ठन-रम, भूमि, कन्याएँ इत्यादि सब प्रभार की वस्तुएँ दान की। उन्हें अन्न और उत्तम वस्त्र भी दान किये।

इस प्रकार दान करके, भगवान् रगनाथ के मद्य-प्रमृत कमल-जैमं चरणों को नमस्कार करके, (भगवान् की) प्रार्थना करके तथा मंदिर की परिक्रमा करके कौशलया अपने दोषहीन संपत्ति में भरे प्रासाद में आई और व्रत आठि अनुष्ठान करने लगी ।

(१—६८)

अध्याय ३

मंथरा-षड्यंत्र पटल

उधर सुगन्धित पुष्पमालाधारी चक्रवर्ती ने गणितज्ञों (मुहुर्त का विचार करनेवाले) को देखकर, उनकी स्मृति करके फिर कहा, तीव्रण परशुधारी (परशुराम) को परास्त करनेवाले राम को मुकुट पहनाने के लिए सुयोग्य शुभ दिन वतलाइए ।

ज्यौतिष के सब विद्वानों ने उत्तर दिया, आपके पुत्र के लिए योग्य दिन कल ही है । यह आनन्ददायक वचन सुनकर वीर-वलय से भूषित, मत्तगज-सहश चक्रवर्ती ने आज्ञा दी कि निष्कलक तपस्यावान् तथा अमृत-समान उत्तम वसिष्ठ को ले आओ । मुनिवर आ पहुँचे ।

दशरथ ने उन मुनिवरों से कर जोड़कर निवेदन किया, शुभ मुहुर्त कल ही है, अतः कोटण्डधारी राम से आज ही आवश्यक व्रत करावें तथा उसे हितकारी उपदेश भी दे ।

मुनिवर भी अपनी उमग के माथ होड़ करते हुए आगे बढ़ चले और मनु-कुल के प्रभु (राम) के प्रासाद में जा पहुँचे । मुनिवर का आगमन सुनकर पुष्पमाला-भूषित (राम) उनके सम्मुख आये और उनकी अपने भवन के भीतर ले गये ।

अशिथिल तपोव्रत से सम्पन्न मुनिवर ने शास्त्रों के नाता उम उदाग पुरुष (राम) से कहा—हे युद्धचतुर ! तुम पर अपार प्रेम रखनेवाले चक्रवर्ती तुम को कल ही गज्य देना चाहते हैं ।

यह कहकर वे फिर राम की ओर देखकर बोले—मुझे कुछ हितकारी वचन तुमसे कहने हैं । उन वचनों को सावधान होकर सुनो और उन पर दृढ़ रहो, किर घनी मालाओं ने भूषित राम से कहने लगे ।

वेदज्ञ लोग, श्यामर्वण विष्णु, ललाटनंत्र (शिव), कमलभव (ब्रह्म). उत्तम पच्छूतों तथा सत्य से भी श्रेष्ठ होते हैं, अतः तुम मच्चे हृदय से उनका आदर करना ।

हे वत्स ! देवताओं में ऐसे लोगों की गिनती नहीं है, जो वेदज्ञों के क्रांध से पतन को प्राप्त हुए और जिन्होंने उनकी वृपा से शीघ्र उद्धार प्राप्त किया ।

हे वत्स ! वेदज्ञ ऐसे होते हैं; अतः कठोर पापों ने रहित इन नायणों के चरणों को अपने मुकुट पर धारण किये हुए उनकी स्मृति करा और उनके वतांये धर्म के मानं पर स्थिर रहो ।

विवि भी उन ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुमार बनने और विगड़ने को सन्नद्ध रहती है। अतः, इहलोक और परलोक में देव-समान वेटज विप्रों की प्रस्तुति करने के जैसा उत्तम कार्य और कोई नहीं है।

वर्तुलाकार चक्रायुध, उत्त्वल परशु तथा भ्राति-रहित वाणों को शस्त्र के स्वरूप में धारण करनेवाले त्रिमूर्ति भी यदि मद्वर्धम को, मन की स्वच्छता को तथा दया को छोड़ दें, तो इससे उनका कुछ हित नहीं हो सकता।

स्वभाव से ही न्याय पर दृढ़ रहनेवाले (हे कुमार)। जूँझा आदि प्रसिद्ध दुर्व्यमन तुम्हारे नहीं हैं, फिर भी यह जान लो कि वे दुर्व्यमन मन दोपो की प्राप्ति के हेतु बनते हैं।

यदि हमारे मन में किसी के प्रति विरोध भाव नहीं रहे, तो युद्ध भी शान्त हो जायेंगे (अर्थात्, दुष्ट नहीं होंगे), इस प्रकार (युद्ध नहीं करने से) यश की भी हानि नहीं होती, सेना की क्षति भी नहीं होती। जब इस प्रकार हित होना सभव हो, तब शत्रु के ममल नाश की कामना करने की आवश्यकता ही नहीं रह जायगी।

विषयों में प्रवृत्त होनेवाली पचेंट्रियों को शान्त करके, सपत्ति को बढ़ाकर, निष्पक्षता तथा मन की दृष्टि के साथ किया जानेवाला शासन ही सच्चा शासन है। हे वत्स ! वैसा शासन, तलवार की धार पर खड़े रहकर की जानेवाली तपस्या के सदृश होता है।

भले ही कोई शासक उमापति (शिव) की, गरुड़वाहन (विष्णु) की ओर अनिमेप आठ आँखोवाले (ब्रह्मा) की सुजाओं की शक्ति से युक्त हो, तथापि उसके लिए भी मत्रियों के परामर्श के अनुमार कार्य करना ही हितकारक होता है।

अस्थि-चर्मसय शरीरवाले मनुष्यों तथा वैसे शरीर से रहित अन्य लोगों (अर्थात् देवों) को भी, अपने बलवान् शत्रु पचेंट्रियों का दमन करने से क्या फल मिल सकता है ? तीनों अनादि लोकों में प्रेम से दृढ़कर अन्य कोई फलदायक गुण नहीं है।

राज्य के प्राण हैं प्रजा, उन प्राणों की रक्षा करनेवाला शरीर है राजा। यदि वह राजा वर्म के अनुकूल रहकर मच्छी करणा पर निश्चित स्प से दृढ़ खड़ा रहे, तो उसके लिए अन्य यज्ञ करने की आवश्यकता ही क्या है ?

यदि राजा मतुरभाषी हो, दाता हो, विवेकवान् हो, कर्मनिरत हो, पवित्र हो, कृजु हो, विजयी हो, न्यायपरायण हो सन्मार्ग से पृथक् न होनेवाला हो, तो उस (राजा) का कभी नाश नहीं होगा।

जो राजा, सदाचार के विरोधी कार्यों से दूर रहकर, सोने को तौलनेवाली तुला के समान निष्पक्ष भाव से रहता है, उसके लिए वच्छे स्वभाववाले मत्रियों के द्वारा परीक्षा करके, कार्यविशेष के लिए, निर्धारित समय के अतिरिक्त अन्य कोई देव नहीं है।

(कभी) परिवर्त्तित न होनेवाली नियति भी, आलोचना से परे सत्कार्यवाले मुनियों की वाणी के अनुमार चलती है, यह जानकर उन (मुनियों) पर दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिए। उससे उन (मुनियों का) प्रेम (श्रद्धा रखनेवालों की रक्षा के लिए) शस्त्र का काम देगा।

पृथ्वी पर धूमकेतु के जैसे उत्पन्न, मेखलाधारिणी, रमणियों की कामव्याधि नहीं हों, तो (किसी को) कोई बड़ी विपदा उत्पन्न नहीं होगी। नरक की यातना भी उत्पन्न नहीं होगी।

तत्त्वज्ञ मुनिवर (वसिष्ठ), सब लोकों को अपने उठर में समानेवाले (विष्णु के अवतार राम) को इस प्रकार के नीतिवोधक मधुर वचन कहकर, उनके जान को बढ़ाकर, उन (राम) के साथ सहस्र शिरवाले^१ भगवान् (विष्णु) के मंदिर में गये।

वसिष्ठ (राम को साथ लेकर) सर्पशब्दा पर शयन करनेवाले भगवान् (रगनाथ) के सम्मुख जा पहुँचे। उनकी पूजा की और चतुर्वेदी के मत्रों से अभिमत्रित पुण्य-जल से राम को स्नान कराया। फिर, राजाओं के लिए उच्चित, विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित, सब आचार संपन्न किये और श्वेत दर्भां के आसन पर (राम को) आसीन कराया।

जब रामचन्द्र इस प्रकार आसीन हुए, तब यज्ञोपवीत से अलकृत वक्षवाले (वसिष्ठ) ने शीघ्र जाकर प्रतापी राजा को (राम के ब्रत आदि संपन्न करने का) समाचार दिया। चक्रवर्तीं ने नगर को अलंकृत करने की आज्ञा दी।

‘वल्लुवर’ (दिंदोरा पीटकर राजाज्ञा की घोषणा देनेवाली एक जाति) लोगों ने नगर की बीथियों में धूमते हुए दिंदोरा पीट-पीटकर घोषणा की कि गमचन्द्र कल ही राजसुकुट धारण करनेवाले हैं। अतः, इस सुन्दर नगर को अलकृत कीजिए। इस घोषणा से देवता भी आनन्दित हो उठे।

‘काव्यों में प्रतिपादित यशवाले राम, कल ही गत्तमय राजकिरीट धारण करनेवाले हैं’—यह सूचना लोगों के कानों को आनन्द देनेवाली थी। इतना ही नहीं, यह (वचन) सब लोगों के लिए देवों के आहारभूत हविर्भाग तथा अमृत के समान तृसिकारक था।

नगर के लोग कोलाहल कर उठे। आनन्द में नाचने गाने लगे। उनके शरीर स्वद से भर गये। वे फूल उठे। उनकी देह पुलक से भर गई। वे चक्रवर्तीं की सुति करने लगे। जो भी यह शुभ समाचार देता था, उसे वे अपार द्रव्य देते थे।

प्रेम से भरे उम नगर के लोगों ने उम सुन्दर नगर का इस प्रकार अलकरण किया, जैसे पुजीभूत किरणोवाले सूर्य को ही सँबार रहे हों या शेषनाग पर सोनेवाले विष्णु के विशाल वक्ष पर स्थित कौस्तुभ मणि को सान पर रखकर उसे चमका रहे हों।

श्वेत, काले, रक्तवर्ण तथा अन्य रंगवाली ध्वजाओं की पंक्तियाँ ऐसी लगती थीं, मानों मधुस्थावी पुण्य-मालाओं से युक्त राम के वैभव को देखने के लिए सब प्रकार के विहग उम सुन्दर नगर में आ पहुँचे हों।

उस नगर में युवतियों की जाँधां के जैसे कदली-वृक्ष लगाये गये। उन (युवतियों) की ग्रीवाओं के जैसे कमुक-वृक्ष लगाये गये। उनके दाँतों की जंगी मुक्ता-पक्षियाँ सजाई गईं तथा उनके स्तनों के जैसे कनक-कलश श्रेणियों में रखे गये।

^१ वेदों में प्रतिपादित ‘सहस्रर्षीष्म पुण्यं सहस्राच्च नन्दपात्’ वाक्य के नन्दनार ही वार्ता विष्णु जो सहस्र शिरोवाला कहा गया है।

गोपुरो के द्वारो में चंद्र को छूनेवाले अत्यन्त तथा नूतन तोरण बौधे गये। उनसे ऐसी काति विखर रही थी, जैसे प्रभातकालीन बाल-सूर्य पहले से भी अधिक कांति से युक्त हो गया हो।

उत्तम माणिक्यमय स्तम श्वेत वस्त्रो से आवृत होकर ऐसे लगते थे, जैसे पार्वती देवी को अद्वैत में रखे हुए विभूति रमाये हुए शिव भगवान् हो। प्रवालमय स्तम (श्वेत-वस्त्रो से आवृत होकर) हिमावृत सूर्य के समान लगते थे।

उम नगर की वीथियाँ, मुक्तायां से चट्टिका के फैलने से, घनी रक्त-पंक्तियों से सूर्यातप के फैलने में, नील रत्नों के किरण-पूजों से, अधकार के फैलने से, ज्यौतिष शास्त्रज्ञों के द्वारा प्रकटित दिन के समान लगती थी। (भाव यह है कि मानो ज्योतिषियाँ ने दिन के विविध स्पो को एक साथ उन वीथियों में प्रकट किया था।)

नाचनेवाले घोड़ों से युक्त रथ-समुदाय, पृथ्वी को देखने के लिए स्वर्ग से उतरे हुए देव-विमानों के जैसे लगते थे। मुख-पट्टों से भूषित विशाल मत्तगज सूर्य के साथ सचरण करनेवाले उद्याचल (पर्वत)-से लगते थे।

वैभव-पूर्ण उस नगर की स्फटिक शिलामय ऊँची दीवारों में जटित पद्मराग रक्त-श्रेणियाँ अपने प्रकाश से अधकार को मिटा रही थीं। अतः, चक्रवाक के जोडे कभी वियुक्त न होकर शान्तचित्त रहते थे।

मोर्धों से भरी वीथियों में पुष्पों की वर्षा, जल की वर्षा, नवीन सुगंध-चूर्णों की वर्षा, उज्ज्वल मुक्तायों की वर्षा, आभरणों के रगड़ खाने से उत्पन्न स्वर्ण-धूलि की वर्षा—ये सब वर्षाएँ मेघ की वर्षा के समान हो रही थीं।

मेघ जैसे मटस्सावी गज, कवच से आवृत तथा वीर-बलयधारी योद्धाओं के समान जा रहे थे। किंकिणी-भूषित करिणियाँ, लटकती मेखलाओवाली निरववती रमणियों के समान जा रही थीं।

उत्तरोत्तर वढ़नेवाला ऐश्वर्य, सौन्दर्य तथा सुख की उस नगरी में कुछ कमी नहीं थी। राम के राज्याभिषेक को देखने के लिए उस नगर में आये हुए देवलोग, इस भौति से कि अभी हम स्वर्ग में ही हैं, अयोध्या में नहीं पहुँचे हैं, सोच में पड़ जाते थे।

देवलोक के समान शोभायमान उस नगर का शृङ्गार होने का वह कोलाहल सुन-कर कूरकर्मा रावण के पापों के समान स्थित तथा अन्य दुर्लभ कठोरता से युक्त मनवाली मथरा वहाँ प्रकट हुई।

उस मथरा का मन तड़प उठा। उसमें क्रोध उमड़ पड़ा। उसमें पीडा उत्पन्न हुई। उसकी आँखों से अम्बि वरसने लगी। वह अव्यवस्थित रूप से कुछ वड़बड़ाती हुई, त्रिमुखन को कुछ दुःख देने के लिए आगे बढ़ी।

पूर्वकाल में राम ने मिट्टी के ढेलों को अपने हाथ के धनुष पर रखकर उस (मथरा) के कूवड़ पर मारा था, इस घटना को उसने स्मरण किया। क्रोध से वह अपने ओठ चवाने लगी और विव-समान अधरवाली कैकेयी के प्रासाद में गई।

चारों समुद्रों के रत्नों से युक्त होकर कमलों से पूर्ण एक अनुपम ज्वीर-सागर की

लहर पर कोई प्रवाल लता फैली हो—इसी प्रकार कैकेयी, अपनी आँखों के कोंगे में करुणा की वर्षा करती हुई एक उज्ज्वल पर्यंत पर शयन कर रही थी। उसके निकट मथरा शीघ्र जा पहुँची।

उसने उत्पात की सूचना देनेवाले किसी दुष्ट ग्रह के समान वहाँ पहुँचकर कैकेयी के उन स्वर्ण आभरण-भूषित छोटे पैरों को अपने हाथों से छुआ, जो पैर दलों से विकसित होनेवाले कमल पुष्पों की तपस्या के फल से उन (कमलों) के योग्य उपमान बनकर उत्पन्न हुए थे।

मथरा ने (जब उसके पैर) छुए, तब कैकेयी जग पड़ी, फिर भी इच्छा प्राप्तिवल से युक्त उस देवी के दीर्घ नेत्रों से निद्रा पूर्ण रूप से हटी नहीं। तब मथरा घोर निंदा-जनक पाप की प्रेरणा पाकर ये गढ़ी हुई बातें कहने लगी—

दुःखदायक करबाल-सदृश मथरा के बचन सुनकर भाले जैस नयनवाली कैकेयी ने कहा— तक जिस प्रकार शीतल तथा रजत वर्ण चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल किरण फेकता रहता है, उसी प्रकार तुम भी, जवतक तुम्हे बहुत बड़ी विपदा प्राप्त न हो, तवतक उस (विपदा) की चिन्ता नहीं करती हुई सुख से मोती रहती हो।

क्रूर विष-सदृश मथरा के बचन सुनकर भाले जैस नयनवाली कैकेयी ने कहा— शत्रुओं को परास्त करनेवाले धनुषों को धारण करनेवाले मेरे पुत्र सुखी हैं। वे अपने काया में कभी धर्म से विमुख नहीं होते। फिर मुझे कौन-सी विपदा हो सकती है?

यशस्वी पुत्र को प्राप्त करने से कोई भी (व्यक्ति) दुःखमुक्त होकर सुखी हो जाता है। पचभूतों के मिश्रण से उत्पन्न पृथक्षी पर, वेट-स्वरूप होकर जो राम अवतीर्ण हुआ है, उसे (पुत्र के रूप में) प्राप्त करने से अब मुझे कोई विपदा प्राप्त नहीं होगी।

अस्तिधिक प्रेम के समुद्र में द्वीपी हुई कैकेयी ने ज्योही ये बचन कह, त्योही पाप-समान उस वक्र मथरा ने कहा—तुम्हारा हित नष्ट हो गया। तुम्हारा वैभव भी मिट गया। कौशल्या अपनी बुद्धि के बल से (ऐश्वर्य-युक्त जीवन) जीती है।

उसके यह कहने पर, उत्तम आभरणधारिणी कैकेयी ने कहा—राजाधिराज मेरे पति हैं, अवर्णनीय यशवाला भरत मेंग पुत्र है, इससे बढ़कर इस पृथक्षी पर वह (कौशल्या) देवी और क्या पा सकेंगी?

तब मथरा ने कहा—वीरों के द्वाग उपहसित होते हुए और पौन्तप को कुठित करते हुए जिस (राम) ने ताड़का नामक स्त्री को मारने के लिए अपना धनुष भुकाया था, वह कल राज-मुकुट धारण करनेवाला है, यही उसका (अर्थात्, कौशल्या का) आनन्द-मय जीवन है।

मथरा का यह प्रतिवचन सुनते ही, कैकेयी का मन, जो गरिमामय कौशल्या के मन के समान ही था, विरोध भाव से नहीं, किन्तु आनन्द से भर गया। उसका कारण कटाचित् यही है कि राम के पिता उसके मन में निवास करते थे।

उस निष्कलक (कैकेयी) देवी का प्रेम-रूपी नमुद्र उमठ उठा। उसका भक्तीय चन्द्र-चैता सुख और भी प्रकाशमान हुआ। उसका आनन्द बैला को पारचर वड़ गया।

उमने तीन ज्यांतियों (सूर्य, चन्द्र और अग्नि) के जैसे (अति उज्ज्वल) रलहार उसे भेट किया ।

वह निष्ठुर और क्रूर (मथरा) चिल्लाई । धमकी देने लगी । उसने अपनी छोटी आँखों से आग उगलते हुए उमकी ओर देखा । कैकेयी की निंदा की । उष्ण निःश्वास भरा । गेंड । अपने त्वप को विकृत किया और (कैकेयी के द्वारा दिये गये) उस स्वर्णमय रलहार से धरती को गड्ढा बना दिया (अर्थात्, उस हार को धरती पर फेंक दिया ।)

पीड़ा उत्पन्न करनेवाली उम कूवरी ने क्रोध से घूरकर कहा—तुम मदबुद्धि हो । भेट-भाव न होने ने दुम अपने पुत्र-समेत बड़ा दुःख पायेगी । किन्तु, मैं दीर्घकाल तक तुम्हारी सोत (कौशल्या) की सेवा करना सहन नहीं कर सकूँगी ।

अरुण अधरवाली भीता और नीलवर्ण राम सिंहासन पर आसीन रहे और तुम्हारा पुत्र वरती पर खड़ा रहे—जब ऐसी दशा उत्पन्न हुई है, तब इससे तुम कैसे आनन्दित होती हो ? तुमने अपने मन में कैसी दृढ़ता पाई है ?

कौशल्या अपना हित भूली नहीं । अतः, उसका पुत्र राज्य-सपत्नि पाकर उन्नति प्राप्त करेगा, भरत ऐश्वर्य से वचित होगा, वह (भरत) न मरा, न जीवित ही रहा ; वह किस प्रकार से अपना दुःख दूर कर सकेगा ? तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लेने से उसका जीवन व्यर्थ हो गया ।

यदि इस सारी पृथ्वी का शासन यह वरद (राम) ही अपने भाई (लक्ष्मण) के नाथ अनन्त काल तक करता रहे, तो भरत और उसके भाई शत्रुघ्न को देश से दूर रहकर (अरण्य में) व्रतयुक्त तपस्या करने के लिए भेज देना ही उचित होगा ।

मत्तगजों की सेना से युक्त, भृदेवी के प्यारे, सुन्दर तथा वजाये जानेवाले नगाड़ों से युक्त रहकर वरती का राज्य करनेवाले राजाओं की श्रेणी में भरत उत्पन्न नहीं हुआ है ।

स्वर्णबीर-ककणधारी चक्रवर्ती ने उम दिन क्या अभागे भरत को शालवृक्षों से आघृत ऊँचे पर्वतों से युक्त दूरस्थ (कैकय) देश में सत्त्वर भेज दिया, इसका कारण मुझे अब ज्ञात हो रहा है ।

मथरा आगे और भी कुछ बच्चना-पूर्ण उक्कियाँ कहती हुई भरत के प्रति बोली—तुम्हारे प्रति भेटभाव रखकर (गम को) राज्य देनेवाले तुम्हारे पिता निष्ठुर हैं । (यह ममाचार सुनकर हर्ष करनेवाली) तुम्हारी माता भी निष्ठुर है । हे मेरे तात । भरत, अब तुम क्या करनेवाले हो ?

फिर उसने कैकेयी के प्रति कहा—तुम गजकुल में उत्पन्न हुई । राजवश में ही वही ओर राजकुल की बधू बनी । यो राजमहिपी वनी हुई तुम बड़ी विपदा-रूपी समुद्र में गिरनेवाली हो, मेरी बात भी तुम नहीं सुनती हो । क्या तुम्हें कुछ ज्ञान भी है ?

विद्या, वौवन, अपार पग्नम, वनुर्विद्या की चातुरी, सीद्धर्य, वीरता इत्यादि अनेक गुण भरत में स्थित हैं, किन्तु आज वे सब धाम-भरी धरती पर गिरी मधु की वृँद जैसे हो गये हैं ।

मथरा ने मृह कड़वा करके जो बातं कही, उनसे कैकेयी का क्रोध ऐसे बढ़ गया,

जैसे जलती आग में धी पड़ा हो। उसकी रेखाओं से युक्त आँखें अधिक लाल हाँ गईं। मंथरा को देखकर उसने कहा —

आतपयुक्त सूर्य प्रभृति महान् पुरुष, प्राण जाने पर भी न्याय-मार्ग को नहीं छोड़ते। हे ज्ञुद्र स्वभाववाली ! मेरे कैकयवंश तथा (वैवस्वत) मनु के वंश को कलंकित करनेवाली कैसी ज्ञुद्र वात तूने कही ?

तू मेरा हित करनेवाली नहीं है। मेरे सुत भरत का भी हित करनेवाली नहीं है। धर्म का विचार करने पर (ज्ञात होता है कि) तू अपना भी हित करनेवाली नहीं है। हे विवेकहीन ! पूर्वजन्म के पाप-सस्कार के कारण तू ने (अपने) मन को अच्छी लगनेवाली वातें कही हैं।

जन्म और मृत्यु के कारण जो वस्तु प्राप्त होती है या खोती है, वह एकमात्र यश ही है। अतः, शरीर चाहे गिर जाय, न्याय अपने विश्व हो जाय, सन्मार्ग का रूप अपने प्रतिकूल हो जाय, तपस्या का रूप विश्व हो जाय तथा निष्कलंक पराक्रम भी विश्व हो जाय, तो भी अपने कुल-धर्म को छोड़ना उचित नहीं है।

तू मेरे सामने से हट जा। ज्ञुद्र वचन कहनेवाली तेरी जीभ को मैंने काट नहीं लिया, पर तेरे इस अपराध को सह लिया, मेरे अतिरिक्त और कोई इस वात को सुन ले, तो तू अन्याय तथा अर्धम करने के अपराध का पात्र बन जायगी। अतः, हे बुद्धिहीन ! चुप रह।

जिस प्रकार विष का उपचार करने पर भी वह विष न मिटकर पीड़ा ही उत्पन्न करे, उसी प्रकार मथरा (कैकेयी के) वह वचन सुनकर भी भयभीत होकर हटी नहीं। किन्तु, यह कहती हुई कि हे मेरे अबलंब, मैं तुम्हे हितकारी वचन कहे विना नहीं हटूँगी, उसके चरणों पर गिरकर फिर कहने लगी—

तुमने कहा—ज्येष्ठ के रहते हुए कनिष्ठ को राज्याधिकार नहीं होता। इस न्याय के अनुसार चक्रवर्ती के रहते हुए समुद्रवर्ण (राम) का राज्य पर कोई अधिकार नहीं है। जब चक्रवर्ती राम को राजमुकुट देने के लिए सन्नद्ध हुए हैं, तब वह सम्पत्ति भगत के लिए क्यों अप्राप्य हो सकती है ?

वैराग्यपूर्ण, करुणायुक्त तथा अपूर्व तपस्या से सम्पन्न मुनि भी क्यों न हों, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्त करने पर उनका विचार भी बदल जाता है। अतः, भले ही अवतक तुम्हारा कुछ अहित (कौशल्या और राम ने) नहीं किया हो, तथापि (सम्पत्ति पाने पर) वे अपने मन मे निरन्तर तुम्हारे अहित का ही चिंतन करते रहेंगे।

दूसरों की उन्नति पर ईर्ष्या करनेवाली कौशल्या का पुत्र जब राज करेगा, तब सारी पृथ्वी उसका स्वत्व बन जायगी। तब तुम्हारे पुत्र का तथा तुम्हारा इन पृथ्वी में उस (कौशल्या) के दिये गये पदार्थों के अतिरिक्त और कुछ अधिकार नहीं रहेंगा।

याचक लोग निर्धनता और दुःख से प्रेरित होकर तुम्हारे निकट आकर द्रव्य माँगेंगे, तब क्या तुम (उन याचकों को देने के लिए) स्वयं उस कौशल्या के पास जाकर हाथ फैलाओगी ? या (कुछ देने का सामर्थ्य न होने से) लज्जित होकर रहोगी। अपना

(कुछ न दे सकने की) पीड़ा से भर जाओगी । नहीं तो, क्या उन याचकों ने 'मेरे पास नहीं है' कह देगी ? तुम कैसा जीवन व्यतीत करेगी ?

तुम व्या करने की बात सोचकर हर्ष से मुख हुई थी ? भविष्य में कभी तुम्हारे पिता माता-कोइंवन्हु या तुम्हारे कुल का कोई व्यक्ति अभाव-ग्रस्त होकर अपने अभाव को दूर करने के विचार से तुम्हारे पास आयेगा, तो क्या वह तुम्हारी सौत के ऐश्वर्य को देखकर चुप रह जायगा ? विचार करके देखो ।

तुम पर प्रेम रखनेवाले तुम्हारे गरिमामय पति के डर में ही उम विवाधरा सीता का पिता तथा गम का नमुग, तुम्हारे पिता (वेक्य राजा) पर आक्रमण किये बिना रहता है। अब तुम्हारे पिता का जीवन समाप्त हो जायगा । हे अबोध ! तुम्हारे समान निःनीय जन्मवाला और कौन है ?

और सुनो, यदि तुम्हारे पिता के कठोर शत्रु जब तुम्हारे पिता से युद्ध करने के लिए आयेंगे, तब यदि कोशल देश की सेना उनकी सहायता न करेगी, तो उन्हें (तुम्हारे पिता को) विजय नामक वस्तु किस प्रकार मिलेगी ? यह बताओ । अहो, तुमने अपने वधुजनों का भी चिनाश्य करनेवाले दुःख-समुद्र में छूबने का निश्चय कर लिया है ?

अपने उत्तम पुत्र को राज्य पाने से रोककर तुमने उसे मिटा दिया । उज्ज्वल मसुद्र-स्तप्ती वस्त्र में भूषित पुत्री को चक्रवर्ती ने अपने एक पुत्र को दिया, जो उसके प्रिय भाइ का स्वत्व होगा । अन्य कौन उमपर अधिकार रख सकेगा ?—इस प्रकार मन्थरा ने कहा ।

क्रूर मंथरा के इन वच्नों को सुनकर देवों की माया के कारण उन (देवों) के द्वारा प्रात वर के प्रभाव के कारण तथा मुनियों के तपःप्रभाव के कारण कैकेयी का सरल तथा निष्फलक मन भी बदल गया ।

राज्ञों के द्वारा हृत पापों तथा देवों के किये पुण्यों से प्रेरित होकर कैकेयी ने अपनी कशणा को त्याग दिया स्वच्छ वचनवाली तथा हर्षिणी-तृत्य कैकेयी की वह निष्पुरता ही तो आज भी इन ससार के लोगों के, राम के अपार यशोमृत का पान करने का कारण बनी है ?

इस प्रकार (प्रभावित) होकर कैकेयी ने, पापकर्मों से पूर्ण कूवरी को प्रेम से देखकर कहा—तुम मुझपर प्रेम रखनेवाली और मेरे पुत्र का हित करनेवाली हो । मेरा पुत्र अलकृत राज-किरीट को किस प्रकार प्राप्त करे, अब वह बताओ ।

बाम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नवनोवाली (कैकेयी) की बात सुनकर मथरा बोली—मेरी जखी चहर है, मेरी साथिन चहर है । फिर (कैकेयी के) चरणों को नमस्कार करके कहा—अब तुम्हारी अवनति नहीं होगी । यदि तुम मेरी बात मानकर उसके अनुसार काम करेगी, तो मैं सप्त लोबों के राज्य पर भी तुम्हारे अनुपम पुत्र का स्वत्व बना दूँगी ।

उम मथरा ने जिसका मन भी (उमके शरीर के जैसे ही) ढंदा था, कहा—हे उज्ज्वल रत्न-समान देवी ! मैं भली भाँति विचार कर तुम्हें एक बात बताती हूँ । पूर्वकाल

मेरे जब घनी विजयमाला से भूषित शवरासुर मारा गया था, उस युद्ध में विजयी चक्रवर्तीं ने तुम्हे दो बरे दिये थे, उनको तुम उनसे अब माँग लो ।

उन दो बरों में से, एक से राज्य को तुम अपना बना लो और दूसरे में, चौदह वर्ष के लिए राम को देश छोड़कर अरण्य में भेजने का उपाय करो । इससे मार्गी समृद्ध पृथ्वी तुम्हारे पुत्र के अनुकूल हो जायगी ।

इस प्रकार कहनेवाली मथरा का कैकेयी ने हर्ष संगाढ़ालिगन किया और नवरक्षों का एक हार तथा अपार द्रव्य उसे दिया । फिर कहा—मेरे अनुपम पुत्र को गरजतं समुद्र से आवृत पृथ्वी का राज तुमने दिया । पृथ्वी के पति भरत की माता तुम्ही हो ।

तुमने अच्छा उपाय बताया । भरत को गरिमामय सुकुट पहनाना और राम को घने अरण्य में भेजना, ये दोनों कार्य यदि आज पूर्ण नहीं होंगे, तो चक्रवर्तीं के सामने ही में अपने प्राण त्याग देंगी । अब तुम जाओ ।—इस प्रकार कैकेयी ने मथरा से कहा ।

कूवरी के जाने के पश्चात् कैकेयी उत्तम पुष्पों के पर्यंक से उत्तर गई । अपने वर्षाकालिक मेघ के जैसे केशपाश में गुंथी पुष्पमाला के (उन पुष्पों के) मधु पर आमक्त भ्रमर-कुल को व्याकुल करते हुए, इस प्रकार निकाल फेंका, मानो आकाश के बादलों में छिपे चन्द्रमा को ही पकड़कर फेंक रही हो ।

उसने अपनी प्रकाशमय मेखला को दूर फेंक दिया, जैसे अपने बहनेवाले यशस्वी लता को ही उखाड़ रही हो । मजीर, ककण आदि को भी दूर फेंक दिया । यो उसने अपने ललाट पर केशपाश के समीप में स्थित अपूर्व तिलक को पोछ डाला, जैसे चन्द्रमा के कलक को पोछ रही हो ।

फिर, उत्तम रक्ष-जटित आभरणों को एक-एक करके उठाकर फेंक दिया । कस्तूरी-गध से युक्त अपने केशपाश को ऐसे खोल दिया कि वे लटककर धरती को छूने लगे, अजनयुक्त नीलोत्पल-जैसे नयनों के अजनन को पिघलाते हुए वह अश्रु बहाने लगी एवं पुष्पहीन लता के समान धरती पर लोट गई ।

केकय की पुत्री इस प्रकार (धरती पर) पड़ी रही, जैसे पीड़ा की अधिकता में कोई हरिणी पड़ी हो । नाचनेवाला कलापी थककर पड़ा हो, अथवा ‘कमलवामिनी (लद्धी) सीता, अयोध्या छोड़कर जानेवाली हैं’, यह विचार करके उस लद्धी की बड़ी वहन ज्येष्ठा देवी^१ आकर वहाँ पड़ी हो । (१-८८)



^१ जिस प्रकार लद्धी को मगल देनेवाली देवी मानते हैं, उसी प्रकार ज्येष्ठा को जगत देवी मानता है । ज्येष्ठा लद्धी की बड़ी वहन मानी गई है । —प्रनु ।

अध्याय ३

कैकेयी-(दुष्कार्य) पटल

रात्रि का अर्धभाग व्यतीत हो गया। तब दीर्घ भुजाओंवाले सिंह-सदृश चक्रवर्तीं (दशरथ), उनकी जय-जयकार करनेवाले गजाओं से घिरे हुए चले और वीणा-नाद को परास्त करनेवाली मधुर बोली से युक्त कैकेयी के प्रानाद में पहुँचे।

राजा लोग (दशरथ को) प्रणाम करके सौध-द्वार पर रुक गये। दासियाँ बैड़-कर आई और उन (दशरथ) का स्वागत करके उन्हें भीतर ले गई। यो चलकर चक्रवर्तीं पर्यंक से अलग पड़ी हुई, वरछे-जैसे विशाल नयनों तथा मृदुल कधीवाली सुन्दरी (कैकेयी) के निकट गये।

चक्रवर्तीं ने वहाँ जाकर (कैकेयी की दशा) देखी यह मोचते हुए कि न जाने इसे कौन-सा दुःख प्राप्त हुआ है, व्याकुलचित्त हुए। फिर, जैसे हाथी, हरिणी को उठा रहा हो, वैसे ही अपनी विशाल भुजाओं में उसको आलिंगन-वद्ध करके उठाने लगे।

सुगंधित पुष्पमालाधारी चक्रवर्तीं के प्राण-तुल्य उम (कैकेयी) ने उसका आलिंगन करनेवाले (चक्रवर्तीं के) विशाल हाथों को झटककर हटा दिया और विद्युत् के समान तड़पकर धरती पर गिर पड़ी। फिर, कुछ कहे विना दीर्घ श्वास भरती हुई पड़ी रही।

पुष्पमाला-भूषित चक्रवर्तीं ने पृथ्वी पर गिरकर निःश्वास भरती हुई उसको देखा और भयभीत हुए। फिर, उससे कहा—क्या हुआ है? इन सप्त लोकों के रहनेवालों में से जिमने तुम्हारा अपमान किया हो, वह अपने प्राण खो देंगा। सारा वृत्तात् सुझे कह सुनाओ। फिर देखो कि मैं क्या करता हूँ। सब वारें सुझे बताओ।

भ्रमरों से गुजरित पुष्पमालाधारी चक्रवर्तीं के बचन सुनकर कैकेयी ने सजल मेघ-जैसे अपने विशाल नयनों से अपने स्तनों पर अश्रु गिराती हुई कहा—क्या आपको मुझ पर दया है? यदि है तो अपने पूर्व में जो वर मुझे दिये थे, उन्हें अब पूर्ण कीजिए।

मधुवर्षी (पुष्पों से अलङ्घन) केशोवाली कैकेयी का मनोभाव नहीं जानते हुए चक्रवर्तीं ने अति उच्चल विजली के ममान हँसकर कहा—तुम्हारा मनोरथ पूरा करूँगा। किंचित् भी कमी नहीं करूँगा। तुम्हारे पुत्र उदार राम की शपथ खाकर कहता हूँ।

यह बचन कहते ही हंसिनी-तुल्य कैकेयी ने कहा—यदि आपको मेरी बड़ी पीड़ा दूर करने का विचार है, तो हे राजन्! देवता आपकी शपथ के साक्षी हों। आपने उस दिन जो दो वर मुझे दिये थे, उन्हें अब पूरा कीजिए।

उस निष्ठुर हृदयवाली की वचना को नहीं जानते हुए चक्रवर्तीं ने कहा—लो, अपना वर लो। तुम्हें इतना व्याकुल तथा दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। अभी तुम्हारे वर देकर मैं अपना भार दूर कर लूँगा। कहो (तुम्हारी क्या इच्छा है)।

मध्य कठोर वस्तुओं से भी अधिक कठोर उम क्रूर (कैकेयी) ने कहा—आपके दिये दो वरों में ने एक से मेरे पुत्र को इस समस्त राज्य का अधिपति बनाइए और दूसरे से रामचन्द्र को (चौथे वरों के लिए) अरण्यवास के लिए भेजिए—यह कहकर वह (दृढ़) पड़ी रही।

सर्पिणी के समान क्रूर उस कैकेयी की जिहा से उत्पन्न अत्यन्त पीड़ाजनक विष ने ज्यो ही चक्रवर्ती को छुआ, त्यो ही वे कौप उठे। उनकी सारी देह जलकर शिथिल हो गई। सर्प-दण्ड होकर निशशक्त हुए मत्तगज के समान वे पृथक्षी पर गिर पड़े।

पृथक्षी पर लोटते हुए चक्रवर्ती की उस गंभीर पीड़ा का वर्णन करने का सामर्थ्य किसमें है? उनकी पीड़ा के अधिकाधिक बढ़ जाने से उनका मन बहुत ही शोक-उद्विघ्न हुआ। उन्होंने लुहार की भट्टी की भाथी के जैसे उष्ण निःश्वास भरे।

उनकी जिहा सूख गई। प्राण निकलने लगे। मन शिथिल हो गया। नयनों से रक्त वह चला। मन की चिन्ता बढ़ गई। उनके शरीर की पाँचों इन्द्रियों अपना व्यापार भूलकर अत्यन्त चंचल हो गई।

प्राण-पीड़ा से विहृल चक्रवर्ती उठकर पृथक्षी पर खड़े होते, गे पड़ते, गिरते, श्वास-हीन हो चित्र के जैसे निष्क्रिय पड़े रहते, पाप-कर्मवाली कैकेयी के समुख जाकर उसे पकड़कर धरती पर पटक देने का विचार करते।

दृढ़ वरछा दारुण दृत में धुसेडा जाय, तो उससे उत्पन्न पीड़ा से जिस प्रकार कोई मत्तगज तड़प उठता है, वैसी ही दशा को प्राप्त हुए चक्रवर्ती (कैकेयी को मारने का विचार करते, फिर) यह सोचकर कि स्त्री है, (उसे मारने पर) अपयश होगा, इस विचार से लज्जित होते। वे मन की वेदना से आहे भरकर तड़प उठते। फिर, इस प्रकार शिथिल हों पड़े रहते, जैसे उनकी आँखें छिन गई हो।

आलान-स्तंभ में बैधे हुए मत्तगज के समान चक्रवर्ती को शोक-पीडित होकर रोते, कलपते देखकर देवता भी भय से कौप उठे। वह समय ऐसा लगता था, जैसे प्रलय-काल आ गया हो। किन्तु, वाण-समान नयनोवाली कैकेयी का मन यथापूर्व (कठोर ही वना) रहा।

‘पति की व्यथा को देखकर भी वह (कैकेयी) कातर नहीं हुई। उसका मन पिघला नहीं, वह लज्जित भी नहीं हुई।’—ऐसा कहने से (कहनेवाले को ही) लज्जा होती है। महान् लोग प्राचीन काल से ही यह सोचकर कि छल-कपट ही नारी का वेप लिये रहते हैं, नारियों को कभी अपना अवलंब नहीं मानते।

इस दशा में खड़ी हुई कैकेयी की ओर देखकर तैलसिक्त तीक्ष्ण धारवाला वरछा धारण करनेवाले चक्रवर्ती ने कहा—क्या तुम श्रम में पड़ी हो? या किसी वंचक ने तुम्हे ढुर्वृद्धि मिखाई है? तुम्हें मेरी सौशभ है, क्या हुआ? कहो।

यह सुनकर कैकेयी ने कहा—रामवाले धोड़े पर सवार होनेवाले (हे चक्रवर्ती)। मैं श्रम में नहीं हूँ, किसी कपटी ने मुझे कुछ मिखलाया भी नहीं है। यदि आप पूर्व में दिये हुए अपने वरों को अव देंगे, तो ल्लौगी। यदि नहों देंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। जिसमें आपको स्थायी अपयश उत्पन्न होगा।

अपने पुत्र (राम) के अतिरिक्त जिनके अन्य कोई प्राण नहीं हैं, कैंग चक्रवर्ती कैकेयी के यह कठोर वचन कहने के पूर्व ही इस प्रकार व्याकुल हुए जैसे जले रुग्न नान में वरछा धुमेड़ दिया गया हो। स्तव्य खड़े गते। फिर, मृद्दित हो गिर पड़े।

विशाल स्वर्ग, पाताल तथा धरती को जीतनेवाले करवालधारी चक्रवर्ती, कभी, (अहो, क्रूर नारी !) कहकर आह भग्तं, हाय ! धर्म कितना कठोर है !' कहते, 'मेरे शरीर का अत हो जाय' कहकर उठते, फिर लड़खड़ाकर पृथ्वी पर गिर पड़ते ।

बीरो के पराक्रम को कुठित करनेवाले भाले की धारण करनेवाले चक्रवर्ती उमड़ते हुए क्रोध से कहते—'मैं अपने तीक्ष्ण करवाल से नारियों को निहत करके ससार को श्री-रहित कर दूँगा और मैं भी पतित होकर नीच जनों में गिना जाऊँगा ।'

वे चक्रवर्ती, जिनका सत्य आचरण ससार-भर में प्रमिष्ठ था, हाथ पर हाथ मारते, ओंठ चवाते, मन में यह सोचकर दुःखी होते कि सत्य-वचन भी हानिकारक है । जैसे वीं में आग की गरमी लगी हो, वैसे ही उनका मन पिघल उठता ।

मत्यवादी चक्रवर्ती ने सोचा—यदि मत्य की रक्षा न करूँ और इस (कैकेयी) को दफित करूँ तो वह बुरा होगा । यदि इसके माँगे वर दूँ, तो भी बुरा होगा । फिर, यह विचार करके उठे कि अपने हठ पर दृढ़ रहनेवाली इससे याचना करना ही अच्छा है ।

आलान-स्तम्भ को भी तोड़ देनेवाले मद से भरे गज-जैसे राजा लोग अहमहर्मिका से आकर जिन (दशरथ) के चरणों को प्रणाम करते थे, वे (दशरथ), यह सोचकर कि जिस प्रकार अपराधों को दूर करने के लिए वंत्र-दड़ को धारण करना उचित होता है, उसी प्रकार भावी हित को सोचकर क्षमा धारण करना भी उचित है—उस (कैकेयी) के चरणों पर गिर पड़े ।

फिर, उन्होंने कैकेयी में कहा—तुम्हारा वेटा (भरत) यह राज्य (देने पर भी) नहीं लेगा । यदि वह स्वीकार भी करे, तो भी ससार के लोग वह कार्य पसन्द नहीं करेंगे । अतः, तुम्हे ससार में शाश्वत रहनेवाला यश नहीं प्राप्त होगा । अपयश पाने से तुमको क्या लाभ होगा ?

(भरत का राजा होना और राम का अरण्य-वास करना) देवता लोग भी स्वीकार नहीं करेंगे । समार के लोग भी (राम को छोड़कर) जीवित रहना नहीं चाहेंगे । तब पातालवानियों के बारे में क्या कहा जाय ? तुम किनको रखकर यह राज्य करोगी ? राम मेरे कहने में ही (राज्य लेने को) सहमत हुआ है । वह स्वयं ही तुम्हारे पुत्र को पृथ्वी दे देगा—इस प्रकार चक्रवर्ती ने कहा ।

है नारी । उदार केक्यगज की पुत्री ! यदि तुम मेरी आँखें माँगो, तो देने को प्रस्तुत हूँ । मेरे प्राणों को चाहो, तो ये प्राण अभी तुम्हारे अधीन ही हैं । अगर तुम चाहती हों तो पृथ्वी (का राज्य भी) ले लो । किन्तु दूसरे वर की बात (अर्थात्, राम का वन-गमन) भूल जाओ ।

मैंने बचन दे दिया कि वर दिये हैं । मैं स्वयं उस बचन को नहीं बदलूँगा । तुम मुझे पीड़ा देनेवाली बात मत कहो । अग्नि के जैसी जलनेवाली आँखों से युक्त भूत भी, अगर कोई उसमें कुछ याचना करें, तो माता के ममान (दयावान्) होकर दे देता है । यदि तुम मुझे यह दे दो (अर्थात्, राम के वन-गमन की इच्छा न करो) तो क्या कुछ अनुचित होगा ?

विजयी चक्रवर्ती ने इस प्रकार के वचन कहकर (कैकेयी में) याचना की । फिर भी अपना उपमान न रखनेवाली अति कठोर कैकेयी का मन नहीं बदला । उसने कहा— हे चक्रवर्ती ! आपने पहले ये वर मुझे दे दिये । अब उन्हें प्रा न करके क्रोध करें तो मैं क्या करूँ ? अब ससार में सत्यवाढ़ी कोन रह जायगा ?

वे सत्यवाढ़ी चक्रवर्ती, जिन्होंने कभी असत्य वचन सुना भी नहीं, (कैकेयी की) वह बात सुनकर अत्यत शिथिलमन हुए । किंतु, बड़ी सहन-शक्ति के साथ यह सोचत हुए कि यह स्त्री विष और अग्नि का रूप है, लजित होकर मूर्छिछत-में पड़े रहे । पुनः याचना के स्वर में कहने लगे—

तुम्हारा पुत्र (भरत) राज करेगा । तुम सुख से शामन करती रहो । सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकार में होगी । मैंने दे दिया । मैं अपने वचन वापस नहीं लूँगा । किंतु, मेरे पुत्र, मेरे नेत्र, मेरे प्राण, सब प्राणियों के लिए पुत्र के समान (हितकारी) मेरे ग्राम को इम देश को छोड़कर (अरण्य में) जाने न दो । मेरी इस याचना को तुम स्वीकार करो ।

मैं यह देखकर कि सत्य ही मेरी जड़ खोद रहा है, अत्यत दुःखी हो रहा हूँ । मेरी जीभ सूख रही है । ऐसी दशा में यदि कमलपाणि राम मेरे सम्मुख से हट जायगा, तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे । अतः, हे नारि । मेरे प्राण तुम्हारी शरण में हैं ।

इस प्रकार विनती करनेवाले चक्रवर्ती के मधुर वचनों को नहीं माननेवाली कैकेयी का क्रोध कुछ भी कम नहीं हुआ । उसका हृदय काठ के जैगा था । उसे लज्जा नहीं हुई । उसने अपने अपयश की परवाह नहीं की, और कहा—हे अनेक वाणों को रखनेवाले । आपका यह कथन कि आपके पूर्व दिये वर को मैं स्वीकार न करके छोड़ दूँ, अधर्म ही तो है ? आप ही कहिए ।

उस क्रूर नारी ने जब यो कहा, तब वे उत्तम कुल के चत्रिय (दशरथ), यह कहकर कि यदि मेरा ज्येष्ठ पुत्र किरीट धारण न करके कठोर कंकड़ों से भरे अरण्य में जायगा, तो उसके वियोग में निश्चय ही मेरे प्राण भी मुझ से वियुक्त हो जायेंगे—वज्राहत पर्वत के समान धरती पर गिर पड़े ।

चक्रवर्ती पृथ्वी पर गिरे । गिरकर दारूण दुःख के समुद्र म ड़बे । ड़बकर (उन्होंने) उम समुद्र का कोई किनारा नहीं पाया । कोई किनारा न पाकर, क्रूर वचनवाली, अपनी वाणी से हृदय को तोड़नेवाली कैकेयी के ज्ञान स्वभाव को देखकर अत्यत शोक में (पृथ्वी पर) लौट गये ।

‘कातिमय ककण-धारिणी नारियो ने अपने प्राण-पतियों के मरने के पूर्व ही अपने प्राण त्याग दिये’ —ऐसे यश की भागिनी वनने का अवतक प्रयत्न करती रही । किंतु, उनमें से किसी ने अपने पति की हत्या नहीं की थी । हे क्रूर स्वभाववाली ! क्या तुम अब अपन पति की हत्या करना चाहती हो ?

तुमने अपगाय होने की चिन्ता नहीं की । सत्कुल-जात मिथि के धर्म वा दिनां नहीं किया । (मेरे प्रति दया रखकर) मुँह में आह तक नहीं निकालती । त्रृष्णा दृश्य में करुणा नहीं है । अपने वचन-वाण से तुमने मेरे प्राण पी लिये । अब त्रृष्णा पाप व्यौ चिन्ता किये बिना समार के निवागियों के प्राण हरण दरनेवाली हो ।

वे ही स्त्रियों उत्तम होती हैं। जिनमें लज्जा, मरलता, सकोच आदि महत्त्व को वढ़ानेवाले गुण रहते हैं। किंतु, यश के कारणभूत इन गुणों को न रखनेवाली नारियों की गिनती स्त्री-जाति में नहीं होती। वे पुरुष-जाति में ही गिनी जाती हैं। स्त्रप के कारण ही उनकी गणना स्त्रियों में होती है।

मैंने पृथ्वी पर राज्य करनेवाले, वल तथा विवेक में उत्तम वड़े राजाओं को जीता, देवलोक के निवासियों को भी पगाजित किया। किन्तु, ऐसा होकर भी मैं अपने घर में रहनेवाली एक स्त्री से पगास्त हो गया। इससे मेरी कैसी हानि हुई, क्या मेरी ऐसी दशा होनी चाहिए !

वे चक्रवर्ती, जिनके कधे ऐसे थे, जैसे एक स्वर्णमय पर्वत दूसरे (स्वर्णमय) पर्वत में आ मिला हो, इस प्रकार अनेक विधि से विचार करते, विविध वचन कहकर आह भरते, दुःख के समुद्र में छावते, एक से असमान दूसरी पीड़ा को पाते (परस्पर असमान अनेक-विध पीड़ाएँ पाते), मूर्च्छित होकर यों गिरते कि यह सशय उत्पन्न होता कि इनके प्राण हैं या निकल गये। वे यों भग्नहृदय हो रहे।

पहियोंवाले स्वर्णमय रथयुक्त चक्रवर्ती इस प्रकार शिथिल हो पड़े रहे। धरती पर यों लोटते रहे कि उनके सुन्दर कधों पर धूल लग गई। ऐसे समय में करुणाहीन उस कैकेयी ने कहा—हे सुन्दर विजयमालाधारी राजन् ! यदि मैं अपने वर यथाविध नहीं प्राप्त करूँगी, तो अपने प्राण त्याग दूँगी।

जलकर भी तृप्त न होने तथा चारों ओर फैलकर प्राणों को जलानेवाली अग्नि के समान स्थित उस कैकेयी ने कहा—हे दृढ़ धनुषधारी। पूर्वकाल में एक राजा^१ ने सत्य की रक्षा के लिए अपना ही मास काटकर दिया था। उसके वश में उत्पन्न होकर आप यदि वर देकर भी उनको पूर्ण करने के लिए दुःखी हों, तो इससे वढ़कर और क्या होगा ?

तब वलवान् चक्रवर्ती ने यह सोचकर कि कहीं यह पापिन अपने प्राण-त्याग न कर दें, कहा—मैंने वर दे दिये, दे दिये। मेरा वेटा अरण्य में शासन करेगा और मैं मरकर स्वर्ग में राज्य करूँगा। तुम चिरकाल तक अपने पुत्र के सहित अपयश-रूपी समुद्र का पार न पाकर उसीमें छावती रहोगी, छावती रहोगी।

अपना यह वचन पूरा करने के पूर्व ही, वे काटनेवाले तीक्ष्ण करवाल जैसी पीड़ा के अपने मन में प्रविष्ट हो जाने से अत्यन्त व्याकुल हुए। सँभल न सके और निष्क्रिय पड़े रहे। कैकेयी अपनी डच्छा पूर्ण होने से सतुष्ठ होती हुई निद्रालीन हो गई।

रात्रि-स्त्री स्त्री यह देखकर कि चट्रकला के सद्श मनोहर मदहासवाली यह सुन्दरी (कैकेयी) चिरकाल से अपने पति के साथ एकग्राण-सी रही, अब अपने पति को अत्यन्त दार्शन दुःख में छावते हुए देखकर भी किंचिन्मात्र दुःखी न होकर सो रही है, वह (रात्रि-स्त्री स्त्री) मानों पुरुषों के सम्मुख खड़ी रहने को स्वयं लज्जित होती हुई, वहाँ से हट चली।

१. इसमें उल्लिखित राजा 'शिवि' है, जिसने वाज से एक कवूतर को वचाकर उन कवूतर के बदले अपने गरीब का मांस काटकर वाज को दिया था।

रात्रि के अन्तिम याम में कुक्कुट बोलने लगे। वे ऐसे लगते थे कि भ्रमण में गुजरित पुष्पमालाओं को धारण करनेवाले चक्रवर्ती ने कैकेयी के कारण दुःखी होकर जो वचन कहे थे, उनकी सुनकर मानों वं (कुक्कुट) अत्यन्त व्याकुल हो रहे हो और अपने पत्न-स्त्री हाथों से छाती पीटते हुए रुदन कर रहे हों।

जलाशयी तथा वृक्षों पर अपने मृदुल पखों को फडफड़ाकर कूदनेवाले और आकाश में उडनेवाले पक्षी, सूज्म कटिवाली सुन्दरियों के नृपुरों के समान ध्वनि करने लगे, मानों वे केकय-राजा की पुत्री होकर उत्पन्न उस विष (-समान कैकेयी) को कीम रहे हों, जिसने जुद्रता के साथ दारुण उत्पात उत्पन्न किया था।

हाथी, जो अवतक (हथसारों में) मधुर निद्रा ले रहे थे, अब मानों यह सोचकर कि प्रसिद्ध नामवाले प्रभु सुन्दर मेखलाधारी अपनी पत्नी-सहित अरण्य को जायेंगे, अपने मन में काँप उठे और यह कहते हुए कि हम भी इस पृथ्वी को छोड़ देंगे, कट उठकर चल दिये।

विकसित कमल जैसे अरुण नेत्रोवाले राम के गज-शुड जैसे हाथ में मगल-सूत्र वाँधने के पूर्व जो शामियाना शीतल किरणोवाले मौतियों से अलकृत करके तथा सारी पृथ्वी को आवृत करके डाला गया था, वह अब खोला जा रहा हो—यो आकाश में चमकनेवाले नक्षत्र अदृश्य होने लगे।

नगाढ़े यह सूचना देते हुए वज उठे कि भयकर कोदडधारी गम को प्रणाम करने का शुभ समय आ पहुँचा और रात्रिकाल, जब मन्मथ अपने इच्छु-धनुष का पराक्रम दिखाता था, व्यतीत हो गया, (नगाढ़ों की) वह ध्वनि पर्वतों के शिखरों पर के मेघ-र्गजन के समान थी। उस ध्वनि को सुनकर (अयोध्या की) नारियाँ मयूरों के झुण्डों के समान विकसित बदनों के साथ निद्रा छोड़कर उठने लगीं।

विविध पुष्प-मसुदाय खिल गये। उनकी सुर्गन्धि को लेकर मट-मारुत वह चला। कुछ युवतियाँ उस (मदानिल) के स्पर्श से व्याकुल हुईं और उनके बन्ध तथा मेखलाभण्ण ढीले हो खिलक गये। कुछ मिठियाँ, जो स्वप्नों में अपने-अपने प्रियतमों का गाढ़ा आलिंगन करके दुःखमुक्त हो उठी थीं, उन ऐन्द्रजालिक स्वप्नों में वाधा पड़ने से स्तव्य रह गईं।

कुमुदपुष्प इस प्रकार मुकुलित हो गये, जैसे उत्तम गुणवाली मिठियों ने, चिरकाल तक रहनेवाले अपयश को उत्पन्न करके अपनी अप्रवृत्ति को मिटानेवाली कठोरहृदया कैकेयी के पापकर्म को देखकर और उससे स्त्री जाति के गौरव के मिटने ने दुर्गमी होकर अपना मुँह बढ़ कर लिया हो।

जो मिठियाँ अत्यन्त अनुराग में भरी थीं, प्रज्ज्वलित अग्नि न भी वधिक तीव्र कामना से पूर्ण थी तथा मन्मथ के तीव्र शरण, नभ की चान्दिका एवं दीर्घ मटमारुत के उनरं शरीर को काटने से जो अत्यन्त व्याकुल थीं उन विरहिणी युवतियों के कानों को गवुर नग-पूर्ण गान ऐसे लगे, जैसे फनवाले सर्प (उन कानों में) प्रविष्ट हों रहे हों।

मेघ के समान (दानशील) भुजावाले पुरुष, अपनी शर्वाओं ने यह विनाश नरस हुए उठे कि चक्रधारी (राम) के राजतिलक के शुभ दिन दे पूर्व की या गांव गांव दुग ने

भी वडी लगती हैं तथा आज का समय ऐसा है, जब कमलनिवासिनी (लद्धी), मस लोकों के निवासी एवं हमलोगों के पुण्यवान् नवन तथा हृदय जीवन का लाभ प्राप्त करेंगे।

जो रमणियाँ, तेल-सिक्क उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण वरछे, जैसे अपने नवनों को बढ़ करके मन में गम के राजतिलक का ही ध्यान लिये, भूठी निढ़ा ले रही थी, वे (स्त्रियाँ) आश्चर्य-जनक शरीर-काति से युक्त गम की सुन्दरता को देखने की अधिकाधिक बढ़नेवाली इच्छा से, पुष्पों की सेज को ऐसे छांडकर उठ गईं कि (उन पुष्पों का रम लेनेवाले) भ्रमर गुजार भरते हुए उड़ चले।

मनोहर पुण्य-मालाधारिणी जो सुन्दरियाँ मन की हृदता के माथ (अपने पतियों से) मान किये वैठी थी, वे अब प्रभात-बादों को बजाते हुए सुनकर घवरा उठी और अपने दुःख व्याकुल पतियों को प्राण-दान-सी करती हुई स्वर्णाभरणों के द्वर्ते हुए, लता-हृल्य कटि के भय-विकरित होते हुए तथा दलशुक्त पुष्पमाला के अकित होते हुए समागम का सुख न प्राप्त कर सकीं।

सर्वत्र मयूर-पख चमक उठे। भ्रमर शब्दायमान हो उठे। पुष्प-मालाएँ चमक उठीं। भैरवियाँ शब्दायमान हो उठीं। स्थान-स्थान पर स्थित मुक्ता-पक्षियाँ चमकती हुईं शब्दायमान हो उठीं। आभरण शब्दायमान हो उठे। पक्षी शब्दायमान हो उठे। वीणा-बाद शब्दायमान हो उठे। मन से भी अर्धक देव से टौड़नेवाले अश्व, मेधों के समान शब्दायमान हो उठे।^१

दीपक उमी प्रकार मन्द पड़ गये, जिस प्रकार चतुर्दश भुवनों को अपने प्राणों-महित दान देनेवाले, वीरों के वीर, अपने ज्येष्ठ पुत्र पर अधिक प्रेम रखने के कारण अत्यन्त विहृल तथा पचेंटियों के निष्फिय हो जाने से कपित हो पड़े हुए चक्रवर्ती (दशरथ) की दिव्य-देह की काति मद पड़ गई थी।

अनेक वेणुवाद शब्द कर उठे। स्वस्ति-बाचन कुनाई पड़ने लगे। सगीत-ध्वनि गगन-भर में व्याप्त हो गई। अनेक प्रकार के बाद बज उठे। (सुन्दरियों के) नूपुरों के माथ शख भी शब्द कर उठे तथा शृंगीवाद साम-गान कर उठे।

सूर्य, धूप के समान बढ़े हुए अन्धकार-रूपी शत्रु को भगाता हुआ और प्रासादों के भीतर के दीपों की काति को मन्द करता हुआ उदय पर्वत पर उदित हुआ। वह लाल होकर दिखाई पड़ रहा था मानों पापिन कैकेयी के वैर से अपने कुल के श्रेष्ठ पुत्र चक्रवर्ती के प्राणों को व्याकुल होते देखकर वह (सूर्य) अत्यन्त क्रङ्ग हो गया हो।

पक्ज-समूह इन प्रकार सत्त्वर प्रफुल्ल हो उठे, जैसे वे उन रमणियों के बदल हों, जो (रमणियाँ) उन रामचन्द्र के सुकुट-धारण की शोभा को देखने की इच्छा से भरी थी, जो (रामचन्द्र) त्रिमूर्ति वननेवाले त्रिंश्चों के भी आदि कारण थे। स्वय मारी सुष्टि वनकर रहते थे तथा इन्द्रादि देवों के प्रभु शिव के बनुप को तोड़नेवाले महाबीर थे।

ऐसे समय, उम विशाल अयोध्या की प्रजा, इस विचार से कि आज चक्रवर्ती के कुमार मिहामनारूप होंगे, वडे हर्ष के माथ ऐसे कोलाहल कर उठी, जैसे सातों समुद्र एक

^१ मूल में चमकना और शब्दायमान होना इन दोनों अर्थों को देनेवाली एक ही क्रिया 'ओलिचन' का वार-चार प्रयोग इड़ा है, जिसने शब्दगत सुन्दरता बढ़ गई है। — अनु०

साथ गरज उठे हो । उम दृश्य का वर्णन करने का विचार तक करना मुझ जैसे लोगों के लिए असम्भव है, फिर भी किंचिन्मात्र हम उसका वर्णन करेंगे ।

कुंजर-जैसे वीर युवकों के मन को सुग्रह करनेवाली युवतियाँ (अपने शरीर में) महावर लगाती, दृध-जैसे उज्ज्वल शख-बलयों को चुन-चुनकर पहनती, करवाल तथा वाण-समान तीक्ष्ण नयनों में काजल लगाती, जैसे उनमें विष ही रख रही हो तथा नव पुष्पों की धारण करती ।

वहाँ के युवक, जो अत्यन्त आनन्द से अश्रु वहानेवाले कमल-सदृश नयनोंवाले थे, दोप-हीन बदनवाले थे, जिनकी पुष्ट भुजाओं पर मीन समान तथा मदा-पान से उत्पन्न वर्ण जैसे लाल रग से भरे नयनोंवाली सुन्दरियों के स्तनों पर के चदन-लेप का चिह्न अभी नहीं मिटा था, रामचन्द्र के सुकुट-धारण की बात सोचकर उन (राम) के भाइयों के जैसे ही (अत्यन्त आनंदित) हो उठे ।

उस नगर में रहनेवाले सदगुणों के आगार सब पुरुष दशरथ के जैसे थे । ब्राह्मण सब वसिष्ठ के जैसे थे । सच्चरित्र स्त्रियाँ कौशल्या की जैसी थीं तथा अन्य युवतियाँ मीता के समान थीं और वह (मीता) देवी लक्ष्मी के समान थीं ।

मीता के पति के सुकुट-धारणोत्सव को देखने की उमडती हुई इच्छा से प्रेरित होकर राजाओं का समूह अमृत का पान करने के लिए आये हुए देवों के जैसे आकर वहाँ एकत्र हुआ, जिससे शब्दायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी का सारा प्रदेश खाली हो गया ।

उस सुन्दर नगर में सर्वत्र, शर्करा के-से माधुर्य एवं प्रवाल के जैसे रक्त अधरोंवाली, पीन स्तनोंवाली तथा विशाल जघन-तटवाली सुन्दरियों के भुण्ड थे और उनके माथ पुरुषों के भुण्ड भी थे । सब एक दूसरे को ढकेलते हुए कह रहे थे कि चलो-चलो, किन्तु आगे जाने के लिए स्थान न होने से वे अपने-अपने स्थानों पर ही स्थिर रह डे रहने के अतिरिक्त न तो आगे बढ़ सकते थे, न उम विचार को (अर्थात्, आगे बढ़ने के विचार को) छोड़ ही सकते थे ।

उम जन-समुदाय को देखकर कुछ कहते थे कि राजा लोग ही अधिक हैं, कुछ कहते थे कि सैनिक वीर ही अधिक हैं, कुछ कहते थे कि पुरुष अधिक हैं, कुछ कहते थे कि स्त्रियाँ अधिक हैं, कुछ कहते थे कि आगत प्रजा ही अधिक है, कुछ कहते थे कि अभी आनेवाली प्रजा अधिक है, जो जैसा समझता था, वह वही कहता था । किन्तु, कोई भी सम्पूर्ण रूप से (उम भीड़ का) नहीं देख पाता था ।

नीलोत्पल का लावण्य और भाले की क्रूरता, दोनों को एक साथ मिलाकर तथा उम पर मृदुल अजन नामक विष को लगाकर जैसे धबल चन्द्रमा पर रखा गया ही वैसे विशाल नयनों से युक्त सुन्दर तथा लचकती हुई सूख्म कटिवाली युवतियाँ नानेवाले मधूरों के भुण्ड के समान एकत्र हो आईं ।

सुगन्धित तुलसी-माला से भूषित (राम) के भू-देवी के माथ शुभ विवाह को (अर्थात् राज-तिलक को) देखने के लिए जो नहीं आये, वे लका के निवारी राज्ञ, सप्त द्वीपों के कुल पर्वत तथा अष्ट दिशाओं में स्थित मटलाक्षी गज ।

विशाल गज्यों के शामक इन्द्र की समता करनेवाले नरेश ऐसे मुक्तामय ध्वल छाँड़ों को लिये हुए जैसे करोड़ों चन्द्र आकाश में भर गये हों तथा ऐसे श्वेत चामगे को लिये हुए जैसे अन्तरिक्ष में अनेक हंस उड़ रहे ही, अभिषेक के मण्डप में आ पहुँचे ।

तपस्या के द्वाग पुण्य-फलों को प्राप्त करनेवाले उत्तम वद्ज ब्राह्मण ऐसे आनन्द के साथ कि अपने पुत्र के विवाह को ही देखनेवाले हों गज्य-लद्धमी के साथ रामचन्द्रक का विवाह देखने के लिए आ पहुँचे ।

देवता गगन-तल को भरने लगे समुद्र-स्पी वस्त्र से युक्त भूमि पर रहनेवाले लोग सब दिशाओं को भरने लगे, मगल-सूचक शखों की ध्वनि तथा विशाल भेरियों की ध्वनि श्रोताओं के कानों में भरने लगी अपरिमेय स्वर्ण के साथ (टान करते हुए) वहाँ हुई जल की धारा, बीचियों से पूर्ण मातों समुद्रों को भरने लगी ।

दीप की काति को मन्द करनेवाली देह की काति से युक्त राजाओं के विद्युत-जैसे चमकनेवाले असर्व किरीटों की रह-रहकर चमकनेवाली जगमगाहट, गगनगामी सूर्य को भी आवृत कर फैल गई, समुद्र से उत्पन्न मुक्ता जैसे ढाँतोवाली मद्हाम-द्वुक्त युवतियों के आभरणों की काति, स्वर्ण को भी आवृत करके देवताओं की आँखों को भी चाँधियाने लगी ।

उस समय, प्रभु (राम) के राज्याभिषेक के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को लेकर वेदज ब्राह्मण चारों बंदों का आच्चन करते हुए आये । उस पुरातन नगर के ढार पर एकत्र हुई भीड़ उनके लिए मार्ग छोड़कर हट गई इस प्रकार (ब्राह्मणों को अपने साथ लेकर) महान् तपस्वी वसिष्ठ आ पहुँचे ।

वसिष्ठ मुनि ने गगा मे कन्याकुमारी-पथत सब तीथों के पञ्चित्र जल तथा चारों दिशाओं के जल को मँगवाया । होम के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रवन्ध किया और वीर मिहामन भी प्रस्तुत करके रखा तथा सब आचार सम्पन्न किये ।

ज्यौतिषज्ञों ने कहा कि सुहृत्त निकट आ गया है । कर्म-वन्धन को तोड़नेवाले तप का आचरण करनेवाले महर्षि (वसिष्ठ) ने सुमत्र को आदेश दिया कि शीघ्र जाकर रक्त किरीट-वारी चक्रवर्ती को ले आओ । वह आजा शिरोवार्य करके सुमत्र वड़े प्रेम के साथ गया ।

गगनोन्तर राज-प्रासाद मे चक्रवर्ती को न पाकर सुमत्र ने वहाँ के परिजनों से पूछा । उन लोगों मे वह जानकर कि चक्रवर्ती कैकेयी के साथ हैं, वहाँ पहुँचकर सुमत्र ने दामियों के द्वाग अपने आगमन का समाचार भीतर भेजा । तब स्त्रियों मे यमतुल्य कैकेयी ने सुमत्र को यह आजा दी कि वह जाकर गम को वहाँ ले आये ।

कैकेयी का आंदेश पाकर सुमत्र वड़ी उमग के साथ स्वर्णमय सौधों से युक्त वीथियों को शीघ्र पार कर गया और अपने मन मे अपना ही ध्यान करते रहनेवाले (अर्थात्, नागयण के अवतारभूत तथा भगवान् के ध्यान मे निरत रहनेवाले) पर्वत तुल्य कधोंवाले गम को नमस्कार करके मुँह पर हाथ रखकर^१ यो निवेदन किया ।

^१ वह लोगों के साथ वात करने समय मुँह के सामने हाथ रखकर बोलना विनम्रता का चिह्न होता है ।—ब्रह्म०

गजा, ऋषि तथा भूतल के लोग तुम्हारे पिता के समान ही वंड प्रेम के साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारी छोटी माता (कैकेयी) ने आदेश दिया है कि मैं तुमको वहाँ ले आऊँ। अतः, स्वर्णमय उन्नत मुकुट को धारण करने के लिए शीघ्र चलो।

प्रभु (राम) वह बचन सुनकर, सहस्र शिरोवाले (नारायण) को नमस्कार करके समुद्र-जैसे राज-समुदाय से घिरे हुए, पुष्पालकृत रथ पर सवार होकर चले। उस समय देवता लोग दिव्य सगीत का गान करते हुए आनन्द से उन्हे आशीर्वाद दे रहे थे एव सुन्दरियाँ वडे कोलाहल के साथ उन्हे देख रही थीं।

‘वीर (राम), मनोहर रत्न-मुकुट धारण करने के लिए जा रहे हैं,’ इस उमग से प्रेरित होकर वे सुन्दरियाँ एक से एक आगे बढ़कर मार्ग के दोनों पाश्वों में बड़ा कोलाहल करती हुई आ खड़ी हुईं। वे इस प्रकार हो गईं, मानो उन सबका एक ही प्राण हीं और वह प्राण वाहर होकर एक अनुपम रथ पर आरूढ़ होकर जा रहा ही।

वे उदार (रामचन्द्र) कठोर बचनवाली (कैकेयी) की आजा से उज्ज्वल किरीट को छोड़कर, पवित्र पृथ्वी-रूपी पत्नी से वियुक्त होकर, अरण्य के लिए प्रयाण करने के पूर्व ही, सगीत की मधुर कठध्वनि करनेवाली उन रमणियों की भुजा-रूपी वाँसों तथा नेत्र-रूपी वरछों के घने अरण्य में प्रविष्ट हो गये।

वे स्त्रियाँ, सुगन्ध-चूर्ण, पुष्प, चन्दन, स्वर्ण आदि विखेरने के लिए वहाँ आकर अपनी सुन्दर मेखलाओं को, कँगनों को तथा लज्जा को विखेर रही थीं। वे मन्मथ के बाणों ने आहत होकर, क्षतों से पूर्ण अपने परस्पर सटे हुए मृदु स्तनों को, काम-पीड़ा के कारण नयनों सं वरसनेवाले अच्छे अश्रुजल से धो रही थीं।

‘यह सुन्दर नयनोवाला (राम) क्या पृथ्वी की रक्षा करने के योग्य है? हम अबलाओं के प्रति किंचित् भी प्रेम से यह हीन हैं’, यो सोचकर वे व्याकुलता से कॉप उठती और यह कहती कि अरुण नयनों तथा श्यामल देह से युक्त यह राम मन स्थानों में दिखाई दे रहा है, किन्तु न जाने कितने राम हैं।

स्त्रियाँ इस प्रकार (प्रेममग्न) होकर, झुण्ड वाँधकर कोलाहल करती हुई आईं। मुनियों तथा उम प्राचीन नगर के बृद्धों एव वालकों ने राम के रूप को देखा, किन्तु (उनके प्रति) अपने प्रेम की सीमा को नहीं देखा। अब हम उनके मन के भावों एव उनके बचनों का वर्णन करेंगे।

उन लोगों में से कोई कहता, यह समार तर गया। कोई कहता युगात बाल को यहीं से तुम देख लो (अर्थात्, वे राम को यह आशीर्वाद देते हैं कि युगात काल तक तुम जीवित रहो)। कोई कहता, हमारी आयु भी तुम ले लो, कोई कहता, पच्छियों पर दमन करके हमने जो कठोर तपस्या की है, उमका फल तुम्हारा ही हो और कोई कहता, रांगत तुलसी की माला धारण करनेवाले। तुमको समस्त पुण्यफल प्राप्त हो।

कोई कहत, इस (राम) के अत्यन्त करणा से पृष्ठ उज्ज्वल नयनों की मरता करने ह कमल और इमकी देह-द्वितीय को प्राप्त किया है मेघों ने। न जाने, उन्होंने दूना पुण्य दिया है। और, उछ कहते, चमत्कर्ता दशरथ ने प्रपुर्व तपस्या करके इस मरानुभाव को

पुत्र के रूप में प्राप्त करके इस सासार को दिया है, उनका हम क्या प्रत्युपकार कर सकते हैं ?

कोई कहते, इन महानुभाव की कृपा, गजेंद्र की पुकार को सुनकर मकर के प्राणों का अन्त करनेवाले चक्रधारी नारायण की कृपा-जैसी है। कोई प्रभु के निकट आकर, उनके दर्शन कर, कुछ कारण के बिना ही अपने मनोहर नेत्रों से अश्रु वहाने लगते।

कोई कहते—प्रभु की गंभीरता और दुष्टि महान् श्याम घन के समान हैं, उनका जैमा शील और किसमे हो सकता है ? चिरकाल तक गणना करने योग्य सबसे बड़ी सख्याओं के भी परे जो रहता है, उस अनादि तथा अनंत, अविनाशी मूर्ति (नारायण) का यह अवतार है। वह देवों में अतर्भव नहीं है।

कोई कहते—संसुद्ध खोदनेवालों की (अर्थात् सगर-पुत्रों की), धरती पर गगा नदी को लानेवालों की (अर्थात् भगीरथ की), देवों की महायता करने के लिए असुरों के माथ युद्ध करके उन्हे परात्त करनेवालों की (अर्थात् इद्वाकु, ककुत्स्य आदि दशरथ-पर्यंत अनेक सूर्यवशी राजाओं की) जो अति प्रवृद्ध कीर्ति स्थिर हैं। वह इस प्रभु (राम) की विजयमाला-भूषित भुजाओं की कीर्ति के कारण ही अमर बनी है।

है वीर राम ! लो, यह चंदन है, ये उत्तम रत्न-हार हैं। यहाँ तिलक एव सर्व आभरणों से भूषित मत्तगजों की श्रेणियाँ हैं। ये अश्व-पक्षियाँ हैं। ये पीत-स्वर्ण की निधियाँ हैं, निर्धन लोगों को इनका दान दो—यों कहकर कोई उन वस्तुओं की पक्षियाँ लगाते थे।

विद्युत्-समान रथ पर सवार होकर जब गमचन्द्र आ रहे थे, ऐसे द्रवितचित्त हो खड़े थे, जैसे कोई गाय अपने बछड़े को अकेले छलांग मारकर आते हुए देखकर प्रेम से द्रवितमन होती है।

कुछ सद्गुण-सम्पन्न यह कहते कि श्वतच्छन्न की छाया किये, बड़ी सेना रखे, विविध शत्रु धारण किये जो राजा भूमि का शासन करते हैं, उनका अव (राम जैसे व्यक्ति के उत्पन्न होने के पश्चात्) पुत्रों को जनना व्यर्थ है, और चित्र-लिखित मूर्ति-जैसे तत्त्व खड़े रहते।

विद्युत्-से शोभायमान श्याम घन जैसे बक्ष पर यज्ञोपवीत से शोभायमान राम, क्या रथ पर शीघ्रता से मार्ग पार करता हुआ जायगा ? (राम के) रथ की गति को मद करने के लिए अनेक स्वर्णराशियों और विविध गत्तों से मार्ग को भर दीजिए—यों कहते हुए कुछ लोग मार्ग पर (स्वर्ण, रत्न आदि) विखेर रहे थे।

कुछ लोग कहते—यह अपनी माता की गोद में नहीं पला, किन्तु पूर्वजन्म के पुण्य से इसका पालन करनेवाली है कैकेयी, अतएव वह (कैकेयी) समस्त पृथ्वी का शामन इसे देकर आनंदित हो रही है। ऐसा करनेवाली उस (कैकेयी) का आनन्द किस प्रकार का है ? हम क्या कहे ?

कुछ कहते—अब पाप और दुःख समूल मिट जायेंगे। कुछ कहते—भूमडल पर अब एक व्यक्ति का स्वत्व नहीं रहा, वह सब लोगों का हो गया। कुछ कहते—यह देवताओं के शत्रु राजाओं को मिटा देगा और कुछ कहते—इसकी आज्ञा का पालन करनेवाले राजाओं का भाग्य कितना महान् है।

जब नगरनिवासी इस दशा में थे, तब विजयी प्रभु (गम) अनुपम रथ पर आरूढ होकर, दीर्घ ध्वजाओं से शोभित प्रापादो की पक्कियों से युक्त वीथियों को पार कर गये और महान् यश से भूषित चक्रवर्ती के प्रापाद में जा पहुँचे ।

पुष्प-भूषित कुतलोवाली सुन्दरियों के द्वारा चामर छुलाये जात हुए, नृतन हर्ष में उज्ज्वलित मन से, राम वहाँ आये, किन्तु वहाँ अपने अगाध स्नेह को प्रकट करते हुए उन्नत किरीट धारण किये हुए, सुन्दर कमल-पीठ पर आनन्द के साथ आमीन हुए दशरथ को नहीं देखा ।

वे राम, जो बंदों तथा अन्य शास्त्रों के जाननेवालों के मन में प्रकाशित (भगवान् के) रूप के साथ एकरूप थे, उस स्वर्णमय सभा-मण्डप में नहीं गये, जहाँ ऋषियों और नरेशों के सब बडे आनन्द के साथ यथार्थ प्रशस्तियों का गान कर रहे थे, किन्तु अपनी छांटी माता (कैकेयी) के आवास में गये ।

राम को यां जाने हुए देखकर राजाओं तथा ऋषियों ने मोचा—गम ने उचित ही सोचा है । वह पहले अपने पिता के चरणों को नमस्कार करके, फिर सब दिशाओं में उज्ज्वल भास्मान किरणोवाले सूर्य से प्रात अत्युत्तम सुकुट को यथाविधि धारण करनेवाला है । यह विलकुल ठीक ही है ।

जब ऐसा हो रहा था, तब रामचन्द्र मन में किञ्चित् शिथिल होकर फिर स्वस्थ हुए और पवित्र दशरथ के रहने के स्थान को ढूँढ़ते हुए आ पहुँचे । यह देखकर, अनुपम क्रृता से युक्त कैकेयी, यह मोचती हुई कि मेरा पति अपने मँह से (ब्रदान की वात) नहीं कहेगा, अतः मैं स्वय इससे कहूँगी—उसको (कैकेयी को) अपनी माता मानकर उनके निकट आये हुए राम के सम्मुख यम के समान वह प्रकट हुई ।

गोधूलि-वेला में अपनी माँ को देखनेवाले वत्स के मद्दश राम न अपने सम्मुख आई हुई माता को, धरती पर सिर रख नमस्कार किया । मिठूर तथा प्रवाल-समान सुगंधयुक्त अपने मँह को एक अरण कर से आवृत करके और दूसरे कर सं अपने वन्धों को मँभाले हुए बड़ी चिन्मता के साथ खड़े रहे ।

इस प्रकार खड़े हुए राम को देखकर, लौह-हृदय से युक्त होकर, ‘प्राणियों का सहार करनेवाला यम’—केवल इस नाम से रहित होकर, कठोर कृत्य करनेवाली उन (कैकेयी) ने कहा—हे तात । तुम्हारे पिता तुमसे एक वात कहना चाहत हैं । यदि उनके अभिप्राय को कहना मुझे उचित हो, तो मैं उसे कहूँगी ।

आज्ञा देनेवाले मेरे पिता हैं । कहनेवाली आप स्वय हैं । यह सभव हो तो— (अधोत्, यदि आप स्वय उस वात को मुझसे कहे तो) मेरा उद्धार हुआ । मेरे मद्दश जन्म लेनेवाला और कौन है ? मेरे भाग्य से ऐसा अच्छा फल मुझे मिला है, इसमें बढ़कर और क्या अच्छा फल हो सकता है ? आप मेरे माता और पिता दोनों हैं । आपका वन्नन मेरे लिए शिरोधार्य है । (अतः) आप आज्ञा दे ।

तब कैकेयी ने राम से कहा—चक्रवर्ती ने यह प्राज्ञ दी है कि नगुद्र ने आवृत पृथ्वी का शासन भरत करे और तुम जटाधारी होकर तपन्वी दे वप में घने उपर्य म जाओ ।

रहो। वहाँ पवित्र नदियों में स्नान करत हुए चोढ़ह वर्प व्यतीत करो और उसके पश्चात् लौट आओ।

किसी के लिए अवर्णनीय गुणोंवाले रामचन्द्र के सुन्दर मुख-मडल की उस समय जो शोभा थी, उनका कथन करना हम जैसे लोगों के लिए सुलभ नहीं है। उस मुख-शोभा ने, जो सदा कमल की सुप्रभा की जैसी रहती थी कैकेयी के यह वचन सुनकर सदोविकसित अरुण कमल को भी परास्त कर दिया (अर्थात्, कमल की शोभा से भी अधिक राम के बदन की शोभा बढ़ गई)।

रामचन्द्र पहले विशुद्ध ज्ञानवाले चक्रवर्ती की आज्ञा का उल्लंघन होने से डरकर ही इम अधकारमय ससार के राज्य के दुख को स्वीकार करने के लिए सन्नद्ध हुए थे। अब वे उम भार से मुक्त होकर ऐसे लगं जैसे कोई वृपभ, जो चक्रवाले शक्ट में स्वामी के द्वारा जोता गया हो, पर किसी करुणामय व्यक्ति के द्वारा वधन से छुड़ा दिया गया हो।

यदि यह चक्रवर्ती की आज्ञा न भी हो, फिर भी क्या आपकी आज्ञा मेरे लिए पालनीय नहीं है? मेरे भाई ने ऐश्वर्य पाया, तो मैंने भी तो उने पा लिया। अतः, इससे बद्धकर मेरा र्हत और क्या हो सकता है? इम आज्ञा को मैंने शिरोधार्य किया। मैं अभी विजली की जैसी धूप से युक्त अरण्य में जाऊँगा। आपसे विदा भी ले रहा हूँ।

(१-११०)



आध्याय ४

नगर-निष्क्रमण पटल

पर्वत से भी ऊँचे कधोंवाले राम ने ऐसे वचन कहकर कैकेयी के चरणों को पुनर्नमस्कार किया। पिता दशरथ जिस स्थान में रहते थे, उम दिशा की ओर मुख करके नमस्कार किया और स्वर्ण कमल पर आमीन लक्ष्मी तथा भू-देवी के रीते हुए, वे कौशल्या के आवास में पहुँचे।

कौशल्या देवी जब वह सोचती हुई वैठी थी कि मेघों के आवासभूत पर्वत-जैसा मेरा गम, किरीट धारण करके आयेगा, तब राम हुलनेवाले चामर और श्वेतच्छन्न के विनाही विराध के अपने आगे-आगे जाते हुए और धर्मदेव के अपने पीछे-पीछे आते हुए, अकेले ही, कौशल्या के सम्मुख जा पहुँचे।

‘इसने किरीट नहीं पहना है, इसके केश तीर्थों के पवित्र जल से भीगे नहीं हैं, इसका कारण क्या हो सकता है?’—इस प्रकार आशकित होनेवाली उस (कौशल्या) के चरणों को स्वर्णमय वीर-वलयधारी राम ने प्रणाम किया। उस देवी ने चिंतित मन के नाथ उन्हें आशीर्वाद देकर पूछा—मोचा हुआ कार्य क्या हुआ? क्या राजतिलक मेरों विश्व उत्पन्न हुआ?

कौशल्या के यह पूछने पर राम ने अपने अरुण कर जोड़कर कहा—आप के प्रेम का पात्र, उत्तम गुणवाला मेरा भाई भरत ही उन्नत किरीट को धारण करनेवाला है ।

तब उस (कौशल्या) देवी ने, जो राम आदि चारों पुत्रों पर निष्कलक प्रेम रखती थीं और भेदभाव से रहित थीं, कहा—(ज्येष्ठ को रहते हुए, कनिष्ठ को गज्य का अधिकार नहीं है, इस) परिपाटी के अनुसार यह (भरत का राजतिलक) नहीं हो सकता । वह इतना ही, नहीं तो वह (भरत) सब मेरे अधिक गुणवान् है, उसमें कोई कमी नहीं है ।

कौशल्या ने राम से पुनः कहा—हे पुत्र ! चक्रवर्ती की आज्ञा का निपेध करना तुम्हारा धर्म नहीं है । इस आज्ञा को अपने लिए हितकर समझकर तुम अपने भाई भरत को राज्य दे दो और उसके साथ एक होकर चिरकाल तक जियो ।

माता का कथन सुनकर पवित्र, हर्ष-भरे हृदयवाले तथा दोषहीन गुणवाले राम ने कहा—चक्रवर्ती ने मुझे सन्मार्ग पर चलने के लिए एक आज्ञा दी है ।

कौशल्या ने पूछा—वह आज्ञा क्या है ? तब राम ने कहा—चक्रवर्ती ने आज्ञा दी है कि मैं चौदह वर्ष-पर्यंत महान अरण्य में ऋषियों के साथ निवास करके फिर लौट आऊँ ।

वह वचन-रूपी अग्नि कर्णभरण से भूपित (कौशल्या के) कानों में प्रविष्ट होंवे, इसके पूर्व ही वह दुःखी हुई, कृशगात्र हुई, भ्रातच्चित्त हुई, रोई, मूर्छित हुई ओर गिर गई ।

उसने (राम से) कहा—हे पुत्र ! चक्रवर्ती ने तुम्हारे प्रति पहले जो कहा था कि तुम इस विशाल धरती का अवलव बनकर इसकी रक्षा करो, वह क्या धोखा था या वह विष ही था ? मेरे पाँचों प्राण भयभीत हो रहे हैं ।

कौशल्या (अत्यन्त पीड़ा के कारण) कभी एक हाथ से दूसरे को मलती, कभी अपने प्यारे पुत्र के अधिष्ठान वने हुए, बटपत्र की समता करनेवाले अपने उदर को, कक्षणधारी पल्लव-सदृश करो से दवाती, कभी अग्नि से जैसे धुअँ उठता हो, वैमा निःश्वास भरती । पुनः उस निःश्वास को निगल जाती । इस प्रकार वह दुःखी ही रही थी ।

‘चक्रवर्ती की दया भी भली है ।’—कहकर हँसती । सामने खड़े पुत्र को देखकर यह कहकर कि तुम्हारा बन-गमन कब होगा ?—उठती । कौशल्या यो दुःखी हुई जैसे उसके शरीर से प्राण ही निकल रहे हो ।

वह यह कहकर कि हे पुत्र ! तुम्हारे प्रति अपने मन में अत्यधिक प्रेम रखनेवाले चक्रवर्ती के प्रति तुमने क्या अपराध किया ? वह यो गोती, जैसे पूर्वजन्म के पाप के कारण दरिद्रता अनुभव करनेवाला कोई व्यक्ति सम्पत्ति पावर भी उम्में खो वैठा हो और रो रहा हो ।

वह कहती—क्या धर्म मेरा गहायक नहीं है ? कभी कहती, हे देवताओं । मैंने कौन-सा पाप किया कि इस प्रकार मुझे विकल-प्राण होना पड़ रहा है । वह वृष्टे से अलग की गई गाय के समान व्याकुल हुई । इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

इस प्रकार व्याकुल होनेवाली माता को राम ने अपने हाथों से उठाया और यह कहकर साल्वना देने लगे कि हे अपूर्व पातिमत्यवाली माता ! नत्य की गरिमा ने युक्त रमादें चक्रवर्ती को क्या आप अनत्य-कुक्त करेंगी ? कहिए तां ।

शिला-मद्वश दृढ़ता से युक्त पातित्रत्यवाली कौशल्या को सात्वना देने के लिए राम ने उसके मन में बेठनेवाले, सुन्दर, सारगर्भित और कहने योग्य ये वचन कहे —

मुझे ऐसा भाग्य प्राप्त हुआ है कि मेरा उत्तम भाई राज्य पा रहा है। मेरे पिता ऐसे सत्यवादी हैं कि भूलकर भी असत्य नहीं कहते। मैं अरण्य में निवास करके फिर वापस आऊँगा। जन्म पाने से, इससे बढ़कर और क्या भाग्य प्राप्त हो सकता है?

आकाश, धरती, समुद्र तथा अन्य भूत भले ही मिट जावें, तो भी चक्रवर्ती की आज्ञा मेरे लिए अनुल्लंघनीय है। आप दुःखी न हों।

राम के वचन सुनकर कौशल्या ने कहा—हे तात! तो मैं भी यह नहीं कह सकती कि चक्रवर्ती की आज्ञा के अनुसार तुम (अरण्य में) मत जाओ। तुमको छोड़कर मेरे प्राण रह नहीं सकते। अतः, तुम अपने साथ मुझे भी बन में ले चलो।

तब राम ने कहा—हे माता! मुझसे वियुक्त हो चक्रवर्ती दुःख-सागर में छूटे हैं। ऐसी दशा में उन्हे सात्वना दिये बिना मेरे साथ बन में जाने का आपका निश्चय करना उचित नहीं है। कदाचित्, आपने धर्म का ठीक-ठीक विचार नहीं किया।

दृढ़ धनुधर्मी भाई भरत को राज्य सौंपकर जब चक्रवर्ती राज्य की सम्पत्ति से पृथक् हो तपस्या में निरत होंगे, तब उनके साथ रहकर आप भी अपूर्व ब्रतों का आचरण करेंगी।

आप क्यों इस प्रकार व्याकुल हो रही हैं? देवता भी महान् तपस्या के आचरण से ही तो उन्नत हुए हैं। (मेरे बनवास के) ये जितने वर्ष हैं, वे देवों के चौदह दिन^१ ही तो हैं।

पहले कौशिक मुनि की कृपा से मैंने जो विद्याएँ प्राप्त की और उन्हे प्राप्त करने के पश्चात् जो कार्य करके मैं भाग्यवान् हुआ, वे व्यर्थ नहीं हुए। अब भी ऐसे मुनियों की आज्ञा का पालन करना मेरे लिए उत्तम ही है।

मैं महान् तपस्वियों की सेवा करके, अलध्य ज्ञान प्राप्त करके, दोषहीन अनुपम विद्याएँ सीखकर एव देवों का प्रेम भी पाकर इस नगर में लौट आऊँगा, आप देखेंगी।

मगर भन्धों से पूर्ण समुद्र से आवृत पृथ्वी को खोदनेवाले, भ्रमरों से गुजरित पुष्पमालाएँ धारण करनेवाले सगर-पुत्रों ने अपने पिता की आज्ञा का पालन करके अपने प्राणों को त्याग दिया और उस कार्य से प्रभूत कीर्ति के पात्र बने।

हरिण को धारण करनेवाले शिवजी के हाथ के परशु के जैसे शस्त्र को रखनेवाले परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा का उल्लंघन न करके अपनी माता का सिर काट दिया था। अतः, मेरे लिए पिता की आज्ञा उपेक्षणीय है—यह सोचना भी उचित नहीं है।

राम ने इस प्रकार के अनेक वचन कहे। उनको सुनकर सत्यरूपी उज्ज्वल आभरण से युक्त कौशल्या सोचने लगी कि राम कौशल देश को अवश्य छोड़कर जानेवाला है।

फिर, कौशल्या यह विचार कर कि भरत पृथ्वी का राज्य करे, किन्तु मैं चक्रवर्ती से

^१ इस पृथ्वी में सूर्य का जो उत्तरायण और दक्षिणायन है, वे देवों के लिए दिन और रात है। अतः, मनुष्यों का एक वर्ष देवों का एक दिवस माना गया है।

ऐसी प्रार्थना करूँगी, जिससे राम को देश छोड़ बन में जाकर तपस्वी का जीवन व्यतीत करना न पड़े, (दशरथ के पास) जाने लगी ।

यो जानेवाली कौशल्या को नमस्कार करके और यह विचार करके कि चक्रवर्ती को तथा माता को मात्वना देने की सामर्थ्य रखनेवाली सुमित्रा देवी ही है, राम उसके मेघ-स्पर्शी प्रासाद में जा पहुँचे ।

उधर कौशल्या पैदल चलकर कैकेयी के आवास में पहुँची, वहाँ अपने पति को पृथ्वी पर गिरे हुए देखकर मूर्च्छित होकर ऐसे गिरी, जैसे प्राण निकलने पर देह गिर जाती है ।

फिर, प्रज्ञा पाकर कौशल्या कभी कहती—वियोग के अयोग्य व्यक्तियों से क्यों ऐसा वियोग होता है ? कभी कहती—हे गरिमामय ! यह क्या तुम्हारे लिए योग्य है ? कभी कहती—क्या यह न्याय है ? कभी कहती—हम दासों की दशा को आपने क्यों नहीं सोचा ? कभी कहती—आप निर्धनों के लिए उनके अभीष्ट धन बननेवाले हैं । कभी कहती—मुझ दीन एकाकिनी के आप ही अवलंब हैं । कभी कहती—क्या यह कार्य आपके विवेक के योग्य है ? कभी ‘हे राजन् । हे राजन्’ ! रटती ।

कभी कहती—हे चक्रवर्ती ! अधकार को मिटानेवाले सूर्य के समान अनुपम स्प में अपने आज्ञा-चक्र को प्रवर्त्तित करके, निर्विघ्न रूप से दड़नीति प्रवर्त्तित करके, अब क्या इस समार का, समस्त वस्तुओं के साथ विनाश करनेवाला प्रलय उत्पन्न करने के लिए आप यह कार्य कर रहे हैं ?

कभी कहती—हे वीचि-भरे समुद्र से आवृत पृथ्वी के निवासियों के तप-समान । वेद-प्रतिपादित तत्त्वों के सार-सदृश । हे करुणालय ! द्रवित मन होकर मैं गो रही हूँ, किंतु आप मेरी कुछ नहीं सुनते हैं । क्या यह उचित है ? हे सप्त लोकों के प्रभु !

कभी कहती—हे पुत्र ! तुम्हारे पिता किसी अचितनीय दासण पीड़ा से यो मूर्च्छित हो पड़े हैं कि विद्या त् समान उनकी देह प्राण हीन-सी हो पड़ी है । व कुछ बोलत नहीं हैं । अहो ! इसका कारण क्या हो सकता है ? आओ, चक्रवर्ती की यह दशा देखो ।

इस प्रकार रोनेवाली कौशल्या की कठध्वनि (सभा-मङ्गल में जाकर) प्रतिध्वनित होने के पूर्व ही उज्ज्वल करवालधारी राजा तथा ऋषिगण परस्पर—‘यह उचित नहीं है ।’ कहते हुए वसिष्ठ को देखकर कह उठे कि आप जाकर इसका कारण जात करें । तब वर्गिष्ठ मुनि चक्रवर्ती के निकट आये । आकर उन्होंने तीद्वन करवालधारी चक्रवर्ती की वह दशा देखी । उनके मन में आशका हुई कि न जाने इसका परिणाम क्या होगा ?

वसिष्ठ विचार करने लगे— (चक्रवर्ती) मृत नहीं है । विना मरे जीवित भी नहीं है । प्रजाहीन हो पड़े हैं । यह कैकेयी अव्याकुल खड़ी है । यह कौशल्या बदना ने छुल रही है । सासार में उत्पन्न मनुष्यों का स्वभाव विविध है । ग्रन्थ (गामान्य) व्यक्ति उसे समझ नहीं सकते ।

फिर, मुनिवार ने यह सोचकर कि दुर्घट में उद्दिष्टगता कौशल्या, दुर्घट का वारद नहीं बतलायगी । तब अपने सम्मुख अजलि वांधकर खड़ी हुई कैकेयी में पृछा—‘माना ।

चक्रवर्तीं मूर्च्छित हैं । इसका कागण क्या है, कहो । तब कैकेयी ने अपने कागण निष्पन्न वृत्तात् को स्वयं कह सुनाया ।

उसके सारा वृत्तात् कह सुनाने के पूर्व ही वसिष्ठ ने, चमकते करवाल की धारण कारनेवाले चक्रवर्तीं को अपने सुन्दर कमल-सदृश करो से धूलि-भरी पृथ्वी से उठाया और वह कहते हुए कि—‘हे शास्त्रज ! चिंतित मत होओ, कैकेयी स्वयं तुम्हारे पुत्र राम की राज्य दे देगी । तुम यह क्या कर रहे हो ? तुम अपना दुःख दूर करो’, वार-वार प्रार्थना करते हुए खड़े रहे ।

फिर, मुनिवर वसिष्ठ ने (दशरथ पर) शीतल जल छिड़का, पखा डुलाकर हवा की ओर बीरं-धीरे उन्हे प्रज्ञा में लाकर मधुर वचन कहे । तब उन (मुनि) ने, शीतल नमुद्र से उत्पन्न विष-समान कैकेयी के हलाहल-समान वचन के कुछ शात होने पर, अपने प्यारे पुत्र का नाम-न्मरण करनेवाले चक्रवर्तीं को होश में आने देखा ।

चक्रवर्तीं के प्राण लौटते देखकर वसिष्ठ ने कहा—हे नायक ! अब तुम अपनी गमीर बदना को दूर करो । अब पुरुषोत्तम (गम) ही राज्य करेंगे । उसमें कोई विघ्न नहीं होगा । गरिमाहीन वचनवाली कैकेयी स्वयं उनको राज्य देगी । यदि धनश्याम राम गज्याभिषिक्त न होकर बन में जायेंगे तो क्या हम यही रहेंगे ?—(अर्थात्, हम भी देश छोड़कर चले जायेंगे), तुम दुःखी मत होओ ।

यों विचार कर कहनेवाले मुनि के वचन सुनकर दशरथ बोले—इस दशा में रहनेवाले मेरे प्राणों के निकलने के पूर्व ही आप राम को सुन्दर राजसुकुट पहना दें और बन जाने से उसे रोक दें तथा मेरे वचन को भी असत्य होने से बचावे । हे प्रभु ! आप यह कार्य करें ।

तब मुनिवर ने गर्हित कार्य करनेवाली कैकेयी को देखकर कहा—हे लक्ष्मी-सदृश देवी ! अब तुम अपने पुत्र (राम) को राज्य, अन्य लोगों को उसके प्यारे प्राण तथा (वैवस्वत) मनु के वश में उत्पन्न अपने पति को प्राण देकर निष्कलक कीर्ति प्राप्त करो ।

बड़ी महिमावाले कर्मों को समूल नाश करके शक्तिशाली बने हुए वसिष्ठ के इस प्रकार कहने के पूर्व ही कैकेयी मिमक-मिसककर रोती हुई कह उठी—यदि चक्रवर्तीं अपने वचन से विचलित हो जायेंगे, तो मैं इस विशाल धरती म अपने प्राणों के साथ नहीं रहूँगी । अपनी वात सच्ची करने के लिए अभी मर जाऊँगी ।

तब मुनिवर ने कहा—तुम यह नहीं सोचती कि तुम्हारा पति मर जायगा, तुम्हारा अपयश दिन-दिन बढ़ता रहेगा, और इससे पाप उत्पन्न होगा । तुम अपना हठ छोड़ती नहीं । तुम कुछ नहीं समझती हो । इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हूँ ? यह कहकर पुनः कैकेयी को बै समझाने लगे ।

किंचित् भी करुणा से हीन, त्वरित गति से निकलनेवाले चक्रवर्तीं के प्राणों का भी विचार न करनेवाली, ज्ञात में द्वुमनेवाला अग्रिकण है या विष, ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले वचन को कहनेवाली है नारी ! तुम मानव-स्त्री हो या अभि या मायाविनी पिशाचिनी हो ? हे निष्टुरे ! अब दशरथ का तुमसे और इस मिद्दी से (अर्थात्, पृथ्वी में) क्या सवध है ? तुम्हें प्राप्त होनेवाला अपयश बहुत बलवान् है ।

चक्रवर्ती अपने मुँह से रामचन्द्र को बन जाने को कहे, इसके पूर्व ही तुमने (राम को बन जाने को) कह दिया । वह बन के दुस्तर मार्ग में गये बिना नहीं ग़हेगा । तुम वह कठोर अभि हो, जो कीर्ति तथा अपने पति के प्राणों को जला रही हो । तुम्हारे मद्दण कठोर और कोन होगा ? इससे बढ़कर क्रूर कार्य और क्या हो सकता है ?

निष्कलक मुनि के ये बचन सुनकर व्याकुल होनेवाले चक्रवर्ती ने जिहा म विष रखनेवाली उस स्त्री को देखकर कहा—हे पापिन ! क्या ‘कठोर बन मे जाओं’, कहकर मेरे प्राण (-सद्वश राम) को तुमने भेज दिया ? क्या वह चला भी गया ?

हे पापिन ! तुम्हारे मनोभाव को अब मैंने स्पष्ट जान लिया । तुम्हारे विवाधर के विष को अनेक दिनों तक मैंने पिया है । अतः, तुमने मेरे प्राणों को समूल खा लिया । मैंने अभि समझ तुमको पल्ली के स्पष्ट मे नहीं अपनाया । किंतु अपने जीवन का अत करने के लिए एक यम को ही खोजकर अपनाया था ।

मेरे नयन-समान राम को तुमने छल से बन मे भेज दिया । उससे सुर्खे तुम निहत कर रही हो । तुम अपयश से लज्जित नहीं होती हो । अब अनेक बचन कहने मे क्या लाभ ? हे अधम क्रे । तुम्हारे कठ का मगल-सूत्र^१ ही तुम्हारे पुत्र भरत का रक्षा-वधन होगा ।

इस प्रकार अनेक बचन कहने पर भी कैकेयी का मन पिघला न देखकर चक्रवर्ती मुनि से बोले—हे मुनिवर ! मैं अभी कहे देता हूँ, यह (कैकेयी) मेरी पल्ली नहीं है । इसे मैंने त्याग दिया । राजा बननेवाले उस भरत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता । वह पुत्रोचित कार्य (अर्थात्, पिता का मृत्यु-स्सकार) करने की योग्यता नहीं रखता ।

अत्यन्त वेदना से पीड़ित चक्रवर्ती ने उत्तम कौशल्या को देखकर पूछा—क्या राम (बन जाने के पूर्व) जैसे सुक्ष्मसे नहीं मिला, वैसे तुमसे भी मिले बिना ही चला गया ? तब कौशल्या, राम के विरह मे चक्रवर्ती की उम पीड़ा को देखकर अपने पूर्व विचार को (अर्थात्, दशरथ मे यह प्रार्थना करनी है कि राम को बन मे न भेजें) छोड़कर स्वयं व्याकुल हो उठी ।

अब कौशल्या को भी यह जात हो गया कि वह सब सपल्ली का कार्य है, चक्रवर्ती पहले वर देकर फिर पश्चात्ताप से मृच्छित हुए । यद्यपि वह (कौशल्या) अपने पति को सात्वना देने के लिए यह कहती रही कि हे राम ! तुम बन मे न जाओ, किंतु यह मोचकर मन मे चित्तित हुई कि यदि दशरथ के बचन सत्य न हो, तो समार मे उन्ह अपयश उत्पन्न होगा ।

अपने पति के दुःख से दुखी होनेवाली कौशल्या ने (चक्रवर्ती से) कहा—हे वलवान् । दृढ़ सत्य को अपनाकर, उम पर न्युग रहकर, फिर यदि व्याप प्रपने अभिन्न

^१. अंतिम वाक्य का यह भाव ह कि ‘मगल-सूत्र’ द्वारा राम का चिह्न ह । ऐनेदो वा मुहारा या अभिन्न काल तक नहीं रहेगा । उसके मिट्ठे से भरत की रक्षा भी समाप्त होगी । अर्थात्, दशरथ के भर न्युग पर भरत अनाथ हो जायगा और उसे द त्वं होना पड़ेगा ।—द्वू-

प्रेमवाले पुत्र पर प्रेम में व्याहुल हो और आपका अनिदनीय गौरव निराम्पद हो जाय, तो समार के लोग उस सत्य को स्वीकार नहीं करेंगे।^१

उत्तम कौशल्या-रूपी हसिनी ने सोचा कि मेरा पुत्र वन को गये बिना नहीं रहेगा। वह बार-बार वह आशका करती हुई कि पुत्र-विरह में चक्रवर्तीं जीवित नहीं रहेंगे, अत्यन्त शोक-मन्त्र हुई। वह फिर सोचती कि यदि पुत्र पिता की प्राण-रक्षा के लिए देश में ही रहेगा, तो उससे पति का यश मिट जायगा। यह विचार कर चिंतित होती। अतः, वह अपने पुत्र से भी यह नहीं कह सकी कि तुम वन में मत जाओ। अहो। अहो। कौशल्या कैसे शोक से सतत हुई थी।

पुष्पमालालकृत दशरथ ने उम (कौशल्या) के वचनों में जान लिया कि उत्तम की चिंताला राम नगर में नहीं रहेगा। अवश्य वन में जायगा। उससे वे शोकोद्धिम हुए और बोले—हे मुझ पापी के अवलब ! आओ। हे पुत्र ! मेरे सम्मुख आओ।

पुनः दशरथ अपने पुत्र के प्रति कहने लगे—हे पुत्र ! मेरे नयनों से मेरे प्राण भी द्रवित होकर वह रहे हैं। मेरी मृत्यु अब निश्चित है। चतुर्वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण अग्नि के सम्मुख तुम्हारा अभिषेक करने के लिए जो तीर्थ-जल लाये हैं, उनको मेरे मुँह में डालकर (अर्थात्, मेरी मृत्यु के इस ममय में मेरे मुँह में गगाजल डालकर) फिर तुम विशाल वन में जाकर रहो।

हे पुत्र ! बड़ी सेना के बल से सपन्न राजाओं को इक्कीस बार अपने फरसे से मारनेवाले, शक्ति में अपना उपमान स्वयं ही बने हुए (परशुराम) को भी तुमने धनुष से परास्त कर दिया था। किन्तु मैं (पापी) ने, 'कुलक्रम से प्रात मुकुट को धारण करो,' ऐसा कहकर तुरन्त ही तुमको जटामय छूँचा सुकुट दिया।

हे श्याम ! हे स्वच्छ मन ! हे अरुण नयनों तथा करों से शोभायमान ! हे क्षमागुण से पूर्ण ! त्रिपुर-दाह के ममय शिव के उपयोग में आनेवाले धनुष को तोड़नेवाले। मैं एकाकी हो गया हूँ। इस बुद्धापे की अवस्था में तुम मुझे छोड़ चले। अब मैं जीवित रहना नहीं चाहता।

स्वर्ण से भी अधिक उज्ज्वल स्वर्ण ! यश के भी यश ! विजली से भी अधिक कातिपूर्ण धनुष को धारण करनेवाले। सत्य के सत्य ! मैं इतना ज्ञुद्र नहीं हूँ कि अपनी बाँखी के सामने ही तुमको बन जाने दूँ। तुम्हारे बन जाने के पूर्व ही मैं स्वर्गलोक की चला जाऊँगा।

मेरा मन प्रेम से पिघलनेवाला है। मेरा शरीर प्रेम के कारण प्राण छोड़नेवाला है। मैं तुम्हारे समान (कठोरहृदय) नहीं हूँ। मैंने अपनी जिन बाँखों से तुमको जानकी का पाणि-ग्रहण करके बयोध्या में प्रवेश करते हुए देखा था, उनसे अब तुमको नगर छोड़कर जाते हुए नहीं देख सकता।

^१ मात्र वह है—जित सत्य को आपने स्वीकार किया है, उसके परिणामों को ढढता के साथ सहने में ही गौरव है। उसके परिणामभूत दुःख को देखकर व्याहुल होने में अगौरव ही है। —अनु०

तुम्हारे विरह को नगर के लोग भले ही मह लें, देवतालोग भले ही दु सी न हों, तो भी हे स्वर्णमय रथवाले । हे मेरे यशस्कारक ! हे मेरे प्राण ! तुमको जन्म देनेवाला, मैं तुम्हारे महत्व को जानता हूँ । अब अपनी दशा के बारे मे मैं क्या कहूँ ? मैं नहीं जिक्रँगा । मैं नहीं जिक्रँगा ।

मृदु सिकता से पूर्ण गभीर समुद्र से घिरी हुई विशाल पृथ्वी को, इस राज्य को, अक्षय सपत्नि को और अन्य सब वस्तुओं को छलनामयी कैकेयी को ही टेकर यश पानेवाला मेरा उदार मन अब मेरे प्राण मिटा देगा, मेरे प्राण मिटा देगा ।

शब्दायमान समुद्र से आवृत इस पृथ्वी के निवासियों मे, देवताओं मे तथा पाताल के निवासियों मे तुम्हारे सदृश सद्गुणों से भूषित कौन है ? हे स्वर्णतुल्य । जब परशुराम यह कहता हुआ आया था कि मेरे सामने खडे रह सकनेवाला वीर कौन है ? तब दृढ़ चित्त के साथ तुमने उसका सामना करके उसे परास्त किया था । ऐसे तुमको छोड़कर मैं कैसे रह सकता हूँ ?

तुम बन को जानेवाले हो, यह सुनकर भी मैं जीवित रहा । फिर भी, यदि अब मैं उत्तम स्वर्गलोक को नहीं जाऊँ, तो कठोरहृदय कहला सकता हूँ ? हे पुत्र । यदि तुम बन मे निवास करोगे और मैं इस कैकेयी को देखता हुआ इस नगर मे रहूँगा, तो मेरा स्वभाव नीच ही तो कहा जायगा ।

लक्ष्मी तथा भू-देवी बड़ी तपस्या करके ही तुम्हारे बलवान् वक्ष का आलिंगन कर सकी । तुम से वियुक्त होकर वे नहीं रहेगी, नहीं रहेगी । मैं पापी, हम मे वियुक्त होकर मग जाऊँगा । हे वत्स । तुम्हारे विरह मे भी यदि मैं जीवित रहा, तो क्या मैं भी कैकेयी के समान नहीं हो जाऊँगा ?

तुमको उत्तम आभरणो, किरीट, स्वर्ण-आमन, श्वेतच्छव तथा विशाल वक्ष पर आसीन जयलक्ष्मी के साथ शोभायमान होत हुए देखना चाहता था, किन्तु इसके विपरीत बल्कल, कृष्णाजिन आदि से युक्त रहते हुए तुमको कैमे देख सकता हूँ ? ऐसी अवस्था मे प्राण छोड़ देना ही मेरे लिए अच्छा है ।

इस प्रकार विविध बचन कहते हुए चक्रवर्ती यो व्याकुल हुए, जैसे उनके जीवन का अत आ पहुँचा हो । तब मृदुल कृष्णाजिनधारी सुनिवर (व्रिष्णि) ने उनसे कहा— हे राजन् । चित्तित मत होओ । मे उम राम को आज बन जाने मे रोक लूँगा ।

सुनिवर के बचन सुनकर मनुष्य-न्यूप मे स्थित (वैवस्वत) मनु-मदश चक्रवर्ती, जैसे लगत थे, जैसे तुरन प्राण छोड़नेवाले हो, यह विचार कर कि यदि ये परिशुद्ध स्वभाववाले मुनिवर कहेंगे तो गाम बन-गमन न करेगा, विचित् स्वस्थ हुए थीर एकाची हो अत्यन्त विकल होनेवाले अपने प्राणों को रोके रहे ।

चक्रवर्ती को व्याकुलप्राण तथा प्रगाहीन देखकर तथा यह नांचकर कि उनकी मृत्यु हो गई है, कौशल्या अत्यन्त व्याकुल हुई और कहा— पुन । इन नगर के साथ हमको भी तुमने छोड़ दिया । किन कहा—प्रभो । क्या शृण्य जीवन मे प्राप इनी

प्रकार मेरा माथ देनेवाले हैं । —(अर्थात्, आप गृहस्थ-जीवन में मेरा महारा देनेवाले हैं ; अब वैसा न करके मुझे छोड़कर चले जा रहे हैं—यह क्या धर्म है ?)

कौशल्या ने फिर कहा—हे सत्यस्वरूप ! हे ससार के राजाओं के राजाधिराज ! यदि आप अपने प्राणों को इस प्रकार पीड़ित करेंगे, तो मारा समार इससे दुःखी होगा । मुनिवर के नाथ कदाचित् हमारा पुत्र लौट आयगा । इसलिए, हे राजन् । आप चिंतित न हो ।

इस प्रकार के विविध वचन कहकर कौशल्या, चक्रवर्ती के शरीर पर, पैरों पर और मुँह पर अपने अरुण करों को फेरती हुई राजा को सात्वना देने लगी । तब चक्रवर्ती धीरे-धीरे प्रजावान् होकर बोले—क्या वह धनुर्धारी मेरा पुत्र लौट आयगा ? लौट आयगा ?

चक्रवर्ती बोले—कूर तथा छलनामयी कैकेयी ने कुवड़ी की बातों को सुनकर मेरे पूर्व दिये वर्गों के द्वारा मेरे प्राण लेने का निश्चय कर लिया । अपने महिमा-पूर्ण सुत तथा स्वय (अपने लिए) पृथ्वी का राज्य पाने के अतिरिक्त हाय ! मेरे ज्येष्ठ पुत्र को बन में जाने को कहा—बन में जाने को कहा ।

फिर चक्रवर्ती ने कौशल्या से कहा—हे कौशल्ये ! स्वर्ण अगद-धारी राम बन-गमन से नहीं रकेगा, मेरे प्यारे प्राण भी गये बिना नहीं रहेगे । इसका एक और कारण भी हैं सुनो, पूर्व में एक मुनि ने मुझे एक शाप दिया था । यो कहकर पूर्व घटित सारा वृत्तात सुनाने लगे ।

चक्रवर्ती ने कहा—पूर्वकाल में एक दिन मैं आखेट की उमग में बड़े बन में गया था और हाथियों और सिंहों को ढूँढ़ रहा था । फिर, एक सुन्दर नदी-तट पर जा पहुँचा, जहाँ हाथी सच्चरण करते थे । वहाँ हाथ में धनुष-बाण लिये हुए छिपकर खड़ा रहा ।

उसी बन में एक अधा तपस्त्री, अपनी अधी पल्ली-सहित रहता था । उनका प्रिय पुत्र ही उन मुनि-दपति का एकमात्र सहारा था । वह मुनि-पुत्र नदी में जल भरने के लिए आया । वह न जानकर, बल्कि कोई आगत आखेट समझकर मैंने शर-सधान किया । तब वह मुनिकुमार आहत होकर धरती पर लौट गया और विलाप करने लगा ।

मैंने उस मुनिकुमार द्वारा नदी में जल भरने के शब्द को सुन, यह समझकर शर छोड़ा था कि कोई हाथी जल पी रहा है । मैंने आँखों में देखकर शर-सधान नहीं किया । किंतु, हाथी की ध्वनि के बड़े नर की ध्वनि सुनकर आशकित होकर मैं उस स्थान पर जा पहुँचा ।

वहाँ मैंने उस कुमार को शर से बिद्ध होकर छटपटाते हुए देखा । उसके हाथ में कमड़लु लुढ़क गया था । तब मेरे शरीर, मन तथा धनुष शिथिल हो गये । उस मुनि-वालक पर गिरकर मैंने दुःख के नाथ पूछा—हे बत्स ! हाय ! तू कौन है ? कह । किंचित् भी अनत्य से परिचय न रखनेवाले उस (अवोध) वालक ने कहा—

मत्स्यावतार लेनेवाले (वेदों को चुरानेवाले राज्ञम को मारकर वेदों की रक्षा करनेवाले) भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न चतुर्मुख ने वेदोक्त प्रकार से जिन अनेक प्राणियों की सृष्टि की, उनमें मनुष्यों के चारुर्वणों में से प्रथम वर्ण में मेरा जन्म हुआ ।

चतुर्मुख की वज्र-परपरा में उत्पन्न काश्यप का पुत्र था विद्युत-भगवान् यजोपवीत

से शोभित वक्षवाला वृत्तेश, उमका पुत्र था चतुर्वेंद्रज शलभोजन (चलभोजन २) उमी का मैं पुत्र हूँ । मेरा नाम सुरेचन है ।

इस समय, अपने नेत्रहीन माता-पिता के लिए जल लेने यहाँ आया था, यहा यह विपदा उत्पन्न हुई । हे पर्वत-समान कधीवाले । तुमने (मनुष्य) न जानकर हाथी के ब्रह्म से वाण प्रयुक्त किया । यह नियति का कार्य है । अतः, तुम दुःखी मत होओ ।

तीव्र पिपासा से मेरे माता-पिता दुःखी हो रहे हैं । हे अनुपम ! तुम जल ले जाकर मेरे माता-पिता को दो और मेरी मृत्यु का समाचार देकर उनसे कहो कि स्वर्गलोक को जाते हुए तुम्हारे पुत्र ने तुमको प्रणाम किया है । यह कहकर वह मुनि-कुमार स्वर्गलोक में देवों के स्वागत का पात्र बनकर चला गया ।

अपने पुत्र की प्रतीक्षा में ही वैठे हुए उन वृद्ध तपस्वी-दपतियों के रिकट में जब उनके पुत्र को और जल को लेकर पहुँचा । तब वे बोले—हे वत्स ! तू इतना विलव करके लौटा है । हम यह सोचकर दुःखी हो रहे थे कि तुम पर कोई विपदा तो नहीं आई । हे चटन-गध से युक्त भुजावाले । आओ, हम तेरा आलिङ्गन करेंगे ।

तब मैंने कहा—हे स्वामिन् । मैं अयोध्या का रहनेवाला एक गजा हूँ । मैं शिकार की खोज में अँधेरे में बैठा हुआ था । उमी समय आपका सत्यभाषी पुत्र बमडलु ग जल भरने लगा । तब आँखों से देखे बिना, केवल शब्द को सुनकर मैंने वाण चलाया ।

शर के लगने पर (आपके पुत्र ने) जब शब्द किया, तब यह जानकर कि यह हाथी नहीं, किन्तु कोई मनुष्य है, दौड़कर वहाँ गया और उससे पूछा कि तुम कौन हो ? सब वृत्तात कहकर वह शान्त हो गया और देवों के द्वारा स्वागत पाकर स्वर्गलोक में जा पहुँचा ।

मैंने वाण से (आपके पुत्र को) मारा, इससे आप सुक्षपर क्रोध न कर । उम निरपराध के जल भरने सं उत्पन्न शब्द को सुनकर मैंने उम दिशा में गर छोड़ा, किंतु आँखों से उसे नहीं देखा । मेरे इस अपराध को ज्ञामा करें । यह कहकर मैंने उनक चरणों को अपने मिर पर रख लिया ।

(पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर) वे मुनि-दपति गिर पड़े, मर्जित हुए लोटने लगे । फिर कहने लगे—या ज मच्चमुच्च हमारे नयन फट गये । व शोक-ममुद्र में दृढ़ गये । हे तात ! हे तात ! कहकर चिल्ला उठे । कह उठे कि तुमने हमारे हृदय के दृक्कुं दुकड़े कर दिये । फिर बोले—(हे पुत्र) तुम स्वर्गलोक में चले गये । अब हम यहाँ नहीं सकते । हम भी आ गये, आ गये ।

इस प्रकार शोक-मम मुनि-दपति के चरणों को प्रणाम करके मैंने कहा—आज ने मैं ही आपका पुत्र हूँ । आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ, मैं आपकी सेवा में निष्ठ रहूँगा । आप किंचित् भी शिथिलमन न हो । शोक को दूर कर द । नेग कथम नुनग उन्होंने कहा—हे दद धनुषधरिन् । सुनो, फिर व यो बोले—

आँख का तारा जैसे पुत्र को खोकर भी प्राणों पर लालसा रखदर पहि ॥
भोजन करने वैठे गर्गे, तो समार के लोग हमारी निढ़ा करंगे । एम .३८ मृग १०८८ ॥

कव रामायण

२१०

हे अलकृत अश्ववाले । तुम भी हमारे जेमे ही अपने पुत्र के विग्रह में (संसार का जीवन समाप्त करके) स्वर्ग में जाओगे ।

हे निरतर असद प्रकाश से शोभित श्वेतच्छववाले । तुमने प्रार्थना की है कि मैं आपकी शरण में हूँ । आप मेरी रक्षा करें । अतः, हम तुमको भयकर शाप नहीं दे रहे हैं । आज अपने प्यारे पुत्र से, जो आज्ञा दिये बिना ही, इगित-मात्र से सब कुछ जानकर हमारी इच्छा पूरी करता था, वियुक्त होकर जिस प्रकार हम स्वर्ग जा रहे हैं, उनी प्रकार तुम भी विशाल स्वर्गलोक में जाओगे । वह कहकर वे स्वर्गलोक को सिधार गये ।

मैं अपने मन में किञ्चित् भी व्याकुल न हुआ किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके इन वचन से कि मेरे मधुर वचनवाला पुत्र होनेवाला है, आनन्दित होता हुआ नगर को लौटा । उम सुनि के कथन के अनुसार अब राम का वन-गमन और मेरा प्राण-त्याग दोनों अवश्य सघटित होनेवाले हैं । इसमें किञ्चित् भी परिवर्तन नहीं होगा, चक्रवर्ती ने यों कहा ।

चक्रवर्ती इस अत्यन्त दुःखदायक कथा को कहकर व्याकुल हो पड़े रहे । तब कौशल्या शोकोद्धित होकर मूर्च्छित हो गई । सुनिवर (वसिष्ठ) विधि के परिणाम से उत्पन्न होनेवाली दुःख-परपरा को देखकर व्याकुल हुए और शीघ्र चलकर—

प्रभूत कीर्तिमान्, पुण्यवान् तथा पर्वत-सद्वश उन्नत मत्तगजों से युक्त चक्रवर्ती के मनोहर प्रासाद के समुख, उत्तम सभा में जा पहुँचे, जहाँ नगाड़े वज रहे थे और राजा लोग राम के अभिषेक के लिए एकत्र थे ।

शङ्खधारी राजाओं ने आये हुए सुनिवर को देखकर पूछा—हे पिता ! क्या कोई विन उपस्थित हुआ है ? अपार पीड़ा से रोने की यह ध्वनि कैसी सुनाई पड़ रही है ? यह हमें वताकर हमारे मन को शान्त करें ।

सुनि ने उन राजाओं से कहा—कैकेयी ने चक्रवर्ती से दो वर प्राप्त किये थे । अप्रतिहत दडनीतिवाले राजा ने भी वे वर उसे दिये थे । कैकेयी ने उन वरों में से एक ने राम को वन-गमन की आज्ञा देने के लिए (राजा को) महमत किया है, यही घटित हुआ है ।

चक्रवर्ती की आज्ञा से कैकेयी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र (भरत) आदिशेष पर स्थित पुष्ट्री की रक्षा करेगा । ऊँचे कधोवाला, सीता का पति, राम वन में जाकर रहेगा ।

अभिन्नमत्यस्वभाववाले सुनिवर के वचन अपने कानों में पड़ने के पूर्व ही, अघट प्रेम में युक्त राजा लोग, सुनिगण, अन्य लोग एवं कच्चुक-वद्ध स्तनोवाली स्त्रियाँ, सब दशरथ के समान ही (मूर्च्छित हो) गिर पड़े ।

मवके शरीर, जैसे धाव पर आग रख दी गई हो, ऐसे ही पीड़ित होकर जलने लगे । वे निःश्वास भरते हुए और गद्गाढ वचन कहते हुए धरती पर गिरकर लोटने लगे । उनकी आँखों से वहनेवाला जल भस्त्र के समान था । उस समय सब दिशाओं से जो बड़ी गंडन-ध्वनि निकली, वह स्वर्ग तक गंज उठी ।

प्रभजन के चलने से कपित होनेवाली पुण्यलता के समान स्त्रियाँ अत्यत दुःख से

धरती पर गिर पड़ी, तो उनके आभरण और मगल-सूत्र विखर पड़े। उनके केशपाश चुन गये और उनकी थम-सदृश अँखें लाल हो गईं।

राजा लोग कहते—हाय। हाय। चक्रवर्तीं करुणा-हीन हो गय। हम धर्म की रक्षा नहीं करके उमे छोड़ देंगे और वे आँधी में गिराये गये बड़े बृक्ष के समान पुश्ची पर गिरकर रोने लगे।

‘उदार (राम) वन को जानेवाले हैं’—इस वचन मात्र में शुक और मार्गिकाएँ भी रो पड़ी। उच्चे प्रासादों में निवास करनेवाले मार्जार भी रो पड़े। स्प को पहचानने में असमर्थ शिशु भी रो पड़े। तो, अब वहे लोगों के बारे में क्या कहा जाय?

रक्त कुबलय तथा विवफल की समता करनेवाले मैंह में, कुट पुष्पों के जैसे दाँतों को प्रकट करती हुई तथा परस्पर मटे हुए (पीन) स्तनों पर जैसे मुक्ता-माला टूटकर गिरी हा, एंस ही अश्रुधारा बहाती हुई, जिह्वा पर ठीक-ठीक अचित नहीं होनेवाली बोली में युक्त श्रियाँ गईं।

चक्रवर्तीं के समान ही गायें रोड़। उन गायों के बछड़े रोये। सभी विक्रित पुष्प रोये। जलचर पक्षी रोये। मधु बहानेवाले उपवन रोये। गज रोये और गधों ग जुते हुए बलवान् अश्व भी रोये।

यह न सोचकर कि राम से वियुक्त होकर जानी लोग भी जीवित नहीं रहेंगे, जिस कैकेयी ने अपने पर्ति से गम को ‘वनवास दो’ यह वचन कहा था वह (कैकेयी) तथा क्रूर कुवरी—इन दोनों के अतिरिक्त और कोन ऐसे कठोर हृदयवाले थे, जो इस गमय रोये नहीं हो। सब लोग (दुःख की अधिकता से) जल के समान पिघल गये।

जो प्रजाहीन (वेहोश) हो गये, उन लोगों की गिनती ही नहीं रही। गधों के आवागमन से जो वीथियाँ धूलि से भर गई थीं, उनमें अश्रुधाराएँ वह चलीं। हॉ. एक कमी रह गई, वह यह कि उनके मन जो अरूप थे, छिन्न होकर नहीं विखर पाय।

अयोध्या के निवासियों में कोई कहते—यह भू-देवी के पाप का फल है। कोई कहते—कमल पर आभीन लहस्ती देवी का पाप उससे भी बड़ा है। कोई कहत—विधि ने सब हृदयों को विकृत कर दिया और कोई कहत—ससार के लोगों के नेत्रों न जा पाप किया है, वह समुद्र से भी बढ़ा है।

कोई कहते—भरत गाज्य नहीं करेगा। कोई कहत—प्रभु (गम) अब (नगर को) नहीं लौटेंगे। कोई कहत—यह गाज्याभिपेक भी क्या आया, यह हमारे लिए काल बन गया। और कोई कहते—हम अभी तक जीवित हैं, हमसे अधिक निष्ठुर और कोन हो सकत हैं?

कोई कहते—चक्रवर्तीं ने कैकेयी पर अधिक प्रेम के कारण विवेकीन हावर दर दिये और कोई कहत—पीता और राम के साथ हम भी घोर बन में जायेंगे। प्रथा अंग म प्रवेश कर मरेंगे।

कोई धर्मी पर हाथ फैलते हुए, अपने अश्रुजल का लीप रहे थे। कोई ‘र्णाशङ्का’ देवी अब जीवित नहीं रहेंगी, कहते हुए निरन्तर नि श्वास भर रहे थे। कोई “र्णनिधि कुमार (लहस्त)। क्या तुम यह सह नकोने?”—कहत थे। इस प्रसार उम वक्षान नगर के लोग अग्नि में गिरे धृत के समान हो रहे थे।

कुछ लोग कहते—कैकेयी ने अपने पुत्र के लिए राज्य तो माँगा, किन्तु राम को देश से निष्कासित क्यों कर रही है ? इसका कारण इतना ही है कि इसने ऐसा पाप-कार्य बरने वा निश्चय कर लिया है । और, कोई यह कहकर व्याकुल होत कि यह कैकेयी गत अधरवाली गणिका-तुल्य है, क्योंकि इसके हृदय में पति के प्रति गाढ़ानुरक्ति नहीं है ।

कुछ लोग कहते थे—क्या चक्रवर्ती ने घोर तपस्या करके अपने प्राणों को छोड़ने का निश्चय किया है ? नहीं तो, क्या इस समार के रहनेवाले सब लोगों को मारकर इसे समूल विनष्ट करने का यह उपाय है ? अहो ! कैकेयी को दशरथ का यह वर देना भी भला है । भला है ।

रामचन्द्र जिन्होंने प्राप्त राज्य को उस (कैकेयी) को दे दिया है, स्वयं ज्येष्ठ होकर जन्म पाने के कारण त्रिलोक के राज्य के अधिकारी हैं । हम सब उनसे पृथक् न होकर वन में जाकर उनके साथ निवास करेंगे । वैसा करने में भाड़ तथा वृक्षों से भरा हुआ कानन भी कुछ दिनों में नगर वन जायगा ।

दशरथ का यह कार्य भी कैसा विचित्र है ? अपने उपमा-रहित ज्येष्ठ पुत्र को पहले राज्य देकर फिर न्याय-भ्रष्ट होकर उनके अनुज को वह राज्य दे रहे हैं । क्या यह मत्त्व के विरुद्ध नहीं है ?

नगर के लोग कहते—विजयमाला-भूषित धनुष को धारण करनेवाले राम को जो पृथ्वी प्राप्त हुई है, उसे दूसरा कोई कैसे अपना सकता है ? सीता देवी इस नगर को छोड़कर जायेंगी, तो क्या राज्यलक्ष्मी भी (उभी प्रकार वन में न जाकर) छलनामयी कैकेयी के पुत्र को अपनायगी ?

विना वत्ती को बढ़ाये और विना तेल डाले ही जलनेवाले और पवन के झोंके से भी विकृत न होनेवाले दीप के मद्दश (शरीर-कातिवाली) स्त्रियाँ क्या अब कौपती हुई, अरुण कमल-समान विशाल नयनवालं प्रसु की कृपा-र्द्दृष्टि प्राप्त किये विना, जीवित रह सकेंगी ? हाय । यह कैसा दुर्भाग्य है ।

जब इधर ऐसा हो रहा था, तब कर्निष्ठ कुमार (लक्ष्मण) ने यह सुना कि स्वभावत तीदण रहनेवाले भाले की समता करनेवाली आँखों से युक्त विमाता ने क्रूरता सहित, अपने वर से पृथ्वी (के राज्य) को माँग लिया है और ज्येष्ठ भ्राता को वन दे दिया है । यह सुनते ही वह, किसी के द्वारा प्रज्वलित न होनेवाली प्रलय-काल की अग्नि के समान क्रोध से उमड़ उठा ।

(लक्ष्मण के) नयनों की कीरों से आग वर्ग पड़ी । भोहों के रोम ललाट पर चढ़ गये । उनकी उग्रता से गगन का सूर्य भी अस्त-व्यस्त होने लगा । उनकी देह से स्वेद वह चला । उनके अन्तर की प्राणवायु वाहर प्रकट हुई । यो अति ऊँचे आकारवाले लक्ष्मण अपने आर्द्धिरूप (अर्थात् आदिशेष^१) की ही समता करने लगे ।

यह कैकेयी मिह-शावक के लिए रखे हुए स्वाद-भरे मास को, विकृत नयनों से

^१ लक्ष्मण आदिशेष के अवतार हैं ।

युक्त ज्ञुद्र श्वान को देना चाहती है। अहो। इस नारी की बुद्धि भी अच्छी है। इस प्रकार कहकर गगा के अधिपति^१ (लक्ष्मण) हाथ-पर-हाथ मारकर हँस पडे।

लक्ष्मण ने चारों ओर रत्नों से जटित करवाल को अपने पार्श्व में बाँध लिया, धनुष को उठा लिया। शीतल मेह पर्वत पर स्थित बाँधी के समान तृणीर को पीठ पर बाँध लिया और रक्त स्वर्ण से निर्मित कवच से अपने उन्नत कधों तथा वक्ष की आवृत्त कर लिया।

उनके पैरों के बीर-ककण ऐसी ध्वनि कर रहे थे कि उनसे ममुद्र भी लज्जित होते थे। धरती को छूनेवाली (उनके धनुप की) डोरी की बड़ी ध्वनि युगान्त काल में सत समुद्रों के जल को पीकर गरजनेवाले मेघ की ध्वनि से भी तिगुनी अधिक थी।

स्वयं (अर्थात् लक्ष्मण) और उनके ज्येष्ठ भ्राता (राम) इन दोनों को छोड़कर, अन्य सब त्रिलोकवासी प्राणी ‘ऐसा सोचकर कि विशाल आकाश, धरती, इत्यादि पाँचों अपार भूत ऊपर से नीचे की ओर गिर रहे हैं,’ भय से कौपने लगे। ऐसा उस लक्ष्मण का बीर-वप्त था।

लक्ष्मण गरजकर बोले—युद्ध में आये सब बीरों को मिटाकर में भूमि का भार कम करूँगा। उनकी देहों से धरती को पाट ढूँगा। मेरे प्रभु (राम) को आज ही में विजयप्रद मुकुट पहनाऊँगा। जो सुझे रोकनेवाले हों, आवे, रोकें।

देव, मर्त्य, विद्याधर, नाग तथा अन्य सब स्थानों के निवासी पडे रहे। भूमि की सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करनेवाले स्वयं त्रिदेव भी क्यों न मेरा सामना करने आवे, तो भी मैं नारी की इच्छा (अर्थात्, कैकेयी की इच्छा) पूर्ण नहीं होने ढूँगा।

चक्रवर्ती-कुमार लक्ष्मण आकाश के मध्य-स्थित सूर्य के समान उग्रता दिखा रहे थे। उस नगर में वे इस प्रकार धूम रहे थे, जैसे सुन्दर शिखरों से युक्त मदर-पर्वत पूर्वकाल में द्वीरसमुद्र के मध्य धूमा था।

उस समय राम, विरोधकारी क्रता से पूर्ण कैकेयी के द्वारा उत्पादित उत्पात से व्याकुल होकर, सात्वना देने पर भी शान्ति न पानेवाली सुमित्रा के पास थे। उन्होंने अपने सहचर वलवान् अनुज (लक्ष्मण) के धनुप-रूपी मेघ से उत्पन्न, ब्रह्माड को भेदनेवाले टकार-रूपी गर्जन को सुना।

तुरत वे, अन्यत्र दुर्लभ शोभा से युक्त आभणों की काति को चारों ओर विखेरते हुए, वक्ष पर उज्ज्वल मुक्तामाला से शोभित होने हुए, किनी में शात न होनेवाली

^१ लक्ष्मण को गंगा का अधिपति कहा गया है। इसका विविध प्रकार से व्याख्या की गई है। (क) कोशल देश की सीमा में गगा वहती है, अतः कोशल के राजा गगापति माने जाते हैं।

(ख) सरयू नदी का एक नाम है 'रामगगा'। कोशल देश में रम नदी के बहने से वहाँ के राजा गगापति हुए।

(ग) सब नदियों के लिए गगा शब्द का व्यवहार साधारण है। अतः यहाँ गगा का प्रथम मान्य है। इस देश का राजा लक्ष्मण गगापति है।

(घ) गगा यो स्वर्ण से भूती पर लानेवाले थे मानी गये, उनके देश में दक्ष एवं वानेश नाम दिया गये हैं। —५२०

प्रलयकालीन अभिंगि को भी शात करनेवाले कालमंघ के समान, अनुपम और मृदुल वचन-स्थी वर्षा वी वृद्धे वरसाते हुए आये ।

उज्ज्वल स्वर्ण-समान देह तथा मंघ-समान विशाल हाथों से शोभायमान लक्ष्मण को विद्युत्-समान क्रोधाभिंगि प्रकट करते हुए देखकर रामचन्द्र ने कहा—हे मेरे बत्त ! अभी क्रोध न करनेवाले तुम अब युद्ध के लिए नन्दित हो गये हो । यो धनुष उठाने का क्या कारण है ?

तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया मत्य को मिटाकर, तुम्हारे असाधारण राज्य को तुम ने छीननेवाली और काले मनवाली उस (कैकेयी) की आँखों के सामने ही तुमको राज-मुकुट पहना दूँगा । इसमें विष्व डालने के लिए स्वयं देवता भी क्यों न आवे, उनको में तूल को जलानेवाली अभिंगि के समान जला दूँगा ।

जबतक यह दृढ़ वनुप मेरे हाथ में रहेगा, तबतक वे देवता भी कुछ विष्व उत्पन्न करते का नाहस नहीं कर सकते । यदि वे विष्व उत्पन्न भी करें, तो भी मैं अपने शर का लक्ष्य बनाकर उन्हें जला दूँगा और चहूर्दश सुवन की रक्षा का भार अभी आप को नाप दूँगा । आप उसे स्वीकार करें—यो लक्ष्मण ने कहा ।

अपने वनुज की बाते सुनकर राम ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सदा शास्त्र विहित न्याय के अनुकूल मार्ग में चलती है । किन्तु, आज नीति के विस्तर, अविनश्वर धर्म को भी मिटाता हुआ वह क्रोध तुम्हारे मन में कैसे उत्पन्न हुआ ?

ज्येष्ठ भ्राता के यह कहने पर, लक्ष्मण अपने दौतों को प्रकट करते हुए हँस पड़े और कहा—आपके पिता ने कहा कि यह विशाल पृथ्वी तुम्हारी है, तो इस पृथ्वी को स्वीकार करके, पुन उसे खोकर आप वन को जा रहे हैं । ऐसे समय में सुर्खे क्रोध उत्पन्न न होकर और किन समय उत्पन्न होगा ?

मेरी आँखों के सामने ही आपको राज्य देकर, फिर 'नहीं कह देनेवाले तथा क्रूर नेत्रवाले चक्रवर्ती के समान ही प्रेमहीन माता (कैकेयी) हुम को अरण्य भेज रही है, ऐसे समय में क्या मैं दुखदायक इत्रियों से युक्त इस देह का धारण करके अपने प्राणों की रक्षा करता रहूँगा ?

यही मेरे क्रोध का कारण है । इस प्रकार, लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही अपने बछड़े पर प्रेम रखनेवाली गाय के समान, विविध योनियों में उत्पन्न वाणियों की रक्षा करनेवाले, अपने करों में आशाचक तथा दृढ़ कोदड़ धारण करनेवाले, मनु नामक उन्नत स्कंधोवाले वीर के वश में उत्पन्न श्रीराम ये वचन कहने लगे ।

विद्युत् को अपनी काति से परास्त करनेवाले तथा सर्व-किरण एवं अभिंगि से निर्मित भाला को वारण करनेवाले (हे लक्ष्मण) । मुकुटधारी चक्रवर्ती ने जब राज्य का भार मुर्खे देने की बात कही, तब यह विचार किये विना ही कि यह राज्य पीछे अनेक कष्ट उत्पन्न करेगा, मैं इसे स्वीकार करने को राजी हो गया । यह मेरा ही अपराध है । इसमें चक्रवर्ती का क्या दोष है ?

स्वच्छ जल के सूख जाने में नदी का कोई दोष नहीं होता । इसी प्रकार (मुर्खे

वन जाने की आज्ञा देने में सुझ पर अधिक प्रेम रखनेवाले) चक्रवर्ती का काँड़ दोप नहीं है । जन्म देकर अब सुझे वन में जाने की आज्ञा देने में, अबतक हम पर वात्सल्य रखनेवाली माता (कैकेयी) का भी दोष नहो है । इसमें (कैकेयी) के पुत्र भरत का भी दोप नहीं है । है बत्स । यह विधि का ही दोष है । इसके लिए तुम क्यों क्रोध करते हो ? —यो श्रीराम ने कहा ।

तब लक्ष्मण ने लुहार की विशाल भट्टी की अग्नि के नमान, निःश्वास भरकर उत्तर दिया—ताप से भरे अपने इस हृदय को मैं कंसे शान्त करूँ ? मैंग यह धनुप उत्पात उत्पन्न करनेवाली (कैकेयी) के मन में सन्मति उत्पन्न करेगा और त्रिदंबो के वश में भी न रहनेवाली बहुत ही बलवान् नियति के लिए भी नियति बनेगा । थाप देखेंगे ।

लक्ष्मण के यो कहने पर राम ने उससे कहा—हे तात ! बदों के तत्त्व को जाननेवाले तुम, अपने मुँह में जो कुछ बात आती हों, उसे कह रहे हो । तुमने जो कहा, वह धर्म का अनुसरण करनेवाले लोगों में नहीं देखा जाता । (तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कार्य करनेवाले) जब तुम्हारे माता-पिता ही हैं, तब उनपर क्रोध कैसे कर सकत हो ?

चन्द्रकला को शिर पर धारण करनेवाले रुद्र के समान रीष से भरे हुए लक्ष्मण ने कहा—दूसरों को अपना स्वत्व दान करने की सीख पाये हुए है उदार । मेरे उत्तम पिता आप हैं । स्वामी आप हैं । जननी आप हैं । मेरे अन्य कोई नहीं हैं । आज आप मेरे धनुप के प्रभाव को देखें । और, उसने आगे का कार्य करने के लिए अपना हाथ उठाया ।

तब वरद (राम) उससे कहने लगे—माता (कैकेयी) ही, जिसने वर प्राप्त किया है, वास्तव में इस राज्य को पाने का अधिकार रखती है । उसके और मेरे पिता की आज्ञा से भरत इस राज्य का अधिकार प्राप्त करेगा । अब मैं जो ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाला हूँ, वह है तपस्या । वह इस राज्य से भी अधिक सुखदायक है । उसमें बढ़कर वस्तु और क्या हो सकती है ?

राम आगे बोले—हे भाई ! तुम्हारा यह कोप केसे शात होगा ? क्या इन समार की माया से पृथक् रहकर पवित्र सन्मार्ग पर जीवन व्यतीत करनेवाले भाई (भगत) को युद्ध में मारकर, या महापुरुषों के द्वारा प्रशसित अनुपम कार्य करनेवाले पिता (वशरथ) को पीड़ा देकर, अथवा जननी को परास्त करके ? —कहो, कैंग शात होगा ?

मन को प्रभावित करनेवाले वचन कहने में समर्य (राम) के वचनों के उत्तर म लक्ष्मण ने कहा—शत्रुओं के द्वारा भी प्रशसा पानेवाला मैं, वहें हुए दो पर्वतों के समान दो भुजाओं का भार व्यर्थ ही वहन कर रहा हूँ । तूणीर एवं दृढ़ धनुप को भी ढोने के लिए मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अब (मेरे) क्रोध करने से क्या लाभ ?

तब दक्षिण की भाषा (-रूपी समुद्र) के पारगत तथा सम्भूत-भाषा के जात्य तथा विज्ञान की सीमा तक पहुँचे हुए राम ने लक्ष्मण से कहा—अबतक जिन पिता ने मृग मधुर वचन कहकर तथा पाल-पोमकर बड़ा किया उनके वचन का उल्लंघन नहीं तुम याँ द कुछ करोगे, तो उससे तुम्हारी क्या हानि होगी ?

^१ अन्तिम वाक्य में लक्ष्मण की जालोचना अनिवार्य है । —भनु ।

कभी पीछे न हटनेवाले प्रभु (राम) की आज्ञा से लद्धमण ने अपना क्रोध शात किया और प्रभु के सम्मुख खड़े होकर चार बेंदों के समान ही अपने विवेक से कुछ वचन कहना छोड़ दिया। अपनी बेला का अतिक्रमण न करनेवाले समुद्र के समान लद्धमण अपने में उपशात हो गया।

(भाव यह है—बंद भी जिस भगवान् के सम्मुख मौन हो जाते हैं, उसी प्रकार लद्धमण भी उसके सम्मुख हारकर निरुत्तर खड़ रहे।)

तब प्रभु ने लद्धमण का ऐसे आलिंगन किया, जैसे वे (राम) स्वयं जिसका आठि और अन्त नहीं पहचान सकते, वे उन्हीं (राम) के स्वरूप (अर्थात् विष्णु), स्वर्णवर्ण मृगचर्चस को पहननेवाले शिवजी का आलिंगन कर रहे हैं। फिर, मधुर वचनों से युक्त सुमित्रा देवी के प्रासाद में (लद्धमण के माथ) जा पहुँचे।

सुमित्रा ने, अपने दो नंत्रों-जैसे उन दोनों (राम और लद्धमण) को देखा, जो ढड़कारण्य में जाने का निश्चय करके आये थे, तो उसका हृदय विटीर्ण हो गया। वह शोक-समुद्र का पार न देखती हुई धरती पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी।

तब रामचंद्र दुःखी सुमित्रा के, उसके काटनेवाले दुःखरूपी करबाल से उसको वचाने के लिए, उसके चरणों को नमस्कार करके मन को सात्वना देनेवाले वचन बोले—युद्ध में निपुण शत्रुघ्नारी चक्रवर्ती को मैं अमत्यवादी नहीं बनाऊँगा। काले मेघों से युक्त विशाल वन को थोड़ा देखकर मैं यहाँ लौट आऊँगा।

मैं वन में जाऊँ, समुद्र में जाऊँ, कोलाहल से भरे देवलोक में जाऊँ, मेरे लिए कोई भी स्थान महिमामय अयोध्या के समान ही होगा। मुझे दुःख देनेवाला कौन है? अत आप व्याकुलप्राण और कृशगात्र होकर मूर्च्छित न हो।

जब वे (राम लद्धमण) सुमित्रा के दुःख को ऐसे शात कर रहे थे, जैसे वे अग्नि को बुझा रहे हैं, तब रोग की पीड़ा को न महनेवाले जीव के जैसे लचीली कटिवाली कुछ स्त्रियाँ अमिट अपयशवाली कैकयी के द्वारा दिये गये वल्कल लेकर उनके निकट आईं।

(कैकयी की दासियाँ) कालमेघ-सट्टश राम को ज्यो-ज्यों देखती थी, त्यो-त्यो उनकी आँखों से भी अविक उनका मन पिघलकर पानी हो रहा था। उन्होंने राम से कहा—विपदा में पड़े हुए अन्य लोगों को पीड़ित देखकर भी अपने निश्चय से न डिगनेवाली कठोरहृदया (कैकयी) के भेजने से हम ये वल्कल (आपके लिए) लाइ हैं।

तब अनुज (लद्धमण) ने उज्ज्वल सुक्तातुल्य दौतीवाली उन दासियों को देखकर कहा—नवीन तथा वैभवमय राज्य को जिन कैकयी ने (राम से) छीन लिया है, उनके दिये हुए सब प्रसाधनों को पहनने के लिए उत्पन्न ये मेरे भाई खड़े हैं। हाथ में युद्ध के योग्य वनुप को रखे हुए मैं भी निष्क्रिय होकर यह सब देखने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। उन प्रसाधनों को दिखाओ।

फिर, गग्न ने उन दासियों के दिये वल्कलों को आठर के साथ लेकर पवित्र सुमित्रा देवी के स्वर्ण-आभरणों से भूषित चरणों को यह कहकर प्रणाम किया कि हे हमारी स्वामिनी, यदि आप हमें यह आज्ञा दें कि पीड़ाजनक कष्टों से मुक्त होकर तुम (वनवास

के लिए) अविलंब जाओ, तो आपकी वही (आज्ञा) हमारी सहायता करनेवाली होगी ।

तब सुमित्रा ने लक्षण के प्रति ये वचन कहे—वन तुम्हारे जाने के लिए अयोध्या नहीं है । वह वन ही तुम्हारे लिए अयोध्यानगर होगा । तुम पर गाढ़ अनुगग रखनेवाले ये राम ही तुम्हारे लिए दशरथ हैं । पुष्पालकृत केशोवाली सीता ही तुम्हारे लिए व माताएँ हैं, जिन्होंने राम के राज्य त्याग कर वन जाने पर भी अपने प्राण नहीं त्यागे । इस प्रकार का विचार रखकर तुम राम के सग वन में जाओ । अब तुम्हारा यहाँ रहना अपराध होगा ।

पुनः सुमित्रा ने उससे कहा—हे पुत्र ! इन (राम) के पीछे-पीछे जाओ । उनका भाई होकर नहीं, किन्तु उनका दास होकर जाओ । उनकी सेवा करना । यदि ये राम नगर को लौट आयेगे, तो तुम भी लौटकर आना, यदि नहीं आयेगे तो तुम उनसे पूर्व अपने प्राण त्याग देना । यह कहकर वह देवी (सुमित्रा) आँखों से अश्रु वहाती हुई खड़ी रही ।

फिर, दोनों ने सुमित्रा को नमस्कार किया । सुमित्रा, अपने दो बछड़ों से वियुक्त होकर पीडित होनेवाली गाय के समान व्याकुल हो रो पड़ी । उपमाहीन कुमार भी अपनी सुन्दर कटि के रेशमी वस्त्रों को हटाकर बत्कल पहनकर बाहर निकले ।

भ्रमरों से गुजरित पुष्पमाला धारण करनेवाले राम ने लक्षण को अपने जैसे ही बत्कल पहने हुए देखकर कहा—हे स्वर्ग को अलकृत करनेवाली कीर्ति से शोभित । मेरी इस बात को सुनो और उसका निरादर मत करो ।

हमारी सब माताएँ तथा चक्रवर्तीं पूर्व दशा में नहीं हैं । वे दारूण दुःख में निमग्न हैं । सुझसे वियुक्त हैं । अतः, तुम मेरे लिए यहाँ रहकर उनकी विपटा दूर करो ।

पौरुषवान् राम के यह बात कहने पर भक्तिपूर्ण लक्षण ऐसे भयभीत हुए कि उनके स्तभ-समान पुष्ट कधे कौप उठे । उनके जो प्राण (राम के सग वन जाने की उमर में) लौट आये थे, वे बीच में ही व्याकुल हो उठे । यो रोते हुए लक्षण ने (राम से) कहा—आपके प्रति कौन-सा अपराध मैंने किया है ?

हे ज्या-युक्त कोदड धारण करनेवाले । विचार करके देखने पर विदित होगा कि जहाँ जल है, वही मीन है और नील उत्पल होते हैं । यह पृथ्वी है, इमीलिए तो सब प्राणिजात हैं । उसी प्रकार आपके न रहने पर मैं तथा आपकी देवी कैसे गह रक्तं हैं ? आप ही बतावे ।

स्वर्णकण्ठारिणी एक (पल्ली) के कहने से, रक्षा करनेवाले चक्रवर्तीं भूमि देवी के कातर होकर व्याकुल होते हुए, आपको वह आदेश देकर कि वन को जाओ स्वयं जीवित हैं । क्या उन चक्रवर्तीं का मुझे पुत्र मानकर ही आप यह वचन कह रहे हैं ?

हे मेरे स्वामिन् । अपके वन-गमन के कारण मेरे मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसे मैंने शान्त कर लिया । अब मुझसे आप जो कह रहे हैं, उसमें अधिक पीडाजनकर रहें लिए और क्या हो सकता है ?

तेल में सिक्क शत्रु-नाशियों की आँखों के झाजल को पालनेवाले तथा गन्तव्य

होने ने कोश में गँखे हुए भाले से युक्त हैं प्रभाँ। आप पूर्वजो मे प्राप्त अपना समस्त स्वत्त
खोकर जा रहे हैं, तो क्या हमें भी छोड़ जाना चाहते हैं ?

लक्ष्मण के यह कहने पर रामचन्द्र कुछ नहीं कह सके और पर्वत-सदृश कधोवाले
लक्ष्मण का बदन देखते रहे। लक्ष्मण के मन की पीड़ा को जानकर अपने सुगंधित विशाल कमल
जैसे नयनों से अश्रुधार वहाते हुए खड़े रहे।

उसी समय प्रेम-भरे तथा पत्रित तप ने सपन्न मुनिवर (वसिष्ठ) गजसभा से
वहाँ आये। दोनों मनोहर राजकुमारों ने उनके प्रति मिर भुकाया। (उन्हे देखकर) मुनिवर
दुखनामक महामसुद्र में डूब गये।

सत्यज्ञान से सपन्न मुनिवर ने उन (राम-लक्ष्मण) के बदन को तथा उनके मन
को भी देखा। उनकी कटि में ववे वल्कल की शोभा को देखा। फिर क्या कहना है।
उम समय उत्पन्न मनोविद्वान के कारण मुनिवर अपने को भी भूल गये।

जो दिन (रामचन्द्र के) राजतिलक के उत्सव के लिए निश्चित हुआ था, उस
सुखदायक दिन में गम ने, दुखदायक विधि के प्रभाव से, वल्कल धारण किया। स्वयं
चतुर्मुख ही नियति को बदलने का प्रयत्न क्यों न करे, तो भी नियति का विधान आकर धेर
ही लेता है। ऐसी नियति को कोन मिटा सकता है ?

यह उत्पात, केवल कठोर केकेयी के कारण ही उत्पन्न नहीं हुआ है। यह पुण्य-
स्वत्प (गम) ऐसा दुःख पाने के योग्य भी नहीं हैं, तो किस कारण से यह सब
सविट्ठ हुआ ? यह किसका पड्यन्त्र है ? यह सब भविष्य में प्रकट होगा। इस प्रकार
वसिष्ठ ने मांचा।

कोदण्ड तथा विशाल कमल-सदृश नयनों से शोभित वीर (राम) के समीप आकर
वसिष्ठ ने कहा—हे वत्स ! हम यहाँ से जाकर उन्नत पर्वतों से युक्त बन को देखोगे। किन्तु,
वति विशाल सेना से युक्त चक्रवर्ती को जीवित नहीं पायोगे।

तब आदिशेष के पर्यक से हटकर पृथ्वी पर अवतीर्ण (श्रीराम) ने वसिष्ठ
से कहा—चक्रवर्ती की आज्ञा को शिर पर धारण कर उसका पालन करना मेरा कर्तव्य हैं।
उनके शोक को दूर करना आपका कर्तव्य हैं। यही न्याय हैं।

तब वसिष्ठ ने कहा—चक्रवर्ती ने यह आज्ञा नहीं दी है कि हम कटकपूर्ण वरण्य
में जाओ। हाँ, शत्रुओं के शर के नमान वचन कहनेवाली क्रूर कैकेयी की ओर से पैनाये गये
भाले को वारण करनेवाले चक्रवर्ती ने उसको वर दिये हैं।

उच्चल धर्म की रक्षा के लिए उत्पन्न राम ने कहा—मेरे पिता ने मेरी माता को
वर दिये। मेरी माता ने मुझे (वन जाने की) आज्ञा दी। मैंने वह आज्ञा शिरोधार्य की।
सबके साक्षी वने हुए आप क्या हमको रोकने का विचार कर रहे हैं ?

तब वसिष्ठ अवाक् होकर, वरती पर अश्रु वहाते हुए खड़े रहे। पर्वताकार कधो-
वाले राम, मुनिवर को प्रणाम करके चक्रवर्ती के स्वर्णमय प्राचीरों से युक्त प्रासाद के
द्वार पर जा पहुँचे।

वल्कल से शोभायमान, लक्ष्मण से अनुसृत, प्रभृत आनन्द से भरित और कमल से

भी अधिक सुन्दर वदन से युक्त राम के निश्चय को जानकर उस नगर के लोगों को जो दुःख हुआ, अब हम उसका वर्णन किसी प्रकार से करेंगे ।

व्राक्षणों, अपूर्व तपस्या से युक्त सुनियों, राजाओं तथा उम देश के निवासियों के हृदय की दशा के बारे में हम क्या कहे ? (इस घटना से) देवता लोग भी इतने दुःखी हुए कि उन्होंने भविष्य में उत्पन्न होनेवाले सुख को भी त्याग दिया ।

देव-रमणियों की समता करनेवाली नारियाँ (वल्कलवारी) राम को देखकर अपने करों से अपनी मदभगी आँखों पर इस प्रकार प्रहार करने लगीं, जैसे कमलपुण्ड पर मँडरानेवाले मत्त भ्रमरों को धने पल्लवों से उड़ा रही हों ।

कुछ लोग (राम के प्रति) अक्षीण अनुराग के कारण राम के पिता के पूर्व ही स्वर्ग में जा पहुँचे । क्या इसका कारण उनका द्विविध कर्म-वन्धन को तोड़ देना था ? या उनके व्याकुल प्राणों का लौटकर नहीं आना था ?

कुछ गिर पड़े । कुछ सिसक-सिसककर रो उठे । कुछ अपनी आँखों से वहनेवाले अश्रुओं से ढक गये । कुछ इस प्रकार कातर हो उठे, मानो उनके केशों में आग लग गई हो ।

कुछ लोग, जो इस प्रकार दुःखी थे, जैसे प्रभूत सपत्ति को खो दैठे हो और जो इन्द्रुरम-समान (मधुर) वचनवाले थे, आँखों से आँसू न बहाते हुए लौह-सद्वश हृदयों के साथ स्तन्ध हो खड़े रहे । कदाचित् अपार दुःख से उनकी बुद्धि भ्रात हो गई थी ।

कुछ लोगों के शरीर से निकले हुए प्राण एक दशा में स्थिर नहीं रहे और ऐसे हो गये कि अभी चले, अभी चले । कुछ के प्राण वाहर निकलकर पुनः शरीर में लौट आये । कुछ लोगों की आँखों से, अश्रुओं के सूख जाने से, रक्त ऐसे बहने लगा, जैसे धात्र में वहता है ।

दो सूँड़ोवाले हाथी-जैसे (भुजाओवाले) अनेक वीरों ने अपने बड़े करबाल में अपने शिर को काट डाला और एक हाथ में (अपना शिर) रखकर उसे उछालने लगे और कुछ वीरों ने अपने कमल-नेत्रों को कटार से भोक्कर निकाल दिया ।

उनके (स्त्रियों के) आभरण विखर पड़े । आभरणों के रत्न विखर पड़े । पुष्पहार-जैसी मेखलाएँ विखर गईं । रमणियों के उज्ज्वल मदहास अदृश्य हो गये । उनके सुन्दर वदन (जो पहले कभी चन्द्रमा से परास्त नहीं होते थे, अब) चन्द्रमा से परास्त हो गये ।

चक्रवर्तीं की पवित्र पातिवत्यवाली माठ महस्त पल्लियाँ अश्रु वहाती हुई राम के पीछे-पीछे चलीं और अपने मुह खोलकर चीची-भरे समुद्र के नमान शब्द करती हुई रो पड़ीं ।

वे स्त्रियाँ, जिनके राम के अतिरिक्त अन्य कोई पुत्र नहीं था, इस प्रकार (भूमि पर) गिरकर गेती थीं, जैसे मयूर, कोकिल और हम पक्षों में हीन होकर भरती पर आ गिरे हों ।

उन स्त्रियों की अमृत में भी अधिक मधुर वाणी, वर्किगम स्पृह में निःशासन भरते हुए गेते रहने के कारण वशी तथा तत्री में युक्त मधुर नाटवाले गान्धारास से हार गईं ।

अहों । क्या (गम के) जाने वाग्य म्यान अरण्य में । वहनर ये स्त्रियों विलाप कर रही थीं । उनके वदनों ने रिंगाल चरार-दिवारी से उस प्रभाव । ५

ऐसे नरोवर के समान लगता था, जिसमें रक्त कुवलय दिन में ही विकसित हो रहे हैं।

उनके नेत्रों से उत्पन्न अश्रु की नदियाँ, उनके बद्ध पर के प्रभूत कुकुम-खेप और चटनरम-स्पी कीचड़ ने मिलकर मुक्ताहार को वहाती हुई, घने स्तन-रूपी पर्वतों को पार कर गई और मेखला-युक्त कटि-टट सुमुद्र में जा पहुँची।

उवानों से पूर्ण कोशल देश के प्रभु (दशरथ) की पत्नियों को, उनके कमल-मट्टा उज्ज्वल मुखों को आज सूर्य ने भी देखा। स्वर्ग में गहनेवाला देवेंद्र ही क्यों न हो, जब विपदा उत्पन्न होती है, तब उसे क्या नहीं भोगना पड़ता है?—(अर्थात्, असूर्यमप्मश्या कही जानेवाली स्त्रियाँ भी राम के बन-गमन का समाचार सुनकर बाहर निकल आईं।)

माताएँ, बहुजन, आश्रित जन, दूर की रहनेवाली, समीप की रहनेवाली, सब प्रकार की स्त्रियाँ प्रज्वलित अग्नि में गिरी-सी तड़प उठीं और घगों के याँगनों में और बाहर भर गईं।

मब लोग चिल्ला उठे। (अयोध्या की जनता) सब दिशाओं में उमड़े हुए समुद्र के समान बड़ी ध्वनि करती हुई राम को धेनकर चल पड़ी। पर्वत-समान कधीवाले राम, उनको क्या कहना चाहिए—वह नहीं जानते हुए और उनको लौटाने का कोई उपाय भी नहीं देखते हुए अपने प्रासाद की ओर बढ़ चले।

जो राम उन्नत किरीट को धारण करने के लिए, उत्तम रत्नों से जटित रथ पर सवार होकर गये थे, वही अब बल्कल पहनकर पुनः उभी सुन्दर तथा विशाल वीथी में (पैदल) चल रहे थे।

उनको देखकर कुछ लोग कह रहे थे—अजन-वर्ण इस प्रभु पर जो विपदा आ पड़ी है, उसे देखकर भी जो प्राण शरीर को छोड़कर नहीं जा रहे हैं, उन प्राणों तथा उन हृदयों से बढ़कर कठोर वस्तु का हम अनुमान तक नहीं कर सकते। सचमुच मनुष्य का स्वार्थ विष में भी अधिक क्रूर होता है।

कुछ लोग कह रहे थे—हम इस प्रतीक्षा में वीथी में खड़े थे कि रामचन्द्र राज-तिलक धारण करके इस मार्ग से लौटेंगे, किन्तु अब हम उन्हे धूप से भरी धरती पर यो चलते हुए देख रहे हैं। इस देश में, जहाँ एक स्त्री इस प्रकार का क्रूर कार्य करती है, नेत्रवान् होकर जन्म लेना ही पाप है।

कुछ लोग कह रहे थे—क्या वह उचित है कि मारे सुसार को अपना बनाने की शक्ति रखनेवाला, ज्येष्ठ पुत्र होकर उत्पन्न होनेवाला, यह राम, व्याघ्रों के निवासभूत अरण्य में निवास करने के लिए जायें और यों उसे जाते हुए देखकर भी हम त्रुप रहें? अहो! हमारा प्रेम भी अद्भुत सुन्दर है।

कुछ लोग कह रहे थे—क्षत्रिय-कुल को मिटानेवाले परशुराम के बल को भग करनेवाले इन घनश्याम राम ने शक्तिहीन तथा विवेक-भ्रष्ट हुए चक्रवर्ती को देखकर यह नहीं कहा कि आप हित को छोड़कर धर्म का नाश क्यों करना चाहते हैं? अतः, यह राम भी इस पृथ्वी के शासन से हटानेवाली उम कैकेयी के ही समान है।

कुछ लोग कह रहे थे—अपनी सुन्दर कटि से बल्कल पहने, बड़े दुख से अभिभूत

होकर राम के पीछे-पीछे चलनेवाला दो पुत्रों की जननी (सुमित्रा) का यह पुत्र (लक्ष्मण) ही इस नगर-भर में राम का अनन्य बन्धु है ।

कुछ लोग यह कहते हुए कि पत्थर से भी अधिक कठोर अपने हृदयों को हम फरसे से काट देंगे—दौड़ जाते थे और मार्ग-मध्य अपने अश्रुओं के कारण उत्पन्न कीचट में फिसलकर गिर पड़ते थे ।

कुछ लोग अपने शरीर पर से रत्नाभरणों को उतारकर फेंक देते थे । विद्युत्-समान काति से युक्त अपने शरीर पर से रग-विशरण वस्त्रों को फाड़कर फेंक देते थे और छोटे फटे वस्त्र पहन लेते थे ।

कुछ लोग कह रहे थे—मसार में कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो अनेक पुत्रों के होने पर भी, यदि उनका कोई एक पुत्र किसी अवयव में हीन होकर उत्पन्न होता है, तो अपने प्राण छोड़ देते हैं । किन्तु इन चक्रवर्तीं का, जो अपने ज्येष्ठ पुत्र को अरण्य में भेजकर अपने वचन की रक्षा कर रहे हैं, उनका मन लोह में भी अधिक कठोर है ।

कुछ लोग कह रहे थे—यह रामचन्द्र मेघ के अतिरिक्त अन्य किसी उपमान में होन श्रेष्ठ करुणा की मूर्त्ति है, इसके अतिरिक्त इसमें दूसरी कोई कमी नहीं है । यदि नगर की सारी प्रजा इसके साथ ही अरण्य में जा वसे, तब भी क्या कैकेयी अपने प्रिय पुत्र के साथ इस पृथ्वी का शामन करती रहेगी ?

कुछ-कुछ भुक्ति हुई सूक्ष्म कटि को दुखानेवाले स्तन-भाग से युक्त नियाँ रोदन की ध्वनि के साथ, घने 'कान्दल' पुष्प-सट्टश अपने अरुण करों को मिर पर गंगे हुए, लताओं के समान एक और खड़ी रही ।

चन्द्र को छूनेवाले शिखरों से दुक्त प्रासादों की ऊपरी मजिलों में खटी हुई तियाँ की आँखों से निरतर वहनेवाले आँसू उनके स्तनों को भिंगो रहे थे । वे नियाँ पर्वत-शिवर्ग पर स्थित मयूरों के समान दुःखी हो रही थीं ।

मेघ-मद्वश अगरु-धूम सं भरे सौधों के विशाल वातावरण में (गम दो) देखनेवाली गदुगां द्वरवाली नियों की अजन-लगी आँखों से अश्रुजल निर्झर के नमान वह रहा था । वे नियाँ पिजरस्थ शुक के समान रो रही थीं ।

सौधों की ऊपरी मजिलों से देखनेवाले लोगों की आँखों से बड़ी-बड़ी अश्रुवागाँ प्रकाश निकलकर सौधों के बाहर वह रही थीं । अतः, ऐसा लगता था, मानो वे सौध भी चक्रवर्ती-कुमार (गम) के प्रति दुःखी होकर रो रहे हैं ।

नियाँ अपने शिशुओं को भूल गईं । पुत्र अपनी माता को भूल गये । इस प्रकाश उस नगर के लोग व्याकुल होकर बड़ी पीड़ा से प्रजा-रहित-से होकर यद्य शब्द के साथ रो रहे थे ।

'कामर' (नामक) गग के समान मृदु स्वरवाली मव सुन्दरियाँ वीर्यि में एक हो गईं, जिससे धब्बल प्राप्ताद, सुन्दर हश्य तथा सुगंधित देशीवाली लहस्ती में विनीन शब्द के समान लगत थे ।

शर्म-विद्व हरिणियाँ चिक्कल हो रही हो—उन प्रकाश का दृश्य उर्ध्वित लगता

हुई उत्तम कर्णाभरणों से युक्त सुदगियाँ घन-पटल के समान केशपाशों को धरती पर फैलाये अपने आभरण विखरेते हुए मुण्डों में जा रही थीं।

पर्वत-समान मौधों की पताकाएँ मकुचित हो गईं। उत्तम भेरियों के शब्द थम गये। विविध बादों के नाद दब गये। प्रामाणों के प्राचीरों से बाहर की वीथियों की धूल धरती में चारों ओर बहनेवाली अश्रुधारा से दब गई।

रमोईघर धूम-हीन हो गये। ऊँचे सोध अगरु-धूम में विहीन हो गये। शुकों के पात्र दूध से विहीन हो गये और उत्तम रत्न-जटित पालने और उनमें सोनेवाले शिष्ठु, स्त्रियों के आगमन से विहीन हो गये—(अर्थात्, पालनों में स्थित वच्चों के रोने पर भी माताएँ नहीं आती थीं।)

सबके सुख प्राण-हीन जैसे काति-रहित हो गये। मेघ-समृह वर्पा-रहित हो गये। धोड़े, स्वच्छ जल से युक्त अश्व-शालाओं को छोड़कर चले गये। मन्त्रगज, पुष्पों के मधु को पीनेवाले भ्रमगें के जैसे, अपने आनन्द को छोड़कर चले गये।

छत्र छाया नहीं कर रहे थे। दीर्घ नयनोवाली रमणियों के केश पुष्पों से शोभित नहीं हो रहे थे। पुरुषों के पाद-द्वुगल वीर-वलयों से दुक्त नहीं थे। क्रोधी मन्मथ के वाण भी उष्णता-विहीन हो गये। हस अपनी हमिनी को छोड़कर चल पडे।

वीथियाँ, अश्वों की किंकिणियों की ध्वनि, भेरियों के चर्म-आवरण की ध्वनि और मेघ-समान शब्द करनेवाले रथों की ध्वनि में रहित होकर स्वच्छ वीचियों से युक्त जल की ध्वनि से विहीन समुद्र के समान लगने लगी।

राजवीथियों में रोदन की ध्वनियों को छोड़कर बादों की ध्वनियाँ नहीं होती थीं। त्रीणा-तत्रियों के क्रमवद्ध स्वरों की ध्वनि नहीं होती थी। अनिमेष नयनोवाले देवों के उत्सवों ने उत्पन्न होनेवाली ध्वनि भी नहीं हो रही थी।

स्पष्ट शब्दवाले नूपुरों से प्रतिध्वनित मोध, अब शब्द-रहित थे। मेखलाओं के सवध में भी यही वात थी। जलचर पक्षी नहीं बोल रहे थे। उद्यान में भी ऐसी ही वात थी। पुष्पों में भ्रमग शब्द नहीं कर रहे थे। हाथी भी ऐसे ही हो गये।

खेत, जल को भूल गये—(अर्थात्, किसान खेतों को सोनेवाले की वात भूल गये।) लाल अधरवाली सुन्दरियों के कर, नवजात शिशुओं को भूल गये। प्रज्वलित होमाग्नियाँ, धृत को भूल गई—(अर्थात्, ब्राह्मण उनमें धृत का होम करना भूल गये।) आत्मजानी आत्मतत्त्व को भूल गये। वेद, शब्द को भूल गये—(अर्थात्, वेदों का वाचन बन्द हो गया।)

भुण्डों में नृत्य करनेवाले अब रो पडे। अमृत-समान मधुर सप्त स्वरों में गान करनेवाले अब रो पडे। अपने प्रियतमों के साथ प्रणय-कलह में कुपित तथा पुष्पमालाओं से रहित सुन्दरियाँ अब रो पड़ी। अपने प्रियतमों से मिलकर (आनंदित) रहनेवाली सुन्दरियाँ भी अब रो पड़ी।

हाथी जलाशयों के पास जाकर अपनी सूँड़े, जल पीने के लिए नहीं बढ़ते थे। धोड़े मँह ने घास नहीं लेते थे। पक्षी अपने वच्चों के लिए आहार नहीं लाते थे। गाये अपने बछड़ों को दृश्य नहीं पिलाती थीं और उनके बत्स व्याकुलता से द्रवित हो रहे थे।

पुरुषों के बच्च पर युवतियों के स्तन-रूपी नारिकेल अचित नहीं हो गए थे—(अर्थात्, वे आलिंगन नहीं कर रहे थे)। पुण्य-समुदाय, चदन-लेप करनेवाले पुरुषों के केशों को तथा उनकी युवतियों के केशों को अलकृत नहीं कर रहे थे।

बड़े गज, सुखपट्ट और उत्तम आभरणों से घृणा करते थे। मौव-समुदाय, शिखरों में पहनने योग्य सुन्दर अलकारों से घृणा करते थे। ध्वजाएँ, आकर्षक सीढ़ीय से रहित हीं गईं थीं। स्वर्णमय मनोहर प्राचीर, मृदुगतिवाले कवृत्तरों तथा कवृत्तरियों की सुन्दरता भी रहित हो गये।

सुख-दुःख को समान रूप से देखनेवाले योगी भी अधिक पीड़ा से दुःखी हुए। फिर उन साधारण समारी व्यक्तियों के बारे में क्या कहा जाय, जो दुःख के समय, अपने पाप का फल मानकर व्याकुल होते हैं और सुख प्राप्त होने पर पुण्य का फल मानकर आनंदित होते हैं।

वह अयोध्यानगर, (प्राणियों के) शरीरों में निःश्वास के साथ बाहर न निकलनेवाले प्राणों के ध्याकुल होने से, मनोहर शोभा के मिट जाने से, अत्यधिक पीड़ा कारक दुःख के बढ़ने से तथा न मिटनेवाली पचेंद्रियों के अस्त-व्यस्त होने से, उन (दशग्रथ) के समान ही लगत थे, जो (राम के विरह में) अपने प्राण छोड़ रहे थे।

इस प्रकार, जब उस नगर के लोग अत्यन्त कातर होकर पीड़ित हो गए थे, कहीं सुण्ड बौधकर खड़े थे और कहीं बुद्धिभ्रष्ट हो रहे हुए पीछे-पीछे चल रहे थे, तब राम, जो सच्चरणमान विविध प्राणियों की एक आत्मा के समान थे, उज्ज्वल आभरण-भूषित स्तनवती जानकी के आवास में जा पहुँचे।

ज्यों ही सीता ने वल्कलधारी राम को एव उनके पाश्वों में माताओं, मुनियों व्राह्मणों और राजाओं को रोते हुए तथा ध्रुलि-भरे शरीरों के साथ आते हुए देखा, त्यों ही वह चित्र-प्रतिमा जैसी सुन्दरी, स्तब्ध हाकर उठ खड़ी हो गई।

इस प्रकार उठकर खड़ी होनेवाली उन सीता का आलिंगन करके उनकी मासों ने उन्हे अजन-अचित नयनों के नृतन नीर में नहलाया। तब जानकी, जो उस पर्गिर्भ्यति का कारण नहीं जानती थी, व्याकुल चित्त के साथ अपनी विशाल आँखों में राम को दरकर अश्रु-धारा बहाती हुई—

ओर विद्युत के समान काँपती हुई बोली—‘स्वर्णवीर-वलयधारी। इस दुःख का कारण क्या है। क्या कीर्तिमान् चक्रवर्ती को कुछ विपदा हुई है। क्या हुआ। बताओ।’

राम ने सीता में कहा—‘मैं उपमा-रहित भाई (भगत) राज्य करेगा। अपने आश्रयभूत गुरुजनों की आज्ञा में, मैं मेघों में भरित धने वन में जाऊँगा और उस वन को देखकर फिर लोट आऊँगा। तुम दुःखी मत होओ।’

‘पति राज्य के अधिकार में वाच्चित हो। गंयं और वन-गमन करनेवाले हैं—’—इन विचार में सीता दुःखी नहीं हुई। किन्तु ‘तुम दुर्खी मत होओ, मैं जागता हूँ—’—राम का यह कठोर वचन ही (मोता का) अत्यन्त पीड़ित कर रहा था।

जब विष्णु भगवान् धर्म मिट जायगा, उपकी रक्षा करनी है।—इन विचार में क्षीरनागर में अपने पर्यंत को छोड़कर अयोध्या में प्रवतीपं दृग थे, तब लद्दनी भर्ती भी

(सीता के व्यप में) अवतीर्ण होकर उनसे वियुक्त रहने लगी थी । ऐसी वह (सीता) क्या इस बचन को सह सकती कि राम उसको छोड़कर चले जायेंगे ?

राम की उक्ति को सोच-मोचकर सीता ऐसी व्याकुल खड़ी रही, जैसे उसके प्राण ही निकल रहे हों । फिर, वह बोली कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करने का निश्चय अत्यन्त उचित ही है, किन्तु मुझे किम कारण से (अयोध्या में ही) रहने को कह रहे हैं ?

तब राम ने कहा—शीतल अलक्षक-रम से अलकृत तुम्हारे मृदुल चरण इस योग्य नहीं हैं कि गद्दस जैसे लगनेवाले पर्वतों में, पिघली हुई लाख जैसे उष्ण पत्थरों पर तुम चलो ।

यह सुनकर सीता ने उत्तर दिया—आप मेरे प्रति कृपाहीन और प्रेमहीन होकर मुझे छोड़कर, जाने की बात कह रहे हैं, (आप के विग्रह में उत्पन्न होनेवाले) इस ताप के सामने प्रलयकालीन सूर्य का ताप भी कुछ नहीं होगा । वह विशाल अरण्य क्या आपके विरह में भी अधिक तापजनक है ?

प्रभु ने सीता के बचनों को सुना और माथ ही उन (सीता) के मन को भी पहचाना, वे वह भी नहीं चाहते थे कि सीता अपने नेत्रों से अश्रु-समुद्र को प्रवाहित करती रहे । इसलिए, वे सोचते खड़े रहे कि अब मेरा कर्तव्य क्या है ।

उम समय, सीता अपने विशाल प्रासाद के भीतर गई । अपने योग्य बल्कल-वसन वाग्ण करके विचार-मम्म प्रभु के निकट आकर उनके तालवृक्ष जैसे दीर्घ कर को पकड़कर खड़ी हो गई ।

सीता का वह कार्य देखकर सब लोग धरती पर गिर पड़े । फिर भी मर नहीं गये । जब आयु के दिन अभी शेष थे, तब वे कैसे मर जाते ? जिनकी आयु समाप्त नहीं होती, वे युगान्त के समय से भी जीवित ही रहते हैं ।

सीता को देखकर, माताएँ, वहिने, माथिनें, सखियाँ—सब जैसे अग्नि की ज्वाला में गिर पड़ी । तब कमलनयन गमच्छ मीता के प्रति कहने लगे—

कुद और सुक्ता को परास्त करनेवाले उज्ज्वल दाँतों से युक्त, हे देवि । वन-गमन में होनेवाले कष्टों को तुम नहीं जानती हो । मेरे माथ चलने को सन्नद्ध हो गई हो, अतः तम मेरे लिए अपार दुःख उत्पन्न कर रही हो ।

द्विविष-वश के श्रेष्ठ राम के वह कहने पर कोकिल को परास्त करनेवाली मधुर वाणी ने युक्त सीता, कोप के साथ बोली—आपको मेरे कारण ही सकट उत्पन्न होता है, कदाचित् मुझे छोड़कर जानें मे आपको सुख ही सुख है ।

तब उदार गुणवाले राम कुछ उत्तर नहीं दे सके और सीता को माथ लेकर उस बीथी में, जहाँ नर-नारी, अश्रु-प्रवाह के कारण खेत के जैसे कीचड़ से भरी धरती पर पड़े थे, चलकर बड़ी कठिनाई से आगे बढ़े ।

राम आगे-आगे जा रहे थे, उनके साथ सीता बल्कल पहने पीछे-पीछे जा रही थीं और उनके पीछे दृढ़ धनुर्धारी लद्धमण जा रहे थे । उस दृश्य को देखकर, उस नगर के लोगों को जो दुःख हुआ, उसका बण्णन करना सभव नहीं है ।

उम समय कोई भी अमगल उत्पन्न करने के कारण रोये नहीं । सब व्याकुल चित्त

के साथ यह सोचकर कि गम के पहल ही हम वन में पहुँच जायगे, कोलाहल-वर्ण वदान दुप, आगे बढ़ चले ।

विजयमाला में भूषित भाले को धारण करनेवाले गमचंद्र अपने पिता के सोबदार पर पहुँचे । वहाँ अपनी माताओं के प्रति कर जोड़कर विनती की कि आप लोग यही रहकर चक्रवर्ती की सात्वना दें । यह सुनकर माताएँ मूर्छित होकर गिर गईं ।

सज्जा लौटने पर उन्होंने गद्गद कठ से पुत्र (राम) को आशीष दिये । पुत्र-वधु की प्रशसा की । कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) की प्रस्तुति की और देवताओं से प्रार्थना की कि हे कुल-देवताओं ! इनकी रक्षा करना ।

उन माताओं के बड़ी कठिनाई से हटने पर, राम ने मुनिवर वसिष्ठ को प्रणाम किया । फिर, स्वयं अपने प्राण-समान भाई और सीता के साथ एक रथ पर आसृद्ध होकर चल पड़े । (१-२४०)



अध्याय ५

तैल-निमज्जन पटल

विशाल सेना से युक्त चक्रवर्ती से कभी वियुक्त न होनेवाली उनकी पालयों (राम के साथ न जाकर) रुक गईं । उस दिव्य नगर में स्थित चित्र भी प्राणहीन होने के कारण (जाने से) रह गये । इनको छोटकर, पिता की आजा में (वन) जानेवाले गम के साथ न जानेवाला वहाँ कोई नहीं रहा ।

वह स्वर्णमय रथ, उसके चारों ओर उष्ण अशु-जल के प्रवाहित होने में, धीरे-धीरे चल रहा था और उस दिव्य मत्स्य (विष्णु के मत्स्यावतार) के समान लगता था । जिसने सप्त लीकों को एक करनेवाले महान् समुद्र के जल में मच्छरण करके समान के प्राणियों का उद्धार किया था ।

सूर्य मानो गम को वन जाते हुए नहीं देखना चाहता हो, (टर्मालिण) वह पर्वत के मध्य जा छिपने के लिए त्वरित गति से बढ़ चला । तब गाये और भेगे अपने गोप्यों में आकर प्रविष्ट हुए । धूप मिट गई और नक्षत्र चमकने लगे ।

कमलभव व्रता के द्वाग चन्द्र के गुदों की लेकर निर्मित उत्त्वल ललाटवाली सुन्दरियों के बदन के समान कमल-पुष्पों के समृह, अश्रुजल-स्पी मय के प्रवाहित होने में शोभाहीन होकर मूँह झुकाये खड़े रहे ।

सध्याकाल में सूर्य के अस्तगत होने से ब्राकाश-प्रदृश, मधरा उं यज्ञ मर्दी तथा से विकृत हुए कैफेयी क मन के समान ही, अपनी अरुणिमा को (प्रसाद नो) इंउड़ अन्वकार से भर गया ।

मर्वत्र नद्दिओं से प्रकाशमान नील वर्ण आकाश, इन्ड्र की देह के समान लगता था, (देह) मुनिवर (गौतम) के द्वाग दुःख के साथ दिये गये शाप के प्रभाव से अनेक अनिमेप नदियों में युक्त हो गई थी ।

राम उस अयोध्यानगर को छोड़कर शीघ्र गति से दो योजन दूर पारकर गये और सुगन्ध-भरे एक उद्यान में पहुँचे । वहाँ उतरकर अपने मित्र-समान अनेक मुनियों के साथ विश्राम करने लगे, तब—

राम का विरह न सहकर उनके साथ आई हुई जनता एक योजन-पर्यंत प्रदेश को घेरकर पक्षियों में भरे उस उपवन के बाहर इस प्रकार दैली पड़ी रही कि तिल रखने के लिए भी वहाँ स्थान नहीं रहा ।

वे लोग मूँह में रखकर न कुछ खा रहे थे, न मो रहे थे, पर मन में कुट्टकर मिमक-मिमककर रो रहे थे । उत्तम रत्न जहाँ विखरे पड़े थे, ऐसे नढी-तट पर सैकत-राशियों और हरियाली पर वे (विकल होकर) लोट रहे थे ।

जलाशय में विकसित कमल-पुष्प के मध्य जैसे सुगंध-भरे सद्योविकसित नील उत्पल खिले हों, वैसे नेत्रों से तथा कस्तूरी-गंध से युक्त केशों से शोभायमान सुन्दरियों, धूम से आवृत दृश्य के फैल-जैसे वन्दों को ही शब्दा बनाकर मो गईं ।

कमल-कोरक-समान स्तनों, तीक्ष्ण शर-समान नेत्रों तथा इन्हुंने रस-समान मधुर वाणी से युक्त कन्याएँ, दिन-भर की बड़ी थकावट के कारण नारिकेल-फल के जैसे स्तनों में युक्त अपनी धाइयों की गोद में ही पड़ी-पड़ी मो गईं ।

(कभी) मास से रहित न होनेवाले (अर्थात्, मदा शत्रुओं के मास से युक्त कुतुं नामक शत्रु धारण करनेवाले वीर त्रुवक, मिकता-राशियों से भरे प्रदेश में, आम के ठिकोरे के समान नेत्रांवाली अपनी यौवनवती पत्नियों के साथ, हथमार में वैधे हुए छोटी आँखोंवाले मत्तगज के समान सोये पड़े थे ।

कुछ युवतियाँ जो सद्गुणों तथा (पातित्रत्य के) तप से सपन थीं और अपने पति के सुखों के दर्शन तथा उनकी कम्पणा से तृप्त रहती थीं, अब अत्यधिक दुःख के कारण जैसे नृत्यशील मधुर निष्प्राण हो पड़े हों, उमी प्रकार मो रही थीं और उनके शिशु उनके स्तन-चूनुकों पर अपने करों को फेरते हुए दुर्ध-पान कर रहे थे ।

कुछ स्त्रियाँ माधवीलता के कुजों में, नद्दिभरे आकाश के समान उज्ज्वल, नील-रत्नमय सैकत वैदी पर मधुरों के विशाल भूषण के समान सोई पड़ी थीं । कुछ स्त्रियाँ क्रमुक-वन के मध्य स्थित जलाशय के निकटस्थ सैकत प्रदेश पर हरिनियों की श्रेणी के समान पड़ी थीं ।

कुछ स्त्रियाँ चपक-पुष्पों के सुगन्धित उद्यानों में इस प्रकार शिथिल पड़ी थीं, जैसे तरण लताएँ छिन्न होकर सुरक्षाई पड़ी हों और कुछ स्त्रियाँ कच्चुकों में वैधे स्तनों के साथ मिकता-राशियों पर फैली हुई प्रवाल-लताओं के समान प्रजाहीन हो सो रही थीं ।

कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार सो रही थीं कि उनके पीन स्तनों पर धूल लग गई थीं, जैसे कुमुम-पुष्पों से भरे पर्वत पर ओस छाई हुई हों । कुछ स्त्रियाँ अपने हाथ का सिरहाना

वनाकर यो मो रही थी कि उनके बड़न कातिहीन होकर, कुम्हलाकर, मुकुलित हुा कमल के समान लगते थे ।

कुछ, पथ-गमन के श्रम से चूर होकर, फैले हुए पत्थरों पर पड़ी मो रही थी । तुम्ही नीचे पड़े पत्तों की राशि पर वेसुध पड़ी सो रही थी । कुछ, अपने घन्न का एकभाग मात्र पहनकर शेष भाग को विछाकर उस पर मो रही थी । कुछ पत्तियों को विछाकर उनपर शिथिल हो पड़ी थी ।

जब सब लोग इस प्रकार पड़े मो रहे थे, तब (वैवस्वत) मनु के वश में उत्पन्न राम ने सुमन्त्र को अपने निकट बुलाया और उससे कहा—तुम दोषहीन हो और नव गुणों के आगार हो । तुम्हे एक काम करना है । सुनो—

सुझपर गाढ़ प्रेम रखनंवालों को लौटाकर भेजना कठिन है । इनको वहों में भेजे चिना मेरा यहाँ से चला जाना भी उचित नहीं है । अतः, हे पितृ-तुल्य ! तुम अभी इस रथ को लौटाकर ले चलो । रथ के चिह्न को देखकर मब लोग यह समझेंगे कि मैं अयोध्या को लौट गया हूँ । इससे सारी जनता नगर को वापस चली जायगी । तुमसे यही मेरी प्रार्थना है ।

सद्गुणों से पूर्ण राम के यो कहने पर रथ चलाने में चतुर सुमन्त्र ने कहा—इस स्थान में तुम्हें छोड़कर और अपने प्यारे प्राणों को रखकर मुझे उम अयोध्यानगर में, वहाँ की दुःखपूर्ण दशा को देखने के लिए जाना है । मे उस क्रृग माता और कठोर नृपति में भी अधिक कठोर हूँ ।

लोहे के समान हृदयवाला मे, वहाँ जाकर क्या कहूँगा ? क्या यह कहूँगा कि गम को, अनकी पद्धी तथा भाई के साथ पुण्यों से भरे उद्यान में जाने के लिए छोड़ आया हूँ ? या यह कहूँगा कि गम को साथ लेकर अयोध्या को लौट आया हूँ ?

क्या यह कहूँगा कि पुराना र्मत्र तथा दोषहीन आचरणवाला में, माला के योग्य कोमल पुण्यों पर भी चलने में अशक्त (अर्थात्, अर्ति सुकुमार), कचुक मे वेष्ठे स्तनोवाली मीता के साथ दोनों बलवान् कुमारों को कठोर धरती पर चलने के लिए उतारकर, न्यय रथ पर लौटकर चला आया हूँ ?

क्या कठोर इन्द्रियों तथा शिला-जैसे मनवाला वचक मैं, दृट हृदय तथा शिथिल गात्र से पीड़ित होनेवाले चक्रवर्ती के निकट दक्षिण दिशा के अधिपति यम के दत के समान जाऊँ ? क्या मैं तुमसे यह निवेदन कर सकता हूँ कि तुम अपनी सद्व्रद्धि में कोई योग्य वचन मुझे वकाओ (जिसे मैं अयोध्या में चक्रवर्ती को सुना सकूँ) ।

हे प्रभु ! ‘चारों दिशाओं के निवासी तथा नगर की प्रजा राग को समका दुम्हा-कर अयोध्या लौटा ले आयेंगे’—यो कहकर चिंतित चक्रवर्ती को न्यस्य किया गया था । अब क्या मैं कठोर यम-मद्दश वचन में उनके प्राणों का हरण करूँगा ?

क्या मैं उनका वह सुनाऊंगा कि अग्नि म यज्ञ करके, वटी कठिनाईं ने प्राप्त किए गये आपके मिह-मद्दश पुत्र, प्रग्न्य म जले गये हैं ? ठीक निचार वरने पर जान पड़ता है कि चक्रवर्ती को इस कठार वचन को सुनानेवाले गेरे लैमें द्याक्ष ने तो वह दैव राजपुरुष ही अच्छी है ।

इस प्रकार अर्तिम प्रार्थना करने पर भी सुमत्र को वज्र का धोप ही (अर्थात् , मैं नहीं लौटूँगा) सुनाई पड़ा, जिससे अत्यत व्याकुल होकर तड़पनेवाले सर्प के समान व्याकुल होकर सुमत्र राम के चरणों को पकड़कर धगती पर लोट गया और विविध बच्चन कहकर रोने लगा ।

तब उन राम ने, जो नियम करने योग्य इन्द्रियों तथा मन के लिए अगोचर, पर परिशुद्ध बुद्धि के लिए गोचर है, अपने विशाल हाथों से उठाकर उस सुमत्र को गले लगा लिया और उसके अश्रुओं को पोछकर पृथक् ले जाकर उससे कहा—

इस संसार में हमारा जन्म हुआ है । उस (जन्म) के माथ घटित होनेवाली सब वातों को उचित बुद्धि से, सोचकर समझने की शक्ति तुम रखते हो । यह सोचकर कि विषदा उत्पन्न हुई है, क्या तुम अनाधारण रूप से उत्पन्न होनेवाले अपयश को एवं धर्म के तत्त्व को भूल जाओगे ?

श्रेष्ठ धर्म सब कार्यों से आगे रहकर यश को स्थिर बनाता है और मृत्यु के पश्चात् भी शाश्वत फल प्रदान करता है । ऐसे धर्म का आचरण करते समय, क्या वटि सुख हो, तो हम उसका आचरण करेंगे, पर यटि कष्ट हो, तो क्या उस (धर्म) को छोड़ देना उचित होगा ?

शत्रुओं के उज्ज्वल शत्रुओं को वीरता के माथ अपने वक्त पर सहन करना शूरता नहीं है । मृत्यु का भी सामना होने पर, वथवा सारी सपत्ति को खोने की आवश्यकता पड़ने पर भी, धर्म का परित्याग न करना ही शूरता है ।

(शत्रुओं के) शरीर को भेदकर उसमें स्थित प्राणों के अपहारक भाले को धारण करनेवाले हे राम । वटि मैं वन-गमन से होनेवाले कष्टों का विचार करके नगर को लौट जाऊँगा, तो क्या वैवस्वत मनु का यह क्रुल, जिसकी कीर्ति स्वर्ग तक फैली हुई है, धर्मच्छुत नहीं कहलायगा ।

‘आचरण के लिए दुस्साध्य सत्य का अनुसरण करनेवाले चक्रवर्ती (दशरथ) ने अपने प्यारे पुत्र को बन में भेज दिया—ऐसी’— प्रख्याति उन चक्रवर्ती के लिए एक तपस्या ही होगी और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके बन जाना मेरे लिए भी तपस्या ही है । अतः, हे मेरे पितृ-तृत्य ! तुम इसमें दुखी मत होओ ।

(नगर में लौटकर) तुम पहले मुनिवर (वसिष्ठ) को नमस्कार करना और मेरे प्रणाम एवं मेरे बच्चों को उन्हें सुनाना । उन मुनिवर से यह निवेदन करना कि वे स्वयं चक्रवर्ती के पास जाकर मेरा मनोभाव उनसे प्रकट करें ।

मुनिवर के द्वाग ही मेरे भाई (भरत) को यह सन्देशा देना कि वह नीति-मार्ग पर दृढ़ रहकर वेदज व्रात्यणों तथा स्वर्गलोकवासियों के लिए हितकारी कार्य करे तथा अपने आचरण में मेरे वियोग से उत्पन्न भव लोगों के दुख को दूर करे । फिर, रामचन्द्र ने सुमत्र ने कहा—

तुम (वसिष्ठ मुनिवर से) यह कहना कि इस समय मेरे मन को यह बात किंचित् भी पीड़ा नहीं दे रही है कि मेरी छोटी माता के कागण एक बड़ा दुख सुमेरे उत्पन्न हुआ है ।

अतः, मेरे प्राति उनकी जैसी कृपा है, वंगी ही कृपा उम (कैकेयी अथवा भरत) पर भी रखें।

तुम यहाँ मेरे लौटकर महान् तपस्वी (वसिष्ठ) के साथ गजप्रामाद में जाओं और मेरे पिता के अपार दुःख को शात करने का उपाय करो। उन चक्रवर्ती की कृपा मेरे उम भाई (भरत) पर भी बनी रहें, ऐसा उपाय करो—यही मेरी प्रार्थना है।

सुखपट्ट से भूषित, मठबाबी हाथियों की सेना से युक्त चक्रवर्ती को वगिष्ठ के द्वारा मेरा यह सन्देश पहुँचा देना कि चोदह वर्प व्यतीत होने के पश्चात मैं नगर को लौट आऊँगा और उनके चरणों को प्रणाम करूँगा। वे दुःखी न हों।

मेरी तीनों माताओं को क्रमक अनुसार मेरा प्रणाम पहुँचाना। फिर, चक्रवर्ती के दुःख को शात करते हुए उनके निकट रहना—इस प्रकार राम नै, जो बटों के लिए भी अजेय हैं और अब वन में जाकर रहते हैं सुमत्र से कहा।

अनुपम महान् ग्रन्थ को चलाने से समर्थ सुमत्र नै, यह विचार कर कि दासता में विमुख होना एक संवक का कर्तव्य नहीं है, राम के चरणों पर नत हुआ। फिर, यह मांचकर कि पूर्व कमों के कारण हमें दुःख भोगना पड़ता है, भालै-जैसे नेत्रवाली जानकी को नमस्कार करके उनकी ओर देखा।

तब सीता ने (सुमत्र से) कहा—चक्रवर्ती को तथा सासों को मैंग नमस्कार कहना। फिर, मेरी प्यारी वहनों से कहना कि सोने के रगवाली मेरी सारिका को और तीते को मावधानी से पाले।

सीता के वचन सुनकर, सारथि (वनवास से) अधीर न होनेवाली उन (सीता) के दुःख का विचार करके व्यथित हुआ, और यह कहता हुआ कि ‘विपदा उत्पन्न होने पर उसे दूर करने में कौन समर्थ होता है और प्राण छोड़ना भी सुगम नहीं है’—पहले भीतर-ही-भीतर व्याकुल हुआ, फिर ऐसा रो पड़ा कि महाबीर राम के समझाने पर भी वह शान्त नहीं हुआ।

सदा स्थिर रहनेवाले प्रेम से दुक्त सुमत्र, अपने दुःख ने किञ्चित् शान्त-सा होकर राम को पुन्-पुन् नमस्कार करके उनसे विदा हुआ। फिर लक्ष्मण मेरे उसने पूछा कि आपका क्या सन्देश है।

तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—जिन सत्यसध ने, पहले मेरे भाई को राज्य देने का वचन देकर पुन् सारी सपत्नि को सुगन्धित केशोवाली एक नारी को दे दिया, उनको चक्रवर्ती मानकर क्या अब भी कोई सदेश देना उचित होंगा?

फिर भी उन अमल्यहीन चक्रवर्ती से, जो अपने ज्येष्ठ पुत्र के वन में जाकर क्षमूल खात रहते रहते गमय, न्वय राजोन्चित भोगन करते रहते हैं वह कहना कि उनके शरीर में स्थित प्राण इस समार को छोड़कर अभी तक न्वर्ग नहीं गये अतएव मैं उनकी दृढ़ता की प्रशंसा करता हूँ।

उज्ज्वल करवालधारी राजा भरत में कहना—मैं, राजा होने के अधिकारी मैं, प्रभु (गम) का भाई (होने योग्य) नहीं हूँ (क्योंकि मैं अपने पिता ने लालूर उराज्य नहीं दिलाया था)। राज्य तो शामन बननेवाले उस भरत का भी भाई नहीं।

तथा उस शत्रुघ्न को भी अपना अनुज नहीं मानता हूँ। मैं बेवल एकाकी ही जन्मा हूँ। मेरा बल किंचित् भी कम नहीं है।

इन समय आर्य (राम) ने अपने भाई को देखकर कहा—हे तात। ऐसे अशांभनीय वचन कहना उचित नहीं। तब सारथि अपने मन से व्यथित होकर धरती पर गिरकर उनको प्रणाम करके रथ की ओर चढ़ा।

सुमत्र ने रथ-स्पी यत्र को ठीक किया। उसमें धोड़े जाते। सबकी दृष्टि में नाफ निखाई देनेवाले मार्ग से अपने रथ को लौटाकर ले चला। उसने निपुणता से रथ को ऐसे चलाया कि कोई भी व्यक्ति निद्रा से नहीं जग सका।

उस वर्धरात्रि में, प्रभु (राम) भी देवी का पातिव्रत्य, अपनी उठारता, कलक-हीन कृष्ण, विंक, सत्य, कार्य में निपुण अपने धनुप तथा अनुज (लक्ष्मण), इन सबको माथ लेकर चल पड़े।

तब दिव्य प्रकाश से युक्त चट्ठमा ऐसे उद्दित हुआ, मानो मायावी जीवन व्यतीत करनेवाले राक्षसों का साथी बनकर उनके क्रूर कायों में सहायता देनेवाले तथा राम-लक्ष्मण के (वन-गमन में) विन्न-सा बने हुए, अजन सदृश अधिकार को भगाने के लिए आकाश ने अपने हाथ में दीपक ले लिया हो।

वह अनुपम शीतल चट्ठमा इस प्रकार प्रकाशित हुआ, जैसे उस धर्मदेवता का प्रसन्न मुख हो, जो उसके प्राणों का विनाश करनेवाले पाप को मिटाने में समर्थ, वज्र-सदृश वनुप से युक्त राम-लक्ष्मण को वन-गमन के लिए सहमत करनेवाले सुकृत का विचार करके वही प्रसन्नता से उन (राम-लक्ष्मण) के दर्शनार्थ वहाँ आया हो।

ऊँचे बढ़े हुए वाँसों से युक्त उस बन में पैदल चलनेवाले राम की दुख-दशा को देखकर, दुखी होकर ही मानों रक्त-कमल सुकृतित हुए थे। कुचलय-पुष्प भी सर्प के सिर का स्प वारण कर पीड़ित हो भुके थे। अब दूसरे पुष्पों के बारे में कहने की आवश्यकता ही क्या है?

चट्ठमा अपनी चट्ठिका फैला रहा था मानो इम विचार से कि वनुप जैसी भाँहों-बाली (मीता) के मृदुल चरणों को चलने में क्लेश न हो। उसने कानन में सफेद रुई विछा दी हो। उस प्रकाश में अजनपर्वत-सदृश सुन्दर पुरुष (राम) तथा वह कनिष्ठ भ्राता—जो ऐसा था, मानो प्रभु (राम) को उत्तम स्वर्ण के आवरण से आवृत कर रखा हो—धीरे-धीरे पग बढ़ात हुए चले।

शौण कटि से पीन स्तनों का भार बहन करनेवाली लक्ष्मी कहलानेवाली तथा घंस केश-भार से युक्त मीता, जल के बुद्धुवों से भी अधिक मृदुल अपने छोटे चरणों को रखती हुई रामचन्द्र के पीछे-पीछे चली। क्या कलक-रहित प्रेम से भी बढ़कर दृढ़ कोई बस्तु हो सकती है?

सर्व के उदयाचल पर आने के पूर्व, लक्ष्मी के पति (राम) दक्षिण दिशा में दो गोजन दूर चले गये। अब उस सुमत्र के सवव में कहेंगे, जो निर्भर-जैसे वहते नयन, आहत मन तथा अकेलापन माथ लिये तीव्रगामी अश्व-जूते रथ पर चला था।

पौंच घड़ी के अन्दर वह (सुमत्र) प्राचीगे से सुरक्षित अयाध्यानगग म प्रा पहुँचा और जाकर कुलगुरु (वसिष्ठ) के चरणों पर नत हुआ। व सुनिवर भी सब वृत्तात सुनकर व्यथित-चित्त हुए और भविष्य को जानकर बोले—हाय। चक्रवर्ती के प्राण अब गये।

सुनिवर यह कहत हुए कि उदारगुण दशरथ स्थायी रहनेवाले अपवाह के डर में (राम को) रोक नहीं सके। धर्म की रक्षा करनेवाले राम ने मेरे कथन को भी माना नहीं। नियति को कोन जीत सकता है। इम प्रकार रोते हुए व सुमत्र के साथ गज-प्रामाण में गये।

मंत्रिगण यह सोचकर कि गम रथ पर लौट आये हैं—चट्र के चारों ओर परिवप्पण के समान दशरथ को धंखकर आये। किन्तु, वहाँ गम को न देखकर और अजन अश्रुवारा वहानेवाले सुमत्र की दशा को देखकर अपने आनन्द को भूल गये।

‘रथ आ गया’—यो वहाँ के सब लोग बोल उठे। उम सुनकर और यह सोचकर कि राम आ गये, दशरथ मूर्छ्छी से उठे। कमल-समान अपने नेत्र खोलकर देखा। फिर अपने सम्मुख महान् तपस्वी (वसिष्ठ) को देखकर उनसे पूछा—क्या महावीर (गम) लौट आया?

सुनिवर, ‘नहीं आये’ कह सकने में असमर्थ हो अत्यत विकल होकर चुपचाप रहे। सद्गुणों से पूर्ण सुनिवर का सुख सूचित कर रहा था कि राम नहीं लौटे। तब दशरथ फिर मूर्छ्छित हो गये। सुनिवर दुखी होकर यह कहतं हुए कि मैं चक्रवर्ती की पीड़ा का नहीं देख सकता, वहाँ से दूर हट गये।

तब चक्रवर्ती ने अपने सारथि को देखकर पूछा—मेरा बत्त (राम) दर है या गमीप में है? उत्तर में सुमत्र ने ज्योही यह कहा कि वे उनके अनुज तथा मिथिला में उत्पन्न लह्मी-मदश देवी तीनों सीधे बढ़े हुए बौमों से भरे बन में गये, तोही दशरथ के प्राण भी शरीर को छोड़कर निकल गये।

उम समय, उम स्थान पर, इन्द्र आदि सब देवता आकर एकत्र हुए और यह सोचकर आनन्दित हुए कि हमारे पिता (विष्णु) के पिता हमारे निकट आनेवाले हैं। उन्होंने चट्र समान एक अनुपम विमान में उन (दशरथ) को विठाकर, नारायण के नाभि-कमल में उत्पन्न ब्रह्मा के लोक से भी ऊपर स्थित उम (वैकुण्ठ) लोक में पहुँचाया, जहाँ न पुनर्गवृत्ति नहीं होती।

उत्तम कुलजात मयूर-सट्टण कोशल्या, दशरथ की दशा का देखकर आशकित हुई और उनकी देह का स्पर्श करके देखा। तब यह जानकर कि इनके प्राण निक्षिल गये, देह स्पदन-हीन हो गई है, अत्यन्त व्याकुल होकर धरती पर गिर पट्टी और यो तड़प उठी, जैसे कोई अस्थिहीन कीड़ा, कड़ी धूप में पटकर तड़प उठा हो।

वह कौशल्या, जिन्होंने ब्रह्मा प्रभृति मारी सृष्टि के कारणभृत विष्णु का पुनर कृप में प्राप्त करने का वडा मुक्ति किया था अब पर्ति के विवोग में उस प्रकार विद्वन रोत विलाप करने लगी, जैसे चन्द्रमा ने प्रभृति को सो दिया हो। जैसे कोई नाग अपन मार्णवम् को खोकर गर्वित हुआ हो और जैसे कोई अपने गारी बो नांवर नो पड़ी हो।

जिनको कुछ कमी नहीं थी, ऐसे दशरथ हम पर कृपाहीन होकर अब हमें छोड़कर चले गये। मृत्यु के कारणभूत किसी व्याधि के बिना ही मर गये। यो कहकर वे (कौशल्या) इन प्रकार तड़पकर गिरी, जैसे आकाश से वर्षा के न गिरने से किमी सूखनेवाले जलाशय में गहनेवाली मछली तड़पती हो।

जो पुत्रवान् होते हैं, उनको एक ही सुख नहीं, अनेक सुख मिलते हैं। व अपने पितरों को नगक से मुक्त करते हैं। इन लोक में अपने माता-पिता के जीवन की रक्षा करते हैं। जो पुत्र पाकर जीवन व्येतीत करते हैं, उनको कोई विपदा उत्पन्न नहीं होती किन्तु मेरा पुत्र (राम) तो यहाँ आकर यह नहीं कह रहा है कि तुम डरो नहीं, (इसके विपरीत) वह अपने पिता की मृत्यु का कारण बन रहा है। यो कहती हुई कौशल्या कातर होकर विलखने लगी।

हाय ! दशरथ को, किसी व्याधि से या युद्ध में भाले, करवाल आदि शब्द से मृत्यु नहीं मिली। किन्तु अपने जाये पुत्र से ही मृत्यु प्राप्त हुई (अर्थात्, अपना प्यारा पुत्र ही मृत्यु का कारण बना)। अहो, केकंडा, मोती की सीप, फल देनेवाले केले का पेड़ और बौंस के जैसे दशरथ भी (अपने जाये पुत्र के कारण ही) मृत्यु-ग्रस्त हो गये। यों कहकर वह मूर्च्छित हो गिरी।

मध्य के मध्य कोधनेवाली विजली के समान दशरथ के बच्चे पर गिरकर विलखनेवाली बोशल्या कहने लगी, मनोहर दीर्घ केशों से युक्त कैकेयी। बुद्धि की चाहुरी से तुमने राज्य प्राप्त किया। अपरिवर्त्तनीय बचन तुमने प्राप्त किये। हृष्णने एक माथ अपने सारे मनोरथ पूर्ण कर लिये अहो !

त्रिवृत्पुरम गजराज से विद्युक्त होकर, गहरे प्रेम के कारण विकल होनेवाली हर्थिनी के समान कौशल्या कहने, लगी—हे गजन् ! तुमने पूर्वकाल में एक अपूर्व रथ में वैठकर शशग्रस्त के युद्ध में उसे निहत किया था। तुम्हारी कृपा में देवता लोग सुखी हुए थे। बाज तुम स्वयं उन (देवों) के वर्तिथि बन गये।

वह कौशल्या, जिन्होंने राम को जन्म दिया था, जिससे देवता लोग भी श्रुति (अर्थात्, वेद) के नारभूत परमपुरुष के दर्शन कर सके, कहने लगी—हे राजन् ! तुम क्या अपने पूर्व अनुपित यज्ञों के फल भोगने के लिए गये हो ? या मत्य का ब्रत लेने से उत्पन्न नि श्रेयस् का अनुभव करने के लिए गये हो ? या श्रेष्ठ मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म-मार्ग पर चलने से प्राप्त परमसुख का अनुभव करने के लिए गये हो ?

जब चक्रवर्ती की पत्नियों में पड़महिपी कौशल्या इस प्रकार के बचन कह-कहकर विलाप कर रही थी। उमी नमय उनकी नहेली जैसी सुर्मित्रा भी विकलता से रोती हुई बेनुब पड़ी रही। नारे वन्तःपुर में ऐसी दशा थी, जैसे युगान्त आ गया हो। आम के टिकोरे-जैसे नवनोवाली (दशरथ की) अन्य देवियाँ भी आकर एकत्र हो गईं और बड़ा कातर शब्द करके गे पड़ीं।

^१ अन्तिम पक्षियों में वह मात्र स्वनित हुआ है कि अपने पति को मारने की तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो गई।

उन्होंने अपने प्राणी के माथी को मृत पड़े हुए देखा, तो व भय के बाग्न विप-पान किये हुए व्यक्ति के जैसे कपित हो उठो। उन्होंने प्रपने मन में ठान लिया कि निष्कलक गुणवाले दशरथ का अनुभरण करके देवलोक में जाना ही उत्तम है। इनलिए, भय और व्याकुलता के उत्तरोत्तर वहने पर भी वे मूर्च्छित हो नहीं गिरी (अर्थात् दशरथ का महगमन करने का दृढ़ निश्चय करके धीरता के साथ खड़ी रही) अहो। क्या प्रेम में भी वहकर कठोर वस्तु कुछ है?

कलकहीन चन्द्र-जैसे मुखवाली व देवियाँ ऐसी खड़ी थीं कि समुद्र ने त्रावृत धरती म, देव-लोक में, उससे परे स्थित अन्य लोकों में भी पातिव्रत्य में युक्त मिथियों में इन देवियों से वहकर कोई नहीं थी। अरण्य की किसी नदी की धारा में पर्वत के द्विं जाने पर, उसके शिखर के अचल पर एकत्र होनेवाले मयूरों के समूह के समान उन देवियों का समृद्ध स्थिर खड़ा था।

अपने पुत्र से वियुक्त होकर तथा अत्यन्त पीड़ाजनक कडव वचनों से अपने प्राण त्यागकर भी अन्त तक सत्य पर दृढ़ रहनेवाले चक्रवर्ती की देह को व मिथियाँ पकड़े हुए गे रही थीं। वे ऐसी थीं, मानो मोहजनक माया-रूपी मकरों से भरे जीवन-रूपी समुद्र के पार (एक व्यक्ति को) पहुँचाकर लौटी हुई नौका में स्वयं भी जाने का प्रयत्न कर रही हों।

इस प्रकार जब साठ महसू देवियाँ रो रही थीं तथा निष्कलक गुणवाली कोशल्या तथा सुमित्रा विकल हो मूर्च्छित पड़ी थीं, तब गत्तमय रथ का सारथ्य करनेवाले सुमन्त्र ने जाकर सुनिवर (वग्निष्ट) को दशरथ की रणा का समाचार दिया। वे वेदज सुनि तुरन्त आये और विधि के विधान के बारे में सोचते हुए दुख-मग्न हो रहे।

सुनिवर यह सोचकर कि हमारे चक्रवर्ती वर देकर पुत्र से वियुक्त होने के दुख से अब सुक्त हो गये, चिन्तित हुए। तरगों से ज्ञुव्य सागर में किमी नौका के दृट जाने और उस नौका के नायक के मर जाने पर किंकर्तव्यविमृद्ध हो रहनेवाले पतवार चलानेवाले व्यक्ति के समान वे (किंकर्तव्यविमृद्ध) हों रहे।

स्कारादि क्रियाएँ सम्पन्न करने के लिए यहों कोई पुत्र नहीं है। जो घटित होना है, वह अवश्य घटित होगा ही। जब क्या क्रिया जाव? वो विकार करके फिर वह निश्चय क्रिया कि भ्राति में पड़ी क्रूर केकेवी के पुत्र (भरत) के आनं पर मद अतिम क्रियाएँ पूर्ण करेंगे और मिथियों के समुद्र-मध्य पड़े दशरथ के शरीर को तेल के समुद्र में निमज्जित करके रखा।

गजा की पत्तियों को ढेखकर वनिष्ठ ने कहा—जिन दिन इन (चक्रवर्ती) के अतिम नस्कार किये जायेंगे, उन दिन इनको दृट का आर्तिगम करके रक्तवर्ष अग्नि-ज्वाला में अपने प्राण छोड़ना। वो उनको वहाँ ने हटाकर दांनों पट्टमर्तिर्णियों (कोशल्या और सुमित्रा) को कलकहीन प्रासाद में भेजा। फिर, सदेशवाहकों को यह कहकर कि 'शीतल पुष्पमालाओं में भूषित भरत को जाकर ले आओ'। और यह लिगकर कि यह नश्वरना की जाना'—भेज दिया।

वे द्रूत केकय-महागज के मुन्डर नगर की ओर चल पडे। अपूर्वज्ञान तथा तपस्या से सपन्न बिश्व ने सेनापतियों में एक चतुर व्यक्ति को देखकर कहा कि तुम आवश्यक गल्य-कार्य पूर्ण करो। फिर, अपने कुल-धर्म के अनुष्ठान के योग्य स्थान में जा पहुँचे। अब हम उम प्रजा की दशा के मवध में कहेंगे, जो राम के माथ (अरण्य में) जाकर निङ्गमग्न हुई थी।

महस्त उज्ज्वल किरणों से युक्त सूर्य, मानो यह कहता हुआ कि 'उत्तम गुणवान पुत्र दशरथ स्वर्ग में पहुँच गया, उनके (चारों) पुत्र नगर से बाहर कही रहते हैं, उन पुत्रों (भरत और शत्रुघ्न) के आने तक मैं ही इस नगर की रक्षा करौंगा'—प्रकाशमय रथ पर आस्त होकर उज्ज्वल कर-स्पी करवाल लिये हुए प्रकट हुआ। तब मत्स्यों से पूर्ण समुद्र ने नगाड़े बजाये। देवताओं ने स्तुति-पाठ किया, समार के लोगों ने बन्दना की।

राम के पीछे-पीछे आये हुए लोग, जो इस प्रकार दुखी थे कि उतना दुखी अन्य कोई नहीं हुआ था, बेसुध होकर निङ्गा में डूबे थे और यह सोचकर कि उठारगुण (राम) वहाँ रहते हैं, उसी स्थान में ठहरे हुए थे, मव इस समय जग पड़े। फिर, करणा ने पूर्ण विशाल कमल-सदृश नयनोंवाले धनश्याम राम को कहीं न देखकर विकल हुए और यह कहकर कि कभी न वद होनेवाले हमारे नेत्रों ने आज वद होकर हमें धोखा दिया, दुखी होकर धरती पर लौट गये।

वे लोग राम का अन्वेषण करने के लिए आठों दिशाओं में दौड़ते, किन्तु मार्ग-मध्य गिर पड़ते। यह कहते कि अहो। हमारे प्रसु हमें दुख के समुद्र में निमज्जित करके चले गये। उन्होंने कितना क्रूर कार्य किया है। वह धना दृढ़कारण्य इसी धरती पर है, अपनी बुद्धि से हम उसे ढूँढ़कर पटचारेंगे। हम यो चुप पड़े नहीं रह सकते। हम उम वन की ओर गये हुए रथ के चक्रों के चिह्नों को पकड़कर आगे चलेंगे।

रथ के चक्रों के चिह्न को खांजते हुए जानेवाले लोगों ने रथ के चिह्नों को अयोध्यानगर की ओर लौटते हुए देखा। उससे उनके प्राण स्वस्थ हुए। वे सोचने लगे कि डरने की आवश्यकता नहीं। प्रसु अयोध्या पहुँच गये हैं। इस पर आनंदित होकर वे यो घोष कर उठे, जैसे वज्रयुक्त आकाश और समुद्र एकत्र होकर शब्द कर उठे ही।

उन नगरवासियों ने विचार किया—बमन्त के साथी मन्मथ के रूप-र्गव को मिटानेवाले राम अयोध्या को लौट गये हैं। उनकी दशा इस प्रकार हुई, जैसे फुफकार करनेवाले मर्ज के भयकर वक दत के दश में (उनके शरीर में) वहे हुए विष को दूर करने का अपूर्व औपध, 'अमृत' उन्हे मिल गया हो और उससे उनके प्राण स्वस्थ हो गये हो।

ज्यों-ज्यों वे मार्ग में बढ़ते जाते थे, त्यों-त्यों उस रथ के चक्रों का ही चिह्न देखते थे। नगर से इतर अन्य किमी दिशा में उन चिह्नों को न देखकर वे उत्तरोत्तर बढ़नेवाले आनंद में भरकर अपने अयोध्यानगर में उसी प्रकार पुनः आ पहुँचे, जिस प्रकार समुद्र प्रलय-काल में अपनी सीमा को पारकर ससार-भर में वह चलता है और पुनः अपनी सीमा के अन्दर आ पहुँचता है।

नगर में पहुँचने पर उन लोगों ने सुना कि चक्रबर्ती स्वर्ग मिधार गये। वह समाचार भी सुना कि दशरथ के स्वर्गवास करने का कारण राम का वन-गमन ही है। तब

उनके हृदय दुकडे-दुकडे हों गये और व मूर्छित होकर गिर पड़े। उनके मटान् शांक जा वर्णन करना हमारी शक्ति के परे है। प्रत्येक व्यक्ति के प्राणों के निर्गमन के लिए एक समय निश्चित होता है। अतः, वैसा गमीर दुःख होने पर भी उनके प्राण शरीर को छोड़कर कैसे निकल सकते थे ?

व चक्रवर्ती की कुछ सेवा नहीं कर सके। वन की गये हुए गम के साथ गहकर उनकी कुछ सेवा नहीं कर सके। दुस्सह दुःख-रूपी कारागार में बढ़ी होकर व तटपर रहे थे, तब अपूर्व तपस्या से सपन्न वसिष्ठ मुनिवर ने उनको, यह कहकर कि मैं भी तो अपवाह से डरकर इन प्राणों को रखे हुए हूँ और इस शोक का अनुभव कर रहा हूँ, और कह ग्राम में समझाकर उन्हे शात किया।

मुनिवर की आज्ञा से जलमध्य-स्थित बड़बाघि से डरकर बला को न लॉघनेवाले-मसुद्र क समान, नगर के लीग दुःख-सागर में निमग्न हो रहे। अब हम, उठारगुण पिता की आज्ञा, 'देवों के सुकृत' से, अर्धरात्रि में वन-मार्ग पर चलनेवाले दृढ़ धनुधर्मी गम के कायों का वर्णन करेंगे। (१-८७)

अध्याय ६

गंगा पटल

'इनके शरीर का रग अजन-सा है, या मरकत-समान है, अथवा तरगों से पूर्ण मसुद्र-जैसा है, या वर्पकालिक मेघ-समान है ?' ऐसा मन्देह उत्पन्न करनेवाले अनुपम तथा अनश्वर मौदर्य में युक्त रामचन्द्र, 'नहीं है' ऐसा कहने योग्य कटि से युक्त अपनी पत्नी तथा अपने अनुज के साथ इस प्रकार चले कि सूर्य की काति उनके शरीर से फृटनेवाली किरणों में अदृश्य होने लगी।

भ्रमगुल-समान और अनुपम काली मिट्टी के समान धने केशोंवाली, क्षीरमागर में उत्पन्न अमृत-जैसी मृदु-मधुर वोलीवाली, पूर्ण तपस्या के समान व्यापारी से युक्त आकाश (शून्य)-जैसी कटिवाली सीता के साथ वृप्तम-जैसी गतिवाले रामचन्द्र ने मन्त्र हसों तथा हमिनियों के विहार को देखा।

(मन्मथ के) पच दाणों तथा गम के तीक्ष्ण वाण को भी परान्त करनेवाले तथा विष को जीतनेवाले नयनों में युक्त सीता ने देखा कि रामचन्द्र के चंग. रेखाओं में मन्त्रमरणों की गुजार में भरे कमलपुष्पी वा उपहास बर रहे हैं।

अत्यन्त सुगंध और मकरद ने भरे अलकों ने युक्त चन्द्रसइ-महा ललाटवाली (सीता) के साथ प्रपाल-समान अधरवाले रामचन्द्र हन प्रवाह न्त्ले, तैने उन्नतल आभरणों में भूषित कोहं मेघ विजली के साथ या रहा ही या कोहं मनगञ्ज, वर्णियि जे मन्द आ गता थी।

छेद्वाले वशी की धर्णि के समान उत्त्रियों से युक्त वीणा के नाट के समान, पीले मधु के समान और इन्द्र-रस के खड़ के समान माधुर्य से युक्त तोते की-सी बोलीवाली भीता के नयनों के जेंस लगनेवाले और खेतों को निगनेवाले किसानों के द्वाग खेतों से उन्नाड़कर फेंके गये कुवलय पुष्पों के पुज को गम ने देखा ।

‘इसके द्वाग ढोये जानेवाले ये कुद्दमलों से युक्त दो स्वर्ण-कलश हैं, अथवा मट-भरे गज के दत्त-नुगल हैं’ ऐसा सदेह उत्पन्न करनेवाले स्तन-युगल से युक्त, मेघ-समान केशोवाली भीता, पर्वताकार कधोवाले राम के सग वड़ आनन्द में, दुःख का लेशमात्र भी अनुभव नहीं करती हुई और मार्ग में, इख पेरनेवाले कालहुओं (इन्द्र-यत्र) आदि को देखती हुई चली ।

विविध शखों से उत्पन्न मणियों से भरे, फैली हुई कमल-लताओं से शोभायमान जलाशयों से भरे एवं हमो के विश्राम-स्थान बने हुए शीतल उद्यानों को, दोनों पाश्वों में शखकीटों से युक्त सैकत श्रेणियों को, विविध पुष्पों को विखेनेवाले वृक्षों से भरे बनों को तथा स्वर्ण को वहा लानेवाली नदियों की देखकर वे मन में आनन्दित होंते हुए चले ।

वहाँ के जलाशयों में, जहाँ बड़ी-बड़ी भैंसे धान की बालियों की चवाते हुए ऐसी खड़ी रहती थी कि (उन बालियों का) रस उनके मुँह से वहकर उनकी टाँगों पर से होकर नीचे की ओर बहता रहता था, जहाँ (जलाशयों में) ‘शेल’ और ‘क्यल’ (नामक) मछलियाँ इस प्रकार ऊपर उछल पड़ती थीं कि मधु-पूर्ण कमल पुष्पों में रहनेवाले भ्रमर (भवभीत होकर) झट ऊपर उड़ जाते थे, जहाँ युवतियाँ लाल टाँगोंवाले मत्त राजहनों के समान स्नान करती थीं, ऐसे सुन्दर दृश्यों से युक्त उस कौशल देश को पार करके वे तीनों आगे चले ।

सूर्य के समान उज्ज्वल आमरणों से युक्त वे तीनों खेतों और वृक्षों से पूर्ण ‘मरुदम प्रदेश (उपजाऊ भूमि) पारकर, विशाल वीचियों से युक्त उस गगा नदी पर जा पहुँचे, जहाँ बेटों को जानेवाले पाप-रहित मुनि रहते थे ।

गगा नामक उस दिव्य नदी पर रहनेवाले सब तपोधन मुनि आनन्द से यह कहते हुए कि ‘हमारी शरण तथा लक्ष्य-भूत परमतत्त्व अब हमारे सम्मुख प्रकट हुआ है’, सुन्दर नयनोवाले रामचन्द्र के दर्शन के लिए जा पहुँचे ।

वे मुनि चिन्तन करके कहने के लिए असाध्य माधुर्य से परिपूर्ण तथा स्वर-रूप बदों के द्वाग प्रतिपादित अमृत-स्वरूपी (राम) को अपने चर्म-चक्षुओं से देखकर इस प्रकार प्रनन्दनचित्त हुए, जिस प्रकार उन (मुनियों) से भिन्न लोग (अर्थात्, सासारिक व्यक्ति) नियों के पास इन्द्रिय-सुख पाकर प्रमन्दनचित्त होते हैं ।

वाँम के दण्डों को वारण करनेवाले उन मुनियों ने उज्ज्वल कमल-समान नेत्रोवाले गम को, अपने नयन-पुटों से नसुद्र में उत्पन्न दिव्य माधुर्य से युक्त अमृत जैसे पिया । आगे जाकर उनका स्वागत करके एवं मधुर गानों में उनकी स्मृति करके आनन्दित हुए ।

वर ने भागे हुए अपने पुत्र को ढूँढ-ढूँढ़कर भी कही न पाकर दिन-भर दुःखी रहनेवाले माता-पिता अपने सम्मुख उस पुत्र के द्या जाने पर जिस प्रकार आनन्दित

होन दें, उसी प्रकार व मुनि (गम के दर्गन म) आनन्दित हुए और बड़े आश्र के पार अपनी तपस्या के योग्य आश्रमों मे ले गये ।

गम आदि के पथ-श्रम को मिटाने के लिए उन मुनियों ने अशु के नवीन जल न उन्हें स्नान कराया, अपने मधुर वचन-स्फी धनी पुण्य-मालाएँ पहनाई तथा अन्नय प्रेम-स्फी भोजन कराया ।

व मुनि, अरण्य के स्वच्छ शाक, कट और फल ढूँढकर ले आये और गम आदि से प्रार्थना की, हे उत्तम ! समीपस्थ गगा मे स्नान करके, अग्निहोत्र^१ करके उन फलों का आहार करो ।

गम ने स्त्री-कुल के लिए दीपक ममान (सीता) देवी को अपने अरुण कर मे पकड़े हुए, देवी के द्वारा प्रशस्ति होते हुए, उस गगा नदी मे स्नान किया, जाँ (गगा) पूर्वकाल मे व्रहादेव के द्वारा अपने कर मे उत्पन्न जल से उन (गम) के (अर्थात् चिष्ण के एक अवतार चिकित्सके) चरण के धोने से वह चली थी ।

कभी विनष्ट न होनेवाली (गगा) नदी ने, कर जोडकर (गम मे) कहा समार के लोग मुझमे स्नान करके अपने पाप दूर करत है, आज मैं, मुझे उत्पन्न करने-वाले तुम मे (स्पर्श पाकर) सब पापों से मुक्त हो गई ।

ठठोर नयनोवाले हाथी की सूँड-जैसी भुजावाले, जटा मे वहनेवाले श्वेत गगाजल से युक्त, पातिव्रत्य से पूर्ण देवी (सीता) के देखते हुए स्नान करनेवाले वे (गम), चिपधर मर्ष को हाथ मे (आभरण बनाकर) धारण करनेवाले, पातिव्रत्य से पूर्ण देवी (पार्वती) के देखते हुए नृत्य करनेवाले, श्वेत गगाधारा से युक्त जटावाले तथा चन्द्रकला को शिर पर धारण करनेवाले शिव के समान लगत थे ।

हिलनेवाले जल मे भरी गगा नदी की तरणो के मध्य व (राम) ऐसे लगत थे जैसे रजत-समान श्वेत वर्णवाले (चिष्णु) क्षीर-मागर मे, लता-जैसी कटिवाली कमलवार्गिनी (लहरी) के सग, शयन मे उठकर खड़े हुए हो ।

अलक्षक (महावर) गम मे अलकृत मृदु चरणोवाली, चित्र-समान सुन्दरी सीता ने स्नान (के लिए जल म प्रवश) किया, तो उनकी कटि की सुन्दरता से पगान्त होकर 'वजि' नामक लता, लहरा मे जल म अपना मँह छिपाने लगी । (उनकी) मद गति म हारकर राजहम दूर हट गये । उनके चरण-जैसे लगनेवाले कमल जल मे अदृश्य हो गये । मीन घाँसे मे हट गये ।

महादेव के जटाजट मे रहकर भी जाँ गगा नदी 'आक , 'पुन्नाग' आदि चिकित्सुणों की गध मे युक्त नहीं हुई थी वह सुन्दर करणोवाली सीता देवी के कुतल म र्णन्ति कम्भी-गध तथा सदोचिकित्सुणों की गध ने भर गई ।

लहरी पर फैल के उठ उठकर हिलत रहने ने इबन करणोवाली न्दी के गगान-लगनेवाली गगा (पातिव्रत्य धर्म म) प्रामद्ध सीता वो एकाकी देवकर न्यय धारे र समान अपने करों (अर्थात्, लहरो) वो वडाकर उसे स्नान करने लगी ।

^१ चंद्रपासन हीम रसना गुलब्ज चा निंच काश बरा गदा ॥

मीता के दीर्घ केशपाश-स्पी मंघ-नमुदाय खुलकर जल में इम प्रकार विस्फित हो रहे थे, जैसे गगानदी के मध्य काले रगवाली यमुना नदी की धारा हो और उसमें अनेक भैरव द्विखाई दे रही हों।

भैरवों से युक्त, अनेक लहरों से भरी, शब्दायमान गगा नदी की उम श्वंतधारा में, जहाँ उन (मीता) की बाँखों के जैसे मीन उछल रहे थे, स्नान करके मीता देवी जब जल से बाहर निकली तब वे द्वीर-मागर में तत्काल (मथन-काल में) प्रकट हुई लक्ष्मी-मी लगती थीं।

पूर्वकाल में गगा नदी, विष्णु के अस्त्र कमल-समान चरण का स्पर्श करने से, सब लोगों के पापों को दूर करने की शक्ति से युक्त होकर प्रकट हुई थी। अब प्रभु के सारे शरीर का स्पर्श करने ने क्या यह ससार कभी नरक में जायगा? (भाव यह है, गगा नदी में, राम के स्नान करने से ऐसी पवित्रता उत्पन्न हो गई कि अब समार का कोई भी प्राणी नरक में नहीं जायगा।)

राम, उम पवित्र जल में स्नान करके मुनियों के आवास में पहुँचे। फिर, जानियों के ध्यान के विप्रयमृत परमह को नमस्कार करके प्रज्ज्वलित अग्नि में होम किया। फिर, उन मुनियों के प्रेम के योग्य अतिथि बनकर भोजन स्वीकार किया।

जिस विष्णु भगवान् ने बहुत कष्ट उठाकर अमृत उत्पन्न किया था और स्वय उसे न पीकर देवों को दे दिया था, उसके अवतार राम ने, अब मुनियों के द्वारा दिये गये शाक-कद का भोजन स्वीकार किया। अहो! जिनका मन अत्यन्त शुद्ध है, उनके कार्य कभी त्रुटि-पूर्ण नहीं होते।

उस समय नहन्य नौकाओं का अधिपति दीर्घकाल से पवित्र गगा में नौका चलाते रहनेवाला, शत्रुघ्नसक धनुष को धारण करनेवाला, पर्वत के जैसे पुष्ट कधोवाला, गुह नामक निपाड —

पटह वाव से युक्त, श्वानों को पालनेवाला, अपने बड़े-बड़े पैरों में चमड़े के जूँ पहननेवाला धनीमूर्त अधकार जैसे साकार ही गया हो—ऐसे हृषीवाला, अपनी सेना के माथ इम प्रकार आया, जैसे जल-भरा मेघ ही समूल उठकर चला आया हो।

उमकी मेना के लोग छोटे डड़े से दु दुम्भी को बजा रहे थे। ‘पवे’ नामक पटह-वाव बजा रहे थे। वह पल्लव-समान लाल रगवाले शरों को धारण करनेवाला था। अनेक नौकाओं का स्वामी था। मढ़नावी गडभागों से युक्त गज-न्यूथ के समान परिवार से घिरा था।

कटि ने जाँधों तक जाँधिया पहने हुआ था। गगा की गहराई को जानने की महिमा में युक्त था। उमकी कटि से लाल रग का चर्म लटक रहा था। वह कटि में लपेटी हुई व्याघ्र की पूँछ में शोभायमान था।

दॉतों की माला-जैनी लगनेवाली छोट-छोटे उपलों की माला पहने था। उसके पां पां एम थे जैसे पत्थरों के बने हों। उमके केश एम थे, जैसे अधकार को बाँधकर रखा गया हा। उमकी उपर की ओर कुचित भोहों पर धान से भरी बाली रखी हुई थी।

इमके हाथों पर, ताड़ के पेड़ों से लटकनेवाले मोटे रेशों के जैसे बड़े घने और

सुन्दर कण बढ़े थे । उमका वक्ष विशाल रूपला के समान था । उमका रग तंल लगाये गये अंवकार के समान था ।

उमकी कटि म, रक्त के चिह्नों से युक्त कटार थी । उमकी दृष्टि ऐसी भयकर थी कि विपैला सर्प भी उमके आगे कौप जाय । वह उन्मत्त के जैसे अमवद वचन बोलता था । उमकी कटि इन्द्र के वज्र के समान अत्यन्त दृढ़ थी ।

शरीर को पुष्ट करनेवाले मास और मछली खाने में उमके मैंह में दुर्गन्ध आ रही थी । उम (मैंह) पर हँसी नहीं थी । बिना क्रोध के भी उमके देखन पर (उमकी आँखों में) चिनगारियाँ निकलती थीं । उमकी कण्ठ-ध्वनि यम को भी डरानेवाली थी ।

तरणों से भरे गगा नदी के तट पर स्थित शृगवेग नामक गाँव में उमका निवास था । ऐसा वह (गुह), आश्रम में ठहरे हुए उदार पुरुष (राम) के दर्शन करने के लिए मधु, मछली आदि उपहार लेकर आया ।

अपने परिवार के लोगों को दूर पर खटा करके, खबर तपाये गये वाण में युक्त अपने धनुप को भी दूर रखकर, कटि म वैधे कतार को भी उतारकर, निष्कलक तथा प्रेमपूर्ण चित्त के साथ, वह गम के आवास-भूत उम आश्रम के द्वार पर पहुँचा ।

वह निपादी का गजा, प्रेम से द्रवित हो वही खड़ा रहा । फिर पुकारकर कहा— ह स्वामी ! मे, श्वान के समान छुद्र, आप का दाम, आप की संवा में उपस्थित हुआ हूँ ।

गुह के यो कहने पर लद्धमण उसके निकट आये और उससे पूछा— तुम कौन हो ? किस कार्य में आये हो ? तब गुह ने प्रेम के माथ उन्हें नमस्कार करके कहा— ह देव ! मे श्वान-समान दाम नाव चलानेवाला हूँ । आप के चरणों का दर्शन मरने के लिए आया हूँ ।

तब लद्धमण गुह में वही ठहरने को कहकर अपने ज्येष्ठ भाई के पाग पहुँचे और निवदन किया— ह विजयशील ! पवित्र चित्तवाला, भाता से भी अधिक प्रेम में युक्त, वीची-भरे गगा में नाव चलानेवाला निपाट-पति गुह, अपने वडे परिवार के माथ आपके दर्गनार्थ आया है ।

उदार (राम) ने आदेश दिया—उसे गरे पास ले आओ । गदगुणवाले लद्धमण ने जाकर गुह को वह आदेश सुनाया, तो गुह प्रेमाधिम्य में तुरन्त भीतर प्रविष्ट हुआ और सुन्दर नेत्रोंवाले गम के दर्शन कर नेत्र-लाभ पाया । फिर काले केशों ने युक्त अपने शिर पर कर जोटकर, शरीर झुकाकर, नमस्कार करके, कर में अपना मुंह बढ़ किये रहा ।

गम ने गुह में वहा— वैठो । किन्तु गुह वैठा नहीं । अमीम प्रेम ने युक्त हांसकर उमने कहा— ह देव ! आपके भाजन के लिए अस्युक्तम सधु प्रीर मछली लाया हूँ । आपका चित्त कैसा है ? वह सुनकर वीर (राम) बुझ तर्पनियों वीं ओर देखकर भून्तुराये । प्रीर फिर बोले—

, कैव ने मातापाता का काफी निन्दा की है । रामचन्द्र मीं, दम न्यूना में, मातापाता नहीं है । गही बारा है कि गुह के लाये भोजन दो दसके प्रम जों हैं और दसदो नोलेषन जों, दसदर एवं दसदर ।

ये बन्दुएँ मन में निधन प्रेम के आधिक्य को प्रकट करनेवाली हैं और वहें आदर के नाथ लाइं गई हैं। अत. दुर्लभ अमृत से भी ये अधिक उत्तम हैं। प्रेम से लाये जाने के कारण ये पवित्र हैं अत. मुझ जैसों के लिए ये योग्य ही हैं। अब जैसे मैंने इन बन्दुओं को स्वीकार कर लिया है (तुम इनको स्वय स्वीकार कर लौटाकर ले जा सकते हो) ।

मिह-मद्दश वीर गम ने पुनः कहा—आज यहाँ रहकर हम कल गगा पार करेंगे। अत तुम अपने परिवार के लोगों के नाथ अपने नगर में जाकर सुख से वास करो और प्रभात के समय नौचा लेकर गगा-तट पर आ जाओ।

सेव के जैसे काले रगवाले गम के यह कहने पर प्रेम-भरे गृह ने निंवंदन किया—हे नारे मंसार के स्वामी। आपको इस वेष में देखकर भी अभी तक मैं, चांग ने, अपनी इन आँखों को नोचकर फेंक नहीं दिया ! अब आप को छोड़कर मैं अपने आवास में नहीं लौट सकता। हे प्रसु ! अपनी शक्ति-भर मैं आपकी सेवा करता रहूँगा।

विजयमाला में भूषित कोटड़-धारी पुरुषोत्तम ने गृह की बात सुनकर अपने भाई और देवी मीता की ओर दृष्टि फेरी और कहा—यह अपार भक्तिदुक्त है। और फिर व्यव्हरण-पूर्ण मन से कहा—सबसे उत्तम स्नेह-गुण से सपन्न है मित्र ! तुम यहाँ रहो।

तब गृह ने गम के चरणों को प्रणाम किया और उमड़नेवाले आनन्द के साथ, पटह-न्नायों से युक्त मसुद के नमान अपनी सेना को डुलाकर रामचन्द्र के आवास के चारों ओर रहकर उनकी रक्षा करने की आज्ञा दी और वह स्वय हाथ से धनुप लेकर और उसपर शुर को भी चढ़ाकर, कटार को अपनी कटि के बच्चे में खोसकर, गरजते मेघ के नमान (ध्वनि के नाथ) गम के चरणों की स्तुर्ति करता हुआ खड़ा रहा।

गृह ने लक्ष्मण से प्रश्न किया—हे मनुकुल में उत्पन्न ! सुन्दर अयोध्या नगर को छोड़कर यहाँ आने का आरण वताओ। तब गम के बनवान से दुर्खी लक्ष्मण ने सब वृत्तात कह सुनाया। (गम की) भक्ति से पूर्ण गृह ने अत्यंत दुर्खी होकर कहा—विशाल भूदेवी ने तपस्या में सपन्न होकर भी। (तप के) फल को प्राप्त नहीं किया। यह कैसा अनर्थ है ? और अपनी आँखों से अश्रु वहाता हुआ खड़ा रहा।

जिन्होंने अधकार के जैसे सर्वत्र फैले हुए शत्रुओं को पराजित करके भगाया, नव दिशाओं में अपना अधिकार स्थापित किया, अत्युन्नत स्थान में रहकर अनुपम आज्ञा-चक्र चलाया श्रेष्ठ कीर्ति को स्थापित किया, अपने शामन-काल में इस विशाल ससार के नव^१ लोगों के मन में रहकर नव पर कृपा की। और अब जो मृत हो गये हैं, ऐसे युद्ध-चीर दशरथ के समान ही अर्ण विरणवाला सूर्य भी अस्त हो गया।

मध्याकालीन निल्य कृत्यों को यथाविधि समाप्त करके वीर (रामचन्द्र) और दीर्घ-मसुद में उत्पन्न अमृत समान (मीता) देवी ने धरती पर विछाई गई 'नाणल' वान और वनी चटाई पर विश्राम किया कनिष्ठ (लक्ष्मण) दृढ़ धनुप हाथ में लिये, प्रभात होने तक अपलक्ष खड़े रहकर पहरा देते रहे।

^१ इस पद में प्रदूक्त 'नव विशेषर दग्धस्य और सूर्य—दोनों के लिए समान है।

जिन (लक्ष्मण) की देह-काति सूर्य की किरणों में आवृत मेश की स्वर्णमय आभा को मात करनेवाली थी, जो जगमगाते हीरकों के आभरण पहनने योग्य थे, और जो मिह के मदश (वलवान्) थे, ऐसे लक्ष्मण ने, निद्रा नामक सुन्दरी के उनके सम्मुख प्रकट होने पर उससे कहा—जब हम सुन्दर प्राचीरों में घिरी अयोध्या में लौटकर जायेंगे तब तुम मेरे पास आना । (तबतक तुम मेरे पास मत आना) ।

वीरता के आगार, करवाल-धारी लक्ष्मण की आज्ञा का उल्लंघन न कर नक्कने के कारण निद्रा-देवी लक्ष्मण के चरणों को प्रणाम करके और यह कहकर कि जब तुम प्राचीरों में घिरी स्वर्ग लोक-जैसी अयोध्या में आओगे, तब मैं तुम्हारे चरणों के आश्रय में आङ्गंगी वहाँ से चली गई ।

निद्रादेवी के यो प्रणाम करके चले जाने के पश्चात् लक्ष्मण, अपने प्रभु को निरतर उत्तम कमल के आमन पर रहनेवाली लक्ष्मी (के अवतार सीता) के साथ उम प्रकार (भूमि पर) शयन करते हुए देखकर, उनकी दुःखद दशा पर अत्यन्त शोकाकुल हुए । उनका मन टूट-मा गया । उनकी आँखों से अश्रुओं के निर्भर वह चले । वे दुःख में भरी प्रतिमा-मदश एक शिला पर निष्पट हो खडे रहे ।

पिछले दिन जन्म-रहित सूर्य मानों यह सूचित करते हुए अस्त हुआ था कि ‘असर्थ जन्म लेंतं गहनेवाले ये जीव, पवित्र दिखाई पडनेवाले स्वर्ग आदि (विनश्वर) लोकों को भूल जायं और (मोक्ष के एक मार्ग को) मोक्षकर जान लें और उम पर चलें, क्योंकि उनके मर जाने का यही ढग है ।’ वही सूर्य मानो यह सूचित करते हुए अब उन्हिं हुआ कि ये जीव ऐसे ही जन्म लेते हैं ।

कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले अति सुन्दर कमल-पुष्प, रथारूढ होकर प्रकट हुए उष्ण किरणधन सूर्य के मडल के दर्शन से प्रफुल्ल हुए । विलक्षण अजन-वर्ण सूर्य-जैसे प्रभु (राम) को देखकर सुन्दर ‘वजि’ लता जैसी सीता का मनोहर मुख-कमल प्रफुल्ल हुआ ।

राम, प्रभातकालीन निल-कृत्य समाप्त करके शशुओं के लिए भयकर अपने दन्धे पर धनुष को रखे हुए, वेदज मुनियों से अनुसत होते हुए (आश्रम से) चल पडे और प्रथम दर्शन में ही भक्ति से दास्य स्वीकार करनेवाले गुह को देखकर कहा—हे तात । हमको पार उतारने के लिए एक अच्छी नोका शीघ्र लाओ ।

आज्ञा के यह वचन सुनकर गुह के नेत्रों से अश्रु वह चले, उसके प्राण व्याकृत हो गये, राम के चरणों से वियुक्त होने की इच्छा न होने से वह, सीता देवी के साथ जोभित होनेवाले नील कुवलय, अतमी पुष्प, नमुद्र और मजल नेत्र—इनकी समता बग्नवाले राम के चरणों को नमस्कार करके यो कहने लगा—

हम कभी असत्य मार्ग पर चलनेवाले नहीं हैं । हमारा निवामन्थान वन ही । हम बद्धुण वल में युक्त हैं । आपकी आज्ञाओं का हम यथार्थित पालन करते रहें । इसलिए सुन्दर पुष्पमालाधारी ह प्रभु । हम, दानों को आप अपने वन्युरन् रम्मे नौर हमारे ग्राम में चलकर चिरकाल तक सुख से रहें ।

हमारे यहाँ मधु प्रभृत माज्जा में होता है, धान वस्त दीता । देवों के भूमि आहार

ये वस्तुएँ मन में स्थित प्रेम के आर्विक्य को प्रकट करनेवाली हैं और वडे आदर के नाथ लाई गई हैं। अतः दुर्लभ अमृत से भी ये अधिक उत्तम हैं। प्रेम में लाये जाने के कारण ये पवित्र हैं अतः मुझ जैसों के लिए ये योग्य ही हैं। अब जैसे मैंने इन वस्तुओं को स्वीकार कर लिया है (तुम इनको स्वयं स्वीकार कर लौटाकर ले जा सकते हो) ।

मिह-मद्दश वीर राम ने पुनः कहा—आज यहाँ रहकर हम कल गगा पार करेंगे। अतः तुम अपने परिवार के लोगों के साथ अपने नगर में जाकर सुख से बास करो और प्रभात के समय नौका लेकर गगा-तट पर आ जाओ।

मेघ के जैसे काले रगवाले गम के यह कहने पर प्रेम-भरे गुह ने निवदन किया—हे नारे समार के स्वामी ! आपको इस वेप में देखकर भी अभी तक मैं, चोर ने, अपनी इन बाँहों को नोचकर फेंक नहीं दिया। अब आप को छोड़कर मैं अपने आवास में नहीं लौट सकता। हे प्रभु ! अपनी शक्ति-भर मैं आपकी सेवा करता रहूँगा।

विजयमाला में भूषित कोदड़-धारी पुरुषोत्तम ने गुह की बात सुनकर अपने भाई और देवी सीता की ओर हृषि फेरी और कहा—यह अपार भक्तिदुक्त है। और फिर, करुणा-पूर्ण मन से कहा—सदसे उत्तम स्नेह-गुण से सपन्न है मित्र ! तुम यहीं रहो।

तब गुह ने गम के चरणों को प्रणाम किया और उमड़नेवाले आनन्द के साथ, पठह-वादों से युक्त मसुद के समान अपनी सेना को बुलाकर रामचन्द्र के आवास के चारों ओर रहकर उसकी रक्षा करने की आज्ञा दी और वह स्वयं हाथ में धनुप लेकर और उमपर शर को भी चढ़ाकर, कटार को अपनी कटि के बल्कि में खोसकर गरजते मेघ के समान (ध्वनि के नाथ) गम के चरणों की सुरुति करता हुआ खड़ा रहा।

गुह ने लक्ष्मण से प्रश्न किया—हे मनुकुल में उत्पन्न ! सुन्दर अयोध्या नगर को छोड़कर यहाँ आने का कारण बताओ। तब राम के बनवास से दुखी लक्ष्मण ने सब बृत्तात कह दिया। (राम की) भक्ति से पूर्ण गुह ने अत्यत दुखी होकर कहा—विशाल भूदेवी ने तपस्या में सपन्न होकर भी, (तप के) फल को प्राप्त नहीं किया। यह कैसा अनर्थ है ? और अपनी बाँहों से अश्रु बहाता हुआ खड़ा रहा।

जिन्होंने अधकार के जैसे मर्वत्र फैले हुए शवुओं को पराजित करके भगाया, मब दिशाओं में अपना अधिकार स्थापित किया, अत्युन्नत स्थान में रहकर अनुपम आज्ञाचक चलाया, श्रेष्ठ कीर्ति को स्थापित किया, अपने शासन-काल में इस विशाल ससार के मव^१ लोगों के मन में रहकर मब पर कृपा की. और अब जो मृत हो गये हैं, ऐसे युद्ध-वीर दशरथ के समान ही अरुण किरणवाला सूर्य भी अस्त ही गया।

मध्याकालीन नित्य कृत्यों को यथाविधि समाप्त करके वीर (रामचन्द्र) और शीर-समुद्र में उत्पन्न अमृत समान (सीता) देवी ने धरती पर विछाई गई 'नाण्ड' धाम की बनी चटाई पर विश्राम किया। कनिष्ठ (लक्ष्मण) दृढ़ धनुप हाथ में लिये, प्रभात हीने तक अपलक खड़े रहकर पहग देंते रहे।

^१ इन पद में प्रयुक्त 'मव' विशेषण दशरथ और मूर्य—दोनों के लिए समान है।

जिन (लक्ष्मण) की देह-काति सूर्य की किरणों से आवृत मेरु की स्वर्णमय आभा को मात करनेवाली थी, जो जगमगाते हीरको के आभरण पहनने योग्य थे, और जो मिह के सद्वश (बलवान्) थे, ऐसे लक्ष्मण ने, निद्रा नामक सुन्दरी के उनके समुख प्रकट होने पर उससे कहा—जब हम सुन्दर प्राचीरों से घिरी अयोध्या में लौटकर जायेंगे तब तुम मेरे पास आना । (तबतक तुम मेरे पास मत आना) ।

वीरता के आगार, करवाल-धारी लक्ष्मण की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण निद्रा-देवी लक्ष्मण के चरणों को प्रणाम करके और यह कहकर कि जब तुम प्राचीरों में घिरी स्वर्ग लोक-जैसी अयोध्या में आओगे, तब मैं तुम्हारे चरणों के आश्रय में आऊँगी, वहाँ से चली गई ।

निद्रादेवी के यो प्रणाम करके चले जाने के पश्चात् लक्ष्मण, अपने प्रभु को निरत उत्तम कमल के आसन पर रहनेवाली लक्ष्मी (के अवतार सीता) के साथ उस प्रकार (भूमि पर) शयन करते हुए देखकर, उनकी दुःखद दशा पर अत्यन्त शोकाकुल हुए । उनका मन टूट-सा गया । उनकी आँखों से अश्रुओं के निर्झर वह चले । वे हुःख से भगी प्रतिमा-मद्दश एक शिला पर निष्पद हो खड़े रहे ।

पिछले दिन जन्म-रहित सूर्य मानों यह सूचित करते हुए अस्त हुआ था कि ‘असंख्य जन्म लेते रहनेवाले ये जीव, पवित्र दिखाई पड़नेवाले स्वर्ग आदि (विनश्वर) लोकों को भूल जायें और (मोक्ष के एक मार्ग को) सोचकर जान लें और उस पर चलें, क्योंकि उनके मर जाने का यही ढग है ।’ वही सूर्य मानों यह सूचित करते हुए अब उद्दित हुआ कि ये जीव ऐसे ही जन्म लेते हैं ।

कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले अति सुन्दर कमल-पुष्प, रथारूढ होकर प्रकट हुए उष्ण किरणधन सूर्य के मडल के दर्शन से प्रफुल्ल हुए । विलक्षण अजन-वर्ण सर्व-जैसे प्रभु (राम) को देखकर सुन्दर ‘चंजि’ लता जैसी सीता का मनोहर सुख-कमल प्रफुल्ल हुआ ।

राम, प्रभातकालीन नित्य-कृत्य समाप्त करके शत्रुओं के लिए भयकर अपने कन्धे पर धनुष को रखे हुए, वेदज मुनियों से अनुसृत होते हुए (आश्रम से) चल पड़े और प्रथम दर्शन में ही भक्ति से दास्य स्वीकार करनेवाले गुह की देखकर कहा—हे तात । हमको पार उतारने के लिए एक अच्छी नौका शीघ्र लाओ ।

आज्ञा के यह बच्चन सुनकर गुह के नेत्रों से अश्रु वह चले, उसके प्राण व्याकुल हो गये, राम के चरणों में वियुक्त होने की इच्छा न होने से वह, सीता देवी के साथ शोभित होनेवाले नील कुबलय, अतमी पुष्प, समुद्र और सजल मेघ—इनकी समता करनेवाले राम के चरणों को नमस्कार करके यो कहने लगा—

हम कभी असत्य मार्ग पर चलनेवाले नहीं हैं । हमारा निवासस्थान वन ही है । हम अद्भुत बल से युक्त हैं । आपकी आज्ञाओं का हम यथाविधि पालन करते रहेंगे । इसलिए सुन्दर पुष्पमालाधारी हैं प्रभु । हम, दासों को आप अपने बन्धुजन समझें और हमारे ग्राम में चलकर चिरकाल तक सुख से रहे ।

हमारे यहाँ मधु प्रभूत मात्रा में होता है, धान बहुत होता है, देवों के भी आहार

के योग्य मास हैं। हम इवान के जैसे आपके सेवक हैं। हमारे प्राण आपकी सेवा में निरत हैं। आपके विहार के लिए बन हैं। स्नान के लिए गगा भी है। अतः, जबतक मैं यहाँ गूँगा, तबतक आप भी आनन्द से हमारे सर्ग रहे हमारे यहाँ पधारे।

पहनने के लिए रेशमी जैसे चर्म-वस्त्र हैं, विविध गम के भोज्य पदार्थ हैं। शृङ्खलाओं में लटकाये गये निद्रा करने के योग्य पर्योक के जैसे तख्ते हैं। निवास के योग्य छोटे-छोटे कुटीर हैं। शीघ्रगामी (हमारे) चरण हैं और (विघ्न डालनेवालों को मारने-वाले) धनुर्धारी हमारे कर हैं। आप यदि शब्दधर्मा आकाश में स्थित किसी वस्तु को भी चाहेंगे तो हम शीघ्र उन्हें ला देंगे।

आपकी आज्ञा का पालन करनेवाले पाँच सौ निषाद हैं। वे देवों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आप एक दिन भी हमारे झोपड़े में ठहरेगे, तो उमसे हम तर जायेंगे। उसमें उत्तम कोई दूसरा जीवन हमारे लिए नहीं होगा—यों गुह ने निवेदन किया।

तब गुह की प्रार्थना सुनकर महिमामय प्रभु ने अपने मन को कृपा से भरकर, उज्ज्वल मद्हाम करके कहा—ह वीर ! हम गगा में स्नान करके, बन में रहनेवाले महात्माओं की सेवा में रहकर कुछ ही दिनों में पुनः तुम्हारे आवास में आनन्द के साथ आ पहुँचेंगे।

इगित को जानेवाला गुह, शीघ्र जाकर ऐग दीर्घ नौका ले आया। कमल-ममान नयनोवाले गम ने निकट-स्थित वेदज्ञ ब्राह्मणी को देखकर कहा—मुझे आज्ञा दें। फिर, अर्धचन्द्र-मद्दश ललाटवाली (सीता) एवं अपने अनुज के साथ उस नौका पर आसू द्वुए।

शरीर के प्राण जैसे (गम) ने आज्ञा दी—नदी में नौका का शीघ्रता से चलायो। दीर्घ वीचियों से पूर्ण नदी में वह दीर्घ नौका बाल-हम की गति से शीघ्र चलने लगी। तब तट पर स्थित वेदज्ञ मुनि अग्नि में पड़े मोम के जैसे पिघल उठे।

दुर्ग-मद्दश मीठी बोलीवाली मीता और सर्व-ममान गमचन्द्र, ‘शैल’ (नामक) मछलियों में पूर्ण गगा के अति पंचित जल को उछाल-उछालकर खेल रहे थे। दीर्घ डाँड़ों से खेइ जानेवाली वह नौका अनेक टाँगोवाले एक बड़े कंकड़े के समान शीघ्रता में चली जा रही थी।

चबन (बृक्षों) में दुक्त सैकत श्रेणी-स्पी विशाल स्तनोवाली गगा-नदी ने, उज्ज्वल रल-मसुदाय से युक्त और सुराधित कमलपुष्पों की अरुण आभा से शोभायमान स्वच्छ तरग-स्पी अपने हाथों ने, अकेले ही उस नौका को उठाकर मट-मट (गति से) दूसरे तट पर पहुँचा दिया।

उस किनारे पर पहुँचकर प्रभु ने अपने मित्र (गुह) से पूछा—चित्रकूट को जाने का मार्ग कौन-मा है, बताओ। तब भक्ति से अपने प्राण भी ढेने के लिए मन्द उस गुह ने (राम के) चरणों पर नत होकर कहा—हे उत्तम ! इवान-तुल्य इस दास का एक निवेदन है।

इवान-तुल्य मैं यदि आपके सर्ग चलने का भाग्य प्राप्त करूँ, तो बन में आपके चलने के लिए मार्ग बनाऊँगा। अति उनम पल और मधु दृढ़कर ला दूँगा। आपके

निवास के योग्य रथान बनाऊँगा । एक दृण भी आप को छोड़कर पृथक् नहीं रहूँगा ।

(आपके आश्रम के) चारों ओर क्रूर व्याघ्रों को ढूँढ-ढूँढ़कर मिटा दूँगा और अति पवित्र प्राणियों के आवासभूत वन को ढूँढ़कर वहाँ आप को पहुँचा दूँगा । आपकी इच्छित वस्तुएँ ढूँढ़कर ला दूँगा । मैं आपकी किसी भी आज्ञा को पूर्ण करने की शक्ति रखता हूँ । मैं रात्रि-काल में भी मार्ग में चल सकता हूँ ।

मैं 'कवलै' आदि कंदों को पर्वतों पर से खोदकर ला दूँगा । प्राणों के आधारभूत स्वच्छ जल, चाहे कितनी भी दूर हो, वहाँ जाकर ला दूँगा । धनुष आदि अनेक शस्त्र मेरे पास हैं । मैं किसी से डरता नहीं हूँ । हे मल्लयुद्ध में चतुर कंधोवाले । आपके कमल-तुल्य चरणों से मैं कभी अलग नहीं होऊँगा ।

हे अनुपम सुन्दर वक्षवाले । यदि आप स्त्रीकार करेंगे, तो मैं अपनी सेना के साथ आपके साथ रहूँगा और कभी आप से पृथक् नहीं होऊँगा । यदि मेरे लिए असाध्य कोई शत्रु होगा, तो पहले मैं उसके साथ युद्ध करके अपने प्राण त्याग दूँगा और (अपने ऊपर) अपवाद नहीं आने दूँगा, आप आज्ञा दें कि मैं भी आपके साथ चलूँ ।

गुह के बचन सुनकर निर्मल-रूप प्रभु ने उत्तर दिया—तुम मेरे प्राण-तुल्य हो । मेरा अनुज तुम्हारा अनुज है । सुन्दर ललाटवाली यह (सीता) तुम्हारी भाभी है । शीतल मसुद से धिरी सारी धरती तुम्हारी संपत्ति है, मैं तुम्हारी सेवा के अधिकार (स्वत्व) में बैधा हुआ हूँ ।

जब दुःख हो, तभी सुख होता है । अतः, यह सोचकर कि 'मैं (गुह), तुमको (राम को) कभी भविष्य में देखूँगा, किन्तु इस वीच दारूण वियोग-दुःख को भोगना पड़ेगा' दुःखी मत होओ । (तुमसे मिलने के) पहले हम चार भाई थे । अब, अतहीन प्रेम से युक्त हम पाँच भाई हो गये हैं ।

हे उज्ज्वल तीक्ष्ण भाले को धारण करनेवाले । जवतक मैं वन में निवास करूँगा, तवतक तुम्हारा भाई यह लक्षण मेरे कष्ठों का भार वहन करने के लिए मेरे साथ रहेगा । मुझे दुःख देनेवाले शत्रु कहाँ हैं? तुम जाओ और मेरे जैसे ही (अपने आश्रित जनों की) रक्षा में निरत रहो । जब मैं उत्तर की ओर लौटकर आऊँगा, तब तुम्हारे आवास में आकर ठहरूँगा । अपने दिये वचन से मैं कभी विसुख नहीं होऊँगा ।

तुम्हारा भाई भरत, अयोध्या की प्रजा की रक्षा करने के योग्य गुणों से सम्पन्न है । यहाँ के वधुओं की रक्षा करनेवाला (तुम्हारे सिवा) कौन है? इसलिए तुम जाओ, तुम्हारे वन्धु मेरे वन्धु हैं, वे लोग दुःखी होंगे । मेरी आज्ञा से यहाँ के मेरे वन्धुओं की रक्षा करते हुए तुम यहाँ रहो । इस प्रकार राम ने कहा ।

तब गुह, राम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकने तथा (गम से) वियोग के दुःख को भी दूर नहीं कर पाने के कारण व्याधि-ग्रस्त-सा दिखाई पड़ा और विदा हुआ । प्रभु, अपने अनुज एव आभरण-भूषित देवी के साथ घने वृक्षों से भरे वन म दूर तक जानेवाले मार्ग पर चल पडे । (१-७७)

अध्याय ७

वन-प्रवेश पटल

जिन बारनारियों की सगति को ज्ञुद्र जन प्राप्त करना चाहते हैं, उनके मन के जैमे ही, 'यह आर्द्ध है या नहीं' ऐसा निश्चय करने के लिए अमाध्य वसन्त ऋतु, रामचन्द्र के वन में आते ही, आकाश में सर्वत्र जल-भरे मेघों को दिखाने लगी ।

सूर्य अपनी किरण, चन्द्रिका के जैमे (शीतल) वनाकर फैला रहा था । वहाँ के घने वृक्ष छाया दे रहे थे । आकाश के बाढ़ल औंसकण-जैमी वृद्धों की वर्पा कर रहे थे । मंद अनिल पुष्पों की गध लेकर मृदु गति से वह रहा था । ऐसे समय में वे तीनों, मोरों के नृत्य को देखते हुए वन-मार्ग में प्रमन्ता के माथ चले ।

तब रामचन्द्र सीता को वन के विविध दृश्य दिखाने लगे । हे सुगंधित पुष्पमाला धारण करनेवाली । कलापी-तुल्य । यौवनपूर्ण हरिण के समान दृष्टि से शोभायमान । (देखो) मधुर निद्रा करनेवाले इन्द्रगोप सर्वत्र फैले हुए हैं और कनैल के स्वर्णवर्ण पुष्पों की राशियाँ पड़ी हैं । इन सबका दृश्य ऐसा ही है, जैसे अनेक रत्नजटित स्वर्णहार पड़े हों ।

अमरों के गान और मेघ-स्पी मर्दल-वाद के साथ अपने पख फैलाकर मनोहर नृत्य दिखानेवाले, लजीले-से वे मयूर, जैसे तुम्हारे मोर्दर्य को अनेक नेत्रों से देखकर आनन्दित हो रहे हैं ।

सुन्दर आम्र-पल्लव के समान शरीर-काति से युक्त, हे सुन्दरी । मनोहर आभा से युक्त रक्तवर्ण मुख और हंगित देह-काति से शोभायमान शुक, लावण्यपूर्ण 'काढ़ल' पुष्प पर बैठे हुए ऐसे लगते हैं, जैसे तुम्हारे हाथ पर बैठे हों, ऐसे शुकों को देखो ।

तैल-लगे दीर्घ वरछे के जैसे तथा हथेली के चिस्तार से भी बड़े नयनों में शोभायमान, हे देवी । अनेक मयूर और यौवन से युक्त हरिण, तुम्हारी देह की सुप्रभा को देखकर और अपने ही कुल का व्यक्ति समझकर तुम्हारे निकट आते हैं, देखो ।

सुन्दर 'कुरा' पुष्पों एव उनके आम-पास फैले हुए 'पिङ्गु' वृक्ष के पुष्पों की राशियों में सोकर उठनेवाले एक मयूर की देह-गव को पाकर उमकी मयूरी, यह मोर्चकर कि उसने अन्य किसी मयूरी की सगति की है, उससे झट गई है, यह दृश्य भी देखो ।

हे अस्थिती के समान (पतित्रते) । अमृत से भी अधिक मनोहर । अशोक पुष्पों पर 'शेषन्दि' के स्वर्ण के रगवाले पुष्प पड़े हैं और उनपर भ्रमर-कुल मत्त हो रहते हैं । वह दृश्य ऐसा लगता है, जैसे मोने के टुकड़ों पर कोयले डालकर (नाली से) हवा फूँकी जा रही हो और उससे अग्नि की ज्वाला ऊपर उठ रही हो, यह दृश्य भी देखो ।

हे उभरे हुए स्तनोवाली । चित्र के लिए अमाव्य मोर्दर्यवाली । देखो, एक मयूर 'काढ़ल' पुष्प की कली को ध्यान ने देखकर उसे कोई सर्प समझ लेता है और उसे अपनी चोच में उठा लेता है । यह दृश्य देखकर मधु-पूर्ण कुटपुष्प हैं म पड़ते हैं ।

पर्वत पर निवास करनेवाला व्याघ्र-शावक, घने अधकार-जैसे हाथी के बच्चे और गाय के बछड़े, अपना सहज वैर छोड़कर एक साथ खेल रहे हैं । यह दृश्य देखो ।

हे अग्र के धूम से सुवासित केशोवाली । जलाशयों के तट पर अलकार के योग्य आभरण-जैसे पुष्पों से लदे हुए पौधे (हवा के झोके से) श्वेत रेशमी बस्त्र जैसे जल में निमग्न होते हुए ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं, जैसे मृदु स्तनोवाली युवतियाँ ही स्नान कर रही हो ।

हे धनुप समान सुन्दर भृकुटिवाली । भ्रमर-वालक, वढ़े हुए पुष्पों में छेद करके उनके भीतर जाने का प्रयत्न न करते हुए 'कोगु' वृक्ष के चारों ओर स्थित पुष्पों पर चढ़कर मो रहे हो, वे ऐसे लगते हैं, जैसे स्वर्ण के फलकों पर जड़े नील रत्न हो, यह दृश्य भी देखो ।

अपने मुँह में अधिक मधु को भर लेने के कारण आँख खोलकर नहीं देख सकने से, शीघ्र जाने का मार्ग नहीं देख पाते हुए, अधे के जैसे हिलते-हुलते हुए जानेवाले वडे भ्रमग, आगे-आगे जानेवाली भ्रमरियों को ही अपना नेत्र बनाकर जा रहे हैं ।

हे हस-तुल्य मृदु गतिवाली । स्वर्णमय पुष्पों से लटी 'वेंगे' वृक्ष की अनेक शाखाएँ, कन्याओं के शृंगार करने की रीति का अभ्यास-सी करती हुई, तुम्हारे अलक से शोभायमान ललाट के ऊपर अपने नव मृदुल पुष्पों को लगा रही हैं, मानो वे (अपने पुष्पों को) वरसा रही हो ।

हे अभराओं से भी अधिक सुन्दरी । सुगंधित मद मारुत के वहने से पुष्प-पुजों का मकरद पत्थरों से भरे कानन में इस प्रकार विखरा पड़ा है, जिस प्रकार तुम्हारे मुक्ताहार से शोभित स्तन-तटों पर दाग^१ फैले रहते हैं ।

इन धने वृक्षों ने, मानो यह सोचकर कि तुम्हारे मृदुल चरण पत्थरों पर चलने के अभ्यस्त नहीं हैं, मार्ग-भर में पुष्पों को विखेर रहा है, देखो । हे कोकिल-समान मधुर-भाषिणी । अपनी शाखाओं में सुगंधित पुष्पों से भरी हुई लताएँ तुम्हारी डमरू-सदृश कटि की समता नहीं कर सकती ।

हे करवाल-सदृश नयनोवाली । तुम्हारे कमल-सदृश चरणों तथा तुम्हारे चरण-तुल्य पल्लवों पर मँडरानेवाले इन भ्रमरों को देखो । सर्वत्र अधकार फैलानेवाले तुम्हारे सुगंधित केशों के समान इन मेघों को देखो । तुम्हारे कधों के समान इन कोमल वाँसों को देखो ।

हरिणों, मयूरों तथा कोकिलों के सचरण से युक्त वह वन, विविध पुष्पों से भरी शाखाओं से पूर्ण है । यत्र-तत्र पक्षिगण हैं । विविध लताएँ सुन्दर ढग से फैली हैं । अग्नि के वर्ण (के पल्लवों) से युक्त हैं । अतः, यह वन विविध चित्रकारी से युक्त यवनिका के समान दिखाई पड़ता है ।

स्वर्ण-आभरणों से भूषित पुष्ट कधोवाले राम, यौवन से परिपूर्ण सीता से ये वचन कहते हुए, मधुर विहार-से करते हुए वन-मार्ग पर चले जा रहे थे । तब सूर्य पश्चिम दिशा में जा पहुँचा । तब दूर से चित्रकूट पर्वत को देखकर राम कह उठे, दोनों कर्म को जीतने-वाले मुनियों का निवासभूत पर्वत यही है ।

^१ यौवनवती नारियों के मैत्रों पर कुछ दाग-से फैले रहते हैं, जिनको तमिल में 'तेमल' कहते हैं । तमिल के प्राचीन साहित्य में यत्र-तत्र इसका वर्णन हुआ है ।—अनु०

उस अवस्था, प्रेम की उमग से युक्त भरद्वाज सुनि यह समझकर कि चिरकाल से की गई अपनी तपस्या आज फलीभूत हो रही है, जन्म-व्याधि के लिए औषध-समान राम का स्वागत करने के लिए समुख आये ।

वे (भरद्वाज सुनि) छत्रधारी थे । दीर्घ दडधारी थे । कमडलु से युक्त थे । अधिक जटा से शोभावमान थे । मनोहर बल्कल बन्ध पहने थे । मार्ग पर इस प्रकार चलते थे कि उनके कारण अन्य प्राणियों को कुछ कष्ट न हो । उनकी जिहा पर चारों ओर नर्तन करते थे ।

प्रतिदिन रक्तवर्ण अग्नि को प्रज्ज्वलित करनेवाले थे । चतुर्मुख के द्वारा सुष्ठु सब प्राणियों को अपने प्राणों के समान सुरक्षित करनेवाली शीतल कर्त्ता से परिपूर्ण थे । वे ऐसी महिमा से सपने थे कि विष्णु के नाभि-कमल से उत्पन्न न होने पर भी सत्त लोकों की सुष्टु कर सकते थे ।

उन महर्षि के आने पर अवन रामचन्द्र ने पुष्पों का अर्द्ध देकर तीन बार उनको प्रणाम किया । उन उत्तम महर्षि ने राम को गले से लगाकर कहा—हाय । तुमको वह (सुनि का) वेष धारण करना पड़ा और मन मे पीडित होकर नेत्रों से आँसू बहाने लगे ।

फिर मुनिवर ने राम से पूछा—शत्रुओं के विनाशक है वीर । इस अवस्था मे ही तुम सारे ससार का शासन करने की क्षमता रखते हो । ऐसे कार्य को क्षोड़कर हम जैसे मुनियों के आवासभूत बन मे अपने लिए अनुपयुक्त वेष धारण करके, अनुज-सहित आये हो । इसका क्या कारण है ?

फिर, राम के द्वारा सारा वृत्तान्त कहे जाने पर उन उत्तम तपस्वी ने अत्यन्त दुःखी होकर कहा—यहो । इन अवस्था मे ऐसा घटित हुआ यह विधि का दुष्कृत्य है । इस विशाल धरती का दुर्भाग्य है (कि तुम गजा नहीं बने) ।

मेरे मित्र (दशरथ) ने पहले यह कहकर कि अरुण मुखवाली तथा मधुरभाषणी नीता के साथ तुम जल-पूर्ण समुद्र से आवृत इस धरती का शासन करो, पुनः किस प्रकार तुम्हारे जैसे अपने अनुपम पुत्र को अरण्य मे जाने को आज्ञा दी और यों आज्ञा देकर वे कैसे जीवित रह सके ?

‘सुख और दुःख दोनों परिवर्तनशील होते रहते हैं’—यह नियति है । इनके कारण हमारे पूर्वजन्मकृत पुण्य-पाप होते हैं । अतः, अब मेरे हुए होने से कुछ लाभ नहीं है ।—यो विचार कर वे (भरद्वाज महर्षि) शात हुए और पुनः राम का आलिंगन कर उन्हें अपने आवास मे ले चले ।

उन पवित्र मुनिवर ने अपने आश्रम मे जाकर उनका वयोचित सत्कार किया । उत्तम फल और कठ भोजन के लिए दिये और मधुर बचन कहे । यो अपने प्राण-सदृश पुत्र-जैसे उन (राम, लक्ष्मण और सीता) के प्रति प्रेम दिखाया, जिससे व तीनों बहुत आनंदित हुए ।

वे तीनों उन आश्रम मे सुख मे रहे । तब भरद्वाज महर्षि ने यह सोचकर कि इन गगचन्द्र के नग गहने ने मे तर जाकर्गा, तब प्रकार मे गत्कार बरके फिर प्रभु के मुख

की ओर देखकर कहा—हे उत्तम पुष्प-माला से भूषित वक्षवाले । मुझे एक बात कहनी है—

यह स्थान जल, पुष्प, कद और फल से समृद्ध है । यहाँ रहने से पूर्वकृत पाप भी कट जाते हैं और पुण्य बढ़ता है । अतः, हम लोगों के साथ तुमलोग भी यही गहो । श्रेष्ठ तपस्या करनेवालों के लिए इस स्थान से बढ़कर अन्य कोई उत्तम स्थान नहीं है ।

यहाँ गगा नदी के माथ काली (यमुना) नदी और सरस्वती का सगम है । अतएव, मैं इस स्थान को छोड़कर और कही नहीं जाता हूँ । कमल-तुल्य नयनोवाले (हे राम) । यह व्रक्षा के लिए भी दुर्लभ तीर्थस्थान है । हम जैसे लोगों के लिए यह सुलभतया प्राप्त होनेवाला नहीं है । ऐसे स्थान पर तुम रहो ।

महान् तपस्या से सपन्न भरद्वाज ने प्रेम से इस प्रकार कहा । तब राम ने उत्तर दिया—हे उदारचित्त ! यह स्थान जल-सपन्न कोशल देश से बहुत दूर नहीं है । यदि मैं इस स्थान से गूँगा, तो कोशल देश के लोग यहाँ आयेंगे ।

तब भरद्वाज महर्षि ने कहा—हे तात ! तुम्हारा कथन सत्य ही है । यहाँ से एक खात (खात=दस मील) दूर चलने पर देवताओं के लिए भी वन्द्य चित्रकूट पर्वत है । वह स्वर्ग से भी अधिक सुखदायक है । वहाँ जाकर तुम सुख से निवास करो ।

राम आठि तीनो व्यक्ति, प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहनेवाले भरद्वाज के चरणों को नमस्कार करके, 'कौन्नै' (वृक्षविशेष) के बाजे तथा वॉसुरी वजानेवाले ग्वालों के निवास-भूत 'मुल्ले' प्रदेश (अरण्य-प्रदेश) को पार करके चले और जब अरुण किरण (सूर्य) उदयाचल से चलकर आकाश के मध्य में पहुँचा, तब उस यमुना नदी के निकट जा पहुँचे, जहाँ हरिण-शावक जल पिया करते थे ।

धूलि से धूसर शरीरवाले वे तीनो उस (यमुना) नदी को देखकर प्रसन्नचित्त हुए और उसको नमस्कार करके उसमे स्नान करने का कर्तव्य पूरा किया । फिर, मधुर स्वादवाले कद और फल का आहार किया और उस नदी का जल पिया । तब राम ने कहा—इस नदी के पार हम कैसे जायें ? तब लक्ष्मण ने—

झुकनेवाले वाँसो को काटकर 'मणे' (नामक एक) लता से उनको वाँधकर एक नाव बनाई । उस पर पर्वत समान पुष्ट कधोवाले राम अपनी देवी-सहित आसीन हुए । लक्ष्मण दोनों हाथों से उस नाव को ढकेलते हुई तैरकर उस वड़ी नदी के पार पहुँचे ।

जहाँ गन्ने के कोलहुओं से इक्कु-रस का प्रवाह बहकर खेतों को सीचता रहता है, उक अयोध्या के प्रभु राम के अनुज ने अपनी मदरपर्वत-समान, पुष्प-भूषित दोनों भुजाओं से, बारी-बारी से यमुना-जल को ढकेलना आरभ किया । तब जल आगे बढ़कर उदयाचल के निकटस्थ पूर्वी समुद्र को भी पार कर चला और पीछे की ओर बढ़ा हुआ जल पश्चिमी समुद्र में जा पहुँचा ।

सुन्दर बल्कल धारण किये हुए वे तीनो उस यमुना-धारा को पार कर दूसरे तट पर पहुँचे और कुछ दूर चलकर एक ऐसे उजडे हुए मरु-प्रदेश के निकट पहुँचे, जहाँ वृक्षों की शाखा, कद और मूल, भुलस गये थे । जहाँ की धरती अग्नि के समान जल रही थी और जो उसका स्मरण करनेवाले के मन को भी भुलसा देती थी ।

प्रभु ने सोचा—जानकी में इस मरुग्रादेश को पार करने का सामर्थ्य नहीं है। तुरत ही सर्व, चन्द्र के समान शीतल किरणे फैलने लगा। उष्णता में भुलसे हुए वृद्ध पल्लवों से भर गये। दास्त्रण अग्नि से पूर्ण प्रदेश में कमल-बन छा गये।

भूने हुए बीज जैसे उपल-खड़, विखेरे गये पुष्पों के समान मृदु और शीतल हो गये। छिन्न तथा जली हुई लताएँ कोमल पल्लव निकालने लगी। वहाँ के फुफकार करनेवाले विपधर सर्प, उनके विप-दतों में अमृत प्रकट हो जाने से, अत्यन्त आनन्दित हो उठे।

मेघ उमड़-बुमड़कर गरज उठे और शीतल जल-विन्दु वरसाने लगे। तीक्ष्ण शर लियं हुए व्याघ लोग भी प्राणियों पर मुनियों के समान ही दया दिखाने लगे। वाधिने भूख में हीन हो गई और सम्मुख आनेवाले प्राणियों का आलिंगन करने लगी। हरिण-शावक उनके थनों से दूध पीने लगे।

शिलायों के विलों में रहनेवाले दास्त्रण विपधर सर्प अब पीड़ा-मुक्त होकर ऐसे शान्त हो रहे, जैसे वे तरगायित शीतल जल में पड़े हों; वहाँ के वनों के वाँस जो पहले जल उठते थे, अब सुक्ता-समान दौतोवाली नवयुवतियों के कधों के जैसे ही सुन्दर दिखाई देने लगे।

हरित कबल के समान हरियाली विछ्छ गई। स्थान-स्थान पर मयूर पख फैलाकर युवतियों के समान नृत्य-भगियों दिखाने लगे। उनके पाश्वों में भ्रमर गवैयों के समान नृत्य के अनुकूल सगीत गाने लगे।

अकाल में भी पेड़ों में फल लग गये। विना मूलवाले पोवों में भी कट उत्पन्न हो गये। सर्वत्र पुष्पलताएँ आभरण-भूपित युवतियों के समान दिखाई देने लगी। उत्तम शील में बढ़कर अन्य कौन-मी तपस्या आचरणीय है? (अर्थात्, शील ही सबसे बड़ी तपस्या है।)

व्याधों के निवास ऋषियों के आश्रम जैसे हो गये, माणिक्य-कातिवाले इन्द्र-गांप (कीट) स्थान-स्थान पर फैल गये। कोकिल धने वृक्षों में वैठी विरह-पीडित कोकिल-वालायों को गा-गाकर शात करने लगे। करीर के वृक्ष भी हरे-भरे होकर कोमल पल्लवों से भर गये।

वह बन पहले इस प्रकार भुलसा हुआ था, जिस प्रकार एक निश्चित अवधि ढंकर युद्ध करने के लिए जानेवाले बीरों को गाढ़ आलिंगन करके बेज देने के पश्चात् उनकी विरहिणी पल्लियों का मन भुलस जाता है। अब वह इस प्रकार लहलहा उठा, जिस प्रकार उन योद्धायों के लौट आने पर उन युवतियों का मन लहलहा उठता है।

उम मरु-प्रदेश को उन तीनों ने धीरे-धीरे पार किया, फिर वे उम चित्रकूट पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ मत्तगज, आकाश में प्रकाशमान चन्द्र के बादलों के मध्य छिप जाने पर भेघ को ढेखकर हथिनी समझ लेते हैं और ताड़ (वृक्ष)-जैसी अपनी विशाल सँड़ को पमार्ग्वर उम (मेघ) को छुने की चेष्टा करते हैं। (१-४७)

अध्याय ८

चिलकूट पटल

हमारे लिए पूज्य दंवताओं तथा हम जैसे मनुष्यों के लिए जो एक समान ही अविजेय हैं, वैसे अनघ, सुन्दर नयनोवाले तथा सहस्र नामवाले अमल विष्णु (के अवतार राम), यौवन से परिपूर्ण कलापी तुल्य जानकी को चन्दन-वृक्षों से भरे, स्वर्ण से पूर्ण उस (चित्रकूट) पर्वत की प्राकृतिक शोभा दिखाने लगे।

करबाल तथा बरछा—दोनों एक साथ रखे गये हो, ऐसे लगनेवाले नयनों से युक्त (हे सीता)। इस पर्वत के पाद-प्रदेश में एला की लताएँ तथा तमाल फैले हैं। इस पर्वत की सानुओं पर सोनेवाले दीर्घ तथा जल से भरे मेघों एवं हाथियों में कोई भैरव नहीं होता।

हे रक्त लगे करबाल-जैसे लाल रेखाओं से युक्त नयनोवाली! इस उन्नत पर्वत पर उछल-कूद करनेवाला पहाड़ी बकरा, (विष्णु के प्रतिपादक) वेदों^१ के समान शोभायमान मरकत रत्नों के काति-पुज से आवृत होकर सूर्यदेव के हरितवर्ण अश्व के समान दिखाई पड़ता है।

रत्नहार से भूषित स्तनोवाली है कलापी। मत्तगजों को निगलनेवाले विशाल उदरवाले अजगरों की केचुलियाँ वाँसों के भुरसुटों में लगी हुई हिल रही हैं। वे (केचुलियाँ) उद्यानों से घिरी अयोध्या के सौधों पर फहरानेवाली श्वेतपट-युक्त ध्वजाओं-सी लगती हैं।

लवण-समुद्र से उत्पन्न न होकर क्षीर-समुद्र में से उत्पन्न अमृत-समान हे सुन्दरी। (पर्वतों के) प्रबालमय सानुओं में यत्र-तत्र कबरीमृगों के बाल हिलते हुए ऐसे दिखाई पड़ते हैं, जैसे निर्भर वह रहे हो। उनको देखो।

क्रोध से भरे सिंह से आहत होकर मत्तगज के गिरने पर उसके रक्त के साथ उसके सिर से जो गजमुक्ता विखर पड़ती हैं, वे प्रणय-कलह में मानिनी स्त्रियों के द्वारा फेंके गये रक्त-चंदन लगे मोती-जैसे लगते हैं।

इन पर्वत के शिखर पर जब चद्रमा दिखाई पड़ता है, तब इस पर्वत के पद्मराग रत्नों की काति जटाजूट का दृश्य उपस्थित करती है। इसके उज्ज्वल निर्भर गगा की समता करते हैं। इस प्रकार, यह पर्वत वृषभ पर आरूढ होनेवाले भगवान् (शिव) के समान लगता है।

हाथियों को निगलनेवाले अजगर (उन हाथियों के मद-जल प्रवाह को न सहकर) उनको अपने उज्ज्वल माणिक्यों के साथ ही छोड़कर चले जाते हैं। तब शिलाओं पर 'वेंगे' (नामक वृक्ष के सुनहले) पुष्पों के साथ पड़े हुए वे माणिक्य उन हाथियों के सुखपट का दृश्य उपस्थित करते हैं।

१. विष्णु का रग श्यामल है, अत उनका वर्णन करनेवाले वेदों का रग भी श्यामल माना गया है।

‘एक सूत्रसुगल रत्नजटित कलशों को दो रहा हो ।’—यो सूहम कटि तथा पुष्ट मानों ने युक्त है पुष्टलते । इस पर्वत पर के चटन-वृक्ष मानों आकाश-मार्ग को ही रोक रहे हैं और चढ़मा, जैसे इन वृक्षों के बीच में से होकर जा रहा है वह सुन्दर दृश्य देखो ।

चढ़कला-जैमे (आकाशबाले) ढाँतों से शोभायमान है देवी । हाथी, वृक्ष की शाखाओं पर लगे मधु के छत्ते पर की मक्खियों को उड़ाकर उसमे स्थित सुगर्धित अरुण वर्ण मधु को उठाकर अत्यधिक प्रेम के माथ पूर्ण गर्भ से युक्त अपनी हथिनी के मुँह में डाल देता है, वह दृश्य देखो ।

सुष्टि की रक्षा करनेवाले भगवान् (विष्णु) यद्यपि माया में छिपे रहते हैं, तथापि इन्हियों का उमन करनेवाले योगियों के लिए अदृश्य नहीं रहते । उसी प्रकार, इस पर्वत पर रहनेवाले दिव्य हयग्रीव (घोड़े के जैसे मुखबाले) मानव छिप जाने पर भी यहाँ की स्फटिक शिलाओं में (प्रतिविवित होकर) प्रकट दीख पड़ते हैं, वह देखो ।

नर्तनशील कलापी में भी सुन्दर और कोकिल के जैसे स्वरवाली है मीति । यहाँ के उन किन्नरमधुओं को देखो जो इस प्रकार गा रहे हैं कि अपने प्रियतमों से मान करती हुई पर्वतवामी नियाँ (उन गानों को सुनकर) द्रवितचित्त होकर स्वयं अपने प्रियतमों को खोजने लगती हैं ।

किसी धनुर्वीर के धनुप के समान शोभायमान ललाटवाली ! हे कुलदीपिके । अरण्य-निवासी लवी जड़वाले ‘कवलै’ (नामक) कट को खोदकर ले जाते हैं । उनके खोदने से जो गड्ढे पड़ जाते हैं, उनको लवे वाँसी के टकराने से झग्नेवाले मधु के छत्ते (अपने मधु से) भर देते हैं ।

नारीत्व-रूपी शरीर के लिए प्राणतृत्य है सुन्दरी ! देखो, जलाशय में उसके नाथ आनन्द से डुबकी लगानेवाली वानरी जब वानर पर पानी उछालती है, तब वह (वानर) पर्वत के दूसरे पाश्व में जाकर वहाँ के एक मेघ को पकड़कर हिलाने लगता है—(जिससे वर्षा की वृद्धि विखर पड़ती है ।

वनी के बिना ही अमृत में जलनेवाले उत्तम दीपक-मद्दश है देवी । उन माणिक्य-मय शिलाओं को देखो, जो अपनी काति में अधकार को चीर डालती है और अपने स्थान में कभी न हटते हुए मड़लाकार सूर्य के नमान लगती हैं ।

अरुवती (जैसी पतिव्रता) को भी मच्चे शील का आदर्श दिखानेवाली लद्धी-तृत्य है सुन्दरी । जब कालवर्ण भ्रमगों के भुण्ड ‘वेग’ वृक्ष की शाखा पर बैठते हैं तब वे शाखाएँ झुक जाती हैं । फिर, उन (भ्रमगों) के उड़ जाने पर वे ऊपर उठ जाती हैं, वे शाखाएँ ऐसी लगती हैं, जैसे अपने स्वर्णमय पुष्पों को विखेकर (हमारे) चरणों पर नमस्कार कर रही हों ।

उज्ज्वल ललाट तथा शोभायमान वाभगणों से युक्त है देवी । हे पल्लवित शाखा-ममान सुन्दरी ! सूर्य को छुनेवाले इस पर्वत पर ‘तिनै’ (एक अनाज) की खेती की रखवाली रखनेवाली तीक्ष्ण वर्ण-जैसे नयनोवाली नियाँ फसलों पर आनेवाले पक्षियों पर

घुँघुचियाँ फेंकती हैं। वे घुँघुचियाँ आकाश में उड़ते हुए ऐसी लगती हैं, जैसे (आकाश से) नक्षत्र ही गिर रहे हों।

दृढ़ धनुष को धारण करनेवाले वीरों के फरसे से कटकर गिरी हुई अगरु की लकड़ियों को जलाने से उठनेवाला धूम-समूह, ब्राह्मणों के होम-कुड़ के धूम के साथ मिलकर ऐसा फैल रहा है, जैसा कोई विशाल कालवर्ण पर्वत-शिखर हो।

नव-पुष्प, अगरु-धूम, आदि से सुगंधित होकर निरतर वर्षा करनेवाले मेघ-सदृश काले तथा दीर्घ केशों के भार से कपित होनेवाली सूखम कटि से युक्त है मयूर-तुल्य सुन्दरी। गगन में नक्षत्रों को चमकते हुए देखकर सूखी हुई पर्वत-नदियाँ भी अपने रक्त-समुदाय को चमका रही हैं।

अपने प्रियतमो से रुठकर चलनेवाली विद्याधर-सुन्दरियों से मनोहर, अलक्ष्मि से अचित छोट-छोटे पदों के चिह्न, मेघों को छूनेवाली माणिक्यमय शिलाओं में अदृश्य हो जाते हैं और मरकतमय शिलाओं पर रक्त वर्ण दिखाई पड़ते हैं, देखो।

रक्त स्वर्णमय गभीर नाभि से शोभायमान है मेरी सहधर्मिणी। निर्भरों में स्नान करने के लिए आनेवाली देवस्त्रियों के द्वारा अपने काली मिट्टी-जैसे केशों से उतारकर फेंके गये कल्पवृक्ष के पुष्प, प्रभूत रक्त-राशियों सहित झरनेवाले निर्भरों के साथ गिर रहे हैं, देखो।

देखो, मुखरित वीर-ककण और धनुष से युक्त किसी व्याघ्र के द्वारा, खेती की रक्षा के लिए (वजाने के उद्देश्य से) रखे हुए पटह (नामक चमड़े के बाजे) को एक वानर खड़ा होकर वजा रहा है, देखो। एक व्याघ्र-स्त्री चन्द्र को पकड़कर प्रेम से उसके कलाक को पोछ देने की चेष्टा कर रही है।

देखो, धने माधवीलता-कुजों में पल्लव की शश्याएँ पड़ी हैं, जिनपर देवस्त्रियाँ विश्राम करती थीं और अब उनके चिरकालिक वियोग की सूचना देती हुई-सी झुलसकर काली पड़ी हुई हैं।

स्मरण-मात्र से अत्यधिक आनन्द प्रदान करनेवाली अमृत-समान आभरण से विभूषित सुन्दरी। देखो, मधु से भरे 'वेंगे' वृक्षों में तथा 'कोगे' वृक्षों में स्थान-स्थान पर लगे हुए हिलनेवाले झूलों पर बैठकर पहाड़ी स्त्रियाँ जब पर्वतीय रागों का आलाप करती हैं, तो उनसे आकृष्ट होकर अशुण (नामक) हरिण^१ उनके समीप आ जाते हैं।

महुए के पुष्प तथा इन्द्रगोप के समान अधर से युक्त है सुन्दरी। इस पर्वत पर के निर्भरों से उठनेवाले तुषार-विन्दुओं के समुदाय, अप्सराओं के नृत्य के समय विखरे हुए चन्दन आदि सुगन्धित लेप, कस्तूरी-कुंकुम आदि का लेप एवं कल्पपुष्पों के मकरद से समुक्त हैं।

जैसे कोई लता, इगुलिक के पत्रलेखों से चित्रित उत्तम स्वर्णमय कलशों से शोभायमान हो, यो शोभित होनेवाली है सुन्दरी। मध्याह्न काल में असर्थ किरणोवाला

^१ यह प्रसिद्ध है कि 'अशुण'-न्यूग मगीत सुनकर मुंध हो खड़ा रहता है और मगीत समाप्त होने पर व्याकुल होकर झट अपने प्राण छोड़ देता है।

सूर्य जब इस स्वर्णमय उन्नत पर्वत पर पहुँचता है, तब यह पर्वत ऐसा लगता है, जैसे यह स्वर्ण-मुकुट धारण कर रहा हो ।

नारियों के तिलक-समान ह सुन्दरी । वॉसो ने विखरे हुए मुक्ता-माणिक्यमय गिलाओं पर इस प्रकार पढ़े हैं, जिस प्रकार लालिमा मेरे युक्त आकाश पर तारे चमक रहे हैं ।

सूहम रथों से युक्त वाँसुगी की ध्वनि और शीतल तथा मधुर स्वरबाली वीणा की ध्वनि में भी अविक मधुर वचनों मेरे युक्त, है शुक-समान सुन्दरी । मर्वत्र लाल पुष्पों से भरे हुए पलाश-बृक्षों का वन ऐसा लगता है जैसे (साग वन) अग्नि की ज्वाला में जल रहा हो ।

‘काढ़ल’ पुष्प को ककण पहनाया गया हो, यो अति सुन्दर करा से शोभायमान ह सुन्दरी । वडे हाथियों के बच्चे अपूर्व तपस्या से मम्पन्न ऋषियों के लिए अपनी सूँड़ों में दूर-दूर के निर्मलों से पानी भरकर लाते हैं और उन ऋषियों के कमड़लुओं में भर देते हैं ।

आम की फाँक-जंसे सुन्दर नयनोवाली कलापी-तुल्य ह सुन्दरी । लम्बी तथा भुक्ति हुई पुँछबाले तथा द्रावित चित्तबाले वानर, वार्द्धक्य से पीड़ित तथा मन्द हृषिबाले व्याकुल मुनियों को जाने का मार्ग दिखाकर उनकी सेवा करते हैं । अहो !

माँप के फन एव रथ का उपहास करनेवाले विशाल जघन से युक्त, है सुन्दरी ! देखो, वडे पखोवाले मधुर यज्ञोपवीत मेरे शोभायमान बृक्षबाले ब्राह्मणों के होम-कुड़ों की अग्नि को अपने दीर्घ पखों से प्रज्वलित कर रहे हैं ।

दीर्घ केशों से शोभायमान सुन्दर मधूर-तुल्य त्री-कुल का भूपण, है देवी ! आम्र-बृक्षों पर फलों को खानेवाले वानर, लोकहित में निरत वेदज ब्राह्मणों के बहू पर वारण कियं जानेवाले यज्ञोपवीत के लिए रेशम के कीड़ों के घोसलों एवं कपास के पौधों से आवश्यक रेशे ला देते हैं ।

नारियों की सुष्टि के लिए आदर्श बनी हुई, है लक्ष्मी-तुल्य सुन्दरी ! वानर, आम्र, पनम और कढ़ली-बृक्षों से बड़े-बड़े पके हुए अति मधुर फल चुन-चुनकर (मुनियों को) ला देते हैं और जगली सूअर कदों ओं उखाड़कर ला देते हैं ।

तुम्हारे कर में रखने योग्य, लाल मुखबाले तोतं, पर्वत के ‘तिन्ह’ धान्य, ज्वार, नेम आदि की वीजों एव भुक्तनेवाले वॉन में उत्पन्न होनेवाले चावल को, अमत्यरहित ऋषियों के आश्रमों में जाकर दे याते हैं ।

वडे-वडे अजगर, जो चियाड़नेवाले और दाँतों से युक्त वडे हाथियों को भी निगलने की शक्ति रखते हैं, ज्ञानियों के नमान इद्रिय-दमन करके यहाँ रहते हैं और जटावारी मुनियों के मार्ग में सीदियाँ बनकर पड़े रहते हैं ।

देखो, सूर्य के किरणों को ढकनेवाले अनेक स्वर्णमय विमान^१ यहाँ आते जाते रहते हैं मानो वे (विमान) जल के सोतों से युक्त पर्वत पर अपूर्व तपस्या करनेवाले तथा (भगवान् के ध्यान में) अपने दोनों नयनों में यो आनन्दाश्रु वहानेवाले, जैसे जल का घडा ही उड़े रहे हो, ऋषियों को मोक्ष-लोक में ले जाने के लिए ही यहाँ आते हों ।

^१ ये विमान चित्रदृष्ट पर्वत पर भवरण बरनेवाले देवों के हैं, जो ऐसे लगते हैं, मानो मुनियों को मोक्षलाक में ने जाने के लिए आये हुए हों ।

अग्नि में तस, तैल से अर्चित अति तीक्ष्ण वरछे-जैसे अजनाचित एवं यम को भी व्याकुल करनेवाले नयनों से शोभायमान, हैं सुन्दरी। देखो, (वच्चे देने की) पीड़ा में युक्त हथिनियों को हाथी अपनी सूँडों का महारा दे रहे हैं।

विष-स्वभाववाले नयनों से युक्त है देवी। तुम्हारी कटि को देखकर उसे विजली समझकर, फनवाले सर्प डर जाते हैं और तड़पकर बिल में घुस जाते हैं। मदपूर्ण घटवाले हाथी, मेघ-गर्जन को सुनकर सिंह-गर्जन समझकर डर जाते हैं और अस्त-व्यस्त हो भागने लगते हैं।

गृहस्थी में रहकर ही सप्त व्रतों का पालन करनेवाले चक्रवर्ती के पुत्र (राम) ने, आभरणों से भूषित (सीता) देवी को इग प्रकार के अनेक दृश्य, उनका वर्णन करके दिखाये। फिर, उनका स्वागत करने के लिए सम्मुख आये हुए मुनियों को नमस्कार करके उन पाप-रहित मुनियों के अतिथि बने।

महिमामय सुन्दर तुलसी-मालाधारी भगवान् (विष्णु) ने वैर से युक्त अधकार-मद्दश राक्षस-कुल के विनाश की कामना करके कालनेमि^१ नामक राक्षस पर ही अपना चक्र चलाया है, इम प्रकार (का दृश्य उपस्थित करते हुए) सूर्य अस्ताचल पर जा पहुँचा।

जब विष्णु का चक्र असुर (कालनेमि) के शरीर में जाकर लगा था, तब उसके शरीर से निकले हुए अत्यधिक रक्त प्रवाह के समान ही आकश में सर्वत्र लाली फैल गई और उम राक्षस के मुँह से गिरे हुए वक्र दत के समान ही चंडकला प्रकाशमान हो गई।

सूर्य के अस्त होने पर, कमलपुष्प, स्त्रियों को वदन की शोभा प्रदान करके मुकुलित हो गये। आकाश-स्पी जलाशय में सर्वत्र श्वेतवर्ण कुमुद-स्पी नक्षत्र चमक उठे।

उस समय वानर और वानरियाँ वृक्षों की ओर बढ़े, हाथी और हथिनियाँ जलाशयों की ओर बढ़े, सुन्दर पक्षी घोसलों की ओर बढ़े और तत्त्वज्ञान से सपन्न प्रभु (राम) सध्याकालीन कार्यों की ओर बढ़े (अर्थात्, मायकालीन कृत्यों को करने गये)।

घने ढलोवाले सुगधित पुष्पों में से कुछ वद हुए। निर्दोष तथा सुगध में भरे पुष्पों में से कुछ विकसित हुए, प्रभु के साथ, अनुज (लक्ष्मण) तथा अमृत-समान (सीता) देवी के कर एवं नेत्र भी कमलपुष्पों के समान ही वद हुए (अर्थात्, वे तीनों हाथ जोड़कर और नयन वद करके भगवान् का ध्यान करने लगे)।

सध्याकाल व्यतीत होने पर (रात्रि के आगमन पर) उत्तम स्वभाववाले लक्ष्मण ने, अनध राम तथा उनकी सद्गम किटिवाली देवी के निवास के लिए विचार करके वहाँ किस प्रकार से एक पर्णशाला बनाई, हम उसका वर्णन करेंगे।

लक्ष्मण ने छोटे-छोटे वाँस के ढुकड़ों को लेकर खडा किया और फिर वक्रता से हीन मीधे तथा लवे वाँसों को उनपर आड़े रखा, फिर उनपर शहतीरों की तरह वाँसों को रखकर ठाट बनाई और उनपर पत्ते विछाये।

^१ कालनेमि हिरण्यकशिपु का एक पुत्र था। उसके एक सौ सिर और एक सौ हाथ थे। विष्णु के द्वारा अपने पिता के मांग जाने पर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और देवों को परास्त करके अपना पराक्रम दिखाने लगा। तब विष्णु भगवान् ने चक्र प्रयोग करके उसके गिर और हाथों को काट डाला।

छप्पर पर शालवृक्ष के पत्ते विछाये और उन्हे मूँज में बौध दिया । नीचे खड़े किये वाँसों के टुकड़ों के बीच में मिडी भगकर दीवारे खड़ी की ओर उनपर जल छिड़ककर (दीवारों को) समतल बनाया ।

पर्णशाला के भीतर शान्तोक्त रीति से राम और सीता के (सोने के) लिए अलग-अलग आसन बनाये, लाल कुकुम की मिडी से उन्हे लीपा और दीवारों में भीतर की ओर नदी में उत्पन्न रत्न और मोती चिपकाये ।

(पर्णकुटीर के भीतर) मयूर-पखों का एक वितान लगाया । अपनी हुरी से काट-काटकर लटकनेवाले तोरन बनाकर लगाये और नदी-तट के बाँसों को काटकर उस पर्णशाला के चारों ओर एक प्राचीर (वाढ़) भी बनाया ।

वह प्रभु, जो चतुर्मुख के हृदय में एव हम जैसे अब लोगों के हृदयों में एक समान ही रहता है, स्वर्णमय देह कर्ति से युक्त लद्धी-समान सीता देवी के माथ अपने अनुज के द्वारा इस प्रकार निर्मित पर्णकुटीर में प्रविष्ट हुए ।

जानियों का अविद्या-रहित हृदय है, महिमामय वेद है, या पवित्र क्षीर-सागर हैं, या वेकुठधाम ही है—यो कहने योग्य उस पर्णकुटीर में अगाध प्रेम से प्राप्त होनेवाले प्रभु (गम), प्रेम-पूर्ण मन में आर्नदित होकर निवास करने लगे ।

सीता देवी के पुप्पे ने भी कोमज्ज, चरण काँटों और ककड़ों से भरे अरण्य में चले भरे दांपहीन भाई के करों ने यह पर्णशाला बना दी । अहो । जिन्हे कोई सहायक नहीं होता उन्हे भी कौन-सी वस्तु अप्राप्य होती है ? (भाव यह है—निस्महाय व्यक्ति के लिए उसके नमीपस्थ पदार्थ ही सब आवश्यकताएँ पूर्ण करते हैं ।)

वह विचार करके फिर राम ने अपने अनुज से कहा—दो पर्वतों के समान पुष्ट कधोवाले । तुमने ऐसी सुन्दर पर्णशाला बनाना कब सीखा ? उस समय उनके कमल-समान विशाल नदीों में अश्रु-विंदु वरन पड़े ।

अपार सपत्नि को प्रदान करनेवाले (दशरथ) की आज्ञा से वन में आकर उत्तम वर्म का पालन करते हुए मैंने सर्व के समान उज्ज्वल मत्य-हृषी यश को प्राप्त किया, ऐसा कहने में क्या तश्य है ? मैं तो अनेक दिनों ने तुमको कष्ट ही देता आ रहा हूँ । इस प्रकार, गम ने वड़ी मनोविद्वान के माथ कहा ।

प्रभु के यह कहने पर लद्धमण ने चिंतित होकर उनकी ओर देखा और कहा—हे मेरे यिनृ-नुल्य । (हमारे) कष्टों का अकुर तो पहले ही (अर्थात्, जब कैकेयी को दशरथ ने वर दिये) फूट निकला था । (भाव यह है, हमारे इन कष्टों का कारण आप नहीं हैं । इनका कारण कैकेयी का वर ही है, अत आप चिंतित न हों ।)

फिर, गमचन्द्र ने मन में सोचा—जो हो, अब सुझे और कुछ नहीं करना है । अब (लद्धमण के कष्टों को देखकर) मैं धर्म के मार्ग को छोड़कर नहीं जा सकता । फिर, अपने ज्येष्ठ भ्राता की मेवा में आनन्द पानेवाले लद्धमण की इस मानसिक ताप को (कि मेरे दो भाई बनवाम का कष्ट भोग रहे हैं) जानकर गम सोचने लगे—इस (लद्धमण) के मानसिक कष्ट दो दर बरना असभव है ।

फिर अग्रज (राम) न अपने छोटे भाई को देखकर कहा—ससार में प्राप्त होनेवाली सपत्ति भीमावद्ध होती है। किन्तु, भविष्य में अपार आनन्द उत्पन्न करनेवाले हमारे इस बनवास-रूपी सुख के बारे में विचार कर देखो। इसमें क्या कमी है?

दृढ़ धनुधर्मी रामचन्द्र अपने अनुज को सात्वना देकर, देवों की स्तुति प्राप्त करते हुए, अपने व्रत का पालन करते रहे। उधर महान् तपस्वी (वसिष्ठ) की आज्ञा से (केक्य देश को) गये दृतों का क्या हुआ—अब हम उसका वर्णन करेंगे। (१-५८)



अध्याय ६

चिता-शयन पटल

असत्य-रहित अनुपम दृत, जो अयोध्या से चले थे, रात-दिन वेग से चलकर (केक्य देश में) भरत के भवन में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर द्वार-रक्षकों से कहा—द्वाररक्षको। राजा भरत को हमारे आगमन का समाचार दो।

‘आपके पिता का समाचार लेकर दृत आये हैं।’—यह वचन सुनकर भरत अत्यन्त आनंदित हुआ और प्रेमाधिक्य से उन दृतों को अपने निकट लाने की आज्ञा दी। जब वे दृत निकट जाकर नमस्कार करके खड़े हुए, तब भरत ने कहा—सुकुटधारी चक्रवर्तीं, किंचित् भी कष्ट के बिना सुखी हैं न?

दृतों ने कहा—‘चक्रवर्तीं शक्तिशाली हैं।’ यह सुनकर आनन्दित हो फिर भरत ने प्रश्न किया—मेरे प्रभु (राम) के साथ आभरण-भूषित अनुज (लक्ष्मण) अन्तुष्ट वैभव से युक्त हैं न? दृतों ने ‘हाँ’ कहा। तब भरत ने राम को उद्दिष्ट करके अपने शिर पर हाथ जोड़े।

फिर, यथाक्रम मव वधुओं के समाचार सुनकर भरत आनन्दित हुए। तब दृतों ने भरत से यह कहकर कि चित्रित करने के लिए अमाध्य रूप से सपन्न है भरत। चक्रवर्तीं का यह श्रीमुख (अर्थात्, चिढ़ी) है, पत्र दिया।

उनके यह कहने पर भरत ने उम पत्र के प्रति नमस्कार किया और उठकर अपने स्वर्ण-आभरण से भूषित दीर्घ कर में उसे लिया और द्रवित-चित्तहोकर मद्योविकसित पुष्पों से भूषित अपने शिर पर उसे रख लिया।

यो शिर पर रखने के पश्चात् भरत ने, ऊपर से चटन से लित मिट्टी लगाकर बद किये गये उम पत्र के चौगे को खोलकर देखा। उसका समाचार पढ़कर उन दृतों को कोटि से भी अधिक धन दिया।

तब भरत इस उमग में कि वे अपने ज्येष्ठ भ्राता के दर्शन करनेवाले हैं, उज्ज्वल काति फैलानेवाली हैंसी से युक्त हुए, पुलकित हुए और उस पत्र पर मद्य तोड़कर लाये गये पुष्प डाले।

तुरत भरत ने अपनी सेना को मन्नद्व होने की आज्ञा दी और यह भी न विचार कर कि वह सुहृत्त वात्रा के लिए अच्छा है या नहीं, केकेयराज को प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर, अपने भाई (शत्रुघ्न) के माथ पौड़े जुते हुए रथ पर आसीन होकर चल पड़े ।

उम समय हाथी (भरत को) धेरकर चल पड़े । रथ कोलाहल करते हुए साथ चल पड़े । वडे महिमापूर्ण राजा लोग धेरकर चल पड़े । करवालधारी पदाति-मेना चल पड़ी । शख बज उठे । नगाड़े, मत्स्यों के निवास मसुद्र के समान गरज उठे ।

ध्वजाएँ एकत्र होकर निकली । निशान निकले । आम के टिकोरे-जैसे नयनो-वाली युवतियों के आस्ट होने योग्य हथिनियाँ चली । मेघों के गरजते समय काँधनेवाली विजली के समान सर्वत्र आभरण चमक उठे ।

अनेक रथों पर रखे गये विविध बाद्य वड़ी ध्वनि करने लगे । नारियों की पुष्प-मालाओं के भ्रमर झकार भरने लगे । शर के समान वेगगामी अश्व मार्ग पर चलने लगे ।

अपनी नामिका से माँस छोड़ते हुए वाँसुरी की-सी ध्वनि करनेवाले, मुख पर आभरणों ने भूषित, गगन पर भी उड़ जानेवाले, निश्चित समय में कितनी भी दूर चले जानेवाले, भुकी हुई गरदनवाले अश्व चल पड़े ।

धनुर्विदा में निपुण, करवाल-युद्ध में चतुर, खड्ग-युद्ध में कुशल, मल्ल-युद्ध में प्रवीण, वरछे, भाले आदि शत्रुओं के अभ्यासी योद्धा तथा पुराने हाथीवान भी धेरकर चले ।

परस्पर टकरानेवाले मैंसे, वकरे, रक्त का चिह्न देखकर लड़ने को झपटनेवाले कुकुट, बाज, 'करपूल' (नामक लड़नेवाला पक्षी-विशेष), 'कौदारी' (नामक लड़नेवाले पक्षी-विशेष) आदि कों पालनेवाले जो कभी उत्तम मार्ग पर न चलनेवाले थे, ऐसे मनुष्य भी धेरकर चले ।

भरत कही त्वरित गति से आगे न निकल जायें, इस आशका से आतुर होकर विद्या, ज्ञान आदि से भरे हुए व्यक्ति आगे-आगे चलने लगे । इस प्रकार चलते हुए वे ऐसे लगते थे, जैसे शापवश इस धरती पर जन्म लिये हुए देवता मदज्ञान पाकर पुनः स्वर्ग को जा रहे हों ।

वटी-मागधों के मधुर गीत गगन को भरने लगे । जैसे प्राण शरीर में व्यास रहता है, उसी प्रकार मर्दल-ध्वनि सब गीतों में व्यास हो गई ।

वर्जनवाले नगाड़ों की ध्वनि से भी वटकर वेदज ब्राह्मणों के अशीर्वादों की ध्वनि थी । वृपभ-समान मल्ल-बीरों के गर्जन से भी वटकर वटी-मागधों के स्तुति-पाठ की ध्वनि थी ।

भरत सात दिन चलकर नदियों, काननों और विशाल पर्वतों को पारकर उम कौशल देश में जा पहुँचे, जहाँ गन्ने के कोलहुओं से निकला हुआ रस नालों में, वॉध तोड़ता हुआ, वह चलता है और अकुरों से भरे खेतों को भर डेता है ।

खेत हलों से शून्य थे । युवकों की भुजाएँ पुष्पमालाओं से शून्य थीं । शीतल धान के खेत पानी से शून्य थे । कमल में वास करनेवाली सपत्ति की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी उन देश को छोड़कर चली गई थीं ।

मधुर फलों के गम विशाल जलाशयों में भर रहे थे और चारों ओर वहकर व्यर्य हो रहे थे। मनोहर पुष्पों के समूह तोड़े न जाकर पौधों पर ही विकसित होकर, फिर कुम्हलाकर भर रहे थे।

फमल को काटने का उचित समय को जाननेवाले किसानों के अभाव से शालिवान के पोवे, आग्र-रम की धारा के बहने के कारण, सिर भुकाये टूटकर खड़े थे और धान धरती पर झरकर अकुरित हो रहे थे।

तिलपुष्प-जैसी नासिकावाली तथा उन खेतों में जहाँ पक्षी आनन्द से सचरण करते थे, काम करनेवाली अंत्यज-नारियों काम छोड़कर दुःखी पड़ी थी, मानों वे अपने प्रियतमों से मान करके निराने का काम छोड़ वैठी हो।

शुक मौन हो वैठे थे। सुन्दर केशोवाली स्त्रियाँ अपनी सखियों का दौत्य करती हुई उन (सखियों) के प्रियतमों के निकट नहीं जा रही थीं। नगाडे नहीं बज रहे थे। स्वर्ण से अलकृत वीथियों में विवाह आदि के चुलूस नहीं निकल रहे थे।

सगीत-शास्त्रों में कथित विधान के अनुसार बनाई गई मधुर नादवाली वाँसुरी अब नहीं बज रही थी। नृत्यशालाओं तथा जलाशयों में नृत्य तथा जल-क्रीडा नहीं हो रही थी। (लोगों के) शिर पुष्पालकार से विहीन थे। विद्युत-निवारक यत्रों से युक्त प्रासाद धान कूटनेवाली स्त्रियों के गीतों से विहीन थे।

(लोगों के) प्रकाशमान मुख हास-हीन थे। सौध सुगन्धित अग्र-धूम से विहीन थे। दीप पुष्ट ज्वाला से विहीन हो मद पड़े थे। नारियों के केश मधुपूर्ण पुष्पों से विहीन थे।

भली भाँति वढ़े हुए तथा लहलहाते हुए सस्य के पौधे, विशाल नालों के निकट रहने पर भी किसी के द्वारा उन नालों से पानी को मोड़कर न बहाने के कारण उसी प्रकार शुष्क खड़े थे, जिस प्रकार निष्ठुर लोभी के द्वार पर, दान पाने की इच्छा से आया हुआ व्यक्ति ही।

वर्णन करने को भी असाध्य, अपार सपत्नि से समृद्ध वह कौशल देश, पुष्पहीन हो, पुष्प पर आसीन लक्ष्मी से विहीन हो एवं सारी शोभा से रहित होकर प्राण-विहीन देह के समान लगता था।

इस प्रकार के कौशल देश को देखकर भरत वहुत दुःखी हुए, किन्तु वहाँ घटित किसी वृत्तान्त को न जानने से यह सोचते हुए कि शायद हम अब कोई शोक-समाचार सुनने जा रहे हैं, वे रह-रहकर आह भर रहे थे।

सत्य नामक उत्तम आभरण से भूषित चक्रवर्ती के पुत्र भरत ने कुछ दूर आगे जाकर वेगवान् अश्वों से खीचे जानेवाले रथ से भी आगे जानेवाले अपने मन में (भावी के सम्बन्ध में) विचार करते हुए, अयोध्या के विशाल द्वार को देखा।

भरत ने उस नगर में उन दीर्घ ध्वजाओं की नहीं देखा, जो (ऐसी लगती थी) मानों वे सहस्रकिरण (सूर्य) के पीछे-पीछे चलकर उनसे यह कहती थी कि तुम सारे ब्रह्माड में धूमते-धूमते थक गये हो, (यहाँ किंचित् समय ठहरकर) विश्राम कर लो, तब जाओ, और उन (सूर्य) की गति को रोक लेती थी।

(भगत ने उस नगर में) उन नगाड़ों का शब्द नहीं सुना, जो (नगाड़) मानो विशाल जनता को यह स्चना देते बजते रहते थे कि राजा को यथेष्ट यश देते हुए यहाँ की समस्त सम्पत्ति को ले जाओ ।

भ्रमरों में पिये जानेवाले मधु से युक्त पुष्पमाला को धारण किये हुए भगत ने मगल-नीत गानेवालों को तथा स्तुति-पाठ करनेवालों को प्रचुर मात्रा में उत्तम हाथी, हथिनी, अन्य सम्पत्ति आदि पुरस्कार के रूप में ले जाते हुए नहीं देखा ।

लोक-रक्षक चक्रवर्ती के पुत्र (भरत) ने भूसुरों (अर्थात् ब्राह्मणों) को दान के रूप में गाय गज, सुन्दर सम्पत्ति आदि को जाते हुए नहीं देखा ।

मैडगनेवाले भ्रमरों एवं वीणा आदि से मस स्वर-युक्त सगीत न गाये जाने के कारण व (अर्थात्, भ्रमर और वीणा आदि वाय) आम के टिकोरे-जैमे नयनोवाली (मूक) नारियों के केशों की समता कर रहे थे ।

उस नगर की वीथियों में रथ, घोड़े, हाथी, शिविका, शकट आदि नहीं दिखाई देते थे । अत., वे (वीथियाँ) जल के सूखने पर मिकतामय दिखनेवाली नदियों के समान ऊंभा-विहीन लगती थीं ।

सजनों के द्वारा प्रशस्ति सद्गुणों से पूर्ण भगत ने नगर के भीतरी प्रदेश को अपनी पूर्व दशा से विहीन देखकर अपने भाई (शत्रुघ्न) से कहा—हे अनुज ! चक्रवर्ती के निवासभूत इस राजधानी की ऐसी दशा क्यों हुई ?

शत्रुघ्नों को वीर-स्वर्ग पहुँचानेवाले तथा सजल मेघ-जैमे कधोंवाले हैं भाई । यह नगर मीन-समान नयनोंवाली लद्धी से विहीन विशाल क्षीर-सागर के जैमा लग रहा है, देखो ।

तब उत्तम रत्न-खचित वाभरणों से भूषित मिह-समान अनुज (शत्रुघ्न) ने हाथ जोड़कर निर्वदन किया—ऐसा लगता है कि इस नगर में कोई अति दारुण शोकप्रद घटना हुई है जो साधारण नहीं है । लद्धी भी युगान्त तक अविनाशी रहनेवाले इस नगर को छोड़कर चली गई हैं ।

इतने में, कुछ अधिक सोचने के पूर्व ही चक्रवर्ती-कुमार विशाल तोरण से भूषित अत्युत्तम राजप्रामाण के द्वार पर आ पहुँचे और तुरन्त अपने पिता के विश्राम-स्थान में गये ।

पर्वतों को लज्जित करनेवाले ऊँचे कधों से शोभायमान भरत ने जाकर देखा, किन्तु कहीं भी अपने पराक्रमशाली पिता को नहीं देखा । तब उनके मन में आशका उत्पन्न हुई कि अब पिता के न देखने का कारण कुछ साधारण नहीं है ।

उस समय, अपने पिता को ढूँढ़नेवाले और अपने पवित्र करों से उनके चरणों को ढूँढ़ने की इच्छा रखनेवाले भरत से, वॉम-जैमे कधोंवाली एक दासी ने कहा—माता आपका न्मरण कर रही हैं । आप इधर आइए ।

भरत ने आकर अपनी माता (कैकेयी) के चरणों का नम्बकार किया । माता ने मन-भर उनका आलिङ्गन किया और पूछा—मेरे पिता मेरे भाई आदि मव कुशल हैं न ? अपार गुणाकर भरत ने कहा—हाँ वे मव कुशल हैं ।

तब भरत ने कहा—मैं उमड़नेवाले प्रेम में पूर्ण चक्रवर्ती के कमल-समान चरणों

को नमस्कार करने के लिए आया हूँ। पिता के दर्शन करने के लिए मंरा मन आतुर हो रहा है, पौरुष से पूर्ण तथा दीर्घ सुकुटधारी चक्रवर्तीं कहाँ हैं, वताओ। यह कहकर भरत हाथ जोड़कर खड़ा रहा।

भरत के यह पूछने पर अव्याकुल चित्तवाली कैकेयी ने कहा—दानवों का विनाश करनेवाली सेना से युक्त तथा भ्रमरों से अंचित पुष्पमाला धारण करनेवाले चक्रवर्तीं, देवताओं के नमस्कार का पात्र बनते हुए स्वर्ग को सिधार गये हैं, तुम चिन्ता न करो।

आहत करनेवाले वह वचन ज्योंही भरत के कानों में पड़े, त्योही धुँधराले केशों से शोभायमान वह निःसन्ज होकर गिर पड़े। विलब तक ऐसे मूर्छित पड़े रहे, जैसे कोई वडा वृक्ष वज्र से आहत होकर गिरा हो।

फिर, किञ्चित् प्रजा प्राप्त कर भरत ने मट पड़ी हुई अपनी सुखकाति के साथ एव प्रफुल्ल कमल-जैसे नेत्रों में अश्रु भरकर माता को देखकर कहा—कानों में जैसे किसी ने अग्नि-ज्वाला रख दी हो—ऐसे कठोर वचन कहने का विचार तक करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन हो सकता है?

सुव्रह्मण्य (शिव के पुत्र कार्तिकेय) से भी अधिक सुन्दर वह कुमार (भरत), वडी वेदना के साथ उठे। पुनः धरती पर गिर पड़े। उष्ण निःश्वास भरे। रोये। फिर, ये वचन कहने लगे—

हे पिता! तुमने धर्म को विस्मृत कर दिया। दया को मिटा दिया। अत्युत्तम कस्तुरा-रूपी सपत्नि को मिटाकर इस ससार को छोड़ चले। हाय! तुमने न्याय को भी भुला दिया। इससे बढ़कर दोष और क्या हो सकता है?

तुमने क्रोध-रूपी दुर्गुण को मिटा दिया था। काम-रूपी अग्नि को बुझा दिया था तथा लोभ आदि के समूह को भी विघ्वस्त किया था। सब लोगों के मन के अनुकूल चलनेवाले, हे उदारगुण। अब दूसरों को भूलकर केवल अपने मन के अनुसार कार्य करना (अर्थात्, हम सबकी इच्छा के विरुद्ध इस ससार को छोड़ जाना) क्या उचित है?

हे प्रभु! इस कुल के महान् पूर्व-पुरुष, सूर्य आदि के वीर चारित्य को तुमने पुनः नवीन कर दिखाया था। ललाट-नेत्र (शिव) के दृढ़ धनुष को तोड़नेवाले अपने पुत्र (राम) को छोड़कर तुम कैसे चले गये?

हे तात! न्याय-मार्ग से आज्ञा-चक्र प्रवर्तित करनेवाले राजन्। इस ससार में किसी भी वश के हो, सब लोग तुम्हारे समुख याचक ही थे। इसलिए (यहाँ अपने समान मित्रों को न पाकर) क्या उत्तम मित्रों को पाने की इच्छा से तुम स्वर्ग गये हो?

मल्ल युद्ध में चतुर विशाल कधोवाले। चिरकाल से छाया देत रहनेवाले तुम्हार श्वेतच्छन्न की विशाल छाया में विकास प्राप्त करनेवाले सब प्राणियों को व्याकुल ही छोड़कर क्या तुमने स्वय (स्वर्ग में) कल्प-वृक्ष की छाया में सुखपूर्वक निवासकरने की इच्छा की है?

हे तात! क्या शबर के समान असुर अब भी आकाश में रहते हैं? क्या देवता लोग असुरों से हारकर अपने स्वर्ग को भी खोकर रक्षा की प्रार्थना करत हुए तुम्हारी शरण में आये थे?

तुम वडो में प्रतिपादित अश्वमेध यज्ञ करते थे और वायो के शब्द से युक्त मेना के नाथ जाकर अन्य गजाओं के द्वारा समर्थित राजस्व को व्रात्यों को दक्षिणा के रूप में उन कर देते थे। इस प्रकार, गार्हपत्य अभि को प्रज्ज्वलित करते रहते थे। यह सब कार्य छोड़कर क्या तुम स्वर्ग में निषिक्य बैठ सकते हो?

मात हाथ ऊचे तथा मठ वहानेवाले हाथियों के स्वामी। क्या यह सोचकर कि श्वामल (गम) (शासन चक्र धारण किये बिना) खाली हाथ रहता है, उन (गम) को शासन का भार देने के लिए तुम इस भसार को छोड़कर छले गये?

तुमको तप में आसक्ति नहीं थी। अतएव पहले की हुई वडी तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त गमचन्द्र ओ, राज्य मिलने पर होनेवाले अभिप्रेक के उत्सव की शोभा भी, अपने विशाल नयनों ने देखने का भाग्य तुम्हें नहीं मिला।

पिता की मृत्यु से उत्पन्न दुःख का महन न करते हुए भरत ने इस प्रकार के बचन कहे और वे इस प्रकार पिघल उठे कि उनके नेत्रों से नवी-प्रवाह के समान अश्रुधाग वह चली। फिर वह यम-सदृश धनुर्धारी भगत स्वय ही अपने आपको मात्वना देकर किंचित् न्वय्य हो बोले—

मेरे पिता मेरी माता, मेरे भगवान्, मेरा भाई, सब कुछ वे अपार मद्गुणाकर गम ही हैं। अतः, जबतक उनके वीर-बलय-भूर्पत चरणों को नमस्कार न कर्त्तगा, तबतक मेरे मन की पीड़ा दूर नहीं होगी।

वह बचन सुनते ही बोर बज्ज-तुल्य बचनवाली कैकेयी पुन बोल उठी—हे शत्रु-नाशक धनुर्धारी! वह (राम) अपनी देवी तथा भाई-महित बनवास को गया है।

(गम) बनवास के लिए गया है।—कैकेयी के कहे इस वाक्य को नांचकर भगत ऐसे हुए, जैसे उन्होंने आग निगली हो। वे आशकित होकर बोले—अहो! मेरे पापकर्म कितने भयकर हैं? न जाने, मुझे अभी और क्या-क्या समाचार सुनने हैं।

पीड़ा से मौन रहनेवाले उम पुरुष-श्रेष्ठ (भरत) ने पूछा—वीरबलय-वारी उन गम का अरण्य में जाना क्या किसी बुरे कार्य के परिणामस्वरूप हुआ? या यह दैवी कोप त्रा परिणाम है? अथवा अति बलवान् निर्वति का विधान है? किस कारण से यह हुआ?

यदि गम न्यव कोई द्वारा कार्य भी करें तो वह (कार्य) इस समार के नव प्राणियों के लिए माता के कार्य (जैसे अपने बच्चे के हाथ-पैर ढाकर उसके मुँह में औपध आदि डालने के) जैसे ही हितकारी होगा। गम का बन-गमन क्या पिता के स्वर्ग मिधारने के पश्चात् हुआ या उसने प्रवृत्त हुआ? कृपया बताओ।

तत्र कैकेयी ने उत्तर दिया—राम का बन-गमन गुरुजनों के प्रति कोई अपग्राध बनने के कारण नहीं हुआ। गर्व के कारण भी उसे बन नहीं जाना पड़ा। दैवी प्रकोप में भी यह नहीं हुआ। मूर्य-नमान नज़रशा में उत्पन्न चक्रवर्ती (दण्डश) के जीवित रहते समय ही बट बन जो चला गया।

तब भरत ने प्रश्न किया—राम का अपना किया हुआ कोई अपराध नहीं गवृओं की दी हुई प्रजाय नहीं, दैवी प्रकोप भी नहीं है। तो भी पिता के जीवित रहते हृष

उनको अरण्य जाना पड़ा—इसका क्या कारण है ? उन चक्रवर्ती के प्राण छोड़ने का क्या कारण हुआ ?

तब कैकेयी ने कहा—चक्रवर्ती ने मुझे दो वर दिये थे। उनके दिये वरों में से एक से मैंने राम को बन भेजा, दूसरे से तुम्हारे लिए राज्य प्राप्त किया। चक्रवर्ती इसको नहीं सह मंक, अतः उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये।

भरत के कर जो अवतक उनके सिर पर जुड़े हुए थे, कैकेयी के यह वचन समाप्त होने के पूर्व ही, उनके कानों पर आ लगे (अर्थात्, उन्होंने अपने कान बट कर लिये)। उनकी भौंहे टेढ़ी होकर कॉपने लगीं। उनके निश्वासों से चिनगारियाँ निकलने लगीं तथा उनकी आँखों से रक्त-विंदु चूं पड़े।

उनके कपोल फड़क उठे। रोगटों के चारों ओर अग्निकण छा गये। धूम भी (उनके शरोर से) निकलकर चारों ओर छा गया। औंठ दब गये। मंध-समान उदार गुण से युक्त उनके दीर्घ हाथ वज्र को भी भीत करते हुए परम्पर आधात कर उठे।

भरत अपने पैरों को वारी-वारी से धरती पर पटकते थे, उससे मेरु पर्वत-महित यह धरती इस प्रकार टोलायमान हो उठी, जैसे हाथी को लाठकर चलनेवाली लबे मस्तूल से युक्त कोई नौका, आँधी के चलने पर समुद्र के मध्य ऊव-झूव हो उठती है।

(भरत का क्रोध देखकर) देवता डर गये। असुर बड़े भय में मरने लगे। दिग्गजों ने अपने मदस्तावी रब्रों को बद कर लिया। सर्व अस्त हो गया। कठोर क्रोध-वाले यम ने भी अपनी आँखें बद कर लीं।

घोर क्रोध से भरे सिंह-सद्दश भरत ने क्रूर कार्य करनेवाली उस कैकेयी को अपनी माता नहीं समझा। फिर, उसको इसलिए नहीं मारा कि उससे रामचन्द्र क्रोध करेंगे। यो चुप रहकर फिर उस देखकर वज्रघोष से ये वचन कहे—

तुम्हारी क्रूरता के कारण मेरे पिता मर गये। मेरे भाई तपोव्रत धारण कर बन में चले गये। मैं, जो (इस प्रकार के वर माँगनेवाले तुम्हारे) मुँह को चीरे बिना (तुम्हारे वर माँगने की) वह सुनता हुआ खड़ा हूँ, वड़ी इच्छा से राज्य का शासन करनेवाला हूँ।

(मेरे पिता और मेरे भ्राता को दूर करनेवाली) तुम अभी यही हो। (तुम्हारे वचन सुनता हुआ) मैं भी यही हूँ। क्षण-मात्र में ही तुम्हें मारकर नहीं गिरा देता। मैं इसी विचार से डरता हूँ कि जगत् की माता के समान वे मेरे भाई क्रोध करेंगे। अन्यथा, तुम्हारा माता का पद (तुम्हारी हत्या करने से) मुझे कभी रोक नहीं सकता था।

एक चक्रवर्ती ऐसा है, जो कठोर वचन सुनकर प्राण छोड़ देता है। एक वीर भी ऐसा है, जो अपना राज्य त्यागकर चला जाता है और एक भरत भी ऐसा है, जो अपनी माता के द्वारा प्राप्त राज्य का शासन करनेवाला है। ऐसा हो, तो धर्म का मार्ग ही प्रतिकूल है और वह हमारे लिए चाहने योग्य नहीं है।

यदि भविष्य में ऐसा अपवाद उत्पन्न हो कि—‘भरत ने वचनाशील माता के क्रूर पट्यन्त्र के कारण आदिकाल से आये हुए अपने कुल-महत्व को मिटा दिया और उस (कुल)

को अनुपम अपवाट का पात्र बना दिया—तो इससे बढ़कर प्रतिकूल कार्य और क्या हो सकता है ?

तुमने पातिव्रत्य नामक धर्म की सीमा को मिटा दिया । तुमको अपने गृह में आश्रय देनेवाले तीच्छ भाला धारण करनेवाले चक्रवर्ती का तुमने ममूल विनाश कर दिया और इस प्रकार के बर माँगे । तुम लोगों को काटनेवाली नागिन हो । अब और तुम किसको काटना चाहती हों ?

तुमने अपने पति के प्राण पी डाले । तुम कोई व्याधि नहीं हों, किन्तु कोई पिशाचिनी हो । (भाव है, अगर व्याधि होती, तो वह शरीर में उत्पन्न होकर शरीर के मिटने के नाथ मिट जाती है । पिशाचिनी शरीर के मिटाने के बाद भी जीवित रहती है । अतः, कैकेयी पिशाचिनी-तुल्य है) । क्या तुम अब भी जीवित रहने योग्य हो ? तुम्हारी मृत्यु हो जाय । तुमने (पहले) मुझे अपना स्तन पिलाकर बड़ा किया । (अब) अमिट अपयश दिया । मेरी माँ बनी हुई तुम न जाने मुझे और क्या देनेवाली हो ।

कभी असत्य न बोलनेवाले चक्रवर्ती को तुमने बचन से मार डाला । अमिट अपवाट पाकर भी तुमने राज्य प्राप्त करके सुखी जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न किया है । तुमने राम को अरण्य मेजकर गाय और उसके बछड़ों को पृथक् कर दिया (अर्थात् राम को नगर के लोगों से पृथक् किया) । ऐसा करते हुए तुम्हारा मन किंचित् भी दुःखी नहीं हुआ !

चक्रवर्ती, अपने दिये हुए बरों को न टालकर स्वयं मर गये । उनके पुत्र राम अपने पिता की आज्ञा को ही धर्म मानकर बन चले गये । किंतु उन (राम) का भाई होकर मैंने माता के पद्यन्त्र में समार का राज्य प्राप्त किया, ऐसा अपयश पाना क्या ठीक है ?

जिनको राज्य करने का अधिकार है, वे राम—यह न सोचकर कि उनके चले जाने में पिता प्राण त्याग देंगे और वह मानकर कि अपयश का पात्र करनेवाली कैकेयी का यह प्रतिकूल विचार मेरे ही (अर्थात्, भरत के ही) कारण उत्पन्न हुआ है तथा मैं (सच्चमुच्च) गज्य अनेवाला हूँ—स्वयं बन को चले गये । यदि वे (राम) ऐसा नहीं मानते, तो वे कठापि बन जाने का विचार नहीं करते ।

प्रमिष्ठ पुरातन कुल में उत्पन्न चक्रवर्ती का विचार जैसा भी रहा हो, किन्तु वे (गम) यदि वह मोर्चे कि मेरी मेवा में निरत रहनेवाला भरत (मेरे प्रति) क्रूर विचार रखता है, तो इसके लिए मेरी माता का राज्य माँगना ही पर्याप्त कारण है ।

मेरे ज्येष्ठ भ्राता, बन में अपनी अजलि-स्त्री पात्र में शाक आटि भोजन करें और मैं क्रूर बनकर, अपना जीवन रखे हुए, उत्तम (स्वर्ण के) पात्र में श्रेष्ठ धान के धबल अन्न को अमृत स्मान धृत ने मिक्त करके भोजन करता रहूँ । यहो । ससार के लोग इसपर क्या-क्या नहीं मोर्चे रहे ?

वनर्भूपित कवेवाले राम बन को चले गये—यह समाचार सुनकर सद्गुण चक्रवर्ती ने अपने प्राण छोड़ दिये । किंतु विष-समान इस नारी को मारे विना तथा स्वयं मरे तिना जीवित रहनेवाली मैं ऐसे रहा हूँ जैसे रामचन्द्र पर मुझे बहुत प्रेम हो । अहो मैं चिन्तन द्वारा अपयश का पात्र बन गया हूँ ।

मेरा राज्य करना लोग स्वीकार नहीं करेंगे । मैं भी जैसे जीवन की इच्छा करके अपयश को स्वीकार नहीं करूँगा । इससे उत्पन्न होनेवाला अपयश किसी भी उपाय से नहीं मिटेगा । अर्धमास से युक्त इस नगर में लहमी निवास नहीं करेगी । अहो ! तुमने (यह सब उत्पात करने के लिए) किसके साथ मत्रणा की ? तुम्हे परामर्श देनेवाले कौन हैं ? धर्म का समूल नाश करके तुम्हे क्या मिला ?

तुम्हारे कूर वचन के द्वारा मैंने अपने पिता को मारा (अर्थात्, पिता की मृत्यु का निमित्तकारण मैं बना) । ज्येष्ठ भ्राता को अरण्य में भेज दिया । अब ससार का राज्य करने के लिए आ उपस्थित हुआ हूँ । तुम पर क्या दोष डाले ? तुम्हारा क्या अपयश होगा ? पर क्या किसी दिन मेरा अपयश भी मिट सकेगा ?

अब लोग देखे कि मैं क्या करने जा रहा हूँ । जबतक लोग (मेरे स्वभाव को) नहीं देखेंगे, तबतक मेरी निन्दा करेंगे । किन्तु हे माता ! तुमने व्यर्थ अपवाद प्राप्त किया (जो किसी भी रूप से नहीं मिटनेवाला है) । मेरा यह विचार है कि विष, विना उसे खायें, किसी को नहीं मारता, इसलिए अबतक मैं जीवित हूँ । अन्यथा मैं प्राण नहीं रखता (भाव यह है कि जिस प्रकार विष खाने पर ही मारता है, उसी प्रकार जब मैं राज्य स्वीकार करूँ, तभी मेरा अपवाद होगा, अन्यथा नहीं) ।

मैं तुम्हारे पाप-पूर्ण नरक-तुल्य उदर मेरहा—इससे जो पाप मुझे लगा है, उसे मिटाना है । इसलिए, मद्धर्म के देवता को साक्षी बनाकर, निलोक के निवासियों के देखते हुए, मैं घोर तपस्या करूँगा ।

ज्ञानी लोगों के वचन को ही मैं सुनता हूँ । यदि तुम अपने न मिटनेवाले प्राणों को त्याग दोगी, तो तुम्हारे कार्य बुद्धिपूर्वक किये गये ही माने जायेंगे । उससे तुम पुनः शुद्ध बन जाओगी । समार में जन्म लेने का लाभ तुम्हें मिलेगा । इसके अतिरिक्त तुम्हारे निस्तार का अन्य कोई उपाय नहीं है ।

राम के अनुज (भरत) ने फिर यह कहकर कि मैं अब अकथनीय क्रूरता से युक्त इस पापिन के निकट नहीं रहूँगा, अपनी अपूर्व मनोपीड़ा को मिटाने के लिए पवित्र स्वभाववाली कौशल्या के उत्तम चरणों को नमस्कार करूँगा, उठकर चले गये ।

पौरुष से युक्त भरत कौशल्या के निकट जा पहुँचे । वहाँ जाकर धड़ाम से ऐसे गिरे, जैसे धरती फट गई हो और अपने उज्ज्वल करों से कौशल्या के कमल-जैसे चरणों को पकड़कर रोने लगे ।

उस समय भरत ये वचन कहकर अश्रु वहाने लगे, जिसे देखकर स्वर्ग के निवासी भी रो उठे—मेरे पिता किस लोक मेरे गये हैं ? मेरे ज्येष्ठ भाई कहाँ गये हैं ? क्या यह सारा उत्पात देखने के लिए अकेला मैं ही आया हूँ ? हाय ! मेरे हृदय की इस वेदना को आप ही मिटायें ।

भरत इस प्रकार लोट गये कि उनके कधे धूलि से भर गये । वे बोले—मैं अपने प्रेमु (राम) के चरणों के दर्शन नहीं पा सका । क्या उन राम को जो इस पृथ्वी के स्वामी हैं, इस देश को छोड़कर जाना चाहिए था ? क्या आपने उनको बन जाने से रोका नहीं ? (आपने) यह भूल की ।

(नम के प्रति ऐसा) क्रूर कृत्य करनेवाले सब लोग अभीतक मिटे नहीं हैं । इस मम्बन्ध में हम क्या कहें ? क्रूरा (कैकेयी) के गर्भ में उत्पन्न मैं प्राण त्याग करूँगा और अपने मन की पीड़ा को दूर करूँगा । भरत ने पीडित होकर यो कहा ।

मरकतमय पर्वत के जैसे बड़े हुए कधीवाले भरत ने फिर कहा—रथ पर आस्टड होकर ससाग के अधकार को दूर करनेवाले उस सूर्य से लेकर उज्ज्वल प्रकाश-दुक्त इस पुरातन गजवश में भगत नामक एक अपवशकारी कलक भी उत्पन्न हुआ ।

जानु तक लवमान दीर्घ मुजाओवाले धर्म-स्वरूपी भगत ने पुनः आगे कहा— करवालधारी दशरथ स्वर्ग सिधारे । उनके अनुपम ज्येष्ठ कुमार बन को सिधारे । ऐसे अवलवो में रहित होकर वह कौशल देश धोर दुख से पीडित होनेवाला है ।

कुलीनता, क्षमा, पातित्रत्य, इन गुणों से पूर्ण कौशल्या ने रानेवाले पुरुषवर भरत को देखा और यह जानकर कि भरत में राज्य पाने की इच्छा नहीं है, उसका मन कलंक-रहित है डमलिए उनका (भरत पर मढ़ेह के कारण उत्पन्न) क्रोध दूर हो गया । फिर वे अधीर होकर बोली—

उन कौशल्या ने यह जाना कि भरत का निष्कलक मन अपराध-जन्य पीड़ा से मुक्त है । अतः, उन (भरत) से बोली कि हे तात । कदाचित् तुमको कैकेयी का छल विदित नहीं था ।

कौशल्या के चरणों पर गिरे हुए भरत, उनके वह वचन सुनतं ही, पकड़े गये मिंह के समान ध्वराकर उठे और रोतं हुए ऐसी शपथें खाने लगे कि नित्य प्रवर्त्तमान धर्म-देवता भी उनकी बात सुनकर कौप उठा ।

वर्म का विनाश करनेवाला, किंचित् भी दया से रहित, दूसरों के द्वार पर (उसकी नागी का अपहरण करने के लिए) खड़ा रहनेवाला, दूसरों पर क्रोध करनेवाला क्रूरता के माथ समार के प्राणियों को मारकर जीवित रहनेवाला, विरागी महातपस्वियों के प्रति क्रूर कार्य करनेवाला,

‘कुरा’ आदि पुष्णा से भूपित केशोवाली युवती को करवाल से मारनेवाला, राजा का साथी बनकर युद्ध-क्षेत्र में जाकर फिर भव में शत्रुओं को पीठ दिखाकर भागनेवाला, भिक्षा में स्वल्प धन माँगकर हाथ में रखनेवाले से उस धन को छीननेवाला,

पुष्ट तथा शीतल तुलसी की माला से भूपित भगवान् (विष्णु) के बारे में ‘वह भगवान् परम तत्त्व नहीं है’—ऐसा वचन कहनेवाला, धर्म-मार्ग से न हटनेवाले त्रास्ताणों के प्रति अपग्राध करनेवाला तथा अपौरुषेय एव त्रुटिहीन वेदों के सवध में यह कहनेवाला कि ‘कई वरक्तियों की कल्पना-प्रसूत रचना ही वह है’,

अपनी माता के भूखी रहते हुए, स्वयं अपने पापिष्ठ उद्दर-कुहर को अन्न से भरनेवाला, अपने स्वामी को युद्ध-भूमि में छोड़कर भागनेवाला, ये सब लोग जिन नरक की आग में गिरते हैं, (वटि कैकेयी के पद्मन्बन्ध में मेरा भाग रहा हो, तो) मैं भी उसी नरक में गिरूँ ।

अपने प्राणों के भव के कारण शरण में आये हुए की रक्षा न करनेवाला उदा वर्म को विमृत करके त्राचरण करनेवाला जो नरक पातं है उमी मैं भी गिरूँ ।

न्यायालय में भूठी मात्री देनेवाला, युद्ध से डरकर भागनेवाले व्यक्ति के हाथ की वस्तुओं को स्वयं छिपकर छीन लेनेवाला, विपदा में पड़कर पीड़ित हुए व्यक्ति को और अधिक पीड़ा देनेवाला—ये लोग जिस नरक को पाते हैं, उसी में मैं भी गिरूँ।

त्राह्षणों के निवास को आग से जलानेवाला, वालकों की हत्या करनेवाला, न्यायालय में (न्यायाधीश के पद से) दोषपूर्ण न्याय करनेवाला, देवताओं की निन्दा करनेवाला—ये लोग जो नरक पाते हैं, उसी में मैं भी पड़ूँ।

वछडे को दूध पीने न देकर, उमको भूखा ही रखकर गाय का सब दूध दुहकर स्वयं पीनेवाला, भीड़ में दूसरों की वस्तुओं को चुरानेवाला, दूसरों के किये हुए उपकार को भूलकर उनकी निंदा करनेवाला, न्यायहीन जिहा से युक्त व्यक्ति—ये जो नरक पाते हैं, (अगर कैकेयी के पछ्यत्र में मेरा भाग रहा हो, तो) मुझे भी वही नरक मिले।

यात्रा में अपने साथ आनेवाली मधुरभाषिणी नारी के दूसरों के द्वारा सताये जाने पर स्वयं अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए उसे छोड़कर भाग जानेवाला, अपने पास रहनेवाले भूखे व्यक्तियों की भूख मिटाये विना स्वयं भोजन करनेवाला—ये सब जिस दुर्गति को प्राप्त होते हैं, वही दुर्गति मेरी भी हो।

(यदि मेरे कहने से मेरी माँ ने राम को वन भेजा हो, तो) शस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध करने के लिए युद्धक्षेत्र में जाकर अपने प्राणों के मोह में पड़कर शत्रुओं के सम्मुख युद्ध न करके शिर झुका देनेवाला तथा धर्म की सीमा लाँঘकर (प्रजा से) धन संग्रह करनेवाला राजा—जो नरक पाते हैं, वही नरक मुझे भी मिले।

(यदि कैकेयी के पछ्यत्र में मेरा भी हाथ रहा हो, तो) उत्तम राज्य को पाकर मनमाना आचरण करते हुए नीच कार्य करनेवाले राजा के समान ही मैं भी परपरा से प्राप्त धर्म का त्याग कर अपयशकारक अधर्म-मार्ग में चलनेवाला हो जाऊँ।

जो राजा, अपनी रक्षा में रहनेवाली प्रजा के व्याकुल होकर अस्त-व्यस्त होते हुए, 'वज्जि' पुष्पों की विजयसूचक माला पहने हुए, शत्रु के सम्मुख 'वाहे' पुष्पों की माला^१ पहनकर खड़ा हो, उसकी जो दुर्गति होती है, वही दुर्गति मेरी हो।

(यदि कैकेयी के पछ्यत्र में मेरा भाग रहा हो, तो) कन्या का मान-भग करने का प्रयत्न करनेवाला, गुरु-पत्नी की ओर कामुक दृष्टि डालनेवाला, मध्यपान करनेवाला, क्षुद्र चौर्य-कर्म से स्वर्ण प्राप्त करनेवाला (अर्थात्, सोना चुरानेवाला)—ये लोग जैसी दुर्गति पाते हैं, मैं भी वैसी ही दुर्गति पाऊँ।

उत्तम भोजन पदार्थ को कुत्ते-जैसे (अर्थात्, दूसरों से छिपाकर अकेले ही) खानेवाला, 'यह पुरुष नहीं, स्त्री भी नहीं है, यह शक्तिहीन नपुसक है'—ऐसे अपयश का भाजन बनकर निर्लज्ज हो क्षुद्र कार्य करता हुआ जीवन व्यतीत करनेवाला, महात्माओं का कथन भूलकर सदा पापकर्म में रत रहनेवाला तथा सर्वदा दूसरों की निन्दा करते रहनेवाला—ये सब जो नरक पाते हैं, वही मुझे भी मिले।

¹, 'वज्जि' पुष्पों की माला विजय-शूचक और 'वाहे' पुष्पों की माला पराजय-शूचक मानी गई है।—अनु०

(यदि कैकेयी के पड्यत्र में मेरा हाथ हो, तो) दोपहीन प्राचीन वशो को कलकित कहकर उनकी निरा करनेवाला, अकाल के समय में दरिद्र लोगों के कमाये अन्न को विखेर देनेवाला, सुगवित भोजन पदाथों को, समीपस्थ व्यक्तियों को दिये विना, उनके मुँह में लार टपकात हुए, स्वय खानेवाला—जो गति पाते हैं, वही गति मुझे भी मिले ।

जो व्यक्ति, धनुष से और करवाल से प्रकट किये जानेवाले पराक्रम को व्यर्थ करके, इस नश्वर शरीर को कुछ समय तक सुरक्षित रखने की लालमा से विरोधियों के घर में उनके द्वारा क्रोध के साथ दिये जानेवाले अन्न को अपने हाथ पसारकर माँगता हुआ रहता है उसकी जो दुर्गति होती है, वही मेरी भी हो ।

कोई व्यक्ति याचक से, उसकी माँगी हुई वस्तु ‘मेरे पास है’—कहकर भी उसे न दे और वह भी न कहे कि ‘मेरे पास वह वस्तु नहीं है’—ऐसे मूर्ख व्यक्ति को जो नरक मिलता है, वही नरक मुझे भी मिले ।

(यदि राम को बन भेजने में मेरा हाथ रहा हो, तो) जो व्यक्ति शत्रु-भयकर करवाल को अपने दीर्घ हाथ में लेकर युद्धक्षेत्र में जाय और फिर व्याधियों के आबास, दुर्गंध में युक्त इस कुद्र देह को वचाने की इच्छा में, मांती-समान दौतोवाली युवती के देखने हुए, शत्रुओं के सम्मुख सिर झुका दे—उम व्यक्ति की जो दुर्गति होती है, वही मेरी भी हो ।

विशाल गन्ने के खेतों तथा लाल धान के खेतों से युक्त जल-समृद्ध देश को, शत्रु के द्वारा हरण किये जाते देखकर भी जो व्यक्ति अपने प्राणों को वचाने के लिए बेड़ी में बैधे अपने चरणों के माथ शत्रु के सम्मुख खड़ा रहे, उसकी जो दुर्गति होती है, मेरी भी वही दुर्गति हो ।

क्रूर कैकेयी के किये कार्य को यदि मैं जानता ही हूँ, तो मैं भी उन लोगों की दुर्गति को प्राप्त करूँ, जो वर्म सेन हटनेवाले अपने पूर्वजों को दुःख देते हुए पाप-कर्म करते रहते हैं ।

इस प्रकार अपने मन की निष्कलकता को प्रकट करनेवाले भरत को देखकर कौशल्या यों आनंदित हुई, जैसे गज्य त्यागकर बन को गये हुए राम को ही लौट आये हुए देख रही हों ; उन्होंने आँख वहानेवाले भरत को अपने गले से लगा लिया ।

कपटहीन उत्तम स्वभाववाले भरत के कार्य को, तथा उनकी माता (कैकेयी) के पाप-स्वभाव को, पहचानकर दुःख की अधिकता से कौशल्या यों रोई कि उनके पीन स्तनों में द्रव टपकने लगा और उनका सुख सूज गया ।

कौशल्या बोली—हे राजाधिराज (भरत) ! तुम्हारे कुल के मनु आदि अति पुरातन पूर्व पुरुणों में भी तुम्हारी समता करनेवाले कौन थे ? यो कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया । भगत वार-वार उनके वचन (अर्थात्, उनका भरत को राजाधिराज कहना) को स्मरण करके द्रवितचित्त होकर रो पड़े ।

भरत के अनुज (शत्रुघ्न) ने भी भगत के सद्गुणों को संचकर प्रेम से पिघलनेवाली माता (कौशल्या) के चरणों पर नत हुआ और यथार्थिव नमस्कार करके व्याकुल मन से खड़ा रहा । इसी समय वसिष्ठ मुनिवर वहाँ जा पहुँचे ।

तब भरत उन महातपस्वी के चरणों पर गिरकर बोला—मेरे पिता कहाँ हैं ? वताइए । तब वसिष्ठ दुःख की अधिकता के कारण कुछ उत्तर न दे सके और व्याकुल हो आँखों से अश्रु वहाते हुए भरत को गले से लगा लिया ।

वसिष्ठ ने कहा—हे दोष-रहित कुमार ! उदारगुणवाले तुम्हारे पिता के प्राण छोड़े, आज सात दिन हो गये । तुम पुत्रों के द्वारा किये जानेवाले कार्य (अतिम क्रिया) करो । तब कौशल्या ने उनको (उस स्थान पर, जहाँ दशरथ की देह रखी थी) जाने की आज्ञा दी ।

पिता की देह को देखने की अनुमति देनेवाली माता (कौशल्या) के चरणों को नमस्कार करके भरत, सुन्दर दीर्घ जटाओवाले पवित्र वसिष्ठ सुनि के साथ चले और अपने प्राण देकर धर्म की रक्षा करनेवाले चक्रवर्ती दशरथ के अति प्रशसित माकार धर्म-जैसे शरीर को देखा ।

भरत वहाड़ मारकर रो पड़े और धगती पर गिर पड़े और महिमामय आजाचक को प्रवर्त्तित करनेवाले (दशरथ) के तैल-पात्र में रखे हुए सोने के रग के शरीर को अश्रुओं से धो दिया ।

चारों बेटों के ज्ञाता ब्राह्मणों ने आदर के साथ दशरथ के शरीर को उस स्थान से अपने हाथ से उठाया और स्वर्ण से निर्मित एक विमान में रखा । तब राजा के योग्य नगाड़े बजने लगे ।

नगर के लोग, बेला में बैंधे समुद्र के समान स्फन से उत्पन्न ध्वनि करते हुए व्याकुलप्राण हो रहे । राजाओं का समूह चारों ओर हाथ जोड़कर खड़ा रहा । ऐसे समय में, गले में रस्सी से युक्त एक हाथी पर उस देह को रखकर लोग ले चले ।

सुन्दर तथा विशाल रथ को चलानेवाले सुमत्र के माथ, मत्रण करने में निपुण मत्री तथा अनुपम सेनापति, मित्रवर्ग तथा अन्य लोग व्याकुल हो चारों ओर से रो रहे थे ।

शाख, पट्टल, शूद्धी आदि वाद्य सब दिशाओं में उभी प्रकार बज उठे, जिस प्रकार मंधों के आश्रय बननेवाले ऊँचे प्रामाणों से युक्त उस नगर की स्त्रियाँ, अपने उमड़ते नेत्रों पर हाथ से मारती हुई रो रही थीं ।

घोड़े, हाथी, उज्ज्वल रथ, राजा, चारों बेटों के ज्ञाता ब्राह्मण, उम देह को लेकर, दशरथ की रानियों के साथ, स्वच्छ वीचियों से पूर्ण जल से समृद्ध सरयू नदी पर जा पहुँचे ।

शास्त्रज्ञ पुरोहितों ने यथाविधि सब कर्म कराके चिता मजार्ड । उम पर दशरथ की देह को रखा । फिर भरत से कहा—हे बीर ! शास्त्रोक्त विधान के अनुसार तुम अपने पिता का अतिम सस्कार पूर्ण करो ।

यों कहने पर भरत पिता का अतिम सस्कार करने के लिए प्रस्तुत हुए । उस समय उनको देखकर वसिष्ठ ने कहा—तुम्हारी माता के दुर्गुण के कारण चक्रवर्ती (दशरथ) अत्यत पीड़ित होकर, तुम्हारे पुत्रत्व-स्वध को तोड़कर चल वसे ।

हैं उत्तम कुमार। मानो वह दिखाने के लिए ही कि तुम्हारे जन्म से परपरा में आगत धर्म परिवर्तित हो गया है, तुमको त्यागकर वे मृत हुए। वह बचन सुनकर भगत मृत-में हो गये। ऐसा लगा कि वहाँ जो खड़े थे अमली भरत नहीं थे, कोई और थे।

महान् तपस्वी यो कहकर नि श्वास भरते खड़े रहे। तब, पर्वताकार कधोवाले भगत, अच्छा है, अच्छा है। —कहकर मुत्करा उठे।

जैने काला नर्ष धोन वज्र-धोप में भीत होकर कौप उठा हो, उसी प्रकार भरत कौपकर धरनी पर गिर पड़े। उनका मन वड़ी व्याकुलता से तड़प उठा। उनके हृदय का दुख रोकने पर भी न रुकता था। वे आँख वहाँते हुए कहने लगे—

मृतक-स्सकार करने का अधिकार मुझे नहीं था। ऐसा मैं क्या गज्य का शासन करने की योग्यता रखता हूँ? सर्वकुल में उत्पन्न मेरे पिता से पूर्व उत्पन्न गजाओं में मुझे मृदृश्वर कीर्तिमान् कौन हुए?

हैं कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वर्मिष्ठि)। मेरे पूर्वज ठोपरहित, धर्म के अप्रतिकूल मार्ग पर चलकर स्वर्ग में गये। पर मैं तो अपने बालकपन में ही व्यर्थ जीवन धारण करने-वाला हो गया हूँ। हाय!

मैं घने पत्तों में युक्त प्रनिद्व केतकी-पुष्पों के मध्य स्थित रहकर निस्सार तथा गधहीन वस्तु के समान हो गया हूँ। मुझे जन्म देनेवाली मेरी जननी ने मेरा जो उपकार किया है, वह (उपकार) भी कैसा है!

चारों बैदों में प्रतिपादित विधान के अनुभार सब कार्य कराने में समर्थ वसिष्ठ उत्त्युक्त प्रकार में कहकर हुए खींची हो खड़े रहनेवाले, पुष्पमाला-भूषित भरत के अनुज (शत्रुघ्नि) के द्वारा उम नमय यथाविधि प्रेत-सम्भार कराया।^१

उत्तम पुष्पलता-नदी राजपत्नियाँ अपने हार, आमरण तथा लच्चकनेवाली बटि के चमकते हुए इस प्रकार चिता की अग्नि में प्रविष्ट हुई, जिस प्रकार पर्वत-कटरा में निवास करनेवाले कलाणियों का समुद्राय पत्रहीन कमल पुष्पों में भरे जलाशय में प्रविष्ट हुआ हो। (भाव है, प्रधान महिला कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा इनके अतिरिक्त अन्य सब पत्नियों ने महगमन किया)।

उन न्त्रियों के बदन कमल-पुष्प तथा चट्ठ के समान शोभायमान हो रहे थे। चिता की अग्नि उनके पति (दशरथ) का देह-स्पर्श करके अत्यत शीतल लग रही थी। वे राज-पत्नियाँ मन की पीड़ा ने रहित होकर, पति के साथ महगमन करनेवाली नारियों की मद्दगति औं प्राप्त हुई।

इसके पश्चात् भगत ने शत्रुघ्नि के द्वाग पिता के नव स्सकार कराये। फिर, माता के क्रूर कृत्य के कारण न्त्रियोंचित जीवन ने बचित होकर उपमाहोन शोक-रूपी समुद्र के भाथ अपने निवास में जा पहुँचे।

^१ राजा दशरथ ने कहा था कि कैकेयी को मैं त्याग देता हूँ, भगत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता।

ना बारहा ने विष्ठि सुनि ने गद्यत ने दग्धय ना अग्नि-सम्भार कराया। —अनु०

चक्रवर्ती के कुमार ने दस दिन तक किये जानेवाले पितृकर्म को, एक-एक दिन को एक-एक युग के समान व्यतीत करते हुए तथा अस्ति वेदना के साथ, शास्त्रोक्त विधान से पूर्ण किया ।

सब पितृ-सस्कार पूर्ण करके, अपने कार्य-भार से मुक्त होकर महान् तपस्यी वसिष्ठ त्रिसूत्रयुक्त यज्ञोपवीत से शोभायमान ब्राह्मणों के द्वारा अनुसृत होते हुए, विजयी भाले को धारण करनेवाले भरत के निकट पहुँचे ।

कुल-क्रमागत मन्त्री यह विचार कर कि विना राजा के राज्य का रहना उचित नहीं है, भरत को राजा बनाने का दृढ़ निश्चय करके, उस राज्य के बड़े ज्ञानवान् लोगों को साथ लेकर आये । (१—१४५)



अध्याय ३०

वन-प्रस्थान पटल

मत्रणा-कुशल मन्त्री (भरत के प्रति) प्रेम में भरे हृदय के साथ यह भोचते हुए कि परम्परा से प्राप्त वेदों को अधिगत करनेवाले तथा तपस्या के सब तत्त्वों को जानेवाले वसिष्ठ उम राजमग्न में उपस्थित हैं, शीघ्र सभा में आ पहुँचे और भरत को नमस्कार किया ।

तपस्या के प्रभाव से गगन में भी सच्चरण करने की शक्ति रखनेवाले मुनियों के माथ मन्त्री, नगर के लोग, सेनापति, राजा तथा सब बुद्धिमान् एव विवेकी पुरुष, सुन्दर वीर (भरत) को यथाक्रम घेरकर बैठ गये ।

जब सब लोग इस प्रकार बैठे हुए थे, तब ज्ञानी तथा रथ चलाने में दक्ष सुमत्र ने विजयी चक्रवर्ती के कुमार (भरत) को अपने मन के विचार सूचित करने के उद्देश्य से मर्वज मुनिवर (वर्मिष्ठ) के मुख की ओर देखा ।

तपस्यी वर्मिष्ठ ने सुमत्र के अपनी ओर देखने से, बच्चों के विना ही, उसके मन के आशय को जान लिया । फिर चक्रवर्ती के कुमार से बोले—राज्य की रक्षा करो । यही तुम्हारा कर्तव्य है ।

(वर्मिष्ठ ने भरत से कहा—) हे दोष-रहित । गुणवान्, वेटज, अपूर्व तपस्या-सपन्न, बृद्ध, नरेश आदि जो तुम्हारे पास आये हैं, इनके आगमन का प्रयोजन यही है कि नीति तथा धर्म को स्थिर बनायें (और उसके लिए तुम्हे राजा बनायें) । तुम इस बात को अपने मन में समझ लो ।

वर्म नामक अनुपम वस्तु का सबसे आचरण कराना तथा उसको स्थापित करना कठिन कार्य है । हे तात । तुम इस विषय को भली भाँति समझ लो । यह धर्म इहलोक ओर परलोक—दोनों को प्रदान करनेवाला है । स्वच्छ चित्तवाले ही इसका पालन कर सकते हैं ।

विचार करने पर विदित होता है कि कटि में दृढ़ करनेवाले नजा के अभाव में यह समार नव की इच्छा के पात्र सर्व ने विहीन दिन-जैसा होता है, नक्षत्रों से धिरे हुए चढ़ से विहीन रात्रि-जैसी होती है तथा अपने अतर में प्राणों से विहीन शरीर-जैसा होता है।

देवलोक में अत्याचार करनेवाले बलवान् असुरों के देश में, तथा लोक कहलानेवाले नव प्रदेशों में, रक्षा करनेवाले राजा के बिना कोई कार्य नहीं होता है। यह हम देखते हैं।

उचित रीति में विचार करने पर विदित होता है कि ब्रह्मा के द्वारा बनाये गये वर्गी तथा स्वर्ग में निवास करनेवाले जगम तथा स्थावर पदार्थ कभी शासक बिना नहीं रहते।

कमलभव ब्रह्मा से लेकर नव पुरुषों ने जिस वश की प्रशसा की है, ऐसे (तुम्हारे) वश के लोगों ने अबतक इस समार की रक्षा की है। अब ऐसे रक्षक के अभाव में यह समार, उज्ज्वल समुद्र में दृटी हुई नौका के समान हो गया है।

है तात । तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधारे । तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता राज्य छोड़कर चले गये । अनन्त वैभव ने युक्त यह विशाल राज्य तुम्हारी माता के वर से तुम्हे मिला है, इस राज्य पर तुम शासन करो । यही हमारी सलाह है—यों वसिष्ठ ने कहा ।

ज्यों ही मुनिवर वसिष्ठ ने कहा कि इस राज्य पर तुम शासन करो, त्यों ही भरत अपने नेत्रों ने निर्झर ऐसा समान अश्रुधाग वहाते हुए, 'विष खाओ' कहने से भयभीत होकर काँपनेवाले से भी अधिक भीत होकर काँप उठे ।

(वसिष्ठ के वचन सुनकर) भरत का मन काँप उठा । कठ गद्गाड हो उठा । नयन मुकुलित हो गये । न्त्रियों के जैसे ही उनका हृदय ढंगित हो उठा । उनके प्राण व्याकुल हुए । कुछ काल यो मूर्च्छित रहने के बाद जब उनमें प्रज्ञा आई, तब वे उस सभा में स्थित लोगों ने अपने विचार कहने लगे—

तीनों लोकों के आदिकारण बने हुए, मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर उत्पन्न हुए (श्रीगम) के रहते हुए मैं राज्य करूँ । अहो ! यह श्रेष्ठ पुरुषों का धर्मोपदेश हो गया । फिर तो अब मेरी जननी के कार्य में भी कोई दोष नहीं रहा ।

क्रूरता ने युक्त मेरी जननी ने जो कार्य किया, उसके बारे में, बदाचार में निरत आपलोग कहत हैं कि यह उचित है । क्या इस नमय, कृतयुग के पश्चात् आनेवाले दोनों युग (द्वापर आगे त्रेता युग) व्यतीत होकर अंतिम युग (कल्युग) ही आ गया है ?

कमलभव ब्रह्मा के नव लोकों में क्या कही भी बड़े भाई के रहन हुए छोटा भाई वथार्विधि गज्य का शासन करता है ?—गजमभा में रहनेवाले आपलोग ही वताये ।

कठाचित् आपलोग इन कार्य को न्याय-सगत भी प्रमाणित कर दें, तो भी मैं इन समार ऐ प्राणियों के जानन-भाग को बहन करता हुआ जीवित नहीं रहूँगा । किन्तु, मैं उनको (वर्यात् नम को) ले आऊँगा और पुष्पमाला-भूषित किरीट, आदि काल से आगत नीति ऐ अनुसार उन्होंने पहनाऊँगा । यह आप देखेंगे ।

यदि मैं उन (राम) को नहीं ले आ सकूँगा, तो दुर्गम अरण्य में रहकर यथाविधि कठोर तपस्या करूँगा। यदि और कोई बात कहकर आपलोग सुझे विवश करने का प्रयत्न करेंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा—इस प्रकार भरत ने कहा।

महिमा में श्रेष्ठ चक्रवर्ती (दशरथ) जीवित रहते समय भी प्रभु (राम) ने रत्नमय किरीट को धारण करना स्वीकार किया। किन्तु, हे उत्तमशील भरत! तुम तो, पिता के स्वर्ग-गमन के कारण प्राप्त हुए राज्य को भी अस्वीकार कर रहे हो। राजकुल के पुत्रों में तुम्हारे समान (त्यागी) कौन है?

आज्ञा-चक्र प्रवर्त्तित करना (अर्थात्, न्याय-पूर्ण शासन करना), धर्म की रक्षा करना, यज्ञ करना—इनके द्वारा तुम्हें अपना यश बढ़ाना आवश्यक नहीं है। चतुर्दश भुवन मिट जाने पर भी तुम्हारा बड़ा यश शाश्वत रहेगा—इस प्रकार कहकर उन सभासदों ने भरत को आशीर्वाद दिये।

भरत ने अपने अनुज (शत्रुघ्न) को बुलाकर कहा—मंघ-गर्जन के समान नगाढ़े की ध्वनि करके, यह घोषणा कराओ कि इस राज्य के धार्मिक प्रभु (राम) को हम लौटा ले आनेवाले हैं और सारी सेना को यात्रा के लिए तैयार करो।

मद्गुण भरत की आज्ञा से शत्रुघ्न ने वैसी घोषणा करा दी, तब दुःख में छूटे हुए उस विशाल नगर के लोग यों आनन्द-घोष कर उठे कि मानो उनके प्राणहीन शरीरों पर बचनरूपी अमृत छिड़क दिया गया हो।

‘रामचन्द्र स्वर्णसुकुट धारण करनेवाले हैं’—यह घोषणा होते ही पचेन्द्रियों का दमन करनेवाले मुनियों से लेकर सभी लोग महान् आनन्द से भर गये। (रामचन्द्र को लौटा लाने की) वह समाचार कानों के लिए दिव्य अमृत ही था।

‘भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता को ध्वजाओं से अलकृत नगर में ले आनेवाले हैं, उनको ले आने के लिए सेनाएँ भी जायेंगी’—नगाढ़े वजा-वजाकर इस प्रकार की जो घोषणा की जा रही थी, वह उस वैभवपूर्ण अयोध्या नामक महा-मसुद्र में चंद्र के उदय होने के समान थी।

वह बड़ी सेना युगान्त में उमडनेवाले सप्त समुद्रों के समान उमड उठी और घोर शब्द करती हुई आगे बढ़ चली। उसमें कैकेयी की कामना समूल विनष्ट हो गई। नगर के लोग भी प्रेम से उमड उठे और उनका (रामचन्द्र के वियोग से उत्पन्न) दुःख मिट गया।

अलकारों से सजे हुए घोड़े, हाथी और रथ, धरती को ढककर छा गये। सेना की अत्युन्नत ध्वजाएँ आकाश-तल को ढककर छा गई। ऊपर उठी हुई धूल कमलमब ब्रह्मा के भी नयनों को ढककर उन्हें अधा बनाने लगी।

इन्द्रदेव जिस समय इस सृष्टि का अत करता है, उस समय उठनेवाली धर्मिनि से भी अधिक (भयकर) धर्मिनि उत्पन्न हुई। अकलक रामचन्द्र के दर्शन करने के लिए उठनेवाली उमग से भी अधिक उल्लमित होकर वह विशाल सेना उमडने लगी।

उम सेना का एक अति विशाल सूँडवाला हाथी अपनी हथिनी के साथ उस प्रकार जा रहा था, मानों राज्य के जैसे ही उम स नगर का त्याग कर विविध वृक्षों से

पूर्ण अरण्य की ओर नीता नामक लता को माथ लिये हुए रामचन्द्र-रूपी मेघ ही जा रहा हो ।

कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले कमल-पुष्प भी जिनके सामने शोभाहीन हो जाये जेने मृदु चरणों में युक्त कन्याओं के माथ छोटी हथिनियाँ स्पर्धा करने लगी थी, किन्तु कठनित् उन सुकुमारियों की मृदुगति में हाङ्कर ही माना वे (हथिनियाँ) उन सुन्दरियों को ढाये हुए जा रही थी ।

‘वै दीर्घ ध्वजाएँ जो मेघों के जल-विंदुओं से इस प्रकार मिञ्चित हो गही कि पीडादायक सर्य-किरण भी उन (ध्वजाओं) से शीतल हो जाती थी, विजयमाला-भूषित धनुर्धनी राम के गज्याभिषेक का दर्शन न पाने में हुःखी हुई त्रियों के समान कौप रही थी ।

असर्व राजा लोग हाथियों पर आस्ट बोकर इस प्रकार जा रहे थे, जैसे महामाय उण किरणों में युक्त सूर्य, असर्व स्प लेकर, अपने ऊपर बबल चन्द्रमा को (छत्र के रूप में) वारण किये. मेघों पर आस्ट बोकर, धरती पर उत्तरा हो और एक दिशा में जा रहा हो ।

एक समुद्र रथों पर जा रहा था । इसमा समुद्र लाल चित्तियों से युक्त मुखवाले, मंध-ममान हाथियों पर जा रहा था । अन्य एक काला समुद्र सुन्दर घोड़ों पर जा रहा था और पठाति भेना-हृषी समुद्र वर्गी पर सर्वत्र छा गया था ।

‘तारे’ (एक वाद), ताल, शख्स, शृङ्खी, चर्म से आवृत ‘पदे’ (नामक एक वाद), डमह भेरी तथा अन्य वाद भी उसी प्रकार मौन होकर जा रहे थे, जैसे मूर्खों के नमुदाय में जानी पुर्व (मौन) रहते हैं ।

चिरस्थायी लज्जा के अतिरिक्त शरीर में अन्य आभगणों को भी दूर किये हुए तथा अप्मगणों की ध्राति उत्पन्न करनेवाली अति सुन्दरी त्रियाँ ऐसी लगती थी, जैसी, पुष्पों के कड़ जाने पर, लताएँ हों ।

उस भेना में गरजनं समुद्र से धिरी सारी पृथ्वी का शामन करनेवाले (चक्रवर्ती दशग्रन्थ) का परपरा-प्राप्त श्वेतच्छत्र नहीं था । इसलिए वह सेना, अनेक छोटे-छोटे श्वेतच्छत्र-न्यी नक्कारों से युक्त होकर भी कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा से रहित गत्रि के समान लगती थी ।

वह भेना अपने विस्तार में दिशायों को बहुत छोटी बना रही थी, ऐसी सेना को जब वह पृथ्वी बहन कर रही थी तब गरजनं समुद्र ने आवृत इस भूमि को एक ‘खी’ कहना क्या मत्त्व कथन ही मक्ता है ।

उन नारियों के, शीतल चन्दन, अग्रह आदि से शृन्य, कुकुम-लेप से रहित तथा मुक्ता-मालाओं ने हीन, (प्रतिक्षण) वढ़नेवाले मृदुल स्तन किसी भी प्रसाधन से रहित होकर नारिकेल वृक्ष पर लगे हुए कोमल नारिकेल फलों के समान लगते थे ।

बौधन में पूर्ण अपनी पत्नियों के स्तनों पर के चटन-लेप (के चिह्न) एव सुगधित पुष्प-मालाओं से शृन्य (पुरुषों के) उत्तर कधे, घने लता-कुञ्जों तथा झाड़ों से शृन्य पर्वतों के समान लगते थे ।

सुगध के नम्कार ने शृन्य केशोवाली नारियों की, नित्य के शृङ्खार अव न किये

जाने के कारण, अजन से अनलकृत आँखे, युद्ध की समाति पर रक्त को धी देने के पश्चात् यम के करवाल जैसी लग रही थी ।

नारियों के जघन-तट, मेखला की मणियों की झनझनाहट से शून्य होकर, घटियों से रहित रथों के समान लगते थे । भ्रमरों से शून्य कमल-पुष्पों के समान ही उन नारियों के अरुण पद भी नूपुर की ध्वनि से शून्य थे ।

नारियों की लचकनेवाली कटियाँ, पहनने योग्य मुक्ताहार आदि के न पहनने से, अब एक प्रकार (बोक ढोने के काम) से विश्राम पाकर रहती थी, मानो कैकेयी को जो वर दिये गये थे, वे इन नारियों की कटि के लिए ही फलीभूत हुए हो ।

रामचन्द्र के बन चले जाने से शोभाहीन होकर कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी भी तपस्या करने लगी हो तथा मन्मथ भी अपार दुःख-सागर में ड्रव गया हो—इसी प्रकार वह सेना भी शोभाहीन और विनोद एवं हर्ष से रहित थी ।^१

‘वह सेना-भूमि, आकाश, प्रकाशमान दिशाएँ, इन सबको निगलने के लिए उमडे हुए प्रलयकालिक समुद्र के समान थी’—ऐसा कहना क्या पर्याप्त होगा । उमकी सख्या का विचार करें, तो यह जात होगा कि वह सृष्टिकर्ता की दृष्टि तथा मन में भी अधिक विशाल थी ।

बीचियों से भरे समस्त विशाल नदियों का जल, वह (सेना) पी सकती थी । बीचियों से भरे समुद्र के सारे जल को वह (सेना) पी सकती थी । वह धरती का सतुलन बनाये रखती थी । ऊँचे उठे हुए पर्वतों को भी अपने पद-भार से धरती में दबा सकती थी । अतः, वह सेना द्रविड-महर्षि (अर्थात्, अगस्त्य) की समता करती थी ।

वह अयोध्या नगर आवालवृद्ध सब लोगों के तथा समस्त सेना के निकल जाने के कारण, अगस्त्य मुनि के द्वारा समस्त जल के पिये जाने पर समुद्र जैसा लगता था, वैमा ही शून्यता से भराहुआ पड़ा था ।

वह सेना, वडी बीचियों से भरी नदियों, खेतों, मनोहर वृक्षों, पर्वतों तथा सैकत श्रेणियों को देखती हुई, मार्ग पर जा रही थी । उस समय वह मार्ग अयोध्या की उस वीथी के समान लगता था, जिसकी सफाई नहीं की गई हो ।

मेघ के समान अति क्रोधी मत्त गजों के मदजल की गध के अतिरिक्त, उस सेना में, पुष्प, चन्दन या अन्य कुकुम-लेप आदि, किसी प्रकार की गध नहीं थी ।

जिस विशाल समुद्र को लोग वडी-वडी नौकाओं से पार करते हैं, उस (समुद्र) से भी विशाल उस सेना-रूपी समुद्र में, उज्ज्वल ललाटवाली सुन्दरियों की कटि के अतिरिक्त, कवे तक लटकनेवाले कुड़ल या अन्य कोई आभरण प्रकाशमान विनुत् के समान नहीं चमक रहा था ।

सुन्दर मर्दल आदि वाद्यों की ध्वनि से हीन होकर चलनेवाली वह सेना विशाल भित्ति पर अक्रित सेना के चित्र के समान लगती थी ।

१. वैमव की देवी लक्ष्मी है, और श्वो-पुरुपों की क्रीडाओं का कारण मन्मथ का प्रभाव है । अब लक्ष्मी और मन्मथ के अपने-अपने कावों से विरत हो जाने से, उस सेना में न पुराना वैमव था, न श्वो-पुरुपों की विनोद-क्रीडाएँ ही थीं ।—अनु०

विष्णु (के अवतारमूर्ति राम) का बन-गमन भी क्या था ?—अयोध्या के युवकों के लिए, प्रकुल्ल पुष्पों की माला ने विभूषित सुन्दरियों के कटाक्ष-रूपी वाण उन (पुरुषों) के हृदयों को छेदकर उनके प्राणों को पी न डाले—इसके लिए अपूर्व कवच बन गया था।

मन्मथ के पाँच वाणों ने पीडित होनेवाले पुरुषों के हृदय अब पहले की तरह दुष्टियों के स्तनों पर आसक्त नहीं होते थे। स्वर्णमय कर्णाभरण से भूषित कैकेयी के प्रति उन (पुरुषों) के मन में जो क्रोधाग्नि उत्पन्न हुई थी, वह (हाइ के द्वारा प्रकट होकर) दुष्टियों के स्तनों को कही जला न डाले, मानो वह सोचकर ही उन पुरुषों की दृष्टि उनपर में हट गई थी।

इस प्रकार वह विशाल सेना जा रही थी। महिमा से पूर्ण भरत भी, अपनी सुन्दर कटि में बल्कल पहनकर, अपने अनुज (शत्रुघ्न) से अनुसृत होते हुए, एक सुन्दर रथ पर बड़ी व्यथा के साथ बैठकर जाने लगे।

माताओं तपस्त्रियों, पितृ-समान गौरव के चांग बृद्ध मत्रिगण, असर्व वशुगण, पर्वित्र स्वभाववाले व्राह्मण-वर्ग—इन सब ने अनुसृत होते हुए भरत अयोध्या-नगर के वहिद्वार पर जा पहुँचे।

उस समय, मन्थरा नामक उस यम (स्पिणी दासी) को भी चलनेवाले लोगों के मध्य धक्काधुक्की करते हुए जांत ढेखकर शत्रुघ्न का क्रोध भड़क उठा और उन्होंने वेग से टौड़कर, गरजते हुए उसे पकड़कर झकझोरा। तब मनोहर कधीवाले भरत ने अपने अनुज को गोककर कहा—

दुल-परम्परा को तोड़कर अपनी कामना को पूर्ण करनेवाली माता को मैं दुकड़े-दुकड़े करके अपना क्रोध शात कर मक्ता था, किंतु हे तात ! वैसा करने पर मुझे मेरे प्रभु (गम) त्वाग देंगे—इसी विचार से चुप रह गया। मैंने उसे अपनी माता नहीं समझा।

अतः, हे दोपहीन सद्-अथों के प्रतिपादक शास्त्रों के ज्ञाता। यद्यपि हम इस दुष्टियों से रुट हैं तो भी प्रभु हमारा यह कार्य पसन्द नहीं करेंगे। अत., इसे छोड़कर हम आगे दृढ़े। यो कहकर कठिनाई से शत्रुघ्न को समझते हुए उन्हें अपने साथ लेकर बै आगे बढ़े।

मसुद्र-जैसी उमड़ती हुई गज आदि की सेना तथा पदाति-सेना के साथ भरत, उसी उपवन में जाकर ठहरे, जिसमें पहले (बन-गमन के ममत्व) प्रभु (गम) अपनी पली तथा मिंह-समान भाई के साथ ठहरे थे।

भरत उस गत्रि को अपने नेत्रों से अशुजल का प्रवाह करत हुए ठहरे और पर्वत से उत्पन्न कट-फल आदि का आहार किया। वन्धुर्धरी रामचन्द्र ने जिस स्थान में विश्राम किया था, वही धूल पर घास विछाकर भरत भी पड़ रहे।

पौर्वपत्रान् गमचन्द्र उस स्थान से पैदल ही मार्ग तय करते हुए गये थे। इस कागण से भरत भी वहाँ से पैदल ही चले और रथों अश्वों तथा गजों की सेना उनके पीछे-पीछे चली (१-५६)

अध्याय ३३

गुह पटल

मनोहर, स्वर्ण-निर्मित वीर-ककण से भूषित तथा अनुपम सेना-वाहिनी से युक्त भरत, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश की समता करनेवाले और उपजाऊ खेतों में भरे कौशल देश को छोड़कर गगा नदी के तीर पर ऐसे दुःख के साथ आ पहुँचे कि उनको देख-कर स्थावर और जगम—सब वस्तुएँ द्रवित हो उठी ।

उनकी सेवा में स्थित मत्त गजों का मद-जल अपार जल से पूर्ण गगा में मर्वत्र वह चला, जिस कारण से वह गगा-प्रवाह, असख्य ब्रमरों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के पीने या स्नान करने के अनुपयुक्त हो गया ।

उनकी सेना में स्थित अश्वों के खुरों से उठी हुई धूल उड़कर देवताओं के शिरों पर किस प्रकार छा गई, यह हम समझ नहीं सके । वे (अश्व) पानी पीते समय दीर्घकाल तक पानी पीते रहते और फिर लत्वी श्वास छोड़ते, जल में उतरकर तैरते और धूल पर लोट जाते थे ।

(पहले) गगा का प्रवाह दूध के रग से युक्त होकर गरजते हुए समुद्र में जा मिलता था, किन्तु अब वह पहले जैसे वेग से नहीं वह रहा था, क्योंकि पुष्पमाला से भूषित दीर्घ किरीटधारी भरत की सेना-रूपी समुद्र ने उस (गगा के जल) को पी लिया था ।

वन को गये हुए वीर (राम) का अनुसरण करके जानेवाले भरत के पीछे-पीछे जो सेना उस समय जा रही थी, वह साठ सहस्र अक्षौहिणी परिमाण की थी ।

जब वह सेना गगा के (उत्तरी) किनारे पर पहुँची, तब गुह उसे देखकर और यह सोचकर कि यह विशाल समुद्र के जल से भरे मेघ-समान प्रभु (राम) से युद्ध करने के लिए ही जा रही है, अत्यन्त कोश में भर गया ।

गुह नामक यम-सदृश उस पराक्रमी व्यक्ति ने आकाश तक उड़नेवाली धूल से उस सेना की सख्या का अनुमान कर लिया । तब उस (गुह) की आँखों से चिनगारियाँ निकली । नासिका से धुआँ उठा । वह अद्वाहाम कर उठा । उसकी मौहे ऐसे भुक्खिगई, जैसे युद्ध के उपयुक्त धनुष हो ।

पाप करनेवाले सब प्राणियों के प्राणों का अत करनेवाले, अपने कर में त्रिशल धारण करनेवाले यम ने ही मानों पाँच लाख वीरों के रूप धारण किये हो—इस प्रकार के थे उस (गुह) की सेना के वीर । वह (गुह) धनुर्विद्या में निपुण था ।

उस (गुह) ने अपनी कटि में कटार वाँध रखी थी । अपने ओंठ चवा रहा था । कठोर शब्द कह रहा था, उसकी धूरनेवाली आँखों से अग्नि-कण निकल रहे थे । उसकी सेना में डमरू बज रहे थे, शृङ्खला बज रहे थे और उसकी मुजाएँ यह भोचकर कि अब मुझे युद्ध करने का मौका मिला है (हर्ष से) फूल उठी थी ।

उस (गुह) ने यह कहते हुए कि 'यह सेना चूहों का झुड़ है और मैं उनके लिए

चिपधर मर्ज हूँ—बड़े कोलाहल में भगी अपनी मंना को पुकारा । वह मंना ऐसी थी, मानो तीक्ष्ण नखोवाले समस्त धोर व्यादों को एकत्र कर दिया गया ही ।

बड़े कोलाहल में भरे ओर प्रलय-काल में गरजनेवाले मंघ तथा काले समुद्र ही उमड़ आये हीं—इस प्रकार उमडकर थानेवाली अपनी मंना को लेकर वह (गृह) नमीप-स्थित (गगा के) रक्षिणी तट पर आ पहुँचा ।

अपने सैनिकों को देखकर गृह ने कहा—मने इस पट्यत्रकारी मंना को धीर-स्वर्ग पहुँचाने तथा अपने प्यारे मित्र (गम) को महिमामय महान गज्य देने का निश्चय किया है । तुम सब महमत हो न ॥

गृह ने फिर आज्ञा दी—पटहों को बजाओ । गम्सी तथा धाटों को सर्वत्र मिटाओ । एक भी नाव न चलाओ । सुगाध में पूर्ण गगा-तट पर आनेवाले इन (भगत के) सैनिकों को पकड़ लो ओर काट डालो ।

गृह ने अगं कहा—मेरे प्राणों के नायक, अजनवर्ण प्रभु (गम) को गज्य में वचित करके स्वय (राज्य) लेनेवाले ये गजा यहाँ भी आ पहुँचे, हमारे अग्नि वरनानेवाले तीक्ष्ण वाण क्या इन लोगों पर नहीं चलेंगे ? यदि ये मुझसे बचकर ढले जायेंगे, तो क्या समार मुझे कुत्ता नहीं कहेगा ?

क्या ये (भगत आदि), गमीर विशाल ओर वीचियों से भगी इस (गगा) नदी को पार करके जा सकेंगे ? क्या मैं ऐसा बनुवीर हूँ कि इनकी बड़ी गज-सेना को देखकर (डर में) भाग जाऊँगा ? उन (गम) ने मुझे मित्रता की जो वात कही थी वह भी तो एक वात थी—(अर्थात्, गम का वह बच्चन आदरणीय है और मुझसे मित्रधर्म का पालन करना है । यदि मित्रधर्म का पालन न करूँ तो) क्या लोग मेरी निडा यह कहकर नहीं करेंगे कि यह जुद्ध निपाद मरा क्यों नहीं ?

आह ! इस (भरत) ने यह नहीं सोचा कि ये (गम) हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं । यह भी नहीं सोचा कि उनके साथ अति बलिष्ठ व्याद्र-समान उसका भाई भी है । यदि उन्होंने ये वाते न सोची हों, तो न मही किन्तु इसने मेरी उपेक्षा कैसे की ? जो हो, इसका पगङ्कम इस मीमा कंग पार करने पर ही तो जात होगा । क्या निपादो के द्वाग प्रयुक्त वाण गजाओं के बद्ध में नहीं लगते ?

क्या वरती पर राज्य करनेवाले ये द्वात्रिय, पाप, स्थिर रहनेवाला अपवश, शत्रु, मित्र (दमगे को) दुख देनेवाले कार्य—इनके वारे में विचार नहीं करते ? जो हो, सो हो मेरे अपूर्व प्राण-तुल्य मित्र (राम) पर इनका आक्रमण तभी तो हो सकता है, जब ये अपनी मेना तथा अपने प्राणों को (हम में बचाकर) अपने साथ ले जा सके ।

जब मेरे प्रिय मित्र (राम) अपूर्व तपन्या कर रहे हो, तब क्या यह (भरत) पुर्वी का राज्य कर सकता है ? (हमारे लिए) अपने प्राण कुछ अमर तो नहीं हैं ? (भगत ने युद्ध करके यदि मरना भी पड़े, तो) बड़ा यश पाकर मरेंगा । मेरे प्रति गमीर प्रेम रखनेवाले प्रभु के साथ मैं जो बन में नहीं गया और यही रह गया, वह भी अच्छा ही हुआ । अब मैं अपना वर्त्तव्य पूरा करूँगा ।

हाथियों और घोड़ों से भरी सेना से युक्त तथा सुगंधित पुष्पमाला से भूषित इन (भरत) का शस्त्र-पराक्रम तो गगा को पार करने के पश्चात् ही काम आयगा न ? तुम मव उग्र व्याघ्र यहाँ रहते हों। गगा के घाटों पर नाव चलाना छोड़ दो। (यदि आज हमें मरना भी पड़े, तो) हमारे प्रभु (राम) से पहले ही (युद्ध में) अपने प्राण छोड़ देना उचित ही तो होगा ?

हमारे साथ आई हुई सेना के माथ एक बार युद्ध के लिए भी यह (भरत की) सेना पर्याप्त नहीं है, यह कहना अनावश्यक है। यदि देवताओं की सेना भी (हमारे विरुद्ध) आवे, तो भी हम अपने धनुष-रूपी काल-मेघों से शरों की वर्षा करके उनकी (चिर स्थिर) आँखों (पलकों) को हिला देंगे और करवाल से सारी गज-सेना को विघ्वस्त कर देंगे। इस प्रकार, सबको अस्त-व्यस्त करके हरा देंगे।

उस दिन (जब राम के राज्याभिपेक का निश्चय हुआ था) उदार, दानशील तथा मेरे प्रम के पात्र प्रभु के पहनने के लिए जिस क्रूर कैकेयी ने बल्कल दिये थे, उसके इस पुत्र (भरत) की सेना को अपने शरीर से निहत करूँगा। चर्वीं से भरे शवों की राशि को यह गगा नदी वहा ले जायगी और लहरों से भगी विशाल समुद्र में डालकर उस समुद्र को पाठ देगी।

‘निषाटो ने फहरानेवाली पताकाओं से युक्त (भरत की) सेना को विघ्वस्त करके धर्मरूपी राम को ही शासन करने के लिए राज्य दे दिया’—ऐसा यश क्या हम नहीं पायेंगे। जिन प्रभु (राम) ने अपना राज्य तक भरत को दे दिया था, वही भरत आज हमारे निवास-भूत इस अरण्य को भी देना नहीं चाहता और देखो, यहाँ भी चढ़ाई करने आया है।

‘महान् तपस्वियों के बधु होकर अरण्य में निवास करनेवाले प्रभु (राम) क्रोध करेंगे’—यह विचार न करके यदि हम युद्ध-क्षेत्र में इस (भरत) पर शर प्रयुक्त करेंगे, तो चाहें यह सेना सस समुद्रों के समान ही क्यों न हों, तो भी हम इसे उसी प्रकार मिटा देंगे, जिस प्रकार गाय अपने सामने की छोटी और कोमल धास को चवा डालती है।

दृढ़ तथा बड़े वनुष से युक्त, मल्ल-युद्ध में निपुण भुजाओं से युक्त तथा युद्ध में प्रवीण प्रभु (राम) के प्रति भक्ति से पूर्ण गुह ने लोहे के जैसे शरीरवाले अपने साथियों के प्रति ये वचन कहे। उसको वहाँ खड़े देखकर, दृढ़ रथ को चलानेवाले सुमत्र ने सिंह-ममान वली भरत के निकट आकर कहा—

यह गगा के ढोनों तटों का नायक है। असर्व्य नावों का स्वामी है। तुम्हारे वश में उत्पन्न अनुपम पुरुष राम का प्राणग्रिय मित्र है। उन्नत भुजाओंवाला (वीर) है, मल्ल-गज-तुल्य है। धनुर्धारी सेना-युक्त है। मधुस्नावी प्रफुल्ल पुष्पों की माला से भूषित है। इसका नाम गुह है।

हे वल की सीमा को देखनेवाली मनोहर तथा दीर्घ भुजाओं से युक्त। हे नील-मेघ-सदृश नीलवर्ण। यह पर्वत के जैसे दृढ़ता से पूर्ण है। (राम के प्रति) असीम प्रेम से पूर्ण है। देखने में, रात्रि की जैसी सुन्दर देह-काति से पूर्ण है। ऐसा यह हमारे मार्ग में समुख आकर खड़ा हुआ है। तुम्हे देखने की इच्छा रखकर आया है, यों सुमत्र ने कहा।

अपने पिता के मित्र सुमत्र के द्वाग दूर पर अपने मामने खड़ गृह के विषय में सुनकर, कलक-रहित भरत के मन में बड़ी उमग उत्पन्न हुई। फिर, वे यह कहकर आगे बढ़े कि यदि यह प्रभु के आलिंगन का पात्र प्रिय मित्र है, तो उसके यहाँ आने के पहले ही मैं व्यय उसके पास जाकर (उससे) मिलूँगा।

यह कहकर वे उठे और अपने अनुज तथा उमड़ते हुए प्रेम के साथ गगा के किनारे पर ऐसे जा पहुँचे, जैसे कोई पर्वत चला हो। किनारे पर आये हुए भरत को धने तथा काले केशोवाले गृह ने देखा और उनकी दशा को पहचानकर वह चौका।

गृह ने, बल्कल पहने हुए, वूल-भरी शरीरवाले, सुन्दर कलाहीन चद्र-जैमे मदहास की काति से हीन बदनवाले तथा ऐसे शोक ने पूर्ण कि जिसको देखकर पत्थर भी पिघल जाये, भरत को देखा। देखत ही उसके हाथ से धनुप खिसककर नीचे गिर पड़ा। वह व्याकुल हो उठा। स्तव्य हो गया।

गृह ने सोचा, यह उत्तम पुरुष (भरत) मेरे प्रभु (राम) के जैसा ही लगता है। उसके पार्श्व से खड़ा हुआ कुमार (शत्रुघ्न) भी प्रभु के अनुज (लक्ष्मण) के जैसा ही है। इस (भरत) ने मुनि-वेप धारण किया है। इसके शोक की कुछ नीमा नहीं है। राम की दिशा में देखकर नमस्कार कर रहा है। अहं। क्या मेरे प्रभु के भाई कुछ दोप करनेवाले हो सकते हैं? (अर्थात्, नहीं होंगे)।

फिर गृह ने यह कहा—यह (भरत) रामीर शोक से पीड़ित है। अच्छल प्रेम रखनेवाला है। (राम के) धारण किये मुनि-त्रत को स्वयं भी अपनाया है। मैं वहाँ जाकर इसके मनोभावों को समझकर लौट आता हूँ। तत्रतक तुम लोग धाटों की रक्षा करते हुए यहीं रहो और शीतल गगा के धाट पर एकाकी ही एक नाव में बैठकर (भरत के निकट) आया।

मम्मुख (राम की दिशा में) खड़े रहकर प्रणाम करते हुए (भरत) के चरणों पर गृह न रहा। तब, उत्तम स्वभाववाले, मजनों के मन एवं शिर पर धारण किये जानेवाले, पवित्र यशवाले तथा कमल-पुष्प पर आसीन ब्रह्मा के लिए भी बदनीय उन (भरत) ने अपने चरणों पर पढ़े (गृह) को उठाकर, (पुत्र से मिलनेवाले) पिता से भी अधिक आनंद के साथ उसका आलिंगन किया।

(भरत के द्वाग इस प्रकार) आलिंगन निपाट-पति ने, कमल-समान सुन्दर नयनोवाले (भरत) से पूछा—हे प्रस्तर-त्तम-तुल्य भुजाओवाले! किस प्रयोजन में तुम (यहाँ) आये हो? भरत ने उत्तर दिया—पृथ्वी की रक्षा करनेवाले मेरे पिता ने कुल-परपरा के नियम का उल्लंघन किया। उम (अनियम) को दूर करने के लिए रामचन्द्र को लौटा ले जाने के उद्देश्य से मैं आया हूँ।

असत्य-रहित चित्तवाले किरातपति ने (यह वचन) सुना। सुनते ही उसने दीर्घ नि श्वास भरा। उसके मन में हर्ष उत्पन्न हुआ। उसकी देह फूल उठी। फिर, वह धरती पर गिर पड़ा और चित्र में अकिञ्चित करने के लिए दुस्माध्य रूपवाले भरत के चरण-कमलों को अपने कर्णों से बाँधकर वह कहने लगा—

है यशस्विन् । (तुम्हारी) माता के वचन मानकर (तुम्हारे) पिता ने जो राज्य (तुमको) दिया, उसे पाप-कृत्य के समान मानकर तुमने (उसे) त्याग दिया और अपने मन में चिन्ता रखकर इस प्रकार यहाँ आये हो । तुम्हारे, इस समय का यह भाव देखने पर, क्या सहज रामचन्द्र भी तुम्हारी समता कर सकते हैं ?

हे उत्तम गुणशील तथा वलिष्ठ भुजाओवाले । मैं अज्ञ किरात तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ ? जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के पुज से अन्य ज्योतियों को भद कर देता है, उसी प्रकार चत्रिय-समुदाय के द्वारा प्रशंसित तुम्हारे कुल के सब पूर्वजों की कीर्ति को भी तुमने अपनी कीर्ति से अंतर्भूत कर लिया ।

बीर-ककण तथा मास-गध से युक्त शूल को धारण करनेवाले किरातपति ने इस प्रकार के उचित वचन कहकर भरत के प्रति अपना अनुपम प्रेम दिखाया । उन भरत के प्रति प्रेम न रखनेवाले भी क्या कोई हो सकते हैं ? (रामचन्द्र के) अचिंतनीय सद्गुणों के कारण ही तो यह उन (राम) का भक्त बना था ।

करुणा के समुद्र-जैसे, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त भरत ने उस समय रामचन्द्र की दिशा की ओर देखकर नमस्कार किया और यह से पूछा—हमारे ज्येष्ठ (राम) ने किस स्थान पर विश्राम किया था ? तब किरातपति ने कहा—हे बीर । मैं (वह स्थान) तुम्हें दिखाऊँगा, चलो इस ओर ।

तब भरत मेघ के समान चलकर अतिशीघ्र वहाँ गये और पथरीली भूमि पर उस घास की शस्या को देखा, जिसपर रामचन्द्र ने विश्राम किया था । उसे देखते ही भरत तड़पकर गिर पड़े और अपने अश्रुजल से धरती का मगल-स्नान कराया और शोक-समुद्र में झूव गये ।

(भरत कह उठे—) जब मैंने यह सुना कि ‘मेरे कारण तुमको यह वनवास का दुःख प्राप्त हुआ है,’ तब मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े । ‘कद और फलों को ही अमृत मानकर तुमने उनका भोजन किया’—यह सुनकर भी मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े । ‘दुःख देनेवाली घास की सेज पर तुम सोये’—यह जानकर भी मैंने प्राण नहीं छोड़े । अतः, उज्ज्वल रत्न-जटित सुकुट धारण करने के लिए भी कदाचित् मैं प्रस्तुत हो जाऊँ, तो इसमें आश्र्य ही क्या होगा ?

स्तम्भ-समान दृढ़ भुजाओवाले भरत ने आगे कहा—यदि उन (राम) के विश्राम करने का स्थान यह था, तो कहो कि उनपर अत्यन्त भक्ति रखकर उनके साथ आये हुए अनुज (लक्ष्मण) ने कहाँ विश्राम किया ? तब किरातपति ने उत्तर दिया—

हे पर्वत-समान ऊँचे कधोवाले । रात्रि के समान मनोहर वर्णवाले वे प्रभु तथा वह देवी यहाँ विश्राम करते रहे और वह बीर (लक्ष्मण) कर में धनुष लेकर नि-श्वास भरते हुए और आँखों से अश्रु वहाते हुए रात्रि के व्यतीत होने तक, एक पलक भी मारे विना, (पहरे पर) खड़े रहे ।

यह सुनकर भरत ने कहा—राम के अनुज बनकर एक समान उत्पन्न हुए हम-लोगों में से एक मैं हूँ, जो (राम के लिए) अपार कष्ट का कारण बना । और, एक वह

(लक्ष्मण) भी हैं जो मेरे उत्पादित कथ्यों को दूर करने के लिए सहायक बना। अहो। प्रेम की भी कोई नीमा हो मकती है। मेरा दामत्व भी खूब रहा।^१

फिर, भरत उस रात को वही धूल पर लेटे रहे। प्रातःकाल होने पर उन्होंने गुह से कहा—शत्रुभयकर नाट से युक्त वीर-बलव धारण करनेवाले हैं वीर। यदि तुम इस समय टमलोगों को गगा के उस किनारे पर पहुँचा दोगे, तो तुम हमें दुख के समुद्र से निकालकर प्रभु (राम) के पास पहुँचानेवाले हो जाओगे।

गुह भी 'अच्छा कहकर अपने सैनिकों के निकट गया और कहा कि तुमलोग शीघ्र जाकर नौकाएँ ले आओ। तब नौकाएँ इस प्रकार आईं, मानो शिवजी का कैलास, उनके द्वाग (वनुप के रूप में) भुकाया गया स्वर्ण-पर्वत में एवं कुवेर का पुष्पक विमान—ये तीनों एकाकी ही रहने से लजित होकर अब अनेक रूप धारण करके आ गये हों।

उस किनारे से इस किनारे पर तथा इस किनारे से उस किनारे पर लोगों को ले जाने और ले आने के कारण वे नौकाएँ (पुण्य-पाप-रूपी), कर्म-युगल से ममान थीं, जो जीवों को इस लोक से स्वर्गलोक में तथा स्वर्गलोक से इस लोक में लातं-पहुँचाते रहते हैं। युवतियों की गति एवं हसो (की गति) को लजाती हुई चलनेवाली वे नौकाएँ गगा नदी में मर्वत्र फैल गईं।

तब शृङ्खवरपुराधीश (गुह) ने भरत से कहा—हे दृष्ट धनुर्धारी वीर! असख्य नौकाएँ आ गई हैं। अब आप क्या करना चाहते हैं? तब सुन्दर धनुर्धारी भरत ने सुमन्त्र से कहा—इस सारी सेना को शीघ्र इन नौकाओं पर चढ़ाकर उस पार ले चलो।

भगत की आज्ञा से, अश्व-जुते वडे रथ को चलाने में चतुर सुमन्त्र ने, क्रम को तांडे रिना, पृथक्-पृथक् वग्गों में, गजों, अश्वों, गधों तथा पदार्ति सेना को उस पार पहुँचाया। वह सेनावार्हाहनी, उज्ज्वल ग्लों को अपनी वीचियों से विखेरनेवाली गगा नदी के दूसरे किनारे पर जा पहुँची।

प्रलय-काल में मानों मेवों के झुड गरजत हुए समुद्र के सारे जल को भरने के लिए उमड़ आये हो, अथवा जल-नौकाएँ ऊँची ध्वजा और मस्तूल के साथ (जल में) जा रही हों—इसी प्रकार दीर्घ शुडवाले मत्तगज, अपनी सूँड़ को ऊपर उठाये हुए जल में उत्तरकर तैरते हुए नदी को पार कर गये।

अति विशाल हाथियों के द्वारा ढकेला जाकर गगा का जल, शख, मकर, मीन, मुक्ता तथा अन्य ग्लों को विखेरता हुआ तट को लाँघकर दक्षिण की दिशा में उमड़ चला, जिनसे (दक्षिण का) नमुद्र उसके मार्ग में निकट आ गया, मानों वह गगा-प्रवाह भी गमचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा से ही चल रहा हो।

१ अतिन वाक्य का वह भाव है कि प्रेम का क्रियात्मक रूप ही दासत्व है। वह वैष्णवों का सिद्धात है। वान्सख्य दापत्य, सन्य आदि का प्रेम भी क्रियात्मक में दास्य ही है। अत., भरत वह कहते हैं कि मैं राम के प्रति प्रेम रखकर भी उनका कुछ दास्य नहीं कर सका, जब कि लक्ष्मण दासोच्चित कार्य कर रहा है। —अनु०

(गगा के प्रवाह में जब हाथी तैर रहे थे, तब) अत्यन्त मदजल वहानेवाले मत्त-गजों के उन्नत कुभ-मात्र ऊपर दिखाई दे रहे थे । गजों के शरीर के छिपे रहने से, तथा सुन्दर उत्तरीय-जैसी ही वीचियों के, उन कुभों पर फहराने से, वे कुभ ऐसे लगते थे, मानो गगानदी-रूपी युवती के स्तन ही हो ।

रथों के चक्र, धुरी, छत, ध्वजाएँ, पीठ आदि उनके सब भाग पृथक्-पृथक् कर दिये गये । अश्व, तथा रथों के भाग, पृथक्-पृथक् नावों पर चढ़ाये गये तथा दूसरे पार पहुँचाये गये । पुनः रथों के सब अग जोडे गये । वह ऐसा था, जैसे मनुष्य के शरीर के अगों को अलग-अलग करके पुनः उन्हे जोड़नेवाली किसी विद्या के प्रभाव से उन्हे जोड़ दिया गया हो ।

जैसे दूध हो, वैसे (उज्ज्वल) शरीरवाले, जैसे भय ही घनीभूत हो गया हो, वैसे हृदयवाले—(अर्थात्, छोटी-सी धनि से भी भड़ककर ढौड़नेवाले), जैसे वायु ही घनी-भूत हो गई हो, वैसी टाँगीवाले (अर्ति वेगगामी) एवं लगाम लगे हुए आठ करोड़ धोड़े, मीन जैसी नावों पर चढ़कर उस पार जा पहुँचे ।

ककणों में भूषित पल्लव-समान करोवाली युवतियाँ, नावों में परस्पर सटकर और आमने सामने होकर, इस प्रकार बैठी थीं कि उनके उभरे हुए स्तन परस्पर यो टकराने लगे, जैसे दीर्घ इतोवाले मनोहर मत्तगजों के झुड़ में उनके दॉत टकरा उठे हो ।

जब वेग से चलती हुई नावें एक दूसरे से टकराकर हिल उठती थीं, तब स्वर्ण-कर्णाभरणों से भूषित युवतियाँ भय से व्याकुल होकर दोनों ओर अपनी दृष्टि फेंकती थीं । वह दृश्य ऐसा था, मानो चत्तल जल-तरणों से फेंके जाकर मीन ध्वराकर दोनों ओर उछल रहे हो ।

वेगगामी नावों के दोनों ओर खेवैयों के द्वारा चलाये जानेवाले डॉडी से जल-विन्दु उड़-उड़कर युवतियों के पतले वस्त्रों को भिंगो देते थे और उनके विस्तृत जघनों के आकार को प्रकट कर देते थे । वह दृश्य थके-मँडे बीरों की थकावट को मिटा देता था ।

कोलाहल भरी सेना को, इस किनारे से लेकर उस किनारे पर उतारकर खाली लौटनेवाली नावे उन वडे-वडे मेघो-जैसी लगती थीं, जो (मेघ) समुद्र के जल को भरकर लाये हो और उसे वरसाने के पश्चात् खाली होकर समुद्र की ओर लौट रहे हों ।

अगरु-धूम के समान चुने हुए मयूर-पखों से भूषित दड़, मस्तूलों-जैसे लगते थे । मोती की लड्डी में सजी हुई व्वजाएँ, पाल-जैसी लगती थीं । यों वे नावें विशाल जल-नौकाओं की समता करती थीं ।

विशाल गगा नदी आकाश के समान थीं । उससे विखरनेवाले मोती नक्की के समान थे । कमल-सदृश बदन, अमृत, मधुर रक्त-अधर तथा (पुष्पों के) मधु से सिक्क केशोवाली विच्छुत-जैसी सुन्दरियों को ढोकर चलनेवाली नावे उन विमानों के समान थीं, जो जल-विहार करके लौटनेवाली देव-स्त्रियों को लेकर चलते हैं ।

जल-विन्दुओं को उडानेवाले डॉड़-समान अपने पैरों के साथ व नावे, जो शीतल जलयुक्त गगा नदी में चल रही थीं, ऐसी लगती थीं, मानो हर्ष-भरी, सोर-समान,

वने केशोंवाली तथा मीनाढ़ी त्रुतियों के उच्चल पट-कमलों के म्पर्श में प्राणवान् हो उठी हो ।

मुनि, निम्न जाति के लोगों के द्वारा चलाई जानेवाली नावों को न छृकर, सकलपमात्र से निष्ठ होनेवाले गगन-सचार (गगन-मार्ग) ने देवों के जेमे गये । स्वर्ग, भूमि और अन्य किसी भी लोक में सत्य-युक्त तपस्या ने बढ़कर और क्या हो मक्ता है ?

माठ सहस्र अज्ञौहिणी सख्यावाली वह सारी नेना तथा नगर की सारी प्रजा, वीचियों में पूर्ण गगा नदी को पीछे छोड़कर आगे बढ़ चली ।

जब सारी सेना भाँगे ने भरी नदी को पार कर गई, तब कपट पूर्ण धन-लिप्ता से रहित होकर अपने त्याग के द्वारा पृथ्वी के पुराने बड़े राजाओं को भी नीचा दिखानेवाले भरत, नाव पर आस्ट छुए ।

उनका अनुपम अनुज (शनुष), तीनों माताएँ, उत्तम गुणवाला सुमत्र तथा पवित्र मित्र गुह—ये सब जब आमीन हो गये, तब वह नाव भी डॉड-स्पी अपने पैरों को बढ़ाकर चल पड़ी ।

तब गुह ने, बद्युजनों तथा देवों के द्वारा भी आवृत होनेवाली अति गमीर कौशल्या देवी को देखकर भरत से पूछा—हे विजयमालाधारी ! ये कौन है ? भरत ने उत्तर दिया—जिन चक्रवर्ती के द्वारा पर बड़े-बड़े गजा लोग भी खड़े रहते थे, उनकी ये पट्टमहिषी हैं । जिन्होंने त्रिभुवन के सुषिकर्ता ब्रह्मा को भी उत्पन्न करनेवाले को (अर्थात्, विष्णु के अवतार को) अपनी अपूर्व सपनि के तप में पाकर भी मेरे जन्म लेने के कारण खो दिया है ।

भरत के यह कहते ही गुह उनके चरणों पर दड़वत् हो गिर पड़ा और रोने लगा । बछड़े से विछुड़ी हुई गाय के समान दुःख से युक्त कौशल्या ने भरत ने पूछा—यह कौन है ? वीर कक्षणधारी कुमार (भरत) ने उत्तर दिया—यह पुरुष रामचन्द्र का प्रिय मित्र है । लक्ष्मण, उनके अनुज (शनुष) तथा मैं हम तीनों का बड़ा भाई है । पर्वत-ममान कधोवाला इस पुरुष का नाम गुह है ।

यह वचन सुनकर कौशल्या ने यह कहकर आशीर्वाद दिया—हे पुत्रो ! जब तुम लोग दुःखी मत होओ । पराक्रमी राम-लक्ष्मण का नगर छोड़कर बन जाना भी तो अच्छा ही हुआ । तुम पाँचों पर्वत-समान कधों तथा सूँड़वाले हाथी के जेसे वीर इस गुह के साथ मिलकर एकता से चिरकाल तक इस पृथ्वी की रक्षा करते रहो ।

फिर साकार धर्म-जैसी सुमित्रा के बारे में गुह ने भरत से प्रश्न किया—हे तात ! ये करुणामयी देवी कौन है ? भरत ने उत्तर दिया—सत्य को स्थिर रखकर, उन्मार्ग पर चलकर, अपने प्राण त्यागनेवाले चक्रवर्ती की ये छोटी पल्ली हैं । सबके लिए बदनीय प्रभु (राम) का अनुज, जो सदा उनका अनुवर्ती रहता है, उस (लक्ष्मण) की जननी है ।

फिर, उस कैकेयी को, जिसने अपने पति को इमशान में, पुत्र (भरत) को दुःख-सागर में, करुणा-सुमुद्र राम को घोर कानन में भेजकर, वीर-कक्षणधारी त्रिविक्रम

(विष्णु) के द्वारा पूर्वकाल में नापी गई सारी पृथ्वी को अपने मन के पद्यन्त्र से नापा था, देखकर गुह ने भरत से पूछा—ये कौन हैं ?

तब भरत ने कहा—सब विपदाओं को उत्पन्न करनेवाली, लोकनिदा (रूपी) सतान को पालनेवाली माता, उसके पापी पेट में चिरकाल तक वास करनेवाले मुझ पुत्र के प्राणों को भार बनानेवाली तथा इस लोक में, जहाँ के सब प्राणी प्राणहीन शरीर-जैसे लगते हैं—(अर्थात्, राम-वियोग में दुःखी हैं), पीड़ा के लक्षणों से रहित होकर रहनेवाली वह एकमात्र व्यक्ति है, ऐसी इस स्त्री को क्या तुमने नहीं पहचाना ? यहाँ खड़ी हुई यही मेरी जननी है ।

भरत के वचन सुनकर गुह ने उस दयाहीन स्त्री को भी अपने कर जोड़कर नमस्कार किया । उस समय वह नाव भी पख-रहित होकर तैरनेवाली हसिनी के समान किनारे पर आ लगी ।

नाव से उतरकर माताएँ पालकियों पर आसीन होकर चली । भरत ने अश्रु-प्रवाह वहानेवाली आँखों के साथ पैदल ही चलकर दीर्घ मार्ग पार किया । गुह भी उनसे पृथक् न होकर उनके साथ चला ।

फिर, भरत कर्म-भार से मुक्त भरद्वाज नामक, महान् तपस्वी के आश्रम में आदर के साथ जा पहुँचे । उस समय वे महर्षि, वृद्ध तपस्वियों के साथ, उनके सम्मुख आये ।

(१-७३)

अध्याय ३३

पादुका-पट्टाभिषेक पटल

भरत ने अपने सम्मुख आये (भरद्वाज) मुनि को, पिता-समान मानकर बड़ी विनम्रता से प्रणाम किया । चन्द्रशेखर (शिव)-सदृश उन मुनिवर ने प्रेम से उन्हे अनेक शुभ आशीर्वाद दिये ।

फिर भरद्वाज मुनि ने भरत को देखकर कहा—हे तात ! तुमको जो राज्य प्राप्त हुआ है, किरीट धारणकर उसका शासन किये विना क्यों इस प्रकार जटा धारण करके यहाँ आये हो ?

यह वचन सुनते ही भरत धोर क्रोधाञ्जि से भड़क उठे । किन्तु क्रोध को दबाकर उन महान् तपस्वी को देखकर कहा—हे जानी । आपने यह समझकर कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं किया, अब यह जो प्रश्न किया है, यह क्या आपके लिए उचित है ?

वेदों के प्रभु (विष्णु) के अवतार राम के योग्य भाई भरत ने पुनः कहा—कुल-परपरा से आगत धर्म का त्याग कर मैं राज्य नहीं करना चाहता । यदि रामचन्द्र उस

(गज्य) को नहीं स्वीकार करेंगे, तो बनवास की व्रवधि तक में भी उनके नाथ बन में ही रहेंगा ।

गम के प्रति अत्यन्त प्रम में पूर्ण उन महान् तपस्वियों ने, ज्योंही यह बचन मुना, त्योंही उनके फूले हुए शरीर और मन में ऐसी शीतलता व्यास हुई, जैसे किसी ने चन्दन लगा दिया हो ।

भरद्वाज महर्षि प्रेम के माथ भगत को अपने पवित्र आश्रम में ले गये और उनके माथ आई हुई मेना का आतिथ्य करने के विचार में अपने अन्न कर्ण में अग्नि में कुछ अहुतियाँ दी ।

विरागी तपस्वी (भरद्वाज) के स्मरण करने मात्र में स्वर्गलोक शीघ्र वहाँ आ पहुँचा । मेना के लोग मानो पुनर्जन्म प्राप्त कर द्वारे लोक में जा पहुँचे हों—इस प्रकार अपनी पूर्वदिशा को भूलकर वडे आनन्द में निमग्न हो रहे ।

स्वर्ग की अप्सराओं ने यह मानकर कि ये लोग शाश्वत वर्म के आश्रय हैं. उम मेना में स्थित लोगों का प्रेम में स्वागत किया और चन्द्र-मडल के समान स्थित प्रामाद में उन्हें ले गई ।

उन (अप्सराओं) ने उम मेना के लोगों को स्नान के उपयुक्त सुगंध-चूर्णों का लेप कराकर स्वर्ग-नगा के दुर्लभ तथा अपूर्व जल में स्नान कराया । सुरभिमय वडे कल्प-वृक्षों के द्विये हुए पुष्प-मद्वश मृदु वस्त्र पहनाये ।

पुष्पित शाखा के समान लचकती देहवाली उन अप्सराओं ने रक्तस्वर्ण के वरे मनोहर आभरण पहनकर वडे प्रेम से उन लोगों को अमृत-समान भाँजन कराया ।

फिर, भरत की सेना में स्थित पुरुषों ने अलक्षक-लगे, नृपुरों से भूषित एव पल्लव-समान चरणों से युक्त तथा विष-समान नवनों से शोभायमान उन अप्सराओं के माथ पच लक्षणों में युक्त उत्तम शब्दा पर सुखनिंदा की ।^१

गजाओं से लेकर पालकी ढोने से सूजे हुए कधोवाले लोगों तक, सबका उन मुन्डर केशोंवाली अप्सराओं ने वशक्रम ऐसा ही भक्ताग किया जैसा देवताओं का करती हैं ।

भगत की सेना में आई हुई स्त्रियाँ, विवफल-समान रक्त अवरोंवाली तथा निर्दोष वैभव से पूर्ण उन अप्सराओं के सखियों तथा दामियों के समान सेवा करते रहने से, देव-योग्य भोग अनुभव करती रहीं ।

उपवनों में स्थित नव विकसित पुष्पों से भरे कल्पवृक्षों से मट मारुत, सद्या के हाथ का महारा लिये हुए, अबे व्यक्ति के समान, धीरे-धीरे आया ।

मधु-वाग से सिक्त अन्न-पिंडों तथा लाल धान के पत्तों की राशि को कल्पवृक्षों ने दिया, तो उनको खाकर मत्तगज तृप्त हुए और उनके मट-जल में भ्रमर भी तृप्त हुए ।

नगक से मुक्ति देनेवाले पवित्र आकाश-गगा के जल को मत्तगजों ने अपने आगे के

^१ शब्दा के पाँच लक्षण हैं—माद्रव, नुगध, धावल्य, शीतलता एव अलझत होना । अथवा हस के पख, नेमल की हड्डी मधु-पव, लाल कपान और नफेट कपास—इन पाँचों में मरा रहना । —अनु०

पैरों को पमारकर, लवी सँडों में भग्गकर पिया। अश्व-समूह ने मरकत-समान काति से युक्त धास को खाया।

सब लोग इस प्रकार देव-योग्य भोगों का अनुभव कर रहे थे। किन्तु, भरत ने कद-मूल और फल खाकर ही, अपनी स्वर्णमय देह को धूल पर डालकर, किसी प्रकार उस रात को व्यतीत किया।

नीलवर्ण अधकार के हटने से जिस प्रकार स्वप्न भी मिट जाता है, उसी प्रकार उनके स्वर्गिक भोगों के मिटने का कारण बनकर सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे पुण्यानुभव करनेवालों के पुण्य का ही अत हो गया हो।

सयम के साथ जो धर्म का आचरण नहीं करते, उनके जीवन के समान ही उन सैनिकों का भोग भी मिट गया, मानो उन्हे द्रमग जन्म ही प्राप्त हो गया हो। यो (स्वर्ग-भोग के खो जाने से) चिंता न करते हुए वे पूर्व दशा में पहुँच गये।

उस दिन प्रातः ही निद्रा से उठकर वह सेना उपवनों तथा पर्वतों को धूल बनाकर उडाती हुई चल पड़ी और एक मरुभूमि में जा पहुँची, जिसे देखकर देवता भी यह सदेह करने लगे कि यह समुद्र है कि सेना है।

उपर उठी हुई धूल से आवृत होकर सूर्य, ताप-रहित हो शीतल पड़ गया। गजों के मद-प्रवाह, धूल-भरे उस मरु-प्रदेश में यो वहे कि आगे चलना कठिन हो गया।

तीक्ष्ण भालेवाले राजाओं के श्वेतच्छ्रव, वृक्षों की-सी घनी छाया ढे रहे थे, जिससे अग्नि के समान उष्ण एव ककड़ों से भग वह मरु-प्रदेश इस प्रकार शीतल हो गया, मानो उसके ऊपर घनी लताओं से युक्त कोई वितान ही छा दिया गया हो।

‘यह विशाल राज्य तुम स्वीकार करो—यो कहनेवाली माता के प्रति उत्तम क्रोध से जिनका मुख लाल हो गया था, ऐसे नीलवर्ण भरत को देखकर सूखे हुए वृक्ष भी प्रेम के कारण द्रवित होकर पत्वित हो गये।

अपने प्राणों से भी मद्धर्म को ही अधिक श्रेष्ठ मानकर प्राण त्यागनेवाले, शासन में चतुर दशरथ की वह सेना, दुखदायक मरु-प्रदेश को ऐसे पार कर गई, जैसे शीतल वृक्षों में भरे (मरु नामक) भू-प्रदेश को ही पार कर रही हो और इस प्रकार चित्रकूट पर्वत के निकट जा पहुँची।

धूलि का समूह, अश्वों, गथों तथा मत्तगजों का शब्द एव पैदल सेना का कोलाहल—यह सब सूचना दे रहे थे कि एक विशाल सेना आ रही है, जिसे सुनकर—

लक्ष्मण उठे और एक ऐसे पर्वत पर चढ़ गये, जो पृथ्वी के सूज उठने से उभरा-सा लगता था और वीच-पूर्ण सागर को छोटा बना देनेवाली तथा दृढ़ धनुर्धारी उस विशाल मेना को देखा।

तब लक्ष्मण, यह सोचकर कि सारी पृथ्वी का राज्य करने की वद्धम्य इच्छा में प्रेरित होकर ही भरत इस सेना को लेकर व्रतधारी (रामचन्द्र) पर आक्रमण करने आया है—यह सत्य है।—अत्यन्त क्रोध से भर गये।

वे दौड़कर, उस पर्वत को चूर-चूर करते हुए भूमि पर कूट पड़े और शीघ्र

रामचन्द्र के निकट जा पहुँचे और बोले—भग्न आपका आठर किये त्रिना प्राचीरों में आवृत अयोध्या की मेना को लेकर आप पर आक्रमण करने को आ गहा है।

यों कहकर लक्ष्मण ने (कटि में) कटार और (पैरों में) वीर-बलय धारण किये। अनेक वाणों से भरा तृणीर लिया। युद्ध-कबच पहना। हाथ में धनुप लिया। और प्रभु के चरणों को प्रणाम करके ये वचन कहे—

इह और पर-लोक दोनों के फलों को खो देनेवाले उम भरत के ऊँचे कधी के बल को, उमकी मेना के महत्त्व को एवं अपने इस अनुज (अर्थात् लक्ष्मण) के अनुपम पराक्रम को देखकर आप आनन्दित होंगे।

दड़ी पीड़ा ने मरनेवाले हाथियों के ढेरों को लुटकानेवाले गथों को बहानेवाले (हाथी, अश्व आदि की) आँतों को विश्वेरकर ले चलनेवाले तथा अरण्य में फैलनेवाले रक्त-प्रवाह को आप अभी देखेंगे।

मेरे वाण (शत्रुआं के) हर्यियार, हाय, कबच से आवृत बन्द तथा प्राण सवको छिन्न करके उनके शरीर के भीतर प्रविष्ट होंगे। (मेरे वाण) उनके रक्त से भी मिक्क न होकर वडे वेग से सब दिशाओं में जाकर, दिग्गजों को भी भयभीन करेंगे। हे वीर! आप देखेंगे।

अति वेग से फॉटनेवाले अश्वों के मर जाने पर, गथों की स्वर्णमय पीठों पर, टूट-कर गिरे हुए ढालों को अपने हाथ में लेकर भूतों को सगीत के साथ नृत्य करते हुए देखेंगे।

(लक्ष्मण ने राम से कहा—) अलकारी से युक्त हाथियों से पूर्ण भरत की झेना को मैं एक दृण में निर्मूल कर दूँगा, जिससे वीर-म्बर भी भार से अपनी पीठ भुकान लगेगा तथा समुद्र-त्पी वस्त्र में युक्त पृथ्वी भार-सुक्त होकर विश्राम करेगी। हे उदारगुण। यह आप देखेंगे।

उमड़कर चलनेवाले रक्त-प्रवाह में तेरने के कारण लाल हुए भूत और उनके साथ छोटी आँखेवाले पिशाच तथा शिर-रहित कबध, देवों के जैमे ही यह कहते हुए कि ‘सारी पृथ्वी आपके अधीन हां गई है’, नाचेंगे।

मुख-पट्टों से भूपित मत्तगजों, अश्वों, भागी मुजाहों से युक्त पैदल सेना के वीरों आदि के मरने पर उनके समुद्र-मद्दश रक्त से सत समुद्रों को उथलकर गगजते हुए आप सुनेंगे।

आप देखेंगे कि मेरे शरों से केमे पैंटल मेना छिन्न-मिन्न होती है। रथ विघ्वस्त होत है। वीरों के करवाल टूट जाते हैं। दृढ़ वनुप टूट जाते हैं। वडे गजों और अश्वों के पैर, शिर आदि टूट जाते हैं और उनपर आस्त वीरों के पैर और हाथ कट जाते हैं।

वडे पखवाले तथा स्वर्णिम काति कों विश्वेनेवाले मेरे वाणों को, उन दोनों—(अर्थात्, भरत और शत्रुघ्न) के बच्चों को छेदकर, उनका मास निकालकर, गगन-माग में उड़ते हुए और (मामभक्षी) पक्षियों को बुलाते हुए, आप देखेंगे।

हे चक्रधारी! एक छी के मोह से सासार-भर को दुख देनेवाले चक्रवर्ती (दशरथ) की आज्ञा से जिस भरत ने गज्य पाया है, उस अब मेरी आज्ञा से यह राज्य

त्यागकर, पुनरावृत्ति से रहित (अर्थात्, जहाँ से लौट आना असभव है), नरक-लोक प्राप्त करते हुए देखेंगे ।

यह देखकर कि आपको राज्य छोड़कर बन में निवास करने का दुःख प्राप्त हुआ है, जब आपकी जननी रो रही थी, तब उमे देखकर जो कैकेयी आनन्दित हुई थी, उसे अब (पुत्र के शोक में) पृथ्वी पर गिरकर रोते हुए देखेंगे ।

सान पर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये गये, अग्नि के समान भयकर और विजयमाला से भूषित वरछा धारण करनेवाले । मैं एक द्वाण में एक तीक्ष्ण तथा विध्वसक बाण से इस सेना-मसुद्र को त्रिपुर-दाह करनेवाले शिवजी के समान सुखा देंगा—इस प्रकार लद्धमण ने कहा ।

तब रामचन्द्र ने उससे कहा—हे लद्धमण ! यदि तुम चतुर्दश लोकों को हिला देना चाहो, तो तुम्हारे इस निश्चय को कोई रोक नहीं सकता । उसके बारे में कुछ कहने की क्या आवश्यकता है ? (पर मैं तुम मे) एक उचित वचन कहना चाहता हूँ । उसे सुनो ।

उज्ज्वल प्रस्तर-स्तम्भ के प्रतिरूप बने कधोवाले । हमारे कुल में जो निष्कलक गुणवाले राजा उत्पन्न हुए, उनकी गणना नहीं हो सकती । हमारे कुल में कौन ऐसा हुआ, जो अपने कुल-धर्म से हटा हो ?

ताल-वृक्ष जैसी सूँडोवाले हाथियों की सेना से युक्त भरत ने जो कार्य किया है, वह वेद-प्रतिपादित धर्म के अतर्भूत ही है । तुम जैसा कहते हो, वैसा नहीं है (अर्थात्, अधर्म-कार्य नहीं है) । इस सत्य को तुमने मेरे प्रति प्रेमाधिक्य के कारण सोचा नहीं ।

भरत, मुझ अपने ज्येष्ठ भ्राता पर प्रेम के कारण ही यहाँ आयगा और राज्य मुझे सौंप देगा—यो सोचने के बदले क्या यह सोचना बुद्धिमत्ता है कि वह (भरत) सेना के साथ आकर मुझसे युद्ध करेगा ?

हे विद्युत् के समान चमकते हुए वरछे को धारण करनेवाले । वीर-वलयधारी भरत यहाँ आकर विशाल सेना को, राज्य-सपत्नि के साथ, मुझे सौंपेगा—इसके विपरीत यह कहना भी अनुचित है कि वह मेरे साथ युद्ध करेगा ।

हे आभरण-योग्य कधोवाले । उत्तम वर्म के देवता के समान एव सञ्चारित्र्य की धूरी वने हुए उम (भरत) के सवध में इस प्रकार सोचना क्या उचित है ? उसका यहाँ आना, मुझे देखने के लिए ही है । इसे तुम अभी समझोगे ।

प्रभु ने अनुज (लद्धमण) से यो कहा—उस समय, भरत अपनी सेना को पीछे छोड़कर, अपने से कभी पृथक् न होनेवाले प्रेमयुक्त भाई शत्रुघ्न को साथ लेकर, आगे बढ़कर (राम के निकट) आया ।

नमस्कार की मुद्दा में हाथों को उठाये हुए, शिथिल देहवाले, अश्रुपूर्ण नेत्रोवाले तथा माकार दुख बने हुए चित्र-जैसे आनेवाले भरत को सर्वज्ञ प्रभु ने पूर्ण रूप से देखा—(अर्थात्, शिर में पैर तक दृष्टि फेरकर देखा) ।

फिर, काले मेघ-जैसे आकाशवाले प्रभु ने लद्धमण से कहा—शब्दायमान दृढ़ वनुष से युक्त है अनुज । हे तात । देखो, रथ आदि की सेना को लेकर यह भरत बड़े क्रोध के साथ युद्ध करने के लिए कैसा युद्धोच्चित वेष धारण कर यहाँ आ रहा है !

यह सुनकर लक्ष्मण-तपोवप में, निर्वल हुई भुजाओं में युक्त भगत के मवव में अपने कहं हुए कठोर वचन भूल गये । उनका क्रोध तथा ज्ञान भी शिथिल हो गये और काति-हीन बदन के माथ यो खडे रहे कि उनका धनुष तथा अशु दोनों धरती पर गिर पड़ ।

उम समय, भगत अपने दोनों हाथों को जाड़कर इस प्रकार गम के सम्मुख आये, मानों रामचन्द्र को, अपने पति के स्प में पाने के लिए तपस्या करके उन्हें प्राप्त करने के समय अकस्मात् उनसे वियुक्त हुई गज्यलक्ष्मी का (गम के पास) भेजा हुआ कोई दृत हो ।

भगत आये और जैसे अपने पिता के ही दर्शन कर रहे हो—यह वचन कहते हुए गम के चरणों पर गिर पड़े कि आपने वर्म का विचार नहीं किया । करुणा को त्याग दिया और परपरागत नीति को छोड़ दिया ।

उसमें प्राण है या नहीं, ऐसा मद्दह उत्पन्न करनेवाले, अत्यन्त कृशगात्र हुए, भरत को प्रभु ने देखा । देखते ही उनके नयन-स्पी कमलों में (अशु) जल प्रवाहित होकर (भगत के) जटा-मडल पर गिरकर उसे भरकर फिर उमड़कर वह चला ।

दयामय परमात्मा ने धर्म-देवता का आलिंगन किया हो, इस प्रकार (का भ्रम उत्पन्न करते हुए) समस्त नीति के एकमात्र आश्रयभूत रामचन्द्र ने निश्वास भरते हुए तथा वक्ष पर आँसुओं को वहांत हुए द्रवितचित्त होकर भरत का आलिंगन किया ।

भरत को गले लगाकर रामचन्द्र ने उनके वेप को वार-वार व्यान से देखा और विविध भाँति के विचार किये । फिर पूछा—हे तात ! तुम हुःख-मसुद्र में डूबे हो । समार का जामन करनेवाले, मल्लयुद्ध में चतुर भुजाओवाले, हमारे पिता सुखी हैं न ?

ज्ञानी (प्रभु) का वचन सुनकर भरत ने कहा—हे प्रभु ! आपके विरह-स्पी व्याधि में एवं मेरी जननी के बर-रूपी यम से पीड़ित होकर हमारे पिता इस समार में मत्य को स्थिर करके परलोक में जा पहुँचे हैं ।

‘(पिता) स्वर्गलोक को गये —यह तीक्ष्ण वचन वाव में वग्छे के समान उनके कानों में तुमने के पूर्व ही परमपट के निवासी प्रभु (विष्णु के अवतार गम) के नयन और मन चरखी के जैसे धूम उठे और वे मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ ।

प्रभु विशाल धरती पर गिरे । उनके प्राण अप्रकट हो रहे । विजली से पीड़ित मर्म के समान वे मूर्च्छित हो रहे । फिर, वडी कठिनाई में उनके प्राण लौटे । तब वे नि श्वास भगत हुए वडी व्याकुलता के माथ विविध वचन कहकर विलाप करने लगे ।

अमर टीप-मदश है शासक । समार के निवासियों के लिए पितृ-तुल्य । अनुपम वर्म के लिए माता वननेवाले । दया-निलय । मेरे पिता । शत्रुरूपी हाथियों के लिए मिह वननेवाले । तुम मृत हो गये । अब मत्य का यथार्थ आश्रय और कौन वनेगा ?

हे शत्रुओं के लिए भयकर, विघ्नसक तथा विजयमाला से भूषित तीक्ष्णमाला धारण करनेवाले । प्रमिद्ध तपस्वी ऋष्यशृग की कृपा में उत्तम यज्ञ सपन्न करके तुमने सुर्क्ष पुत्र के न्य में पाया । क्या उसका फल तुम्हारा इस प्रकार से प्राण त्याग करके जाना ही है ?

स्वर्णरंग की धूलि विखेरनेवाले पुष्पो से भूपित, तीक्ष्ण सूर्य-किरण की-भी उज्ज्वल कांति विखेरनेवाली धबल माला धारण करनेवाले । प्रजा का हित करनेवाले शासन का भार मेरे द्वारा लिये जाने पर विश्राम पाने का तुम्हारा ढग क्या यही है ? मैं तुम्हारे प्राणों के लिए यम बनकर उत्पन्न हुआ । क्या मैं सचमुच समार का राज्य करने की योग्यता रखता हूँ ?

शबरासुर को मिटाकर देवेन्द्र को स्वर्ग का शाश्वत राज्य प्रदान करनेवाले हैं चक्रधारी । राज्य का भार सुझे सौपकर पचेन्द्रियों पर दमन करके तुम्हारी तपस्या करने की क्या यही रीति है ?

सबके स्यृष्टीय राज्य को स्वीकार करके ससार के लिए दुःख उत्पन्न करनेवाला जुद्र हूँ मैं । अब यदि मैं अपने प्राण छोड़ने के बदले इस शरीर को रखकर राज्य करने लगूँ, तो वह किसकी तृती के लिए होगा ?

पुष्ट देहवाले शत्रुओं के प्राण हरण करनेवाला भाला रखनेवाले, है पिता । मधुस्थाकी पुष्पोदानों से पूर्ण कोशल देश को छोड़कर मैं बन मे आया हूँ—यह बात सुनने मात्र से उसे न सहकर तुम स्वर्ग को चले गये । किन्तु, मैं अभी तक यह (समार का) जीवन चाहता हुआ जीवित हूँ ।

गरिमामय चन्द्र को भी शीतलता प्रदान करनेवाले अनुपम छत्र से युक्त हैं चक्रवर्ती । तुम दातृत्व, गौरव, स्वर्गवासियों के लिए भी अविनाशी पराक्रम, न्याय से विचलित न होनेवाली शासन-रीति, अपरिवर्तनीय सत्य तथा अन्य समस्त सद्गुणों को अपने साथ ही ले गये (अर्थात्, अब इस ससार में वे गुण नहीं रहे) ।

इस प्रकार, विविध वचन कहकर विलाप करनेवाले, पुष्ट पर्वताकार दृढ़ कधोंवाले, सिंहतुल्य राम को विशाल भुजाओंवाले भाइयों तथा बहाँ आये हुए नरेशों ने जाकर सँभाला । तब महान् तपस्त्री वसिष्ठ उन्हे सात्वना देनेवाले वचन कहने लगे ।

उस समय, वर्णनातीत तपःप्रभाव से युक्त भरद्वाज आदि जटाधारी सुनि, भूत द्वीपों के राजा तथा सभी मन्त्री आ पहुँचे । सेनापति भी आ गये ।

आने योग्य सब लोगों के आ जाने पर शोक में निमग्न विजयशील पुरुषोत्तम (राम) को देखकर कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) ने कहा—

ससार के प्राणियों के लिए, सन्यास अथवा (गृहस्थ-जीवन में रहकर) उत्तम धर्म-मार्ग पर चलना—इनके अतिरिक्त अन्य कोई साथी नहीं है । इन प्राणियों के लिए जन्म लेना और मरना स्वाभाविक है । वेदों के पारगत तुमने क्या इस बात को भुला दिया ?

‘प्राणियों के अनित्य जन्म असर्व कोटि होते हैं, जो सुख और दुःख से भरे रहते हैं’—शास्त्रों में अनेक स्थानों में प्रतिपादित इस सत्य को जानने के पश्चात् भी क्या यह सोचना उचित है कि यम पक्षपात से काम करता है ?

हम देखते हैं कि कुछ प्राणी जन्म लेने के पूर्व ही मर जाते हैं । चक्रवर्ती उत्तम ज्ञान के साथ, साठ सहस्र वर्ष-पर्यंत सारी पृथ्वी का शासन करके स्वर्गवास करने गये हैं । इसके लिए रोना क्या ?

तपस्या, धर्म और सुष्ठि एवं त्रिशूल, चक्र और सरस्वती, कमशः इनको धारण करनेवाले त्रिदेव (शिव, विष्णु और ब्रह्मा) भी काल के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं ।

नेत्र आदि इद्रियों के कारणभूत, अपार विशालता से युक्त एवं सुष्ठि के सब पदार्थों के उत्पत्ति-स्थान बने हुए पृथ्वी, जल आदि पच्चभूत भी नश्वर हैं, तो अब एक प्राणी के लिए हुम क्यों शोक करते हो ?

हे उत्तम ! पुण्य-रूपी सुगधपूर्ण तैल में अनुपम काल-रूपी वत्ती, विधि-रूपी ज्योति से दीप होकर जलती रहती है । जब तैल और वत्ती समाप्त होती है, तब दीप ब्रह्म जाता है, इसमें कुछ सदेह नहीं ।

ये विविध जन्म, इस लोक में दुःख भोगकर, परलोक में यातनाएँ भोगकर, फिर जन्मातर में भी भास्य का फल भोगने के स्थान हैं । इनकी गणना कैसे सम्भव है ?

सबके आदर्योग्य सदगुणों में पूर्ण । तुम्हारे पिता बनने के कारण दशरथ कमलभव ब्रह्मा के लिए भी दुर्गम विष्णुलोक में जा पहुँचे । इसके अतिरिक्त तुम अपने पिता का और क्या उपकार कर सकते हो ?

हे तात ! तुम किंचित् भी दुःखी मत होओ । उन दशरथ के लिए इससे बढ़कर उद्धार का मार्ग अन्य कोई नहीं है । अब तुम शास्त्रोक्त प्रकार से उत्तरकृत्य करो तथा अपने अस्त्र करो से तिलाजलि आदि दो ।

मेघ से गिरे हुए जल में जैसे बुद्धबुद्ध हों, वैसे ही इस नश्वर शरीर के बारे में सोचकर दुःख करना अज्ञान है । आँखों से आँसू वहाने से हम कुछ नहीं पाते हैं । अतः, अब तुम जाओ और कमल-समान अपने करो से पापहारी तथा पवित्रता उत्पन्न करनेवाला जल-तर्पण करो—यों वसिष्ठ ने कहा ।

वसिष्ठ के यह कहने पर रामचन्द्र उठे तथा स्वर्ण के रगवाली जटा से युक्त और चार वेदों के जाता वसिष्ठ के साथ धनी लहरों से भरी गगा पर जा पहुँचे । वसिष्ठ के कथनानुसार राम ने (अपना दुःख शान्त करके) कर्तव्य का विचार किया ।

मव जीवात्माओं में एक ही समान अतरात्मा के रूप में रहकर उनको ज्ञान देनेवाले विष्णु (के अवतार राम) ने, जल में उत्तरकर स्नान किया, वेदज वसिष्ठ के बताये दग से अपने कर से तीन बार जल लेकर छोड़ा ।

जल-तर्पण करने के पश्चात् अन्य सब कृत्य पूर्ण करके राम, वडे मत्रियों, राजाओं, महान् तपस्त्रियों तथा अन्य लोगों के साथ उस पर्णशाला में जा पहुँचे, जहाँ सीता देवी थी ।

जब सब लोग पर्णशाला में पहुँचे, तब उत्तम भरत ने अकेली वैठी सीता देवी को देखा और उस पर्णकुटी को भी देखा । दुःख के आवेग से, अपनी कमल-जैसी आँखों को हाथों से आहत करते हुए वे सीता देवी के चरणों पर गिरकर रोने लगे ।

महत्ता से युक्त भरत की लाल आँखें शोक के उद्वेग के कारण अत्यधिक अश्रुओं को निरतर बहाती रही, जिससे ऐसा लगा, मानों इन्द्रियों में भी वीचियों से पूर्ण ममुद्र रहता हो ।

इस प्रकार बडे शोक से आहत वीर भरत को राम ने अपने दीर्घ करों से सँभाला

और मनोहर केशोवाली सीता को देखकर कहा—हमारे पिता (दशरथ) मेरे चिरकाल के वियोग के कारण उत्पन्न शोक से मर गये ।

यह सुनने ही सीता चौककर कॉपने लगी । उनकी दोनों विशाल आँखे समुद्र के समान जल वहाने लगी । भूमि नामक अपनी धाई के ऊपर हाथ रखे, सगीत-मधुर अपने कठ-स्वर से अनेक वचन कहती हुई विलाप करने लगी ।

पर्वत के समान पुष्ट भुजाओंवाले राम के पीछे-पीछे चलनेवाली सीता को अरण्य भी नगर के समान ही लगता था । अब यह सुनने से कि चक्रवर्ती मर गये, हमिनी-जैसी वह सीता भी शोक-समुद्र में निमग्न हो गई ।

उस समय दोष-रहित मुनियों की पत्नियों ने माताओं के समान होकर (प्रेम से) सीता को अपने हाथों से उठाकर सँभाला । गगा के पवित्र जल में स्नान कराया और उनके शोक को कम करके प्रभु (राम) के पास पहुँचाया ।

तब सुमत्र पुष्टमालाधारी चार उत्तम गुणवाले कुमारों को जन्म देनेवाली तीनों माताओं तथा जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के तत्त्व को जाननेवाले गुरुजनों को साथ लिये, सदा धर्म का ही विचार करते रहनेवाले प्रभु (राम) के निकट हाथ जोड़े हुए आया ।

सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के भी आदिकारणभूत राम, यह कहते हुए कि ‘मेरे पिता कहाँ हैं, वताइए’—वहाँ आई हुई उन माताओं के उज्ज्वल चरणों पर अपने अस्त्रण नयनों से अश्रु बहाने लगे ।

तब वे माताएँ राम को गले लगा-लगाकर रोने लगी । वहाँ एकत्र सेना के बीर एवं अप्सरा-समान स्त्रियाँ भी आग में पड़े मोम के जैसे पिघल उठी ।

फिर, राम आदि उन बीरों को जन्म देनेवाली वे माताएँ जनक की पुत्री का गाढ आलिंगन करके शोक-समुद्र में निमग्न हो गईं ।

सेना के बीर, नगर के लोग, प्रेम से पीडित पुरुष, अन्य (स्त्री) जन, राजा लोग—सब दुःख से व्याकुल चित्त के साथ प्रभु (राम) के निकट आ पहुँचे ।

शेष-शश्या पर शयन करनेवाले विष्णु ने जिस वश को अपने अवतार का स्थान बनाया, उसके कुलपुरुष होने के कारण सर्व भी, मानों अब (दशरथ की मृत्यु पर) स्वयं जल में स्नान करके तिलाजलि आदि देने का कर्तव्य पूर्ण करने जा रहा हो—यो सर्व पश्चिमी समुद्र में निमग्न हुआ ।

वह दिन बीत गया । दूसरे दिन जब राजा लोग, घनी जटा धारण किये मुनि लोग, वधुजन, अनुज-वर्ग (भरत आदि) सब एकत्र हुए, तब राम ने कहा—

हे भरत ! सबके अभीष्ट पूर्ण करनेवाले चक्रवर्ती मर गये । उनकी आज्ञा से सारी पृथ्वी तुम्हारी हुई है । तो तुमने किस कारण से मुकुट धारण किये विना मुनि का वेप स्वीकार किया है ? कहो ।

राम के यह कहने पर भरत, विकल मन के साथ उठे और हाथ जोड़कर खड़े हो गये । अनेक ज्ञान तक प्रभु को देखकर फिर बोले—आपके अतिरिक्त धर्म-मार्ग पर स्थिर रहनेवाले और कौन हो सकते हैं ? ऐसे आप भी क्या धर्म से हट जाना चाहते हैं ?

अनिष्ट उत्पन्न करनेवाले वरों को माँगकर जिस (कैकेयी) ने आपको, आपके लिए योग्य न होनेवाले इस अरण्य-वास में भेज दिया और चक्रवर्ती के लिए मृत्यु उत्पन्न की, उसी का तो पुत्र हूँ मैं । अतः, विचार करने पर, क्या यह तपस्वी-वेष सुर्ख-जैमे (पापी) के लिए उचित लगता है ?

ससार को दुःख देनेवाली पापिन का पुत्र होकर मैं उत्पन्न हुआ हूँ । मैंने अपने प्राण-त्याग देने का साहस नहीं किया । तपस्या करने योग्य भी नहीं रहा । अब इस अपयश से किस प्रकार से मैं सुक्त हो सकूँगा ?

पातित्रत्य से स्वलित स्त्रियों का शील, द्वामा-गुण से फिसले हुए तपस्वी का तप, करुणा से हीन हुआ धर्म—ये सब परपरागत नीति से फिसले राजा के शासन से भी क्या गये-वीते हो सकते हैं ? नहीं (अर्थात्, इन सबसे अधिक कठोर है नीति-रहित राजा का शासन) ।

(चक्रवर्ती का ज्येष्ठ पुत्र होकर) ससार में उत्पन्न होकर भी आपने न त्यागने योग्य राजपद का त्यागकर बड़ा व्रत अपनाया है । तो क्या मैं भूल से भी, नीति से चृत होकर, धर्म को करवाल से काटकर खाने के समान, वह राज्य स्वीकार करूँगा ?

(आपके प्रति) अपार प्रेम के कारण पिता मृत हुए । आप अति भयकर धूम से पूर्ण वन में प्रविष्ट हुए । तो क्या मैं ऐसा शत्रु हूँ, जो पड़्यत्र करता हुआ, राज्य-हरण करने के लिए घात लगाये वैठा रहूँगा ?

हे हमारे प्रभु ! आपके पिता ने जो हानि की है तथा ससार को अति कठोर दुःख देनेवाली माता ने जो हानि की है—इन दोनों हानियों को दूर करते हुए आप अयोध्या वापस चलकर राज्य करें—यो भरत ने अपने मन के विचार प्रकट किये ।

भरत के बच्चों से उनके मन का निर्णय सुनकर रामचन्द्र ने सोचा—अहो ! इसका विचार कैसा है ! फिर बोले—हे विजयी वीर ! मेरा कथन सुनो और भली भाँति विचार करके ये बच्चन कहे—

हे तात ! सदाचार, सत्य, सबके लिए अनुसरणीय न्याय, उत्तम धर्म इत्यादि वेदों तथा शास्त्रों के अनुकूल चलनेवाले राजा के सुशासन से ही तो उत्पन्न होते हैं ।

हे दृढ़ धनुर्धारी ! प्रशासा के भाजन शास्त्रों का अध्ययन, दोषहीन ज्ञान, सच्चारित्र्य, उत्तम आचरण, ये सब वदनीय गुरुजन ही हैं (अर्थात्, गुरुओं के कारण ही ये सब दृढ़ रहते हैं) ।

हे प्यारे ! ये उत्तम गुरु कौन हैं ? यदि परिशुद्ध मन से विचार करके देखा जाय, तो (बिदित होगा कि) माता और पिता के अतिरिक्त अन्य (गुरु) कोई नहीं हैं ।

शास्त्रों के ज्ञान से युक्त है भाई ! माता ने वर माँगा । पिता ने भी आज्ञा दी । अपने उत्तम कुल की नीति के उपयुक्त कार्य ही मैंने किया । अब तुम्हारी प्रार्थना से इस कार्य को छोड़ना क्या उचित होगा ?

हे तात ! पुत्रों का कर्तव्य अपने कार्य से माता-पिता की कोर्त्ति को बद्धाना होता है, या कभी न मिटनेवाला अपयश उत्पन्न करना होता है ?

क्या मेरे लिए यह उचित है कि पिता के वचन को भुलाकर वैभव तथा ऐश्वर्य-पूर्ण राजभोग का अनुभव करता हुआ शासन करूँ और उससे इस लोक में पिता को असत्य-वादी तथा परलोक में कठोर नरक-भोगी बना दूँ ?

‘पिता के दिये वर के अनुसार पृथ्वी का राज्य तुम्हारा है । तुम (उस राज्य का निर्वाह करने योग्य) शक्ति तथा सामर्थ्य से युक्त भी हो । अतः, राज्य तुम्हारा ही स्वत्व है, तुम राज्य करो’—राम ने जब यों कहा, तब भरत ने कहा—

यह पृथ्वी, जिसपर त्रिभुवन में भी अपनी समता न रखनेवाले आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर अवतीर्ण हैं, यदि मेरी है, तो अब इसे मैंने आपको दिया । हे राजन् । आप लौटकर मुकुट धारण करें ।

जब सारा सासार व्याकुल हो रहा है, तब स्तम्भ-तुल्य भुजाओं से दुक्त आपको क्या यह उचित है कि आप अपने मन के अनुसार कार्य करें ? अतः, सासार की व्याकुलता को शात करते हुए लौट चलिए और (सासार की) रक्षा कीजिए, यो कहकर भरत ने रामचन्द्र के मनोहर चरणों को पकड़ लिया ।

तब राम ने भरत से कहा—मुझपर प्रेम होने के कारण यदि तुम सासार को मुझे मौप दोगे, तो क्या वह न्याय-सगत होगा ? अपयश से डरकर पिता ने जो वर दिया, उसको मानकर जिस बनवास के लिए मैं आया हूँ, क्या (अब राज्य स्वीकार करने से) उस (बनवास) की अवधि पूरी हो जायगी ?

सासार में क्या सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई पवित्र गुण है ? उस सत्य से दुर्गुण भी मिट जाते हैं, किन्तु सत्य से कुछ हानि नहीं होती है । तुम ठीक विचार कर देखो ।

पिता की आज्ञा के अनुसार मैं चौदह वर्ष बन में निवास करूँगा । तुम मेरी आज्ञा से इन चौदह वर्षों तक, सत्य से विचलित न होते हुए, पिता से दिये गये राज्य का पालन करो ।

चक्रवर्ती के जीवित रहते हुए भी यदि रत्नमय मुकुट को धारण करने के लिए मैं सहमत हुआ, तो वह पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए ही था । (राज्य करने की इच्छा मुझे नहीं थी ।) मेरा उस प्रकार सहमत होने की वात जानकर भी तुम क्यों मेरी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते हो ? हे भ्राता ! दुख को दूर करो । मेरे कथनानुसार कार्य करो । यो राम ने भरत से कहा ।

जब शोभा से पूर्ण रामचन्द्र ने ये वचन कहे, तब कुछ उत्तर देने के लिए उद्यत, समुद्र के समान गमीर भरत को रोककर वसिष्ठ (राम से) बोले—हे उदारगुण ! तुम्हारे वश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं के आचरण के सवध में तुम्हें सुनाता हूँ । उन्हे ध्यान से सुनो—

विष्णु ने पूर्वकाल में अनुपम वराह-रूप धारण करके, उमड़त हुए समुद्र से अपने एकदत्त के मध्य रखकर भूमि को यो उठाया कि वह वढ़ती हुई चद्रकला के मध्य कलक-जैसा दृश्य उपस्थित करने लगा ।

पूर्व कल्प के अत में, जब पञ्चमहाभूत अपने-अपने तत्त्वों में लीन हो गये, तब विष्णु, विस्तीर्ण जल को उत्पन्न करके उसपर ज्योति-रूप में निर्दित होने लगे ।

इस प्रकार (क्षीरसागर में) शयन करते रहनेवाले, देवों को अमृत प्रदान करने-वाले समुद्र-जैसे नीलबर्ण विष्णु भगवान् की नाभि से एक शतवल (कमल) उत्पन्न हुआ, जिसमें से मारी सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्टि समार की रक्षा के लिए तुम्हारे कुल का आदि पुरुष सूर्य उत्पन्न हुआ। उस सूर्य-कुल में व्यवतक कोई ऐसा राजा नहीं हुआ, जो न्याय से हटा हो। एक वात और मुनो।

हे मत्तगज-मद्दश। हित करनेवाले पाँच प्रकार के गुदओं में (अर्थात् माता, पिता, अध्यापक, राजा और ज्येष्ठ भ्राता इनमें) वही उत्तम गुरु होता है; जो इह और परलोक दोनों में सुख उत्पन्न करनेवाली शिक्षा प्रदान करता है (अर्थात्, आचार्य ही सर्वोत्तम गुरु हैं)।

(जालों में) इसी प्रकार कहा गया है। मैंने तुम्हे विविध विद्याएँ सिखाई हैं। अत., है तात। इस समय मेरी आज्ञा का उल्लंघन मत करो। लौटकर राज्य का सुशासन करो—यों (वसिष्ठ ने) कहा।

यों कहनेवाले वनिष्ठ को अशनेत्र राम ने सुकृतित कमलों को शोभाहीन कर देनेवाली अपनी अजलि से नमस्कार किया और कहा—हे मन पर दमन रखनेवाले। हे ज्ञानी। आपसे एक निवेदन है—

मधु वहानेवाले कमल पर आमीन ब्रह्मा के पुत्र। चाहे कोई बड़े हो, गुरु हों। माता आदि हों, सत्य-परायण पुत्र हों, चाहे कोई भी हो, किसी के लिए भी मैं यह कार्य करूँगा—यों प्रतिज्ञा कर लेने पर उस प्रतिज्ञा को तोड़ना उचित नहीं है।

माता की आज्ञा को तथा पिता के द्वारा अनुमत कार्य को जो पुत्र पूर्ण नहीं करता है, उसके पश्चात् अब आप दूसरी आज्ञा दे रहे हैं। हे महात्मन्। अब मेरा कर्तव्य क्या है? आप ही वतायें—यों राम ने वसिष्ठ से पूछा।

तब वसिष्ठ राम की प्रतिज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं कह सकने के कारण मौन हो रहे। उस समय भरत ने कहा—यदि ऐसी वात है, तो जो चाहे राज्य करे। मैं तो अपने ज्येष्ठ भाई के साथ ही इस भयकर वन में रहूँगा।

उस समय देवता लोग आकाश-पथ में एकत्र होकर यह सौचने लगे कि यदि अब भरत रामचन्द्र को वयोध्या लौटा ले जायगा, तो हमारा कार्य पूर्ण नहीं होगा और फिर बोल उठे—

प्रशस्ता के योग्य उत्तम गुणों से युक्त राम, पिता का वचन सुरक्षित करते हुए इस वन में रहे और भरत का कर्तव्य है कि वे चौदह वर्ष-पर्यंत, राज्य की रक्षा करें।

देवताओं के यों कहने पर राम ने भरत से कहा—यह वचन उपेक्षा करने योग्य नहीं है। मेरा भी तुम से यही आग्रह है। अब मेरी आज्ञा से तुम सुचारू रूप से पृथ्वी का

राज्य करो—यो कहकर राम ने भरत के विशाल कमल जैसे करो को अपने हाथों में ले लिया ।

तब भरत ने कहा—यदि ऐसा हो, तो हे प्रभु ! चौदह वर्ष व्यतीत होते ही यदि आप भयकर परिखा से घिरे अयोध्या-नगर में आकर पृथ्वी का शासन नहीं सँभालेगे, तो मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रविष्ट होकर अपने प्राण त्याग दूँगा ।

इस प्रकार कहकर भरत चिंता से विमुक्त हुए । अपने यश से भी महान् स्वभाव-वाले राम ने उन (भरत) की मानसिक दृढ़ता को देखकर प्रेम से द्रवित होते हुए चित्त के साथ कहा—‘वैसा ही करूँगा ।’

भरत अब और कुछ न कह सके । रामचन्द्र से वियुक्त होकर जाना उनके लिए कठिन था । उन्होंने व्याकुल होकर राम से प्रार्थना की कि आप कृपा करके अपनी पादुकाएँ सुरक्षा दें । प्रभु ने भी समस्त सुखों को प्रदान करनेवाली अपनी पादुकाएँ भरत को दी ।

अश्रु बहानेवाले नेत्रों तथा धरती की धूलि से धूसर शरीर से युक्त भरत ने (प्रभु की) दोनों पादुकाओं को किरीट मानकर अपने शिर पर रख लिया । फिर, धरती पर गिरकर रामचन्द्र के प्रति साष्टाग प्रणाम करके लौट चले ।

माताएँ, असख्य वधुजन, बड़े लोग, मुनिगण, विशाल सेना तथा अन्य सब लोग भरत के साथ चले और यज्ञोपवीत से शोभायमान कर्धेवाले वसिष्ठ महर्षि भी चले ।

प्राचीन शास्त्रों के जाता भरद्वाज महर्षि लौट चले । परिखा से आवृत अयोध्या के निवासी लौट चले । आकाश-पथ में एकत्र हुए सभी देवता लौट गये । मेघ-सदृश राम की आज्ञा लेकर गुह भी लौट चला ।

भरत (प्रभु की) पादुकाओं को शिर पर रखे, शीतल जल से युक्त गगा को पार करके, पुष्पों की सुरभि से भरी अयोध्या में न जाकर रात्रिकाल में भी निद्रा से विहीन हो—

नदिग्राम नामक स्थान में ऐसे रहने लगे, मानों प्रभु की पादुकाएँ ही शासन करती रही हो । भरत, रात-दिन अश्रु-विहीन न क्षेनेवाली आँखों के साथ, मन से पचेन्द्रियों का दमन करके वहाँ रहने लगे ।

उधर रामचन्द्र, यह विचार कर कि अयोध्या के निवासी, उनके चित्रकूट पर्वत पर रहने से प्रेम के कारण, बार-बार वहाँ आयेगे, इसलिए अपने साथी अनुज लक्ष्मण तथा अपनी देवी के साथ (चित्रकूट को छोड़कर) दक्षिण दिशा में चल पड़े । (१-१४१)

I

-

N

कंब रामायण

अरण्यकाण्ड

मंगलाचरण

आदि व्रह्म भेद-रहित है तथा उत्पत्ति तथा विकारो से युक्त नाना प्रकार के रूपों (वस्तुओं) में अनन्य होकर मिला रहता है । वह, उन वेदों के लिए, जो पुनः-पुनः उनका अध्ययन करते रहने से ज्ञान के यथार्थ स्वरूप को स्पष्ट करते हैं, एवं उन वेदों के ज्ञाता ब्राह्मणों और ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी अजेय है, वही परब्रह्म (अव रामचन्द्र के रूप में) हमारे ज्ञान का विषय हो गया है ।



अध्याय ३

विराध-वध पटल

मनोहर वक्त धनुष को धारण करनेवाले वे राजकुमार (राम-लक्ष्मण), उन सीता देवी के साथ, जिनके दत ऐसे थे, मानों चुनी हुई मुक्ताएँ पक्षियों में जड़कर रखी गई हो, अपूर्व तपस्या से सपन्न अत्रि महामुनि के, पत्र-फल से परिपूर्ण घने वृक्षोंवाले वन में जा पहुँचे ।

दिशाओं में महान् भार का वहन किये हुए रहनेवाले, पीन और मनोहर सूँड़ो-वाले तथा छोटी आँखोंवाले पर्वत-सद्वश गजों की समता करनेवाले वे (राम-लक्ष्मण), उस वन में प्रविष्ट हुए और काम आदि तीन दुर्गुणों को ढूँढ़ करके तपस्या करनेवाले अतिपवित्र अत्रि मुनि को प्रणाम किया ।

वे मुनिवर ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने बधु ही आ गये हो और बोले—हे राज-कुमारो ! तुम स्वयं यहाँ आकर हमें दर्शन दे रहे हो, ऐसे सौभाग्य सदा सुलभ नहीं होता । यह तो ऐसा है, मानो सब देवता तथा सभी लोक ही यहाँ आ गये हों । न जाने हम में से किसकी तपस्या का यह फल है ।

वे (राम-लक्ष्मण) उम दिन वही उम मुनि के साथ आश्रम में रहे। फिर, उन जानकी को, जिन्होंने उन मुनिवर की पतिव्रता तथा अत्युत्तम पली अनसूया की आज्ञा में सुन्दर आभूषणों, बच्चों एवं चन्दन का धारण किया था, माथ लेकर चले और महान् दड़कारण्य में प्रविष्ट हुए।

तब उनके ममुख एक राज्ञ आया, जो सोलह मत्तगजों, उनसे दुगुने सिंहों, गोलाकार एवं कठोर नयनोंवाले पर्वतवामी सोलह शरभां को, अति तीक्ष्ण धोर त्रिशूल में बने रूप में पिगेकर एक हाथ में लिये हुए था।

उसके सिर पर रक्त वर्णवाले धूँधुराले बने बाल थे, मानों विप ही धांर रूप धारण करके बन-मार्ग से आ रहे हों। वह इन प्रकार शीघ्रगति से आया कि धने वादलों ने घिरे पर्वत भी उसके पैरों के नीचे टक्कर तूल के समान हो गये।

ताजे धाव के समान (लाल) दिखाई पड़नेवाली उसकी आँखों से अग्निकण निकल रहे थे। उनसे मेंधों से घिरा आकाश भी कौप उठता था, पर्वत हिल जात थे, उष्णकिरण (सूर्य) मट पड़ जाता था। विशाल समुद्र से घिरी धरती ऊपर नीचे हो उठती थी। अति बलवान् यम भी मन में (डर से) शिथिल हो उठता था।

उज्ज्वल मिह, उसके कानों में (उन्हें पर्वत की कटरा समझकर) प्रवेश करके गरज रहे थे। चारों ओर काति विखेरनेवाले मेह-शिखर उसके कुडल बने हुए थे। उसके माथ युद्ध में मरे हुए वीरों के रक्त-रूपी रक्तचन्दन से लिप लोकर वह रक्त-आकाश की समता करता था।

उसने आयुधधारी वीरों, शीघ्रगामी अश्वों, अति विशाल गजों, रथों, गतिशील सिंहों, प्राणहारी व्याधों तथा मार्ग में प्राप्त अनेक वस्तुओं को उठाकर, अजगर माँपों में उन्हें गूँथकर अनेक प्रकार की मालाएँ बना ली थीं और वे (मालाएँ) उनकी मुजाओं में लटक रही थीं।

उसकी उँगलियों के मध्य पक्कियों में रखे हुए पर्वतों के समान क्रोध से गर्जन करनेवाले गज दबे पडे थे, जिन्हें वह अपने विशाल कर से उठा-उठाकर अति विशाल विल-मद्दश अपने सुँह में भर लेता था और (सुँह के) एक ओर से उन्हें चवा रहा था, तो भी उसकी भूख बढ़ती ही रहती थी।

उत्तम सपों के फनों से रलों को निकालकर जिस प्रकार माला बनाते हैं, उसी प्रकार अजगरों की देह में, देवताओं के विमानों, उज्ज्वल नवग्रहों एवं नक्षत्रों को बीच-बीच में लड़कर उभने विजय-मालाएँ बनाई थीं और उन्हें अपने वक्ष पर धारण कर लिया था।

उसके पाश्वों में रक्ताकाश की समता करनेवाले केश शोभ रहे थे। उसके कुभ-मद्दश माये पर इन्द्र का ऐरावत बँधा हुआ था, जिसका मुखपट्ट तथा दर्तों के बल्य चमक रहे थे।

(उसमें) अत्यन्त धनी कालिमा सयुक्त थी। तीक्ष्ण अत्याचार उमड़ रहा था। अति निष्टुर पाप, विप, अग्नि—ये सब भयकर रूप से बढ़ रहे थे। अतः, वह ऐसा लगना था, मानों अधकार से लिप कलिकाल ही माकार होकर आ रहा हो।

मारे हुए कठोर व्याघ्रों के चर्म को ऐंठकर उसे (उत्तरीय के रूप में) पहन लिया था । हाथियों के चमों को कटि में बाँध लिया था । विजयी दिग्गजों के रत्न-समुदाय को अजगर-रूपी रस्सी में पिरोकर कटि-बध के जैसे बाँध लिया था ।

रक्त नयनों एवं दीर्घ देहवाले अनुपम सपों की मणियों को जड़कर अनेक बलय उसने अपने शरीर में पहन लिये थे । उसके करों में 'चलचल' नामक शब्दायमान शख्तों के बलय चमक रहे थे ।

उसके पैर ऐसे थे कि वह उन पैरों से कैलास और मेर पर्वत को गेंद के समान उछालकर उन्हे परस्पर टकरा सकता था । ऐसे पैरों से गमीर गति में वह चल रहा था । यद्यपि वह भूलोक में सचरण कर रहा था, तथापि देवलोक के निवासियों के मन में भी उसके बल का प्रभाव पड़ता था ।

उसका आकार ऐसा था, मानों सब प्राणी एक रूप बनकर और नवीन आकृति धारण करके आ गये हों । उसकी कठध्वनि वज्रघोष के समान थी । (उसकी तपस्या से) प्रसन्न हुए ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह सबा लाख हाथियों के बल से युक्त था ।

महावज्र-सदृश कार्य करनेवाला विराध नामक वह राक्षस जब आ रहा था, तब (उसकी गति के वेग से) उसके दोनों पाश्वों में वृक्ष उखड़-उखड़कर धराशायी हो रहे थे । वडे पर्वत ढह जाते थे । यों वह उन धनुर्धारियों के समुख आ पहुँचा, जिनको अपनी वीरता के योग्य युद्ध अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था ।

मास चवानेवाले लंबे दाँतो, वलिष्ठ खड्ग-दर्तों से चमकनेवाले अपने कदरा-मदृश मुँह को खोलकर 'ठहरो, ठहरो', चिल्लाता हुआ वह आया और धने दलवाले कमल पर आसीन रहनेवाली लद्धी रूपी (राम की) देवी को, एक शब्द का उच्चारण करने के समय में ही, मट उठाकर आकाश-मार्ग से जाने लगा ।

वृपम-सदृश वे दोनों वीर उसकी आकृति को देखकर क्रोध से उग्र हो उठे और कधे पर के धनुष को वाम हस्त में लेकर, उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण नोकवाले वाण को दक्षिण कर में लेकर उस राक्षस का पीछा करते हुए बोले—अरे, इस प्रकार धोखा देकर कहाँ जा रहा है ? तब उस विराध ने (कहा—

ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से मै मृत्यु-रहित हूँ । समस्त लोकों के निवासी भी यदि मेरा सामना करने आयें तो, मैं किमी आयुध के बिना ही उन सब को जीत सकता हूँ । अरे । मैंने तुम्हारे प्राण छोड़ दिये हैं । इस ऋति को छोड़कर सुख से चले जाओ, यों विराध ने कहा । तब—

वीर (राम) ने अपने रजत मदहास-रूपी ज्योत्स्ना को प्रकट करते हुए कहा—इस (राक्षस) ने युद्ध क्या है—यह जाना नहीं है । अब इसके प्रताप और बल सब मिट जायेंगे—फिर, मन में विचार करके अपने भारी धनुष का टकार किया ।

वर्षाकालिक मेघ-सदृश रामचन्द्र ने, जो वज्र-सम वरछे एवं अपार पराक्रम से युक्त थे, अपने कोदड़ की लबी झोरी से जो धोर टकार उत्पन्न किया, वह तरगायमान समुद्रो से

आवृत्त तथा भूधरों ने भरित पृथ्वी में, पाताल में, स्वर्गलोक में तथा अन्य सब लोकों में बज़-घोष के समान प्रतिष्ठनित हो उठी ।

तब वह राक्षस, वचक तथा अत्याचारी मार्जार के मुँह में कैसे हुए तोते के समान चिल्लानेवाली सीता को छोड़कर किंचित् विकल-चित्त-मा खड़ा सोचता रहा । फिर, चिन्तुव्व होकर अजनपर्वत-सदृश राम के सम्मुख आ खड़ा हुआ ।

फिर, उसने अपने त्रिशल को, जो शत्रुओं के रक्त में डूब-डूकर पिशाची की भूख को मिटाता रहता था और जो अपने तीनों नांकों से बड़वामि के सदृश ज्वालाएँ उगलता था, धुमाकर (रामचन्द्र पर) फेंका ।

वह त्रिश्ल हालाहल विप के समान उज्ज्वल हो अतिवेग से आने लगा, जिसे देखकर अष्ट दिशाएँ, दिक्पाल दिग्गज तथा सर्वलोक काँप उठे । तब राम ने महामेह और सम कुलपर्वत-समान अति दृढ़ दीर्घ कोटड में एक अपूर्व वाण रखकर प्रयुक्त किया ।

आज से राक्षस-समूह का नाश हो गया—ऐसी स्त्रिया देते हुए, दिन में ही मानों गगन में नक्षत्र गिर रहे हो—ऐसा दृश्य उपस्थित करने हुए चारों ओर प्रकाश फैलाने-वाला वह शूल दो ढुकड़े हो गया और दिशाओं के अत में जा गिरा ।

देवताओं का भी दमन करनेवाले उस शूल को टूटकर गिरते हुए देखकर भी उस राक्षस ने युद्ध करना छोड़ा नहीं । किन्तु, अधिक उत्साह दिखाता हुआ धरती को कँपा देनेवाले अपने हाथों से अनेक पर्वतों को जड़ से उखाड़कर त्वरित गति से वह (राम पर) फेंकने लगा ।

रामचन्द्र ने अति दृढ़ तथा अति तीक्ष्ण वाणों को उन (पर्वतों) पर छोड़ा; जिसमें धेरकर आनेवाले वे पर्वत टूटकर नीचे गिर गये । वह राक्षस एक-एक करके जो पर्वत फेंकता था, वे लौटकर उसी की देह पर गिरते थे, जिससे उसके शरीर में अनेक घाव हो गये ।

तब उसने एक वड़ा वृक्ष उखाड़ लिया और उसको लेकर उस राम पर आक्रमण करने के लिए आया, जिनके नामी को ज्ञानी पुरुष जपते रहते हैं, जो धर्म को स्थापित करने के लिए सर्पशश्या को छोड़कर इन वरती पर अवतीर्ण हुए हैं । तब—

उत्तम वीर (राम) ने चार वाणों से उस वड़े वृक्ष के ढुकड़े-ढुकड़े कर दिये और (राक्षस के) कधों और वक्ष में वारी-वारी से अत्यन्त वेग से अनेक अति तीक्ष्ण वाण मारे; तब वह राक्षस—

अपने शरीर में अति पैसे वाणों के छिट जाने से बहुत पीड़ित हुआ और त्वरित गति से अपने शरीर को कटकाकर उन वाणों को छितराने लगा, जैसे कोई बहुत बड़ा साही अपनी देह पर के काँटों को फुलाकर खड़ा हो ।

तब राम ने और भी अस्त्र-समान तीक्ष्ण वाणों को प्रयुक्त किया, जो कही भी रुके बिना (उसके शरीर को) भेट देते थे । फिर भी, उस (राक्षस) का चित्त पापमुक्त नहीं हुआ । पर्वत से गिरनेवाले निर्भर के समान उसके शरीर से रक्त वहने लगा । जिससे वह दुर्वल तथा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ।

वे दोनों (राम-लक्ष्मण), जो विना थके हुए मल्लयुद्ध करने में कुशल थे, यह सोचकर कि इस राक्षस को सत्य ही वर प्राप्त हुए हैं, जिससे यह शत्रुओं के प्रयोग से मर नहीं सकेगा, अत्यन्त क्रोध से करवाल निकालकर उसकी भुजाओं को काटने के विचार से उसके कधों पर चढ़ गये ।

वहनेवाले रक्त-प्रवाह से युक्त वह (विराघ) पुनः सज्जा पाकर उठा । जब उसको यह मालूम हुआ (कि राम-लक्ष्मण उसके कधों पर चढ़ गये हैं) तब वह तुरन्त ठड़-सदृश अपनी भुजाओं से उन दोनों को दबाकर अपनी पूर्व गति से भी दसगुने वेग से चल पड़ा ।

तब वे दोनों मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य-चन्द्र के समान शोभायमान हो उठे । उस राक्षस का सिर गगन-तल से टकरा रहा था । वह अतिवेग से धूमने लगे और उसके शरीर से रक्त-प्रवाह वह चला ।

स्वर्णवर्णवाले (लक्ष्मण) के साथ कृष्ण वर्णवाले (राम) को अपने कधों पर लिये आकाश तक उठकर वह राक्षस चल पड़ा । तब वह उस पक्षिराज गरुड की समता करता था, जो धर्म-रूपी अपने पखों पर बलराम और कृष्ण को उठाये वेग से जा रहा हो ।

उत्तम कुल में उत्पन्न सीता, अति कृपालु अपने पति को बचक राक्षस के द्वारा दूर उठा लिये जाते हुए देखकर अत्यन्त व्याकुल हुई और उस हसिनी के समान हो गईं, जिसका जोड़ा (हस) किसी के द्वारा बदी बना लिया गया हो । वह सुरक्षाई हुई लता के समान अपने केशों को फैलाये धूल में गिर पड़ी ।

फिर वह उठी । उनको सँभालनेवाला व्यक्ति भी वहाँ कोई नहीं था । उन्हे सात्वना का कोई शब्द भी नहीं मिला । वह शीघ्रता से (राक्षस का) पीछा करती हुई दौड़ीं, जिससे उनकी विद्युत-समान कटि काँप उठी । फिर, उस (राक्षस) से कहा—इन मातृ-समान करुणावाले धर्म-स्वरूप कुमारों को छोड़ दो और सुझको खा डालो ।

वह रोई । उनका स्वर गद्गाद हुआ । उनके प्राण विकल हुए । बड़ी वेदना से वह चित्र-लिखित प्रतिमा के समान स्तब्ध पड़ी रही । उनकी उस दशा को देखकर कनिष्ठ प्रभु (लक्ष्मण) ने कर जोड़कर (राम से) निवेदन किया—देवी अत्यन्त पीड़ित हो रही हैं, उनको इस दशा में छोड़कर यो विनोद करना ठीक नहीं है । इससे अहित हो सकता है । तब सृष्टि के आदिभूत (भगवान् के अवतार राम) कहने लगे—

हे उपमाहीन ! मैंने सोचा, इस प्रकार ही सही, हम अपने गतव्य स्थान को शीघ्र पहुँच जायेंगे । अब इसको मारना कोई बड़ा काम नहीं—यो कहकर मदहास करते हुए अपने वलिष्ठ पैर से उस राक्षस को धकेला । तब भी वह नीचे गिरा नहीं ।

तब वलिष्ठ भुजावाले (राम-लक्ष्मण) ने कुद्ध होकर तीक्ष्ण करवालों से उसकी दोनों भुजाओं को काट डाला और धरती पर कूद पड़े । तब वह राक्षस उन दोनों के निकट इस प्रकार झुक गया, जैसे रक्त नयनोवाला सर्प (राहु) भोहों-रूपी भुजाओं को झुकाये, दोनों ज्योति-पिंडों (अर्थात्, रथ्य-चन्द्र) को ग्रसने के लिए आया हो ।

उस (राक्षस) के धावो से अधिकाधिक रक्त वह रहा था । तो भी उसके प्राण

परलोक को नहीं जा रहे थे। उस दशा को देखकर सर्वान्तर्यामी (राम)ने विचारकर कहा—भाई! इसे शीघ्र भूमि में गाड़ देना ही ठीक है।

मत्तगज-मद्दश लद्मण ने जो गदा खोदा, दोपहीन रामचन्द्र ने अपने उस रक्त चरण से विराध के शरीर को उसमें ढकेल दिया, जो (चरण) नर्मदा नदी में निमग्न हुआ था, जो पवित्र यज्ञों की आहुतियों को प्राप्त कर ससार के भक्तों को उनके अभीष्ट प्रदान करता था।

वह राक्षस, उस रामचन्द्र के प्रभाव से, जो ब्रह्माड की मृष्टि करके स्वयं उस ब्रह्माड में अवरीण हुए थे, पूर्व-शाप से उत्पन्न दुःखदायक राक्षस-शरीर से मुक्त हो गया और गगन-तल में पूर्वज्ञान से युक्त होकर दिव्य देह धारण करके शोभायमान हुआ।

अब उस (दिव्य देहधारी) की बुद्धि, पचेन्द्रियों के अधीन नहीं रह गई थी और बासनाओं से मुक्त हो सन्मार्ग पर स्थिर हो गई थी। उस (विराध) में पहले से ही अनन्य भक्ति विद्यमान थी। अतः, अब उसको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया, जिसमें प्रभु (राम) को पहचानकर वह उनकी स्तुति करने लगा।

मव वेदों के द्वारा स्तुत्य तुम्हारे चरण ही यदि मव लोकों में व्याप्त हैं, तो तुम्हारे अन्य अग कैसे और कहाँ रहते होंगे। (कौन जाने?) तुम शीतलता से युक्त समुद्र के निवासी हो, यदि तुम परस्पर असद्वश पाँचों भूतों में निवास करने लगे, तो क्या वे (भूत) तुम्हे धारण करने में समर्थ हो सकेंगे? (अर्थात्, नहीं होंगे)।

कुद्ध भगर से ग्रस्त होने पर एक गज ने अत्यन्त आर्त हो शिथिल शरीर से, अपनी सूँड़ को ऊपर उठाकर मर्व दिशाओं में फैलनेवाली अपनी ऊँची ध्वनि से तुम्हें पुकारा था कि हे महिमापूर्ण, अनुपम, वाटिकारण-भूत, हे परमतत्त्व आदी, मेरी रक्षा करो। उसी दृष्टि तुम 'क्या हुआ?' कहते हुए दौड़कर बहाँ आ गये थे (ओर उस गज की रक्षा की थी)।

हे मेरे प्रभु! तुम अपने (अर्थात्, पग्म पद में स्थित नित्य तथा मुक्त जीवात्मा) तथा वाह्य (अर्थात्, लोकों में वर्तमान भक्त आदि जीव) —इन दोनों को देखनेवाले हो, पक्ष-पातहीन हो, कृपा से कभी रहित न होनेवाले हो। हे कमल-मद्दश नेत्रवाले! तुम धर्म की रक्षा के लिए, अन्य किमी की सहायता के विना, एकाकी चक्र के समान धूमते रहते हो, वह तुम्हारा ही कार्य तो है।

जन्म और मरण इन दोनों खेलों को बड़ी उमग के साथ करते रहनेवाले हैं प्रभु। तुम्हारी कृपा से जब प्रकार के जीवों को मुक्ति-पद प्राप्त करना कठिन नहीं है। विरक्ति को सर्वात्मना अपनाये हुए मुनि लोग यदि दूसरा जन्म ग्रहण भी करते हैं, तब भी वे अपने आत्मस्वरूप को नहीं भूलते। इतना ही नहीं, अन्य लोगों के समान (अर्थात्, जो विरक्त नहीं हैं, पुनः-पुनः) जन्म भी नहीं पाते (अर्थात्, वे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं)।

भयकर जन्म-सागर के पार पहुँचने के लिए तरणि के समान रहनेवाले जितने धर्म हैं, उन सब धर्मों के अनुयायी जिस परमात्मा की प्रशंसा अनुपम और अवाङ्मनसगोचर कहकर करते हैं, तुम उसी परमात्मा के अवतार हो। अब तुम्हारे सम्मुख अन्य देवों की क्या गिनती है?

हे धर्म के अनुपम स्वरूप । सृष्टिकर्ता कमलभव से लेकर सब देवों तथा उनमें इतर प्राणिवर्ग के लिए माता और पिता दोनों तुम्हारी हो ।

आदि परब्रह्म तुम हो, सब लोक तुम्हारे अधीन हैं । विवेचन से परे अनेक धर्म तुम्हारे चरणों के ही आश्रित हैं । फिर, तुम बच्चक के सदृश क्यों छिपे रहते हो ? यदि तुम प्रकट हो जाओ, तो क्या हानि है ? क्या तुम्हारी यह अनन्त मायामय क्रीड़ा आवश्यक है ?

हे प्रभु ! तुम अश्रेय होते हुए भी (अपने दासों के लिए) सुलभ-ज्ञेय भी हो । ससार में ऐसा कोई बछड़ा नहीं होगा, जो अपनी माता को नहीं पहचानता हो । ऐसी माता भी नहीं होगी, जो अपने बछड़े को नहीं पहचानती हो । अखिल सृष्टि की माता वने हुए तुम सबको पहचानते हो । किन्तु, वे सब तुम्हे यथार्थ रूप में नहीं पहचानते । यह भी तुम्हारी कैसी माया है ?

ससार के लोग अनेक देवताओं की स्तुति करते हैं । किंतु महात्मा पुरुष तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को श्रेष्ठ नहीं मानते । सदाचार में स्थिर रहनेवाले वे लोग क्या यह नहीं जानते कि ब्रह्मा आदि वेदज्ञों के द्वारा आराध्य देव तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है ?

हे लक्ष्मी से अधिष्ठित सुन्दर वक्षवाले ! हे सदा जागरित रहनेवाले ! अनेक धर्मों के द्वारा आराध्य देवता भी कर्म के वधनों से पड़े हुए लोगों के समान ही कठोर तपस्या करते रहते हैं । किंतु, तुम्हारे लिए करने योग्य कोई तपस्या नहीं है । अतएव कर्म-वधनों से मुक्त आत्माओं के सदृश तुम योगनिद्रा में मम्भ रहते हो ।^१

तुम स्वयं आदिशेष का रूप धारण करके सुन्दर भूमिदेवी का वहन करते हो । (वराह के रूप में) अपने दृत पर (इस भूमि को) धारण करते हो । (प्रलय-काल में) एक ही बार (एक ही कौर में) इस सृष्टि को निगल जाते हो । एक ही पग में इस सारी पृथ्वी को ढक लेने हो । उस भूमि के प्रति तुम्हारे प्रेम को यदि सुगंधित तुलसी-हारों से अलंकृत तुम्हारे मनोहर वक्ष पर आसीन (लक्ष्मी) देवी जान लेंगी, तो क्या वह तुम से स्ठ नहीं जायेंगी ?

हे प्रभु ! तुम्हारे द्वारा सृष्टि प्राणी यदि परम तत्त्व को किंचित् भी पहचान लेंगे और मुक्त हो जायेंगे, तो इससे तुम्हारी क्या हानि होगी ? स्वर्ग एव इस धरती के निवासियों में ऐसे लोग भी तो हैं, जो पूर्वकाल में, तुमने शिवजी को जो भिन्ना दी थी, उम घटना को जानकर, सदेह से (अर्थात्, कौन परम-तत्त्व है, इस शंका से) मुक्त हो गये हैं ।^२

१. भाव यह है कि भगवान् विष्णु, कर्म-वधन में पड़े प्राणियों के समान निद्रित नहीं हैं, वह मन्त्रग ह । किंतु, ऐसी योग-निद्रा में निरत हैं, जिससे अखिल विश्व की रक्षा होती है ।

२. भाव यह है कि शिवजी ने एक बार ब्रह्मा के पाँच शिरों में एक को काट दिया, तो वह कपाल शिवजी के हाथ में सट गया । बहुत कोशिश करने पर भी वह कपाल उनके हाथ से नहीं छूटा । तब आकाशवाणी हुई कि उसमें भीख माँगते रहो । जब वह कपाल भीख से भर जायगा, तब वह छूट जायगा । शिवजी सर्वत्र भीख माँगते रहे, किंतु कपाल मरा नहीं । अत में विष्णु भगवान् के पास पहुँचे । जब उन्होंने भीख दी, तब कपाल एकदम भर गया और हाथ से छूट गया । इस घटना से यह सिद्ध होता है कि विष्णु शिवजी की भी रक्षा करनेवाले हैं । —अनु०

हे वराह-रूप में पृथ्वी को उवानेवाले । तुमने हम का आकार धारण करके अपूर्व शब्दों का उपदेश (ब्रह्मा को) दिया था । पहले तुम्हे उन वेटो को सिखानेवाले कौन थे ? वे सब क्या अब समाप्त हो गये हैं ? तुम (चर और अचर पदार्थों से) परे होकर अकेले रहते हो और सबके अतर्यामी हो । तुम्हारी यह स्थिति क्या इन पदार्थों से भिन्न हो रहने से सभव होती है या अभिन्न होकर रहने से ? यह कैसी माया है ?

हे उपमान-रहित । हे एकनायक । तुम अपने पूर्व विश्राम स्थान क्षीरसागर को छोड़कर मेरे सुकृत से ही यहाँ आये हो । मैं इस जीवन के सागर को पार कर गया । मैं जन्म-हीन हो गया । तुमने अपने प्रवाल-समान चरण-युगल में मेरे कर्मद्वय को पोछ दिया ।

विराघ इस प्रकार के वचन कहकर देवरूप धारण कर खड़ा हुआ । तब विजय-शील (राम) ने कहा—तुम अपना वृत्तात कहो ।

तब विराघ ने सारा वृत्तात यों कह सुनाया—अमत्य जीवन से मुक्ति देनेवाले, ज्ञान को प्रदान करनेवाले चरणों से युक्त, हे प्रभु ! तुम्हारी जय हो ।

कठोर धनुष को हाथ में धारण करनेवाले हैं देव । मेरा नाम तुद्वर है । मैं कुवेर के लोक का निवासी हूँ । अब मैं इस धरती पर जन्म पाने का वृत्तात कहता हूँ ।

नर्तकी रभा एक बार विशाल नृत्य-शाला में गायन और नृत्य कर रही थी । (उसपर अनुरक्त रहने के कारण) मैं उसके ऊपर कुपित हुआ और (उसके डगाने के लिए) राक्षस का रूप धारण कर लिया ।

मेरी काम-वेदना मुझे भ्रात करती हुई बढ़ने लगी । उस अपराध से (कुवेर ने) मुझे शाप दिया, जिससे मैं राक्षस ही बना रहा ।

हे आदि भगवन् । उम यज्ञराज (कुवेर) ने मुझे दुःख से मुक्ति पाने का वर देते हुए, मुझ दुःखी के प्रति कहा—जब मैं तुम्हारे चरण का स्पर्श प्राप्त करूँगा, तब यह शाप मिट जायगा ।

मैं, भयकर शूलधारी और विजयी किलिंज नामक राक्षस का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ तथा इस विशाल लोक के सब प्राणियों को खानेवाला बना ।

हे आदिव्रह्म ! अब मैं, उस दिन से आजतक, भले-चुरे का विचार किये विना (सब प्राणियों को) खाता हुआ पाप-कर्म करता रहा ।

ज्ञान के प्रबोधक, अनादि वेदों के द्वारा प्रशसित तुम्हारे स्वर्ण-वलय-भूषित चरण के स्पर्श से मैं आज शाप-मुक्त हुआ ।

हे सुष्ठि के आदिकारण । तुमने, प्राणियों की हत्या करने के कारण मेरे (सचित) पापों को मिटा दिया । शानहीन हो, मैंने तुम्हारे प्रति जो अपराध किया, उसे क्षमा करो—यों प्रार्थना करके वह (विराघ) वहाँ से चला गया ।

देवों को सतानेवाला राक्षस मिट गया ।—यों सोचकर आनन्दित हो, धनुर्विद्या में निपुण राम-लक्ष्मण भी, कमलासना (लक्ष्मी के अवतार सीता) को साथ लिये हुए वहाँ से आगे बढ़े ।

अपने करो मे यम-सदृश धनुष को धारण करनेवाले वे वीर, सत्यमय वेद-स्वरूप मुनियों के निवास-स्थानभूत एक घने उद्यान मे गये और दिन-भर वही रहे । (१-७२)



अध्याय ३

शरभंग-देहत्याग पटल

जब रात्रि के आगमन का समय हुआ, तब 'कुरवक' तथा 'कोगु' नामक पुष्पों से युक्त लता के सदृश सीता के साथ (राम-लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस सुरभित स्थान में जा पहुँचे, जहाँ शरभग मुनि तपस्या करते थे और जहाँ कुकुमबृक्ष और कोगु (नामक) वृक्ष लहलहाते थे ।

मनोहर शूल से युक्त वे वीर जब उस आश्रम में पहुँचे, तब देवेन्द्र वहाँ आया, जो रात्रि में भी मुकुलित न होनेवाले कमल-सदृश पृथक्-पृथक् शोभायमान सहस्र नयनों से युक्त था ।

उस (देवेन्द्र) की देह-काति ऐसी थी, जैसे उसको घेरकर रहनेवाली लक्ष्मी-सदृश सुन्दर अप्सराओं के आभरणों की काति तथा उस (काति) पर फैली हुई विद्युत की ज्वाला, दोनों मिलकर चमक रही हो ।

उसके काले वर्ण के शरीर पर के नेत्र-रूपी भ्रमर, दिव्य स्त्रियों के नयन-रूपी पुष्पित उद्यान में मत्त हो मँडरा रहे थे । उसके कर्ण-रूपी भ्रमर श्रीनारद की बीणा के नाद-रूपी मधु का पान कर रहे थे ।

उसने, शास्त्रों मे प्रतिपादित अनेक कर्मों के समूह से युक्त एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे । उसके पैरों के वीर-वलयों पर, त्रिमूर्तियों के अतिरिक्त अन्य सब देवताओं के किरीट आकर लगते थे ।

वह इन्द्र विशाल रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी के समान रहनेवाली अपनी देवी (शची) के साथ, त्रिविध मदजलों से युक्त, आगे-आगे पैर उठा-उठाकर चलनेवाले, अति उष्ण श्वेत ऐरावत गज पर आरूढ होता था । वह उज्ज्वल रजतगिरि पर (पार्वती के सग) आसीन शिवजी की समता करता था ।

ऊपर का लोक (स्वर्ग) स्वयं श्वेत छत्र का रूप धारण कर उस (इन्द्र) के ऊपर यों छाया हुआ था कि उसे देखकर सर्वत्र फैलनेवाली काति से युक्त शीतकिरण (चद्रमा), यह सोचकर कि यदि अब मैं चमकता रहूँ तो उससे कुछ प्रयोजन नहीं है, मन्द हो रहा था ।

उसके (दोनों पाश्वों मे) चामर उज्ज्वल काति विखेर रहे थे, जो (चामर) ऐसे थे, मानों असुरों की प्रभूत कीर्ति ही दिग्गजों के स्वच्छ मदजलों का स्पर्श कर तथा उन गजों से अनेक युद्धों मे टक्कर लेकर और उनसे परास्त हो घनीभूत बनकर वहाँ आ गये हों ।

उसका किरीट ऐमा था, मानों निरन्तर संचरण करती रहनेवाली किरणों से युक्त सूर्य ही परिवेप-सहित आ गया हो। युद्ध में अत्यन्त निपुण उस इन्द्र का रलहार इस प्रकार उज्ज्वल था, जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु के विशाल बद्ध पर लक्ष्मी शोभित हो रही हो।

उसका कचुक, उसमें जड़े हुए सूर्य के समान उज्ज्वल रक्तवर्ण रत्नों के कातिपुंज से शोभित था। वह विजयलक्ष्मी के शीतल तथा उज्ज्वल मन्दहास के समान चारों ओर काति विखेरनेवाले वाहु-बलयों से विभूषित था।

अनेक भहस्त्र जगमगाते हुए अति प्राचीन रत्नमय आभरणों की काति एक साथ चमक उठने के कारण उसकी देह इस प्रकार लग रही थी, जैसे उसके धनुष (अर्थात्, इन्द्र-धनुष) से युक्त मेघ ही हो।

वह ऐसे मधुकावी, मनोहर पुष्पहारों से अलकृत था, जिनकी सुगंध नाना लोकों में फेलती थी। उसपर देव-लिंगों के, मीन-सदृश तथा श्रेष्ठ विजय से युक्त नयन-रूपी करवाल आधात करते थे।

उसके पास ऐमा वज्रायुध था, जिसकी धार, सूर्य-समान काति से युक्त विजयमाला धारण करनेवाले रावण पर विजय पाने की आकाशा से प्रयुक्त करने पर भी धान की नोक के बराबर भी (रक्ती-भर भी) कुठित नहीं हुई थी।

इस प्रकार का इन्द्र शरभग के आश्रम में आ पहुँचा। सुनिवर ने सम्मुख जाकर उसका स्वागत किया और उत्तम रीति से सत्कार किया। फिर प्रश्न किया—आपके आगमन का प्रयोजन क्या है? अविनश्वर स्वर्ण-चलयोंवाले इन्द्र ने कहा—

है स्वर्ण-सदृश जटा से युक्त महान् तपस्वी! ब्रह्मदेव ने, यह विचार कर कि तुम्हारा अति दीर्घ तप उसके लिए भी अवर्णनीय है, हमें आज्ञा दी है कि तुम उनके लोक में आ जाओ। अतः, अब यहाँ से चलो।

है महामुने! है अकुठित तपस्या से सपन्न। सब लोकों की और सब चराचर ग्राणियों की सृष्टि करनेवाले उस ब्रह्मा ने तुम्हें अपने लोक का वास दिया है। यदि तुम उनके लोक में जाओगे, तो वे सम्मुख आकर तुम्हारा स्वागत करेंगे।

है निर्दोष तपस्या-सपन्न। मेरे कहने की आवश्यकता नहीं है, हम स्वयं जानते हों कि वह (ब्रह्मलोक) सब लोकों में श्रेष्ठ है। अतः, हम दुरत वहाँ चले आओ। इन्द्र का यह कथन सुनकर तत्त्वज्ञ मुनि ने अपनी अस्तीकृति प्रकट करते हुए कहा—

है अति ग्रन्थात कीर्तिवाले। क्या नश्वर चित्रों के सदृश रहनेवाले लोकों को मैं प्राप्त करना चाहूँगा? मैं ऐसे तुच्छ पदों का विचार तक अपने मन में नहीं लाता हूँ। मेरी तपस्या अनेक कल्पों की है। यह तुम जानने हो न?

है वीर-कक्षणधारी। ऐसा वचन कहना उचित नहीं है। ब्रह्मलोक प्राप्त करना या न प्राप्त करना मेरे लिए दोनों समान हैं। अधिक कहने से क्या प्रयोजन? मैंने यहाँ रहकर अपनी तपस्या पूर्ण की है।

है देवाधिदेव! ये पचमहाभूत जो चिरकालिक हैं, सदा स्थिर हैं, सकोच

और विकास से हीन है तथा जिनके गुणों में परिवर्त्तन नहीं होता, भले ही वे विनष्ट हो जायँ, तो भी मैं अविनश्वर पद की प्राप्ति का उपाय करना नहीं छोड़ूँगा ।

इस प्रकार, जब (शरभग) कह रहे थे, तभी सुदृढ़ तथा गठोले धनुष को धारण करनेवाले वीर उस आश्रम के निकट आ पहुँचे और वहाँ होनेवाले कोलाहल को सुनकर, उसका कारण क्या है—यह सोचते हुए खड़े रहे ।

तब उन्होंने देखा कि उज्ज्वल कातिवाले हीरक-जटित वलयों से भूषित, परस्पर समान चार दॉती से युक्त, आलान में बाँधे जानेवाला (अति महान्) गज वहाँ खड़ा है । उससे उन्होंने जान लिया कि उस महातपस्वी के पास देवेन्द्र आया है ।

हरिणी-सदृश नयनोवाली देवी के साथ लक्ष्मण को उस पुष्पोद्यान के बाहर छोड़-कर रामचन्द्र (अकेले) उस विशाल बन में वृषभ और सिंह के जैसे गये । तब—

देवताओं के स्वामी ने उस स्थान में दर्शन-दुर्लभ, चतुर्वेदी के फल को (अर्थात्, भगवान् के अवतार राम को) अपने सहस्र नेत्रों से इस प्रकार देखा, मानो कमलसम नयन-वाला एक नीलवर्ण सूर्य को ही देख रहा हो ।

इन्द्र उन्हें देखकर मन-ही-मन दुःखी हुआ (क्योंकि उन देवों की रक्षा के लिए ही रामचन्द्र को बन का दुःख भोगना पड़ रहा है) । फिर, उसने मुनियों के नायक उस पुरुषोत्तम को, नित्य प्रणाम करनेवाले अपने शिर से तथा स्तम्भ-समान अपनी झुजाओं से नमस्कार किया ।

उस (नारायण के अवतारभूत राम) को—जो ध्वजाओं से भरे हुए युद्धों में शत्रुओं का (असुरों का) विनाश करके, विशाल समुद्र-समान वेदों के पदों के अर्थ को समझाकर, नित्य धर्म के सन्मार्ग पर (लोकों को) चलाकर, सपत्ति और मोक्ष-पद देकर, (प्राणियों की) रक्षा करनेवाला अविनश्वर कवच बनकर, उनके प्राण बनकर, तपस्या बनकर, नेत्र बनकर एवं अन्तहीन ज्ञान बनकर (सब लोकों की) रक्षा करता है—देखकर वह इन्द्र अपने को भूल गया, द्रवितचित्त हुआ, एक ओर खड़ा रहा और उस (राम) की महिमा का एक साधारण व्यक्ति के समान ही गान करने लगा ।

तुम ऐसी ज्योति हो, जो सब पदार्थों में (अत्यर्यामी के रूप में) मिली रहती है, तथापि निर्लिपि रहती है । तुम आसक्ति-हीन (विरक्त) व्यक्तियों के वधु हो । अपार करुणा का आवास हो । वेदोक्त मार्ग से विवेचन करने से उत्पन्न होनेवाले तत्त्वज्ञान के विषय हो । हे हमारी माता एवं पिता । हम, तुम्हारे दासों ने जब शत्रुओं से पीड़ित होकर तुम्हारी प्रार्थना की, तब यथाप्रदत्त वरदान के अनुसार तुम हमारी सहायता करने के लिए (इस रूप में) अवतीर्ण हुए हो । अन्यथा, क्या तुम्हारे चरण-कमलयुगल इस विशाल धरती के योग्य हैं ?

(तुम्हारी देह की काति की छाया से) नीलवर्ण बने (क्षीर-) सागर में शयन करनेवाले हैं देव । (तुम्हारे) शत्रु नहीं हैं । मित्र भी नहीं हैं । (तुम्हारे लिए) प्रकाश नहीं, अंधकार भी नहीं है । यौवन भी नहीं, बुद्धापा भी नहीं है । आदि, मध्य और अत भी नहीं हैं । तुम्हारी ऐसी दशा हो रही है । किंतु, यदि तुम यो हाथ में धनुष लिये हुए, अपने

अरुण चरणों को दुखाकर पर रखते हुए हमारी रक्षा करने को न आते, तो उससे तुम्हारा क्या अपयश होता ? (जिसमें वचने के लिए तुम आये हो) या (हमसे कुछ प्रतिफल की कामना रखते हो, पर) कौन-सा प्रतिफल देना हमारे लिए सभव है ?

है उत्तम । तुम्हारे नाभि-कमल से उत्पन्न चतुर्मुख भी, दोपहीन मव लोकों को गणना-चिह्न मानकर, गिनने लगे, तो उसका एक अश भी नहीं गिन सकता है । पूर्वकाल में धरती को पात्र, क्षीर सागर को दही और उन्नत (मदर) पर्वत को मथानी बनाकर अपने कमल-तुल्य करों को दुखाते हुए तुमने मथा था और अमृत निकालकर केवल हम देवों को दिया था । तब असुर लोग भी तुम्हारे दास हो गये थे न ?

आठि में तुम एक ही थे । फिर, अनेक रूप हुए और सबके प्राण और प्रजा भी हुए । महाप्रलय के समय तुम विनाश का रूप लेते हो और (सृष्टि के आरभ में) नाना लोकों का रूप धारण करते हो । है स्वच्छ ज्ञान का विषय वने हुए भगवान् ! हमारे अभीष्टों को पूर्ण करनेवाले प्रभु । तुम पवित्र आत्माओं की रक्षा करते हो तथा पापियों को दड़ देते हो । वह विनश्वर पाप भी तो तुम्हारी ही सृष्टि है ।

है मेरे पिता । पूर्वकाल में अपार माया के प्रभाव से जब हम इस शंका में पड़कर कि तुम परम तत्त्व हो या नहीं, विश्रान्त और दिड़-मूढ़ हो गये थे, तब हमारे सुकृत के परिणाम से सप्तर्षिगण हमारे सामने प्रकट हुए और शिवजी के पास पहुँचकर, हमने यह निर्णय किया कि समस्त लोक तुम (विष्णु) से ही उत्पन्न होकर बढ़ते हैं । यो हमारी शंका को दूर करने का साधन भी हुम्ही बने थे ।^१

स्वर्णमय दीर्घ सुकुटवाले इन्द्र ने मन में विचार कर इस प्रकार के अनेक वचन कहकर उनकी प्रशसा की । फिर, यह सोचकर कि (रामचन्द्र के बहाँ आगमन का) कोई विशेष कारण है, अपना उपमान न रखनेवाले मुनिवर से आज्ञा माँगी और देवलोक को जा पहुँचा ।

शरभग ने इस प्रकार जानेवाले देवेन्द्र का मनोगत भाव जान लिया । फिर, देवाधि-देव (राम) के सम्मुख जाकर स्वागत कर उन्हें ले आये । उस समय राम ने उन मुनि के चरणों को प्रणाम किया, तब वह मुनि जो नि श्रेयस पद पाने की इच्छा से कठिन साधना कर रहे थे, प्रेम के आधिक्य से रो पड़े ।

मुनि ने राम से कहा—‘सुखी हो और जीत रहो । अपनी पत्नी और अनुज को भी यहाँ आने दो । तब रामचन्द्र उनको भी ले आये । अनेक युगों से तप करनेवाले

^१ एक बार मुनियों और देवों में वह विवाद छिड़ा कि कौन परमात्मा है । तब सप्तर्षियों में प्रधान भृगु, कमशं कैलास और सत्यलोक में नये । किन्तु, यहाँ शिव और ब्रह्मा को अपनी-अपनी देवी के साथ सलाप में निरत देखा । वहाँ से निराद्वत होने पर वे वैकुठ में गये । वहाँ लक्ष्मी के सग सर्प-शश्या पर आसीन विष्णु को देखा, पर विष्णु को निंगाह भृगु पर न पड़ी । इसपर क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु के वच पर पदावात किया । तब विष्णु वह कहते हुए कि ऐसा करने से महर्षि का पैर दुर्ब गया होगा, उनके चरण को पकड़कर दबाने लगे । इस पर भृगु ने पहचाना कि विष्णु ही सात्त्विक देव हैं और अन्य मूर्तियों से श्रेष्ठ हैं । इसी कथा की ओर इस पद्य में सकेत किया गया है ।—अनु०

उस मुनि के आश्रम में आकर वे यो आनन्दित हुए, जैसे ज्ञीरमागर में (शेष) शयन पर ही विश्राम कर रहे हों ।

उस स्थान में, तत्त्वज्ञ मुनि के धर्मस्थ उपदेश सुनते हुए रामचन्द्र ने हरिणी-समान नयनोंवाली देवी के साथ वह अंधकार-भरी रात्रि व्यतीत की ।

तब सूर्य, ससार को आवृत करनेवाले घने अधकार-रूपी चादर को अपने सब दिशाओं में परिव्याप्त अपरिमेय उज्ज्वल करो के आतप-रूपी धारवाले करवाल से हटाने लगा ।

उस समय, तत्त्वज्ञ मुनि ने उन (राम) के सम्मुख ही अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करने का विचार किया और शास्त्रोक्त विधि से सत्वर अग्नि प्रज्वलित करके रामचन्द्र से प्रार्थना की कि अब सुभे आज्ञा दीजिए ।

दृढ़ धनुष्य (धनुष के प्रयोग में निपुण) राम ने वेदों में निपुण (शरभग) को देखकर कहा—आप क्या करना चाहते हैं, बताइए । तब मुनि ने कहा—हे लक्ष्मी-नायक ! मैं मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना चाहता हूँ, आप आज्ञा देने की कृपा कीजिए ।

रामचन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—अजिन (मृगचर्च) से शोभायमान वक्षवाले, हे मुनिवर ! मेरे आगमन के समय आप यह क्या कर रहे हैं ? तब मन्मथ की विजय को कुठित करनेवाली मानसिक दृष्टा से युक्त उस मुनिवर ने अपना शरीर त्याग करने के उमग में यो उत्तर दिया—

हे विजयशील ! विविध प्रकार की तपस्यायों में निरत रहनेवाला मैं—तुम अवश्य यहाँ आओगे, यह निश्चय करके तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था । अब मेरे दोनों प्रकार के कर्मों का बंधन ढूट गया । जैसे घटित होना था, वैसे ही हुआ और तुम आये । अब मेरे लिए यहाँ और कोई कार्य नहीं रह गया है ।

हे शक्तिशाली ! इन्द्र ने आकर कहा था कि कमलभव ब्रह्मा ने तुम्हें सत्यलोक का निवास प्रदान किया है । प्रलय-काल तक तुम वही रह सकते हो । किन्तु, शाश्वत परमपद की प्राप्ति की कामना करनेवाले मैंने उस सत्यलोक को पाना नहीं चाहा ।

अपौरुषेय वेदों के लिए भी अजेय परमतत्त्व को जानेवाले (शरभग) ने कहा कि तुम ऐसी कृपा करो कि मैं परमपद प्राप्त करूँ । फिर, अपनी प्रिय पत्नी के साथ उग्र अग्नि में प्रवेश करके अनुपम अपवर्ग-पद में जा पहुँचे ।

भावी को जानेवाले, महिमामय सुगंधित कमल में उत्त्वन्त्र ब्रह्मा आदि देव, मुनिगण तथा अन्य लोग भी, दोनों कर्मों के बंधन से मुक्त होकर जिस पद को प्राप्त करने की कामना करते हैं, उस पद में वे मुनिवर जा पहुँचे ।

अखिल ब्रह्माड को अजेय रूप में निगलनेवाले (भगवान् राम) के एक नाम को जो जानते हैं, उनके पुण्य-फल भी विचार से परे होते हैं । फिर, जो अपने अतिम समय में उस भगवान् के दर्शन करते हैं, उनको कौन-सा बड़ा पद प्राप्त होगा, इसको कौन जान सकता है । (१-४४)

ओद्योगि ३

अगस्त्य पटल

आनन्द उत्पन्न करनेवाले, वक्र धनुष को धारण किये हुए वे कुमार (राम-लक्ष्मण), उस शरभग की मृत्यु का दृश्य देखकर मन में बहुत दुःखी हुए। फिर, (सीता) देवी के साथ उस पवित्र (मुनि) के आश्रम से धीरे-धीरे चले।

पर्वत, वृक्ष, सुन्दर काली शिलाएँ, तरगों से भरी नदियाँ, झरनों से युक्त पर्वत-शिखर, घने उद्वान, सुहावन स्थान एव गमीर जलाशय सबको धीरे-धीरे पार करते हुए व आगे बढ़े।

पुगतन ब्रह्मदेव के पुत्र, मुडे हुए शिखवाले वालखिल्य आदि दडकारण्य के निवासी मुनि उनके सम्मुख आये और उनके दर्शन करके आनन्दित हुए।

अत्यधिक बढ़नेवाले क्रोध से युक्त राज्ञों के अत्याचारों से (वचने का) कोई उपाय न देखकर पीडित होनेवाले व मुनिगण जलते वन के उन सूखे वृक्षों की समता करते थे, जो अमृत-समान जल-धारा से सिंचित होकर जीवित हो उठे हो।

अधिकाधिक बढ़ते हुए वलवाले राज्ञों का नाम लेते हुए भी उनका कठ-स्वर विछृत हो उठता था। ऐसे सकट से अब मुक्त हुए उन मुनियों की दशा उस बछड़े की-सी थी, जो दावानल से जलनेवाले वन में फँस गया हो और फिर अपनी माँ को अपनी ओर ढौङ्कर आते हुए देखकर आनन्दित हो उठा हो।

किसी के द्वारा प्रतिकार करने को दुस्साध्य, क्रूर कृत्यवाले राज्ञों के साथ युद्ध करके उन्हें मिटाने का कोई उपाय न देखकर वे मुनि मन-ही-मन कुट्टते रहते थे। अब ऐसे निश्चिन्त हुए, जैसे गङ्गास नामक समुद्र के मध्य झूँवनेवालों को एक नौका ही मिल गई हो।

उन मुनियों ने (रामचन्द्र को) भली भाँति देखा और ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने महान् तप की महिमा में ज्ञान पाकर, जन्म-रूपी कठोर वधन से मुक्त हो गये हों और मोक्ष-पद प्राप्त कर लिया हो।

यद्यपि वे (मुनि) ऐसी सत्य तपस्या से सपन्न थे, जो साधकों के सब अभीष्टों को पूर्ण करनेवाली होती थी, तथापि उन्होंने क्रमा-शक्ति के कारण उत्तरोत्तर बढ़नेवाले अपने क्रोध को समूल विनष्ट कर दिया था। इसलिए, उस वन के राज्ञों से पीडित होते रहते थे।

वे मुनि उठकर आये। काले मेघ-सदृश स्थित उन राम के निकट उमड़ते प्रेम के माथ आ पहुँचे। ज्यों-ज्यों वे राम उन्हें नमस्कार करते थे, त्यों-त्यों वे मुनि आशीः देने रहे।

वे मुनि उन (गमचन्द्र) को एक सुन्दर पर्ण-शाला में ले गये और यह कहकर कि यहाँ तुम सुख से निवास करो, अनेक सल्कार किये, फिर वे स्वय अन्यत्र जाकर ठहरे। फिर (उचित समय पर) राज्ञों के अत्याचार को कहने के लिए (राम के पास) आये।

प्रभु ने आये हुए मुनियों को प्रणाम करके उनकी प्रस्तुति की और आमीन होने

पर प्रश्न किया कि क्या आज्ञा है ? तब उन्होंने उत्तर दिया—हे संसार के रक्षक (दशरथ) के पुत्र ! अब जो अत्याचार यहाँ हो रहे हैं, उन्हें सुनो ।

दया नामक गुण का लेश भी जिनके हृदय में नहीं है, ऐसे धर्म-रहित कुछ लोग हैं, जिन्हें राक्षस कहते हैं । वे (राक्षस) हमे अनुचित तथा अधर्म के मार्ग पर चलने के लिए विवश करते हैं, जिससे हम धर्म और तपस्या के सन्मार्ग से भटक जाते हैं ।

हे धनुष से युक्त भुजावाले । अनेक व्याघ्र जहाँ सचरण करते हैं, ऐसे वनमें रहनेवाले हरिणों के समान, हम रात-दिन व्यथितमन रहते हैं । हमसे अब अधिक सहा नहीं जायगा । प्रख्यात धर्म-पथ से भी हम स्खलित हो रहे हैं । क्या हमें इन दुःखों से मुक्ति मिलेगी ?

महिमामय तपोमार्ग में हम नहीं चल पाते । अब वेदों का अध्ययन भी नहीं कर पाते । अध्ययन करनेवालों की सहायता भी नहीं कर सकते । पुरातन यज्ञाभिं को भी हम प्रचलित नहीं कर पाते । सदाचरण से भी अष्ट हो गये हैं । अतः, हम ब्राह्मण कहलाने योग्य भी नहीं रहे ।

इन्द्र के वारे में पूछो, तो वह राक्षसों के आदेशों को, अपने शिर और्खों पर धारण कर उनका पालन करता रहता है । हे हमारे प्रभु ! तुम्हारे अतिरिक्त हमारे दुःखों को दूर करनेवाला और कौन है ? हमारे सुकृत से ही तुम यहाँ आये हो ।

ससार-भर में प्रचलित अपने शासन-चक्र से ससार की रक्षा करनेवाले चक्रवर्ती के हे पुत्र ! हमारे दिन अवार्य अंधकार से भरे हैं । अब तुम सूर्य के समान उदित हुए हो । हे कृपालु वीर ! हम तुम्हारी शरण में हैं—यो सुनियों ने निवेदन किया ।

सूर्यकुल में उत्पन्न वीर (राम) ने कहा—यदि वे (राक्षस) मेरी शरण में आकर ज्ञान नहीं माँगेंगे, तो भले ही वे इस ब्रह्माड को छोड़कर बाहर भी क्यों न भाग जायें, मेरे बाण खाकर नीचे गिरेंगे । अब आप लोग इस अनुचित पीड़ा से मुक्त हो जाइए ।

मेरी माता का वर मौग्नना, मेरे पिता की मृत्यु होना, मेरे गौरव-पूर्ण भाई (भरत) का दुःखी होना, मेरे नगर के लोगों का अत्यत वेदना से दुःखित होना—इन सबके होते हुए भी मेरा वन-गमन मेरे पुण्यों का ही फल है ।

यदि मैं उन राक्षसों की शक्ति का समूल नाश न करूँ, जो धर्म से कभी स्खलित न होनेवाले सुनियों के महत्व को भूलकर, नीच वनकर उन्हें सताते हैं, तो मेरे लिए यही उचित होगा कि मैं (उनके हाथ) मर जाऊँ । अन्यथा, मनुष्य-जन्म पाने से मुझे क्या सुकृत मिलेगा ?

उत्तम वेदों के ज्ञाता आपलोग भी उन राक्षसों के कबधों को नाचते हुए सहर्ष देखें । तभी दृढ़ धनुष तथा अवार्य वाणी से पूर्ण तूणीरों का वहन करनेवाली मेरी भुजाओं की पीड़ा दूर होगी ।

गो-ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों की रक्षा के लिए जो अपने प्राणों का त्याग करते हैं, वे ही उत्तम स्वर्ग के निवासी देवताओं के लिए भी पूज्य देवता बनते हैं ।

शूरपद्म (नामक असुर) को मारनेवाले (सुव्रह्मण्य), उज्ज्वल चक्रायुध को धारण करनेवाले (विष्णु) या त्रिपुरों को मिटानेवाले (शिव) भी, उन राक्षसों की रक्षा

करने आये, तो भी मैं उन अधर्मी (राक्षसों) का नमूल विनाश करूँगा । आपलोग डरें नहीं ।

(राम के द्वारा) कथित ये वचन सुनकर वे आनंदित हुए । उनका प्रेम उमड़ उठा, उनकी पीड़ा दूर हुई । वे अपने दड़ उछालने लगे । मधुर वेद-वाचन करने लगे । नाचने लगे । फिर यो बोले—

हे सुष्टि के नायक । यदि तुम क्रोध करो, तो इन तीनों लोकों के जैसे तीस कोटि लोक भी यदि तुम्हारा सामना करने आयें, तो वे भी तुम्हारे लिए कुछ नहीं होंगे । सब वेद, (हमारी) तपस्या और ज्ञान इसके साक्षी हैं ।

अतः, तुम (वनवास के) दिनों हमारी रक्षा करतं हुए, यही इस आश्रम में आराम से रहो—यो मुनियों ने कहा । तब राम ने उन महान् तपस्वियों के चरणों को नमस्कार करके वहाँ निवास किया ।

वे कुमार (राम-लक्ष्मण) उस स्थान में चिना किसी कष्ट के दस वर्ष-पर्यंत रहे । फिर, उन तपस्वियों ने विचार करके इनसे कहा कि तुम अगस्त्य के पास जाओ । तब वे अर्घचद्र-सम ललाटवाली सीता देवी के साथ वहाँ से चल पड़े ।

दगरों से भरी तथा उवड़-खावड़ धरती को और वाँस आदि के झाड़ों से भरे स्थलों के सकीर्ण मागों को धीरे-धीरे पार करके वे उज्ज्वल शरीरवाले कर्म-वंधन से रहित सुतीष्ण मुनि के आश्रम में पहुँचे ।

गर्व-रहित चित्तवाले उन कुमारों ने वहाँ पहुँचकर, सूर्य के समान तेजस्वी उन मुनिवर के अस्त्र चरणों को प्रणाम किया । तब मुनि ने उनका सल्कार करके कहा—तुम लोग यहीं विश्राम करो । तब वे बीर उस सुगंधित उद्यान में ठहरे ।

जब वे वहाँ ठहरे हुए थे, तब उन मुनिवर ने उनका सब प्रकार से उपचार करके कहा—हे श्रीमन् । वह मेरे सुकृत हैं, जो तुमने वहाँ आने की कृपा की । प्रसु ने भी बड़ी भक्तिपूर्वक उन मुनिवर से कहा—

प्रस्तुत चतुर्सुख के वश में उत्पन्न मुनिश्रेष्ठों में तुम्हारे समान पूर्ण तपस्या से सपन्न वन्य कौन है ? और, तुम्हारे-जैसे महान् तपस्वी की कृपा का पात्र मेवना हूँ । इसलिए, मेरे समान (भाग्यशाली) यहस्य भी कौन है ?

चिरकालिक तपस्या से सपन्न मुनिवर ने उपमान-रहित (राम) को उत्तर दिया—तुम आतिथ्य स्वीकार करके उसे सफल बनाओ । मैं अपनी समस्त तपस्या दक्षिणा के रूप में तुम्हें वर्पित करता हूँ ।

वदान्य (राम) ने उस वेदज मुनि को उत्तर दिया—हे स्वामिन् ! तुम्हारी यह कर्त्ता ही किस तपस्या से कम है ? फिर कहा—अब मुझे एक वात निवेदन करनी है । अगस्त्य महर्षि के दर्शन अभी मैंने किये नहीं । यही एक कमी रह गई है ।

तब मुनि ने कहा—तुमने ठीक सोचा है । मैंने पहले ही यह कार्य निश्चित किया था । तुम उन मुनियों के आश्रम में उनके निकट जाओ । वहाँ जाने पर तुम्हारे लिए कोई सुफल अलभ्य नहीं रह जायगा ।

इतना ही नहीं । वे अवतरक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करते हुए रहते होंगे ।

अतः, है समस्त कल्याणों से युक्त महानुभाव । तुम उन मुनिवर के निकट जाओ । इससे देवों तथा अन्य सब का हित होगा ।

फिर, मुनि ने (अगस्त्य के आश्रम को जाने का) मार्ग बताकर अनंत आशीर्वाद दिये । तब उस तपस्वी के कमल-समान चरणों को प्रणाम करके वे बीर वहाँ से चले और मधु की स्वच्छ धाराओं को वहानेवाले एक उद्यान में शीघ्र आ पहुँचे ।

विशाल (या चिरतन) तमिल भाषा से सारे लोक को चक्रपाणि (विष्णु) के जैसे नापनेवाले (अगस्त्य) मुनि ने जब यह सुना कि पौरुष से भरे कुमार (राम-लक्ष्मण) वहाँ आये हैं, तब उनके मन में जो आनन्द उमड़ा, वह समुद्र के-जैसे उमड़कर सत्यलोकों में भर गया । वे महिमावान् वरद (राम) की शरण में जाने के लिए आगे बढ़े ।

वे अगस्त्य ऐसे हैं कि पूर्वकाल में जब देवताओं ने, समुद्र में असुरों के छिप जाने पर उनसे प्रार्थना की कि हे तपस्वी । हम पर कृपा करो, तब उन्होंने सारे समुद्र को एक चुल्लू में भरकर पी लिया था और जब उन (देवों ने) प्रार्थना की कि समुद्र को उगलने की कृपा करें, तब उसे उगल दिया था ।

उस बामनाकार मुनि ने स्वच्छ समुद्र के जल को पीकर उसे उगल दिया था और मायाकी राक्षस (वातापि) को खाकर उसके कठोर शरीर को पचा लिया था, एव ससार के दुःख को दूर किया था ।

जब विद्याचल ने बढ़कर अतरिक्ष को भर दिया था, उस समय योगमार्ग में स्थिर रहनेवाले मुनियों ने (अगस्त्य) से प्रार्थना की कि आप हमारे जाने का कोई वाधा-रहित मार्ग बताइए । तब अगस्त्य ने मेघों की पक्कियों में उठे हुए गगनोन्नत विद्याचल पर अपना पद रखा और हाथी के जैसे उसपर बैठकर उसे ऐसा दबाया कि वह पाताल में धैस गया ।

पूर्वकाल में एक बार उत्तर दिशा नीचे झुक गई और दक्षिण दिशा ऊपर उठ गई । तब सपों को धारण करनेवाले शिवजी ने अगस्त्य को आज्ञा दी कि हे निश्चल तथा निर्दोष तपस्यावाले ! तुम (दक्षिण दिशा में) जाओ । उस आदेश के अनुसार वे गगनोन्नत मलय पर्वत ('पोदियमलै' नामक पर्वत) पर आ पहुँचे और शिवजी के समान ही दक्षिण दिशा में रहकर भूमि के सतुलन को बनाये रखा ।

कातिमय परशु तथा सुन्दर ललाट में अग्नि-उगलनेवाले नेत्रों से शोभित, अग्नि-सद्वश तेज-स्वरूप भगवान् (शिव) के द्वारा उपदिष्ट तमिल (व्याकरण) को उन्होंने लोक-परपरा, काव्य-रूढि एव अपनी बुद्धि के द्वारा यथाविधि सुसङ्कृत करके परिश्रम से अध्ययन किये जानेवाले चार वेदों से भी श्रेष्ठ बना दिया ।^१

^१ यह कथा प्रसिद्ध है कि अगस्त्य शिवजी द्वारा प्राप्त व्याकरण को लेकर दक्षिण में 'पोदियमलै' पर आकर रहे थे । वहाँ पेरगत्तियम—(बृहद् अगस्तीयम्) और शिरभगत्तियम—(लतु अगस्तीयम्) नामक दो अन्य रचकर अपने बारह शिष्यों को सिखाया, जिनमें तोलगाप्तियर मुख्य थे । इन्ही तोलगाप्तियर ने आगे चलकर तमिल-भाषा का एक बृहद् व्याकरण लिखा, जो अब तमिल-साहित्य में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ है । अगस्त्य का लिखा हुआ व्याकरण अब उपलब्ध नहीं है, किंतु उनके व्याकरण के उद्धरण अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं । विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य वालकारण (अनुवाद), पृ० ४५ की पादटिप्पणी । —अनु०

जिस परम तत्त्व के बारे में भव लोग यह सोचते रहते हैं कि वह स्वर्ग में है, भूलोक में है, अन्य किसी लोक में है, (योगियों के) हृदय में है अथवा वेदों में है, उस तत्त्व को मैं अपनी आँखों से देख सकूँगा—यह सोचकर अगस्त्य आनन्दित हुए।

ब्रह्मा आदि भी, प्रभिद्व वेदों तथा अन्य (दर्शन-ग्रन्थों) का सम्यक् अध्ययन करने से तीक्ष्ण बने हुए अपने ज्ञान की कसोटी पर अनेक युगों तक कस-कसकर भी जिस तत्त्व को ठीक-ठीक पहचान नहीं पाते, वही परम तत्त्व अब मेरे सम्मुख स्थित होकर सुझसे बोलने-वाला है—यो सोचकर अगस्त्य अत्यन्त आनन्दित हुए।

अमाध्य तथा क्रूर बलवाले राज्ञस-रूपी चिप को, जड़ से उखाड़ देनेवाला वैद्य अब आ गया है। अब देवता लोग बच गये। तपस्त्रियों के प्राण भी सुरक्षित हो गये। ब्राह्मण भी धर्म-मार्ग में स्थिर हुए—यो अगस्त्य ने विचार किया।

अब प्राणियों को (उनकी आत्म के) मध्य में ही चवाकर खा जानेवाले राज्ञों के बज्र को भी जलानेवाले क्रोध-रूपी अग्नि को शीघ्र मिटाकर समार की रक्षा करने के लिए गगन के मेघ के समान ये (रामचन्द्र) आये हैं—इस प्रकार सोचकर उमंग-भरे हृदय से अगस्त्य आगे बढ़े।

उस मुनि ने, जो अपने कमड़लु में भरकर अनुपम कावेरी को लाये थे और उसके द्वारा अष्ट दिशाओं, सप्त लोकों तथा सब प्राणियों को सद्गति प्रदान की थी, राम को आते हुए देखा, तब प्रेमाधिक्य से कमल-समान कातिवाले उनके नयनों से आनन्दाश्रु वह चले।

वहाँ स्थित मुनि को श्रीराम ने आकर प्रणाम किया। तब शाश्वत रहनेवाली मधुर तमिल-भाषा (के व्याकरण) को प्रचलित कर यशस्वी बने मुनि ने प्रेम से उनका आलिंगन किया और आनन्दाश्रु वहाये। फिर ‘तुम्हारा स्वागत है।’ कहकर अनेक मधुर बचन कहे।

महान् तपस्वी तथा ब्राह्मणजन धिरकर वहाँ आये, वेद-पाठ किया तथा कमड़लु-जल का प्रोक्षण कर पुण्य वरसाये। फिर अगस्त्य, पुण्यों की सुरभि से पूर्ण शीतल उद्यान में (गम, लक्ष्मण और सीता को) हो गये।

अमल (राम) ने हर्प के साथ उस सुन्दर उद्यान में प्रवेश किया। मुनि ने उनका आतिथ्य किया। फिर कहा—है करुणामय। यह मेरे बड़े सुकृत का फल है, जो तुम मेरी कुटी में आये। तुमने मेरी अपूर्व तपस्या को सफल बना दिया।

यों कहने पर रामचन्द्र ने अगस्त्य से कहा—देवता और महान् तपस्वी मुनि भी आपकी कृपा को (सुलभता से) नहीं प्राप्त कर सकते। मैं आपकी कृपा का पात्र बना, अतः मैं नमस्त लोकों का विजयी हो गया हूँ। अब मुझे प्राप्त करने को क्या शेष रह गया?

तब अपने उत्तम शिर पर चन्द्रकला को धारण करनेवाले (शिव) की समता करनेवाले उन मुनि ने कहा—है प्रशसनीय गुणों से विमूषित। मैंने सुना था कि तुम

दडकारण्य में आये हो । इस पर मैं यह सोचकर आनन्दित हुआ कि तुम इस स्थान पर भी अवश्य आओगे । फिर आगे कहा—

हे प्रभु ! अब तुम यही निवास करो, यहाँ रहने से आवश्यक तथा स्पृहणीय महान् तपस्या को पूर्ण कर सकोगे । बढ़ते हुए क्रोध से युक्त क्रूर राक्षस जब आयेगे, तब युद्ध में उन्हें निहत करके हमारे मन के क्लेश को दूर करना ।

हे चक्रवर्ती-कुमार । (अब) वेद जीवित रहेगे । मनु-विहित नीति जीवित रहेगी । धर्म जीवित रहेगा । हीन वने हुए देवता उन्नति प्राप्त करेंगे । असुर अवनति प्राप्त करेंगे । इसमें कुछ सदेह नहीं है । यह निश्चित है । सप्त लोक जीवित रहेगे । तुम यही निवास करो—यो अगस्त्य ने कहा ।

तब राम बोले—हे वेद-ज्ञान से युक्त मुनिवर ! गर्वाले राक्षस, जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें मिटाने एवं उनके गर्व को दूर करने के हेतु उनका शीघ्र हनन के लिए मैं सञ्चाल हूँ । अतः, मैं सोचता हूँ कि वे जिस दिशा से आते हैं, उसी दक्षिण दिशा में मेरा आगे बढ़ जाना उचित है । आपकी क्या सम्मति है ?

तब अगस्त्य ने यह कहकर कि, 'तुमने सुन्दर बचन कहे' आगे कहा—यह जो धनु मेरे यहाँ है, यह पूर्वकाल में विष्णु के पास था । त्रिलोकी के लोग तथा मैं इसकी पूजा करते रहे हैं । इस धनुष को तथा अक्षय वाणीवाले इन (दो) तूणीरी को लो । यह कहकर धनुष एवं तूणीर राम को प्रदान किये ।

अगस्त्य ने राम को एक ऐसा करवाल दिया, जो यदि त्रिभुवन को तराजू के एक पलड़े में रखकर और दूसरे में उस करवाल को रखकर तोलें, तो त्रिभुवन भी उसकी समता नहीं कर सकते । फिर, एक (वैष्णव नामक) शर दिया, जिसे अग्नि-रूपी हर ने महान् मैरु को धनुष बनाकर उस पर रखकर प्रयुक्त किया था और उससे त्रिपुरों को मिटाया था । उन दोनों शस्त्रों को देकर—

अगस्त्य ने कहा—हे तात ! उन्नत वृक्षों, पर्वत शिखरों, मिकता-श्रेणियों तथा पुष्प-राशियों से शोभायमान, आसपास में शीतल उद्यानों से शोभित और तरगायमान नदियों से घिरे हुए पर्वत में पच्चटी नामक एक स्थान है ।

उस स्थान में फल देनेवाले बालकदली-वृक्ष, रक्त धान की बालियों से पूर्ण सस्य, मधुसूखावी पुष्प तथा दिव्य कावेरी के समान नदी का प्रवाह है । वहाँ इस देवी (सीता) के कौतुक के लिए सारस एवं हस भी हैं ।

अब तुम उसी स्थान में जाकर निवास करो—यों । (अगस्त्य ने) कहा । धनश्याम ने भी उन्हें प्रणाम किया, उनकी आज्ञा ली और आगे चले । उनके पीछे खाँड़ के रस के समान मीठी बोलीवाली (सीता) तथा उनके अनुज चले और उनका अनुसरण करता हुआ उन मुनिवर का मन चला । वे सत्वर आगे बढ़ चले । (१-५६)

अध्याय ५

जटायु-दर्शन पटल

वे (राम, सीता और लक्ष्मण) कई कोम चले और वहनेवाली अनेक नदियों, स्थिर रहनेवाले कई पर्वतों, क्रमशः स्थित धने वनों आदि को पार करके गये और एक स्थान पर गृहों के राजा (जटायु) को देखा ।

वह जटायु इस प्रकार शोभायमान था, जैसे उद्यगिरि पर स्थित पिघले स्वर्ण-सदृश वाल रवि हो, जो इस विशाल धरती की सब टिशाओं को प्रकाशित करनेवाली अपनी धनी किरणों-हृषी परखों को फैलाये हुए वैठा हो ।

वह (जटायु) एक कुँचे पर्वत के शिखर-मध्य वैठा हुआ ऐमा था, मानों देवताओं ने अपार शब्दायमान ज्ञीरमागर के मध्य चट्ठ की काति से सयुत मट्टर पर्वत को खड़ा कर दिया हो ।

वह जटायु, विशाल प्रदेशवाले उस नीलवर्ण पर्वत पर (अपनी देह-काति से) नीलवर्ण गगन की काति को आवृत्त किये हुए, दीर्घ प्रवाल-लता के समान सुन्दर वर्ण से युक्त अपनी मनोहर टाँगों की अरुण काति के साथ शोभायमान था ।

वह पवित्र था । अपार शिक्षा तथा ज्ञान से युक्त था । सत्यपरायण था । दोपहीन था । सूख्म बुद्धिवाला था । अपनी विवेचन-शक्ति से (वातो को) जानेवालों के जैसे ही दूर की वस्तुओं को भी अपनी छोटी आँखों से देख सकता था ।

वह क्रूर राक्षसों को मारकर यम को भोजन देकर तदनतर वचे हुए मास को स्वयं खानेवाला था, नित्य रगड़ खाने से उसकी चोंच इन्द्र के छोटी आँखवाले (ऐरावत) हाथी के अकुश के समान चमक रही थी ।

वह नवग्रहों और इनमे घिरे हुए ब्रुव नक्षत्र का-सा दृश्य उपस्थित करनेवाले रक्षाहार से शोभित था । उसके शिर पर किरीट इस प्रकार शोभित हो रहा था, जिस प्रकार मेव के शिखर पर उज्ज्वल रवि हो ।

वह शब्दों की शक्ति को कुठित करनेवाले (अर्थात्, शब्दों के द्वारा प्रकट करने में असम्भव) महान् वश से उद्दित होनेवाले अरुणदेव का पुत्र था और उसने अनेक कल्पों को दिनों के समान व्यतीत होते हुए देखा था ।

वह एक अत्युन्नत पर्वत पर खड़ा था । वह इतना वलवान् था कि उसके भार को न सँभाल सकने के कारण वह पर्वत धरती में धृत्सकर नीचा हो गया था । ऐसी वीरता से पूर्ण उस (जटायु) के निकट, वे (राम-लक्ष्मण) आशका-युक्त मन के साथ जा पहुँचे ।

वडे वीर-कक्षण को पहने हुए उन वीरों ने, यह सोचते हुए कि कोई ज्ञान-रहित राक्षस हमारी हानि करने के विचार से पक्षी का वेष धारण करके आया है, सदेह के साथ उसे देखा ।

वह (जटायु) भी, वीर-ककणों से भूषित तथा दृढ़ धनुष को धारण करनेवाले उन वीरों को देखकर सदेह करने लगा कि जटायुक्त शिरवाले ये (पुरुष), कर्म-वधन से मुक्ति-प्राप्ति का साधन तप करनेवाले (तपस्वी) मात्र नहीं दिखते ; क्योंकि इनके हाथ में धनुष हैं । शायद ये स्वयं देव ही तो नहीं हैं ?

मैं तो इन्द्र आदि सब देवताओं को देखता हूँ । चक्रधारी (विष्णु), अभीष्ट वर देनेवाले (ब्रह्मा) और परशुधारी (शिव) भी मेरे लिए अदृश्य नहीं हैं । मैं उन्हें सदा देखता हूँ ।

मन्मथ को भी मैंने अपनी धौँखों सं देखा है । वह, कमल-सदृश अरुण नयनों तथा विशाल हाथों से युक्त इन वीरों की चरण धूलि की भी समता नहीं कर सकता । फिर, ये वीर कौन हैं ?

इनके शरीर में तीनों लोकों को अपना स्वत्व बनानेवाले उत्तम पुरुष के लक्षण विद्यमान हैं । कमलभव देवी (लक्ष्मी) का उपमान कहने योग्य एक रमणी इनके साथ चल रही है । मैं नहीं जानता कि ये धनुर्धारी वीर कौन हैं ।

ये नील तथा रक्तवर्ण पर्वतों के जैसे रूपवाले हैं । विजयलक्ष्मी से शोभित वक्ष-वाले हैं । अरुण नयनवाले हैं । ये दोनों वीर, मेरे सुहृद अपूर्व सदगुणों से पूर्ण चक्रवर्तीं (दशरथ) के जैसे हैं ।

वह (जटायु) मन में इस प्रकार अनेक तर्क-वितर्क कर रहा था । उसके मन में कठोर शस्त्रधारी उन वीरों के प्रति प्रेम उमड़ आया । उसने प्रश्न किया—उत्तम तथा दृढ़ धनुष को धारण करनेवाले, वृषभ-सदृश (बलवान्) आप कौन हैं ?

उसके यो प्रश्न करने पर, पुष्प-मालाओं से अलकृत, सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का वचन न बोलनेवाले इन वीरों ने उत्तर दिया—शब्दायमान विशाल सागर से आवृत धरती की रक्षा करनेवाले वीर-ककणधारी चक्रवर्तीं (दशरथ) के हम पुत्र हैं ।

उनके यो कहने पर, उमड़ते हुए हर्ष-रूपी समुद्र में निमग्न होकर प्रेम से उनका आलिंगन करने के लिए वह (उस पर्वत पर से) नीचे उत्तर पड़ा और बोला—हे सुरभित हारों को धारण करनेवाले वीरो ! उस चक्रवर्ती की पर्वत-समान विशाल भुजाएँ बलशाली तो हैं न ?

ज्योंही (उन वीरो ने) यह कहा कि वे (चक्रवर्ती) अविस्मरणीय सत्य की रक्षा करते हुए स्वर्ग सिधार गये, त्योंही उनकी मृत्यु का हाल जानकर वह शोकोद्धिन्द्र हो उठा और फिर मूर्छित हो गिर पड़ा ।

तब उन दोनों ने अपने विशाल हाथों से उसे उठाया तथा अपने अश्रुओं से उसके मुख को धोया । अपने प्राण (सज्जा) लौट आने पर जटायु शिथिलमन होकर रोने लगा ।

हे राजाओं के राजा ! हे असत्य के शत्रु ! हे सत्य के आभरण ! हे यश के प्राण ! तुम्हारी अवर्णनीय दानशीलता, उज्ज्वल श्वेतच्छुत्र तथा क्षमा के सम्मुख जो उड्ढृपति (चंद्रमा), समुद्र से आवृत धरती तथा उदार कल्पवृक्ष अपनी गरिमा को खो दैठे थे, अब आनंद से जीवित रहेंगे । इस प्रकार तुम याचकों को, सद्धर्म को एवं सुक्षकों यह शोक भोगने के लिए छोड़कर चले गये ।

हे महाराज । शोभा बद्धानिवाले तथा लोकों की अमृत प्रदान करनेवाले श्वेतच्छत्र में युक्त । समुद्र में आवृत इस धरती की रक्षा का भाग त्याग कर क्या मेरे अस्थिर प्रेममय मित्र की परीक्षा करने के लिए ही तुम यो चले गये हो ? हे नायक । हाय । पापकर्मी मैं, मित्र-वर्म से स्खलित होकर अभी तक जीवित हूँ ।

हे दोप मेर हित परिशुद्ध मनवाले । दही को मथनेवाली मथानी के समान लोकों को दुख देनेवाले शवरासुर को जब तुमने परगस्त किया था, तब तुमने सूख्म मृत्तिका से भरी इस धरती के सब लोगों के मम्मुख अपने को ढेह और मुझे प्राण कहा था । तुम्हारे वचन अवधार्थ नहीं होते । विवेक-रहित यम प्राणों को छोड़कर शरीर को ही स्वर्ग ले गया है ।

मैं अब अपनी कीर्ति को बढ़ाते हुए प्रज्वलित अग्नि मे गिरूँगा । अन्यथा, भीरु त्रियों के समान धरती पर गिरकर विलाप करना क्या मेरे लिए उचित होगा ? यों कहकर आत्मजानी के जैसे वह उठा और उन (राम-लक्ष्मण) को देखकर दोला—सत लोकों को अपने अधीन बनानेवाले हे कुमारों । सुनो—

दक्ष प्रजापति की पचास पुत्रियाँ थीं । जो पीन स्तनोवाली सुन्दरियाँ थीं । उनमें तेरह पुत्रियों से काश्यप ने विवाह किया । उनमें से अदिति ने तैतीम करोड़ सुरों को जन्म दिया और काजल-लगी आँखोंवाली दिति ने उन (सुरों) मे दुगुने असुरों को जन्म दिया ।

दक्षु ने दानवों को जन्म दिया । मर्ति ने मनुष्य जातियों को जन्म दिया । सुरभि ने गायों, अश्वों और अन्य जन्तुओं को जन्म दिया । क्रोधवशा ने गर्दभों, हरिणों और कैटों को जन्म दिया ।

संघनुल्य केशोंवाली विनता ने घन की विद्युत् को, अरुण ने गरुड को पल्लव-तुल्य परवन्नाले उत्तूक को तथा चील आदि पक्षियों को जन्म दिया । (त्रियों में) रत्न-तुल्य ताम्रा ने गोरैया, कौदारी, 'काँड़' आदि (छोटे) पक्षियों को जन्म दिया । कला नामक लता-सदृश महिला ने लता-गुलमों को जन्म दिया ।

कद्मु नामक विद्युल्लता-सदृश त्री ने अनेक भयकर फनोंवाले सर्पों को जन्म दिया । सुधा ने एक शिरवाले नागों को जन्म दिया । अरिष्ठा ने गोह गिरगिट, गिलहरी आदि जन्तुओं को जन्म दिया । इडा ने जलचरों को जन्म दिया ।

अदिति, दिति, हनु अरिष्ठा, सुधा, कला, सुरभि, विनता, मर्ति, इडा, कद्मु, क्रोधवशा, ताम्रा—इन्होंने भी क्रमशः इन सब को जन्म दिया । विनता के पुत्र अरुण के कोमल मुजाहों तथा वाल-चन्द्र तुल्य ललाटवाली रमा से हम (अर्थात्, सपाति और जटायु) उत्पन्न हुए ।^१

योवन की शोभा में युक्त हे कुमारो ! मैं अरुण का पुत्र हूँ । जिन-जिन लोकों में वे (अरुण) व्याप्त होते हैं, उन-उन लोकों में जाने की शक्ति मैं रखता हूँ । उन दशरथ का, जिन्होंने (लोकों के) अधकार को दूर करते हुए शामन-चक्र को चलाया था, मैं प्राण-प्रिय मित्र हूँ । जिस समय देव तथा अन्य जातियों का विभाजन हुआ था, उसी समय मैं उत्पन्न हुआ । मैं गृहराज सपाति का अनुज जटायु हूँ ।

^१ उपर के पाँच पद प्रचिन जान पड़ने हैं । —अनु०

उस (जटायु) ने जब ये वचन कहे, तब पर्वत-सदृश कधोवाले उन (राम-लक्ष्मण) ने अपने कमल-करों को छोड़कर प्रणाम किया । उस समय प्रेम के कारण उत्पन्न अत्यधिक वेदना से अपने कमल-सदृश नयनों से अश्रु वहाते हुए इस प्रकार हुए, मानों धरती पर अपार यश को छोड़कर स्वर्ग में पहुँचे हुए अपने पिता (दशरथ) को ही पुनः लौटे हुए देख रहे हो ।

सुन्दर गुणोंवाले उन वीरों को अपने दोनों पखों से आलिंगन करके (जटायु ने) कहा—हे पुत्रो ! अब तुम ही मुझ पापकर्मवाले की भी अतिम क्रिया करके मेरा उपकार करो । हमारे दो शरीरों के लिए एक ही प्राण बने हुए वे (दशरथ) जब चल वसे, तब भी यह मेरा शरीर सुखपूर्वक अवतक जीवित है । यदि मैं इस शरीर का मोह छोड़कर अभी इसे अग्नि में ने डाल द्दें, तो इस दुःख को मैं कभी भूल नहीं सकूँगा ।

इस प्रकार कहनेवाले गृहराज को देखकर घनी पुष्ण-मालाओं से विर्माषत उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और अपने नयनों में मोती-जैसे अश्रुओं को अधिकाधिक बहाते हुए ये वचन कहे—

जबतक चक्रवर्तीं जीवित रहे, वे हमारी रक्षा करते थे । वे अपने सत्य की रक्षा के लिए, (अपने शरीर का) कुछ भी विचार न करके स्वर्ग सिधार गये । अब हे महाभाग ! तुम भी यदि हमें छोड़कर चले जाओगे, तो हमारा अवलव कौन रह जायगा ?

हे धर्म का कभी त्याग न करनेवाले । जिनका वियोग असह्य होता है, ऐसे पिता, माता तथा सुखद नगर से विछुड़कर भी तुम्हारे कारण हम बन में आने के दुःख से मुक्त हुए हैं । अब क्या तुम भी हमें छोड़कर जाना चाहते हो ?

जब वे वीर इस प्रकार प्रार्थना करते हुए, दुःखी मन के साथ खड़े रहे, तब उन्हें देखकर जटायु ने कुछ विचार कर कहा—हे तात ! यदि मेरा इस समय मर जाना तुम्हें स्वीकार नहीं हो, तो तुमलोग जब अयोध्या वापस पहुँचोगे, तब मैं उन चक्रवर्तीं (दशरथ) के पास जाऊँगा ।

यदि चक्रवर्तीं स्वर्ग सिधार गये, तो तुम वीर राज्य का भार वहन किये विना इस बन में क्यों आये हो ? तुम्हारे इस कार्य से मेरी बुद्धि चकरा रही है । अतः, सारा वृत्तात ठीक-ठीक कहो ।

पत्राकार अति तीक्ष्ण मनोहर तथा रक्त के चिह्नों से युक्त शूल को धारण करनेवाले हैं वीरो ! बलवान् देव हो, दानव हो, नाग हो अथवा अन्य कोई भी हों, यदि वे तुम्हें कुछ कष्ट देंगे, तो मैं उनके प्राण हरूँगा और तुम्हें राज्य प्रदान करूँगा ।

तात (जटायु) के यो कहने पर सीता-पति ने अपने अनुज की ओर देखा । तब उस (लक्ष्मण) ने अपनी विमाता के कारण उत्पन्न सारी घटना को सपूर्ण रूप से कह सुनाया ।

तब जटायु ने राम से कहा—तुम अपने पिता के सत्य-वचन की रक्षा के लिए अपनी विमाता की आशा को शिरोधार्य करके पृथक्षी (के राज्य) को अपने भाई (भरत) को सौंपकर यहाँ आये हो । हे वदान्य ! मेरे तात ! तुमने जो साहसपूर्ण कार्य किया है, उसे और कौन कर सकता है ?

यो कहकर कमल-ममान नवनीवाले (राम) वा प्रेम से आँखिंगन करके उनका सिर सूँधा और बानन्दाशु वहाते हुए कहा—हे समर्थ कुमार ! हमने उन चक्रवर्ती को तथा मुझको अपार यश दिया है ।

फिर, उस महात्मा (जटायु) ने कक्षणों से भूषित हस-सदृश देवी (सीता) को देखकर (राम मे) पूछा—हे चक्रवर्ती कुमार ! यह त्वी कौन है ? कहो ।

तब राम के अनुज ने पूर्वकाल मे नाकार अधकार-सदृश ताड़का के वध से लेकर शिव-धनु का भग करने तक की मारी घटनाएँ तथा बन-गमन तक के अन्य प्रसुग भी कह दुनाये ।

उज्ज्वल शिरवाले वयंवृद्ध (जटायु) ने मब सुनकर आनन्दित होकर कहा—पुष्ण-मालाओं से भूषित हे कुमारी ! समृद्ध देश को त्यागकर आये हुए हुमलोग उज्ज्वल ललाटवाली (सीता) के नाथ उनी बन मे निवास करो । मैं तुमलोंगों की रक्षा करूँगा ।

तब सबके हृदयों मे निवास करनेवाले (राम) ने (जटायु से) कहा—हे तार ! वगस्त्व सहर्षि ने विचार करके, एक अर्ति सुन्दर नदी के तट पर स्थित एक स्थान के बारे मे कहा है ।

तब जटायु ने कहा—वह महिमापूर्ण स्थान वहुत ही अच्छा है । हुमलोग वहाँ रहकर अपने धर्म का निर्वाह करो । आओ । मैं तुम्हे वह स्थान दिखाता हूँ—यों कहकर उनपर अपने विशाल पखों की छावा करता हुआ वह गगन-मार्ग से उड़ने लगा ।

परिशुद्ध चित्तवाले तथा दोपहीन गुणवाले उम जटायु ने उन्हे (पचवटी नामक) उस स्थान को दिखाया और फिर चला गया । उन धनुर्धारी वीरों ने उन सुन्दर उद्यान मे अपना निवास बनाया ।

वहाँ के राज्ञों के बल को अनदिरघ व्यप से जाननेवाला जटायु उचित ढंग से विचार करके कच्चुकावढ़ स्तनोवाली वधू (सीता) की एव अपने पुत्र (सदृश राम-लक्ष्मण) की, घोसले मे रहनेवाले अपने वचों की तरह रक्षा करता रहा । (१-४८)



अध्याय ५

शूर्पणखा पटल

उन वीरों (राम और लक्ष्मण) ने उस गोदावरी नदी को देखा, जो धरती का वाभरण थी, उच्चम पदार्थों को प्रदान करनेवाली थी, अनेक धाराओं मे प्रवहमाण थी । उष्णता को शात करनेवाले धाटों से शोभित थी, एव पचविध भगिमार्यों से ढुक्क थी । (अर्थात्, १. पर्वत, २. अरण्य, ३. नगर, ४. समुद्र, एव ५. मर नामक पाँचों प्रदेशों मे वहती थी तथा पूर्वोक्त पाँच प्रदेशों में होनेवाले मनुष्य के व्यापारों का वर्णन

करनेवाली थी । वहुत स्वच्छ थी । शीतल गुणवाली थी । यो वह नदी उत्तम कवि की कविता के समान थी ।^१

वह दिव्य नदी भ्रमरो से गुजित, कमलपुष्प-रूपी अपने बदन को विकसित किये, सुरभित नीलोत्पल-रूपी नयनो से एकटक देखती हुई, क्रमशः एक के पश्चात् एक करके आनेवाली लहरों के करो से उत्तम पुष्पों को बिखेर रही थी, मानो उन प्यारे कुमारो के चरणों की पूजा करके उनको प्रणाम कर रही हो ।

चन्द्र जल से पूर्ण वह नदी, निरपराध तथा सत्य-युक्त उन कुमारो को बन-जीवन के कष्ट उठाते देखकर, उमडते हुए प्रेम से, सदोचिकसित नीलोत्पल-समुदाय-रूपी अपने मनोहर नेत्रो से अश्रु-बिंदु वहाती हुई, अत्यन्त द्रवित होकर मानों दहाड मारकर रो रही थी ।

दीर्घ धनुधरी (राम), नाल-सयुक्त कमलपुष्प-रूपी शश्या पर युगल नयनो के जैसे विश्राम करनेवाले चक्रवाक-मिथुन को देखते और अपनी प्रियतमा (सीता) के वक्ष की ओर दृष्टि फेरते तथा उत्तम आभरणों से भूषित सीता महिमावान् प्रभु (राम) के कधों में रमे हुए अपने मन के साथ उन्हीं (कंधों) के जैसे शोभित होनेवाले रत्नमय पुलिनो की ओर देखती ।

उत्तम प्रभु (राम), हसों को (उनके आने की आहट पाकर) वहाँ से हट जाते हुए देखकर अपने समीप में आनेवाली सीता की पदगति को निहारते हुए मदहास करते । तब वहाँ पर आकर, जल पीकर लौट जानेवाले मत्तगजो को देखती हुई वह देवी भी एक नवीन मद-सुस्कान से खिल उठती ।

धनुष को अपने विशाल कर में धारण करनेवाले वीर (राम), जब जल से समृद्ध उस नदी में लताओं को हिलते हुए देखते और अपनी प्रियतमा की कटि को देखते, तब सीता अधकार-सदृश कातिवाले मनोहर कुवलय-पुष्पों के मध्य अरुण कमल को विकसित देखती और (उस दृश्य में) अपने प्रभु के सौदर्य को देखती ।

राम, इस प्रकार चलकर उस नदी के निकट, शीतल ‘पच्चवटी’ नामक पुष्पभरे उद्यान में जा पहुँचे और वहाँ अनुज के द्वारा निर्मित एक सुन्दर पर्णकुटी में निवास करने लगे । फिर एक दिन—

(शूर्पणखा उस आश्रम में आ पहुँची) जो नीलरत्न-समान कातिवाले राक्षस—

१. तमिल काव्य-लक्षणों के अनुसार कविता में ‘तुरै’ और ‘तिणै’ नामक दो लक्षण होने चाहिए ।

तुरै का अर्थ है ‘अहम्’ और ‘पुरम्’ । ये क्रमशः मनुष्य के आत्मिक भाव और वाह्य-च्यापार को व्यक्त करते हैं । पुरम् की अपेक्षा अहम् को व्यक्त करनेवाली कविता अधिक सुन्दर होती है । नवरसों में शू गर को अहम् में और अन्य रसों को पुरम् में अत्तर्भूत किया जा सकता है । ‘तुरै’ शब्द में श्लेष से घाट का अर्थ भी है । तिणै का अर्थ है पाँच प्रकार के प्रदेश । इन्हीं पाँच प्रदेशों की भूमिका पर मनुष्य-जीवन की सुख-दुःखात्मक विभिन्न दशाओं का चित्रण करना प्राचीन तमिल कवियों की परिपाठी रही है । नदी और कविता—दोनों का सबध इन पाँच प्रदेशों से दिखाया गया है । यह पद कंबन की कविता-कौशल का एक सुन्दर नमूना है । —ले०

राज (रावण) के समूल विनाश का कारण बननेवाली थी और किसी के जन्मकाल में ही उनके प्राणों के साथ उत्तम होकर, अपना प्रभाव दिखाने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करती हुई किसी व्याधि के सदृश थी ,

जो ताँवे के जैसे लाल और धने केशोवाली थी । राहु को भी मट कर देनेवाले शुरौर ने युक्त थी । स्वर्ग के देवों, तर्पस्त्वयों तथा समुद्र से आवृत धरती के लोगों का एक साथ विनाश करने वी शक्तिवाली थी ।

किसी क्रूर कार्य के हृत अकेले ही उस वन में निवास करनेवाली थी । वह ऐसी वृक्ष थी कि इन सारे सासार में स्वर्वत्र अनायास ही धूम सकती थी । ऐसी वह (शर्पणखा) राघव के निवासभूत उस आश्रम में आई ।

अपने वधुजनों का अत खोजनेवाली उस शर्पणखा ने, पूर्वकाल में पूजनीय देवताओं की इस प्रार्थना पर कि—‘राज्ञस लोग हमारा विरोध करते हैं, इसलिए आप उनका नाश बर्दैः, अदिशेष पर योगनिद्रा छोड़कर सासार में अवतीर्ण हुए प्रसु को देला ।

वह सोचने लगी—मन में रहनेवाले (मन्मथ) के आकार नहीं होता । देवन्द्र के नहक्त नयन होते हैं । शिवजी के बमल-तुल्य नयन तीन होते हैं । अपनी नाभि से सारी लृष्टि की रक्षा करनेवाले (विष्णु) के चार भुजाएँ होती हैं । (अतः, यह उनमें से कोई नहीं है ।)

वह फिर विचार करने लगी—तो क्या जटान्जू से शोभित (शिव) के (ललाट) नेत्र से देखे जाने ने जलकर अनग बना हुआ वह (मन्मथ) ही, श्रेष्ठ तप करके अब पहले से भी अधिक सुन्दर हृष प्राप्त करके यहाँ आया है ।

वह सोचने लगी—इसकी मनोहर वाहुएँ, उत्तम लक्षणों से पूर्ण हैं । (आजानु) लवी होकर सुपमा का निवास-स्थान बनी हैं । वृक्ष भी इनकी समता नहीं कर सकते । पर्वत भी इनके सम्मुख छुट्ट हैं । तो क्या ये बल से प्रभूत दिग्गजों की सूँड़े ही हैं ?

घनुरुद्ध में निषुण इस व्यक्ति के चीरतापूर्ण कधों की समता शिलाम्य पर्वत भी नहीं बर सकते । किसी अत्युत्तम इन्द्रनील रत्न के पर्वत को छोड़कर, प्रख्यात मेर-पर्वत भी, स्वर्णमय होने ने, इन (कधों) की समता नहीं कर सकता ।

नाल पर उठे हुए रक्तमल के दलों की समता करनेवाले इसके नयनों तथा पर्वत के समान उत्तम आकार से शोभायमान इस पुरुष की, एक कर्व से दूसरे कर्वे तक फैले हुए (वृक्ष) प्रदेश को दृष्टि-पथ में लाने की चेष्टा कहें, तो मेरे नेत्र इतने विशाल नहीं हैं कि इस विशाल वृक्ष को पूर्णतया एक साथ देख सकें ।

वह सुन्दर वर्ति-उच्चल वदन क्या प्रमुख बमल के जैसा है ? (नहीं, उससे भी अधिक सुन्दर है) । क्या किरणों से पूर्ण चन्द्र को (इसके वदन का) उपमान कहें ? पर उस (चन्द्र) की क्लाएँ तो क्षीण होती रहती हैं । वह जब पूर्ण रहता है, तब भी उस में बलक रहता है (अतः, वह इसके वदन का उपमान नहीं हो सकता) ।

ऐसे मनोवृत्त साँचर्य से पूर्ण यह पुरुष किस प्रयोजन से, व्यर्थ ही अपने सुन्दर शरीर

को कष्ट देता हुआ यो व्रताच्चरण कर रहा है ? न जाने तपस्या ने स्वयं कैसी तपस्या की है कि ऐसे नवीन कमल-तुल्य नयनों से युक्त यह पुरुष उस (तपस्या) को अपनाये हुए है ?

समुद्र-रूपी वस्त्र से शोभित, सुन्दर रूपवाली, गज की गति से युक्त पृथ्वी का स्त्रीत्व भी कैसा (सार्थक) है ? उसपर उगी हुई हरियाली ऐसी है, मानो इस पुरुष के पदतल के स्पर्श से वह (पृथ्वी) पुलक से भर गई हो ।

कटि में बैधे हुए करवाल से शोभित इस पुरुष की उज्ज्वल काति को दिनकर ने कदाचित् देखा ही नहीं है । इसीलिए, मन में लजा का अनुभव न करके, वह दूर तक अपनी किरणों को प्रसारित करता हुआ सच्चरण करता है ।

दुलैंघ्य महान् पर्वत को भी जीतनेवाले उन्नत कधों से युक्त इस पुरुष के अधर का ससार में उचित उपमान क्या हूँ ? है मन । यदि प्रवाल से इसकी उपमा हूँ, तो तू मेरा धिक्कार करेगा (क्योंकि वह उपमान-योग्य नहीं है) । अब किस उत्तम पदार्थ को इसका उपमान बताऊँ ?

सब कलाओं से पूर्ण चद्रमा के समान शोभायमान इस सुन्दर की, सूर्य को भी (अपनी काति से) विचलित करनेवाली कटि को प्राप्त करने के लिए, न जाने, इन वल्कलों ने कौन-सा तप किया था, दोषहीन पीतावर ने कदाचित् वैसा तप नहीं किया ।

लवे, धूँधराले, भुकी हुई मेघ-पक्षियों के समान दीखनेवाले, मध्य में टेढ़े एवं काले केश-पाश को, यदि इसने जटा बनाकर न पहन लिया होता, तो उसे देखकर सब युवतियों के प्राण निकल गये होते ।

प्रकट प्रकाशवाले उत्तम आभरण भी यदि (इसके शरीर को) प्राप्त करें, तो क्या वे इसके सौंदर्य को बढ़ा सकेंगे ? क्या अच्छे लक्षणों से युक्त अनुपम रत्न किसी दूसरे रत्न को धारण करके और अधिक प्रकाश से चमक उठेगा ?

जो इन्द्र, वर प्राप्त करके भी इसके परस्पर तुल्य, चरणों की धूलि की भी समता नहीं कर सकता, वह सब लोकों पर शासन करता है । (किन्तु) इस (राम) में ब्रह्मा ने सब उत्तम लक्षणों को प्रकट किया है, फिर भी यह अरण्य में निवास करता है । इस कारण ब्रह्मा भी निन्दा का पात्र हो गया है ।

उस (शूर्पणखा) के मन में ऐसी वासना उमड़ी कि नदी का प्रवाह और समुद्र भी उसके समुख छोटे पड़ गये । उसकी बुद्धि (उस वासना-प्रवाह में) निमग्न हो गई, जिससे उसका शील इस प्रकार क्रमशः घटने लगा, जिस प्रकार धर्म-कार्य के लिए कुछ दान दिये बिना अपने धन को बचाकर रखनेवाले व्यक्ति का यश घटता है ।

उस समय वह शूर्पणखा गगन पर अंकित चित्र-प्रतिमा के समान थी । उसका मन मलिन हुआ । उसमें वेदना उत्पन्न हुई । प्रमुख की प्रकाशमान सुन्दर मुजाहों में अपनी दृष्टि गडाये, उस (दृष्टि) को फिर खीच लेने में असमर्थ होकर वह स्तव्य खड़ी रही ।

वह इसी प्रकार खड़ी रही । फिर, यह विचार कर कि इसके विशाल वक्ष का आलिंगन करूँगी, अन्यथा अमृत पीने पर भी मेरे प्राण नहीं बच सकेंगे । अब और कोई उपाय नहीं है—उन (राम) के समुख जाने का उपाय सोचने लगी ।

‘खड्गदत्तवाली वह राज्ञी सब प्राणियों को अपने उदरस्थ करनेवाली (राज्ञी) है’—यो सोचकर कही वे मेरा तिरस्कार न कर दें, इसलिए उम (शूर्पणखा) ने कोकिल-तुल्य मधुर वाणीवाली तथा विव-ममान रक्षाधर से शोभित कलापी-तुल्य सुन्दर रमणी का वेप धारण किया।

उमने रक्षकमल पर आसीन लक्ष्मी का अपने मन में ध्यान किया। अपने वश में स्थित किनी मत्र का जप किया और चद्र से भी अधिक सुन्दर वदनवाली सुन्दरी का रूप लेकर गगन-तल में अपनी काति को विखेरती हुई नीचे उत्तर आई।

त्वं को एव रचिर पल्लव ढल को भी दुखानेवाले अरुण मनोहर कमल-दल-से लगनेवाले उमके छाँटे-छाँटे पैर थे। वह मायाविनी (शूर्पणखा), मधुर वोलीवाली पिक-बवनी-मी, कलापी-नी, हसिनी-मी, उज्ज्वल वजि लता-सी एव विप-मी बनकर वहाँ आई।

स्वर्ण-पराग से युक्त कमल में वास करनेवाली (लक्ष्मी) देवी के सौंदर्य को तथा शुक के सौंदर्य को भी परास्त कर देनेवाले उत्तम सौंदर्य से युक्त होकर, दो चमकते करबालों (अर्थात्, नयनों) से शोभायमान वटन के साथ, वह (गगन-तल से) यों उत्तर आई, मानों विद्युलता ही मेखला-भूषित विशाल तथा मनोहर रथ (अर्थात्, जघन तट) से युक्त होकर, एक सुखा का रूप धारण करके उत्तर रही हो।

मानों अति सुरभित कल्पवृक्ष की कोई प्रकाशमान लता, एक सुन्दरी का वेष धारण करके, अधिकाधिक वहनेवाली कासुकता तथा मधु-सद्वश मधुर वोली को पाकर, नेत्रों को आनन्द देनेवाले लावण्य से युक्त होकर, अनुपम हरिणी की चितवन ग्रास करके कलापी के समान चली आई हो।

(उम शूर्पणखा के) नूपुर, मेखला, हार, काली सिकता के समान केशों में गुँथे हुए पुष्पों पर मेडरानेवाले भ्रमर—इन मवकी ध्वनि यह सूचना दे रही थी कि कोई युक्ती आ रही है। चक्रवर्ती कुमार (राम) ने उस ध्वनि की दिशा में दृष्टि डाली।

‘स्वर्ग के द्वारा प्रदत्त कोई अनुपम मधुर अमृत हो’—ऐसी वह सुन्दरी, मनोज्जस्तनों के भार से कमर लचकाती हुई आ रही थी। अजान को दूर करके उत्तरोत्तर वहनेवाले मत्य-ज्ञानस्पी नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् (के अवतार राम) ने अपने दोनों नयनों में उन्मे अपने ममुख देखा।

विशाल प्रदेशवाले नागलोक में, स्वर्गलोक में एव भूलोक में भी अप्राप्य उस उपमा-रहित ल्ली-लावण्य को देखकर राम ने सोचा—यह कौन है? इसकी सुन्दरता की भी कोई सीमा है? आभरण-भूषित सुन्दरियों में इसका उपमान कौन हो सकता है?

उम समय, कामना में पूर्ण हृदयवाली उम (शूर्पणखा) ने (राम का) वटन देखा। अपने अरुण करों से उनके चरणों का स्पर्श किया। फिर अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्र-रूपी शूलों को उनपर फेककर कटाक्ष-पात करती हुई, हरिणी के समान लज्जा-सी दिखाती हुई, एक ओर खड़ी रही।

वेदों के वादि (प्रकाशक) उन (राम) ने उससे प्रश्न किया—हे लक्ष्मी-समान देवी! गौणवर्ण सुन्दरी! तुम्हारा आगमन मगलप्रद हो। यह हमारा पुण्य ही तो है कि

तुम्हारा आगमन हुआ है । तुम्हारा स्थान कौन-सा है ? नाम क्या है ? बंधु-जन कौन है ? तब उस मुख्या ने अपना वृत्तात यो कहा—

कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (पुलस्त्य) के कुमार (विश्वसु) की मै पुत्री हूँ । त्रिपुर-दाह करनेवाले वृषभ-वाहन (शिव) के मित्र रक्त करोंवाले (कुवेर) की भगिनी हूँ । दिग्गजो का बल चूर-चूर करके रजत-पर्वत को उठानेवाले, त्रिलोक का शासन करनेवाले रावण की कनिष्ठा (बहन) हूँ । मै कामवल्ली कहलाती हूँ ।

ये वचन सुनकर वीर (राम) ने संशय-भरे चित्त के साथ सोचा कि इसका कार्य कपट-रहित नहीं है । इससे और कुछ प्रश्न पूछकर इसका हाल जानना चाहिए । फिर, प्रश्न किया—यदि यह कथन सत्य है कि तुम रक्तनेत्रवाले, भयंकर आकारवाले (रावण) की बहन हो, तो तुम्हे यह मनोहर रूप कैसे मिला ?

उन पवित्र पुरुष (राम) के यो पूछने के पूर्व ही, स्फूर्ति के साथ कह उठी—मायावी तथा क्रूर राक्षसों के साथ रहना अनुचित समझकर, विवेकशील होकर मैने धर्म को अपनाया और उसी पर स्थिर रहने लगी । फिर ऐसा तप किया, जिससे मेरे पाप मिट गये और देवों का अनुग्रह प्राप्त हुआ ।

तब राम ने प्रश्न किया—हे सुन्दरी ! देवताओं का अधिपति भी जिसकी सेवा करता रहता है, ऐसे त्रिभुवन के शासक (रावण) की तुम बहन हो, तो समृद्धि-वैभव के साथ न आकर, किसी को साथ लिये विना एकाकी यहाँ क्यों आई हो ?

वीर के यह पूछने पर सत्यरहित (शूर्पणखा) ने कहा—हे विमल ! हे प्रभु ! मै असज्जन (रावण आदि) लोगों के समीप नहीं जाती हूँ । देवताओं तथा उत्तम मुनियों के संग मैं रहती हूँ । यहाँ एक काम से तुम्हारे दर्शन करने आई हूँ ।

उसके यह कहने पर प्रभु ने यह सोचकर कि सुन्दर ललाटवाली स्त्रियों का हृदय सुलभता से ज्ञात नहीं होता, इसका हृदगत भाव पीछे प्रकट होगा, कहा—हे ककन-भूषित हाथोवाली ! सुझसे तुम्हें क्या कार्य है ? बताओ । यदि उचित होगा, तो वह कार्य पूर्ण करके तुम्हारा उपकार करूँगा ।

कुलीन स्त्रियों के लिए यह सम्भव नहीं है कि वे अपने हृदय के काम-भाव को स्वयं ही प्रकट कर सकें । फिर भी, मै ऐसी हूँ कि मेरा कोई नहीं है । पर मैं क्या करूँ ? काम नामक एक (दुष्ट) के अत्याचार से तुम मेरी रक्षा करो ।—यो उस स्त्री ने कहा ।

दूर तक जाकर अवस्थ हो लौट आनेवाले, विखरी हुई लाल-लाल रेखाओं से युक्त, नानाविध भगिमाएँ दिखाते हुए, चमचमानेवाले काले रगवाले तथा करवाल-सदृश नेत्रों एव आभरण-भूषित स्तनों से शोभित उस (शूर्पणखा) के ये वचन कहने पर, प्रभु ने विचार किया—यह लज्जाहीन है । नीच स्वभाववाली है । मायाविनी है । इसमें किंचित् भी सदृगुण नहीं है ।

मौन रहनेवाले उदार प्रभु के हृदय का भाव वह नहीं जान सकी । भ्रमर-समुदाय के गुजारों से युक्त कुतलोवाली यह (शूर्पणखा) ‘मेरे वचनों से मुझपर अनुरक्त हुआ है

अथवा मुझे 'नाही' कहनेवाला है' वो सकल्प-विकल्प में दोलायमान चित्तवाली होकर आगे इस प्रकार कहने लगी—

चित्रित करने के लिए दुस्साध्य सौंदर्य से पूर्ण। तुम्हारे यहाँ आगमन का समाचार नहीं जानने से मैं सर्वज्ञ मुनियों के आशानुसार उनकी सेवा में ही निरत रह गई। मेरे कलकहीन स्त्रीत्व एवं यौवन यों ही व्यर्थ व्यतीत हुए। यों ही एक-एक दिन एवं उसका प्रत्येक पल व्यर्थ ही चले गये।

यह सुनकर प्रभु ने मन में यह विचार कर कि यह नीच राक्षसी नीति-रहित है, अनैतिक कार्य करने का निश्चय करके यहाँ आई है, उससे कहा—हे सुन्दरी! तुम्हारी इच्छा परपरागत आचार के अनुकूल नहीं है। तुम ब्राह्मण जाति में उत्पन्न हो और मैं क्षत्रिय वश का हूँ।

(तब शूर्पणखा ने कहा—) हे युद्ध के अलकारभूत भाले को धारण करनेवाले। मेरे पिता ब्राह्मण हैं, किंतु अश्वत्थी-सदृश पातिव्रत्ववाली मेरी माता धरती का राज्य करनेवाले 'सालकटकट' के वश में उत्पन्न हैं। यदि मुझे स्वीकार करने में यही (वर्थात्, मेरा ब्राह्मण-जन्म में उत्पन्न होना ही) कारण है, तो मेरे प्राण अब बच गये। भाव यह है कि मेरा पिता ब्राह्मण है, किंतु माता क्षत्रिय है, अतः मैं अनुलोम जाति में उत्पन्न हूँ और शास्त्र-विद्यान के अनुमार कोई क्षत्रिय मुझमें विवाह कर सकता है।

उस कामुकी (शूर्पणखा) के यह कहने पर, अतर के मदहास की उज्ज्वलता बाहर प्रकट करनेवाले नीलवर्ण मेघ-सदृश उन प्रभु ने विनोद-पूर्ण चित्त से कहा—हे स्त्रीरल! दुःखहीन राक्षसों के साथ हम, दुःखी मनुष्य, विवाह करें वह उचित नहीं है। यह बुद्धिमानों का कथन है।

तब उनने कहा—अवर्णनीय प्रेमाधिक्य में युक्त मेरी भक्ति-भावना को न देखकर मुझे रावण की वहन कहना ही अनुचित है। आदिशेष पर लेटे हुए अमल (विष्णु) जैसे हैं सुन्दर ! मैंने पहले ही कहा था कि उस गर्हणीय राक्षस-वश से पृथक् होकर मैं देवताओं की सुर्ति में लगी रहती हूँ।

वंदों के लिए भी अतीत उन भगवान् (के अवतार राम) ने तब उससे कहा—हे सुन्दरी ! यदि विचार करके देखें, तो तुम्हारा एक भाई त्रिभुवन का नायक है, दूसरा कुवेर है, यदि उनमें से कोई तुम्हें प्रदान करे, तो हम विवाह करेंगे। अन्यथा, एकाकी आई हुई तुम किसी दूसरे स्थान में जाओ। मुझे तो (उससे वात करने में भी) आशका हो रही है।

तब उस (शूर्पणखा) ने कहा—हे पर्वत-समान सुन्दर कधोवाले ! जो पुरुष औंग ली, अनुराग से एकीभूत हृदयवाले हो जाते हैं, उनके लिए वेद-विहित विवाह एक गार्थव विवाह ही है न ? यह विवाह हो जाय, तो मेरे भ्राता भी इसे स्वीकार करेंगे और एक वान कहती हूँ।

मेरा भाई (रावण) पहले से ही सुनियों से गहरा वैर रखता है। वह (शत्रुओं का विनाश करने में) नीति का भी विचार नहीं करता। अतः, तुम एकाकी रहनेवाले का

उसके साथ मित्रता ही जाय, इसके लिए यही उपाय है (कि तुम मुझसे विवाह कर लो) । मेरे भाई तुमसे स्नेह करेंगे और चाहो. तो स्वर्ग का राज्य भी तुम्हे दे देंगे और स्वयं तुम्हारा आदेश पूरा करते रहेंगे ।

राक्षसों की कृपा मुझे मिल गई । तुम्हारी संगति भी मिली । अब मैं तुम्हारे संग शाश्वत वैभवपूर्ण जीवन सदा व्यतीत करनेवाला हो गया । उत्तम अयोध्या को त्यागने के पश्चात् मेरे पूर्वकृत तप अनेक रूप में फलित हुए हैं । यों कहकर दृढ़ धनुष के प्रयोग में अभ्यस्त भुजावाले प्रभु अपने दाँतों के उज्ज्वल प्रकाश को दिखाते हुए हँस पड़े ।

इसी समय, ख्याली की रानी, धरती का रत्न, 'वजि' लता समान सुन्दरी देवी (सीता) सुगंधित पर्णशाला के भीतर से, देवताओं के सुकृत के फलस्वरूप, उस मूर्ति के पास आ खड़ी हुई, जो ऐसे प्रकाशमय रूपवान् है, जिसे देखने पर देवलोक, मनुष्यलोक एव पाताल-लोक के निवासी तथा ब्रह्मा प्रभृति देवों की आँखें भी चौधिया जाती हैं ।

मास को पकाकर खाने के लिए ललचानेवाले विल-सद्वश सुँह से युक्त उस (शूर्पणखा) ने दिव्य ज्योति के समान एक रूप को (राम और उसके) मध्य में आकर खड़े होते हुए देखा, मानो उसने नक्षत्रों से प्रकाशमान आकाश और धरती में फैले हुए वीर राक्षस-रूपी वन को जलाने के लिए उत्पन्न हुई पातिव्रत्य-रूपी अभ्य-ज्वाला को ही देखा हो ।

तब वह (शूर्पणखा) यह सोचती हुई कि सुरभिपूर्ण केशोवाली (अपनी पत्नी) को यह पुरुष वन में नहीं लाया होगा, इतनी सुन्दरता से पूर्ण कोई रमणी इस अरण्य में भी नहीं है, लक्ष्मी अरविंद का आवास छोड़कर क्या अपने चरण-युगल को धरती पर रखती हुई यहाँ आ सकती है ?

वह (शूर्पणखा) तन्मय होकर विलब तक (सीता को) देखती खड़ी रही । वह यह सोचती रही—सृष्टिकर्ता की कुशलता की सीमा हो सकती है । किंतु मन से कभी न हटनेवाली (अर्थात्, मन में स्थिर रूप में अंकित रहनेवाली) सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है । फिर सोचा—इसे देखने पर मुझ ल्ली-जन्म में उत्पन्न हुई की आँखें भी अन्य वस्तुओं पर नहीं जा रही हैं । जब मेरा ही मन ऐसा हो रहा है, तब अब दूसरों की (अर्थात्, इसे देखनेवाले पुरुषों की) क्या दशा होगी ?

फिर, उसने युद्ध में निपुण प्रभु को देखा और शुकी-तुल्य देवी को देखा और वैसी ही (स्तब्ध) खड़ी रह गई । फिर, यह सोचने लगी—अब अन्य कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है । कमलभव ने स्वयं सारी सृष्टि का अवलोकन करके, त्रिसुवन के निवासियों में दोनों प्रकार के (अर्थात्, ल्ली और पुरुष) व्यक्तियों की सुन्दरता की पराकाष्ठा बनाकर इन दोनों को उत्पन्न किया है ।

उसने विचार किया—स्वर्ण के जैसे प्रकाश फेंकनेवाले तथा अतसी-पुष्प के जैसे रंगवाले इस पुरुष का शरीर, इस विद्युत-समान सूखम कटिवाली के साथ सयुत नहीं है (अर्थात्, यह पुरुष इस ल्ली का पति नहीं है) । अपनी समता न रखनेवाली, पल्लव-समान चरणोंवाली यह सुन्दरी, मेरे जैसे ही वीच में (इस पुरुष पर आसक्त होकर) आई हुई कोई ल्ली है । इसका तिरस्कार (इस पुरुष से) कराऊँगी ।

तब उस (शूर्पणखा) ने (राम से) कहा—हे उत्तम ! हे वीर ! यह माया में चतुर हैं। यह बचक राज्ञी हैं। इसका हृदय दुर्जय है। इसे सद्गुणवती समझना उचित नहीं है। इसका यह ह्य सत्य नहीं है। यह मास खाकर जीवित रहनेवाली है। इसे देखकर मैं डर रही हूँ। इसे मेरे निकट आने से रोको और मेरी रक्षा करो।

यह सुनकर वीर (राम) बोले—हे विद्युत्-समान छी ! तुम्हारा ज्ञान खूब है। तुम्हे धोखा देने की शक्ति किसमें है ? यह जात हुआ कि तुम्हारी मति स्वच्छ है और तुम नद्गुणवाली हो। अहो ! यह (सीता) कटाचित् क्रूर राज्ञी ही है। इसे तुम भली भाँति देख लो और अपने उज्ज्वल दाँत-ह्यपी मोरियों को दिखाकर हँस पड़े।

उम समय, अमृत के जैसी आई हुई, अरन्धती के सदृश पातिप्रत्यवाली, मधुर दोली एवं वाँम के जैसे सुन्दर कधोंवाली देवी (सीता) वीर (राम) के निकट आ पहुँची। तब भड़कती अग्नि के सदृश बचकगुण से पूर्ण चित्तवाली (शूर्पणखा) यह कहकर (नीता को) धमकाने लगी कि हे राज्ञ-कुल में उत्पन्न छी, तू क्यों बीच में आ पड़ी है ?

हसिनी-हुल्य वह (सीता) भीत हुई। भीत होकर झट (राम की ओर) यों टौड़ी कि उमकी विद्युत्-समान सूक्ष्म कटि लचक गई और कोमल चरण दुखने लगे। यों टौड़कर वह कुजर-समान वीर की पुष्ट सुजाओं से ऐसे लिपट गई, जैसे वर्षाकालिक जल से भरे बाढ़ के मध्य कोई प्रवालमय लता काँध गई हो।

तब वीर (राम) ने यह सोचकर कि वक्त खड़गदतवाले राज्ञों के साथ विनोद करना भी दुरा ही होगा, उस (शूर्पणखा) से कहा—तुम कोई अहितकारी कार्य न करो। (मेरा) बनुज यदि तुम्हारा समाचार जान लेगा, तो वह अत्यन्त कुद्द होगा। हे छी ! तुम शीघ्र यहाँ से चली जाओ।

लावण्य से युक्त उस राज्ञी ने कहा—कमल में, जल में और कैलास में निवास करनेवाले करणा-पूर्ण हृदयवाले देव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव), अनग तथा अन्य देवता भी सुर्खे प्राप्त करने के लिए तपस्या करते हैं। ऐसी हूँ मैं। मेरी उपेक्षा करके तुम क्षमाहीन इस मायाविनी को चाहते हो, यह कैसे उचित है ?

तब पवित्र चित्तवाले (राम), यह सोचकर कि यह शिलाहुल्य कठोर चित्तवाली (राज्ञी), मेरे यह कहने पर भी कि मैं तुमसे सबध रखना नहीं चाहता हूँ, हटती नहीं है, किन्तु कपट-चचन कह रही है—मिथिलापति की पुत्री के साथ विद्युत् के साथ चलनेवाले मेघ के जैसे उस सुन्दर उद्यान के बीच स्थित कुटी में चले गये।

उनके चले जाने के बाद, यह जानकर कि वे चले गये हैं, शूर्पणखा शरीर से निकले हुए प्राणों के साथ इवासहीन हो गई। मन में अत्यत विहँल हुई। उसे कुछ अवलवन नहीं मिला। मन में कुद्द हुई और सोचने लगी—अजन-समान काले केशोंवाली उस नारी पर यह पुरुष गहरा प्रेम रखता है।

इस प्रकार चिंतित होकर, वह वहाँ खड़ी नहीं रह सकी। वह उम पुरुषोत्तम की सर्वति प्राप्त करने का उपाय सोचती हुई वहाँ से चली गई। यह सोचकर कि यदि मैं इसके शरीर का आलिगन नहीं करूँगी, तो अपने प्राण खो दूँगी, स्वर्ण-पराग से पूर्ण सुन्दर उद्यान

में स्थित अपने स्फटिकमय आवास में जा पहुँची। सूर्य भी पश्चिम दिशा में जा पहुँचा और लाली छा गई।

वह (शूर्पेणखा) इस प्रकार प्रजाहीन और शिथिल हो गई, मानों काल-सर्प के छेदवाले दत से निकला हुआ विष उसकी देह में सचरण कर रहा हो। प्रख्यात कामाग्नि (उसके शरीर में) भड़क उठी।

युद्धकुशल मन्मथ के तीव्रण वाण उसके बक्ष में ऐसे जा लगे, जैसे ताड़का नामक क्रूर राक्षसी के विशाल बक्ष में पुरुषोत्तम (राम) का तीव्रण शर लगा था, इससे उसके भीत प्राण काँप उठे।

वह (काम-वेदना से पीड़ित) राक्षसी यह विचार करके उठी कि कलाओं से पूर्ण चन्द्रमा को साग बनाकर दृढ़ धनुर्धारी मन्मथ को ही चबा डालूँ, किन्तु मलय पर्वत से आनेवाला पवन, जब यम के दीर्घ शूल के समान उसके बक्ष पर लगा और पीड़ा उत्पन्न करने लगा, तब वह निष्क्रिय होकर गिर पड़ी।

(तरगायमान समुद्र जब अपने शब्द से उसे सताने लगा, तब) उसने तरगपूर्ण उस समुद्र को पर्वती से पाट देना चाहा; किन्तु स्थिर गगन में प्रकाशित होनेवाले पूर्णचंद्र की दीर्घ किरणें उसे भयभीत कर रही थी, जिससे वह बलहीन होकर कुद्धती हुई पड़ी रही।

(कभी) वह कुद्ध हो सोचती कि मैं इस धरती के सब उद्यानों को विध्वस्त कर, सब पुष्पों को चूर-चूर कर दूँगी, किन्तु अपने पति के सग रहनेवाली लाल मुकुटबाली कौची की ध्वनि सुनकर वह अपने मन में काँप उठती।

(कभी) वह क्रोध के साथ सर्प (राहु) को लाने का विचार करती, जिससे वह अपने प्रतिकूल रहनेवाले चद्र को निगल जाय, किन्तु उसके पीन स्तनों पर शीतल-मद पवन के लगने से उसके प्राण तस हो उठते और वह व्याकुल हो पड़ी रहती।

(अपने ताप को शात करने के लिए) वह अपने करो से अति शीतल हिमखड़ों को लेकर अपने पुष्ट स्तनों पर रख लेती, किन्तु (उसके स्तनों से) उत्पन्न होनेवाली अग्नि में, तस पत्थर पर रखे हुए मक्खन के समान वे (हिमखड) पिघल जाते।

कभी वह कामाग्नि से पीड़ित होकर निःश्वास भरती हुई अपने शरीर को शीतल जल में निमग्न करती, किन्तु वह जल (उसके शरीर के ताप से) उष्ण हो उठता। वह चिता करती, किन्तु गरजनेवाले समुद्र एव क्रूर मन्मथ से बचकर रहने का स्थान कहाँ है ?

उसका शरीर इतना तप उठा कि शीतल चद्रकात की शिला भी उसके स्पर्श से पिघलने लगी। वह काले मेघ को देखती या उत्तम नील रत्नमय स्तम्भ को देखती, तो (रम का स्मरण कर) उन्हे हाथ जोड़ देती।

वह कभी सोचती कि मैं किसी भयकर, क्रूर दौतोवाले सर्प से सुरक्षित पर्वत की बड़ी गुहा में जाकर रहूँगी, जहाँ मनोहर पूर्णचंद्र, शीतल पवन और मदन मुझे पहचान नहीं सके।

उम समय, उष्णता बढ़ानेवाला मद पवन पहले से भी तिगुने वेग से वहकर

उसको तपाने लगा । उसके स्तन उत्तम हो उठे । वह क्या उपचार करना हे—यह न जानती हुई स्वर्ण रंग के नवपल्लवों की शव्या पर करबटे लेने लगी ।

वीर (राम) का आकार उस क्रूर स्त्री की दृष्टि में कालमेघ के समान दिखाई पड़ता । तब वह लज्जित हो उठती, शिथिल हो उठती, चौंक पड़ती, जैसे वह उनको अपने सम्मुख ही देख रही हो । जब वह आकार अदृश्य हो जाता, तब वह कठोर विरहाग्नि में फँस जाती ।

अजन-समान काले मेघ को प्रभु (राम) ही समझकर वह उसे पकड़कर अपने स्तनों से लगा लेती । किन्तु, उम मेघ को भुलसकर मिटते हुए देखकर रो पड़ती । तुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी की काम-वेदना की कोई सीमा भी थी ?

वह यो तप रही थी, जैसे प्रलय-काल की भीषण अग्नि में फँस गई हो । फिर भी, वह मूढ़ स्त्री चक्रधारी (राम) को प्राप्त कर जीवित रहूँगी—इस आशा-रूपी ओपघि से अपने ग्राणों को रोके रही ।

कभी वह (राम से) प्रार्थना करने लगती—तुम क्रूर माया को अधिकाधिक बढ़ाने की शक्ति रखनेवाले मेरे विष-सदृश हृदय में आ जाओ और मेरी वेदना को दूर करो । कभी कहती—हे अजन पर्वत ! मुझपर कृपा करो । वह इस प्रकार पीड़ित हुई, जैसे उसने विष पी लिया हो ।

ग्राण जाने पर भी कामना को न त्यागनेवाली वह (स्त्री) सोचती—(उस स्त्री के नवन) नीलोत्पल है । या मीन है ।—ऐसा सदेह उत्पन्न करनेवाले नयन-युगल से युक्त वह स्त्री (सीता) लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर है । ऐसी दशा में वह (राम) क्या मुझ पापी की ओर दृष्टि भी फेरेगा ?

वह सोचती—इस पुरुष के पास रहनेवाली सुन्दरी उत्तम पातिव्रत्यवाली है । रक्त कमल में वास करनेवाली लक्ष्मी ही है, फिर सोचती—मैं उस (पुरुष) पर अनुरक्त होऊँ, तो भी वह इस वेदना से तत नहीं होता ।

जब उसकी काम-वेदना इस प्रकार बढ़ रही थी, तब सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे तीनों लोकों में भरे हुए राक्षस-रूपी गाढ़ अन्धकार को दूर करने के लिए राम ही उदित हुए हों ।

उस क्रूर राक्षसी ने प्रभात को देखा और अपने ग्राणों को भी सुरक्षित देखा । उसने विचार किया—जवतक वह अनुपम सुन्दरी उसके समीप रहेगी, तवतक वह पुरुष आँख उठाकर भी मुझे नहीं देखेगा, अतः मैं शीघ्र जाकर उस स्त्री को उठा ले आँऊँगी और कही छिपा दूँगी । फिर, उस पुरुष के साथ सुखी जीवन व्यतीत करूँगी ।

उसने (पर्णशाला में) आकर देखा—राम गोदावरी के सुन्दर धाट पर सध्यो-पासना में मरने हैं, पर उसने यह न देखा कि समीपस्थ धनी छाया से पूर्ण सुरभित उद्यान में रहकर उनके अनुज, चद्र-समान ललाटवाली देवी (सीता) की रक्षा कर रहे हैं ।

उसने सोचा कि यह (सीता) अकेली है, मेरा उद्देश्य सफल हुआ, अब सोचते हुए चिलम्ब करना उचित नहीं है । और, कलकित चित्तवाली वह, कलापी (तुल्य सीता को)

पकड़ने के लिए उनका पीछा करती हुई गई। फल-भरे उद्यान में स्थित लक्ष्मण ने यह देख लिया।

उन्होंने कुद्ध होकर गरजते हुए कहा—अरी। ठहर। फिर, झट उसके निकट आकर देखा—यह स्त्री है, हाथ में धनुप लिया नहीं है, फिर उस (शूर्पणखा) के भड़कती आग-जैसे दीखनेवाले केशों को अपने अरुण कर से ऐंठकर पकड़ लिया। उसके पेट पर शीघ्रता से एक पदाघात किया और अपने कर में उज्ज्वल करवाल धारण किया।

तब वह उन (लक्ष्मण) को भी उठाकर आकाश-मार्ग से उड़ जाने का प्रयत्न करने लगी। इतने में (लक्ष्मण ने) उसे झट नीचे ढकेल दिया और 'अब-आगे कभी ऐसा कार्य न करना'—कहते हुए उसकी नाक, कान और कठोर स्तन के चूचुकों को एक-एक कर के काट दिया। फिर शातकोप होकर उसके केशों को छोड़ दिया।

उस क्षण, वह (शूर्पणखा) अपना सुँह खोलकर चिल्ला उठी। वह ध्वनि सब दिशाओं में व्याप्त हो गई और देवताओं के कानों में भी जा पड़ी। अब उसकी दशा का क्या वर्णन करना है? उसकी नाक के छेद से प्रवाहित रक्त से धरती गल गई।

उसकी हत्या न करके, लक्ष्मण ने अपने उज्ज्वल करवाल से उस क्रूर (राक्षसी) के नाक-कान काट दिये। वह कार्य ऐसा था, जैसे रावण के रत्नमय मुकुट-भूषित शिरों को काटने के लिए सुदिन का निर्णय करके, उसका प्रारम्भ करते हुए पर्वत-शिखर को ही उन्होंने काट दिया हो।

वह धरती पर धड़ाम से गिर पड़ी और पैर उछालती हुई दहाड़ मारकर रोने लगी। वह ऐसी दिखाई पड़ती थी, मानों यम के समान कठोर शूल को धारण करनेवाले ज्ञुञ्जु युद्ध करनेवाले खर प्रभृति राक्षसों के विनाश की सूचना देता हुआ कोई कालमेघ रक्त की वर्षा कर रहा हो।

दुःख स्वय जिनसे डरकर दूर भागता था, ऐसे राक्षसों के कुल में उत्पन्न वह स्त्री, आकाश में उछलती, धरती पर गिरती, लोट जाती, शिथिल पड़ जाती, व्याकुल हो हाथ मलती, मूर्च्छित होती, मूर्च्छा से जग पड़ती, बार-बार कहती—मुझ स्त्री-जन्म पानेवाली का आज कैसा परामर्श हुआ?

हाथ से नाक दवाती, लुहार की भौंथी के जैसे निःश्वास भरती, धरती पर हाथ मारती, अपने युगल स्तनों पर हाथ रखती, उसकी देह स्वेद से भर जाती, अपने वलवान् पैरों को लिये चारों ओर दौड़ती, फिर रक्त बहाती हुई शिथिल पड़ जाती।

सोते से उमड़नेवाले जल के समान बहनेवाले लहू से जो कीचड़ बन गया, उसमें लोटती हुई वह राक्षसी पीड़ा को नहीं सह सकी और अपने कुल के लोगों के नाम पुकार-पुकारकर रोने लगी, जिससे यम भी भयभीत हो गया और देवता भय से भागने लगे।

अग्नि-ज्वाला को कर में धारण करनेवाले (शिव) के पर्वत (कैलास) को उखाड़कर उठानेवाले, हे पर्वत (सदृश रावण)। हुम्हारे धरती पर जीवित रहते हुए ये मुनिवेषधारी धनुष लेकर धूम रहे हैं। क्या यह हम्हारे लिए अपमानजनक नहीं है?

‘देवता लोग आँख उठाकर भी तुम्हारी ओर नहीं देख सकते—क्या यह कहने मात्र में तुम्हारा काम ही गया ? आओ, यहाँ की दशा भी तो देखो ।’

हे प्रलय-काल में भी न डिगनेवाले त्रिमूर्ति एव देवों से भी अधिक बल से युक्त (रावण) ! ‘वाधिन के पीछे-पीछे जाते हुए उसके बच्चे कभी पीड़ित नहीं होते’—समुद्र से आवृत्त धरती के लोगों का यह कथन भी क्या असत्य है ? आओ, मेरी इस वेदना को भी तो देखो ।

हे रावण ! जब देवेन्द्र ऐरावत पर आसू द हो देवताओं की सेना के साथ गर्जन करता हुआ युद्ध करने के लिए सम्मुख आया था, तब तुमने उसे परारत करके भगा दिया था । हे इन्द्र की पीठ को देखनेवाले ! आओ, मेरे अपमान को भी तो देखो ।

हे शिव के द्वाग प्रदत्त वडे करवाल को धारण करनेवाले ! तुम पवन, जल, अग्नि, कालातक यम, स्वर्ग एव ग्रहों से अपनी सेवा कराने में समर्थ हो । क्या अब इन दो नरों के बल से परास्त हो निर्वल होकर वैठे हो ?

चलते समय जिनके भारी पैरों के पद-तल से चिनगारियाँ निकलती हैं, ऐसे मट-भरे दिग्गजों के दाँतों को तोड़नेवाले तथा पर्वतों को फोड़नेवाले कंधों से युक्त, हे बलवान् ! रूप में मन्मथ के समान होने पर भी ये मनुष्य तुम्हारे जूते के नीचे की धूल के बगावर भी नहीं हैं, क्या इनपर तुम क्रोध न करोगे ?

हाय ! क्या मधुपूर्ण सुगन्धिक पुष्प-मालाधारी देवों को मिटाने की, रावण एवं उसके भाइयों की शक्ति बब नष्ट हो गई है ? क्या अब वह शक्ति मासमय शरीरवाले, हमारे कुलवालों का आहार बननेवाले मनुष्यों के पास चली गई है ?

युद्ध में सम्मुख पड़नेवाले, जिसे देखकर यों सदेह कर उठते हैं कि यह हर है, विष्णु है अथवा ब्रह्म है—हे ऐसे शक्ति से संपन्न खर ! घने वृक्षों से भरे विशाल बन में एकात्मास करनेवाले मुनित्रेपधारी मनुष्यों की शक्ति से, अथवा पराक्रमी राज्ञों के निर्विर्य हो जाने से मुक्तपर जो विपदा आ पड़ी है, उसे तू देख ।

इद्र, हर, ब्रह्म तथा अन्य देव जब तुम्हारी सेवा में निरत रहते हैं, ससलोकों के निवासी तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, तब तुम्हारे पूर्णचन्द्र-सदृश श्वेतच्छन्त्र की छाया में आसीन रहते समय, तुम्हारी सभा के मध्य मैं निर्लब्ज-सी आकर किस प्रकार अपना सुख दिखा नकूँगी ?

शिव के आसन कैलास को उखाड़नेवाले हैं मेरे भाई ! मेरे बल को चूर करते हुए, पदाधात से मुझे नीचे गिराकर जिस (मनुष्य) ने मेरी नाक काट दी, वह जीवित रहकर अपनी भुजा को (गर्व से) देखे और मैं नीचे गिरकर रोती रहूँ—क्या यह उचित है ? यह बन खर का है न ? तो भी क्या मुझे ये कष्ट भोगने पड़ेंगे ?

दिग्गजों के क्रोध को कम करते हुए, उनके साथ युद्ध करके उनके दाँतों को तोड़नेवाले और उससे ग्रास यश से फूले हुए कधोनाले है रावण ! कामना के वशीभूत होकर मैंने नाक खोई और निर्लब्जवा से जिस अपमान का भागी हो गई हूँ, इससे क्या तुम्हारा यश कलंकित नहीं होगा ?

दानवों के कुल को मिटाकर, इन्द्र को वन्दी बनाकर, देवों को दास बनाकर उनसे सेवा करानेवाले हैं मेरे भतीजे । अरण्य में दो मनुष्यों ने मेरे कान और नाक काट दिये हैं । क्या, मैं पापिन् इस अपमान से यहाँ यों ही मिट जाऊँ ?

पूर्वकाल मे, हाथ में एक ही धनुष लेकर सप्तलोकों को जलानेवाले, अशमनीय क्रोध के साथ सब दिशाओं को परास्त करनेवाले तथा इन्द्र के दोनों चरणों में शृखला डालनेवाले हैं मेरे भतीजे ! क्या इन मनुष्यों का पराक्रम देखने के लिए नहीं आयोगे ?

शिलाओं को भेदनेवाले शस्त्रों को धारण करनेवाले विशाल करों से युक्त, है पराक्रमी खर-दूषण आदि । हे अंधकार को मिटानेवाले प्रकाश से युक्त रत्नाभरणों को धारण करनेवाले राक्षसों के कुल में उत्पन्न लोगों । लुहार के द्वारा पैनाये गये शस्त्रोंवाले कुम्भकर्ण-जैसे ही क्या तुम लोग भी धरती में कहाँ सोये पड़े हो ? मेरी पुकार तुमलोग सुन क्यों नहीं रहे हो ?

यो अनेक वचन कह-कहकर वह बलवान् राक्षसी शोक-मग्न हो रोती हुई वहाँ की मनोहर आश्रम-भूमि पर लोटती रही । उस समय, अपने कर में हृषि धनुष लिये, विशाल भुजावाले, मरकत पर्वत (सहश राम), (गोदावरी) नदी पर संध्या आदि नित्यकर्म समाप्त करके वहाँ आये ।

तब वह (शूर्पणखा), वहाँ आनेवाले (राम) को मार्ग के मध्य देखकर, अपनी छाती पीटती हुई, आँखों से अश्रु की वर्षा करती हुई, अपने शोणित के प्रवाह से वहाँ की सुन्दर भूमि को कीचड़ से भरती हुई, यह कहकर कि—‘हे प्रसु ! हाय ! मैं तुम्हारे सुन्दर रूप पर आसक्त होने के अपराध में इस दुर्दशा को प्राप्त हुई हूँ । यह देखो ।’—उन (राम) के सामने गिर पड़ी ।

प्रसु ने अपने उपमाहीन मन से समझ लिया कि विखरे केरोंवाली इस (राक्षसी)ने कोई क्रूर कार्य किया होगा । यह भी समझ लिया कि अनुज ने ही इसके दीर्घ कान-नाक काटे हैं । फिर उस (राक्षसी) से पूछा—तू कौन है ?

उस प्रश्न को सुनकर क्रूर राक्षसी ने उत्तर दिया—क्या तुम मुझे नहीं पहचानते ? वैर के नाम तक को धरती पर से मिटा देनेवाले क्रोध से युक्त, भयकर पत्राकार भाले को धारण करनेवाले, त्रिभुवन के शासक रावण की मैं वहन हूँ ।

तब (राम के) यह प्रश्न करने पर कि, पराक्रमी राक्षसों के स्थान को छोड़कर हमारे तप करने के इस स्थान में तू क्यों आई ? उसने उत्तर दिया कि, हे अग्निकण के समान तपानेवाली काम-वेदना के लिए उत्तम ओपरिं-समान । मैं कल भी आई थी न ?

(तब राम ने प्रश्न किया—) क्या रक्त मीन के समान चचल, काले वर्ण से युक्त दीर्घ नयनोंवाली, मधुपूर्ण कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी का भ्रम उत्पन्न करनेवाली, जो स्त्री कल आई थी, वह तुम्हीं हो ।—(राम के) यों प्रश्न करने पर उस राक्षसी ने उत्तर दिया—सुन्दर नेत्रोंवाले हैं राजन् । स्तन, ताटक-भूषित कान और लताहुल्य नासिका को काट देने पर सुन्दरता कहाँ रह जाती है ।

यह सुनकर प्रसु, दाँतों को किंचित् खोलकर, सुस्कराये और अनुज का सुख

देखकर पूछा—हे वीर ! इसने क्या अपराध किया था कि तुमने मट इसके कान-नाक काट दिये ? तब शूर तथा उदार गुणवाले (लक्ष्मण) ने उनके चरणों पर न त होकर कहा—

अपने तीक्ष्ण दाँतों से (मास) खाने के उद्देश्य से या क्रूरकर्मा राज्ञिमों के उभाड़ने से, न जाने किस कारण मे, वह दुर्गुणवाली राज्ञी अपनी आँखों से चिनगारियों उगलती हुई अजात हृषि से आई और उत्तम गुणवाली देवी (सीता) की ओर क्रोध करके मपटी ।

धनुर्धरी लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही, वह क्रूर राज्ञी बोल उठी—हे ऐसे देश के अधिपति, जहाँ के जलाशयों मे कीचड़ मे स्थित शंखकीट को अपने पति के संग रहते देखकर गर्भिणी मङ्गक-स्त्री (ईर्ष्या से) कुछ हो जल को हिलाने लगती है । अपनी सौत को देखने पर किस स्त्री का मन कुद्ध नहीं होगा ?

(तब राम ने कहा—) भीरुता से (माया) कुछ करनेवाले क्रूर राज्ञी के विशाल कुल को एक साथ मिटाने के लिए हम यहाँ उनके स्थान को खोजते हुए आ पहुँचे हैं । अब तू कुछ निर्दा-न्वचन कहकर हमारे हाथ से अपने प्राण न गँवा । सत्य के आवासभूत इस बन को छोड़कर तू दूर भाग जा । राम के ये वचन सुनकर भी वह राज्ञी बोल उठी—

जिस दुड़ापे मे वाल पक जाते हैं और (शरीर मे) कुरियाँ पड़ जाती हैं—ऐसे दुड़ापे से रहित ब्रह्मा आदि सब देवता, रावण को कर देते हैं । अतः, तुमने जल्दी मे जो यह काम कर दिया है, वह उचित नहीं किया । यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो, तो सुनो, मैं एक बात कहती हूँ ।

वह दशसुख इतना कोधी है कि जो कोई जाकर उससे यह कहे कि तुम्हारी वहन की नाक कट गई है, तो वह उस कहनेवाले की जीभ काट ले । अतः, मेरी नाक काटकर तुमलोगों ने अपने कुल की जड़ ही काट दी है । अब तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते । हाय ! अपने इस सारे साँटर्य को तुमने धूल मे मिला दिया ।

अब स्वर्ग के रक्षकों (देवताओं), पृथ्वी के रक्षकों (राजाओं) और नाग-लोक के रक्षकों मे ऐसा कौन है, जो अपने शिरों की रक्षा करते हुए तुमलोगों की देह की भी रक्षा कर सके ? यदि तुम मेरे प्राणों की रक्षा करो (अर्थात्, विरह-पीड़ा से मेरी रक्षा करो) तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी । अन्यथा वे रावण हैं (जो तुम्हारा विनाश करेंगे) —यों उस (शर्पणेखा) ने कहा ।

उसने आगे कहा—चारित्र्य की रक्षा करनेवाले अच्चल पातिग्रल-धर्म से उक्त जियाँ, अपने महत्त्व को स्वयं नहीं कहती हैं । तो भी मैं, तुम पर अधिक प्रेम होने के कारण, वह कह रही हूँ । क्या तुम अपने इस अनुज को नहीं बतलाओगे कि मैं देवताओं ते भी अधिक बलवान् (रावण) की वहन हूँ और सप्तर के सब प्राणियों से अधिक बलवान् हूँ ।

वडे चुद्धों मे भी मैं तुमलोगों की रक्षा कर सकती हूँ । तुम्हें उठाकर गगन-मार्ग से जा सकती हूँ । माम-सहश स्वादवाले अनेक फल लाकर तुम्हें दे सकती हूँ । तुम्हारे

मन मे जो भी इच्छा उत्पन्न हो, उसे मै पूरा करूँगी । जो रक्षा कर सकत है, उनसे द्वेष करने से क्या लाभ ? और, सुमन के जैसे कोमल स्वभाववाली इस नारी से ही क्या प्रयोजन है ? कहो तो सही ।

उत्तम कुल, उत्तम स्वभाव, उद्दिष्ट वस्तुओं को लाने की शक्ति, बुद्धि, आकार, यौवन—सब विषयों में मेरी समता करनेवाली कोई स्त्री पृथ्वी के निवासियों में या न्वर्ग के निवासियों में भी कौन है ?—यदि तुम समर्थ हो तो कहो ।

तुमने मेरी नाक काट दी । उससे क्या हानि है ? यदि तुम मुझे स्वीकार करो, तो मै एक क्षण मे उसे उत्पन्न कर लूँगी । मेरा सौदर्य पूर्ण हो जायगा । यदि तुम्हारी कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो गया, तो नासिका के लोप से क्या हानि होगी ? अत्युन्नत दीर्घ नासिका भी तो स्त्रियों के लिए (सौदर्य का) लोप करनेवाली ही होती है न ?

मन न मिलने पर ही तो द्वेष उत्पन्न होता है ? यदि मन में प्रेम हो और मै तुम्हे स्वीकृत हो जाऊँ, तो मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हो जायेंगे । देखनेवाले सब लोग मुझ होकर प्रेम करने लगें, ऐसा सौदर्य भी विष-समान ही तो होता है, विवाह करनेवाला पति जितना सौदर्य चाहे, केवल उतना ही सौदर्य हो, तो क्या (तुम) उसे स्वीकार नहीं करोगे ?

शिव, कमलभव चतुर्मुख, विष्णु, विनाशकारी बज्र को धारण करनेवाला इन्द्र सब मिलकर एक रूप धारण करके खड़े हो—ऐसे रूपवाले, हे सुन्दर ! सब लोकों के प्राणियों को अपने अनुपम बाणों से सतानेवाला मन्मथ भी क्या तुम्हारा भाई ही है ? वह (मन्मथ) भी तुम्हारे इस अनुज-जैसा ही करुणाहीन है ।

हे स्वर्णमय वीर-ककण से भूषित वीरो ! तुमने यही सोचकर कि यह (शर्षणखा) सदा के लिए इस सुन्दर रूप में हमारे पास ही रहे, अन्य कही नहीं जा सके और कोई इसे देखकर मोहित न हो जाय—तुमने मेरे कान-नाक काट दिये । तुमने कुछ बुरा नहीं किया । अन्यथा, मेरी नाक काटकर बड़ा छेद कर देने में तुम्हारा अन्य क्या प्रयोजन हो सकता है ? तुम्हारा वह उद्देश्य जानकर ही अब मै पहले से दुगुना प्रेम करने लगी हूँ । मै क्या ऐसी निर्बुद्धि हूँ (जो इतना भी नहीं समझ सकूँ) ?

उग्र कोपवाले, शस्त्रधारी राक्षस, यह समाचार जानकर यदि लाल आँखें करेंगे, तो सारा सासार ही तुम्हारे कारण विनष्ट हो जायगा । उत्तम कुल मे उत्पन्न व्यक्ति धर्म का विचार करके ऐसा विनाश नहीं होने देंगे । तुम यह विचारकर यह अपवाह दूर करो और मेरा उपकार कर मेरे सग रहो—यह कहकर वह विनय करती खड़ी रही ।

तब रामचन्द्र ने कहा—हे क्रूर राक्षसी ! ससार के सब प्राणियों को दुःख देनेवाली क्रूर राक्षसी तुम्हारी माता की जननी ताड़का के प्राण जिस शर ने हर लिये थे, वह अभी तक मेरे पास ही है । इतना ही नहीं, भुजवल से युक्त तथा पुष्ण-मालाओं से भूषित क्रूर राक्षसों के कुल का विनाश करने के लिए ही मै उत्पन्न हुआ हूँ । तू अपना कुद्र व्यवहार त्याग दे । यह कहकर रामचन्द्र ने आगे कहा—

हम, सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले चक्रवर्ती दशरथ के पुत्र हैं और माता की आज्ञा से सुगंधित बन में आये हुए हैं। वेदज्ञों तथा तपस्वियों के कहने से हम, अपार सेनासमूह से युक्त गङ्गामो के बश का विनाश करेंगे और उसके पश्चात् ही पर्वत-मद्वश मौघोंवाली अयोध्या नगरी में प्रवेश करेंगे—इसे ठीक समझ ले।

राक्षसों के सम्मुख मन्मार्ग पर चलनेवाले देवता लोग खडे नहीं रह सके और पराजित हो भाग गये, तो यहाँ ये दो मनुष्य क्या कर सकेंगे?—ऐसा विचार मत कर। यदि तू शक्तिमान् हैं, तो जा, क्रोधी, तीच्छ शत्रुघ्नारी राक्षसों में तथा वलवान् यद्यों में, जो अत्यन्त शक्तिमान् हैं, उन्हें ले आ। हम उन भवका विनाश कर देंगे।

तब उम राक्षसी ने कहा—हे धान आदि वनाजों को अधिकाधिक उत्पन्न करनेवाली जल-नमृद्धि से पूर्ण देशवाले। सुनो, यदि हुम मुझे मुँह के ऊपर ओंठ से बाहर उभरे हुए दाँतोंवाली, विकृत स्पवाली कहकर मेरा तिरस्कार न करो और मुझसे प्रेम करो, तो उन राक्षसों को अवश्य मिटा सकोगे। (उनकी) माया को यथातथ त्यप में जान सकोगे। उनको सपूर्ण त्यप से परान्त कर सकोगे। उनके कूर कृत्यों से तुम बच सकोगे। फिर उसने कहा—

तुम इस बाँस-मद्वश कधोंवाली को न त्यागो, तो भी मैं क्या तुम्हारे लिए भार हों जाऊँगी? यदि तुम मायावी तथा मद्ज्ञान-हीन राक्षसों से युद्ध करने का विचार करते हो, तो पचेंट्रियों के समान विविध माया करनेवाले, उनके यंत्रों को समझकर मैं उनने तुम लोगों की रक्षा कर्हूँगी। ‘माँप के पैर जाँप ही जानता है’ वाली कहावत को जानते हो न?

यदि हुम यह सोचते हो कि हृदय में प्रेम करके ही इस (सीता) ने हमसे विवाह किया है, तो अपने इस अनुज के साथ—जिसने इतना भी विचार न किया कि राक्षसों के साथ युद्ध करना पड़े, तो हम तीनों एक साथ मिलकर रक्त की नदियाँ वहा देंगे और राक्षसों पर विजय प्राप्त करेंगे (और मेग अग-भग कर दिया)—मेरा विवाह करा दो। दो ग्रहों (सूर्य और चन्द्र) को वन्दी बनानेवाले रावण मेरै वल में कुछ कम नहीं हूँ।

जब तुम उत्सव के दृश्यों में युक्त अपने बड़े नगर में प्रवेश करोगे, तब मैं (अपनी मायाशक्ति से) मनचाहा रूप धारण करूँगी। तुम्हारा यह अनुज, शातमन होकर भी यदि यह कहे कि इस नाककटी त्री के साथ कैसे रह सकता हूँ? तो हे प्रभु! हुम इसे समझकर कहना कि चिरन्नाल से मैं कटिहीन^१ त्री के साथ रहता हूँ।

उस (शर्पणखा) ने जब ये बच्चन कहे, तब अत्यन्त कुद्द हुए अनुज लक्ष्मण ने पत्राकार वरछे की ओर दृष्टि करके (राम से) कहा—हे प्रभु! यदि इसे अभी न मार दें, तो यह बहुत पीड़ा उत्पन्न करेगी। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है? प्रभु ने कहा—यदि अब भी यह हमें छोड़कर न जाये तो वैमा ही करेंगे। तब उम राक्षसी ने यह सोचकर कि ये मुझपर कुछ दवा नहीं करेंगे और यहाँ रहेंगी, तो मेरे प्राणों की हानि होगी।

^१. शर्पणखा सीता को ‘कटिहीन’ कह रही है। —अनु०

फिर, यह कहकर कि—अपनी नाक, कानों और स्तनों को खोकर भी (तुम लोगों के साथ) मैं कैसे रह सकती हूँ ? तुम्हारे मन को समझने के लिए ही तो मैंने वह माया की थी । अब मैं पवन से भी तेज अग्नि से भी क्रूर खर को बुला लाऊँगी, जो तुम लोगों के लिए यम बनेगा—अशमनीय वैर के साथ वहाँ से चली गई । (१-१४३)

आध्याय ६

रक्ष-वध पटल

रक्त की धारा वहाती हुई, विखरे केशोवाली, नाली-जैसे छेद से युक्त नाकवाली और विशाल मुँहवाली वह (शूर्पणखा), जाकर (जनस्थान में) स्थित भयकर खर के चरणों पर ऐसे गिरी, जैसे कोई लालिमा से युक्त वादल हो ।

‘(राक्षसों के) विनाश का यह दिन है’—इस वात की सूचना देते हुए, यम की आज्ञा से वजनेवाले नगाडे के समान, अकेली चिल्लाती हुई वह (शूर्पणखा), इस प्रकार धरती पर लुढ़कती रही, जिस प्रकार गरजते मेघ से गिरे हुए वज्र की अग्नि से जलता हुआ कोई नाग हो ।

उस खर ने उसे देखा, जिसके मुँह से कठोर वचनों के अनुकूल धुआँ निकल पड़ता था और पूछा—‘निर्भय होकर इस प्रकार तुम्हारा रूप विकृत करनेवाले कौन हैं ?’ तब नासिका-द्वार से वहनेवाले रक्त से रुधी हुई आँखोंवाली उस (शूर्पणखा) ने कहा—

दो मनुष्य हैं, जो मुनिवेषधारी हैं, हाथों में दृढ़ धनुष एवं करवाल धारण करनेवाले हैं, मन्मथ के समान सुन्दर रूपवाले हैं, धर्मस्वभाववाले हैं, दशरथ के पुत्र हैं, राक्षसों के साथ युद्ध करने के विचार से उनको ढूँढ़ते रहते हैं ।

वे तुम्हारे बल की कुछ परवाह नहीं करनेवाले हैं । धर्म-मार्ग पर स्थिर रहकर उसकी रक्षा का विचार करनेवाले हैं, विजयशील भाले रखनेवाले राक्षसों का विनाश करने का दृढ़ निश्चय रखनेवाले हैं ।

उनके साथ एक सुध (खी) है, जो इतनी महिलोचित सुन्दरता से पूर्ण है कि पृथ्वी में, दुर्लक्ष्य स्वर्ग-लोक में तथा अन्य (पाताल) लोक में, कही अन्वेषण करने पर भी उसकी समता करनेवाली खी नहीं मिलेगी । मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है । लेकिन, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती ।

उसे देखकर मैंने सोचा—अन्यत्र दुर्लभ सुन्दरता से युक्त इस रमणी को मैं लकाधीश के लिए ले जाऊँगी और उस पर झपटी । तब उन मनुष्यों ने क्रुद्ध होकर मेरी नाक का ट डाली ।—उसने यो कहा ।

उस खर ने, जो अपने आकार से ससार को भय-चिकिपित करनेवाला था और

जिसको सामने से ढंखनेवालों की आँखे भुलम जाती थीं, जिसने उम (शृणुष्णा) को पहले ठीक-ठीक नहीं देखा था, अब उसके वचन सुनते ही, यह कहकर उठा कि उन विनाश को प्राप्त होनेवाले मनुष्यों के द्वाग ताल-फल के कोए के जैमे उगड़ाड़ी गई अपनी नाक को मुझे दिखाओ ।

वह उठकर खड़ा हुआ । उसका मन ऐसे क्रोध से बौखला उठा, जो सह लोकों का जलाकर भस्म कर सके, और बोला—‘मनुष्य-मात्र मर गये. केवल इतना कह देने से ही हमाग यह अपमान नहीं मिटेगा ।’^१

तब ज्योही उसने ‘रथ लाओ कहा, ज्योही उसके निकटस्थ रहनेवाले, एक ही हाथ से मारी धरती को उठाने की शक्ति रखनेवाले, दो हाथवाले ऊँचे पर्वतों के जैसे लगनेवाले, चौदह बीरों ने (खर से) निवेदन किया कि यह (युद्ध का) कार्य हमें सोपो ।

त्रिशूल करवाल, तोमर, चक्र कालपाश, गदा आदि शस्त्र हाथों में लेकर वे चले तो उसके कोलाहल में समुद्र में आवृत धरती के सब प्राणी भयभीत हों उठे । उनके आकाश ऐसे ये मानों विप ही माकार बन गया हो ।

जलती क्रोधाभि से युक्त, उन राज्ञों ने (खर से) कहा—हे वीर ! हमारी सेवा आज धन्य हुई । क्या तुम देवों में युद्ध करने जा रहे हो ? हमारे जीवित रहने यदि तुम मनुष्यों में युद्ध करने जाओगे तो हमारा जीवन व्यर्थ होगा । यो कहकर उन्होंने उसे गोका ।

तब खर ने कहा—ठीक है । अच्छा कहा, यदि मैं इन ज्ञुद्र मनुष्यों से युद्ध करने जाऊँ, तो देवता लोग हँसेंगे । तुम लोग जाओ । उनको मारकर उनका चक्र पियो और उस सुकुमारी को माथ लेकर आओ ।

(खर के) यह आज्ञा देते ही धानवित होकर उन बीरों ने उसे प्रणाम किया और भमाचार देनेवाली निर्लज (शृणुष्णा)-त्पी यम के दृत को आगे करके, उसके पीछे-पीछे चलकर दशरथ के पुत्रों के निवास पर गये ।

उम (शृणुष्णा) ने कोलाहल के माथ युद्ध के लिए आये हुए उन राज्ञों को, कमल-समान नेत्रवाले उन गम को अपनी उँगली उठाकर दिखाया जो अकलकमहन्तनामधारी चक्रपाणी (विष्णु) के ध्यान में मन थे ।

कुछ राज्ञम कह रहे थे कि (उन मनुष्यों को) पकड़कर उपर उछालेंगे । फिर हाथों में लोक लेंगे । और, कुछ कहते थे कि इन्हे दीर्घ पाश से हम बौधेंगे । यों सब राज्ञों ने अपने नायक (खर) की आज्ञा के अनुसार कार्य को पूर्ण करने के विचार से, पहाड़ों के जैमे आकर उन (राम-लक्ष्मण) को धेर लिया ।

प्रख्यात शक्तिवाले राम ने अपने अनुज को यह आदेश देकर कि देवी की रक्षा करों, उज्ज्वल कल्पवृक्ष के पुष्प-समान अपने अनुपम करों में डोरी से युक्त पर्वत-सदृश विनाशकागी धनुप को उठा लिया ।

कमल-सदृश नयनोवाले प्रसु यो (वनुप का) उठाये, करवाल के माथ वाणों में

^१ मात्र यह है कि मंसार के मांग मनुष्यों को मार देने से भी हमारा यह अपमान न मिटेगा । —ल०

पूर्ण तृणीर को भी लिये, उस पर्णकुटी से बाहर निकले और 'अरे। इधर आओ।'—यो वीर-बाद कहते हुए भुजाओं को फुलाये दुद्ध करने लगे।

परशु, करवाल, उज्ज्वल फलवाला त्रिशूल तथा भयकर प्रलयकालामि की समता करनेवाले उन राक्षसों के स्तम्भ-मद्दश हाथों को लक्ष्य-वेधक शरों से काट-काटकर उन्हें धरा-शायी कर दिया।

बड़े-बड़े शस्त्रो-सहित अपनी भुजाओं के, बड़े-बड़े वृक्षों के समान कटकर गिर जाने पर भी अपने बलिष्ठ दृक्षी को लिये हुए व राक्षस युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। तब बलवान् (राम) के द्वारा प्रशुक्त शर, वेग से उनसे आ लगे, जिससे उनके शिर कटकर गिर पड़े। (यह दृश्य देखकर) पापिनी (शूर्पणखा) वहाँ से भाग चली।

गरजनेवाले, क्रोधी तथा पराक्रमी सिंह के द्वारा सब हाथियों के मारे जाने पर जिस प्रकार हथिनी अपनी सूँड को उठाकर सिर पर रखे हुए चिल्लाती हुई भाग रही हो, उसी प्रकार वह (शूर्पणखा) भी भागकर खर के पास गई और उज्ज्वल शूलधारी खर को उसने सब वृत्तात सुनाया।

वृषभवाहन (शिव) के लिए भी अजेय पराक्रम से युक्त क्रूर खर नामक वह (राक्षस), यह समाचार सुनकर कि सब राक्षस मारे गये, यो क्रूर हो उठा कि उसकी आँखों में रक्त उमड़ पड़ा।

कन्दरा में रहनेवाले क्रूर सिंह भी जिससे डर जायें, ऐसा गर्जन करते हुए खर ने यह आज्ञा दी—‘हे सेवको। मेरा रथ, मेरे चढ़ने के लिए अभी लाओ। मेरे युद्ध करूँगा। कृष्णमात्र में सेनाओं के निवास में जाओ और मेघ के जैसे बड़े नगाड़ों को हाथियों पर बुमाकर बजवाओ।’

ज्योही नगाड़ों की ध्वनि हुई, त्योही रथारूढ़ राक्षसों की सेना एकत्र हो आई, मानो वर्षाकालिक बड़े-बड़े मेघ अपार रूप में घिर आये हो—यह देखकर स्वर्ग और नागलोक भी काँप उठे।

युद्ध की सूचना देनेवाले बड़े नगाड़ों की ध्वनि समुद्र गर्जन के सदृश थी। (राक्षसों की) दीर्घ भुजाएँ समुद्र की बीचियों की जैसी थीं। महान् गर्जन और मेघ-सदृश काले वर्णवाला समुद्र, प्रलयकालिक पवन से प्रताडित होकर उमड़ पड़ा हो—यो वह (राक्षसों की) सेना बड़ा कोलाहल करती हुई उमड़ आई।

घना बन ही उड़कर गगन-तल को ढक रहा हो, (ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए) सर्वत्र उठी हुई ऊँची ध्वजाएँ यो नाच रही थीं, जैसे भूत ही ‘हमारी भूख मिट जायगी’, इस विचार से आनन्दित होकर—नाच रहे हो।

आलान से अभी छूटे हुए, किसी की परवाह न करनेवाले, बड़ी और लम्बी दो-दो सूँड़ोवाले मत्त हाथियों के भुड़-मद्दश वह राक्षस-सेना चल पड़ी। उनके घने शस्त्र एक दूसरे से टकरा उठते थे, तो उससे जो चिनगारियाँ निकल पड़ती थीं, उनसे मारे बन में आग लग जाती थीं।

दोनों पाश्वों में ‘मुरुद्धु’ (नामक वादा) बज रहे थे। उनकी ध्वनि, पहियों के

घूमने से आगे बढ़नेवाले रथों की व्यनि में दब जाती थी। उस सेना ने, करुणा की मूर्ति के समान स्थित रामचन्द्र-स्तपी सूर्य का, फैले हुए अन्वकार की तरह धंर लिया।

वह हश्य ऐमा था, जैसे सत लोकों में ऊचे बढ़े हुए मव पर्वत एक ही स्थान पर इकट्ठे हो गये हों, जिससे बड़े-बड़े मपों के द्वारा अपने शिरों पर धारण की हुई वह धरती डॉल-डोलकर अपनी पीठ झुकाने लगी।

व्याघ्र-समूह है ? घनघटा है ? गरजते हाथियों का भुड़ है ? ऊचे पर्वत है ? नहीं तो मिहों की सेना है ?—वों सदेह उत्पन्न करते हुए शस्त्रधारी राक्षसों की सेना हजारों की सख्ता में आ पहुँची।

(जब गङ्गासों की उस जेना में ऐसे रथ थे, जिनमें) कुछ में शरभ जुते थे, कुछ में सिह जुते थे, कुछ में बलवान् हाथी जुते थे, कुछ में वाघ जुते थे, कुछ में श्वान जुते थे, कुछ में शृगाल जुते थे, कुछ में भूत जुते थे, कुछ में घोड़े जुते थे।

कुछ में वृषभों के भुड़ जुते थे, कुछ में शूकर जुते थे, कुछ में वायु-रूपी पिशाच जुंथे, कुछ में गर्दभ जुते थे, कुछ में वाज जाति के पक्षी जुंथे। वे (रथ) ऐसे थे कि क्षण-भर में ही नारे समार में धूम आ सकते थे।

इम प्रकार के रथों के समुदाय घिर आये। छोटी आँखों और लाल मुखवाले हाथियों के भुड़ घिर आये। अपने पैरों से वायु के जैसे अतिवेग से दौड़नेवाले घोड़े घिर आये। उम समय शख बज उठे।

परशु, वरछे, करवाल, वक्रदड, तोमर, भाले, भुशुडि, जो (शत्रु के) शरीर-भर को आवृत करनेवाले थे, गदाएँ, त्रिशल, मूसल, काल-पाश—

कुतक, कुलिश, डड, भिटिपाल, असख्य धनुप, शर, चक्र, 'वलै', उज्ज्वल शखों के समुदाय, 'कापण' पाश—

उत्यादि शस्त्र ऐसे प्रकाशवाले थे कि सर्व और अग्नि भी उन्हें देखकर मंद पड़ जाते थे, जिनमें (शत्रुओं का) माम और रक्त लगे थे, जो देवों को पीड़ा देनेवाले थे, जो विजयसूचक पुष्ण-माला से अलकृत थे, घिर आये।

अनेक सहन्त हाथियों के बल से युक्त, विशाल पृथ्वी को निगल सकनेवाले मुँह से युक्त, और अग्नि उगलनेवाली आँखोंवाले चौदह राक्षस उम सेना के नायक थे।

विद्वानों का कथन है कि इम सेना-चाहिनी में एक-एक दल की सख्ता साठ लाख थी और उसमें ऐसे चौदह दल थे।

वे सेना-नायक अपार वर्ल से युक्त थे, वज्र-समान घोप करनेवाले मुँह से युक्त थे, मव शस्त्रों के प्रयोग में कुशल हाथोंवाले थे। वे इतने ऊचे थे कि मेघ, पर्वत-शिखर की भ्राति में, उनके शिर पर विश्राम करते थे। वे गर्वी थे और उत्साहित मनवाले थे।

उनके आकार अतरिक्ष को मापते थे। उनके बक्ष नेत्रों की परिधि में नहीं आते थे। अपने पैरों से सारी धरती को नाप सकते थे। बड़े पराम्र मवाले थे। देवों के साथ असख्य दुर्दों में उन्होंने विजय प्राप्त की थी।

उनके कधे इतने दृढ़ तथा बलवान् थे कि इन्द्र आदि के द्वारा फेंके गये बड़े शस्त्र उनपर लगकर चूर-चूर होकर छितरा जाते थे। उनकी कठोर आज्ञा ऐसी थी कि यम भी उनके चरणों पर गिरकर उनकी अवीनता स्वीकार करता था। वे ऐसे थे, मानों भयकर-अग्नि ही साकार हो गई हों।

वे शूल, पाश, धने लाल केश, क्रूर नेत्र और खड़ग दतों से युक्त थे। वे इतने काले थे कि उनके सन्मुख विष भी सफेद जान पड़ता था। अपनी शक्ति से काल भी उन्हें अपना काल समझकर डरता रहता था। वे ऐसे रूपवाले थे।

वे वीर-ककणधारी थे। पुष्पमालाधारी थे। कवच से आवृत वक्षवाले थे। उज्ज्वल आभरण-भूषित थे। कुच्चित भृकुटिवाले थे। अग्नि-सदृश (लाल) केशवाले थे। उनके मन युद्ध की कामना से उसके लिए उमग से भर जाते थे। अपने में वे लोग वडी एकता रखते थे।

अतिदृढ़ दंत और मद-स्वावी हाथीवाला इन्द्र भी उनके सम्मुख आ जाय, तो वह भी भयभीत होकर, पीठ दिखाकर, भाग खड़ा होगा। तीनों नश्वर भुवनों में युद्ध करने का मौका न पाकर उनके पर्वत-जैसे कधे खुजलाते रहते थे।

हाथी, घोड़े, भूत, वानर, बलवान् सिंह, क्रोधी भालू, श्वान, व्याघ्र, शरभ—ये अग्नि-सदृश चमकते तथा भयजनक मुखवाले तथा क्षीर-समुद्र में उत्पन्न हलाहल के समान नयनवाले थे।

कोई आठ हाथोवाले थे। कई सात हाथोवाले थे। कई नेत्रों से अग्नि उगलने-वाले सात-आठ मुखोवाले थे। बलिष्ठ टाँगोवाले थे। प्राणियों को अपने दीर्घ करों से उठाकर मुँह में ठूँसकर चबा जानेवाले थे। विनाशहीन थे।

यद्यों से छीनकर लाये गये, असुरों से दिये गये, देवों को डराकर उनसे बलात् लिये गये, अश्रान्त गन्धवों को भगाकर उनसे छीनकर लाये गये, करुणालु सिद्धों को सताकर उनसे लिये गये—

मयूर-पख, ध्वजा, छत्र, चामर, हाथियों पर रखने योग्य वडी पताकाएँ, वितान तथा अन्य अनेक राजचिह, विना व्यवधान के, सर्वत्र शोभायमान थे और गगनतल में व्यास होकर ससार-भर में सूर्य का-सा प्रकाश फैला रहे थे।

वे चौदह सेनापति चौदहों भुवनों को जीतनेवाले थे। वे सैनिक परशुधारी थे, करबालधारी थे, उज्ज्वल त्रिशूलधारी थे और सिंह और व्याघ्र के समान हिंस्क क्रोधवाले थे।

वे धनुर्धारी थे। वडे खड़गों से युक्त थे। ओठों पर रखे (ओठों को चबाते हुए) दॉतोवाले थे। मेह पर्वत को भी उखाड़ने की शक्ति रखते थे। अश्व-जुते रथोवाले थे। अपने कहे अनुसार करने की धृति और इच्छा-शक्ति रखते थे। ऐसे सैनिक सब दिशाओं से आकर एकत्र हुए।

शत्रुओं के प्राणों को उनके शरीरों से पृथक् करनेवाले और विजयमाला से भूषित त्रिशूलों को धारण किये हुए, दृढ़ता से युक्त दूषण, त्रिशिरा इत्यादि अनेक राज्य-नायकों लाहल से भरी, नगाड़े वजानेवाली सेनाओं को लेकर आ पहुँचे।

नमृद्ध तथा शत्रुविनाशक मेना-रूपी विशाल समुद्र जब खर-स्पी गगनस्पशी मेस को धंगकर चला और जब उन सेना के मध्य मे रथास्त होकर वह (खर) निकला, तब उस दृश्य को देखकर उब कौप उठे ।

निर्झरों के नदृश मट-द्वारी हाथी, अश्व, स्वर्ण-कलशों से भूषित रथ, राक्षस—इन (चतुर्विध) नेनाओं के अभियान से जो धूलि आकाश ने ब्यास हुई, उससे सूर्य का स्वर्ण-रथ और हरित अश्व भी श्वेत वर्ण हो गये ।

कोव-भरी विशाल समुद्र के नमान फेली हुई सेना के चलने से जो धूलि-समुदाय उठा उससे उब कानन धूलिमय हो गये । पर्वतों पर एव गगन मे स्थित वादल भी धूसर हो गये । नमुद्र पट गये । अब और क्या कहा जाय ।

हत्या करने मे, विष के नमान उग्र मनवाले राक्षस, भूमि पर एव आकाश मे रित्त स्थान न रहने से पर्वतों के शिखरों को ऐसे लाँचते चले आये, जैसे उन पर्वतों पर दूसरे पर्वत चल रहे हो ।

माया-वधन के कारण उत्पन्न कर्म-परिणाम को मिटा देनेवाले, वासक्तिहीन महा-पुर्खों के लिए भी अवार्य, शरीर के नाथ उत्पन्न होकर उनके प्राणों को यम के हाथ साँपने-वाली व्याधि के समान वह राक्षसी (शर्पणखा) आगे-आगे आ रही थी । वह राक्षस-वाहिनी उडान महाप्रमु (राम) के निकट आ पहुँची ।

उनके बायों की व्यनि से आकाश के वादल भी कौप उठते थे । दीर्घ धनुषों के टकार मे बत्र भी भय-विक्षिप्त हो उठते थे । कोलाहल से समुद्र भी डर से उपशान्त हो जाता था । यों वह राक्षस-सेना उम वन मे स्थित दोनों वीरों के आवास पर आ पहुँची ।

(उम वन के) पक्षी तथा मृग (उम सेना को देखकर) भय से व्याकुल हुए । उनके मुँह सूख गये । उनके शरीर शिथिल पड़ गये । वे उमाम भरने लगे । उनकी बाँखों पर अँखें छा गया । यों वे कहीं भी तके विना भागते चले आये और वे क्रूर राक्षसों की सेना के आगमन की सूचना देनेवाले गुतचरों के नमान लगते थे ।

उम वन के शरभ, सिंह आदि ऐसे डरकर भाग रहे थे कि धूलि-पुज उड़कर नवंत्र छा गये । उनके पैरों-तले दवकर वृक्ष और झाड़ चड़चड़ाहट के साथ टूट गये । उन मृगों को देखकर पुष्ट भुजाओंवाले राम-लक्ष्मण ने सोचा कि राक्षस-सेना उनपर चढ़ाई करने आ रही है ।

विद्युत् के जैसे प्रकाशमान धनुषवाले, अतिष्ठ तवच्चवाले, कटि मे वैधे करवाल-वाले, स्वर्णमय किनारे से युक्त तृणीरधारी और क्रोधार्थि से चलते मनवाले लक्ष्मण, स्वय पहले युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर राम के निकट आये और वह कहकर खड़े हो गये कि आप यही रहे और मेरे युद्ध-कौशल को देखे । तब अपने अनुज को देखकर प्रसु कहने लगे—

हे वीर ! सन्मार्गामी महातपस्वियों को मैने पहले बचन दिया है कि मै राक्षसों के प्राण हूँगा, उसको अवधार्य न करने के लिए इस राक्षस-टल को मै ही मारूँगा । नहज तुवाक्षित तथा पुष्पालकृत कुतलोवाली देवी मीता की रक्षा करते हुए तुम यही रहो । मै यही चाहता हूँ—यो (राम ने) कहा ।

जिस सेना के आगमन से बृहों से भरं कानन में बड़ा मार्ग हो गया था, उस (सेना) को खर की सेना समझकर, कालवर्ण कमल-सदृश नेत्रवाले प्रभु ने अशिथिल वल-युक्त अपने कधे पर वाणों से पूर्ण तूणीर वाँध लिया । कर में चाप धारण किया । सुदृढ़ कबच का भी पहन लिया और खड़ग भी (कटि में) वाँध लिया ।

फिर, लक्ष्मण ने राम से प्रार्थना की—हे मिह-सदृश वलशाली । यदि युद्ध में अजेय स्वर्गलोकवासी और इस लोक के सब प्राणी भी अविकारिक सख्या में दुद्ध करने आयें, तो भी उन सबकी आयु (मेरे हाथों) समाप्त हो जायगी । यह बात अब मुझे आप से कहने की आवश्यकता नहीं है न । यह युद्ध मेरे लिए छोड़ दें और मेरी मुजाओं को सतानेवाले आलस्य को दूर कर दें ।

लक्ष्मण ने यह कहा । किंतु, राम इससे महसूत नहीं हुए । तब लक्ष्मण, जो राम की उन्नत पर्वत-सदृश मुजाओं के वल को पहचानता था और अपने भाई की आज्ञा को टाल नहीं सकता था, अपने सुन्दर करों को जोड़कर सीता देवी के निकट उनकी रक्षा के लिए खड़ा हो गया, जो अपनी आँखों से अश्रुधारा को धरती पर गिराती हुई खड़ी थी ।

वह सीता, जो उस लता के सदृश थी, जिसमें ताटकों से शोभित एक चन्द्रमा पुष्पित हुआ था, व्याकुल हो खड़ी रही और अनुपम धनुर्धारी मेरु-जैसे रामचन्द्र, मेघों के समान गर्जन करनेवाले, खड़ग-दतोवाले राक्षसों के सामने पर्णकुटीर से यो निकल आये, जैसे कोई सिंह पर्वत की कदरा से निकल पड़ा हो ।

गगन तक बढ़े हुए बाँसों की भुरमुट में उत्पन्न होकर उसको जला देनेवाली अग्नि के समान अपने कुल का सर्वनाश करनेवाली वह राक्षसी (शूर्पणखा), पर्णशाला से निकले हुए राम की ओर सकेत करके बोली कि हमारा शत्रु यही राम है ।

स्वर्णमय रथ पर, गगन को छूते हुए खड़े रहनेवाले, पर्वत-सम कधोवाले उस विजयी खर नामक राक्षस ने, जिसको देखकर सहस्रकिरण भी भय से हट जाता था, (राम को) देखा और अपने सैनिकों से कहा—मैं अकेला ही इनसे युद्ध करके, इस मनुष्य के वल को मिटाकर विजय-माला धारण करूँगा ।

यह मनुष्य तो अकेला ही है और यहाँ पर आई हुई वलवान् राक्षस-सेना इतनी विशाल है कि इसके लिए बन में स्थान ही नहीं है । जब समार के लोग इस दशा पर ‘अहो !’ कहेंगे (अर्थात्, आश्चर्य प्रकट करेंगे) तब मेरी विजय क्या रह जायगी ? अतः, तुम सब लोग यहीं देखते हुए खड़े रहो । मैं अकेले ही (हमारे लिए) भोज्य मास से विशिष्ट इस मनुष्य के प्राणों को पी जाऊँगा ।

तब अकपन नामक विवेकवान् राक्षस, यह बच्चन सुनकर उसके निकट आया और कहने लगा—हे स्वामी ! हे वीरों में महावीर ! मेरा एक निवेदन है । युद्ध में अत्यन्त उग्र होना उचित ही है । तो भी इस समय अनेक दुश्कुन हो रहे हैं ।

हे वीर ! मंघ, गरजकर रक्त की वर्षा कर रहे हैं । सूर्य के चारों ओर परिवेप-मडल पड़ा है । कौएं लंडते और रोते हुए आपकी ध्वजा में टकरा रहे हैं और धरती पर गिर रहे हैं । इन बातों पर ध्यान दीजिए ।

खड़गों की धार पर मक्खियाँ भनभना रही हैं। सेना के वीरों की वाम भुजाएँ और वाम नेत्र फड़क रहे हैं। बलिष्ठ भुजाओंवाले सेनापतियाँ के अश्व ऊँधते हुए गिर पड़ते हैं। श्वानों के साथ शृगाल-दल भी मिलकर आये हैं और रो रहे हैं।

हथिनियाँ भद्र-जल वहा रही हैं। विशाल गडवाले हाथियों के दाँत टूटकर गिर रहे हैं। धरती काँप रही है। उन्नत आकाश से विजलियाँ गिर रही हैं। दिशाएँ अकस्मात् जल उठती हैं। नवके शिरों की पुष्प-मालाओं से माम की दुर्गंधि निकल रही है।

ऐसे लक्षणों के उत्तर्ण होने के कारण, इसे अकेला मनुष्य कहकर इसकी उपेक्षा न कीजिए। मेरा कथन सत्य है। यदि हमसब एक साथ युद्ध करने लगें, तो भी इसे परास्त नहीं कर सकते। हे विजयमालाधारी ! मेरे वचनों को ढ़मा कर दो। यों अकपन ने कहा।

वह वचन सुनते ही खर हँस पड़ा, जिसमें सारा ससार काँप गया। फिर, वह बोला—मेरा दृढ़ पराक्रम पत्थर का वह मिल है, जिसपर देवता पिस चुके हैं। युद्ध की कामना से फूली हुई मेरी भुजाएँ क्या एक ज़ुद्र मनुष्य के आगे नीची होकर रहेंगी ?

खर के इस प्रकार कहने ही क्रोधभरी राक्षस सेना ने दशरथ पुत्र को ऐसे घेर लिया, जैसे घुঁঘরाले केसरों से शोभायमान मिह को कुछ गज-समूह ने घेर लिया हो। उस समय उनके भयकर शब्द एक दूसरे से टकराकर वज्र-सी ध्वनि कर उठे।

यो उस सेना के घेरते ही राम के हाथ में स्थित धनुष के सिर झुक गये। उस समय जो युद्ध हुआ और उसका जो परिणाम हुआ, इसका वर्णन हम करेंगे। राम के वेगवान् वाणों की नोक से दौड़नेवाले अश्व छिद गये और धरती पर लौट गये। लाल विंदियों से भरे मुखवाले हाथी ऐसे गिरे, जैसे वज्र से आहत पर्वत हो।

(राक्षसों के) त्रिशूल छिन्न हुए। अग्नि-ज्वाला उगलनेवाले फरसे टूट गये। करवाल टुकड़े-टुकड़े हो गये। गदाएँ चूर-चूर हुईं। भिन्निमाल मिट गये। वाण विनष्ट हुए। शरीर को चीर देनेवाले भयकर भाले तहस-नहस हुए। धनुष एव वरछे भी चूर-चूर हो उड़ गये।

वीर-कक्षण टूटे। हाथों के साथ तोमर भी टूटे। गजों के पैर टूटे। धुरियों के साथ रथ और उनपर की धजाएँ टूटीं। अश्व टूटे, (शरभ आदि) जन्तुओं के दलों के शिर टूटे। मूसल जड़ से टूट गये।

रामचन्द्र के वाण, जीनवाले अश्वों तथा काले वर्णवाले मदजल-सावी, दीर्घ सूँडवाले, पर्वत-समान हाथियों को भेदकर पार कर जाते थे और सब दिशाओं में छितरा जाते थे। निरसर वरसनेवाली वर्षा के जल के समान रक्त, धरती पर फैल गया। राक्षसों के शोभाहीन वज्र खुल गये। उनके शिर कटकर (धड़ से) पृथक् हो गये।

राघव ने एक, दस, सौ, महस्त, कोटि—यो गणना के लिए दुसाध्य कठोर शरीर के मिलसिले को जारी रखा। उन वाणों ने राक्षसों को मारकर पर्वत-शिखरों एव अनेक पर्वतों के समुदाय के समान शब-राशियों की पक्कियाँ लगा दी।

तड़पते हुए कबधों की राशियाँ, वहती हुई रक्त-धारा के साथ, ऐसा दृश्य उपस्थित करती थी, जैसे अरण्य के घने वृक्षों की शाखाएँ दावाग्नि में जल रही हो, गगन में उड़नेवाले राम-वाण ऐसे लगते थे, जैसे मृत (राक्षसों) के प्राणों का भी पीछा करते हुए जा रहे हों।

युवतियों के दीर्घ नयनों के समान ही राम के बाण, करवालों के साथ ही राक्षसों के करों के गिरने पर, उनके कठों के कट जाने पर, कबच से आवृत देहों के छिद्र जाने पर, उनके शिरों को भी भीषण रूप में छितराते हुए जलकर दिगतों को भी पारकर जाते थे।

वर्षा के सदृश राम-बाण, पर्वत-समान राक्षसों के विशाल शरीर-रूपी तटों के मध्य तालाब बना रहे थे, नदियाँ बना रहे थे, रण में रक्त-प्रवाह को भर रहे थे और यो उस स्थान में बन के दृश्य को मिटा रहे थे (अर्थात्, वहाँ के बन को रक्तमय जलाशयों में परिवर्तित कर रहे थे)।

उस समय, विशाल रक्त-समुद्र तरगायमान हो उठे। राक्षसों के शिर उस (समुद्र) में उतराने लगे। उनकी दीर्घ मास पेशिया उतराने लगी। दीर्घ सूँडवाले पर्वत-जैसे हाथी उतराने लगे। झटकर चलनेवाले घोड़े उतराने लगे। ध्वजाओं के साथ रथ भी उतराने लगे।

उस समय, अनेक बलवान् राक्षस, ज्वाला उगलनेवाली दृष्टि से देखकर, गरजकर, किसी विशाल अचल पर्वत को घेरकर, वरसनेवाले मेघ-जैसे, तीक्ष्ण बाण आदि उग्र शस्त्रों को (राम पर) वरसाने लगे।

राम ने अपने बाणों से वरसनेवाले शस्त्रों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये, अनेक शस्त्रों को विभिन्न दिशाओं में छितरा दिये और विखरे रक्त-केशोवाले काले राक्षसों के शिरों को काट-काटकर यों गिरा दिया, जिससे भूमि (उन शिरों के भार से) अपनी पीठ को झुकाने लगी और बन (उन शिरों से) भर गया।

उस समय कबध नाच उठे, हाथी लाल शोणित की धाराओं में गोतं लगाने लगे, भयकर भूत, वैर-भरे क्राधवाले एव क्रूर कार्य करनेवाले राक्षसों की चरवी को भर पेट खाकर आनन्द मनाने लगे, (मृत हो स्वर्ग में आये हुए वीर) प्राणियों के भार से देवलोक की भी देह झुक गई।

मायावी, हर्प तथा कपट से भरे, वक्र दत्तोवाले राक्षसों की उन आँखों की पुतलियों को, जिनको देखकर गरुड भी भयभीत हो जाता था, अब काक निकाल-निकाल-कर खाने लगे। अधकार के समान बचकों के मध्य विनाश अनायास ही पहुँच जाता है, क्योंकि कृपामय धर्म को छोड़कर अन्य कौन-सी वस्तु बलवान् हो सकती है?

तत्र (अनेक राक्षसों के) घने अधकार को मिटाकर प्रकाशित होनेवाले सूर्य के जैसे धनुर्धारी (राम) को क्रोधी राक्षसों ने चमकते वरछे-जैसे अपने नेत्रों से देखा और काली तथा विशाल घनघटा-जैसे युगान्त में पत्थरों की वर्षा करे, वैसे ही सर्व प्रकार के शस्त्रों को उन (गम) पर वरसाकर युद्ध किया।

धनुर्धारी (राम) ने झुड बाँधकर आये राक्षसों को, पृथक्-पृथक् आकर सामना करनेवाले (राक्षसों) को, अत्यत क्रोध से झटकनेवाले (राक्षसों) को, पहले पराजित हो

भागकर दुधारा युद्ध करने के लिए आंदेवाले (राज्ञी) को अपने तीच्छ वाणी में इस प्रकार काटकर गिरा दिया कि वह विद्वित नहीं होता था कि किसने भाला फेंका, किसने तीर छोड़ा, किसने प्रयुक्त करने के लिए शम्बु उठाया, किसने कोशल में कार्य किया या किसने नहीं किया ।

काकुल्य (गम) ने वाणी से जो शिर काटे उनमें से कुछ मेघ-मडल में जा पहुँचे, कुछ मसुद्र के किनारे के प्रदेशों में जा गिरे, कुछ चढ़ कां वेरे हुए नज़्बों में जा पहुँचे, कुछ उज्ज्वल कुडल-भूषित मिथुन नामक राशि में जा पहुँचे, कुछ भीषण अरण्यों में जा गिरे, कुछ पर्वतों पर जा गिरे और कुछ विशाओं की भीमाओं पर स्थित दिग्गजों के निकट जा गिरे ।

व (गम के) वाण, जो राज्ञीओं के, मेरु का भी उपहास करनेवाले, अतिट्ठ वक्षों को भेदकर आर-पार हो जाते थे और ज्वरों से वहनेवाली रक्त-रूपी ऊँची राङ्गों से पूर्ण नदियों को उमड़ा देते थे कुछ मेघों पर जा लगते थे, कुछ चढ़ से युक्त गगन में जा लगते थे और कुछ मसुद्रों के बाहर एवं भीतर जा लगते थे ।

सुन्दर मालाधारी एवं अग्नि-ज्वालाओं को उगलती आँखोवाले सब राज्ञम, सुदृढ़ तथा तीच्छ शङ्खों को प्रयुक्त करके, (राम के) शर में आहत होकर अपने राज्ञम-शरीर को मसुद्र में छोड़ देते थे और अविनश्वर (देव) शरीर को पाकर ढेवों के साथ मिल जाते थे और वह कहकर कि राज्ञम लोग मिट गये, आनन्द-ध्वनि करने लगते थे ।

वहाँ विशाल तरगों ने भरे अनेक ऐसे रक्त-नसुद्र उत्पन्न हो गये, जिनमें (राज्ञों के) यकृत-रूपी कमल थे, रथ-रूपी पुलिन थे वलवान्, गज-रूपी मगरों के झुड़ तैर रहे थे, भारी आँत-रूपी बने तथा हरे कमल-पत्र ऊपर की ओर फैले थे और जिनमें भूत स्नान करते थे ।

प्राणहारी वग्रभागों ने युक्त (रामचन्द्र के वाण-रूपी) बौद्धार के गिरने से कुछ (राज्ञम) हाय-हाय कर उठे, कुछ मूर्छित हो गिर पड़े, कुछ मिट गये, कुछ उसाम भरने लगे, कुछ लाट गये, कुछ लुटक गये, कुछ कीचड़-भरे एवं गहरी लहरों से युक्त रक्त-मसुद्र में छूट गये, कुछ धरती पर पड़ रहे कुछ ढुकड़े-ढुकड़े हो रहे ।

तब विप के समान क्रूर चौदहो सेनापति ऐसे उठ आये, जिससे विशाल द्वीर-मसुद्र को मरनेवाले (देव तथा वसुर) भी भयभीत हो उठे । वे (सेनापति) निहत होकर गिरे हुए राज्ञों का उपहास करने लगे । दृढ़ पहियोवाले गथों पर आरुद्ध होकर बरछे और करवाल लिये हुए तथा धनुष वाण करके अपार मसुद्र-जैसी सेना-वाहिनी को लेकर एक माथ आ पहुँचे ।

पूर्व ममय में एक बार पर्वत को धनुष बताकर आये हुए शिव को त्रिपुरासुरों ने जिन प्रकार धरे लिया था, उसी प्रकार प्रभु (राम) का आदर न करनेवाले वे राज्ञस, मन की क्रोधास्त्रिन को आँखों में निकालते हुए आये और कालमेघ-महश धनुर्वार (रामचन्द्र) को धेरकर युद्ध करने लगे ।

चन्द्रकला-समान खड़गदत्तोवाले राज्ञों में भे कुछ ने वाण का प्रयोग किया, कुछ ने वक्त दंडों का प्रयोग किया । दृढ़ ने अनेक शङ्खों में प्रहार किया । कुछ ने निर्द्व-

वचन कहें। कुछ ने धमकियाँ दी। यो सबने पर्वतों के जैसे आकर (गम को) धंग लिया।

(रामचन्द्र के) धनुप पर चढ़कर निकले हुए वाणों से (उन राज्ञों के) रथों में जुते धोडे सब धराशायी हो गये। सब मत्तगज वलि चढ़ गये। मजीर-भूषित धोडों के सिर उनकी धडों से अलग हो गये। जिस प्रकार उष्णकिरण (सूर्य) को घेरनेवाला परिवेप-मडल शीघ्र ही मिट जाता है, उसी प्रकार वचे-खुचे राज्ञों के पैर उखड़ गये और वे काँपते हुए भाग खड़े हुए।

मूर्छित हुए क्रूर राज्ञों के शरीरों में जहाँ-जहाँ शरों की बौछार लगने से छेड हो गये थे, वहाँ-वहाँ में रक्त के प्रवाह उमड़कर वह चले और उज्ज्वल धरती को आवृत्त करने लगे। विस्तृत गगन में स्थित देवताओं ने अपनी आँखों को (करों में) ढक लिया। यम के दृत, अतिवेग से आनेवाली हवा के समान आकर (उन राज्ञों के) प्राण हूरने लगे।

भूतों के अधिक सख्त्या में आने का कारण बननेवाले उम धोर युद्ध के उन्माद से भरे उन (राज्ञों) के कदराओं-जैसे मुँहों में श्वान आ खुसे। उनके शिरों पर शृगाल आ चढ़े। अग्नि के जैसे, बलिष्ठ सिंहों के जैसे और मेघ में उत्पन्न होनेवाले बज्र के जैसे जो राज्ञों घेरकर आये थे, वे (राम के) अग्नि उगलनेवाले तीक्ष्ण मुखों से युक्त वाणों की महायता से स्वर्ग में चढ़ गये।

उन (राज्ञों) के शिर विखर गये। अग्निकण विखरनेवाली आँखें विखर गईं। धरती पर पहाड़ों के समान हाथी विखर गये। (राम के) मेघ-सदृश धनुप से विच्छिन्न वाण सब दिशाओं में विखर गये और चिनगारियाँ विखरनेवाले पृथ्वी-जैसे राज्ञों के शरीरों से प्राण विखर गये।

वे चौदह बड़े सेनापतियों ने चारों ओर देखा। किंतु, अपने साथ आई रेना में एक भी ऐसे सैनिक को नहीं देखा, जिसका सिर उमकी धड़ से अलग न हुआ हो। इससे अल्पन्त क्रुद्ध होकर उन्होंने डॉतों को पीमते हुए अपने रथों को बड़े वेग के साथ चलाते हुए रामचन्द्र को घेर लिया।

— तब राम ने एक क्षण म अपने वाणों से उनके चौदहों रथों को विध्वस्त कर दिया। तब वे विध्वस्त रथ, चक्र, धोडे, सारथि, सब प्रलय-काल में प्रभजन से फेके गये पर्वतों के जैसे फैल गये।

उनके रथ जब नष्ट हो गये, तब वे चौदहों सेनापति पृथ्वी पर ऐसे कूद पड़े कि धरती धूँसने लगी। वे अपने हाथों में दृढ़ धनुषों को लेकर अपनी आँखों से मदको भस्म कर देनेवाली अग्नि-ज्वालाएँ उगलते हुए बज्र-जैसे शरों को लगातार वरसाने लगे।

राम ने अपने तीक्ष्ण वाणों से उनके विध्वसकारी शरों को चूर-चूर कर दिया। उनके चौदहों धनुषों को तोड़कर उनकी युद्ध की उग्रता को शान्त कर दिया।

तब वे सब मेनापति धनुषों के खींचों जाने से अत्यन्त कुद्र होकर, बड़ी शिलाओं को लेकर, आकाश में उड़ गये और सर्व की काति के समान ज्वाला उगलनेवाली शिलाओं को (राम पर) वरसाने लगे।

शान्त्र-त्पी मसुद्र को पार करनेवाले ज्ञानवान् प्रभु ने, प्राणहारी धनुप के साथ अपनी भाहों को भी झुकाकर उनपर पत्राकार चौदह भयकर वाण छोड़े, जिससे वे पर्वत-त्वड एवं उन मेनापतियों के शिर पृथ्वी पर आ गिरे।

इस प्रकार वे चौदहों सेनापति मरकर गिर पड़े। तब अन्य एक राज्यस-सेना, अनेक शत्रों को उछालती हुई तथा अपनी आँखों से अग्नि उगलती हुई रामचन्द्र के समुख आ गई और पृथ्वी पर, गगन में एवं सब दिशाओं में फैल गई। यह देखकर देवता काँप उठे।

तब बड़े नगाडे गर्जन कर उठे। बड़े हाथी गर्जन कर उठे। दृढ़ धनुषों की डोपियाँ गर्जन कर उठी। शखों के साथ अश्व भी गर्जन कर उठे। मेघ-गर्जन के समान राज्यों की गर्जन-ध्वनि भी होने लगी।

राज्यों के द्वारा फैके गये, गगन-मार्ग से आनेवाले शस्त्र, वीर (राम) के वाणों में कटकर कहीं अपने ऊपर न आ गिरें, वह सोचकर देवता लोग भाग जाते थे। समस्त लोक काँप रहे थे। निष्कप रहनेवाले दिग्गज भी आँखें बद कर लेते थे।

उम उत्तम सेना का सेनापति तीन शिरोंवाला (त्रिशिर नामक) राज्यस था। जो अपार बल-सपन्न था स्वर्ण-मुकुटधारी था, अपने धनुष से तीक्ष्ण नोंकवाले वाणों की वर्षा करनेवाला था और त्रिसेत्र के हाथ में रहनेवाले त्रिशूल के जैसा आकारवाला था।

उम राज्य-वीर के नाथ, प्रलयकालिक महासमुद्र के समान सब दिशाओं से उमड़कर आई हुई उम राज्यस-सेना के वीच में धनुष को लिये, अपनी समता स्वयं करनेवाले वीर (रामचन्द्र) ऐं लगते थे, जैसे घने अधकार के मध्य दीप हो।

उज्ज्वल करवालधारी, वज्र-सदृश धोपवाले, भारी कवच से आवृत, तथा क्रूर नेत्र-वाले उम गद्दन (त्रिशिरा) की सेना पर राम अपनी शरवाहिनी चलाते हुए खड़े रहे।

तब उन राज्यों के पैर भुजाएँ, करवाल, परसे, उनकी कटि और उनके छत्र—सब-के-सब कटकर गिर गये।

जब ध्वजाएँ और कठोर क्रोधवाले अश्वों की पक्कियाँ विध्वस्त हो गड़, तब बड़े-बड़े रथ धरती पर गिर गये और भागी तथा वलिष्ठ मत्तगज वज्रपात से टूटकर गिरनेवाले पर्वत-शिखरों के समान लुटक गये।

जिन कट जाने पर कुछ राज्यस यह न समझत हुए कि उनके शिर कट गये हैं, अपने विजयी धनुष से शर छोड़ने ही रहे। जिनके शिर अभी कटे नहीं थे, वे गगन में छाये मेघों के समान अपने शस्त्र चला रहे थे।

दाल लिये हुए विशाल हाथों, पर्वत-समान भीम आकारवाले तथा स्वर्णमय कवच धारण करनेवाले महावीरों के शिरोहीन घड़ तड़पते, उछलते हुए ऐसे नाच उठे कि नूपुरों में भूषित अम्भराएँ भी वह नाच देखकर सुरध हो गईं।

चामर एवं श्वेतच्छ्रुत्र-रूपी फेनवाले, गज-रूपी ऊँची पीठवाले, द्वृवते-उत्तरांत मीनो से युक्त भैंवरवाले तथा शीतल घाटों में विविध रत्न-समुदाय को लाकर छितरानेवाली जीन, हौदा आदि नौकाओवाले रक्त के प्रवाह में जा मिलते थे और उसे नया रूप (अर्थात्, रक्तवर्ण) दे देते थे ।

दृढ़ वक्त दत्तोवाले कुछ राक्षस (राम के) अति तीक्ष्ण वाणों से मृत होकर देवता बन गये और भ्रमरो को आकृष्ट करनेवाली पुष्पमालाओं से शोभित केशोवाली अप्सराओं के साथ रहकर अपने ही कवधों का नाच देखने लगे ।

कुछ राक्षस देवों के सघ में मिल गये और उत्तम कक्षणों से भूषित अप्सराओं के साथ रहकर यह देख रहे थे कि उनकी ही मृत देह की छिन्न भुजाओं को किस प्रकार एक ओर में भूत पकड़कर खाने लगते हैं और दसरी ओर श्वान उन्हीं टुकड़ों को पकड़कर खीच रहे हैं । यह देख-देखकर वे हँस पड़ते थे ।

कुछ राक्षस, जिनके बच्च, चुनकर प्रयुक्त किये गये रामचंद्र के वाणों के लगाने से छिन्न गये थे और जो (राक्षस) कर्म-वधन से सुक्त होकर देवता बन गये थे, यह सोचकर मन में भय करने लगे कि अहो ! राक्षसों की सेना विशाल है और राम तो एकाकी हैं, अब क्या होगा ?

शुडधारी गज-सदृश वीर (राम) के वे वाण, जो कटकों (राक्षसों) के शरीरों को छिन्न-भिन्न कर रहे थे, नीच तथा काले मनवाले, भूठी गवाही देनेवाले व्यक्ति के बचनों के जैसे थे ।

जिस प्रकार मनोहर पखवाला भ्रमर अपनी शरण में पड़े हुए कीड़ों को अपने रूप में परिवर्त्तित कर देता है, उसी प्रकार उदार प्रभु ने मायावी राक्षसों को धेरकर अपने उत्तम शरों के पवित्र प्रभाव से देवों में परिवर्त्तित कर दिया ।

वहाँ की रक्त की नदियाँ, मानो यह विचार कर कि एक बलवान् मनुष्य ने अनेक राक्षसों को मार दिया है, यह समाचार विजय-माला से भूषित रावण को देना चाहिए—क्रोधी गक्षसों के शवों को वहाती हुई (समुद्र में गिरकर) लका में जा पहुँची ।

चारों ओर जुटी हुई राक्षस-सेना को (राम के) वाणों ने सर्वत्र छिन्न-भिन्न करके उनके प्राणों को पी लिया, जिससे वह (सेना) धरती पर लोट गई, यह देखकर त्रिशिर ने क्रुद्ध होकर भी विलव किये विना, रक्त-प्रवाह में निमग्न अपने रथ को गगन-मार्ग से चलाता हुआ गर्जन किया ।

स्थिर रथवाले उस राक्षस ने, सबके लिए दृढ़ सत्य का साक्षी बनकर रहनेवाले, उस धर्म-स्वरूप चक्रवर्ती के कुमार (राम) के शरीर को, गगन की वर्षा की तरह अपने तीक्ष्ण वाणों की वर्षा से ढक दिया ।

राम ने, (राक्षस के द्वारा) वरसाये गये उन सब वाणों को अपने वाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया । फिर, चौदह वाणों से (उस राक्षस के) उज्ज्वल स्वर्णमय रथ को ध्वस्त कर दिया और उसके सारथी को भी निहत कर दिया ।

इतना ही नहीं, उसी क्षण, देवों के कोलाहल-ध्वनि करते समय, (राम ने)

न्वर्ण के जैसे चमकते हुए तीच्छण फलवाले अनुपम वाणों से क्रृ कार्य करनेवाले उम राक्षस के मुकुटधारी (तीन) शिरों से से, एक को छोड़कर, दो को काट गिराया ।

तब वह राक्षस रथ-हीन हो गया और उमका त्रिशिर नाम भी निरर्थक हो गया । तां भी उमकी क्रगता नहीं मिटी । जैसे गगन से काला मेघ उत्तरा हो, त्योही उमने अपने वक्र धनुप में वाण-पुज (राम पर) उतारे ।

त्रिशिर, ललाट पर भाँहों को चढ़ाकर, प्रलय-काल की वर्षा की तरह शरों की घनी वर्षा करनेवाले धनुप को लेकर युद्ध करने लगा । तब जिस प्रकार प्रभजन मेघ को त्रिखरा ढेता है, उसी प्रकार राम ने अपने अवार्य वाणों से उम (राक्षस) का धनुप काट दिया ।

यद्यपि उम (राक्षस) ने अपना वनुप खो दिया, तथापि धूरनेवाले उसके चमकते मुख का प्रकाश अम नहीं हुआ । उमकी मेघ-गर्जन की-सी ध्वनि भी मट नहीं पड़ी । उमका सुजवल मट नहीं पड़ा । उमके द्वारा राम पर वरसाये जानेवाले पत्थर भी कम नहीं हुए और चाक के जैसे उमका परिभ्रमण भी मट नहीं पड़ा ।

गगन में न्यय एकाकी रहकर भी उमने ऐना माया-युद्ध किया, जैसे दो सौ व्यक्ति मिलकर दुष्ट कर रहे हों । तब उमके दोनों पैरों को राम ने दो तीच्छण वाणों से काट दिया और दो वाणों में उमकी भुजाओं को भी काट दिया ।

भुजाओं और पैरों से हीन होकर वह (राक्षस) तीच्छण दाँतों को बाहर किये, पर्वत-कटरा समान एव मास-दुर्गंधि से युक्त अपने मुख को खोले हुए, रामचन्द्र पर गिरकर उन्हे निगलने को आया । उमे देखकर राम ने किंचित् भी दया किये बिना, अपने दीर्घ विजयशील धनुप ने एक वाण प्रशुक्त कर उमके एक शिर को भी काट दिया ।

त्रिशिर पर्वत-शिखर की भाँति ज्यों ही भूमि पर गिरा, त्योही, सूर्य के जैसे चमकते हुए करवाल वारण किये. अपने विशाल हाथों में ढालों को लिये हुए, वाकी बचे हुए राक्षस, दृष्ण नामक नानापति के मना करने पर भी वहाँ रखे नहीं, किंतु भाग खड़े हुए । उनके दीर्घ पैर, विशाल रक्त प्रवाहों में आँतों के मध्य उलझ जाते थे ।

वह दृश्य देखकर, आकाश से ऊँड बाँधकर स्थित देवता ताली वजाकर कोलाहल कर उठे । कुछ राक्षस, आदिशेष के फन पर स्थित धरती को दबाते हुए भाग चले और वहाँ फैलो हुई चरवी में फिनलकर उत्तरे झूव गये । कुछ राक्षस अपने सुरक्षित प्राणों के नाथ भाग और शव के ढेरों में टक्कर कर लुढ़क गये ।

कुछ राक्षस भागते हुए, धरती पर पड़े बरछे और करवाल की घारों से उनके पैर कट जाने ने ढौले हाँ पड़े । कुछ, मृत राक्षसों के रक्त-प्रवाह में पैर फिसल जाने से झूव गये । कुछ, भय के मारे रक्त-धाराओं में कूदकर तैरने लगे, किंतु वे कहीं स्थिर खड़े नहीं रह सके ।

कुछ ऐसे भाग रहे थे कि उनके कटि के बच्चे और खड़ग खिसककर गिर जाते थे और उनके पैरों से उलझकर उन्हें काटने लगते थे तो भी वे उमपर ध्यान न देते थे । वे भय की मूर्तिन्मे बने हुए व्याकुलचित्त होकर जहाँ-जहाँ शरों के बच्च पर लगे हुए उत्तम वीर (राम) के वाणों को देखते थे वहाँ-वहाँ से बेनहाशा ढौड़कर भाग निकलते थे ।

अतिवेग से भागनेवाले कुछ राज्ञस, वडे हाथियों के पेट में पड़े क्षतों के द्वारा-रूपी कदराओं में अपने खड्ग-सहित छुस जाते थे और पास खडे कवध को देखकर यह कहकर सिर पर अपने हाथ जोड़ लेते थे कि—हे मेरे साथी, तुम यही कहना कि तुमने हमको नहीं देखा है।

इस प्रकार भागनेवाले राज्ञसों को देखकर, अति वेगवान् अश्वों से जुते रथ पर आरूढ़ दूषण ने कहा—हमारे पराक्रम के योग्य युद्ध-कौशल से हीन इस मनुष्य को देखकर मत डरो। मैं जानता हूँ कि डर का कोई कारण नहीं है। मैं कुछ कहना चाहता हूँ, उसे सुनो।

जो लोग अपयश देनेवाले भय को मन में रखकर जीते हैं, उनसे सुन्दर कगन पहननेवाली स्त्रियाँ भी नहीं डरती हैं। धैर्य-रूपी कवच ही वास्तव में रक्षा कर सकता है। भय प्राणों की रक्षा कभी नहीं कर सकता।

पूर्वकाल में, तीक्ष्ण भाले को धारण करनेवाले इन्द्र तथा अविनाशी त्रिदेवों के साथ हुए युद्ध में-कौन राज्ञम डरकर भागा था? कदाचित् तुम लोगों ने, तुमसे डरकर भागनेवाले देवों से अब यह (डरकर भागना) सीख लिया है, इसीलिए अब यों भ्रात हो रहे हो।

तुम इतने वडे बीर हो। फिर भी एक मनुष्य से हारकर, अपने हाथ में शस्त्र रखे, नगर में जाकर छिपने के लिए भाग रहे हो। तुम अपनी मदमाते नयनोवाली पत्नियों के बच्च से बच्च मिलाकर आलिंगन का सुख भोगने जा रहे हो?

हे बीरो! (क्रीध से) ताम्रवर्ण रहनेवाली तुम्हारी आँखें अब दूध के समान श्वेत पड़ गई हैं। अहो! क्या तुम लोग अपनी स्त्रियों को, घने बन में भागते समय वृक्ष की शाखाओं के टकराने से अपनी पीठ पर लगे क्षतों को दिखाओगे, या अपने बच्च पर लगे शरों के क्षत को दिखानेवाले हो।

‘इस हमारे शत्रु, मनुष्य का युद्ध-पराक्रम उन देवों के लिए भी दुष्प्राय है’— (शत्रु की) ऐसी प्रशमा का कारण बनकर, इस प्रकार पीठ दिखाकर तुम्हारा भागना—अजेय भुजवल से युक्त, तुम्हारे कुल के नायक (रावण) की बहन (शूर्पणखा) की नाक कटने की बात छोड़ भी दो, तो भी यह हमारे अपयश का कारण बन रहा है। अब इससे बढ़कर दयनीय दशा और क्या हो सकती है?

अद्भुत शस्त्र-प्रयोग में निपुण, धीरता-पूर्ण युद्ध-कार्य से जीविका-निर्वाह करनेवाले, शत्रुओं से छीनकर लिये गये करवालों को धारण करनेवाले, हे राज्ञसो! अब क्या तुम लोग मोती आदि को वेचकर वणिक-वृत्ति करनेवाले हो? या तीक्ष्ण वरछे, करवाल आदि से पृथ्वी को जीतकर कृपक-वृत्ति करनेवाले हो? बताओ तो सही।

यों कहकर उसने आगे कहा—तुम लोग कुछ समय तक खडे रहकर मेरे दीर्घ धनुष का प्रभाव देखो। फिर, वह (दूषण) स्वयं अपनी तरगायमान समुद्र-सद्वश सेना को लेकर (राम के) समुख जाकर आक्रमण करने लगा। वह दृश्य देखकर देवता लोग भी मूर्च्छित हो गये। तब राम ने भी उससे यह कहकर कि—‘अपने को भली भाँति बचाओ’—आगे पग बढ़ा दिया।

तब (गम के बाणों में मैनिकों के) हाथ खड़गो-सहित कटकर गिर गये । हाथियों के ऊँचे बढ़े हुए दत कटकर गिर गये । पवन-गति में जानेवाले रथ, ध्वजाओं-सहित, कटकर गिर गये । घोड़ों के शिर ऐसे कटकर गिरे, जैसे लाल धान की बालियाँ कटकर गिर रही हो ।

(गम के द्वारा) प्रयुक्त शरों में से कुछ (राक्षसों के) मर्म-स्थानों को खोजते हुए चले । कुछ उनके कवच और बन्धों को उटाकर चले और कुछ शर उनके दालों और शरीर को भी ऐसे भेट कर चले कि उनके शरीर में रक्त की नदियाँ, पर्वत-निर्भरों के जैसे वह चली ।

तुनकर प्रयोग किये गये कुछ ककपत्र (बाण), शरीरों में प्रविष्ट होकर राक्षसों के मर्म-स्थानों में बृश गये । अर्धचन्द्राकार बाण, उनके मर्म-स्थानों में न बृसकर उनके शिरों को काटकर उड़ गये । कुछ अति तीव्र शर उनके कवचावृत बन्धों को भेदकर गये, और 'भल्ज' (नामक कुछ शर) मायावी राक्षसों के हृदय को भी छेदकर चले गये ।

युद्ध की लीला रचनेवाले (श्रीराम) ने, दृष्टि के द्वारा प्रयुक्त सब बाणों को काटकर, उनके निकट स्थित राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त अन्य शस्त्रों को भी ध्वस्त कर, अपरिमेय बल से युक्त उस राक्षस-सेना रूपी शब्दायमान समुद्र को कुछ द्वाणों में ही सुखा दिया ।

तब देवता लोग आनन्द-ध्वनि कर उठे । रक्त की बड़ी-बड़ी नदियाँ बड़े पर्वतों एव वृक्षों को बहा ले चली । रामचन्द्र के द्वारा प्रयुक्त उग्र बाण दिग्दिगतों में भी जाकर, उन दिशाओं को आवृत कर रहनेवाले क्रूर राक्षसों को आहत कर धरती पर लिटा दिया ।

युद्ध करने की इच्छा से जो राक्षस रण-चेत्र में खड़े रहे, वे सब मर मिटे । यम, उन (राक्षसों) के शरीरों से निकलनेवाले प्राणों को ढोते-ढोते बहुत थक गया । अब उन भूतों के बारे में क्या कहा जाय, जो उन (राक्षसों) की चरवी को पेट-भर खाकर ऊँचे पवतों के जैसे लगते थे ?

उस समय, दृष्टि अत्यन्त कुद्ध होकर, हाथियों, रथों, अश्वों, क्रोधी राक्षसों के सुकुट-भूषित शिरों, कवधों, उज्ज्वल शस्त्रों से सुमजित शरीरों, उनकी श्वेतैरंग की चरवी—इन सबके ढेरों के ऊपर से होकर कोलाहल-पूर्ण रथ को शीघ्र चलाता हुआ आया ।

धर्मजीन (राक्षसों) के शरीरों के ढेर की कोई सख्त नहीं थी । अतः, वह दृष्टि, यद्यपि चरखी के जैसा वेगवान् था, तथापि उसका रथ उन शव-राशियों पर चढ़ता-उतरता हुआ बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ा । उस कठिनाई के बारे में हम क्या कहे ?

सुमजित के सरोंवाले पञ्चीस अश्व जुते तथा लुढ़कते चक्रोंवाले एक बिलक्षण रथ पर वह (दृष्टि) आरूढ़ था । भूमि के अधकार को मिटानेवाले चन्द्र के सदृश स्थित रामचन्द्र के उज्ज्वल शर-रूपी यम के ममुख मानो स्वय उसके प्राण आ पड़े हो, ऐसी शीघ्रता से वह आया ।

उस रथ को तथा उसपर धनुप को हाथ में लिये हुए पर्वत के जैसे खड़े दृष्टि को, देखकर अकलक रामचन्द्र ने अपनी कृपा के कारण किंचित् उसकी प्रशसा करते हुए कहा—‘तुम्हारा नाहम भी धन्य है ।’ उस समय उस क्रूर राक्षस ने तीन बाण प्रयुक्त किये ।

अतिदीर्घ तथा वर्तुलाकार अग्र दिशाओं तथा पृथक्-पृथक् उनका भार वहन करनेवाले अष्ट दिग्गजों को ढोते रहनेवाले दो मे से एक (पाढ़ुका)^१ को, जिन (राम) ने (अयोध्या को) लौटा दिया था, उनके ललाट पर गज के मुख पर वैधे मुखपट्ट के समान पट्ट पर वे तीनों शर जा लगे, जिस वश्य को देखकर सभी देवता भयभीत हो गये।

राम ने सोचा कि (दूषण के द्वारा) शर-प्रयोग की गति एव उसका बल भी प्रशसनीय है। फिर, मनोहर कातिमय मद्हास से युक्त होकर तीक्ष्ण वाण चुन-चुनकर त्वरित गति से प्रयुक्त किये और उस (दूषण) के शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ को विघ्वस्त कर दिया। उसके धनुष को छिन्न कर दिया और उज्ज्वल कंच को भी नष्ट कर दिया।

तब देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे। सभी दिशाओं से ऋषियों की आशीर्वाद-ध्वनि समुद्र-गर्जन के समान शब्दायमान हो उठी। फिर, राम ने यह कहकर कि—‘यदि तुम वीर हो तो इससे अपने को बचा लो’, एक वाण प्रयुक्त किया। उससे उस (दूषण) का खड्ग-दत्तयुक्त बड़ा शिर कटकर गिर गया।

मुख पर दतो से शोभायमान दिग्गजों की समता करनेवाला, अति-तीक्ष्ण तथा विविध प्रकार के शस्त्रों को धारण करनेवाला खर, यह जानकर कि दशरथ-पुत्र के वाणों ने राज्ञम-सेना का विनाश कर दिया, अत्यन्त कुद्ध हुआ।

वह खर, राज्ञमों के साथ हाथियों, अश्वों और रथों को मव दिशाओं में फैलाता हुआ यों चल पड़ा कि उसे देखकर यम भी भयभीत हो गया। उसकी सेना ने चन्द्र को आवृत करनेवाले मेघों के समान आकर दृढ़ धनुष को हाथ में धारण किये हुए मत्तगज (सद्श राम) को धेर लिया।

अदम्य क्रूर कृत्यवाले राज्ञम, मदजल वहनेवाले वडे-वडे हाथियों को, रथों को और अश्वों को अत्यधिक सख्या में धरती पर ले आये, जिससे धरती को वहन करनेवाले आदिशेष का फण भी फटने लगा। फिर, वे भयकर युद्ध करने लगे। महिमामय राम ने भी अति तीक्ष्ण वाणों को प्रयुक्त किया।

(रामचन्द्र के शरों से) मत्तगज तड़पकर गिरे। रथों में जुते अश्व तड़पकर गिरे। अगद-भूषित भुजाएँ तड़पकर गिरी। अँतें तड़पकर गिरी। मास से लगे चर्म के टुकड़े तड़पकर गिरे। पैर तड़पकर गिरे। और (उन राज्ञों की) वाम भुजाएँ भी तड़प उठी (अर्थात्, फड़ककर विपदा की सूचना देने लगी)।

करवालों के समूह, भालों के समूह, धनुपों के समूह, वलिष्ठ भुजाओं के समूह—इन सबसे सकुल होकर राज्ञस-बीरों का समूह सम्मुख आया। जिसे (रामचन्द्र के) शर-समूह-रूपी विघ्वसक सेना ने छिन्न-भिन्न कर दिया।

धर्म-स्वरूपी (राम) से चुनकर प्रयुक्त किये जानेवाले वाण नक्त्रों को भी भेदकर जा सकते थे। मेर पर्वत को भी भेदकर निकल जा सकते थे। ऊँचाई पर स्थित ऊपर

१. धरती का मार वहन करनेवाली दो वस्तुएँ हैं—आदिशेष और महाकूर्म। रामचन्द्र की पाढ़ुका, जिसे उन्होंने भरत को दिया था, आदिशेष का ही अवतार मानी गई है। —अनु०

के लोकों को भी पार कर जा सकते थे । धरती को भी भेदकर जा सकते थे । तो अब क्या यह भी कहने की आवश्यकता है कि वे (वाण) करवालों को उठाये, उपस्थित राज्ञों के शरीर को भी भेदकर जा सकते थे ?

उम समय, उनको घेगकर आनेवाले सब राज्ञों का एक साथ चिनाश करने के लिए राम ने जो वाण चुन-चुनकर चलाये, उन्होंने उन राज्ञों को उमी प्रकार अति शीघ्र मिटा दिये, जिस प्रकार किसी वलवान् व्यक्ति के द्वारा किसी वलहीन को अत्याचार में मारकर चुराया गया धून (उस अत्याचारी वलवान् को) शीघ्र ही मिटा देता है ।

सब राज्ञस-वीरों के मिट जाने पर वीर-कंकणधारी, अतिकुद्ध क्रूर खर, उत्तरो-तर वह आनेवाली मज्जा और रक्त की धारा में ऐसे ही अकेले खड़ा रहा, जैसे विशाल समुद्र के मध्य मटराचल खड़ा हो ।

मन में क्रोधाभिसंसार से जलता हुआ वह (खर), अपनी लाल आँखों में चिनगारियाँ उगलता हुआ और अपने हृद धनुष से वाणों को उगलता हुआ वढ़ती हुई रक्त-धारा के मध्य से समुद्र-मध्य जानेवाली नौका के मद्दश रथ पर आया । काक और गिर्ड भी उसको घेर-कर आये ।

युगात में सारे ससार को जलानेवाली अभिसंसार के समान वे एव क्रूरता से युक्त एकाकी रहनेवाले उस राज्ञस के अपने निकट आने के पूर्व ही, नीलकंठ (शिव) के धनुष को तोड़नेवाले प्रभु, उत्तम वाणों को लिये हुए उसके सम्मुख वढ़ आये ।

अभिसंसार के जैसे तीक्ष्ण त्वपवाले, पवन के जैसे वगवाले तथा अन्य सब लक्षणों से युक्त तीक्ष्णवाणों को उस राज्ञस-पति ने छोड़ा । किंतु राम ने उन सबको वैसे ही सहस्रों उत्तम वाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया ।

सब लोकों के प्रभु राम ने प्रलयाभिसंसार में भी अविक तीक्ष्ण, नौ वाणों को प्रयुक्त किया । किन्तु, चक्र के रूप में झुके हुए बनुपवाले खर ने अग्नि उगलनेवाले वाणों को चलाकर राम के वाणों को रोक दिया ।

फिर, खर ने माया युद्ध करने हुए, शरों की वर्षा उत्पन्न की और रामचन्द्र के शरीर को उन वाणों से ढक दिया । इससे देवता भयभीत होकर भागे, तब महावीर राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके उज्ज्वल दौत और उन (दौतों) को दृकनेवाले ओठ दोनों व्यत्यस्त हो गये (अर्थात्, उनके दौत ओंठों को चवाते हुए उन ओंठों को ढकने लगे ।)

राम ने वह सोचकर कि अब एक तीक्ष्ण वाण से इस राज्ञस को मिटा दूँगा, एक शर को धनुष पर चढ़ाकर उसे आकर्ण खोचा, तब उनके हाथ का धनुष, विशाल आकाश में उत्पन्न मेघ-गर्जन के मद्दश धोप के नाथ टूट गया ।

(राम की) जय-जयकार करनेवाले देवताओं ने देखा कि राम का धनुष टूट गया है और उनके पास अन्य कोई हृद धनुष नहीं है और वह सोचकर कि हमारी शक्ति अब नष्ट हो गई है, भय से काँप उठे और व्याकुल हो उठे ।

इसी क्षण राजाधिगाज के पुत्र (राम) ने अपने अकेलेपन की एव अपने धनुष

के दूट जाने को किंचित् भी चिन्ता किये विना ही प्राचीन सकेत^१ के अनुसार अपनी विशाल वाँह को पीछे की ओर पसारा।

वरुणदेव ने यह दृश्य देखा और उनके मन की बात जानकर परशुराम से पूर्व म प्राप्त विष्णु-धनुष को उम देवाधिदेव (राम) के हाथ में लाकर रख दिया।

वरुण के द्वारा लाये हुए उम धनुष को नीलमेघवर्ण प्रभु ने अपने हाथ में लिया और अपने बाये हाथ से उसे पकड़कर दाये हाथ से खींचकर झुकाया, तो धर्महीन राक्षसों के बाम नेत्र और बाम मुजाएँ फड़क उठी।

यो एक पलक-भर में राम ने उस धनुष को लिया, और उसे ऐसा झुकाया कि यम भी भयमीत हो गया। उसके बाद डोरी चढाई और मौ बाण प्रयुक्त किये, जिनसे खर का दृढ़ चक्रवाला रथ चूर-चूर हो गया।

खर दृढ़ चक्रवाला अपना रथ खो बैठा। तब वह बड़ा कोलाहल करता हुआ आकाश में उछल गया और सुन्दर तथा अनुपम धनुर्धारी राम की मुजा-रूपी मदराचल पर बाणों की घोर वर्षा करने लगा।

राम ने उन बाणों को रोक लिया और अपने तूणीर से तीक्ष्ण बाणों को निकाल-निकालकर चढानेवाले खर के दक्षिण हाथ को एक बाण से काटकर धरती पर गिरा दिया।

खर ने, अपने दाहिने हाथ के कट जाने पर, अपने बायें हाथ से एक भयकर बज्र के समान मूसल को उठाकर, उसे राम पर फेंका। तब लक्ष्मण के अग्रज ने उसे एक ही बाण से दूर फेंक दिया।

जैसे कोई सर्प अपने विष-दत्त के दूट जाने के पश्चात् फुफकार रहा हो, ऐसे ही वह खर एक बड़े वृक्ष को हाथ में लेकर झपटा। तब राम ने एक अनुपम बाण का उसपर प्रयोग किया।

यद्यपि उम खर ने अनेक बर प्राप्त किये थे, बड़ा मायावी था और बड़ा बलवान् था, तथापि राक्षसराज (रावण) के सस लोक के प्राणियों का विनाश करने के पाप के कारण, उसके दक्षिण हाथ के जैसे ही उसका कठ भी कट गया।

उस समय, देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे, नाचने और गाने लगे और पवित्र पुष्प वरसाने लगे। पवित्र मूर्त्ति (राम) भी सब दिशाओं में फैले कुहरे को मिटाकर निखरनेवाले सूर्य के समान ही चमकने लगे।

अनेक मुनि आये और राम का अभिनन्दन करने लगे, फिर पवित्र हृदयवाले (राम) उन सीताजी के समीप जा पहुँचे, जो अपने प्राणों (रामचद्र) के राक्षस-सेना के साथ युद्ध करने के लिए चले जाने पर प्राणहीन शरीर बनकर पर्णशाला में रहती थी।

लक्ष्मण और सीता ने रामचन्द्र के चरणों को अपने अश्रुजल से इस प्रकार धोया कि उन चरणों पर लगा हुआ, युद्ध में मृत राक्षसों का रक्त और धूल धूल गये।

१. प्राचीन सकेत यह है—पहले धनुर्भेग के समय परशुराम ने राम से पराजित होकर अपने पास का विष्णु-धनुष उन्हे दिया था। राम ने वह धनुष वरुण को सोंपा था और कहा था कि जब उन्हे उसकी आवश्यकता पड़ेगी, तब वह धनुष उन्हे मिल जाना चाहिए।—अनु०

एक मुहूर्त में मरे हुए राक्षसों का रक्त-प्रवाह सब विशाओं में भर गया। इधर श्रीरामचन्द्र विश्राम करने लगे और देवता मसुद्र से, पक्षियों में उठनेवाली लहरों के समान, धोप करते हुए उनकी सुरुति करने लगे।

इधर जो वृत्तात कहना शेष रह गया है, अब उसे कहेंगे। रावण की वहन, अपनी छाती पीटती हुई, अधकार समान खर का आलिगन करके, दूर तक फैले हुए उसके उष्ण रक्त-प्रवाह में लोटने लगी।

मैंने अपने मन में (राम को पाने की) जो इच्छा की थी, हाय! उम इच्छा को अपनी नासिका के साथ ही मैंने नहीं खोया। मैंने अपने बच्चों के कारण तुम लोगों (खर-दूषण) के जीवन को भी मिटा दिया। मैं अत्यन्त क्रूर हूँ—यो रोती कलपती हुई वहाँ से चली गई।

विजयमालाधारी (लका में रहनेवाले) राक्षस-समूह का भी नाश करने के विचार ने, ससार के प्राणियों को भयभीत करनेवाली आँधी के समान, वह शीघ्र लका में जा पहुँची। (१-१६२)



अध्याय ५

मारीच-वधु पटल

श्रीष्णु, कोलाहल से पूर्ण मसुद्र की जैसी राक्षस-सेना के विनष्ट होने की बात को भूल-सी गई। गमचन्द्र के पर्वत-सट्टश कधों के प्रति व्याकरण उसके मन को व्यथित करने लगा। उससे अत्यत व्याकुल हो वह यह सोचकर चल पड़ी कि, तरगों से भरे समुद्र-तपी परिष्वां से आवृत विशाल लका में शीघ्र जा पहुँचँगी और (रावण से) सीता के सांदर्य के बारे में कहूँगी। अब उस लका में स्थित रावण का वर्णन करेंगे।

वह (रावण) एक ऐसे अति मनोहर अनुपम रत्न-मण्डप में आसीन था जो (मण्डप) इन नश्वर ससार में स्थान्वर-जगम पटाथों की सुष्ठि करनेवाले कमल-भव, चतुर्मुख (ब्रह्मा) के लिए भी विरचित करने को असमव था और जो सूक्ष्म ज्ञान से उत्पन्न अनुपम दक्षता से युक्त तथा निष्कलक धर्म के जैसे ही, सकल-मात्र से सब वस्तुओं का सर्जन करनेवाले (विश्वकर्मा नामक) देव-शिल्पी के द्वारा निर्मित होकर, उसके समस्त शिल्पशास्त्र-ज्ञान को प्रकट करता था।

भ्रमरों से गुजित शिरवाले दिग्गजों के दॉतों को भी अपने कठोर आधात से तांड़ देनेवाले (उस रावण के) मनोहर कधे, वाकाश तक उत्तर होकर ऊँचे उदयाचल के समान शोभित हो रहे थे। उन कधों पर (रावण के वीस) कुण्डल इस प्रकार प्रकाशमान थे, जैसे उज्ज्वल किरण-पुज से युक्त द्वादश सूर्य-मण्डल, मेव पर्वत की परिक्रमा करते हुए, वीस मण्डलवाले होकर चमक रहे हों।

देवताओं में व्याघ्र-चर्म धारण करनेवाले (शिव), स्वर्णमय वस्त्र धारण करनेवाले (विष्णु) और कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) भी उस रावण को कुछ पीड़ा नहीं दे सकते थे, तो अब इस ससार में दूसरों के सबध में क्या कहा जाय। (अर्थात्, दूसरे कौन उससे युद्ध करने की शक्ति रखते हैं) ? सूक्ष्म काट, पीन स्तनो, कोमल वॉस-समान कधो, रेखाओं से युक्त नेत्रों तथा सबको आकृष्ट करने की शक्ति से युक्त सुदरियों के साथ दुस्सह प्रणय-कलह में भी न भुक्नेवाले उसके किरीटों की पक्कि अत्यन्त उज्ज्वल थीं।

(उसके आभरणों के) उज्ज्वल तथा वडे-वडे रत्न प्रकाश-पुज विखेर रहे थे। (उसके) वज्रमय पर्वताकार कधे, धरती का भार वहन करनेवाले विषमय सर्पराज के फनी के समान शोभित थे। (उसके वक्ष पर) के उज्ज्वल रत्नहार भयकर समुद्र से घिरी लका के मध्य स्थित उस कारागार का दृश्य उपस्थित करते थे, जिसमें (रावण) के द्वारा बड़ी बनाकर लाये गये नवग्रह तथा उनके पाश्वों में नक्षत्र रखे गये हैं।

अरुण कातिवाले, उत्तम रत्नों से खन्चित उसका वीर-बलय, उसके चरण में शब्दायमान हो रहा था और अवर्णनीय महावल से युक्त राज्ञस-नायकों के गौरवमय रत्न-किरीटों की रगड़ खा-खाकर नव काति विखेर रहा था।

सुरों तथा असुरों ने सब दिशाओं से ला-लाकर जो सुरभित पुष्प (रावण के चरणों पर) वरसाये, वे पुष्प त्रिभुवन के राजाओं के द्वारा निरन्तर ला-लाकर समर्पित धन-राशियों के समान भरे पड़े थे।

विजली के जैसे चमकते हुए किरीटोवाले विद्याधर-नरेश, यह न जानने से कि वह (रावण) किम समय, किस ओर अपनी दृष्टि डालेगा, सदा अपने शिर पर हाथों की जोड़े हुए सभा-मडप में उसके समीप पक्कि बाँधे खड़े रहते थे।

सिंह-सद्वश वलशाली सिद्ध लोग, उस (रावण) के समीप शिर भुकाये, हाथ जोड़े और सकोच्च-से भरे मन के साथ विनम्र होकर खड़े रहते थे। यदि वह रावण किसी दासी को भी कोई आज्ञा देता, तो भी (ये सिद्ध लोग) यह समझकर कि वह उनको ही आज्ञा दे रहा है, फट उसे करने के लिए दौड़ पड़ते थे।

यदि वह रावण उस सभा-मडप में मन्त्रियों को देखकर कोई बचन कहता, तो भी किन्नर (यह सोचकर कि वह उन किन्नरों को कुछ दड़ देने की ही बात कर रहा है), व्याकुल तथा भयभीत होकर शिर भुकाकर खड़े रहते थे।

नागलोग, रावण को देखकर, विशाल (दक्षिण) दिशा के प्रभु तथा भयकर दड़-धारी यम को देखनेवाले नरक-वासियों के समान ही, गद्गदकठ एवं भय-व्याकुल मन होकर घेरे खड़े रहते थे।

तुबुरु नामक ऋषि अपनी सगीतमय वीणा-के साथ रावण की उन भुजाओं का यशोगान कर रहे थे, जिन भुजाओं ने दिग्गजों के बल को कुठित कर दिया था, कैलाश गिरि को उखाड़कर महादेव के लिए अपबाद उत्पन्न किया था और इन्द्र के साथ युद्ध करके सभी स्वर्ग-वासियों को भयभीत किया था।

नारद मुनि, स्वर्ग में प्रचलित सगीत-पञ्चति में किंचित् भी स्खलित हुए विना,

अपने करो जे वीणा का नाड़ करते हुए, सरस्वती के समान ही, दोपहीन राग में मधुर वट का गान करते थे और उसके कानों को तृप्त करते थे ।

मध्वर-मीन से पूर्ण भस्त्र का अधिपति वरुण, देव-तरुओं तथा विद्याधर-लोक के वृक्षों के पुष्पों से फरे हुए मधु को, स्वच्छ जल के साथ मिलाकर, मेघ नामक पिचकारी में भरकर, डरतं-डरते उम रावण पर वृद्धों में वरसा रहे थे कि कही (पिचकारी का जल) मयूर और हरिणी-सदृश रमणियों के वस्त्रों पर न पड़ जायें ।

बासुदेव, सुगन्धित पुष्पों से झरनेवाले पराग और मधु को, एवं (उस सभा में स्थित) राजाओं के ऊँचे-ऊँचे किरीटों के (एक दूसरे से) रगड़ने से झरनेवाले रलो और मुक्ताओं के टुकड़ों को, धरती पर उनके गिरने के पूर्व ही, इधर से उधर और उधर से इधर दौड़-दौड़कर इस प्रकार बटोर लेता था, मानों वह उम स्थान पर क्षाढ़ू-सा लगा रहा हो ।

वृहस्पति और शुक्राचार्य—दोनों अपने हाथों में विजली के जैसे चमकनेवाले दड़ लिये हुए, सारे शरीर को ढकनेवाले दीर्घ कच्चुक धारण किये हुए, अथक रूप से घूम-घूमकर (रावण के सभा-मडप में) इन्द्र आदि देवताओं को यथोचित आसन दिखाने का कार्य कर रहे थे (अर्थात्, रावण की सेवकाई कर रहे थे) ।

काल त्रिशूल आदि अपने शस्त्रों का त्याग कर, अपने शरीर के वस्त्र से अपना मुँह ढककर, जव-जव चर्म से आवृत भेरी-बाद्य बजने का समय होता था, तवन्तव आकर, ठीक समय की सूचना देता था । (भाव यह है कि कालदेव रावण के सभा-मडप में समय की सूचना देने का कार्य करता था) ।

उज्ज्वल अग्निदेव, दीपों में सुगन्धित धृत को भर-भरकर, उत्तम कर्पर-वत्ती को तथा कपास की वत्ती को जलाकर, जलाशयों में स्थित रक्त-कमल के समान दीपों को प्रकाशित कर रहा था ।

नवीन पुष्पों से पुष्पित कल्पवृक्ष, अमन्द काति से पूर्ण (चितामणि आदि देव-लोक के) रल, दुधार (कामधेनु आदि) गायें तथा (शख, पञ्च आदि) निधियाँ, (रावण के) मन के कोमल भावों को पहचानकर क्रम-क्रम से अनेक वस्तुओं को लाकर उसके सामने रख देता था और उसे आश्चर्य में डाल देता था ।

(रावण के पहने हुए) कुडल आदि आभरण, अपनी धनी काति को इस प्रकार फैला रहे थे कि ऐसा लगता था, मानों सत्त लोकों में रात्रि नामक पदार्थ ही कही नहीं रह गई है, न वष्ट दिशाओं में कही अँधेरा रह गया है ।

गगा आदि नदी देवियाँ, अपने स्तन-भार से लचकनेवाली लता-समान कटि के माथ, उस सभा-मडप में आती और (रावण पर) अपने अस्त्र करों से अक्षत एवं पुष्प विखेरती तथा वारी-वारी से प्रशस्तियाँ गातीं ।

(नारायण मुनि के) उरु से उत्पन्न उर्वशी^१ नामक अप्सरा को आगे किये हुए

^१ पुराणों में एक कथा प्रसिद्ध है—वदरिकाश्रम में विष्णु के अशभृत नर और नारायण क्रमशः शिष्य और गुरु के हृष में तपस्या करते थे । उनकी तपस्या को भग करने के लिए इन्द्र के द्वारा प्रेषित अप्सराओं को आया हुआ देखकर नारायण ने अपने उरु से उन अप्सराओं से भी अधिक सुन्दर लड़ी को उत्पन्न किया, जिसे देखकर वे सब अप्सराएँ लज्जित होकर चली गई—उसका नाम उर्वशी पड़ा ।

अनेक स्त्रियाँ, कलापी के समान चर्ममय वादो (अर्थात्, मर्दल आदि) के ताल के अनुसार अत्युत्तम नृत्य करती थी, जिसे वह (रावण) देखता रहता था।

वह रावण, जिसने अपूर्व तपस्या के प्रभाव से त्रिभुवन को भी अपने अपार बल के अधीन कर रखा था, अब (उस सभा-मङ्गल में) भ्रू-रूपी धनुष को धारण करनेवाली काले तथा विशाल नयनोवाली रमणियों के दृष्टियों के प्रवाह में (तैर रहा) था।

उस समय, रावण की वहन (शूर्पणखा), अपने लाल हाथों को शिर पर रखे हुए, स्तनों से लाल रक्त वहाते हुए, नाक और कानों से रहित होकर, अपना मुँह खोलकर मेघ के जैसे गरजती हुई, दोड़ी आई।

वह (शूर्पणखा) अपने अत्यन्त दुर्गन्ध-पूर्ण मुँह से रोती गरजती हुई, युगात-कालिक समुद्र-घोष के समान शब्द करती हुई, व्याकुल-चित्त होकर, पश्चिम दिशा में दीख पड़नेवाली सध्याकालीन लालिमा के जैसे केशों के साथ, (लका के प्रासाद के) उत्तरी द्वार से होकर प्रकट हुई।

उसके इस प्रकार प्रकट होते ही, उस पुरातन (लंका) नगर की राज्ञस-स्त्रियाँ उस (शूर्पणखा) के सम्मुख जाकर अपनी छाती पीट-पीटकर रोने लगीं। हाय। त्रिभुवन के शासक की वहन नक्कटी होकर, निस्सहाय इस प्रकार आवे, तो वे स्त्रियाँ कैसे उस दृश्य को सह सकती थीं?

राज्ञस, (शूर्पणखा को) हठात् उस दशा में आती हुई देखकर स्तव्य रह गये। उनके मुख से कुछ बचन नहीं निकला, फिर वज्र-घोष के जैसा गर्जन करके, एक हाथ से दूसरे हाथ को पीटते हुए, आँखों से चिनगारियाँ निकालते हुए और ओढ़ चवाते हुए खड़े रहे।

कुछ राज्ञस यह कहकर चुन्न रहे कि क्या यह कार्य इन्द्र का है? नहीं तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने किया है? या चक्रधारी विष्णु का यह कार्य है? अथवा चद्रशेखर का ही यह कार्य है?

कुछ राज्ञसों ने कहा—(इस ब्रह्माड में) कहने योग्य शब्द कोई (रावण का) नहीं है। अतः, त्रिभुवन को अपने अन्तर में रखे हुए इस ब्रह्माड में रहनेवाले) किसी भी व्यक्ति के द्वारा यह कार्य नहीं हुआ है, इसे करनेवाले इस ब्रह्माड से परे रहनेवाला कोई होगा।

कुछ राज्ञमो ने कहा—‘अरे, यह रावण की वहन है।’—यह बचन सुनते ही सब लोग इसे ‘हे माता! कहकर इसके चरणों को नमस्कार करते हैं। कोई इसके अपमान की बात सोच भी नहीं सकता। अतः, इस (शूर्पणखा) ने स्वयं ही अपने कान-नाक काट लिये होंगे।

कुछ राज्ञस कहते थे—देवन्द्र युद्ध में पराजित होकर अब (रावण की) सेवकाई कर रहा है, तीक्ष्ण धारवाले चक्र को धारण करनेवाला विष्णु, शक्तिहीन होकर समुद्र में जाकर रहने लगा है। अभि को हाथ में धारण करनेवाला शिव (रावण से डरकर) पर्वत पर जाकर रहने लगा है, फिर ऐसा कार्य करनेवाला व्यक्ति कौन है?

यशस्वी बुल में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ऐसा कार्य करने का साहस नहीं कर

नक्ता, शायद स्वर ने ही, यह सोचकर कि यह (शूष्णखा) उत्तमकुल की स्त्रियों के लिए उचित कार्य न करके चरित्र-भ्रष्ट हो गई है, इसे सौन्दर्य से हीन कर दिया है ।

कुछ राक्षस कहते थे—शिथिल एव व्याकुल चित्तवाले देवताओं में से किन्ही व्यतीर्ण व्यक्तियों ने, पागलपन के साथ, जीवित रहने के लिए अनुपयोगी विचार से (अर्थात्, विनाशकारी विचार से), त्रिलोक का विनाश करने के लिए ही, इस प्रकार का कार्य किया है ।

कुछ राक्षस कहते थे—दूसरा कल्प आने पर है, किन्तु इस कल्प में ऐसा कौन वीर-व्यतीर्णधारी तथा शत्रुघ्नधारी वीर है, जो इस प्रकार ऐसा कार्य करने की क्षमता रखता है ? भयकर अरण्य में, दोषहीन तप-कर्म में निरत ऋषियों के क्रोध का ही यह परिणाम है ।

अपार संपत्ति से पूर्ण उस लका-नगर में, काले नयनोवाली राक्षस-स्त्रियाँ (शूष्णखा ही वह दशा) देखकर, व्यतीर्ण-पक्षियों से भूषित अपने हाथों को मलती हुई, जामन डाले दूध के समान अस्तव्यस्त दशा में पड़ी हुई, गद्गढ बचन कहती हुई, एक के आगे एक होती हुई, दौड़ी चली आईं ।

उम नगर में, मर्दल, वीणा, मधुर नादवाले वाक्-वादी, मनोमोहक वशी, शख, (तारं) (नामक वाद) —इनकी ध्वनि अब नहीं रही, किन्तु जैसी रुदन-ध्वनि इसके पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी, वैसी रुदन-ध्वनि होने लगी ।

समुद्र को भी लज्जित करनेवाले विशाल नयनों ने शोभित राक्षस-स्त्रियाँ, मधुपात्रों को, मत्त भ्रमरों को एव अपने मनों को एक ओर ढकेलकर दौड़ी चली आईं, तब उनकी कटि लचकने-से लगी, जिससे वे एक दूसरे को सेंभालती हुई आईं ।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो करवाल के घनी अपने पतियों को (प्रणय-कलह में हुए उनके अपराधों के लिए) दड़ देने में निरत थीं और अपने उद्धिग्न मन में क्रोध उमड़ने के कारण लालिमा से भरे अपने नेत्रों से अश्रु वहा रही थीं, रावण की उम वहन के चरणों पर जा गिरीं ।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो स्वर्णमय फलों से युक्त मरकत वर्णवाले क्रमुक-वृक्षों में बाँधी गई नवरत्नमय जजीरों से लटकनेवाले भूलों में भूल रही थीं, वे भूलना छोड़कर, व्यथित चित्त के साथ, अपनी सूख्म कटियों को दुखाती हुई, वीथियों में था पहुँची ।

और कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो (अपने पतियों के) स्तम्भ और पर्वत-तुल्य कधों के आलिंगन में बँधी थीं, अपनी व्यतीर्ण-विभूषित बाँहों को शिथिल करके, अपने कमल-तुल्य वदन पर के दो मीनों-से मुक्ता की धारा वहाती हुई, सिसक-सिसककर रोने लगीं ।

क्षीण-कटिवाली कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, यह कहती हुई कि शत्रु विध्वसक और (शत्रुओं के) रक्त में झूँचे हुए शूल को धारण करनेवाला राजा (रावण) यदि इस बात को जान ले, तो उसकी क्या दशा होगी ? अपनी अजन-लगी आँखों से मेघ की वर्षा करती हुई, रोतो-कलपती धरती पर लोटने लगीं ।

निद्रा करनेवाली कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, मधुर स्वप्न के आनन्द को भूल गईं । मेघ की समता करनेवाले केशों को अस्त-व्यस्त किये हुए, शिथिल वस्त्रों तथा कपित स्तनों के नाथ घर से निकल पड़ीं और हु-ख से रोने लगीं ।

खुले केश-पाशबाली कुछ राज्ञस-स्त्रियाँ, यह कहकर कि शिव के कैलास को अपने विशाल करो मे उठानेवाले हमारे पराक्रमी प्रभु की वहन की यह दशा हो गई है। हाय। शोक से उग्धृत हुईं, स्तनों पर अपने करों से आधात करने लगी और उस स्त्री (शूर्पणखा) के पैरों पर आ गिरी।

कुछ राज्ञस-स्त्रियाँ, यह कहकर कि ‘अपने हाथ में शूल को रखनेवाले हमारे प्रभु के रहने के कारण लका के पशुओं ने भी कभी ऐसा दुःख नहीं भोगा, अब क्या हमारे सब सुकृत मिट गये हैं?’ दुःखी हुईं और अपने अति सुन्दर नयनों से अश्रु की धारा वहाने लगी।

जब लका-नगर इस प्रकार दारूण दुःख में निमग्न हो रहा था, तब शूर्पणखा, पर्वत-सानु पर आकर भुकनेवाले मेघ के समान सभा-मडप में प्रविष्ट होकर राज्ञसराज (रावण) के स्वर्णमय विशाल वीर-कक्षण से भूषित पैरों पर आ गिरी। अकस्मात् उसको उस रूप में देखकर उस मडप में बैठे हुए और खडे हुए सब लोग भय से भाग निकलने का मार्ग देखने लगे।

तीनों लोकों में अधिकार छा गया। (धरती का भार वहन करनेवाला) शेषनाग भयभीत होकर अपने फनों को भुकाने लगा, कुलपर्वत हिल उठे, सूर्य कातिहीन हो गया, दिग्गज अपना स्थान छोड़कर भागने लगे, देवता भय से यत्र-तत्र छिपने लगे।

उज्ज्वल-वलयभूषित (रावण की) मुजाएँ फूल उठी, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी, दाँतों से अग्नि-ज्वालाएँ फूट निकली, कुचित भौंहें ललाट के मध्य जा पहुँची। (रावण का क्रोध देखकर) सब मुवन डॉवाडोल हो उठे, देवता किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर खडे रहे।

दक्षिण दिशा के शासक यम के साथ सब देवता, यह सीचकर कि अब हमारे विनाश का समय आ गया है चुपचाप पडे रहे। स्वर्गलोक के निवासी तथा इहलोक के निवासी भी भ्रात होकर थर-थर कॉपते हुए, उसासे भरते हुए घबराई हुई दशा में अबाक हो खडे रहे।

रावण के (कोप के कारण) दाँतों से दबे हुए ओठवाले विल-समान मुँहों से धुआँ निकलने लगा। उसने श्वास छोड़ा, तो पक्षिश-रहनेवाली उसकी मूँछों में आग लग गई, उसके तीक्ष्ण तथा उज्ज्वल दत विजली के जैसे चमक उठे, यो मेघ के गर्जन के समान गरजकर उसने पूछा—‘यह किसका कार्य है?’

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—अरण्य मे मीनकेतन (मन्मथ) के समान रूपवाले, स्वर्ग-वासियों एव पृथ्वी के निवासियों मे अपना उपमान कही भी न पानेवाले दो मनुष्य राजकुमार आये हैं। उन्होने ही करवाल से (मेरे अगों को) काट दिया है।

शूर्पणखा के यह कहते ही कि मनुष्यों ने यह कार्य किया है, रावण ने ऐसा ठहाका भरा कि मारी दिशाएँ गूँज उठी। उसकी बीसों आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ी। फिर शूर्पणखा से बोला—मनुष्यों का पराक्रम तो अतिकृद्र होता है, क्या तुम्हारा कथन सत्य है? असत्य कहना छोड दो, भय को दूर करो और यथार्थ घटना बताओ।

तब श्रूपणखा कहने लगी—वे अपने हृष्ण-मोर्दर्य में मन्मथ की समता करनेवाले हैं, अपनी पुष्ट मुजाओं के बल से भेद पर्वत की दृढ़ता को भी मिटाने में समर्थ हैं, एक क्षण-भर में नन्त लोकों के निवासियों के पराक्रम को मिटा सकते हैं। उनके गुणों का वर्णन मैं अब कैसे कर सकती हूँ ?

व लोग मुनियों के प्रति आदर-भाव दिखाते हैं। गगन के चक्र के सदृश मुखवाले हैं। तरग-भरे जल में नाल पर शोभायमान सुरभित कमल के दल-सदृश नेत्रवाले हैं वैसे ही (अर्थात्, कमल-तुल्य ही) कर-चरणवाले हैं, अपार तपस्या से संपन्न हैं। उनकी समता करनेवाले कौन हैं ? (अर्थात्, नहीं हैं !)

व वल्कलधारी हैं। विशाल वीर-वलयधारी हैं। वक्ष पर सुन्दर सूत्र (यज्ञो-पवीत) से शोभायमान हैं। धनुर्विद्या में निपुण हैं। वेद के आवास वाणी से युक्त हैं। कोमल पल्लव-सदृश (मृदुल) शरीरवाले हैं। तुमने भयभीत नहीं होनेवाले हैं। तुम्हें धूलि के समान भी नहीं समझनेवाले हैं। शब्द-स्व पश्चिमों के समान ही अक्षय रहनेवाले तूरीर वारण करनेवाले हैं।

उत्तम चरित्रवाले मुनियों ने उन दोनों के निकट आकर निवंटन किया कि अपने मन को सयम में रखनेवाले हमलोग राज्यसों से आशकित हैं। इसपर उन मनुष्यों ने शपथ की कि सब लोकों को जीतनेवाले रावण के कुल का हम समूल विनाश करेंगे।

हे प्रभु ! क्या एक ही लोक में दो मन्मथ निवास करते हैं ? क्या धनुर्विद्या में उनसे अधिक निपुण कोई हैं ? क्या उनकी समता करनेवाला कोई एक भी व्यक्ति है ? उन दोनों में से प्रत्येक, अकेले ही, त्रिमूर्तियों की समता करता है।

सारे भूमडल में अपना शासन-चक्र प्रवर्तित करनेवाले दशरथ नामक प्रशस्त राजा के बंदोनो पुत्र हैं। किंचित् भी दोप से रहित हैं। अपने पिता की आज्ञा से दुर्गम अरण्य में आकर निवास कर रहे हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं।—यो श्रूपणखा ने कहा।

अमृत-सदृश प्यारी वहन (श्रूपणखा) की नासिका को तीक्ष्ण करवाल से काटनेवाले, मनुष्य हैं। काटने के पश्चात् भी वे जीवित हैं। ऐसा होने पर भी नवीन खड्ग को धारण किये हुए रावण, किंचित् भी लज्जित हुए विना, नयन खोलकर देखता हुआ अभी तक प्राण रखे हुए हैं।—इस प्रकार रावण कहने लगा।

सर्वत्र विजय पाकर, अपने पराक्रम से राज्य को प्राप्त करने पर भी अन्त में मुझे यही (अपवश) मिला है। मेरा सारा यश मिट गया। ससार के समस्त वीरों के शिर कट जाने पर भी, मेरा खोया हुआ मान किस प्रकार लौटकर आ सकता है ?

मुझे इस प्रकार अपमानित करनेवाले मनुष्य भी अभी तक जीवित हैं। उनके प्राण अभी स्थिर हैं और मेरा यह खड्ग भी अभी मेरे हाथ में वर्तमान है। ससुद्र में उत्तम विप को पीनेवाले (शिव) के द्वारा प्रदत्त मेरी आयु भी बनी हुई है। मेरी सुजाएँ भी हैं तथा मैं भी (वैसा ही) हूँ।

हे मेरे मन ! क्या यह सोचकर कि ऐसा अपवाद शल बनकर तुम में चुभ गया है, तू लज्जित हो छटपटा रहा है, तू व्याकुल न हो। इस अपवाद को दोने के लिए मेरे दस

शिर हैं। उन (शिरो) से भी अधिक सख्त्या में मेरी भुजाएँ हैं। फिर, तुम्हें क्या कलेश हो सकता है?

यो कहकर वह (रावण) हँसने लगा और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालने लगा। फिर पूछा—ऊँचे पर्वतों से भरे दड़कारण्य में रहनेवाले खर आदि राज्ञों ने क्या इन निस्सहाय मनुष्यों को अपने शस्त्रों से मिटा नहीं दिया?

रावण के ये वचन कहते ही, शूर्पणखा निर्भर के समान अश्रु वहाती हुई, अपनी छाती पीटनी हुई, धरती पर लौट-लौटकर रोने लगी और बोली—हे तात! हमारे वे वन्धु भी शीघ्र उन (मनुष्यों) के द्वारा ध्वस्त हो गये। फिर, सिर पर हाथ धरकर सारा वृत्तात कहने लगी।

खर आदि वृषभ-मदश वीर, मेरे मुँह से घटित वृत्तात को सुनकर अपनी सारी मेना को लेकर बड़े कोलाहल के साथ वहाँ गये और सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर विकसित कमल की समता करनेवाले अस्त्र नयनों से शोभित राम नामक वीर के धनुप से तीन घड़ी के अन्दर ही वे स्वर्ग में जा पहुँचे—यों शूर्पणखा ने कहा।

‘उसके भाई (खर और दूषण), एकाकी राम के साथ के युद्ध में, अपनी विजय माला-भूषित सेना के माथ मारे गये’—यह वचन उसके कानों में पहुँचने के पूर्व ही रावण की विशाल आँखें, बज्र और जलधारा को गिरानेवाले मेघ के समान अश्रुओं के साथ अग्निकण उगालने लगी।

उस समय रावण के मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उससे दबकर उसका दुःख, अग्नि में पड़े धृत के जैसा काम करने लगा। उसने प्रश्न किया—वे मनुष्य तुम्हारी नाक और कान काटें—ऐसा तुमने कौन-सा अपराध किया?

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—किसी के द्वारा चित्रित करने के लिए असभव रूपवाले उम (राम) के साथ (एक स्त्री आई हुई है, वह) कमल के आवास को छोड़कर आई हुई लक्ष्मी के समान है, विजली के तुल्य कटि से शोभित है, वाँस के जैसे कोमल कधोवाली है एव स्वर्ण के रंग की देहवाली है। उम नारी के निकट मैं गई थी, वस इतना ही मेरा अपराध था।

यह सुनकर रावण ने पूछा—वह नारी कौन है? तब उस राज्ञीसी ने कहा—हे प्रभु! उस नारी का जघन-तट चक्रवाला रथ है, उसके स्तन रक्त-स्वर्ण के कलश हैं, जिनपर इगुटिक धातु के सपुट लगे हैं, यह भूमि का बड़ा सौभाग्य है कि उस नारी के पद-तल का स्पर्श उसे मिला है। अहो! उसका नाम सीता है।—यो कहकर शूर्पणखा सीता के रूप का वर्णन करने लगी।

उसकी वाणी भ्रमरो की गुजार तथा मधु के समान रस-भरी है, उसके केशपाश मधुपूर्ण पुष्पों से सुवासित हैं। अप्सराओं के लिए भी पूजनीय, कमल में निवास करनेवाली सुन्दरी लक्ष्मी उसकी दासी बनने के लिए भी योग्य नहीं है। यह कहना भी कि हम उसके मौद्र्य का वर्णन करेंगे, अज्ञान का कार्य होगा।

हे प्रभु! अपनी वाणी को अमृत से भर-भरकर लानेवाली (अर्थात्, अमृत-समान

मीठी वोलीबाली) उन नागों के अलक, मंध-समान हैं। सुमजित केश-पाश, सुके हुए मजल घन की समता करते हैं। उमकी ऊँगलियाँ, रक्त-प्रवाल के तुल्य हैं। उमका बटन, वद्यपि निर्दोष कमल-पुष्प के परिमाण का है, तथापि उसके नयन समुद्र से भी अधिक विशाल हैं।

‘मन्मथ शिव के नेत्र की अभि मे जल गया’—यह कथन सत्य नहीं है। भल्य वात तो यह है कि उम मन्मथ ने, स्वाभाविक सुगधि से भरे केश-पाशबाली उस सीता को देखा, किन्तु उमके सौदर्य को अपनाने में असमर्थ रहा, जिससे अवर्णनीय पीड़ा से दुःखी होकर उमका शरीर क्षीण हो गया। इसीलिए वह अनग बन गया।

हमारे शत्रु-देवों के लोक में जाकर ढूँढ़ो, फनवाले नागों के लोक में जाकर ढूँढ़ो कहीं भी वैनी ह्यपरती नहीं मिलेगी। लुहार की गरम भट्ठी में तपाकर बनाये गये वरछे और करवाल को भी परास्त करनेवाले नयनों से शोभित वह नारी डभी धरती पर है, किन्तु किनी के लिए भी उमका चित्र अकित करना असभव है।

क्या मैं उमके कधों की सुन्दरता का वर्णन करूँ? या उसके उच्चल मुख पर स्पृश्टि होनेवाले मीनों (अर्थात्, नयनों) का वर्णन करूँ? या अन्य अति मनोहर अगों का वर्णन करूँ? मैं पुनः-पुनः चकित रह जाती हूँ, किन्तु उमका वर्णन नहीं कर पाती हूँ। तुम तो कल अन्य ही उमे देखनेवाले हो, तो फिर मैं क्यों तुमसे उसका वर्णन करके बताऊँ।

यदि यह क्षेरे कि उमकी भौंहें धनुष के समान हैं, उमके नेत्र वरछे के समान हैं, उसके टाँत मांतियों के समान हैं उमका अघर प्रवाल के समान है, तो यह केवल कथन-मात्र होगा। वास्तव में ये सब उपमान उमके अवयवों के योग्य नहीं हैं। अतः, कहने योग्य उपमान कुछ भी नहीं है। इस प्रकार का उपमान देने की अपेक्षा तो यही कहना अधिक सगत हांगा कि धान धान के समान ही है (अर्थात्, धान की उपमा धान में ही दी जा सकती है।)

हे प्रभु, इन्द्र ने शची देवी को पाया है। पण्मुख (कार्त्तिकेय) के पिता (शिव) ने उमा को पाया है। कमलनयन (विष्णु) ने सुन्दर लक्ष्मी को पाया है। यदि तुम सीता को पा लोगे, तो फिर वे (इन्द्र, शिव और विष्णु) तुम से छोटे रह जायेंगे। इससे तुम्हारा महत्त्व उनसे अधिक दृढ़ जायगा।

गगनोन्नत कधोंवाले हैं बीर। एक (अर्थात्, शिव) ने (अपनी देवी को) अर्धाङ्ग में रख लिया एक (विष्णु) ने कमलभव लक्ष्मी को अपने बक्ष पर रख लिया। व्रष्णि ने वाणी देवी को अपनी जिह्वा पर रख लिया, यदि तुम घन की विद्युत् को परास्त करनेवाली सूख्म कटि ने शोभित उम सीता को पायोगे तो उमे कहाँ रखोगे? (भाव यह है—सीता तुम्हारे लिए शिर पर धारण करने योग्य है।)

हे प्रभु! हे नगदार! शिगु की सी मधुर वोलीबाली उम सीता को पाने पर तुम कुछ भी कमी का अनुभव नहीं करोगे। हुम अपनी इस सप्तिं को, जिसे दूसरों पर लुटा रहे हो, उनी को दे देंगे। मैं तुम्हारा हित करनेवाली हूँ, किन्तु तुम्हारे अन्तःपुर में रहने-वाली शुक की-सी वोलीबाली सब द्वुतियों का आंहेत अवश्य कर रही हूँ।

रथ-तुल्य जघन-तट से शोभित वह सीता, देवलोक में या इस लोक में किसी कचुक-ब्रद्ध स्तनवाली स्त्री के गर्भ से उत्पन्न नहीं है। पूर्वकाल में, शख के समान श्वेर जलवाले समुद्र ने, देवासुरों के द्वारा मध्ये जाने पर प्रफुल्ल कमल में आसीन लक्ष्मी को उत्पन्न किया था। अब भूमि, उस लक्ष्मी को भी परास्त करनेवाली सीता को देकर धन्य हुई है।

मीनकेतन के आनन्द को बढ़ाते हुए, ससार की प्रशसा का पात्र बनते हुए, भ्रमरों से आवासित पुष्पों से विभूषित कुन्तलोवाली तथा सूहम कटिवाली सीता को तुम अपना स्वत्व बना लो और अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके राम को मेरे वश में ढे दो।

हे मेरे प्रसु ! यद्यपि भाग्य हमें (जीवन के) फल प्रदान करता है, तो भी महान् तपस्त्रियों को भी वे फल, समय पर ही प्राप्त होते हैं। उसके पूर्व नहीं मिलते हैं। इस मुख, वीस नयन, बीम हाथ, सुन्दर रूप और मनोहर वक्ष से शोभायमान तुम अब आगे चल-कर ही बड़ा गौरव प्राप्त करनेवाले हो।

इस प्रकार की सीता को तुम्हारे पास पहुँचाने के विचार से मैं उसके निकट गई, तब उस राम के भाई ने बीच में पड़कर चमकते हुए कटार से मेरी नाक काट दी। मेरा जीवन तो तभी समाप्त हो गया। फिर भी, इस विचार से कि तुम्हारे सम्मुख आकर सारा वृत्तात बताने के पश्चात् ही अपने प्राण त्याग करूँगी, यहाँ आई हूँ, यो शूर्पणखा ने कहा।

(शूर्पणखा के बचन सुनते ही रावण के मन से) क्रोध, बीरता, अभिमान के कारण उत्पन्न ताप—ये सब इसी प्रकार मिट गये, जिस प्रकार पाप के रहने के स्थान से धर्म मिट जाता है और जिस प्रकार एक दीप, दूसरे दीप के स्पर्श से प्रज्वलित होता है। उसी प्रकार रावण के मन में काम-व्याधि और उससे उत्पन्न होनेवाले ताप ने घर कर लिया।

रावण खर को भूल गया, अपनी वहन की नाक को काटनेवाले बीर के पराक्रम को भूल गया, उससे उत्पन्न अपने अपयश को भूल गया, शिव को जीतनेवाले मन्मथ के बाणों के प्रभाव के कारण वह पूर्वकाल में प्राप्त अपने बरों को भी भूल गया, किन्तु सीता, जिसके रूप के विषय में उसने अभी सुना था, उसको नहीं भूल सका।

सूहम कटिवाली सीता का नाम और रावण का मन दोनों एक होकर गह गये। अब सीता के अतिरिक्त अन्य किसी विषय के बारे में सोचने के लिए भी उसके पास दूसरा मन कहाँ था। सीता को भूलने का कोई उपाय ही उसके पास नहीं था। पढ़े-लिखे व्यक्ति भी जबतक आत्म-ज्ञान नहीं प्राप्त करते, तबतक वे काम को कैसे जीत सकते हैं?

उन्नत प्राचीरबाली लका का अधिपति, कलापी-तुल्य स्पवाली सीता का हरण करके बंदी बनाने के पूर्व ही उसको अपने मन-रूपी कारागार से बदी बना लिया। धूप के स्पर्श में मक्खन जैसे पिघलता है, उसी प्रकार शूलधारी रावण का हृदय धीरे-धीरे पिघलने लगा।

विधि की बिडवना के कारण, भावी की प्रवलता के कारण एव उस लका का विनाश निकट आने के कारण रावण की काम-व्याधि उसकी सब इन्द्रियों में उसी प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार विद्याविहीन मृद व्यक्ति का छिपकर किया हुआ कोई पाप-कर्म मर्वन प्रकट हो जाता है।

स्वर्णमय सुन्दरी (सीता) के उसके मन में प्रविष्ट होने से, या रावण के लघुत्तम को प्राप्त होने में, न जाने किस कारण मे अब मन्मथ भी उस (रावण) पर वाण छोड़कर उसे पीड़ित करने में नमर्य हुआ । अब पराक्रम को हर लेने की शक्ति काम में होती है न ?

उस नमय, रावण अपने आसन से उठा । सत लोकों के निवासी जयध्वनि कर उठे, नर्वत्र शख वज उठे, पुष्प की वर्षा हुई, आसपास खड़े लोग हट-हटकर मार्ग देने लगे । यों वह (रावण) अधिकाविक शिथिल होनेवाले मन के माथ स्वर्णमय प्रामाण के भीतर गया ।

पाल्लयों के समूह को हटाकर, वह एकाकी एक पुष्पमय विशाल पर्यंक पर जा पहुँचा, तब कस्तूरी की सुगन्धि से युक्त केशोवाली सीता के नवनों और कुचों का ध्यान अधिकाविक उसके मन में ताप बढ़ाने लगा ।

अवारणीय काम-पीड़ा उसके मन में अत्यधिक मात्रा में बढ़ गई । इससे सुरभित मट पवन मे लाये गये हिम-तुपारों से पूर्ण, कोमल शश्या के पुष्प झुलस गये । अष्ट दिग्गजों को जीतनेवाली भुजायों से युक्त उस रावण की देह भुलस गई । उसका मन विहळ हो गया और उसके प्राण तड़प उठे ।

(दासियाँ) शीतल-चदन, मनोहर तथा कोमल पल्लव और मकरन्दपूर्ण पुष्प आदि को लेकर उसके समीप आई, पर उन उपचारों से उसकी देह यों तस हो उठी, जैसे उसे आँच ही दिखाई गई हो । याग को भड़कानेवाली भाथी के जैसे वह श्वास भरता हुआ शिथिल हो गया ।

वह अपने मन को स्थिर नहीं कर सका । पर-नारी-गमन को पाप न समझता हुआ और निरतर सीता का ध्यान करता हुआ वह रावण आम का टिकोरा, नीलकमल, वरछा वादि के जैसे नवनोवाली सीता के रूप को देखने की उमड़ती हुई इच्छा के कारण अत्यन्त व्याकुलप्राण होकर पीड़ित हुआ ।

वह रावण, जिसने भारी दिशायों का वहन करनेवाले वलशाली दिग्गजों की सूँड़ों के दोनों ओंग उंगे हुए दाँतों को तोड़कर उन्हें पराजित किया था, अब काठ को छेदनेवाले भ्रमर के जैसे मन्मथ के वाणों से उसके वक्ष को छेदने के कारण, अत्यन्त पीड़ित होकर शिथिल पड़ा रहा ।

कोनूरे (नामक वृक्ष के) फल के समान (काले) केशोवाली सुन्दरी मेरे हृदय से वा वमी हैं । मैंने उसे देख लिया ।' यो कहता हुआ वह (रावण) अस्वस्थ और पीड़ित हो पड़ा रहा । तब सुरभित पुष्पमालावारी मन्मथ के वाणों के समान मलिका पुष्प की गध से युक्त मंद पवन उसपर आकर लगा जिसने वह विज्ञुव्य हो उठा ।

पीड़ित चित्तवाला रावण उस समय, वहाँ से उठकर, यह न जानते हुए कि क्या करना उचित है एक उद्यान की ओर चला और वीणा को परास्त करनेवाली मधुरवाणी से युक्त, लच्छी-नद्या अनेक रमणियाँ, दीपों की पर्कियाँ लेकर उसके आगे-आगे चली ।

उस उद्यान में पनम-वृक्ष माणिक्यमय थे. कटली-वृक्ष मरकतमय थे, मधुर आम के वृक्ष हीरकमय थे, 'वैग' नामक वृक्ष उत्तम स्वर्णमय थे, 'कोग' नामक वृक्ष पञ्चरागमय थे ।

कमुक-वृक्ष दूर तक काति विखेरनेवाले इन्द्रनील-रत्नमय थे, नारिकेल-वृक्ष रजतमय थे, पुत्राग-वृक्ष स्फटिकमय थे और पाटल-वृक्ष प्रवालमय थे।

गगनोन्नत तथा उज्ज्वल रत्नमय वृक्ष इस प्रकार धने होकर फैले थे कि नभ में चमकनेवाले नक्षत्र भी वहाँ के विविध पुष्पों को पृथक्-पृथक् करके पहचान नहीं पाते थे। ऐसे मधु वर्षा करनेवाले उम उद्यान के मध्य अरुण-स्वर्णमय मडप में दूध के जैसे श्वेत पर्यंक पर, वह (रावण) जा पड़ा और वहुत पीडित हुआ।

फलों और पुष्पों के मधु को पीकर मत्त रहनेवाले पक्षी, रमणियों की-सी मीठी बोलीवाले शुक, कोस्किल, भ्रमर एवं मधुर गान करनेवाले अन्य सब प्रकार के पक्षी, यह सोचकर कि उनकी धनि से लंकाधिपति क्रुद्ध होगा, मौन होकर गूँगे के जैसे ही रहे।

उत्तरी वायु, उस ऋतु के लिए उचित रूप में शीतल ओसकणों को लेकर आई और मन्मथ के बाणों से बिछ (रावण के) ज्यतो में आ लगी, जिससे वह क्रुद्ध होकर चिल्ला उठा कि यह कैसी ऋतु चल रही है। शिशिर ऋतु तुरन्त भयभीत होकर वहाँ से हट गई और वसन्त ऋतु आ पहुँची।

जो शिशिर वडे-वडे वृक्षों तथा दावागिन से आवृत पर्वतों को भी ठड़ा कर देता है, वह भी रावण के लिए तापजनक हो गया, तो वसन्त के बारे में क्या कहा जाय? काम-व्याधि को शान्त करनेवाली ओषधि भी कही होती है? सुख और दुःख मन की दशा पर ही तो आधृत रहते हैं?

रावण के मन की काम-व्याधि को वसन्त ने इस प्रकार भड़का दिया कि उसका ताप दिगतों तक व्याप्त हो गया। तब उसने आज्ञा दी—यह कौन-सी ऋतु है? इससे तो पहले का शिशिर ही अच्छा था। अब इस ऋतु को हटाओ और शरद-ऋतु को ले आओ।

जब शरद आया, तब उसके पुष्ट कधे तपने लगे। तब उसने कहा—क्या शरद-ऋतु भी तपानेवाली होती है? यह तो पहले की शिशिर ऋतु ही विदित होती है। तब दासियों ने निवेदन किया—हे प्रभु! हम आपकी आज्ञा के विश्वद कुछ नहीं करते हैं। इसपर रावण ने आज्ञा दी कि सब ऋतुओं को अब यहाँ से दूर हटा दो।

रावण के यह आज्ञा करते ही सब ऋतुएँ अपने-अपने व्यापार को छोड़कर योगी के समान सासार के संबन्ध से मुक्त होकर, हट चली। फिर, साग सासार दुष्कर तपस्या की साधना से कर्म-वधन को तोड़कर प्राप्त किये जानेवाले मुक्ति-लोक के जैगे दिखाई पड़ने लगा।

समुद्र से आवृत धरती में शीतलता और उष्णता दोनों नहीं रहे। किंतु, रावण की नीलवर्ण देह, बिना तेल के ही, दीप के समान जलती रही। केवल समय के परिवर्तन से कोई कार्य नहीं होता। काम से उत्पन्न तीव्र ताप, शील में ही बुझाई जा सकती है। उसका उपशमन अन्य किसी उपाय से सभव नहीं होता।

जल से पूर्ण मेघ, कोमल कमल के भीतर के दल, कस्तूरी-मिलित चदन-रस, पत्तजव, मृदुल पुष्प-रज, मोती—इन सबका स्पर्श पाकर उसकी देह जलने लगी, जिससे वह

अत्यन्त मिथिल हो गया । तब उसने अपने परिजनों को आज्ञा दी कि तुमलोग जाकर शीघ्र चद्रमा को ले आओ ; क्योंकि लोग कहते हैं कि वह शीतल होता है ।

परिजनों ने जाकर उस पूर्णचंद्र से, जो दास्त्र क्रोधवाले राक्षस (रावण) के द्वारा शासित उम विशाल लकापुरी के ऊपर जाने से भी डरता था, कहा कि—इरो नहीं, शीघ्र आओ । राजा तुझे बुला रहा है । इसपर चंद्र अपने मन की अधीरता को छोड़कर आकर प्रकट हुआ ।

युद्ध में परास्त होकर बैर को छिपाकर दबे रहनेवाले लोग, अपने शत्रु के कमजोर पड़ने पर जिस प्रकार उस (शत्रु) को सताने के लिए आगे बढ़ जाते हैं, उसी प्रकार मड़लाकार चंद्र रावण के प्राणों के लिए यम-जैसा बनकर, सूक्ष्म सिकता से युक्त जल-भरे समुद्र से उदित हुआ ।

चद्रमा, अपनी वर्णनीय किरणों को सब दिशाओं में फैलाकर ऊपर उठा और स्वर्ग तथा धरती के निवासियों में से किसी के लिए भी प्रिय न होनेवाले उम रावण को सताता हुआ (वह चंद्र) इस प्रकार दिखाई पड़ा, जैसे आठिशेष पर शयन करनेवाले विष्णु के द्वारा रावण के बध के लिए भेजा गया चक्रायुध ही हो ।

क्षीर-सागर के अमृत को छुक-छुककर पान करनेवाला चद्रमा, अपनी शीतल किरणों के समुदाय को चारों ओर व्याप्त करने लगा । वह चट्ठिका टेढ़ी भौंहों और लाल आँखोंवाले रावण को ऐसी लगी, जैसे आग में पिघली हुई चाँदी भर-भरकर चारों ओर छिड़की जा रही हो ।

चंद्र-किरणें, जो धरती पर सचरण करनेवाली विजली-सी लगती थी, लाल धान के मनोहर खेतों से आवृत मिथिला नगर के राजा की पुत्री के सौदर्य का वर्णन सुनकर विरह-पीड़ा से तस होनेवाले रावण को उसी प्रकार जलाने लगी, जिस प्रकार कभी पर्गाजित न होनेवाले शत्रु की कीर्ति किसी बीर को जलाती है ।

वीर-ककणधारी यम भी जिसको देखकर भयभीत होता है, उस रावण ने पूछा—मैंने कहा था कि शीतल किरणोंवाले चंद्र को ले आओ, तो जलानेवाली आग और दास्त्र विप में दुम्ही हुई तपती किरणों से युक्त सूर्य को कौन ले आया ?

उम समय, कुछ दासों ने भय के साथ निवेदन किया—हे प्रभु ! यह कथन सत्य नहीं है कि जिसे लाने की आज्ञा नहीं हुई थी, उसे हम लाये हैं । अरुण किरणवाला सूर्य सदा रथ पर ही आता है । यह चद्रमा यद्यपि आपको उष्ण किरण-सा लगता है, तो भी विमान पर ही आलूद है ।

र्म के फन के जैसे जघन-तट तथा शीतल वचनों से दुक्त रमणियों के प्रति होनेवाले प्रेम की बेदना को उस (रावण) ने इससे पहले कभी नहीं जाना था । वह अब चद्रमा में अत्यन्त पीड़ित हुआ । अब उसे जात हुआ कि शीतल और मनोहर कमल-पुष्पों का शत्रु चद्रमा, यही है । फिर, उस चंद्र में प्रार्थना करने लगा कि हे चंद्र ! तू मेरे प्राणों को ला दे ।

रावण कहने लगा—हे नज़्मों के पति ! तू क्षीण होता है । तेरा शरीर श्वेत

पड़ गया है। तेरा अन्तर काला हो गया है। अपना सहज गुण—शीतलता—छोड़कर तू तप रहा है, क्या तू भी अकेला रहता है और किसी सुन्दरी को देखे हुए व्यक्ति से उम (सुन्दरी) के सौदर्य की चर्चा सुनी है? (जिससे यों विरह से पीड़ित हो रहा है)। मेरे हृदय में पुष्पवाण बिना रोक टोक के लग रहे हैं। उनसे मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। अब मेरे प्राणों को कौन बचायेगा?

मेरे प्राणों के लिए यम वनी हुई उत्तम कुलजात उस सीता के दो कुवलयों-जैसे शोभायमान कमल (जैसे बदन) से तू पराजित हो गया है, इसीलिए तू काला पड़ गया है, क्षीण हो गया है और तस हो उठा है। यदि शत्रु की सपत्ति को देखकर ही इस प्रकार मिट गये, तो तू विजय कैसे पा सकता है? बुद्धिमान् व्यक्ति (शत्रु को हराने के) पराक्रम से रहित होते हैं, तो विवेक से अपने ऊपर सर्वम रखते हैं।

इस प्रकार, अनेक वचन कहकर वह पीड़ित होता रहा। फिर, उसने परिजनों को आज्ञा दी कि इस चंद्र को रात्रि-सहित यहाँ से हटा दो और सूर्य को दिन सहित ले आओ। उसके यह कहने के पूर्व ही उपेक्षित चद्रमा और रात्रिकाल हट गये। एक क्षण काल में ही अवर्णनीय सर्व तथा दिन का समय आ पहुँचा।

वेद की ऋचाओं को जानेवाले (व्राह्मण) अग्नि में घृत डालकर जब होम करते हैं, तब जिस प्रकार वह अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार पिघले हुए ताँबे के जैसी किरणों-वाला सूर्य प्रकाशमान हुआ। उससे रक्त-कमल विकसित हुए। सूर्य के आगमन से रक्त कुमुद दबकर निर्जीव-से हो गये। वे उन क्षुद्र व्यक्तियों के जैसे थे, जिन्होंने अपने लिए अयोग्य उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर उससे गर्वित होकर फिर उन्हें खो दिया हो।

विश्व के आभरण-जैसे रहनेवाला सूर्य एक दिशा में आकर प्रकट हुआ, तो चद्रमा लज्जित हो, कातिहीन हो, कॉपता हुआ और अपनी पत्नी—रात्रि द्वारा अनुसृत होता हुआ, दूसरी दिशा में गगन-मध्य में हट चला। वह उस क्षुद्र राजा के समान था, जो किसी यशस्वी तथा पराक्रमी शासक की आज्ञा से अपने स्थान को छोड़कर चला जाता है।

विविध कर्णभरणों से भूषित जो रात्र्स-सुन्दरियाँ पुष्प-पर्योंकों पर अपने पतियों के समागम का सुख उठाती हुई प्रणय-कलह में क्रुद्ध हो गई थी, अब हठात् रात्रि के हट जाने पर भी उस बात को न जानकर स्वप्न में भी मान करती हुई (निद्रित) पड़ी रही।

कुछ रात्र्स-स्त्रियाँ, अर्धरात्रि में ही हठात् रात्रि के समाप्त हो जाने के कारण, सुमूर्ख-प्राण सी हो गई, थरथराती हुई कॉप उठीं और उनकी आँखों से आँसू इस प्रकार वह चले, जिस प्रकार प्रफुल्ल नीलोत्पल से मधु-बिंदु वह चलते हैं।

कुछ रात्र्स-स्त्रियाँ, जो स्त्री के कोमल पर्योंक पर काम-सुख का आनन्द प्राप्त कर चुकी थी, वृक्ष की पुष्ट शाखा से लिपटी हुई लताओं के समान, अपने प्राण-पतियों के पुष्प-सदृश दोनों वाहों द्वारा दृढ़ता से बँधी हुई, निद्रित पड़ी थी।

उत्तम मत्तगज, जो उनके कुभों पर गुजार भरते हुए मँडरानेवाले भ्रमरों के मुड़ को और उज्ज्वल सूर्य-प्रकाश को न जानते हुए सोये पड़े थे, उन मद्यपों के समान ये कोमल शस्या पर प्रजाहीन होकर निद्राग्रस्त रहते हैं।

जिस प्रकार कुल-नारियाँ, विद्या-बुद्धि से युक्त अपने प्रियतमों से वियुक्त होकर कातिहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार, वहाँ के प्रासादों में रखे हुए दीप, तेल के न घटने पर भी, निष्प्रभ हो गये ।

प्रभात-काल में विकसित होनेवाले पुष्ट, उनके सुन्दर दलों को खोलनेवाले सूर्योदय के होने पर भी, प्रकुल्ल न होकर, विशाल पर्यंक पर चोई हुई सुन्दरी के बन्द नयनों के जैसे बढ़ पड़े रहे ।

सब लोग गहरी निद्रा में सो रहे थे । अतः, उनकी आँखें मच्छुच प्रभात होने पर भी नहीं खुलीं । वे आँखें किसी को भिज्ञा देने का विचार न करनेवाले लोभियों के बड़े धरों के दरवाजों के नमान बड़े थीं ।

चक्रवाक दिन के निकल आने से विष-सद्वश वियोग-पीडा से मुक्त हुए और कठोर द्वारावास ने मुक्ति पानेवाले अपराधी के हृदय के समान आनंद से भग गये ।

चन्द्र के कर-स्पर्श के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय में विकसित न होनेवाले पुष्टों की ओर सगीत गानेवाले भ्रमर झपटे थे । लेकिन (इतने ने चन्द्र के अस्त होकर सूर्य के उदित हो जाने से, उन बद हुए पुष्टों से निकट) कला की महत्ता को नहीं जानेवाले लोगों के दरवाजे पर दुःखी होकर खड़े रहनेवाले भाट लोगों के नमान वे भ्रमर दुःखी होकर रह गये ।

सूर्य की उष्ण किरणें, अप्रब्ल रलों से जटित बातायनों के मार्ग से (प्रासादों के) भीतर पहुँचकर निद्रा-मम सुन्दरियों को जगाने लगीं । किन्तु, वे (स्त्रियाँ) सत्य को स्पष्ट न जानेवाले लोगों के समान, तड़ा और जागरण की मिश्रित दशा में पड़ी रहीं ।

रावण की कठोर आज्ञा से परिच्छय न रखनेवाले विद्वान, जो ज्यौतिष-शास्त्र लिख रखा था, उसे भली भाँति जानकर कुछ गणित-शास्त्र में कुशल व्यक्ति अभी तक सोये पड़े थे । (प्रभात-काल में) टेर लगानेवाले कुकुट भी सो रहे थे ।

सप्तर में इस प्रकार के व्यापार हो उठे थे । ऐसे समय में शब्दायमान वीर-कक्षणधारी रावण ने आँख उठाकर सूर्य को देखा और बोला—यह (सूर्य) उसका ध्यान करनेवाले के मन को भी तपाता है । अतः, पहले यहाँ आकर जिस चन्द्र ने हमको तपाया था, यह भी वही है ।

तब कुछ दासों ने निवेदन किया—हे ईश ! यह चन्द्र नहीं है । यह अर्ण-किरणवाला सूर्य ही है । देखिए, इसके रथ में दीर्घ केमरोंवाले मनोहर हरित वश्व जुते हैं । उष्ण किरणवाला सूर्य शरीर को तपाता है । किंतु, शीतल गहनेवाला चन्द्र नहीं तपाता ।

शिखरों से शोभित नील पर्वत के जैसे रावण ने उन (दासों) से कहा कि यह दूर्य विष से अधिक दार्शन है । अतः, इसे यहाँ से हटा दो । समुद्र के गर्जन को भी बन्द कर दो और मध्या-वेला में, पश्चिम दिशा में, प्रकट होनेवाली चन्द्र-कला को शीघ्र ले आओ ।

राघु-राज ने यह चर्चन कहा । वह कहते ही, घोड़श कलायों से शोभायमान

चन्द्र तुरन्त तृतीया का चन्द्र बनकर एक और प्रकट हुआ। अब कहो तो सदा प्रभावशाली रहनेवाली तपस्या से बढ़कर योग्य कार्य दूसरा कौन-सा है ?

पश्चिम दिशा में उदित उस चद्रकला को देखकर, क्रूर गुणवाला रावण कहने लगा—यह (चद्रकला) बड़वाग्नि है, वह नहीं, तो यह धरती का बहन करनेवाले शेषनाग का विष-दन्त है, अगर वह भी नहीं है तो, सध्या-काल मुझे मारने के लिए ही इस (चद्रकला-रूपी) कटार को लेकर आया है।

पूर्वकाल में जब शीतल तरगों से पूर्ण समुद्र से दारुण विष उत्पन्न हुआ, तब उमे अपने कठ के भीतर रखनेवाले शिव ने इस चद्रकला को भी पुष्प-रज से पूर्ण अपने जटाजटूँ में रख लिया था, शायद वह इसी कारण से होगा कि यह (चद्र-कला) भी विषमय है।

बज्र के समान भयकर रूप में सचरण करते हुए जिस चद्र ने मेरे प्राण पी लिये थे, उससे, उसका यह परिवर्तित लघु रूप, कठोरता में कुछ कम नहीं है। दारुण कोप से भरे विषमय सर्प के बड़े आकार की अपेक्षा उस (सर्प) का छोटा रूप क्या अपने विष के प्रभाव में कुछ कम होता है ?

(फिर, रावण कहने लगा) अति धीर अधकार का गुण कैसा होता है—वह भी देखें। इस चद्रकला से तो पूर्व आगत सूर्य ही अच्छा था। इस (चद्रकला) को शीघ्र हटा दो। पराक्रम में प्रसिद्ध रहनेवाले मुझ को ही यह (चद्रकला) तपाती है, तो अब यह कैसे कहा जा सकता है कि सस लोकों में कोई इसकी पीड़ा से बचकर जीवित रह सकता है ?

उस समय, उस चद्रकला के हट जाने ही अधकार इतना घना होकर आ पहुँचा कि उसे छुआ जा सकता था। उसपर किसी भी वस्तु को रगड़ा जा सकता था। चाहे तो कोई उसे (अर्थात्, अधकार को) खड़ग से काट सकता था या उसे (अधकार को) खराद पर चढ़ाकर उसके खंभे बनाकर रखा जा सकता था।

अब क्या यह कहा जाय कि उस अधकार को काठ की तरह काट-काटकर टुकड़े बनाकर फेंका जा सकता था ? वह अधकार इतना काला था, जितना निर्दोष तत्त्वज्ञान-रूपी प्रकाश के प्रविष्ट न होने से अधा बनकर किंचित् भी दयाभाव से हीन (किसी अज्ञ व्यक्ति का) हृदय काला होता है।

कही भी भिन्न न रहनेवाला (अर्थात्, अत्यन्त घना रहनेवाला) वह अधकार अतराल को सर्वत्र भरकर व्याप्त हुआ और सारी धरती को निगल लिया। तब रावण ने कहा—(शायद) विष को निगलनेवाले शिव ने यह न सोचकर कि यह (विष) सारे विश्व को मिटा देगा, उसे उगल दिया है।

मैंने ठीक-ठीक जान लिया है कि यह (अधकार) समुद्र से उत्पन्न होकर शिवजी के द्वारा निगला गया विष नहीं है। यह, धरती, आकाश आदि सब प्रदेशों को अपनी जिहाओं से चाटनेवाली प्रलयाग्नि ही है, जो काले हलाहल विष को पीकर स्वय कालीपड़ गई है।

१ भाव यह है—रावण ने पूर्वकाल में बड़ी तपस्या की थी, जिसके परिणामस्वरूप चन्द्र-सूर्य आदि भी उसकी आक्षण के पालक बने हुए थे। अतः, तपस्या ही सबसे उत्तम कार्य है। —शनु०

बाण और अग्नि भी जिसमें प्रवंश करके उसे मिन्न नहीं कर सकते, ऐसे इस अवकार में, मुक्त विरह से पीड़ित होनेवाले एकाकी व्यक्ति के सम्मुख अपना उपमान न रखनेवाली एक प्रवाल-लता (के सदृश सुदर्शी), अपने ऊपर काले मेघ को धारण किये, नारिकेल के कोमल फल-युगल से शोभित होकर, एक चंद्र को भी धारण किये हुए, दीपक के समान प्रकाशमान हो रही है ।

यह क्या मेरे मोह मे उत्पन्न भ्रम है ? या मेरा ज्ञान ही किसी कारण से अन्यथा हो गया है ? स्यष्ट ज्ञात नहीं होनेवाला यह आकार क्या है ? अजन का प्रवाह भी जिसकी नमता नहीं कर सकता, ऐसे इस घने अवकार मे एक उच्चल पूर्ण-चंद्र, दो कुडलो से शोभित होता हुआ, अति काले केशों के साथ मेरे नम्मुख आकर प्रकट हुआ है ।

अपने दोनों पाश्वों मे बढ़नेवाले स्तन-युगल तथा जघन-तट से सयुक्त होकर रहनेवाली छटि को हम नहीं देख पा रहे हैं । उसके अतिरिक्त अन्य सब अवयवों को हम देख रहे हैं, विषपूर्ण नयनोवाला यह आकार धीरे-धीरे एक नारी बनकर मेरे मन मे प्रविष्ट हो रहा है ।

चिरकाल से मै सब लोगों की सुदर्शियों को देखता आ रहा हूँ, किन्तु उनमें इनके जैसे त्पवाली किसी ल्ली को कहीं नहीं देखा है । अवश्य यह अद्भुत रूपवती रमणी मेरो बहन शूर्पणखा के द्वारा बताई गई, भ्रमरो से आवृत केशोवाली, वह तस्णी (नीता) ही है ।

मेरी इस विरह-पीड़ा को जानकर कठाचित् वह (सीता) स्वय सुमे ढूँढ़ती हुई वहाँ आ गई है । उसके इस उपकार का मै क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ ? दर्शन-मधुर इन (नीता) को अपनी आँखों से शूर्पणखा ने देखा है । उसी से पूछकर मै अपने सदेह को दूर कर लूँगा (यही नीता है या नहीं—यह सदेह दूर कर्सूँगा) । इस प्रकार, विचार कर रावण ने अपने दानों को आज्ञा दी कि वे उसे (अर्थात्, शूर्पणखा को) शीघ्र वहाँ बुला लावे ।

रावण की यह आज्ञा सुनते ही परिजन शीघ्र दौड़े और शूर्पणखा को समाचार दिया । तुरन्त वह (शूर्पणखा), जिसने पराक्रमी राक्षसों के कुल का समूल नाश करने के कार्य मे लगी हुई, अपनी नासिका तथा कर्णभरणों से भूषित कानों को खो दिया था, (नम के विरह मे) कामान्त्रि से तस होनेवाले मन के साथ (रावण के स्थान मे) वा पहुँची ।

शूर्पणों के रक्त मे दुमे हुए तीक्ष्ण वरछे को धारण करनेवाले रावण ने, असत्य के आवानभूत मनवाली क्रूर शूर्पणखा को वहाँ आये हुए देखकर पूछा— हे ल्लीरल ! मेरे नम्मुख खड़ी हुई अजन-अचित करवाल-दुल्य नयनोवाली, कलापी-ममान यह ल्ली ही क्या नुहागी बताई हुई वह सीता है ?

तब शूर्पणखा ने उत्तर दिया— अस्त्र कमल-जैसे नयनों, रक्त विवफल-समान अधर, मनोहर और उन्नत कधों, लबी दीर्घ वाहुओं तथा सुन्दर पुष्पमासा से भूषित वक्ष के साथ आया हुआ, अजन-पर्वत मद्वश दीखनेवाला यह दृढ़ धनुर्धारी रामचन्द्र है ।

‘ वह सुनकर रावण ने कहा—मैं यहाँ एक स्त्री का रूप देख रहा हूँ । हे मुझे । तुम ऐसे एक पुरुष के रूप की बात कह रही हो, जो मेरे विचार में भी नहीं है, यह कैसे ? हम तो दूसरों की आँखों के सामने माया उत्पन्न करके उनको भ्रम में डालनेवाले हैं । न्या छुद्र मनुष्य हमारे सामने कोई माया कर सकते हैं ?

तब शूर्पणखा ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सीता के ध्यान में निमग्न होकर अन्य किसी विषय में प्रवृत्त नहीं हो रही है । तुम ऐसी काम-वेदना से पीड़ित हो कि तुम्हारी आँखें जहाँ भी पड़ती हैं, वहाँ वही सीता दिखाई देती है । ऐसा भ्रम होना चिरकाल की बात ही है, (अर्थात्, कामुक लोग अपने प्रेम-पात्र को सर्वत्र देखते हैं), यह कोई नई बात नहीं है ।

शूर्पणखा के यों कहने पर रावण ने उससे पूछा—ठीक है । बैसा ही होगा । किन्तु, तुम्हारी आँखों को वह राम क्यों दिखाई देता है ? इसका उत्तर शूर्पणखा ने यो दिया—जिस दिन (राम) ने मेरा प्रतिकार-रहित अपमान किया, उस दिन से अवतक मैं उसे भूल नहीं पाई हूँ ।

तब रावण ने कहा—सच है, तुम्हारा कथन सगत ही है । इस समय मेरी इस पीड़ा का निवारण किस प्रकार हो सकता है ? इसका उत्तर शूर्पणखा ने दिया—तुम समस्त विश्व के एकमात्र प्रभु हो । तुम क्यों इस प्रकार दीन हो रहे हो ? तुम जाओ और उस पुष्प-भूषित कुन्तलोवाली सुन्दरी (सीता) को उठा लाओ ।

यों कहकर वह (शूर्पणखा) वहाँ से हट चली । वह राक्षस (रावण) भी शक्तिहीन होकर, कुछ भी सोच नहीं पाता हुआ, व्याकुल प्राणों के साथ पड़ा रहा । उसे उस दशा में देखकर सभीप खडे रहनेवाले लोग भी काँप उठे । फिर भी, वह (रावण) अपनी शेष रही आयु के प्रभाव से भरा नहीं ।

कोई मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो उठा हो, इस प्रकार उठकर वह रावण अपने पराक्रम का स्मरण करके वहाँ स्थित लोगों से कहने लगा कि धारा-रूप में जल को प्रवाहित करनेवाली चन्द्रकान्त-शिलाओं से एक अति सुन्दर मडप का निर्माण करो ।

देवशिल्पी, रावण के मन की बात जानकर तुरन्त आ पहुँचा और अपने सकल्पमात्र से ही नहीं, किंतु हस्त-कौशल को भी दिखाकर ऐसा एक सहस्र स्तम्भोवाला अर्ति सुन्दर मडप निर्मित किया, जिसे देखकर व्रहा भी लजित हो जाय ।

उस (देवशिल्पी) ने उस मडप में ऐसी चद्रकान्त-शिलाएँ विछाई, जिनसे किरणों के स्पर्श के बिना ही, जल-धारा वह चलती थी । ऐसे बातायन भी निर्मित किये, जिनसे पुष्प की सुरभि से पूर्ण मन्द पवन सचरण कर सकता था । उसने सुन्दर कल्प-तरश्चों का एक मनोहर और शीतल उद्यान भी बनाया ।

उमरे हुए कधोवाला रावण एक माणिक्यमय विमान पर आसू छ होकर, उस मडप को देखने के लिए आया । उसके दोनों पाश्वों में, आभरणों से उज्ज्वल अप्सराएँ, गगन तक परिव्याप्त अंधकार को दूर करती हुई, अपने सुन्दर करों में ज्योति पूर्ण दीप लिये आई ।

वह अधकार यद्यपि ऐसा था, जैसे अनेक महसूल रात्रियों को एक करके रखा गया हो, तथापि उन सुन्दर रमणियों के बदन-रूपी शीतल चट्रिका को विखेनेवाले अत्युज्ज्वल तथा अनेक सहस्र कोटि चट्रमडल के एक हो जाने से, वह अधकार छिन्न-भिन्न हो मिट गया ।

अति मनोहर नव रत्नों से खचित पुष्टों से युक्त कल्पतरुओं से, सूर्य को भी लज्जित करनेवाला कातिपृज प्रकट हो रहा था, जिससे अधकार मिट गया और दिन का-सा प्रकाश व्याप्त हो गया । सूर्य के उद्दित होते ही, उसकी दीर्घ किरणों के प्रभाव से, अधकार मिटकर प्रभात हो जाता है न ? (उसी प्रकार कल्पतरुओं के प्रकाश से प्रभात हो आया ।)

स्पर्श, शब्द आदि विषयों का ग्रहण करनेवाली जिसकी इट्रियाँ एक समान मद पड़ गई थीं, जिसका मन स्तब्ध हो गया था और जो कर्त्तव्य-ज्ञान से रहित हो गया था ऐसा वह रावण, इच्छा के आवेग से खीचा जाकर उस मडप में इस प्रकार आकर प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार जन्मान्तर के समय प्राण नवीन शरीर के भीतर प्रविष्ट होते हैं ।

निष्पाप तपस्या से सपन्न व्यक्तियों के सब अभीष्टों को पूरा करनेवाला तथा वत्सुलाकार मीनों से पूर्ण क्षीर-समुद्र ही मानों, अमृत के साथ, आ गया हो—ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले, गानेवाले भ्रमरों से आवासित, हरित वृक्षों के कोमल पल्लवों तथा पुष्प-दलों से निर्मित, शीतल पर्येक पर आकर वह (रावण) लेट गया ।

ऐसा मद पवन, जो किसी मरनेवाले व्यक्ति के प्राणों को भी रोक सकता था, सुन्दर व्याघ्रणों से भूषित सुन्दरियों के कुतलों की सुगंधि को लेकर, वहाँ पर यो आ पहुँचा, जैसे उस सुगंधित उद्यान में मन्मथ को भोज देने के लिए क्षीर सागर से अमृत भेजा हो ।

रक्त-विदुओं और अग्निकणों को वरसानेवाली आँखों से युक्त वह रावण, वातावरण से मद पवन का सचार होने पर उसका सहन नहीं कर सका और इस प्रकार धबड़ा उठा, मानों कोई, अपने घर में अजगर को बुझते हुए देखकर भयभीत हो उठा हो । फिर, अपने समीपस्थ लोगों से उसने कहा —

मानो कुएँ का थोड़ा-सा जल सारे ससार को डुबो रहा हो, इसी प्रकार, देवों में एक, वह वायु सुर्खे पीडित कर रहा है । मेरी आज्ञा के बिना यह पवन यहाँ किस प्रकार दूस पाया ? फिर, उसने आज्ञा दी कि द्वारपालकों को शीघ्र ले आओ ।

उस समय, सेवक दौड़ चले और द्वारपालकों को शीघ्र ले आये । क्रूर रावण ने कठोर नेत्रों से उन्हें देखकर पूछा—क्या तुमने मद मास्त के वेश में आये हुए वायुदेव को भीतर आने का मार्ग दिया ? तब उन द्वारपालकों ने निवेदन किया—जब आप इस स्थान में रहत हैं, तब उसे यहाँ आने से कोई रोक नहीं सकता है न ?

इसपर रावण ने सोचा कि वायु पर कोप करने से कुछ प्रयोजन नहीं है । अगर मैं वरछे-जैसे नयनोंवाली सीता की कृपा को नहीं प्राप्त करूँगा, तो अभी यम आकर मेरे प्राण हर लेगा । फिर, उसने सेवकों को आज्ञा दी कि बुद्धि के कौशल से सब कायों को पूर्ण करनेवाले मर्त्तियों को बृला लाओ ।

रावण की आज्ञा पाकर वे सेवक, 'हे' ध्वनि करने के समय के भीतर ही (अर्थात्, अतिशीघ्र ही) अनेक स्थानों में दौड़े और मन्त्रियों को समाचार दिया । समाचार पाते ही वे मन्त्री लोग, पताकाओं से युक्त रथों पर, घोड़ों पर, शिविकाओं में तथा त्रिविध मठ से युक्त गजों पर आसूड़ होकर इस प्रकार आ पहुँचे कि उन्हे देखकर भूसुरों और देवताओं के मन भी व्याकुल हो उठे ।

मन में उठे विचार को शीघ्र कार्यान्वित करनेवाले, किन्तु अब अपने कर्तव्य को निश्चित नहीं कर पानेवाले रावण ने अपने मन्त्रियों के साथ ठीक मंत्रणा की, फिर गगन-गामी विमान पर चढ़कर अकेले ही उस मारीच के आश्रम में आ पहुँचा, जो पचेंद्रियों का दमन करके तपस्या में निरत था ।

रावण के आतं ही मारीच ने, सभय तथा व्याकुल होकर काले तथा बडे आकारवाले रावण का आगे जाकर सब प्रकार से स्वागत-स्तकार किया और उसके मुख की ओर देखकर कहने लगा—

मन में यह सोचकर चिंतित होता हुआ कि न जाने यह (रावण) किस प्रयोजन से यहाँ आया है, मारीच कहने लगा—सुन्दर तथा शीतल कल्पवृक्षों की छाया में रहकर शासन करनेवाले देवेंद्र और यमराज को भी भयभीत करते हुए राज्य करनेवाले, हे शासक ! अब इस अंरण्य में, मेरे इस कष्टदायक कुटीर में, दीन जन के जैसे किस प्रयोजन से आये हो ? कहो ।

रावण कहने लगा—अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करके मैं अपने प्राणों को रोके हुआ हूँ । अब शिथिल हो रहा हूँ । मेरे महत्व, कीर्ति, प्रभाव—सब मिट गये हैं । इसका क्या कारण है, मैं उसके बारे में तुम्हें किस प्रकार शाति के साथ कह सकता हूँ ? इस घटना से हमें ऐसा अपयश प्राप्त हुआ है कि देवताओं से हमें लजित हीना पड़ा है ।

हे शूलधारी ! मनुष्य पराक्रम दिखाने लगे हैं । उनके खड़ग से तुम्हारी भतोजी की नाक और कान कट गये हैं । विचार करने पर मेरे और तुम्हारे वशों के लिए इससे बढ़कर और क्या अपमान हो सकता है ? तुम्हीं कहो ।

एक मनुष्य ने दृढ़ धनुप को लेकर, बडे क्रोध के साथ अधिक सख्त्या में आकर युद्ध करनेवाले मेरं भाइयों की आयु को समाप्त कर दिया । यह तो अवतक की हमारी सब विजयों के लिए कलक है न । दृढ़ शूलधारी तुम्हारे भतीजे इस प्रकार मर मिटे । वह मनुष्य तो अपनी दोनों भुजाओं को ही लेकर अवतक सुखी रहता है न ?

मेरे मन की अग्नि शान्त नहीं हुई है । मरण की वेदना भोग रहा हूँ । व मेरे समान नहीं हैं । अत , मैं उनसे युद्ध करना नहीं चाहता हूँ । मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुम्हारी सहायता लेकर उन (मनुष्यों) के साथ रहनेवाली, प्रवाल को भी परास्त करनेवाले लाल अधर में युक्त, लता-ममान सुन्दरी की उठा ले आऊँ और अपने अपमान का बदला लूँ—यो रावण ने कहा ।

भड़कती हुई ज्वाला में जैसे लोह को पिघलाकर डाला गया हो, उसी प्रकार रावण के बन्न मारीच को तस करने लगे । उसका कथन पूरा होने के पूर्व मारीच ने

छिः । छिः ।^१ कहते हुए अपने कान बद कर लिये । उसके मन से भय दूर हो गया और क्रोध उत्पन्न हुआ । फिर वह (मारीच) कहने लगा—

हे राजन् ! तुम अपना जीवन नमात कर रहे हो । तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । यह तुम्हारा दोष नहीं है । मेरा विचार है कि यह कर्मों का ही परिणाम है । मेरा कथन तुम्हें मीठा नहीं लगेगा । तो भी मैं यह हित-वचन बताता हूँ—यो कहकर उस (मारीच) ने अनेक हितकारी उपदेश उम (रावण) को दिये ।

तुमने स्वयं अपने हाथों से अपने करों और शिरों को काट-काटकर अग्नि में होम किया था और दीर्घकाल तक भूखे रहकर, अपने प्राणों को धीमित करके तपस्या की थी । उसके पश्चात् ही सारी सपत्ति प्राप्त की । उस सपत्ति को यदि तुम अब अनुचित कार्य करके खो डालोगे, तो क्या उसे पुनः प्राप्त कर सकोगे ?

हे विचारणीय बंदों के पडित ! तुमने अपूर्व तपस्या करके सपत्ति प्राप्त की है । यह धर्म के प्रभाव से हुआ या अधर्म के प्रभाव से ? बताओ तो । तुमने यह महत्त्व धर्म के प्रभाव से ही तो पाया है ? अब क्या उसे अधर्म करके खो देना चाहते हो ?

जो राजा अपने ऊपर विश्वास करनेवाले मित्रों के राज्य का हरण करते हैं, जो राजा न्यायेतर मार्ग ने अपनी प्रजा से अधिक कर उगाहते हैं और जो व्यक्ति पर-पुरुष की गृहिणी को अपने वश में करते हैं—इन सबके धर्म का देवता स्वयं ही विनाश कर देता है । यह तुम जान लो, हे तात ! लोक-पीड़ा उत्पन्न करनेवालों में से कौन उदार पा सका है ?

स्वर्ग का अधिपति (इन्द्र) अहल्या के रूप की आसक्ति के कारण दुर्दशा-ग्रस्त हुआ । उस (इद्र) के जैसे अनेक लोग हुए हैं, जो पर-स्त्री के मोह में पड़कर अधःपतन करे प्राप्त हुए हैं । गौरवर्ण लक्ष्मी के समान अनेक सुन्दरियाँ तुम्हारे भोग की भागिनी हैं । तो भी तुमने विना संचे-ममर्मे कुछ कह दिया है । तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है ।

यदि तुम अपनी इच्छा के अनुसार काम भी करो, तो भी इससे पाप और अपयश ही तुम्हारे हाथ आयेंगे । तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी, नहीं होगी । संसार को उत्पन्न करनेवाला राम शाप-सदृश कठोर शरों से तुम्हारी शक्ति को मिटाकर तुम्हारी सतति और तुम्हारे सारे कुल को मिटा देगा, यह निश्चित है ।

मेरे ऐसा कहने पर भी, न जाने क्यों, तुम कुछ ठीक विचार नहीं कर रहे हो । अहो ! तुम्हारी सेना का सबसे बड़ा सेनापति खर अपनी सेना के साथ उस (राम) के एक ही शर से मारा गया । वह (राम) अब सारे राज्य-कुल को मिटानेवाला है ।

क्रूर व्यक्तियों में वीर विराध से बढ़कर कौन था ? वह (राम के) एक ही शर से, परलोक में पहुँच गया, तो अब हमसे ने कौन बचनेवाला है ? जब मैं यह बात नीचता हूँ, तब मैं भग मन व्याकुल हो जाता है । अब तुम अपने बच्चों से मेरी चिन्ता को और भी बढ़ा रहे हो ।

जिनको मरना था, वे मर गये । उन मरनेवालों के जैसा काम मत करो । यदि तुम भी वैना ही कार्य करोगे, तो क्या तुम को भाग्य बचा सकेगा ? समार में कितने ही

शासक हुए, उनमें अधर्मी राजाओं ने कभी सुख नहीं पाया। इस ससार में कौन चिरकाल तक जीवित रहनेवाला है। सब मिट जानेवाले ही तो हैं।

उस वीर (राम) से जिसने अपने वाण से मेरे भाई (सुवाहु) को और मेरी माता (ताड़का) को मार डाला और जिसके निकट खड़े रहनेवाले उसके भाई से मेरा सारा पराक्रम मिट गया, उनके स्मरण से ही मेरा व्याकुल मन काँप उठता है। राम के ऐसे पराक्रम से मैं बहुत चिन्तित हूँ।

हम इस सत्य को प्रत्यक्ष देखते हैं कि सब स्थावर तथा जगम पदार्थ अस्थिर हैं, नष्ट होनेवाले हैं, अतः हे तात। कोई नीच कार्य करने का विचार न करो, मेरी बात सुनो, अपनी महान् समृद्धि के साथ तुम चिरकाल तक जियो। इस प्रकार, मारीच ने (रावण से) कहा।

यह सुनकर रावण अपनी भयकर आँखों से आग उगलने लगा। उसकी भौंहे तन गई, बहुत कुद्द होकर उसने कहा—तुम कहते हो कि मेरी ये पराक्रमी सुन्दर मुजाएँ, जिन्होंने गगा को अपनी जटा में धारण करनेवाले (शिव) को उसके कैलास के सहित, एक हथेली पर उठाया था, अब एक मनुष्य से पराजित होनेवाली हैं।

अभी जो घटना हुई, उसके बारे में तुमने नहीं सोचा, पर निःसकोच होकर मेरी निंदा की। जिन्होंने मेरी बहन के मुँह में एक गढ़ा-सा खोद डाला हो, उन (मनुष्यों) की तुमने प्रशंसा की, यह तुम्हारा एक अपराध है। फिर भी, मैंने इसके लिए क्षमा कर दिया।

तब मारीच, यह सोचकर भी कि उसके ऊपर क्रोध करनेवाला वह निर्भीक (रावण) उसके वचनों को सुनकर पुनः कुद्द होगा—चुप नहीं रहा। किन्तु, फिर कहा—तुम्हारा यह क्रोध मुझ पर नहीं है, किन्तु यह स्वयं तुम पर ही है और तुम्हारे कुल पर है।

यदि तुम यह सोचते हो कि तुमने कैलास पर्वत को उठाया था, तो यह भी तो सोचो कि जब जनक ने (राम से) कहा कि यह धनुष शिवजी के द्वारा झुकाया हुआ पर्वत ही है, तुम इसे चढ़ाओ, तो राम ने एक क्षण में अनायास ही उस (धनुष) को हाथ में उठा लिया और उस पर डोरी चढ़ाने के निमित्त उसे झुकाकर तोड़ दिया। वह पर्वताकार शिव-धनुष गगन को छूनेवाला मेरु-पर्वत ही तो था।

तुम (राम के प्रभाव के बारे में) कुछ नहीं जानते हो। मेरे वचन को भी स्वीकार नहीं करते हो। वह (राम), युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर पुष्पमाला धारण करे, इसके पूर्व ही, उसके शत्रुओं के प्राण लुट जाते हैं। तुमने मूढ़ता से यह समझ रखा है कि वह (सीता) एक मानव-स्त्री मात्र है। क्या वह, सीता का अपना रूप है? वह तो राक्षसी के पाप के परिणाम की ही प्रतिमूर्ति है।

मेरे मन में, यह सोचकर कि (यदि तुम सीता का हरण करोगे, तो) तुम अपने वधुओं-सहित मिट जाओगे, नहीं वच सकोगे, ऐसी धड़कन उत्पन्न हो रही है, जैसे नगाड़ा बज रहा हो। इसका तुम विचार नहीं करते। अज्ञान में पड़कर जो विष पीने जा रहा हो, उससे उसके समीण रहनेवाले जानी व्यक्ति, क्या यह कहेंगे कि यह कार्य ठीक है?

उग्र तथा कलक-रहित विश्वामित्र के द्वारा प्रदत्त अनेक ऐसे शब्द राम की आशा में हैं, जो शिव आदि देवों के लोकों को तथा सब सुवनों को भी क्षण काल में विघ्वस्त कर सकते हैं।

जिस परशुराम ने एक महसूल बलिष्ठ हाथोवाले (कार्त्तवीर्य अर्जुन) को अपने परसे से क्षण काल में काटकर ढेर कर दिया था, उस (परशुराम) की मारी शक्ति को, उसके दृढ़ धनुष के साथ ही, राम ने अपने वश में कर लिया था। क्या वैसा बल हमारे लिए प्राप्त करना सभव है ?

काम-पीड़ा के बढ़ जाने से तुम दुर्बल हो गये हो। अतः, तुमने ऐसे वचन कहे। यह कार्य विनाशकारी है। मैं तुम्हारा मामा हूँ और तुम्हारे कुल का वृद्ध पुरुष हूँ। मैं कहता हूँ, है तात ! यह पाप-कार्य छोड़ दो। —इस प्रकार मारीच ने कहा।

राक्षसराज ने, अपने कथन के बारे में किंचित् विचार करने का परामर्श देने-वाले उस मारीच का धिक्कार करते हुए कहा—तुम, अपनी माता को मारनेवाले उस (राम) से डरकर जी रहे हो। क्या तुम्हें एक वीर पुरुष मानना उचित है ?

स्वर्गवाली देवी के निवासों को भस्म करके मैं सब लोकों पर इस प्रकार शासन-चक्र चलाता हूँ कि दिग्गज सब भयभीत होकर भागकर छिप गये हैं और देवता भी उर्द्धशा-न्यस्त हो गये हैं। क्या ऐसे सुकको दशरथ के वे पुत्र कष्ट दे सकेंगे ?—यह मेरी शक्ति भी अच्छी है।

मैं त्रिसुवन का एकच्छ्रुत्र राज्य वहन करता हूँ। यदि सुरक्षे कोई शक्तिशाली शत्रु प्राप्त हो, तो उससे बढ़कर मेरे बानव का विषय कोई दूसरा नहीं होगा। मेरी आज्ञा के अनुसार तुम्हें कार्य करना है। राजा के कार्य-सपाठन करनेवाले मत्री के कर्तव्य से क्या तुम स्वलित हो जाओगे ?

अगर तुम मेरी आज्ञा का अतिक्रमण करोगे, तो मैं तीक्ष्ण करवाल से तुम्हे काट दूँगा। किन्तु, अपने इच्छित कार्य को पूर्ण किये विना नहीं रहूँगा। यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो इन घृणास्पद वचनों को छोड़कर मेरे मन की वात करो। यों रावण ने कहा।

राक्षसराज के यह वचन कहने पर, मारीच ने मन में विचार किया—जिसके मन में गर्व उत्पन्न होता है, वह उसी भमव मिट जाता है। यही कथन सत्य है। लोग मन में काम-चासना उत्पन्न होने पर, उसी कामना पर प्राण छोड़ने के लिए भी तैयार हो जाते हैं—और वह तपाये हुए पात्र में डाले गये जल के जैसे ही, उफनकर, भीतर शात हो गया। वह फिर कहने लगा—

तुम्हारे हित की कामना से मैंने यथार्थ वात कही। होनेवाले अपने किसी अहित को मोचकर और उससे डरकर मैंने कुछ नहीं कहा। विनाश का काल आ जाता है, तो भला भी दुरा लगता है। है छुद्र स्वभाववाले। वताओ, सुरक्षे क्या करना है ? यों मारीच ने कहा।

मारीच के यह कहने ही गवण ने अपना क्रोध शान्त कर उसका आलिंगन किया

और कहा—पर्वत के समान पुष्ट कधीवाले । मन्मथ के उग्र बाणों से मरने की अपेक्षा राम के बाण से मरना ही कीर्तिदायक है न ? अतः, मद मास्त से मेरे हृदय में काम उत्पन्न करनेवाली (सीता) को ला दो ।

रावण के यह वचन कहते ही मारीच बोला—(मेरी माँ को मारनेवाले) राम मेरे अपना बदला लेने के लिए मैं एक बार, दो-एक राज्ञियों को साथ लेकर तपोबन में गया था । तब राम के बाणों से मेरे साथी मरकर गिर पड़े । भयभीत होकर मैं भाग आया । ऐसा मैं इस समय क्या कार्य कर सकता हूँ ? बताओ ।

मारीच की बातें सुनकर रावण ने कहा तुम्हारी माता को मारनेवाले इस राम के प्राण हरने के लिए मैं तैयार हूँ । तुम्हारा यह प्रश्न कि मैं जाकर क्या करूँ, उचित ही है । हमारा कर्तव्य माया से धोखा देकर उस सीता का अपहरण करना ही है ।

मारीच ने कहा—हे राजन् । अब मैं और क्या कह सकता हूँ ? उस (राम) की देवी को पराक्रम से हरण करना उचित है । धोखे से हरण करना नीच कार्य है । तुम (राम से) युद्ध करके, विजय पाकर सीता को अपना लो और अपने प्रताप को बढ़ाओ । ऐसा करना नीतिशास्त्र के अनुकूल होगा ।

अपने हित-चिंतक (मारीच) का कथन सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला उन मनुष्यों को जीतने के लिए क्या सेना की भी आवश्यकता है ? क्या मेरे विशाल हाथ का करखाल पर्याप्त नहीं है ? फिर भी, सोचने की बात यह है कि यदि वे दोनों मनुष्य मर जायेंगे, तो वह नारी (सीता) एकाकिनी होकर अपने प्राण त्याग देगी न ? अतः, धोखे में उस नारी का हरण करना ही ठीक है ।

यह सुनकर मारीच ने सोचा—मैं ऐसा उपाय बताता हूँ कि राम की देवी का स्पर्श करने के पूर्व ही इस (रावण) के शिर (राम के) बाणों से विखर जायें, पर यह मेरी बात नहीं मानता । अब मेरे जीवित रहने का कोई मार्ग नहीं है । विधि के परिणाम को कौन जान सकता है ? अब इसकी आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है ।

फिर उस (मारीच) ने कहा—अब मुझे कैसी माया रचनी है, बताओ । रावण ने कहा—तुम एक सोने के हिरण का रूप वारण कर लो और उस सीता के मन को ललचाओ । मारीच वैसा करने की समर्पित प्रकट करके चल पड़ा । उज्ज्वल शूलधारी राज्ञिय (रावण) भी दूसरे मार्ग से चला गया ।

मारीच, पूर्वकाल में राम के बाण का प्रभाव जान लुका था । अतः, वह स्वयं हरिण का रूप लेकर वहाँ जाना नहीं चाहता था । किंतु, रावण की वैसी आज्ञा होने के कारण वह गया । अब उसके मन की दशा और उसके व्यापारों का वर्णन करेंगे ।

मारीच का मन, अपने बन्धुओं का स्मरण करके दुःखी होता । वह वीर राम-लक्ष्मण से भयभीत होकर चक्कर खाता । गहरे तालाब का पानी विषमय हो जाय, तो उसमें रहनेवाली मछली जिस प्रकार विकल होती है, उसी प्रकार मारीच का मन भी व्याकुल हुआ । उसकी दशा का अनुमान करना भी कठिन है ।

विश्वामित्र के यज्ञ के समय राम से पीड़ित होकर और (दंडकारण में) पहले एक बार हरिण-वैप में जाकर भी जो मरा नहीं, वह मारीच अब तीसरी बार प्रयत्न करता हुआ राघव के आश्रम में जा पहुँचा ।

उनने ऐसे एक स्वर्ण-हरिण का रूप धारण किया, जिसकी अनुपम उज्ज्वल देह की काति से गगन और धरती भी प्रकाशित हो उठी । उत्तम हरिणी-समान सीता के मन में आकर्षण उत्पन्न करने के विचार से वह (पर्षकुटी के पास) गया ।

किसी पर आसक्ति नहीं रखनेवाले मन तथा कपट से युक्त वेश्याओं की ओर जिम प्रकार नव कामुक व्यक्ति आकृष्ट होते हैं, उसी प्रकार उस स्वर्ण-हरिण की ओर सब प्रकार के हरिण आकृष्ट होकर उसको धेरकर चले ।

उमी समय सीतादेवी, अपने अति सुन्दर कक्षण-भूषित कोमल कर-कमलों से पुण-च्यन करती हुई, इस प्रकार वहाँ चली आई कि देखनेवालों के मन में यह सदैह उत्पन्न होने लगा कि इसके कटि है या नहीं ।

जिमपर विपदा आनेवाली होती है, वे स्वप्न में ऐसे रूपों को देखते हैं, जिनका विचार तक वे अपने मन में कभी नहीं लाये होगे । इसी प्रकार, सीता देवी ने, जिनको, उसके पूर्व व्यभी किसी को न प्राप्त हुई वड़ी विपदा आनेवाली थी उस माया-मृग को देखा ।

रावण की आयु अब समाप्त होनेवाली थी, और उसकी मृत्यु से धर्म की सुरक्षा होनेवाली थी । अतः, सीता उस (माया-मृग) को देखकर, यह नहीं जानती हुई कि यह धोखा है, उसके न चाहने योग्य सांदर्य पर मुरग हो गई ?

वह हरिण ज्यों ही अर्धचक्र समान ललाटवाली सीता के सम्मुख आकर खड़ा हुआ, त्यो ही वह (सीता) उसके प्रति अत्यधिक आकर्षण से भरकर, इस विचार से कि राम से उस हरिण को पकड़ लाने को कहे, मत्वर विजयी धनुधारी (राम) के निकट जा पहुँची ।

सीता ने हाथ जोड़कर गम से कहा—हमारे आश्रम में अति उत्तम स्वर्णमय, दूर तक अपना प्रकाश फैंकनेवाला माणिक्य तथा रत्नमय सुदृढ करों और करों से शीभाय-मान एक हरिण आया है । वह अत्यन्त दर्शन-मधुर है ।

ऐसा हरिण समार में कहीं नहीं हो सकता, - ऐसा किंचित् भी विचार किये त्रिना ही हमारे प्रभु और कमलभव के पिता (विष्णु के अवतारभूत) राम, हरिण-तुल्य देवी त्री वात चुनकर उसग से भर गये ।

वह सुने चाहिए—यों अपनी देवी के कहने पर, राम ने यह नहीं कहा कि यह (हरिण) चाहने योग्य नहीं है । किन्तु, वह कहा कि आभरणधारी, स्वर्णलता-तुल्य है देवि ! हम उस हरिण को देखेंगे । तब अनुज लक्ष्मण ने उनका मनोभाव जानकर उस समय एक बच्चन कहा—

(उस हरिण के) स्वर्णमय देह है, माणिकमय पैर, पैछ और कान हैं और वह कुदकता है—यों कहने ने वह स्पष्ट है कि वह कोई मायामय मृग है । है प्रभु । इसके विपरीत उमे-यथार्थ मृग मानना ठीक नहीं है ।

तब राम ने कहा— हे मेरे अनुज ! यथार्थ विवेक से सब कुछ जाननेवाले व्यक्ति भी इस अस्थिर ससार की दशा को पूरा-पूरा नहीं जान सकते ; इस ससार में अनेक महसूस कोटि प्राणी हैं । अतः, ससार में कोई वस्तु असभव है—ऐसी बात नहीं है ।

तुम्हारा मन क्या कहता है ? हम अपने कानों से सृष्टि की विचित्र वस्तुओं के बारे में सुनते हैं । क्या तुम नहीं जानते कि पूर्वकाल में सात स्वर्णमय हस^१ पैदा हुए थे ?

सृष्टि के प्राणियों की कोई रूप-व्यवस्था या कोई सीमा नहीं है । यों राम ने अपने भाई से कहा । डतने में मुख्या (सीता) देवी चिन्ता करने लगी कि वह स्वर्ण-मृग बन के मार्गों में जाकर कही अदृश्य न हो जाय ।

इस प्रकार चिन्ता करनेवाली देवी का मनोभाव जानकर, अजन-पर्वत सदृश प्रभु, यह कहते हुए कि हे आभरणों से भूषित देवि ! कहाँ है वह हरिण ? मुझे दिखाओ । चल पड़े । मुखरित वीर बलयधारी अनुज (लक्ष्मण) अपने भ्राता का यह कार्य देखकर चिन्तामन हो, उनके पीछे-पीछे चले । उसी समय अवश्यभावी विधि के विधान के समान आया हुआ वह माया-मृग सम्मुख दिखाई पड़ा ।

सम्मुख दिखाई पड़नेवाले उस हरिण को देखकर रामचन्द्र अपनी सूख्म बुद्धि से कुछ विचार न करके कह उठे—अहो ! यह तो बहुत सुन्दर है । उन (सर्वज्ञ राम) के इस प्रकार कहने का कारण क्या था ? विष्णु ने सर्पशय्या को छोड़कर धरती पर (राम के रूप में) अवतार लिया था, तो वह देवताओं के पुण्यफल के परिणामस्वरूप ही तो था । वह (भाग्य) क्या व्यर्थ होगा ? (अर्थात्, देवताओं के भाग्य-परिपाक के कारण ही रामचन्द्र मायामृग को पकड़ने के लिए तैयार हुए थे ।)

फिर, श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—हे भाई ! इसे देखो । इसका उपमान क्या हो सकता है ? इसका उपमान यह स्वय है । इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपमान नहीं है । इसके दाँत उज्ज्वल मुक्ता-तुल्य हैं । हरी धास पर बढ़ाई गई इसकी जीभ बिजली के महश है । इसकी देह रक्त स्वर्ण के तुल्य है, जिसपर चाँदी की-भी चित्तियाँ शोभित हो रही हैं ।

हे हृषि धनुधरी ! उम हरिण की सुन्दरता को देखने पर स्त्री हो या पुरुष,— कौन इसपर मुग्ध नहीं होगा ? रेंगनेवाले और उड़नेवाले सब प्राणी इसे देखकर पिघल उठते हैं और इस प्रकार आकर धेर लेते हैं, जिस प्रकार दीपक पर पतग आकर गिरते हैं ।

^१. एक कथा प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में भरद्वाज मुनि के सात पुत्र मानससरोवर पर योग-साधना करते थे । किसी कारण से वे योगभ्रष्ट हो गये और दूसरे जन्म में कौशिक ऋषि के पुत्र होकर दत्यन्न छुए । उस जन्म में एक दिन अत्यन्त द्वृष्टि से पीड़ित होकर उन्होंने अपने गुरु गार्ग महर्षि की गाय को मारकर खा डाला । किन्तु, खाने के पूर्व पितरों का श्राद्ध कर उन्हे नृप किया । उस पाप के कारण उन्हें अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ा । किन्तु, पितरों को नृप करने के पुण्यफल से उन्हें सब जन्मों में अपने पूर्वजन्मों का स्मरण बना रहता था । एक बार वे सात स्वर्णहस होकर जन्मे थे । कदाचित् इसी कथा की ओर इस पथ में संकेत है ।—अनु०

आर्य (राम) के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उम हरिण को देखकर यह स्पष्ट रूप से जान लिया कि यह (हरिण) मच्चा नहीं है । फिर कहा—हे सुरभित तथा सुन्दर मालाधारी । यह हरिण स्वर्ण का भले ही हो, तो भी इससे हमें क्या प्रयोजन है ? अतः, हमें अपने स्थान पर लौट जाना ही उचित है ।

लक्ष्मण के ये वचन समाप्त करने के पूर्व ही उस अतिसूपवती (सीता) ने अनध (रामचंद्र) को देखकर कहा—हे चक्रवर्ती-पुत्र ! मन को आकृष्ट करनेवाले इस हरिण को शीघ्र पकड़ लाओ । जब हम (वनवास की) अवधि पूरा करके नगर को लौटेंगे, तब यह खेलने के लिए अत्यत उपयुक्त होगा ।

‘हे या नहीं’—यों सदेह उत्पन्न करनेवाली कटि से युक्त (सीता) के यह कहने पर प्रभु उस हरिण को पकड़ने के लिए सन्त्रद्ध हुए, यह देखकर स्पष्ट चिवेकवाले भाई (लक्ष्मण) ने उनसे निवेदन किया —हे भ्राता ! आप सोचकर जान सकते हैं कि हमें घोखा ढेने के लिए राक्षसों के द्वारा भेजा गया यह मायामय मृग है ।

तब देवताओं के कष्टों को दूर करने के लिए अवतीर्ण प्रभु ने उत्तर दिया—यदि यह मायामृग ही है, तो भी मेरे बाण से यह मरेगा । मैं उस दशा में एक क्रोधी (क्रूर) राक्षस का वध करने का कर्तव्य पूरा करूँगा । यदि यह यथार्थ हरिण है तो इसे पकड़कर लाऊँगा । इन दोनों वातों में कोई भी अनुचित नहीं ।

इसपर लक्ष्मण ने फिर कहा—हे वज्रसदृश दृढ़ तथा अतिसुन्दर कधीवाले ! इस (हरिण) के पीछे किस प्रकार के राक्षस छिपे हैं—यह हमें विदित नहीं है । उनकी माया कैसी है—इससे भी हम परिचित नहीं हैं । यह हरिण क्या है—यह भी हमने समझा नहीं है । नीति-निष्ठ महाजनों ने जिस आखेट को घृणित और वर्ज्य कहा है, उसे करना कीर्त्तिकारक नहीं होता ।

यह सुनकर चतुर्मुख के पिता (विष्णु के अवतार, राम) ने अपने उत्तम भाई से कहा—राक्षस वैर रखनेवाले हैं । उनकी सख्त्य अपार है । उनकी माया प्रभूत है—इन वातों को सोचकर ही क्या हम अपने व्रत को छोड़ दें ? यह हास्यास्पद वात होगी । अतः, (हरिण) को पकड़ने का यह कार्य उचित ही है ।

तब लक्ष्मण ने कहा—हे भ्राता ! योग्य कायों को ठीक सोच-समझकर करना उचित है । इस (हरिण) को पकड़ लाने के लिए मैं जाऊँगा । इसे यहाँ भेजकर इसके पीछे छिपे रहनेवाले राक्षस असख्य भी क्यों न हों, उन सबको मैं अपने धनुष पर अनेक तीव्र बाण चढ़ाकर मिटा दूँगा । यदि यह मायामय मृग न हो, तो इसे पकड़कर ले आऊँगा ।

उम समय हमिनी-तुल्य उम (सीता) ने, गद्गदकठ से शुक्री की जैसी अमृत-वर्धिणी वाणी में कहा—हे नाथ ! क्या तुम स्वयं जाकर इस (हरिण) को नहीं पकड़ लाओगें ? फिर रक्त रेखाओं में सशुक्त नीलोत्पल-जैसे अपने नयनों से मोती जैसे अश्रु-विंदु वरसाती हुईं और मान करती हुईं पर्णशाला की ओर चल पड़ी ।

इस प्रकार जानेवाली सीता का रोष देखकर गङ्गा प्रभु ने (लक्ष्मण से) कहा—

हे सुन्दरमाला-भूषित । इस हरिण को मैं स्वयं पकड़कर शीघ्र लौट आऊँगा । बन में रहनेवाली कलापी-समान सीता की रक्षा करते हुए हम यहाँ रहो—यो कहकर वरछे-जैमें तीक्ष्ण बाण और धनुष लेकर सत्त्वर चल पडे ।

तब लक्ष्मण ने यह कहकर कि पहले (विश्वामित्र के) यज्र के समय आये हुए तीन गज्जमों में से (अर्थात्, ताड़का, सुवाहु और मारीच—इनमें से) एक राक्षस हमसे बचकर निकल गया था । हे प्रभु ! मेरा अनुमान है कि उस समय बचकर भागा हुआ मारीच ही इस रूप में अब यहाँ आया है । आप सत्य को देखेंगे । जाइए । आपकी जय हो । लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार किया और लक्ष्मी-तुल्य सीता के निवास-भूत कुटीर के बाहर पहरा देते हुए खडे रहे ।

पर्वत-समान उन्नत कधीवाले रामचंद्र ने अपने विवेकवान् भाई के बचनों पर ध्यान नहीं दिया और पूर्णचंद्र का उपमान बननेवाले सुन्दर सुख से शोभित (सीता) देवी के मान का स्मरण करते हुए, सिंहूर और प्रवाल के जैसे रक्तवर्ण अपने मुँह पर मदहास भरकर उस हरिण का पीछा करते हुए चल पडे ।

वह हरिण मंद-मद पैर रखता हुआ कभी चलता, कभी स्थिर खड़ा होता । फिर, घबराकर झपटता और कभी कान खडे करके अपने खुरों को बक्ष से सटाता हुआ उछल पड़ता एवं अपनी गति से प्रभजन और मन को भी मानों नवीन गति सिखाने लगता ।

राम ने, त्रिमुखन को नापनेवाले अपने पैर को उठाकर आगे रखा । क्या उस चरण की पहुँच से परे रहनेवाला कोई लोक भी हो सकता है ? यों राम ने (उस हरिण का) पीछा किया । उन राम के उस समय के वेग के बारे में इससे अधिक क्या कह सकते हैं कि उन्होंने अपनी अनुपम सर्वव्यापिता को प्रकट किया ?

वह (हरिण) पर्वत पर चढ़ता, मेघों के मध्य कूद पड़ता । उसका पीछा करने पर वह बहुत दूर भाग जाता । उसका पीछा करना छोड़कर विलव करें, तो इतना निकट आ जाता कि हाथ बढ़ाकर उसे छू सकें । स्थिर खड़ा हुआ-सा दिखता, किन्तु झट उछलकर भाग जाता । इस प्रकार, वह (हरिण), धन पर ललचानेवाली बारनारियों के मन के समान सचरण करता । अहो ।

तब उदार स्वभाववाले प्रभु ने विचार किया—इस (हरिण) का रूप कुछ है और इसके कार्य कुछ और हैं । पहले ही मेरे अनुज ने जो सोचा, वह ठीक ही लगता है । यदि मैं ठीक-ठीक विचार करता, तो इसके पीछे नहीं आता । राक्षसों की माया के कारण ही मुझे यह क्लेश उठाना पड़ रहा है ।

इतने में वह मायावी राक्षस यह सोचकर कि यह (राम) अब मुझे पकड़ेगा नहीं, किंतु अपने बाण से मुझे परलोक में भेजने की बात सोच रहा है—अतिवेग में गगन में उड़ गया ।

उसी क्षण प्रभु ने भी अपने चक्रायुध के समान अवार्य एक रक्तवर्ण बाण को यह आज्ञा देकर छोड़ा कि यह हरिण जहाँ भी जाये, वहाँ उसका पीछा करता हुआ जा और उसके प्राण हर ले ।

वह दीर्घ, तीक्ष्ण तथा पत्राकार वाण उम मायावी के बन्ध में जा लगा। तुरन्त वह (मारीच) अपने खुले मुँह से (हा लद्भण। हा सीने। कहकर) पुकार उठा और अष्ट दिशाओं और उनसे परे भी प्रतिष्ठनि करता हुआ एक पर्वत के जैसे गिर पड़ा।

ज्योंही वह कर राज्ञस अपने यथार्थ रूप में मरकर गिरा, ज्योंही राम अपने उस भाई के बारे में, जिसने उम (हरिण को पकड़ने के) प्रयत्न को अहितकारी बताया था, सोचने लगे—मेरा वह भाई चतुर है। मेरे प्राणों के समान प्रिय है। मेरा वह चतुर अनुज मेरा उद्धार करनेवाला है।

फिर, रामचंद्र ने उम मारीच की देह को निकट जाकर देखा, जो दिगत को अपनी पुकार ने प्रतिष्ठनित करता हुआ गिरा था, और स्पष्ट रूप सं यह जान लिया कि वह वही मारीच है जो पहले कलक-रहित विश्वामित्र के महायज्ञ के समय आया था।

फिर, यह सोचकर वे (राम) चिंतित हुए कि दारुण वाण ज्योंही उसके बन्ध में लगा, वह अपनी माया से मेरे कंठ स्वर का अनुकरण करके पुकार उठा। वह ध्वनि सुनकर मेघ-समान नयनोवाली (सीता) देवी चिंतित हुई होंगी।

मेरा भाई इस (हरिण) को देखते ही समझ गया था कि यह मायावी मारीच है। वह मेरे पराक्रम को समझने की बुद्धि रखता है। अतः, इस (मारीच) की पुकार के यथार्थ तत्त्व को (सीता को) वह समझा देगा। यो विचार कर राम स्वस्थचित्त हुए।

फिर, यह विचार कर कि यह (मारीच) वेवल मरने के उद्देश्य से ही यहाँ नहीं आया होगा, हो न हो, कोई घड्यन्त्र करने का उपाय करके ही आया है, इसकी पुकार में कोई हानि उत्पन्न होने की सभावना है, अतः, ऐसी कोई विपदा उत्पन्न होने के पूर्व ही पर्णशाला को लौट जाना उचित है। (१-४५२)



अध्याय ८

सीता-हरण पटल

शखो मे पूर्ण अनुपम समुद्र के जैसे सुन्दर स्वरूपवाले (राम) के सबध मे हमने वर्णन किया। अब सुरभिपूर्ण पुष्पालकृत केशोवाली लता-सदृश (सीता) देवी के सम्बन्ध मं कहेंगे।

मारीच ने अपने डाँत पीसकर, अपने कंदरा के समान मुँह को खोलकर जो कर्ण पुकार की थी, वह ज्योंही सीता के कानों मे पड़ो, ज्योंही वह बृक्ष पर मे धरती पर गिरी हुई कोयल के समान व्याकुल होकर छाती पीटती हुई मूर्च्छित हो गई।

घने कृतलोवाली वह (सीता) देवी अवलब मे छूटी हुई लता के समान, और बन्ध-ध्वनि के श्रवण मे भयभीत हुए सर्प के समान मूर्च्छित होकर धरती पर लौट गई। फिर,

(सज्जा पाकर) रोती हुई कहने लगी—हा । मैंने अज्ञान में पड़कर हरिण को पकड़कर लाने की वात कही और उसके फल-स्वरूप अपने जीवन-सर्वस्व को खो दैठी ।

फिर, सीता ने लद्धमण में कहा—कलक-रहित शुभगुणों से पूर्ण हमारे प्रभु, राक्षस की माया से विपदा-ग्रस्त हो गये हैं—यह विषय जानने के पश्चात् भी उनके भाई, तुम अभी तक मेरे निकट ही खड़े हो । क्या यह उचित है ।

तब उस सत्यनिष्ठ (लद्धमण) ने समझाया—क्या आपका यह कथन उचित है कि इस लषु ससार में राम से भी अधिक पराक्रमी व्यक्ति है ? स्त्रीजनोचित बुद्धि के कारण ही आपने ऐसा कहा है ।

हे स्त्रीत्व-गुण से पूर्ण देवि ! सप्त समुद्र, चतुर्दश भुवन, सप्त कुलपर्वत, इन सब प्रदेशों के निवासियों के क्षुद्र बल से क्या युद्ध में राघव का विशिष्ट पराक्रम कभी घट सकता है ? (अर्थात्, कम नहीं हो सकता है ।)

भूमि, जल, पवन, आकाश और अग्नि नाम के जो पदार्थ हैं, वे सब उन (राम) के क्रोध करने पर घबरा उठते हैं । मेघ-सदृश काले वर्णवाले उन कमल-नयन को आपने क्या समझा है, जो आप इस प्रकार व्याकुल हो रही हैं ।

क्या रामचंद्र निशाचरों से परास्त एव विपदा-ग्रस्त होकर दुहाई देंगे ? यदि कभी उन्हें वैसी दुहाई देनी भी पड़े, तो सारा ब्रह्माड अस्तव्यस्त ही जायगा और ब्रह्मा प्रभृति सब जीव विनष्ट हो जायेंगे ।

(उनके बल के विषय में) और क्या कहा जाय ? हमारे प्रभु रामचन्द्र, जिन्होंने भयकर त्रिपुरों को जला देनेवाले और भूमि और स्वर्ग के निवासियों के द्वारा प्रशसित शिवजी के धनुष को तोड़ दिया था, उनके बल की अपेक्षा अधिक बल क्या किसी में हो सकता है ।

(हमारे) रक्षक (राम) यदि ऐसी दशा को प्राप्त हुए होते, जैसा आपने सोचा है, तो तीनों लोक विघ्वस्त हो गये होते । देव और मुनि मिट गये होते । उत्तम धर्म भी विनष्ट हो गया होता ।

अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? महिमामय प्रभु ने वहाँ पर शर का प्रयोग किया है । उससे आहत होकर वह राक्षस वह दुहाई दे रहा है । उसके लिए आप द्रवीभूत होकर चिन्तित मत हो । निश्चिन्त होकर रहे ।—यों लद्धमण ने कहा ।

लद्धमण के इस प्रकार कहने पर, सीता का क्रोध और उबल उठा । उसे मरण की-सी वेदना होने लगी । उसका मन अत्यधिक घबरा उठा । वह निष्कर्षण होकर, लद्धमण के प्रति कठोर शब्द कहने लगी कि तुम्हारा यो खड़ा रहना नीति-मार्ग के अनुकूल नहीं है ।

एक दिन का भी परिचय होने पर सच्चे वधु (अपने मित्र की सहायता के लिए) अपने प्राण तक देने को सन्नद्ध हो जाते हैं । किन्तु, तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता को विपदा-ग्रस्त जानकर भी निर्भय हो स्थिर खड़े हो । मेर लिए (इससे बुरी) और क्या गति हो सकती है ? अब मैं अग्नि में गिरकर अपने प्राण का त्याग करूँगी ।

कमल के उद्घान में विहार करनेवाला हंस जिस प्रकार धुआँधार दावाग्नि में कुदने जाता हो, उसी प्रकार का कार्य करने के लिए प्रस्तुत (सीता) देवी की बातों को सुनकर उनकी रक्षा के लिए धनुष धारण करनेवाले (लक्ष्मण) ने उनके छोटे चरण-कमलों के मम्मुख वर्गती पर गिरकर साष्टग नमस्कार किया । फिर बोला—

आप प्राण-त्याग करना क्यों चाहती हैं ? आपकी बातों से मैं भयभीत हो रहा हूँ । (आपकी आज्ञा का) मैं उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ । आप दुःख-मुक्त होकर वहीं रहें । यह दास जा रहा है । कठोर विधि-विधान को कौन रोक सकता है ?

यह दास जा रहा है, कुछ अहित होने को है । आप कह रही हैं कि मैं प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ से जाऊँ । (मेरे जाने पर) आप अकेली रह जायेंगी । इसलिए सावधान रहिए ।—यों कहकर उत्तम मन के साथ विदा होकर लक्ष्मण वहाँ से चलने लगे ।

उम समय लक्ष्मण वह विचार करते हुए चले कि यदि मैं यही रहूँ, तो ये अरिनि में चिरंगी । यदि मैं पर्वत-मद्वश प्रभु के निकट जाऊँ, तो इनकी रक्षा न होने से कुछ अहित होगा । मुझे अपने प्राणों पर भी आसक्ति है । अब मैं क्या करूँ ?—इस प्रकार मोचकर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हुए ।

यदि ही सके, तो धर्म से अहित को रोका जा सकता है । अज्ञ मैं, जो पूर्वकर्म के परिणाम के फलस्वरूप इस प्रकार का जन्म पाकर यहाँ आकर इस विपदा में ग्रस्त हुआ हूँ, इन सीता की मृत्यु का कारण वन्—इससे तो यही उत्तम है कि मैं इस स्थान से हट जाऊँ ।

फिर, सीता से कहा—मैं जा रहा हूँ—यदि (अहित) घटित हुआ, तो गृहराज (जटायु) अपनी शक्ति-भर आपकी रक्षा करेगा । (यह कहकर) देवताओं के पुण्य-प्रभाव में महिमामय वह पुनर्ष्रेष्ठ (लक्ष्मण) उसी मार्ग से चल पड़ा, जिससे राम गये थे ।

लक्ष्मण के वहाँ से जाने ही खड़ग-दत्तोवाला रावण, जो अवसर की ताक में छिपा रैठा था अपनी वचना को सफल बनाने के उद्देश्य से वॉम का त्रिडण लिये अतश्शत्रुओं (वर्धान्, काम, क्रोध और मोह) के वधनों से मुक्त हुए तपस्वी का वैप धारण करके आया ।

उपवास रखनेवाले के समान उसकी देह दुर्बल थी । बहुत दूर तक पैदल चलकर आनेवाले के समान उसमें थकावट दिखाई पड़ती थी । नृत्य के संगीत के जैसे ही अति शुद्ध तथा वीणागान के समान मधुर शैली में (साम) वेद का गान करता हुआ वह (रावण) आया ।

वह इस प्रकार मन्द-मन्द चलता था, जैसे पुष्पों की शश्या पर चल रहा हो । वह अपना पठ इस प्रकार रखता था, मानों अग्नि-कणों पर चल रहा हो । उसके हाथ और पैर अनियन्त्रित त्वप से काँप रहे थे और उसमें अतिवार्द्धक्य दिखाई पड़ रहा था ।

वह कमल के बीजों की एक जप-माला हाथ में लिये हुए था । उसके पास कर्माकार एक आमन भी था । उसका शरीर भुका हुआ था । उसके बद्द पर यज्ञोपवीत

शोभायमान था । इस वेष में वह, पवित्र अतःकरणवाली उस अरु धती (के समान पाति-
त्रत्यवाली सीता) के आवास-भूत कुटीर के समीप आ पहुँचा ।

देवताओं को भी मुख करनेवाला (सन्यासी का) वेष धारण करके वह (रावण)
उस कलकरहित पर्णशाला के द्वार पर पहुँचा और गलित कठ से बोला—इस कुटीर में
कौन है ?

कलापी-तुल्य वह देवी यह सोचकर कि कपट-रहित मनवाले कोई तपस्वी
आये हैं, इन्द्रुरस-समान मधुर स्वर में यह कहती हुई कि ‘पधारिए । पधारिए ।’ इस प्रकार
उसके सम्मुख आ खड़ी हुई, जैसे कोई प्रवाल-लता हो ।

उस (रावण) ने, लावण्य के भी लावण्य, यश के आगार और शील की मर्यादा-
उस देवी को अपनी आँखों से देखा और मदस्थावी मत्तगज के समान स्वेद से भरकर, लालसा-
रूपी वीचियों से पूर्ण कामना-समुद्र में झूब गया ।

अशिथिल कोकिल स्वर से युक्त, देव-स्त्रियों से भी उत्तम रूपवाली वह (सीता)
देवी ज्योही उसके सम्मुख प्रकट हुई, उस (रावण) के विरह-तस मनकी क्या दशा हुई—
इसके बारे में क्या वर्णन करें ? उसकी शक्तिशाली भुजाएँ फूल उठी और फिर कृष
हो गई ।

उसकी नयन-पक्कि, बन-मधूर जैसी (सीता) के सौदर्य के दर्शन से, पुष्पों के
समृद्ध मधु का छक्कर पान करके गानेवाले भ्रमरों के समान आनद से मत्त हो उठी—ऐसा
कहने में क्या बढ़ाई होगी ? उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनंदित हो गईं ।

वह (रावण) यह सोचता हुआ कि असून-कमल के समान को तजकर मेरे ये वीस
नयन यहाँ आई हुई इस सुन्दरी के रत्न-काति से युक्त लावण्य को देखने के लिए क्या
पर्याप्त हैं ? हाय । मेरे एक हजार अपलक आँखें नहीं हैं ।—व्याकुल हो खड़ा रहा ।

उसने सोचा—कलाइयों पर ककण-पक्कियों से शोभित होनेवाली इस नारी-रत्न के
साथ क्रीड़ा करते हुए आनद के अपार समुद्र में निमग्न होने के लिए क्या कठोर तपस्या के
प्रभाव से प्राप्त, साढ़े तीन करोड़ वर्ष की मेरी आद्यु भी पर्याप्त होगी ।

(फिर, उसने सोचा) अब मैं इस सुन्दरी को तीनों लोकों की समाजी बना
दूँगा । सब सुर और, असुर अपनी पत्नियों के साथ इसकी सेवा में निरत रहकर जीवन
व्यतीत करेंगे । और, मैं भी इसकी सेवा करता हुआ रहूँगा ।

(उसने यह भी विचार किया) दुःख के समय में ही जब इसका मुख इतना
लावण्यपूर्ण है, तब किंचित् दत-प्रकाश से युक्त मदहास फैलने पर इसका मुख कितना मनोहर
लगेगा ? मैं अपनी उस वहन (शूर्पणखा) को, जिसने इस पुष्प-भरित कुतलोवाली का
अन्वेषण कर सुमें इसकी पहचान दी है, अपना राज्य दे दूँगा ।

वह (रावण) उस स्थान पर आकर इसी प्रकार के विविध विचार करता हुआ
मन में अनुचित इच्छा भरकर खड़ा रहा । उसे देखकर अस्खलित शीलवाली सीता ने
अपने अश्रु पोछ लिये और कहा कि इस आसन पर आप आसीन हो जायें । (और एक
आसन डाल दिया ।)

सीता ने उनका स्वागत करके एक वंत्रासन डालकर उमपर आसीन होने को कहा। तब अपने बड़े निंदड को पाश्व में रखकर वह कपटी सन्यासी उस सुन्दर पर्णशाला में बैठ गया। उस समय—

पर्वत और वृक्ष धरथरा उठे। कठोर पापकर्म करनेवाले उस राक्षस की देखकर पक्षी भी मौन हो रहे। मृग भयभीत हुए। सर्प अपने फन को समेटकर कही छिप गये।

आसन पर बैठने के पश्चात् उसने (सीता से) प्रश्न किया—यह कौन-सा स्थान है? यहाँ निवास करनेवाले तपस्वी कौन है? इसके उत्तर में विशाल नयनोंवाली वह देवी, यह नोचती हुई कि यह कोई निष्कपट सन्यासी है, जो इस स्थान के लिए अजनवी है, कहने लगी—

हे महात्मा! दशरथ के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न उन प्रभु का नाम आपने सुना होगा, जो उत्तम कुल-जात अपनी माता की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने भाई के साथ विना किसी दुख के इस स्थान में आकर रहते हैं।

फिर रावण ने प्रश्न किया मैंने (यह समाचार) सुना है, किन्तु उन्हें (अर्थात्, गम को) मैंने देखा नहीं है। गगा के समृद्ध जल से मिञ्चित (कोशल) देश की एकवार गया हूँ। नील कुवलय और वरछे के जैसे नयनोंवाली तुम किनकी सुपुत्री हो, जो अपने अमूल्य समय को इस अरण्य में व्यतीत कर रही हो?

तब कलकहीन शीलवती उस (सीता) देवी ने उत्तर दिया—अनघ मार्ग पर चलनेवाले हैं यतिवर। मैं उन जनक की पुत्री हूँ, जिनका मन आप (जैसे मुनियो) के अतिरिक्त अन्य देवता का ध्यान भी नहीं करता। मेरा नाम जानकी है। मैं कावुत्थ की पत्नी हूँ।

फिर, उत्तम आभरण-भूषित सीता ने पूछा—आप अल्पत वृद्ध हैं। कर्मभोग से मुक्ति पाने की इच्छा रखनेवाले आप कहाँ से इस समय, इस कठोर वन-मार्ग को पार करके आये हैं?

तब रावण कहने लगा (ऐसा एक व्यक्ति है), जो इन्ड का भी इन्द्र है (अर्थात्, इन्ड से भी बढ़कर प्रभावशाली) (चित्र में) अक्रित करने के लिए असाध्य साँदर्य से युक्त है। चतुर्मुख (व्रह्ण) के वश में उत्पन्न है, स्वर्ग-सहित सब लोकों पर शासन करनेवाला है और जिसकी जिहा वेदों के मत्रों का आवास है।

जो ऐसी शक्तिवाला है कि उसने पूर्वकाल में शिवजी के विनाशभूत महान् कैलामगिरि को जड़-सहित उखाड़ लिया था। जिसको मुजाएँ ऐसी हैं कि (उन मुजाओं ने) दिशाओं को वहन करनेवाले गजों पर आघात करके उनके दॱ्तों को चूर-चूर कर दिया था।

जिसके द्वार के रक्षक स्वयं देवता है। जिसकी महिमा का गान करने की शक्ति शब्दों में नहीं है। जिसके अधीन कल्पतरु आदि देवलोक की सब विभूतियाँ हैं। जिसका सुन्दर निवासस्थान गम्भीर समुद्र ने आवृत स्वर्गमय लका नगरी है।

जिसके वैभव से आकृष्ट होकर सुन्दर मन्दिराम से युक्त तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ

स्वर्गलोक को छोड़कर (उसकी लका मे) आ गई हैं और (उसकी सेवा मे रहकर) उसके पानदान उठाना, (उसके) पैर सहलाना, उसकी पादरक्षा लाना इत्यादि कार्य करती रहती हैं ।

चन्द्रमा और सूर्य, उसके मन को देखकर (उसके अनुसार) सचरण करते हैं । दिव्यकाति से युक्त इद्र आदि देवता, इस लोक मे स्थित उसके मेघस्पर्शी प्रामाण की रखवाली करते हैं ।

इस धरती पर स्थित उसकी उस लकापुरी मे, जो स्वर्णमय अमरावती, मनोहर नागलोक की राजधानी और इस विशाल भूलोक के मब नगरो से बढ़कर सुन्दर है, रहने-वाली सब वस्तुएँ दोषरहित हैं ।

कमलभव (ब्रह्मा) के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह अनन्त आयुवाला है । वह अपने विशाल कर मे, अर्धाङ्ग मे अपनी ली को धारण करनेवाले (शिवजी) के द्वारा प्रदत्त करवाल रखता है । उसने सब ग्रहो को कारागार मे बन्दी बना रखा है । वह सब गुणो में महान् है ।

वह क्रूरता से रहित सदाचरणवाला है । विस्तृत शास्त्र-ज्ञान से युक्त है । तटस्थ स्वभाववाला है (अर्थात्, पक्षपात से हीन बुद्धिवाला है) । उसका यौवन ऐसा है कि उसे देखकर मन्मथ भी (आश्चर्य से) स्तव्य रह जायें । सब लोको के निवासी जिन त्रिदेवों को अपने देवता मानते हैं, उन (त्रिमूर्तियो) की समस्त शक्ति से वह सपन्न है ।

मब लोको मे रहनेवाली असर्थ्य सुन्दरियाँ उसकी कृपा को प्राप्त करने की लालसा रखती हैं । उसका ध्यान करती हुई वे सुन्दरियाँ कृश होती रहती हैं । तो भी वह उन सब की उपेक्षा करके अपने हृदय को सुग्ध करनेवाली एक रमणी को खोज रहा है ।

इस प्रकार के पुरुष द्वारा शासित उस वैभव-पूर्ण नगरी मे कुछ दिन निवास करने की इच्छा से मै वहाँ गया । दीर्घकाल तक वही रह गया । अब उस (पुरुष) से दूर होने की इच्छा न होते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार वहाँ से चलकर इस स्थान मे आया हूँ ।—यो उस मायावी ने कहा ।

तब सीता ने उस कपट-सन्यासी से पूछा— अपने शरीर को भी भार माननेवाले हे सुनि श्रेष्ठ ! बेदो तथा उन वेदों के ज्ञाताओ की कृपा की कामना न करके, लालच के साथ प्राणियों को खानेवाले उन क्रूरकर्मा राज्यमो के नगर मे जाकर आप क्यों रहे ?

अरण्य मे स्थित महातपस्थियो के समीप जाकर आप नहीं रहे, जल-सपत्ति से परिपूर्ण देशो मे निवास करनेवाले पवित्र स्वभाववालो के ग्रामो मे जाकर भी आप नहीं रहे । किन्तु, धर्म का स्मरण तक नहीं करनेवाले राज्यसो के मध्य जाकर रहे । यहे आपने क्या किया ?—इस प्रकार सीता ने कहा ।

उस मर्यादाहीन (अर्थात्, धर्म की मर्यादा से परे रहनेवाले) ने यौवनवती देवी के कथन को सुना और उनकी निष्कपटता को देखा, जो यह कहते हुए भी कि वे राज्यम कठोर नेत्रवाले और भयकर खड़गवाले हैं—भयविहल हो रही थी । फिर यो उत्तर दिया— है चन्द्रमुखि । राज्यम देवताओ के समान क्रूर नहीं है । हम जैसे व्यक्तियो के लिए वे अच्छे ही हैं ।

उमके यह कहने पर सुन्दर आभरण-भूषित सीता यह न जानने से कि माया में चहुर राज्ञन कामस्थपी है उमपर कुछ सदेह न करती हुई बोली— पापियों से स्नेह करनेवाले लोग पर्वत्र नहीं होते । विचार करने पर यही कहना पड़ेगा कि वे भी (अर्थात् , पापियों से स्नेह रखनेवाले भी) उम पाप के भागी होते हैं ।

तब रावण ने यह आशका करके सीता कदाचित् उसपर सदेह कर रही है, उस सदेह को दूर करने के विचार से दूसरे दृग से कहा कि तीनों लोकों के विवेकी पुरुषों के लिए उन वलशाली राज्ञियों के स्वभाव के अनुकूल रहने के अतिरिक्त अन्य क्या आचरण सभव हैं सकता है ?

(इमरों की) मनोदशा को पहचाननेवाले उस मायावी के यह कहने पर सद्गुणों में बड़ी हुई दबी ने कहा— वर्म के रक्षक उदार गुणवाले वे (रामचन्द्र) जबतक इस अरण्य में तपस्नाधना करते रहेंगे, तबतक पाप-कर्म से जीनेवाले राज्ञस अपने वधु-सहित मर मिटेंगे । उमके पश्चात् समार के कष्ट भी मिट जायेंगे ।

हरिण-समान उस सीता के यह कहते ही वह (रावण) बोल उठा— हे मीन-जैसे चमकते नयनोवाली । यदि मनुष्य, राज्ञियों का समूल नाश करनेवाले हों तो (इसका अर्थ यह हुआ कि) एक छोटा खरगोश हाथियों के झुड़ को मार देगा और एक हिरण का बचा बक नखोवाले मिह को मार देगा ।

तब सीता ने कहा— घनीभूत विद्युत-पुज-जैसे केशोवाले विराध तथा क्रोध के ताप में भरे मनवाले विजयी खर आदि राज्ञियों के (राम हाथों) मरने का समाचार कदाचित् आपने नहीं सुना है । यह कहकर राम को उस समय जो क्लेश उठाना पड़ा था, उसका स्मरण करके वह देवी आँखों से अश्रु की वर्षा करने लगा ।

फिर, आगे उन देवी ने कहा— आप कल ही देखेगे कि प्रतापी सिंह-सदृश मेरे प्रसु से लका के निवासी अपने कुल-सहित कैसे मिटते हैं और देवी की उन्नति कैसे होती है । क्या अवारणीय वर्म को पाप जीत सकता है ? आप, दोपहीन मुनिवर क्या यह नहीं जानते ?

वह रावण, जिसका मांसल शरीर (सीताजी की) मधुमिश्रित अमृत-जैसी अति मृदुल वाणी के उमके कानों में पड़ने से फूल उठा था, अब इस वचन को सुनकर कि मानव अधिक वलवान् हैं, अभिमान के उमड़ने से क्रोध से भर गया ।

उम क्रोधी ने कहा— एक मनुष्य ने (अर्थात् , राम ने) धनुर्वल में छुट्र उन राज्ञियों को मारा । यदि हम इन वात की वडाई करती हों, तो कल ही तुम इसका परिणाम देखोगी कि (रावण की) वीम सुजाओं की हवा-मात्र लगने से वह मनुष्य (अर्थात् , रामचन्द्र) सेमर की हड्डी के जैसे उड़ जायगा ।

निरर्थक वचन कहनेवाली है सुर्यो । यदि मेर पर्वत को उखाड़ना हो, ब्रह्माड के खापर को तोड़ देना हो, मसुद्र के जल को बालोडित करना हो, अथवा पृथ्वी को उठा लेना हो, उस प्रकार के अनेक कार्य करने हो, तो भी रावण के लिए ये सब सुलभ हैं । उसके लिए कौन-मा कार्य कठिन हो सकता है ? तुमने क्या समझेकर ये बातें कहीं हैं ?

इस समय सीता के मन में मदेह उत्पन्न हुआ कि यह कर्म के द्वन्द्व से युक्त मुनि

नहीं है। फिर, यह सोचती हुई खड़ी रही कि यह कौन हो सकता है? इतने में वह कपट सन्धासी ऐसा बन गया जैसा कोई विषधर कालसप क्रोधानल से उत्तम होकर अपना फन फैलाकर खड़ा हो गया हो।

(राम के वियोग से) पहले से ही अल्पन्त विषण्ण वह देवी, इस समय जिस प्रकार के दुख में निमग्न हुई, यदि उसके बारे में विचार करे, तो विदित होगा कि इससे बढ़कर अन्य कोई कही दुख हो ही नहीं सकता। उन देवी के पास ऐसा कोई शब्द नहीं रहा, जिसे वे धीरज के साथ उम राक्षस को कह सकें। उनसे कोई काम भी करते नहीं बनता था। वे इस प्रकार विकपित हुईं, जिस प्रकार यम के आने पर प्राण काँपने लगते हैं।

तब रावण ने कहा—देवता लोग भी मेरी सेवा करते हैं। ऐसे मेरे पराक्रम को तुमने नहीं जाना और (तुमने) मिट्टी के कीड़े-जैसे जीनेवाले मनुष्य को बलवान् कहा। तुम स्त्री हो, अतः वच गई, नहीं तो मैं तुमको पीसकर खा डालता। पर यदि वैसा करने का विचार भी करूँ, तो मेरे प्राण मिट जायेंगे—(अर्थात्, तुम्हे मार डालूँगा, तो तुम्हारे वियोग मे मै भी मर जाऊँगा, अतः तुम्हें नहीं मारूँगा)।

हे हसिनि! भयविकपित मत होओ। जो मेरे सिर इसके पहले किसी के सामने नहीं भुक्त, उनपर बारी-बारी सं, मुकुट के समान तुम्हे बहन करके मैं आनंदित होऊँगा। असख्य आभरणों से भूषित देव-सुन्दरियाँ तुम्हारी चरण-सेवा करेंगी। यो तुम चतुर्दश भुवन की सम्राज्ञी बनकर रहेगी।

ये वचन सुनते ही सीता ने झट अपने कर-पल्लवों से कानों को बन्द कर लिया। फिर कहा—अरे राक्षस! मनोहर तथा भयकर धनुष को धारण करनेवाले उनके कर, तथा विजय से शोभायमान काकुस्थ के प्रति अनन्य प्रेम तथा पातिव्रत्य रखनेवाली मेरे प्रति तू ने ससार के उत्तम धर्म की उन्नति के लिए प्रज्वलित वहि में पवित्र ऋषियों के द्वारा देने योग्य हवि को खाने की इच्छा करनेवाले कुत्ते-जैसे (होकर), क्या कहा?

धाम की नोक पर रखनेवाली ओस की बूँद के जैसे क्षण-भगुर जो प्राण हैं, उनके खो जाने के भय से क्या मैं उत्तम कुल के योग्य आचरण को त्याग दूँगी? यह सभव नहीं। यदि तू अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता है, तो विजली के जैसे चमकते हुए वज्र के जैसे धोष करनेवाले तीक्ष्ण (राम के) वाण के लगने के पूर्व ही यहाँ से भाग जा।

सीता का यह वचन सुनकर उस क्रूर राक्षस ने कहा—दिशाओं को बहन करनेवाले हाथियों के अतिवृद्ध दाँतों को तोड़नेवाले मेरे बक्ष पर यदि तुम्हारे पति का वाण आकर लगेगा, तो वह पर्वत पर गिरी हुई पुष्पमाला-जैसा जान पड़ेगा।

लहमी के लिए भी लहमी होनेवाली है सुटरि। तुम्हारे प्रति उत्त्यन्त प्रेम की व्याधि के कारण मेरा शरीर दुर्बल हो रहा है। मुझे प्राण-दान करो और स्वर्गवासिनी घने केशोवाली अप्सराओं के लिए भी दुर्लभ पट को प्राप्त करो—यों कहकर भूधर से भी दृढ़ भुजावाले रावण ने उम्म नमस्कार किया।

ज्योहि वह (रावण) सीता के चरणों को प्रणाम करने के लिए भुका त्याही

कृष्ण की मूर्त्ति और अनुपम सुन्दरी वह देवी, इस प्रकार व्याकुल होकर जैसे मर्मस्थान में रक्षाचित् खड़ग धृत गया हो, हे प्रभु ! हे अनुज ! कहकर पुकार उठी ।

उस समय, उस क्रूर (रावण) ने, पहले दिये गये अपने इस शाप^१ का स्मरण करके कि उसे परनारी का सर्प (उसकी इच्छा के विना) नहीं करना चाहिए, अपनी स्त्रम-जैसी बलवान् एवं ऊँची भुजाओं से उस आश्रम के स्थान को ही नीचे से एक योजन पर्यन्त खोटकर उठा लिया ।

(इस प्रकार सीता को उसके आश्रम के माथ) उठाकर उसने अपने रथ पर रख लिया । सुन्दर कक्ष-भूषित सीता ने रावण का यह कार्य देखा । किन्तु, अपने प्राणों (के समान प्रभु) को नहीं देखा । वह इस प्रकार मूर्च्छित हो गिर पड़ी जैसे मेघों से छूटकर कोई विजली धरती पर आ गिरी हो । तब उस (रावण) ने आकाश-मार्ग में जाने का विचार किया । (१—७५)

आध्यात्म ४

जटायु-मरण पटल

रावण ने अपने सारथी से कहा कि रथ आगे बढ़ाओ । उस कथन को सुनकर सीता अभिन में पड़ी हुई पुष्प-लता के समान तड़पने लगी । वह नीचे गिरकर लोटती । विह्ल होकर कॉपती । मूर्च्छित होती । पीड़ा से छटपटा उठती । ‘हे धर्म देवता ! इस विदा से शीघ्र मुझे बचाओ’—यो प्रार्थना करती ।

(सीता कहती—) हे पर्वतो ! हे वृक्षो ! हे मयूरो ! हे कोयलो ! हे हरिणो ! हे हरिणियो ! हे हाथियो ! हे करिणियो ! हे मेरे कातर प्राणो ! तुम मेरे प्रभु के निकट शीघ्र जाओ और उन अच्चल बलवान् वीर से मेरा हाल कहो ।

हे मेघो ! हे उद्यानो ! हे वनदेवताओ । उत्तम वीर, वे मेरे प्रभु कहा हैं ? क्या तुम जानते हो ? यदि तुम मुझे अभयदान दो, तो मैं जीवित रह सकती हूँ—इससे तुम्हारी क्या हानि हो सकती है ?

हे वरद ! हे अनुज ! क्या आप (दोनों), कालमेघ के समान शरवर्षा करते हुए और राक्षस आदि क्रूर जनों का विनाश करते हुए यहाँ नहीं आयेंगे ? हे निष्कलक भरत ! हे अनुज (शत्रुघ्न) ! क्या तुम अपयश के भागी बनोगे ?

१ यह क्या प्रसिद्ध है कि एक बार रमा अपने प्रियतम कुवेर के पुत्र नक्षकूवर से मिलने के लिए जा रहा था । मार्ण में रावण ने बलात् उसको पकड़ लिया । तब रमा और नक्षकूवर से रावण को यह जाप मिला कि यदि आगे कभी वह किसी स्त्री की इच्छा के विन्दु उसका सर्पण करेगा, तो उसके सिर के ढुकड़े-ढुकड़े हो जायेंग और पतिव्रता स्त्री के पातिव्रत्य कर्ता अभिन में वह जल जायगा । उसी शाप के गहने ने रावण ने सीता का स्पर्श नहीं किया ।—अनु०

हे गोदावरि । तू शीतल है । तू द्रवीभूत है । तू माता-समान है । तेरा अन्त-करण स्वच्छ है । तू दौड़कर जा और कुछ न कहने पर भी (दर्शन मात्र से मन की बात) समझने की शक्ति रखनेवाले मेरे प्रभु के निकट पहुँच जा और सुझ अभागिन का समाचार उन्हे दे ।

समुख दिखनेवाले हैं निर्भरो । पर्वत-कदराओं में निवास करनेवाले सिंहो । तुम (मेरे प्रभु को) यह समाचार देकर उनसे धरती के साथ सुझे उठा ले जानेवाले इस रावण की बीस भुजाओं और उसके दस शिरों की विघ्वस्त कराके आर्नादित होओ ।

इस प्रकार के विविध वचन कहकर मुक्त होने की इच्छा से रोनेवाली सीता को देखकर, अपने जीवन के दिनों को व्यर्थ करनेवाले उस रावण ने कहा—हे स्वर्णहारों से भूषित सयुत स्तनोवाली । स्वर्णमय कर्णभरणों से शोभायमान ह सुन्दरि । वे मनुष्य क्या युद्ध में सुझे मारकर तुम्हे मुक्त कर सकेंगे । और, अपने बलिष्ठ हाथों से ताली बजाकर ठाकर हँस पड़ा ।

उसके यों कहने पर सीता ने कहा—तूने माया से एक कपट-हरिण बनाया । तेरे प्राणों के लिए यम-सदृश प्रभु को तूने आश्रम से बाहर भेजने का उपाय किया । फिर, आश्रम से छुसकर सुझे हरकर ले जा रहा है । यदि उनसे (अर्थात्, राम से) युद्ध करने की शक्ति तुम्हसे है, तो अपना रथ आगे न बढ़ा ।

फिर सीता ने कहा—यदि तुम वीर होते तो, क्या यह सुनने के पश्चात् भी कि तुम्हारे कुल के राक्षसों को क्षणकाल स्मृ मारनेवाले और तुम्हारी बहन की नाक-कान काटनेवाले मनुष्य अरण्य में ही हैं । (उन मनुष्यों के साथ युद्ध कर उन्हें मारे बिना), इस प्रकार माया करके मेरा अपहरण करते । यह भय से उत्पन्न तुम्हारे मन की कायरता ही तो है ।

सीता के यह कहने पर रावण ने उससे कहा—हे नारीरत्न । सुनो । बलहीन शरीरवाले ज्ञुद मनुष्यों के साथ यदि मैं युद्ध करूँ तो ललाट-नेत्र के पर्वत (नहिमालय) को उठानेवाली मेरी भुजाओं का अपमान होगा । उस अपवाद की अपेक्षा ऐसी माया ही फलप्रद है न ।

मनोहर नयनोवाली प्रतिमासमान सुन्दर देवी ने वह वचन सुनकर कहा—अपने कुल के जो शत्रु हैं, उनके सम्मुख जाना अपमान है । उनके साथ करबाल लेकर युद्ध करना अपमान है । किन्तु, पतित्रताओं को धोखा देना अपमान नहीं है । अहो । निष्करुण राक्षसों के लिए अपमान क्या है । अपयश क्या है ।

इस समय, ‘अर । तू कहाँ जा रहा है । ठहर, ठहर’—यो गर्जन करता हुआ, आँखों से क्रोध की अश्व उगलता हुआ, विद्युत् के जैसे चमकती हुई चोच के साथ जटायु ऐसा आया, मानों मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत ही गगन-मार्ग से उड़कर आ गया हो ।

उसके दोनों पर्खों के हिलने से ऐसा प्रभजन उठा कि उससे बड़े-बड़े पर्वत अपने स्थान से उखड़कर उटते और एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर होकर धूल बनकर उड़ गये । समुद्र का जल गगन में भर गया और जल और थल एकाकार हो गये । ऐसा लगता था, जैसे प्रलयकालीन पवन विश्व-भर में फैल रहा हो ।

बृक्ष अपनी सब शाखाओं के साथ धरती पर लेवे हो गिर गये । गगन के मंघ, अंतरिक्ष में बहुत ऊपर कहीं उड़ गये । सर्प, यह सोचकर कि उत्र रूप गरुड ही नभोमार्ग में आ रहा है, अपने फन समेटकर छिप गये ।

जटायु के दोनों पखों की हवा के वेग के कारण, हाथी, शरभ आदि मृग, बृक्ष, कुज, शिलाएँ तथा सब अरण्य उड़कर अंतरिक्ष में भर गये । जिससे अंतरिक्ष और अरण्य दोनों स्थानात्मिति-से हो गये ।

जटायु अपने विशाल तथा बलवान् पखों को फैलाये, यह कहता हुआ आया कि पुर्स्योत्तम (राम) की देवी को भूखड़-महित ऊँचे रथ पर रखे, तू कहाँ ले जा रहा है ? मैं गगन को और सब दिशाओं को (अपने पखों से) आवृत कर ढूँगा (जिससे तेरे जाने का मार्ग नहीं रहे) ।

गुणहीन उम (रावण) के यत्रमय रथ की गति को रोकने के विचार से, सिंदूर जैसे लाल पैर और सिर एवं सध्याकाश-जैसे कठ के साथ, कैलास पर्वत के जैसे आकार-वाला गृद्धराज (जटायु) वा पहुँचा ।

उम समय वहाँ आकर उस (जटायु) ने उस स्त्री-रत्न को देखकर कहा—डरा नहीं । फिर यह जानकर कि (रावण ने सीता का) स्पर्श नहीं किया है, अपने उमड़ते कोघ को किंचित् शान्त करके रावण से कहने लगा—

तू मिट गया । तू ने अपने वन्धुवर्ग-महित, अपने जीवन को जला दिया । अरे तू यह क्या करने लगा है ? यह जान ले कि तू मर गया । इस देवी को छोड़कर चला जा । यदि ऐसा करेगा, तभी जीवित रह सकेगा ।

हे मूढ ! तूने अपराध किया है । विश्व की माता-समान देवी को तूने अपने मन में क्या समझा है ? हे विवेकहीन ! अब तेरा सहारा कौन है ? (अर्थात्, विश्व की माता के प्रति अपराध करने पर तेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं रहा ।)

हे राजन् । क्या तू नहीं जानता कि राम ने तेरे कुलवालों के साथ घोर युद्ध करके उनके प्राणों को यमराज का सुन्दर भोजन बनाया था और यम ने हाथों में भर-भर-कर नवीन भोजन पाकर बानन्त उठाया था ?

तुम को मारने के लिए दौड़कर आनेवाले कोघी तथा घोर मत्तगज पर तू मिट्टी का ढेला फेंकना चाहता है । धांर विप को खाकर, भले ही तू यह न जाने कि वह (विष) प्राणहारी है, फिर भी क्या अपने प्राणों को स्थिर रख सकेगा ?

तीनों लोकों के निवासी, देवेंद्र, त्रिमूर्ति, यम आदि सब राम के आगे ऐसे रहते हैं जैसे व्याघ्र के समुख हरिण हों । अति उत्तम धनुर्धारी राम को जीतने की शक्ति किसमें है ?

इम समार में अपने कुल के साथ विनाश पाने का इससे बढ़कर अन्य कुछ उपाय नहीं हैं । इतना ही नहीं । दूसरे जन्म में भी (यह कार्य) घोर नरक देनेवाला है । तूने इस कार्य को अपने किम जन्म के लिए सुखप्रद समझा है ?

ये मानव (गम और लक्ष्मण) त्रिदेवों में प्रधान तथा (सारी सृष्टि के) आदि-

कारणभूत परमतत्त्व (अर्थात्, विष्णु) ही हैं। अतः, इनकी समता किस देवता के साथ की जा सकती है? तुम्हें विवेक नहीं है। अतः, पागल होकर तूने यह अपराध किया है।

उस अविनाशी तत्त्व (अर्थात्, रामचन्द्र) के धनुष से शर के निकलते ही त्रिपुरो को जलानेवाले वृषभारूढ़ शिवजी की कृपा से प्राप्त तेरे वरदान और तेरी सारी विद्याएँ विनष्ट हो जायेंगी।

स्वर्ग के राज्य में आनन्द पानेवाले चक्रवर्ती (दशरथ) के पुत्र (राम) अपना धनुष झुकाये हुए तेरे समुख आ जायें, तो उन्हें रोकना असम्भव होगा। मैं इस सुन्दर ललाट-वाली देवी को उनके आवास में पहुँचा दूँगा। तू शीघ्र यहाँ से भाग जा। जटायु के इस प्रकार कहते ही—

रावण अपनी उज्ज्वल आँखों से चिनगारियाँ उगलने लगा। ओंठ चबाते हुए उसने जटायु को देखकर कहा—अब ज्यादा वक-वक मत कर। अब शीघ्र तू उन मानवों को दिखा।

समुख आनेवाले ऐ गिद्ध। मेरे शर से तेरी छाती में बड़ा छेद न हो जाय, इसलिए तू अभी यहाँ से हट जा। गरम किये हुए लोहे में पड़ा हुआ जल उससे कदाचित् निकल भी आ जाये, किन्तु मेरे हाथों में पड़ी इद्धु-समान बोलीबाली यह सुन्दरी मुक्त नहीं हो सकती, तू यह जान ले।

इस समय जटायु ने हसिनी-तुल्य मीता को दुगुने डर से काँपती हुई देखकर कहा—हे माता! इस राक्षस की देह अभी दुकडे-दुकडे हो जायगी। अतः, यह सोचकर कि प्रभु (राम), धनुष लेकर नहीं आये हैं, तुम चिंतित मत होओ।

तुम व्याकुल होकर मुक्ता के समान अश्रुओं को अपने मुख पर से स्तन-तटों पर गिराती हुई दुःख मत करो। इसके दस शिरों को ताढ़ के फलों के गुच्छे के समान मैं तोड़ दूँगा और इसके द्वारा वशीभूत दसों दिशाओं को (उन शिरों को) मैं बलि के रूप में अर्पण करूँगा।

फिर जटायु, रावण के शिरों की पक्कि को गरजते सुँह से काटकर गिराने के लिए अपने पखों से वज्र की ध्वनि उत्पन्न करते हुए शीघ्र उड़कर आया और रावण की मनोहर, विशाल, बीणा के चित्र से युक्त ध्वजा को तोड़कर देवों के आशीर्वाद का पात्र बना।

रावण, जो पहले कभी इस प्रकार के अपमान का भाजन नहीं बना था, उस समय-अपनी आँखों को पिघली लाख जैसे लाल करके ठाकर हँस पड़ा और ससलोंकों को भयभीत करते हुए पर्वत के जैसे अपने धनुष को एवं अपनी भौंहों को झुका लिया।

अर्धचन्द्र के जैसे वक्र खड़ग-दत्तोंवाले उस (रावण) के शरों की धोर वर्षा जटायु पर होने लगी। जटायु ने कुछ शरों को अपने दृढ़ नखों से तोड़ दिया, कुछ शरों को यम को भी भयभीत करनेवाली चोच से छिन्न-भिन्न कर दिया।

विशाल और भयकर आँखोंवाले असर्व शरों को एक साथ मिटानेवाले गरुड़ के समान जटायु, (रावण के) दशों शिरों पर अपनी चोंच नामक चक्रायुध को बढ़ाकर, उसके पुनः अपने धनुष को झुकाने के पूर्व ही उसके निकट पहुँच गया और उसके कुड़लों को छीनकर उड़ गया।

तब वड़ा गर्जन करता हुआ रावण ने, चौदह वाणी को जटायु के विशाल बक्ष पर इस प्रकार छोड़ा कि वे (वाण) उसके बक्ष को भेदकर पार हो गये । फिर, उसपर अनेक वाण और छोड़े । देवता, यह सोचकर कि जटायु अब गिर गया, भय-कपित होकर उष्ण निःश्वास भरने लगे ।

वह गृद्धराज अपने धारों से रक्त की अविरल धारा बहाता हुआ उस मेघ के जैसा लगता था, जो धरती पर खर आदि राक्षसों के रक्त-प्रवाह को समुद्र समझकर (उसे) पीने के पश्चात् उस (रक्त-रूपी) जल को वरसाकर इत्येत वर्ण हो रहा हो ।

उस प्रकार का जटायु कुद्ध हुआ । निःश्वास भरा । रावण की वीस भुजाओं के मध्य झपटा । अपनी चौंच से मारा । नखों से खरोंचा । अपने परखों से आधात किया और उस (रावण) के मुक्ताहार-भूषित बक्ष पर के कवच के वंधनों को ढीला कर दिया ।

यो अपने कवच को ढीला करनेवाले जटायु पर रावण ने एक सौ वाण चलाये । तब देवता भी भय-विकपित हुए । इतने में जटायु ने उछलकर रावण के धनुष को चौंच से पकड़कर छीन लिया । यह देखकर देवता हर्षध्वनि कर उठे ।

उत्त्वल रजताचल (हिमाचल) को उसपर निवास करनेवाले शिवजी-सहित अपने वलवान् कधों पर उठानेवाले उस (रावण) के धनुष को जटायु ने अपनी चौंच से पकड़कर खीच लिया और ऊपर उड़ा, तो वह इन्द्र-धनुष के साथ गगन में उड़नेवाले मेघ के समान लगा । उस (जटायु) के बल का वर्णन कौन कर सकता है ?

जिस रावण ने (युद्ध में) कभी अपनी पीठ न दिखानेवाले सहस्रनेत्र (इन्द्र) को भी अपने शन्त्र में पीड़ित किया था और भगा दिया था, उस (रावण) के धनुष को उस जटायु ने अपनी चौंच से छीन लिया और अपने पैरों से तोड़ दिया । जो (जटायु) रक्तवर्ण देव (शिव) के धनुष को अपने हाथों से तोड़ देनेवाले (राम) का सहायक था और उनके पिता का प्रिय मित्र था ।

विश्वकटक रावण, अपने बल के योग्य उम धनुष को टूटते हुए देखकर कुद्ध हुआ और अपने पराक्रम में कुठित न होकर, विषकठ (शिव) के त्रिपुर-दाह करनेवाले अनुपम शर के समान (भयकर) शूल को उठाकर जटायु पर प्रयुक्त किया ।

तब गृद्धराज ने, इस विचार से कि वह (रावण) कहीं सुझे शक्तिहीन न समझे, वह कहते हुए कि, देख मेरी शक्ति को, उस (रावण के) त्रिशूल को अपनी छाती पर गोक लिया । तब स्वर्ग के निवासी (देवता) यह सोचकर कि इस प्रकार का कार्य करनेवाला पराक्रमी द्रूष्ण कोई नहीं है, अदृश्य खड़े रहकर ही अपनी भुजाएँ ठोकने लगे ।

वह त्रिशूल (जटायु के बक्ष से टकराकर) इस प्रकार लौट आया, जिस प्रकार, धन पर लक्ष्य रखनेवाली वारनारियों की सगति की कामना करनेवाले निर्धन पुरुष (उन वारनारियों के पास में) लौट आते हैं, मधुर दृष्टि रखनेवाली गृहिणी-विहीन^१ गृहों में

^१ अनिधि उनी घर में आतिथ्य पाना चाहते हैं, जहाँ गृहिणी मीठी वाणी से उनका स्वागत-सत्कार करती है, अन्यथा अनिधि लौट जाते हैं । — अनु०

जानेवाले अतिथिजन (आतिथ्य-सत्कार न पाकर) लौट आते हैं और आत्मदर्शी योगियों के पास जानेवाली मनोहर कामिनियाँ (विफल होकर) लौट आती हैं।

शूल के व्यर्थ हो जाने पर रावण शीघ्र ही कोई दूसरा शस्त्र उठाकर प्रयुक्त करे, इसके पूर्व ही जटायु ने, रावण के, गगन को आवृत करनेवाले तथा ऊँचे अश्व-जुते रथ पर स्थित सारथि का शिर काट दिया और पतिप्रता-रत्न (सीता) पर आसक्त होनेवाले उस रावण के मुख पर, उसे दुःखी करते हुए, (उस शिर को) फेंक दिया।

इस प्रकार (शिर को) फेंकनेवाले के कार्य को देखकर रावण ने उस (जटायु) की हृदय की धीरता को समझ लिया और अत्यन्त कुद्ध होकर अपनी अभ्यस्त (अर्थात्, जिसका प्रयोग करने का वह अच्छा अभ्यासी था ऐसी) स्वर्णगदा को उठाकर ऐसा आधात किया कि अग्नि की ज्वालाएँ निकल पड़ी। (उस आधात से) गृद्धराज धरती पर एक बड़ा पर्वत-जैसा आ गिरा।

ज्योही जटायु धरती पर गिरा, त्योही रावण उत्तम अश्वों से युक्त अपने रथ को इतने वेग से चलाता हुआ कि (किसी की) दृष्टि भी उसका पीछा न कर सके, गगन में उड़ गया। तब मृदु स्वभाववाली सीता देवी इस प्रकार तडप उठी, जैसे किसी के घाव में अग्निकण प्रविष्ट हो गया हो।

कोमल पल्लव-समान उस (सीता) देवी को शोक-विहळ होती हुई देखकर जटायु कह उठा—हे हसिनि ! शोक में मत हूँनो। निर्मय रहो—और निःश्वास भरता हुआ वह उठा। फिर (रावण से) यह कहकर कि अरे ! अब तू बचकर कहाँ जायगा, उसके रथ पर मृपटा, जिसे देखकर देवता हर्ष-ध्वनि कर उठे।

इस प्रकार मृपटकर उस (रावण) की विविध रत्न-जटित गदा को छीनकर दूर फेंक दिया। अपनी चौंच-रूपी खड़ग को चला-चलाकर (रावण के) रथ में जुते अतिवेग-वान् सोलहों अश्वों को छिन्न-मिन्न करके विघ्नस्त कर दिया। वह दृश्य देखकर यम भी (भय से) हाथ कँपाता हुआ खड़ा रहा।

जटायु ने रावण के दृढ़ रथ को व्यस्त करने के पश्चात् उसके दृढ़ कधों से बँधे उन तूणीरों को, जो गगनोन्नत थे और धनुष के टूट जाने से युद्ध के लिए अनुपयोगी होकर लोभी के धन-कोष-जैसे लगते थे, अपने तीद्धन नखों से छीनकर फेंक दिया।

फिर, जटायु ने उसके वक्ष और कधों पर विच्चित्र ढग से आक्रमण करके अपने पखों से उसे मारा और चौंच मे काटा। तब रावण शक्तिहीन होकर मूर्छित हो गया और सिर झुकाये पड़ा रहा। उसे देखकर जटायु ने कहा—वस। इतनी ही तेरी शक्ति है ?

उस समय, साकार शक्ति-जैसे वरछे को धारण करनेवाला वह (रावण) कुद्ध हुआ और प्रयोग के योग्य अन्य कोई शस्त्र न देखकर, जटायु के प्राणों का तत्क्षण अन्त कर देने के विचार से (लक्ष्य से) न चूकनेवाले अपने करवाल को उठाकर ठीक से चलाया।

वह दिव्य करवाल किसी के लिए अवारणीय था और किसीका भी सिर काट सकता था। जटायु की आयु भी दीर्घ हो गई थी। अतः, कभी शक्तिहीन न होनेवाला जटायु, देवेंद्र के कुलिश-से आहत होकर पख-हीन होकर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पड़ा।

जटायु धरती पर गिरा। उसके पख विखरकर गिरे। देवता भय से भाग चले। मुनिगण आश्रयहीन से होकर विलाप करने लगे। वैकुंठ के निवासी (जटायु पर) स्वर्ण-वर्षा करने लगे। सीता (भय से) थरथरा उठी।

जटायु के आधात से जो (रावण) मूर्च्छित होकर लज्जित हुआ था, उसने अब अपनी हर्ष-ध्वनि से गगन-प्रदेश को भर दिया। जाल में फँसी हरिणी-जैसी सीता चिन्तामग्न होती, निःश्वास भरती, मूर्च्छित होती, कोई आश्रय न पाकर अवलंब से हीन लता के समान गिर पड़ती।

सीता यह सोचकर अपने साथी से वियुक्त क्रांची के समान रो पड़ी कि मेरी सहायता करने के लिए आया हुआ गृह्णराज भी मर मिटा। हाय। अब मेरी गति क्या होगी?

मूढ़ होकर मैंने अनुज के बच्चनों का तिरस्कार कर उसे शीघ्र (आश्रम से) भेज दिया था। अब मेरे लिए युद्ध करनेवाले जटायु के मर जाने से मैं स्तव्य हो गई हूँ। न जाने अब विविहमपर और क्या आपत्ति डालनेवाला है।

विपदा में पड़ी हुई मुझको देखकर जिस (जटायु) ने 'अभय' कहा था, ऐसा यह मद्गुण (जटायु) पराजित हो और नरक के योग्य (रावण) विजयी हो यह कैसी बात है? क्या पाप जीतेगा और वेद (अर्थात्, वेद-प्रदिपादित धर्म) हारेगा? क्या धर्म कही नहीं रहा? इस प्रकार वह विलाप करने लगी।

मुझ, निर्लज्ज नारी के बचन के कारण (आश्रम से) गये हुए हैं नरश्रेष्ठो। अनश्वर धर्ममार्ग पर चलनेवालों के लिए अवलब बना हुआ तथा आपके पिता का मित्र, जटायु, यहाँ पड़ा है। इसे देखने के लिए आइए—यों कहकर व्याकुल हो रोने लगी।

पातिन्द्रल की रक्षा करना मेरा धर्म है। किन्तु अकुंठित शक्तिवाले तथा युद्ध में निषुण मेरे प्रभु (राम) का धनुप अब अपयश का भाजन हो गया। मुझ-जैसी पापिन के जन्म से मेरे कुल की अपवश उत्पन्न हुआ। इस प्रकार सोचती हुई सीता शोकमग्न हुई।

हे प्रकाशमय स्वर्ग-लोक में भी अपना शासन-चक्र चलानेवाले (दशरथ)। क्या अब आप मद्धर्म के मार्ग पर चलनेवाले, मित्रता के योग्य, पवित्र कर्त्तव्य को पूरा करनेवाले अपने भाई (जटायु) को, उस (स्वर्ग) लोक में गले लगानेवाले हैं? यह कहकर वह मिसक-सिसककर रो पड़ी।

रावण ने, इस प्रकार विलपती हुई सीता की निस्सहाय दशा देखी और पखों के कट जाने से धरती पर पड़े हुए गृह्णराज को भी देखा। फिर, यह सोचकर कि अब यहाँ से हट जाना ही उचित है, रथ पर गखे हुए भूखड़ को सीता-सहित उठाकर अपने पुष्ट कधीं पर गख लिया और गगन-मार्ग में चल पड़ा।

गगन में उम क्रूर के गमन-वेग से वह पतिन्तता (सीता), जिनका मन और आँखें चकरा रही थीं प्रज्ञाहीन होकर, अपने को भी भूलकर भूमि पर गिर पड़ी।

रावण चला गया। जटायु मूर्च्छा से किंचित् ज्ञान पाकर, विशाल गगन में मायावी (रावण) का शीघ्रता से प्रस्थान देखता हुआ सोचने लगा—

पुत्र (अर्थात् , राम-लक्ष्मण) नहीं आये । जिस विधि ने अपनी पुत्रवधु की कठोर वेदना को शान्त करने का यश सुझको नहीं दिया, उसने धर्म की बाड़ को ही तोड़ दिया । अब न जाने, आगे क्या होनेवाला है ।

विजयशील (राम-लक्ष्मण) यदि यहाँ रहते, तो क्या विजली-जैसी सूखम कटिवाली एव स्वर्णककण-भूषित सीता की यह दशा होती । मैं नहीं जानता हूँ कि उन (राम और लक्ष्मण) को क्या हुआ है । क्या विमाता (कैकेयी) की बचना इस प्रकार समाप्त हो रही है ? (भाव यह है कि कैकेयी ने जो कार्य सोचा था, वह इस प्रकार पूरा हो रहा है) ।

आदिशेष के पर्यंक पर शयन करनेवाले अजन-वर्ण भगवान् नारायण ही राम होकर अवतीर्ण हुए हैं । अतः, क्रोधी तथा कूर राक्षस से वे (युद्ध में) परास्त नहीं हो सकते । अतएव, इस राक्षस ने माया करके इस प्रकार धोखा दिया है ।

मेरा तात (राम), राक्षस-कुल को जड़ से मिटा देगा और अपने इस अपयश को दूर करेगा । रावण कमलभव सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) के शाप से आक्रान्त है, यतः अर्य (राम) की देवी का स्पर्श करने से डरेगा ।

विशाल परखोवाला जटायु इस प्रकार अनेक बातों का विचार कर फिर सोचने लगा—अब सीता कठोर कारागार में बदी के रूप में रहेगी । भले ही मेरे युद्ध करने योग्य पख कट गये, किन्तु मीठी बोलीवाली सीता के पातिब्रत्य-रूपी पख नहीं कटेंगे ।

जटायु के पख, रक्त के प्रवाह में भीगकर शिथिल हो गये । उसके मन में बड़ी ख्लानि उत्पन्न हुई, क्योंकि लता-तुल्य कोमलांगी (सीता) को वह छुड़ा नहीं सका । साथ ही, (उसके मन में) कुमारों (अर्थात् , राम और लक्ष्मण) के प्रति प्रेम उमढ़ उठा । जिससे वह प्रज्ञा-रहित होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ ।

रावण सीता देवी को शीघ्र लका में ले गया और उन (सीता) की देह का स्पर्श करने से भयभीत होकर वहाँ के अशोक-वन में, शिशपावृक्ष के नीचे, विष के स्वभाववाली राक्षसियों के मध्य बदी बनाकर रखा ।

उस राक्षस का (अर्थात् , रावण का) वृत्तान्त हमने कहा । अब हम उस अनुज (लक्ष्मण) का वृत्तान्त कहेंगे, जो सीता की आज्ञा से, कि स्वर्ण-हिरण के पीछे गये हुए प्रभु की दशा को जाकर देखो, गया था ।

उसका मन इस व्यथा से अत्यधिक धड़क रहा था कि अनुपम सीता आश्रम में एकाकी रहती हैं । उस समय लक्ष्मण की दशा भरत की उस दशा-सी थी, जब वह (भरत) अयोध्या की रक्षा करना छोड़कर, रामचन्द्र को अयोध्या लौटा लाने के लिए अरण्य में गया था ।

स्वच्छ तरगों से भरे समुद्र में चलनेवाली नौका के नमान, लक्ष्मण अतिशीघ्र गया । महान् रक्त-कमल से युक्त विशाल कालमेघ-जैसे प्रभु को उसने देखा और उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनंदित हो उठीं ।

कालवर्ण प्रभु ने भी, जिनका हृदय इस विचार से व्याकुल हो रहा था कि

भयोत्पादक मारीच-ध्वनि के श्रवण से कलापी-तुल्य सीता देवी स्त्री-सुलभ अज्ञान के कारण कातर हो रही होगी, अपने अनुज को सम्मुख आते हुए देखा ।

तब रामचन्द्र ने सोचा—शिथिल मन और तन के साथ यह लद्धमण, उसके (अर्थात्, राम-लद्धमण के) वचन की उपेक्षा करके (माया-मृग के पीछे आकर) थक जाने-वाले मेरे निकट, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करके अकेले आ गया है । कदाचित् मायावी राज्ञम की दुःखजनक पुकार को सुनकर और उसे धोखा न समझकर सीता ने इसे कठोर आज्ञा दी है, इसीसे मेरी दशा को जानने लिए यह आया है ।

विधि-विधान को टालने का क्या उपाय हो सकता है ?—यों सोचते हुए वे खड़े थे कि अनुज (लद्धमण), सुन्दर धनुष को हाथ में रखे हुए उनके निकट आ पहुँचा और उनके सुन्दर चरणों पर नत हुआ । तब ज्येष्ठ ने उसे झट उठाकर विद्युत्-जैसे यजोपवीत से शोभायमान अपने बद्ध से लगा लिया । फिर, द्रवितमन हो उससे पूछा—हे भाई ! तुम क्या सोचकर यहाँ आये ? तब लद्धमण ने उत्तर दिया—

अलौकिक और अनुचित एक ध्वनि सुनाई पड़ी, जिससे भीत होकर उन्होंने (सीता ने) मुझे आज्ञा दी (कि मैं आपके निकट आऊँ) । तब मैंने उन्हें समझाया कि यह क्रूर राज्ञस की पुकार है । किन्तु, उस (मेरे) वचन की उपेक्षा करके अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने फिर कहा—यह क्या है, जानकर आओ । यहाँ मत खड़े रहो । दुवारा मेरे समझाने पर भी कुछ न मानकर, आपकी मुजा के प्रराक्रम को भी विस्मृत करके, वे अधिक कातर हो उठी ।

फिर, यह कहकर यदि तुम न जाकर यही खड़े रहोगे, तो मैं अग्नि मे जा गिरूँगी—अरण्य में दौड़ने लगूं । तब मैं भयभीत हुआ । सोचा कि ये (सीता) मुझे वचक समझ रही हैं । यदि मैं यही खड़ा रहूँगा, तो ये आत्महत्या किये बिना नहीं रहेंगी । इन्हे नहीं मरना चाहिए, यह धर्म-विरुद्ध होगा । इसलिए, मेरा यहाँ आना हुआ—इस प्रकार लद्धमण के कहने पर अमल प्रभु ने विचार किया—

वह (सीता) आत्महत्या किये बिना नहीं रहेगी । उसकी मृत्यु को रोकना इसके लिए (लद्धमण के लिए) असभव था और भयभीत हुई सीता इसके वचन भी नहीं मान सकी । अहो । रक्षा-हीन आश्रम में कोई विपदा हो सकती है । उसको रोकना असभव है । यह सब, हमें अलग करके, उस (सीता) को हरण कर ले जाने का उपाय करनेवाले मायावी राज्ञसों का कार्य है ।

फिर (राम ने) लद्धमण से कहा—यहाँ आने में तुम्हारा दोष कुछ नहो । उस मुख्या ने भ्रात और व्यथा से कातर होकर जो किया, उसीका यह परिणाम है । तुमने पहले ही समझकर कहा था वह मृग—मायामृग है । किन्तु, उसकी उपेक्षा कर मैंने जो कार्य करने का निश्चय किया, हाय । उसीसे यह द्वरा (परिणाम) हुआ ।—यो कहकर चिंता में निमग्न हो रहे ।

फिर, राम ने कहा—समय व्यतीत हो रहा है । अब यहाँ खड़े रहने से कुछ प्रयोजन नहीं । क्रौंची-जैसी उस (सीता) को जबतक मैं नहीं देखूँगा, तबतक मेरी व्यथा

नहीं मिटेगी, नहीं मिटेगी। और, त्वरित गति से दीर्घ मार्ग को पार करके, धनुष से निकले शर के समान चले और स्वर्ण-सद्वश सीता के आवासभूत मनोहर पर्णशाला में जा पहुँचे।

इस प्रकार, राम आश्रम में दौड़े आये। किन्तु, वहाँ फुलबारी के सघन पुष्पों से आभूषित कुतलोवाली (सीता) को न देखकर इस प्रकार स्तब्ध खड़े रहे, जिस प्रकार प्राण शरीर को छोड़कर बाहर जाकर फिर वापस लौट आये हों और अपने शरीर को न देखकर स्तब्ध खड़े हो।

सुन्दर कर्णभरण से भूषित सीता को न देखकर रामचन्द्र का मन विरक्त-सा हुआ। वे इस प्रकार हो गये, जिस प्रकार कोई धनी व्यक्ति, जिसकी भूमि में गाड़ी हुई सब सपत्नि को धूर्त व्यक्तियों ने हर लिया हो और जो जीवन के आश्रयभूत किंचित् धन से भी वच्छित हो गया हौं और भ्रात होकर खड़ा हो।

उस समय धरती चकराने लगी। बड़े-बड़े पर्वत चकराने लगे। दिव्य ज्ञान से युक्त सत्पुरुषों के हृदय चकराने लगे। वीची-भरे सप्त समुद्र चकराने लगे। आकाश चकराने लगा। ब्रह्मा के नयन चकराने लगे। सूर्य और चन्द्र चकराने लगे।

समस्त लोक यह आशका करते हुए थरथराने लगे कि यह महिमावान् (राम) धर्म पर क्रुद्ध होनेवाला है। या कृपा (नामक गुण) पर क्रुद्ध होनेवाला है। देवताओं के पराक्रम पर क्रुद्ध होनेवाला है। मुनियों पर क्रुद्ध होनेवाला है। क्रूर राक्षसों के अत्याचार पर क्रुद्ध होनेवाला है। वेदों पर क्रुद्ध होनेवाला है। न जाने, राम के क्रोध का परिणाम क्या होगा?

उस श्याम-रूप (राम) की मनोदशा के परिवर्तित हो जाने से, अपरिमेय (चर-अचर रूप) वस्तुजाल, ऊपर के रहनेवाले नीचे और नीचे के रहनेवाले ऊपर होकर सब उसी प्रकार अस्त-व्यस्त हो गये, जिस प्रकार प्रलय-काल में, सृष्टि के कारणभूत परमात्मतत्त्व में विलीन होने के लिए वे (सृष्टि के पदार्थ) अस्त-व्यस्त होकर मिट जाते हैं।

तब अनुज (लक्ष्मण) ने रामचन्द्र को नमस्कार करके कहा—रथ के पहियों के चिह्नों को हम यहाँ देख रहे हैं। कोई राक्षस देवी का स्पर्श करने से डरकर यहाँ के भूखड़-सहित ही उन्हें उठाकर ले गया है। अब निःशक्त-से खड़े रहकर व्यर्थ ही कुछ सोचते रहने से कुछ लाभ नहीं होगा। (उस राक्षस के) दूर जाने के पूर्व ही हम उसका पीछा करेंगे।

अमल रूप (राम) ने भी इससे सहमत होकर कहा—हाँ, यही उचित है। फिर, वे दोनों बीर अपने उज्ज्जल तूणीर आदि को लेकर उस मार्ग से होकर चल पड़े, जहाँ से रावण का बड़ा रथ सुन्दर तथा बड़े पर्वतों को चूर-चूर करता हुआ गया था।

उस मार्ग में, उस राक्षस के रथ का चिह्न कुछ दूर तक जाकर फिर अदृश्य हो गया था और ऐसा लगा, जैसे वह रथ नभ में उठ गया हो। तब रामचन्द्र ने ऐसी व्यथा के साथ, जैसे जले हुए धाव में वरछा तुम गया हो, कहा—ऐ भाई। अब हम क्या उपाय करें?

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—मल्लयुद्ध के लिए सन्नद्ध, पुष्ट कधोवाले हे महिमामय। यह बात स्पष्ट विदित हो रही है कि वह रथ दक्षिण दिशा की ओर गया है। आपके धनुष

ने निकलनेवाले शर के लिए गगन-मडल भी कुछ बड़ा नहीं है। आपका इस प्रकार दुःख ने अधीन होना उचित नहीं है।

तब राम ने कहा—हाँ, तुम्हारा कथन ठीक ही है। फिर, वे दोनों दक्षिण दिशा की ओर गये। दो योजन दूर जाने पर वहाँ उन्होंने दहं हुए ऊचे पर्वत के समान धरती पर गिरी हुई और वीणा के चित्र से युक्त पटवाली एक ध्वजा देखी।

उस ध्वजा को देखकर उन्होंने विचार किया—कदाचित् नीता के निमित्त से देवों ने उन नक्षमों ने युद्ध किया होगा। फिर, रामचन्द्र ने यह सोचकर कि (जटायु की) चोच-त्पी शब्द में ही वह उज्ज्वल ध्वजा टूटकर गिरी है। अपने कमल-जैसे नयनों में बश्र भरकर कहा—

मार्द ! नेरा विचार है कि हमारे पितृतुल्य (जटायु) शीघ्रता ने वहाँ आये होंगे और उनकी चोच से ही वह (ध्वजा) टूटी होगी। (जटायु) ने वडे वैग से इसपर वाक्यमण किया होगा। हमें विद्वित नहीं हुआ है कि उन्हें (अर्थात्, जटायु को) इस वीच में क्या हुआ। वे अकेले हैं और जरा से जीर्णदेह भी हैं।

तब लक्ष्मण ने कहा—वहुत ठीक है। वह निर्विचित है कि अवार्य पराक्रम से युक्त वे (जटायु) आज दिन-भर उस राक्षस को रोके खड़े रहेंगे। हम भी शीघ्र उनके पास पहुँच जायें। कदाचित् वे (जटायु) स्वयं ही (नीता) देवी को सुक्त कर लायेंगे। अब अन्य कुछ नोचते हुए विलव करने से कुछ ग्रयोजन नहीं है।

गाम भी वैमे ही आगे बढ़ने को नहमत हुए। फिर, वे दोनों धरती पर चक्कर काटकर बहनेवाली हवा (अर्थात् ववडर) के जैसे और चरखी के जैसे अतिवैग में बढ़ चले। डधर-उधर हाइ डालते हुए जानेवाले उन वीरों ने एक स्थान पर, गगन से टूटकर गिरे हुए इन्द्र-धनुष के समान और समुद्र से उठी हुई वीची के समान पड़े हुए एक दृष्टे हुए विशाल घनुप बो देखा।

तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण ! यह धनुप देवताओं के द्वारा क्षीर-मागर को मथने में मथानी बनाये गये मन्दर-पवत की समता करता है। चन्द्र की-सी देहकाति-वाले जटायु ने अपनी चोच में काटकर इसे तोड़ दिया है, उस (जटायु) की शक्ति भी कैसी है ?

फिर, कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक स्थान में एक त्रिशूल को और अनेक वाणों ने पूर्ण दो तूपीरों को पर्वत-जैसे पड़े हुए देखा और उनके निकट गये।

फिर, आगे बढ़कर उन्होंने राक्षसराज के बद्ध पर से (जटायु के द्वारा) खींचकर नीचे गिराये गये उस क्वच को देखा, जो ऐसा लगता था, मानो नभ में सचरण करनेवाले नव ज्योतिर्पिंड एकत्र होकर उस त्वप में वहाँ आये हों और जो अरण्य-पथ को (अपनी विशालता और काति से) आवृत करके पड़ा हुआ हो।

फिर, वे आगे बढ़कर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पवन-के-से वेगवाले घोड़े, अरण्य-प्रदेश को ढकन्न विखरे पड़े थे और नारथि भी मरा हुआ पड़ा था। वहाँ रक्त से युक्त मास-खड़ भी विखरे थे। फिर, वे उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ जटायु ऐसे गिरा हुआ था, जैसे गगन ही धरती पर आ गिरा हो।

प्रलय-काल में जिस प्रकार उज्ज्वल काति विख्नेवेवाले अनेक सूर्यमङ्गल मनोहर नमोमङ्गल को छोड़कर धरती पर आ पड़े हो, उसी प्रकार अनेक रत्नमय कुंडल एवं उत्तम रत्न-जटित अनेक आभरण वहाँ विखरे पड़े थे । उन्हे देखकर वे विस्मित हुए ।

राम ने लक्ष्मण से कहा—हे भाई । यहाँ अनेक अगद गिरे हैं । उज्ज्वल कुडल भी अनेक गिरे हैं । रत्नमय किरीट अनेक गिरे हैं । अत., निस्सहाय वृद्ध जटायु के साथ युद्ध करनेवाले सिंह-सदृश वीर अनेक रहे होगे ।

लक्ष्मी के पति ने जब इस प्रकार कहा, तो सुमित्रा के सिंह (सदृश पुत्र) ने कहा—
वृक्ष-समान दीर्घ भुजाएँ अनेक हैं, शिर अनेक हैं, हमारे तात (जटायु) से युद्ध करनेवाला और इतनी दूर तक ले आनेवाला एक ही था । वह रावण ही रहा होगा ।

पुष्पहारों से भूषित अनुज की वात से सहमत होकर रामचन्द्र अपने दृढ़ मन तथा नयनों से क्रोधाभित उगलते हुए इधर-उधर देखते हुए बढ़ चले और वहाँ एक स्थान पर अपने शरीर से प्रवाहित रक्त-धारा में, समुद्र में रखे पर्वत (मदर) जैसे पड़े हुए तात (जटायु) को देखा ।

उत्तम तथा अमल (रामचन्द्र), पुष्ट अरुण कमल-जैसे अपने नयनों से अश्रु वहांते हुए, अपने प्राणों के सदृश उपमाहीन, उदार, गुणवान् जटायु पर आकर इस प्रकार गिरे, मानो अभिवर्ण शिवजी के रजताचल पर कोई अजन-पर्वत आ गिरा हो ।

रामचन्द्र एक मुहूर्तकाल तक श्वास-हीन पड़े रहे । लक्ष्मण ने यह आशका करके कि राम मूर्च्छित हो गये हैं, उनके समीप जाकर उनको अपने अरुण करों से उठाकर आलिंगित कर लिया और निर्झर से जल लेकर उनके मुख पर छिड़का । तब राम ने अपने कमल-समान नयन खोलकर धीरे-धीरे प्रश्ना पाई और यो कहने लगे—

कौन पुत्र ऐसे हुए हैं, जिन्होने अपने पिता की हत्या की हो । मेरे पिता मेरे विरह से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गये । हे मेरे पितृत्य (जटायु) । मेरी सहायता करने आकर तुम भी प्राणहीन हो गये । हाय । मैं पापी, इन (दोनों) की मृत्यु (का कारण) बन गया ।

हे मेरी माता-समान (जटायु) । यह न सोचकर कि मैं अकेला हूँ, और यह भी विचार न करके कि आगे का परिणाम क्या होगा, मोह-ग्रस्त होकर (मायामृग के पीछे) गया । मेरी पत्नी की विपदा से रक्षा करने के लिए आकर तुमने अपना कर्तव्य निवाहा । किन्तु मैं, जो अपने कर्तव्यों को पूर्ण नहीं कर सका हूँ, किस प्रयोजन से व्याहूल होऊँ । (अर्थात्, अब मेरा रोना व्यर्थ है ।)

मुझे मर जाना चाहिए । किन्तु, वेदज्ञ मुनियों की इच्छाओं को पूर्ण करने का व्रत मैंने लिया है । अत., अभी तक प्राण रख रहा हूँ । वृक्ष के जैसे बढ़ा हूँ, किन्तु किंचित् भी प्रयोजन से रहित नीच कार्य करनेवाला हूँ । वच्ना के विषयभूत इस कुद्र जन्म को मैं नहीं चाहता ।

मेरी पत्नी के बन्दी हो जाने पर, उसे मुक्त करने के लिए लड़कर महिमामय तुम, यो आहत होकर पड़े हो । तुमको मारनेवाला वह शत्रु अभी जीवित है । दृढ़ धनुष को और शरों को ढोता हुआ मैं लवे पेड़ के जैसे खड़ा हूँ, खड़ा हूँ । अहो ।

अब मेरे समान यशस्वी (इस ससार में) और कौन है ? हे दृढ़ पखोवाले ! असंख्य दाँतीवाले ! पुरातन पाप से युक्त मेरी पल्ली के देखते हुए, शत्रुघ्नी शत्रु ने तुमको मार दिया और चला गया । मैं धनुष हाथ से रखकर व्यर्थ ही जीवित हूँ । अहो, मेरी वीरता भी कैसी है ।

अपना उपमान न रखनेवाले रामचन्द्र इस प्रकार के अनेक वचन कहकर अश्रु वहां रहे और मूर्च्छित हो गये । अनुज (लक्ष्मण) की भी वैसी ही दशा हो गई । तब गृह-राज कुछ-कुछ प्रज्ञा पाकर वड़ी कठिनाई से साँस लेने लगा और आँखें खोलकर उन दोनों को देखा ।

(सीता की क्या दशा हुई) वह वृत्तात कुछ न जाननेवाले, व्याकुल ग्राणों के साथ उध्न श्वास भरनेवाले जटायु ने उन विजयी वीरों को देखा । उससे उसका मन ऐसा आनंदित हुआ, जैसे उसके कटे हुए पख, प्रिय प्राप्ति और सप्त लोक भी उसे प्राप्त हो गये हों । उसने ऐसा नोचा कि मैंने शत्रु को ही जीतकर उससे प्रतिशोध लिया है ।

फिर जटायु ने कहा—हे पुण्यात्माओं । मैं अब अपने इस निष्प्रयोजन तथा अपवश के भाजन शरीर को त्याग रहा हूँ । सौभाग्य से ही इस समय तुम दोनों को देख सका हूँ । मेरे निकट आओ । फिर, रावण के किरीटधारी शिरो पर चोट मार-मारकर छिन्न हुई अपनी चोंच से उनके शिरों को वारी-वारी से कई बार सूँधा ।

मेरे मन ने पहले ही कहा था कि उस (रावण) का यहाँ आगमन माया से हुआ है । (अर्थात्, वह माया से तुमको धोखा देकर ही वहाँ आया) । फिर भी, अनुष्ण पराक्रम से युक्त तुम दोनों, मधुर बोलीवाली उस अश्वती को (अर्थात्, अश्वती-तृतीय पतित्रता सीता को) बकेली ही छोड़कर कैसे चले गये ?

उसके यह कहते ही कनिष्ठ (लक्ष्मण) ने मायामृग के आने से लेकर सारी घटनाओं को कह सुनाया ।

रामचन्द्र की आशा से वीर लक्ष्मण ने जब सब कह सुनाया, तब गृहराज ने सब सुनकर और यह विचार करके कि राम-लक्ष्मण को उनके दुःख में कुछ सात्त्वना देना आवश्यक है, इस प्रकार के वचन कहे—

इस निंदनीय जीवन के सुख-दुःख विधि के वशीभूत हैं । कोई उनमें कुछ परिवर्तन नहीं कर सकता । इस तत्त्व को हमें मानना पड़ेगा । यदि इसे नहीं मानेंगे, तो क्या अपनी दुष्टि के बल से विधि के विधान को मिटा सकेंगे ?

जब विधिवश विषदा उत्पन्न होती है, तब मन की धीरता का त्याग कर व्याकुल होना ज़नाब है । जिस नियति ने मारी सृष्टि के कर्ता के सिर को काटा था, उसके लिए अमाध्य कार्य कुछ नहीं हैं ।

जब सुख या दुःख उत्पन्न हो, तब यह कहना कि इसको हम रोक सकते हैं, अमत्य वचन होगा (अर्थात्, कर्मफल से प्राप्त सुख को कोई रोक नहीं सकता) । त्रिपुरों को जलाने के लिए जिन (शिव) ने शर का प्रयोग किया था, उसने कपाल में भिज्ञा माँगकर खाते हुए तपस्या की थी । क्या यह उसके लिए योग्य था ?

फुफकार भरनेवाले घोर सर्प (राहु और केतु) गगन में उष्ण किरणों को प्रसारित करनेवाले (सूर्य) को निगलकर फिर उगल देते हैं। विशाल धरती के अधकार को दूर करके उसे प्रकाशित करनेवाला चंद्रमा घटता-बढ़ता रहता है।

हे सुन्दर कधोवाले ! विपदाओं का आना और जाना प्रारब्ध कर्म का परिणाम है। शानवान् देवगुरु (वृहस्पति) के शाप-वचन से देवेद्र^१ को जो विपदाएँ उठानी पड़ी, क्या उन्हें कोई गिन सकता है ?

हे धनुर्विद्या मे चतुर वीर ! जब अवार्य पराक्रमशाली शवर नामक असुर के अत्याचारों से बज्रधारी इद्र पराजित हुआ था, तब तुम्हारे पिता ने अपने पुष्ट कधों के प्रभाव से उस असुर को मारा था।

(गीध, चील आदि) पक्षियों और जान-रहित भूतों के लिए मातृ-तुल्य, मासगध से युक्त माला धारण करनेवाला (अर्थात्, राक्षसों को युद्ध में मारकर उनके मास का भोजन भूतों तथा पक्षियों को देनेवाला) उपेक्षित धर्म एवं देवताओं की विपदा ने तुम्हे मुधुर बोलीवाली सीता से विलग किया है, अतः माया-युद्ध करनेवाले राक्षस नामक काँटेदार काङ्डियों को उखाड़कर तुम जियो।

आम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नयनोवाली तथा दीर्घ केशपाशवाली (सीता) को रावण भूखड़-सहित उठाकर ले जा रहा था। तब मैंने अपनी शक्ति-भर उसे रोका, किंतु उसने तपस्या के प्रभाव से प्राप्त करबाल से मुझे आहत कर दिया, जिससे मैं यों गिरा हूँ। आज ही यह घटना घटी है। —इस प्रकार जटायु ने कहा।

जटायु के कहे ये वचन कानों में प्रवेश करें, इसके पूर्व ही रामचन्द्र के अरुण नयन अभिन्न उगलने लगे। उनके निःश्वास से चिनगारियाँ बिखरी। भौंहे ऊपर जा चढ़ी। (उनके ऐसे क्रोध से) ज्योतिर्षिंड (सूर्य, चन्द्र आदि) भयभीत होकर भाग गये। ब्रह्माड में अनेक स्थानों पर दरारें पड़ गईं। पर्वत ढह गये।

धरती धूम उठी। छँचे पर्वत धूम उठे। विशाल समुद्र जल, पवन और सूर्य-चन्द्र धूम उठे। ऊपर के लोक में स्थित ब्रह्मा धूम उठा। तब यह सत्य स्पष्ट हुआ कि वह वीर (राम) ही सब प्रकार के पदार्थ हैं (अर्थात्, सृष्टि के सब पदार्थ उस राम के ही अनेक रूप हैं)।

यह सोचते हुए कि रामचन्द्र अपना क्रोध न जाने, किस पर उतारेंगे, सकल लोक भय से काँप उठे। उस समय लाल अग्नि ज्वालाएँ चिनगारियों तथा धुएँ के साथ सर्वत्र

१. पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार देवेद्र ने अपनी संपत्ति से गर्विष्ठ होकर अपने गुरु वृहस्पति का निरादर किया, जिसपर क्रुद्ध होकर वृहस्पति कही अद्वय हो गये। गुरु के न रहने से इन्द्र त्वष्टा के पुत्र बिश्व-रूप को गुरु बनाकर स्वर्ग का शासन करने लगा। विश्व-रूप ने असुरों के प्रति प्रेम दिखाकर उन्हे यज्ञों में हविर्माण दिया, तो उसपर क्रुद्ध होकर इद्र ने उन्हें मार डाला। तब त्वष्टा ने यज्ञ से वृत्र को उत्पन्न करके इद्र के विस्त्र भेजा। उसके साथ युद्ध में इद्र ने अनेक कष्ट उठाये। पश्चात् दधीचि महर्षि को अस्ति का शक्त बनाकर उसे मारा। किन्तु, ब्रह्महत्या के कारण इंद्र को अनेक वर्ष तक राज्यप्रद्य होकर कष्ट भोगने पड़े। इस पथ में उसी कथा की ओर संकेत है। —अनु०

उठने लगी। एक ज्वलन्त अङ्गुहास भयकर शब्द कर उठा (अर्थात्, रामचन्द्र वीरता के आवेश में ठाकर हैं उपरे)। फिर वे कहने लगे—

एक अज्ञ राक्षस एक निस्सहाय स्त्री को उठाकर ले गया और तुम्हारी ऐसी दशा हुई। तो भी अष्ट दिशाओं में स्थित ये सब लोक विचलित हुए बिना अवतक स्थिर खड़े हैं। देवता लोग अत्याचार को देखते हुए चुपचाप खड़े रह। देखो, अभी मैं इन मन्त्रों विध्वन्त कर डालता हूँ।

अभी तुम देखोगे कि सब नक्षत्र टूटकर गिरते हैं। अनुपम किरणवाला सूर्य चूर्चूर हो जाता है। विशाल आकाश में सर्वत्र आग लग जाती है। जल, पृथ्वी, अरिन आकाश और पवन एवं नव चराचर वस्तुजाल समूल विनष्ट हो जाते हैं और देवता लोग मिट जाते हैं—(यह नव तुम अभी देखोगे)।

तुम वह भी देखोगे कि किस प्रकार स्थित रहनेवाले तथा महान् लगनेवाले ये चतुर्दश लोक एक क्षण में मिट जाते हैं। अष्ट दिशाओं की सीमा में स्थित तथा व्रह्णाड के बाहर स्थित पदार्थ ही एक क्षण में जलकर भस्म हो जाते हैं—यह सारा दृश्य तुम अब देखनेवाले हो। इस प्रकार राम ने क्रोध के साथ कहा।

उण किरणवाला सूर्य (राम के क्रोध से) वचने का प्रयत्न करता हुआ मेरे पर्वत के शिखरों में जा छिपा। अष्ट दिशाओं में स्थित महान् गज भय से भाग गये। अब क्या वह कहना आवश्यक है कि ससार के सब प्राणी भय से विहळ हो गये? अत्यन्त धीर चित्रवाला लद्मण भी (राम का क्रोध देखकर) भय से काँपने लगा, तो अन्य लोगों के भय की क्या कोई सीमा हो नक्ती थी?

जब इस प्रकार घट रहा था, तब चतुरराज (जटायु) ने कहा—हे उत्तम गुणवाले! तुम जीवित रहो, किंचित् भी क्रोध मत करो। कठोर प्रतापयुक्त है वीर, देव और मुनि यह विचार कर कि तुम्हारे कारण (राक्षसों पर) उनकी विजय होगी, आनंदित है। वे अन्य किस बल से रावण को पराजित कर सकते हैं?

कमलभव व्रह्णा से प्राप्त वर के प्रभाव से रावण ने मुझपर जो वीरता दिखाई, उसे प्रत्यक्ष तुम देख रहे हो। अब इसके बारे में (अर्थात्, रावण के पराक्रम के सम्बन्ध में) और क्या कहना है? कमल में उत्पन्न व्रह्णा से लेकर सब देवता उस दशमुख की सेवकाई करते हैं, न कि धर्म की रक्षा। उसकी रक्षा करनेवाला कौन है?

नमुद्र ने दिगी धरती पर रहनेवाले सब लोग स्थिरों के समान उस शत्रु (रावण) की सेवकाड़ करते रहते हैं। देवताओं की यह दशा है। यदि क्षीरसागर के मध्यन के समय उन देवताओं ने अमृत नहीं पिया होता, तो उनके प्राण कभी के मिट गये होते।

दृढ़ शरासन को अपने सुन्दर करों में धारण करनेवाले हैं वीरो। कचुक में वेष्टे स्त्रीवाली लता दूल्य उस देवी कों एकाकी छोड़कर सीगवाले हरिण के पीछे जाकर- तुम उम प्रवार के अपयश के भाजन हो गये। विचार कर देखने पर विदित होगा कि यह अपराध तुम्हारा ही है। गमार के लोगों का नहीं।

अत तुम क्रोध मत करो। अर्धती-समान उम पतिव्रता की विपदा को दूर करो।

देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करो । अपने सब कर्तव्यों को वेदोक्त विधान से सपन्न करो और ससार के पापों को दूर करो । इस प्रकार, भगवान् के चरण-कमलों को प्राप्त होनेवाले जटायु ने कहा ।

मेघ-जैसे श्यामल (राम) ने उस पुण्यवान् (जटायु) की बात को दशरथ की ही आङ्गा मानकर स्वीकार किया और यह विचार कर कि दूसरों पर क्रोध करने से अब क्या प्रयोजन है, राक्षसों के कुल का नाश करना ही प्रस्तुत कर्तव्य है, अपने मन के क्रोध को शान्त कर लिया ।

फिर, उस अमल (राम) ने जटायु से कहा—तुमने मुझे शान्त रहने की जो आङ्गा दी है, उसके अतिरिक्त मेरे लिए अन्य कोई कर्तव्य नहीं है । अब वताओं कि वह राक्षस (रावण) किस दिशा में गया ? किन्तु, इतने में वह गृहराज शिथिल हो गया । उसकी प्रज्ञा मिट गई । कुछ उत्तर नहीं दे पाया और धीरे-धीरे उसके प्राण निकल गये ।

वह जटायु (अपनी अतिम घड़ी में) उस भगवान् (राम) के चरणों के दर्शन कर सका, जो भगवान् शीतल कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के लिए क्या, स्वयं वेदों के लिए भी अज्ञे हैं । अतः, वह उस (वैकुण्ठ) लोक में जा पहुँचा, जो पञ्चभूतों को भी मिटा देनेवाले महाप्रलय में भी नहीं मिटता ।

जब जटायु मुक्ति पा गया, तब राम और उनके अनुज शोक-मम हुए । बन के वृक्ष, मृग, पक्षी और पत्थर भी पिघल उठे । ब्रह्मा आदि देवता, नाग तथा भूलोकवासी अपने शिर पर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए खड़े रहे ।

उस समय, राम ने अपने अनुज से कहा—भाई धर्महीन राक्षस से मेरा पौरुष परास्त हुआ । क्या अब सन्यास लेकर तपस्या करूँ ? या प्राण छोड़ दूँ ? वताओं । मुझे पुत्र के रूप में पाकर पिता मर गये । ऐसा जन्म पाकर मैं अवतक मरा नहीं । मैं क्या करूँ ?

राम के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम करके उत्तर दिया—हे विजयशील ! विधि के परिणाम से ऐसी विपदाएँ होती हैं । अब उनको सोचकर दुःखी होने से क्या प्रयोजन है ? उन क्रूर राक्षसों का समूल विनाश करना पहला कर्तव्य है । उसके पश्चात् (जटायु की मृत्यु आदि विपदाओं का स्परण कर) दुःख कर सकते हैं (अर्थात्, यह दुःख करने का समय नहीं, वरन् शत्रु-नाश करने का है) ।

हे मेरे प्रभु ! विरक्त होकर आप सुन्दर कुतलोवाली देवी को खोकर भी शाति के साथ रह सकते हैं, तो रहे । किन्तु, हमारे पितृ-तुल्य (जटायु) को मारनेवाले राक्षस को मारे विना आप किस प्रकार तपस्या-निरत रह सकते हैं ?

अनुज के बचनों से किंचित् स्वस्थ होकर सर्वेश राम ने यह सोचकर कि इस प्रकार दुःख-मम होना अज्ञा है, अपनी व्याकुलता तथा अश्रुओं को भी दूर करके कहा—हे भाई ! मरे हुए पितृ-तुल्य जटायु की अतिम क्रिया यथाविधि सपन्न करें ।

उन्होंने काले अगरु-काष्ठों के साथ चदन-काष्ठों को सजाकर उनपर दर्भाँ को विछाया । फिर पुण्य विखेरे । मिट्टी की बेदी बनाकर उसपर स्वच्छ जल को रखा । फिर, राम जटायु की देह को अपने विशाल हाथों से उठाकर लाये ।

समृद्ध शास्त्रों के तत्त्वों और मंत्रों को जाननेवाले राम ने (जटायु की देह पर) जल, चदन और पुष्प डाले । अपने दोनों हाथों से उसे चिता पर रखा । फिर, चिता के मिरहाने में अग्नि प्रज्ञलित की एवं अन्य सब सस्कार पूर्ण किये ।

राक्षसों के प्रति क्रोध करने से राम का दुःख किञ्चित् शान्त हुआ । उनके पुष्ट तथा शुक के-से रगवाले श्यामल शरीर पर उनके नेत्रों से इस प्रकार अशु मङ्ग पड़े, जिस प्रकार प्रफुल्ल कमल से मधु-विन्दु गिरते हैं । यो मेघ-समान उन (राम) ने नदी में स्नान किया और अंजलि में स्वच्छ जल लेकर जटायु को तिलांजलि अर्पित की ।

राम के द्वारा अर्पित उस जलाजलि से ब्रह्मा से लेकर उच्च तथा नीच सब प्राणिजात, अत्यत तृप्त हुए । गृहराज को उद्दिष्ट करके प्रभु ने अपनी अंजलि से जो स्वच्छ जल अर्पित किया, वह स्वयं भगवान् के लिए भी पीने योग्य बन गया । अब उस जल-तर्पण के बारे में और क्या कहा जाय ?

विजयशील चक्रवर्ती कुमार (राम) ने सब संस्कार वेदोक्त प्रकार से सपन किये । उस समय सूर्य पश्चिमी समुद्र में जा पहुँचा, मानों वह अपने कुल से सम्बन्ध रखनेवाले जटायु की मृत्यु से उत्पन्न शोक से जल में स्नान करने और सद्गति देनेवाले सूस्कार करने को जा रहा हो । (१-१५०)

अध्याय ३०

अयोमुखी पटल

जब सध्या हो रही थी तब वे (राम-लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस वन में स्थित एक पर्वत पर जाकर ठहरे, जिस पर्वत के शिखर पर हाथी और मेघ विश्राम करते थे । इतने में अत्यन्त दुःख का कारणभूत अंधकार इस प्रकार फैला, जैसे इद्र के वश में न होनेवाले राक्षस सर्वत्र फैल गये हों ।

उस रात्रिकाल में, जब वन्य वृक्षों तथा पर्वतों से मधु और जल की धाराएँ इस प्रकार वह रही थीं, मानों (राम-लक्ष्मण के दुःख से) शोकाकुल होकर वे आँखू वहा रहे हों, राम और लक्ष्मण के मन में अभिमान, क्रोध, दुःख तथा ज्ञान—ये सब परस्पर संघर्ष करने लगे ।

उन रात्रिकाल में, जो तत्त्वज्ञान से रहित बुद्धि को पापमार्ग में चलानेवाले असत्य जन्म के जैसे ही उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, उन (राम और लक्ष्मण) का निःश्वास धी के पड़ने पर भड़की हुई आग के समान बढ़ रहा था । तब उनके शोक का कहों कुछ अन्त नहीं था ।

मधुयुक्त पुष्पमाला में भूषित राम के नयन-स्पी अद्वण-कमल रात्रि के समय में भी मुद्रित नहीं हुए । वह क्या मनोहर मद्हास से शोभित सीता नामक लक्ष्मी के वियोग

के कारण था । या उस (सीता) के सुख-रूपी चन्द्र के दर्शन न करने के कारण था । हम उसका कारण नहीं कह सकते ।

स्त्री-रूप दीप के समान स्थित, अति रूपवती सीता के वियोग के कारण उत्पन्न अल्यधिक दुःख में राम ने अपने मन में क्या विचार किया—यह हम नहीं जानते, (हम इतना ही कह सकते हैं कि) उस पुष्प-स्वरूप राम के नयन भी निद्रा में मुकुलित न होकर उनके पुष्ट कधीवाले भाई (लक्ष्मण) के नयनों के जैसे ही (खुले) रहे ॥ (अर्थात्, राम ने निद्रा नहीं की) ।

जहाँ शीतल तथा मधुर मद मारुत-रूपी सर्प सच्चरण करता था, उस पर्वत के समीप में गगनतल की प्रकाशित करता हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा इस प्रकार उदित हुआ कि रामचन्द्र ने मानो भ्रमरो से गुजरित पुष्पमाला धारण करनेवाली सीता के बदन-विव को ही देखा हो ।

उस रात्रिकाल में गर्व-भरा मन्मथ-रूपी चोर जब छिपकर अपना प्रभाव दिखाता था, सासार-भर में प्रकाशित होकर बढ़नेवाली चाँदनी की बाढ़ (राम को) इस प्रकार जलाने लगी, जैसे अधकार-रूपी विष से युक्त सर्प के छेदवाले विष-दत के भीतर का विष हो ।

विष के समान फैलनेवाली उज्ज्वल चाँदनी वीर (राम) को पीड़ित कर रही थी। सीता के हरण से उत्पन्न अपमान की भावना उनके विवेक को हर रही थी, वे अन्य सब विचारों को छोड़कर केवल उन सीता के, जो सर्पफन-सदृश जघन तटवाली थी, दुर्घ-जैसी मीठी बोलीवाली थी और दीर्घ नेत्रवाली थी, अकेलेपन के बारे में ही सोच रहे थे ।

राम ओंठ चवाते, निःश्वास भरते, उनके कंधे फूलते और शिथिल होते । महान् गज के द्वारा तोड़ी गई, शीतल पल्लवों तथा पुष्पों से शोभायमान शाखा-सदृश सीता के बारे में सोचते ।

समुद्र में उठनेवाली बीचियों के समान उनके निःश्वास उठ-उठकर गिरते थे । वे सोचते कि सीता यह सोचकर कि रामचन्द्र अपना धनुष मुकाये हुए आते ही होंगे, मार्ग के दोनों ओर देखती हुई गई होगी ।

जब विद्युत-जैसे खड्ग-दतोवाला रावण—‘ठहरो ।’ ‘ठहरो ।’ कहता हुआ सीता के निकट (उसे उठा ले जाने के लिए) गया होगा, तब सीता ने मेरा स्मरण नहीं किया होगा—यह कहना उचित नहीं है । (उसके स्मरण करने पर भी जब मैं उसकी रक्षा के लिए नहीं आया, तब न जाने मेरे बारे में उसने क्या सोचा होगा ।)

विष-दतो से युक्त (राहु नामक) सर्प के सुँह में पड़े चन्द्र के समान कातिहीन सीता, क्रूर राक्षस के क्रोध से भयभीत हुई होगी । हाय । यों सोचते ।

अपमान और विरह-ताप—इन दोनों से व्याकुल होनेवाले उनके प्राण इन दोनों के मध्य रहकर इनके द्वारा बारी-बारी से सताये जा रहे थे, जिससे दुःखी हो रामचन्द्र सोचते—क्या अब भी मुझे धनुष की आवश्यकता है ?

सनातन वेदों के पारंगत सब पडितों के द्वारा देखे जानेवाले राम अपने धनुष को

⁹ इसके पूर्व अयोध्याकांड में वह कहा गया है कि लक्ष्मण बनवास के समय, कभी नहीं सोते थे, किंतु रात-दिन जागरित रहकर राम की परिचर्या में निरत रहते थे ।—अनु०

देखकर हँसते, तथा समार मं, प्रात होनेवाले अपने अपयश को सोचकर स्तब्ध रह जाते ।

वे (राम) हाथी के जैसे बड़े शब्द के साथ निःश्वास भरते । शीतल पवन-हर्षी क्रूर यम को देखकर कहते—हाय । वेदोक्त विधान से मेरे द्वारा परिणीत सीता सुक्ष्म से विद्युत हो गई ।

मैंने अनेक प्राणियों की रक्षा करने का ब्रत लिया है । किन्तु, आभरणों से भूषित मेरी पत्नी वनी हुई एक हुलीन नारी की विपदा को मैं दूर नहीं कर सका । मेरा पराक्रम भी खूब है । इस प्रकार सोचकर राम लजित होते ।

उसका मन व्याकुल होता, उसके बोठ सूख जाते, वे मूर्च्छित होते । अनुज के द्वारा निर्मित शीतल पल्लव-शव्या पर लेट जाते । उनके शरीर-त्ताप से वे पल्लव मुलस जाते, तो (राम) अपने अनुज से कहते कि ये पत्ते हटा दो । फिर (लद्धमण के द्वारा लाये गये) नये तथा अरुण पल्लवों को देखते । किंतु, उनके शरीर-स्पर्श से वे नये पल्लव भी भुजते जाते, तो व्याकुल-प्राण हाँ वे थक जाते ।

वे राम, जिनके कमल-समान नयनों के झँपने के एक क्षण काल में अनेक युग व्यतीत होते थे (अर्थात्, जो विष्णु के अवतार थे) इस समय वहाँ रहकर उस रात्रि का कुछ बन्त नहीं देख पाते थे । इसका कारण सीता का वियोग था या (सीता के प्रति) उनके प्रेम की अधिकता थी, वह हम (लेखक) नहीं जानते ।

विजय के कारणभूत भाले को रखनेवाले अपने भाई को देखकर, वे (राम) कहते—तुमने देखा है न कि इसके पहले, सभी दिन एक ही जैसे व्यतीत होते थे । किन्तु, आज वह रात्रि क्यों इतनी दीर्घ ही रही है ?

दीर्घ लगनेवाले रात्रिकाल में प्रकाशमान चन्द्र को देखकर वे कहते—हे चन्द्र ! पहले तुम प्रतिदिन आतं और (सीता के मुख की समता न कर सकने के कारण) क्षीण होकर लजित होते रहते थे । अब आभरण-भूषित सीता के उज्ज्वल बदन के दूर हो जाने पर तुम पूर्ण प्रकाश में चमक रहे हो ।

राम फिर कहते—गगन में सच्चरण करनेवाला एक चक्र रथ से युक्त सूर्य भगवान्, प्रभूत चन्द्रिका के मध्य उज्ज्वल कीर्ति से सम्पन्न अपने कुल में अवारणीय अपयश के आ जाने ने मानो लजित होकर ही भूलोक से अदृश्य हो गये हैं ।

दुखद रात्रि के दीर्घ लगने से शिथिल होनेवाले राम सोचते, कटाचित् क्रूर रात्रें ने सूर्य के सामयि अरुण के साथ सूर्य को भी बाँधकर बड़े कारागार में डाल रखा है (इसलिए दिन नहीं हो रहा है) ।

राम सोचते—यदि डमह-समान कटिवाली सीता नहीं दिखाई पड़े और घोर अवकार में पूर्ण रात्रि-हर्षी कल्यकाल भी यों ही व्यतीत हो जाये, तो समुद्र से घिरी हुई यह घरती मेरे हाथों विनष्ट हो जायगी ।

गगन कहते—कठीर तपन्या करनेवाले मुनिगण विपदा में पड़े रहे और उन (मूनियों) के प्राणों को पीड़ित करके ससार के प्राणियों को खाकर विचरनेवाले अधर्मी राज्ञ वलवान् होकर जीवित रहे तो अब धर्म ने क्या प्रयोजन है ?

भ्रमरों की दिव्य डोरी से युक्त धनुष में पुष्प-शरों को रखकर प्रयुक्त करनेवाले वीर मन्मथ ने राम पर वाण प्रयुक्त करने के लिए लह्य-संधान किया। तब रामचन्द्र कर्त्तव्य-मठ होकर स्तव्य रह गये।

जब कोई दुःखी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है, तब उसे उसके पुराने दुःख का स्मरण अधिक सताने लगता है। उसी प्रकार मन्मथ, जो इसके पहले एक बार तपस्वी शिव के क्रोध से जल गया था, अब उसका स्मरण करके दुःखी हुआ। (भाव यह है कि अपने बाणों से भीत हींकर सतस होनेवाले राम को देखने से मन्मथ की शिवजी के द्वारा उसको उत्पन्न पुराना दुःख स्मरण हो आया, जिससे अब वह दुःखी हुआ।)

इस प्रकार, नीलवर्ण रामचन्द्र के मन में (वियोग-दुःख) शूल-सा साल रहा था। इस समय वह रात्रिकाल ऐसे ही समाप्त हुआ, जैसे आदिकारणभूत भगवान् (नारायण) के नाभि-कमल से उत्पन्न व्रहा का एक कल्प समाप्त हुआ हो।

जल-धारा से शब्दायमान क्षीरसागर में सुखमय योग-निद्रा करना छोड़कर, भ्रमरों तथा मधु से शब्दायमान पुष्पमाला से भूषित सीता के शील-रूपी समुद्र में निमग्न होनेवाले राम को देखकर सहानुभूति से पक्षी शब्द करते थे, कानन शब्द करते थे और पर्वत-निर्भर शब्द करते थे। राम के मन में (सीता का) अलकृत रूप प्रकट था। किन्तु, नयनों के समुख प्रकट नहीं था। अतः, उन (राम) के प्राणों के स्वस्थ रहने का क्या उपाय हो सकता था?

मयूर और मयूरी साथ-साथ संचरण करते थे। हरिण और हरिणी साथ-साथ विहार करते थे। करी और करिणी साथ-साथ घूमते-फिरते कीड़ा करते थे। इन सबको देखकर, रामचन्द्र, जो पिक, इच्छु, मधु, सुरली-बीणा, गाढ़ी चाशनी, अमृत आदि को भी फीका करनेवाली मीठी बाणी से युक्त सीता से वियुक्त थे, क्या दुःखी न होंगे?

किरणों से युक्त सूर्य, किरीट-जैसे शिखरवाले उदयगिरि पर अत्युज्ज्वल रूप में ऐसे प्रकाशमान हुआ, मानों प्रभात होने पर भी सीता के दर्शन न पाने से दुःखी रहनेवाले वीर रामचन्द्र को उस समय कमल-पुष्पों को प्रफुल्ल कर यह दिखाना चाहता हो कि पहले दिन की सध्या को जिन कमलों को मैने बन्द किया था, उनमें सीता नहीं है।

रामचन्द्र यहाँ के बन को देखते। उस बन में स्थित चक्रवाक को देखते। वृक्ष की पुष्पित शाखाओं को देखते। बाल कलापी-तुल्य सीता के केशपाश का स्मरण करते। पर्वत सद्श स्तन-द्वय को याद करते। उनपर की पत्रलेखा को याद करते और फिर अपनी भुजाओं को देखते। यो अपना समय व्यतीत करते।

उस समय, अनुज (लह्यमण) ने उनके चरणों को नमस्कार करके कहा—हे प्रभु! देवी का अन्वेषण किये बिना यहाँ इस प्रकार विलब करना क्या उचित है? तब कीर्तिमान् प्रभु ने उत्तर दिया—उस रावण के स्थान को ढूँढ़कर पहचानेंगे। फिर, उज्ज्वल धनुष से दुक्त वे दोनों पर्वत-श्रेणी से युक्त तथा धूप से तस उस कानन में चल पड़े।

दिग्गजों के समान वे दोनों हरियाली से युक्त अनेक अरण्यों को पीछे छोड़कर अष्टारह योजन दूरी पार कर चले।

भूमि के भाग्य से पृथ्वी पर अवतीर्ण मधुपूर्ण पुष्पमालाओं से भूषित सीता का अन्वेषण करते हुए वे दोनों चलते रहे। कही भी सीता को न देखकर, मन के क्रोध से निःश्वास भरते हुए, पक्षियों के आवासभूत एक शीतल तथा विशाल उपवन में प्रविष्ट हुए।

उप्पकिरण सूर्य, ज्ञान में श्रेष्ठ उन राम-लक्ष्मण के मन की वेदना को जानकर, मर्वत्र नीता को ढूँढ़कर, फिर मेरु पर्वत के पीछे अदृश्य हो गया।

सर्वत्र अधकार इस प्रकार भर गया, जैसे अजन-पूंज उन (राम-लक्ष्मण) को कही जाने से रोकने के हेतु पहरा देने के लिए घिर आये हों। तब दसों दिशाएँ स्पष्ट ज्ञान में गहित व्यक्तियों के मन के समान शीघ्र तमोबृत हो गईं।

मीठे स्वर में बोलनेवाले नागणवाय् (नामक पक्षी) जहाँ शुकों को मधुर सगीत मिखा रहे थे, वैमे उस उपवन में एक स्फटिक-मंडप दिखाई पड़ा, जिसके चारों ओर किंशुक-वृक्ष थे और जो प्रकाश एवं कलंक से युक्त चन्द्र-मडल के समान शोभित हो रहा था। वे दोनों उम मडप में जाकर विश्राम करने लगे।

तब महिमाभय प्रसु ने बलवान् वृषभ-जैसे वीर अनुज से कहा—हे वीर! कही से पीने के लिए जल ढूँढ़कर लाओ। शत्रुओं को भगानेवाले धनुष से युक्त वह वीर (लक्ष्मण, जल लाने के लिए) अकेले गया।

कही भी जल न पाकर इधर-उधर हूँड़ते रहनेवाले उस लक्ष्मण को उस समय उस अरण्य में स्थित अयोमुखी नामक एक राक्षसी ने देखा और उनपर सुर्ख हो गई।

वह (अयोमुखी), ज्ञानियों के मंत्रोच्चारण से भी कीलित न होनेवाले सर्प के समान लक्ष्मण का पीछा करती हुई चली, उनको देख-देखकर उन्हें मन्मथ समझती हुई उनके प्रति यो कामातुर हुई कि उसका गर्व और क्रूरता उस काम-वासना से दब गये।

अथाह काम-वासना से युक्त वह राक्षसी पीडित होकर लक्ष्मण के सम्मुख आ खड़ी हुई और वह विचार करती हुई कि मैं इसका आलिंगन कर अपनी काम-वेदना को तृप्त करूँगी, उसको मारकर नहीं खाऊँगी व्याकुल खड़ी रही।

अग्नि से भी अधिक भयकर वह राक्षसी, यह सोचती हुई कि यदि मेरी प्रार्थना सुनकर भी यह महमत न होकर तिरस्कार करे, तो मैं वलात् इसे अपनी गुफा में ले जाऊँगी और उनका आलिंगन करूँगी, अतिवेग से लक्ष्मण के निकट आ पहुँची।

वह अग्निमय निःश्वास भर रही थी, अपने दाँतों से हाथियों के कुड़ को एक नाथ चवाकर अपने पेट में भरनेवाली थी। उसने बड़े तथा हृद सपों से अपने स्तनों को बाँध रखा था और उसकी आँखें धूँसी हुई थीं।

बड़े निंहों और शरभों को सर्प-स्त्री रसमी में पिरोकर उसने अपने पैरों में नूपुर जैमे पहन रखा था। उसका मुख सर्व वस्तुओं का विनाश करनेवाले युगातकाल में प्रकाशित होनेवाले दूर्य के समान उग्र था।

उसका मुँह इतना विशाल और ऐसी गुफा के समान था कि समुद्र के सारे जल को एक साथ पीकर उसे मुखा सकता था। उसके चारों ओर लाल-लाल केश विखरे थे, जिनमे वह प्रलयकाल की अग्नि का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दीर्घ मापदंड से मापने योग्य दरी उसके एक पग में समाती थी। उसके बड़ी तेजी से चलने के कारण आँतों और चरवी से सयुक्त मांसखंड इधर-उधर गिरते थे। उसका जघन-तट अनेक पापों का स्थान था। उसके दाँत पीसने से वज्र घोष-सा शब्द होता था।

वह इस प्रकार धूरती थी कि उसकी दृष्टि शिवजी की-सी (अस्तिमय) लगती थी। उसके दाँत इतने भयकर थे कि वे अस्तिमय नयन भी (उन दाँतों की तुलना में) शीतल लगते थे। उसके गमन-वेग से पर्वत अस्त-व्यस्त हो जाते थे। समुद्र परस्पर मिल जाते थे और दोषहीन भूमि भी उसे देखकर लजित होती थी। (अर्थात्, क्षमामय भूदेवी भी अयो-मुखी जैसी एक पापिन स्त्री को देखकर उसके स्त्रीत्व पर लजित होती थी)।

उसके करों में दीर्घ सप्तों के बलय पढ़े थे। उसने गरजनेवाले व्याघ्रों का हार पहन रखा था। अनेक शरभों को एक माथ गूँथकर ताली^१ बनाकर पहन लिया था। बलवान् सिंहों को कर्णाभरण के रूप में धारण कर लिया था।

वह (अयोमुखी) प्रकृति से ही 'धुँधची' के जैसे रहनेवाले (अर्थात्, लाल) नेत्रों में काम-वेदना से अश्रु भरकर (लक्ष्मण को) धूरती हुई खड़ी रही। तब अँधेरे में धूमनेवाले सिंह-सदृश लक्ष्मण ने उसके विजली-जैसे दाँतों के प्रकाश में उसे देखा।

तुरत वे लक्ष्मण समझ गये कि यह स्त्री दुष्ट राज्ञसो के कुल में उत्पन्न है और पहले नाक आदि के कट जाने से दुःखी हुई, अति बलशाली शर्पणखा, ताड़का आदि के जैसे स्वभाववाली है।

इन गुणहीन तथा पापी राज्ञसियों के हमारे निकट आने का और कोई उपयुक्त कारण नहीं है, यों विचारकर उससे पूछा—हिंसा जन्तुओं के आवासभूत इस अरण्य में इस घने अँधेरे में आई हुई तू कौन है? शीघ्र बता।

लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा। उस समय, सशय से युक्त मनवाली उस राज्ञसी ने, बोलने में कुछ सकोच किये बिना, उत्तर दिया—यद्यपि तुमसे मेरा पूर्ण परिचय नहीं है, तो भी तुम पर प्रेम करके मैं आई हूँ। मेरा नाम अयोमुखी है।

फिर वह कहने लगी—हे अति सुन्दर वीर। पहले अन्य किसी से अस्पृष्ट (इसके पहले दूसरे किसीसे न हुए गये) मेरे इन स्तनों का, हम अपने स्वर्ण रगवाले विशाल बक्ष से आलिंगन करो और मेरे प्राणों की शीघ्र रक्षा करो।

क्रूर गुण को शात करके उस राज्ञसी ने ये बचन कहे। तब क्रोधी सिंह जैमे लक्ष्मण के नयन लाल हो उठे और उन्होंने कहा—यदि तू ऐसी बात फिर अपने मुँह से निकालेगी, तो मेरा अनुपम बाण तेरे शरीर के टुकडे-टुकडे कर देगा।

लक्ष्मण को अपने प्रतिकूल कुछ कहते हुए सुनकर भी वह मन में कुछ नहीं हुई। किन्तु, सिरपर हाथ जोड़कर (नमस्कार करती हुई) उसने निवेदन किया—हे नायक। यदि तुमको मैं अपने प्राण-रक्षक के रूप में पाऊँगी, तो मुझे आज नया जन्म मिलेगा।

क्रोधीन हो वह (राज्ञसी) पुनः बोली—हे उत्तम! अगर तुम्हें यहाँ स्वच्छ जल को पाना है, तो मुझे अभयदान दो। मैं गगा का जल भी अभी यहाँ पर लाकर उपस्थित करूँगी।

१. 'ताली' एक आमूल्य या पदक है, जिसे दक्षिण में विवाहिता स्त्रियाँ अपने गले में पहनती हैं।—अनु०

सौमित्रि उसके वचनों को सह नहीं सके और बोले—अभी यहाँ से भाग जा। नहीं तो तेरे कानों और नाक को काट दूँगा। तब वह राक्षसी स्तव्य हो, अपलक खड़ी रही और सोचने लगी—

मैं इसको अपनी गुफा में उठा ले जाऊँगी और वहाँ बन्दी बनाकर रखूँगी। जब इसकी उग्रता शान्त होगी, तब यह मेरी इच्छा पूरी करने को सहमत होगा। यही कर्तव्य है। इन प्रकार सोचकर वह लक्ष्मण के पाश्व में गई।

उस क्रूर राक्षसी ने मोहन-मंत्र का प्रयोग किया और गगनान्तर पर्वत-सदृश लक्ष्मण को उठाकर गगन-मार्ग से इस प्रकार चली, जैसे चन्द्रमडल के साथ मेघ जा रहा हो।

लक्ष्मण को ले चलनेवाली वह अयोमुखी, मन्दर पर्वत से युक्त समुद्र, देवेन्द्र से आरूढ़ करिणी और भाले में शूर-पद्म नामक असुर को मारनेवाले, घोर पराक्रम से युक्त, कार्त्तिकेय से आरूढ़ मयूर के जैसे लगती थी।

उस ममय, उस राक्षसी के बद्ध तथा हाथों में स्थिंत, उच्चल वीर वलय-भूषित लक्ष्मण उन शिवजी की समता करते थे, जिन्होंने क्रोध-भरे, मदखाली हाथी को मारकर उसके चर्म को बख्त के रूप में पहन लिया था।

वह (अयोमुखी) इस प्रकार गई। इधर सततचित्त रामचन्द्र, यह चिंता करते हुए कि जल की खोज में गया हुआ, मेरे प्राण-समान तथा वलवान् पर्वत-समान लक्ष्मण अभीतक, न जाने, क्यों नहीं आया। वे लक्ष्मण की खोज में चल पड़े।

राम सोचते जाते थे कि लक्ष्मण कम वेगवान् नहीं है। वह शीघ्र आनेवाला है। कदाचित् धूप से जले वरण्य में जल नहीं मिला या अन्य कोई घटना घटित हुई है। न जाने क्या कारण है?

मैंने कहा कि इस मार्ग से जाकर कहीं से जल ले आओ। किन्तु, इरना विलब हो जाने पर भी वह अभी तक नहीं आया। क्या उसने सीता का हरण करनेवाले राक्षसों के नाथ, कुछ प्रयोजन होने के विचार से, युद्ध छेड़ दिया है?

क्या मधुरमापिणी शुकी-जैसी सीता का हरण करनेवाला रावण, इसे भी उठा ले गया? या विष से भी भयकर उस रावण के माया-कृत्य से और दुर्दैव से वह मृत हो गया?

दृढ़ धनुप को धारण करनेवाला मेरे प्राण-समान भाई अभीतक नहीं लौटा। क्या इस बेदना में कि मैं उसके कथन की उपेक्षा करके सीता को खो बैठा। उसने अपने प्राणों का वन्त कर दिया है?

इस धने अधिकार में, सुक्ष्मसे वियुक्त उस प्यारे लक्ष्मण के अतिरिक्त मेरे और नेत्र नहीं हैं? (अथान्, लक्ष्मण ही मेरे नेत्र हैं, जिसके बिना मैं अधा-मा हूँ)। पहले ही धायल हुए मेरे दृढ़ एवं अन एक नई पीड़ा उत्पन्न हुई है। मैं कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ। अब मैं कैसे उसका अन्वेषण करूँ?

मेरे दुर्भाग्य को बदलने का कुछ उपाय नहीं है। अब मेरे प्राण-सदृश तुम भी

अदृश्य हो गये । है तात । सुभे इग प्रकार छोड़कर तुमने भूल की । यह तुम्हारा कार्य कठोर है । गुरुजन तुम्हारे इस कार्य को नहीं सराहेंगे ।

आई हुई विपदाओं को दूर करने में समर्थ है वीर ! तुमने सुभे अवार्य दुःख दिया । शत्रुओं से भी प्रशसित होनेवाले हैं वीर । क्या सुझसे घृणा करते हुए सुभे इस अरण्य में पीड़ित होने के लिए छोड़कर चले गये हो ? इतनी देर तक सुझसे वियुक्त होकर कहीं रह जाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

मैं अपने पिता से वियुक्त हुआ । अपनी माता से वियुक्त हुआ । लक्ष्मी-समान, स्वर्णभरण-भूषित सीता से वियुक्त हुआ । फिर, मैं जो जीवित रहा, वह तुम, एक के वियुक्त न होने से ही तो था ?

(हरिण के पीछे मेरे जाने पर) सुभे ढूँढते हुए तुम हाथी के समान चले आये थे । अब तुम अदृश्य होकर, स्वर्णमय कर्णभरणों से भूषित सीता को ढूँढनेवाले सुझ दीन को, अपने भी ढूँढने के लिए दुःखी बनाकर छोड़ गये हों ।

कौन वतानेवाला है कि तुम कहाँ हो ? (तुम्हारे न मिलने पर) मैं आज प्राण-त्याग किये विना नहीं रहूँगा । यदि मैं मरूँगा, तो मेरे स्वजनों में से भी कोई जीवित नहीं रहेगा । अत., हे कठोरहृदय ! तुम् एक साथ सब स्वजनों को मारनेवाले हो गये हो । वह क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

मान्धाता आदि हमारे पूर्वजों के आचार के अनुसार राजा बनना छोड़कर मैंने अरण्य-वास करने का साहस किया । उस समय सच्चा बन्धु बनकर जब दूसरा कोई नहीं आया, तब तुम्हीं सुझ एकाकी के साथी बनकर आये । अब तुम भी सुझे छोड़कर चले गये हो ?

इस प्रकार कहते हुए मेरे अनुपम प्रभु रामचन्द्र उठते, गिरते, स्तव्य होते, प्रशाहीन होते, फिर कहते—हाय । इस घने अँधेरे में न विजली है, न गर्जन । फिर भी, यह क्या विपदा आ पड़ी है ? (अर्थात्, भावी विपदा की पूर्व सूचना कुछ नहीं हुई और यह अकस्मात् क्या हुआ ?) रामचन्द्र की वह हु खपूर्ण दशा एक-जैसी नहीं थी ।

युद्ध के उन्माद से पूर्ण मत्तगज की समता करनेवाले वे (राम), अनेक स्थानों में जाकर (लक्ष्मण को) ढूँढते । शीघ्र गति से जाते । (लक्ष्मण का) नाम लेकर पुकारते । व्याकुलप्राण और मूर्च्छित होते ।

क्षमाशील (सीता) देवी के साथ मेरे प्राणों की भी रक्षा करते हुए अपलक रहनेवाला लक्ष्मण, क्या लौट आने में इतना विलव करता ? धरती का भार बनकर दुर्भाग्य के साथ सचरण करनेवाले सुझ पापी का जीवित रहना अनुचित है ।

फिर यह कहकर कि, 'यदि मेरे द्वारा किया गया कोई सुकृत हो और उम (लक्ष्मण) का ज्येष्ठ होकर उत्यन्न होने की कुछ योग्यता सुझसे हो, तो मैं वैसे ही पुनर्जन्म पाऊँ'—रामचन्द्र अपना तीव्र करवाल कर में लेकर अपने प्राणों का अन्त करने को उद्यत हुए, इतने में—

उधर लक्ष्मण राक्षसी की माया में मुक्त हुआ और उस (राक्षसी) की नामिका

त्रांडि ग्रागों को काट दिया। तब उम राक्षसी ने वड़ी व्यथा में जो चीख मचाई, वह ध्वनि गम ने बानों में आ गिरी तो उससे राम किंचित् स्वस्थ-से हुए।

फिर, राम ने मोचा—प्रस्तरमय अरण्य में अनेक वीर-कक्षणों से सुखरित उद्धकनेवाले राक्षसों की विरोध-सूचक ध्वनि यह नहीं है। यह तो विषदा में पड़ी हुई एक छींकी की ही ध्वनि है और वह कोई राक्षसी ही है।

उम नमय, नीलवर्ण राम ने आग्नेय अन्ध को अपने अश्व कर में लेकर उमे प्रशुक्त करने का उपक्रम किया। तब वहाँ का अधकार हटकर भूलोक के दूसरे कोने में जाकर इकट्ठा हो गया और उम स्थान में गतिकाल दिन के समान भास्मान ही उठा।

रामचन्द्र वड़े-वड़े पर्वतों को चूर करते हुए, कँचे वृक्षों को तोड़ते हुए, भूमि को अपने पदचाप में पीड़ित करते हुए और अपने दोनों पाशवों में चड्ढचड्हाहट की ध्वनि उत्पन्न बरते हुए चडमास्त ने भी तिरुने देख के माथ (उम- राक्षसी को निहत करने के लिए) बढ़ चले।

प्रलयकाल में जिन प्रकार काला समुद्र धरती पर उमड़ आये, उस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए आनेवाले, अपने महायक ज्येष्ठ भ्राता को लक्षण ने देखा और कहा—‘हे उदार ! चिंता न करें, चिंता न करें !’

‘यह डास आ गया। आप मन में व्याकुल न हो।’—यो कहते हुए लक्षण रामचन्द्र के कोसल पत्ताव-जैने चरणों पर नत हुआ। रामचन्द्र ने मानों अपनी खोई थाँखें पुनः प्राप्त कीं।

उन रामचन्द्र की दशा, जिनकी थाँखों से फरने के समान अश्रु वह रहे थे, उस गाय की-नी हो गई, जो अपना वछड़ा खो जाने से, उपे खोजने का मार्ग भी न देखती हुई व्याकुल रहती हो और अब यहाँ ही उन वछड़े के आ जाने पर अपने थन से दृश्य बहाती हुई खड़ी हो।

उम नमय, राम ने लक्षण का पुनः-पुन आलिंगन किया और अपनी अश्रुधारा में उमके स्त्री-जैमे शरीर को धो डाला। फिर कहा—हे लोहे के स्तम्भ-जैमे कधोवाले ! वह नोचक कि तुम कहों खो गये हो, अवतक मैं अत्यत हुःखी हो रहा था।

‘क्या घटित हुआ ? मुझे बताओ।’—राम के यों पूछने पर लक्षण ने सारा वृत्तान कह दुनावा। तब उन प्रभु ने जिनमे वड़ी अन्ध कोई सत्ता नहीं है, आनंद और व्यथा दोनों को एक माथ ही प्राप्त किया।

फिर, राम ने लक्षण ने कहा—जो विशाल भूमुड़ के मध्य फँसा हो, क्या प्रत्येक लक्ष के आत समय उनका भयभीत होना उचित है ? उसी प्रकार दुर्दैव के प्रभाव से जन्म-नयी वंधन में पड़े हुए हमें, हु खट विषदा के प्राप्त होने पर शिथिल नहीं होना चाहिए।

तीन देव (व्रता विष्णु और महेश), तीन लोकों के निवासी—सब मेरे शत्रु बनकर आये—तो भी मुझे कौन जीत नक्षेगा ? भाई ! हुम मेरे माथ हो—यह एक वात ही मुझे बल देता है। इसने बढ़कर मुझे और कोई रक्षा नहीं चाहिए। (वर्धात्, अन्य कोई नेता आवश्यक नहीं है।)

मुझमे जो वियुक्त होते हो, होवें । जितनी भी आपदाएँ आती हो, आयें । किंतु दीर्घ वीर-कक्षण धारण करनेवाले हे वीर । वे मारी आपदाएँ तुम्ही से दूर होनेवाली हैं । मेरे निकट रहकर वे (विपदाएँ) मुझे सता नहीं सकती ।

भयकर युद्ध करने में निपुण वीर । तुमने कहा कि युद्धकुशल राज्ञसी को परास्त कर लौटे हो । ज़ुद्र स्वभाववाली उस राज्ञसी के वचनों से उत्तेजित होकर उसे तुमने मार तो नहीं डाला । बताओ ।

तब लक्ष्मण ने कहा—‘मैंने उस राज्ञसी की नाक, कान और बंधन में स्थित स्तनों को काट दिया । उस समय वह चीख उठी ।’ यह कहकर (लक्ष्मण) हाथ जोड़कर खड़े रहे ।

आनंद से प्रफुल्ल होकर राम ने कहा—अँधेरे में तुम्हें मारने के लिए आई हुई राज्ञसी को भी तुमने नहीं मारा । किन्तु, उसका अग-भग मात्र किया । तुम चतुर हो । मनु प्रभृति राजाओं के इस वश के अनुकूल ही तुमने आचरण किया है और अपने भाई को गले लगा लिया ।

वीर (राम) और लक्ष्मण—जैसे अपार दुःख से मुक्त हुए । वारुण अस्त्र को प्रयुक्त करके गगन में वर्षा उत्पन्न की और उसका जल पीकर प्रभात काल की प्रतीक्षा करते हुए एक पर्वत पर विश्राम करते रहे ।

पथरो से भरी धरती पर, अरण्य के पत्तियों और पुष्पों को लेकर लक्ष्मण के द्वारा वनाई गई शश्या पर, बड़ी वेदना भोगते हुए रामचन्द्र ने शयन किया । लक्ष्मण उनके कोमल चरणों को सहलाते रहे ।

राम ने कलापी-तुल्य सीता से वियुक्त हो जाने के पश्चात् अपमान की पीड़ा से कुछ आहार नहीं किया था । शोक की अधिकता से निद्रा भी नहीं की थी । उनके ऐसे दुःख का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं ? उनके निःश्वासों के मध्य उनके प्राण भूलते रहे ।

राम, विरह की पीड़ा से बोल उठे—मेरी आँखों को अरण्य में सर्वत्र सीता का रूप ही दिखाई पड़ता है । यह क्या इसलिए कि मैं उसके रूप को नहीं भूल सका हूँ, या नहीं तो क्या यह भी राज्ञसों की माया है ?

काले केशोंवाली, अरुण रेखावाले नेत्रों से युक्त तथा पतित्रता नारियों के आभरण-सदृश उम (सीता) को मैं अपने पाश्व में देखता हूँ । किन्तु, उसका आलिंगन करने के लिए उदात् होने पर उसका स्पर्श नहीं पाता हूँ । क्या उसकी कटि के समान ही उसका आकार भी थोड़ा-थोड़ा करके क्षीण होता हुआ अदृश्य हो गया है ।

(पहले मुझे ऐसे लगा जैसे) मैंने उसके सद्योविकसित कमल (समान मुख) के मधुपूर्ण विव तथा प्रवाल के समान अधर के अमृत का पान किया । किन्तु, वह मेरे पाश्व में नहीं थी । क्या पलक न लगने पर भी स्वप्न दिखाई पड़ते हैं ?

यदि यह रात्रि मुझे ऐसा दुःख दे, जो पृथ्वी, गगन आदि पञ्चभूतों एव मन के विचार से भी बड़ा हो, तो क्या यह (रात्रि) शीतल, सुगंध तथा नीलवर्ण से दुक्त कुतलो-वाली सीता की आँखों से भी बड़ी होगी ?

जल तथा उम्में सच्चरण करनेवाले मीनों से युक्त समुद्र से मनोहर चन्द्र के नाम से जो प्रलयाभि उत्पन्न हुई है, उसकी उष्ण किरणों के स्पर्श से उत्तम आकाश के शरीर-भर में फफोले-मे पड़ गये हैं (अर्थात्, नक्षत्र आकाश के फफोले कहे गये हैं ।)

चक्रवर्ती राम इस प्रकार के अनेक बचन कहकर व्याङुल हो रहे थे । उसी समय अर्घ्ण किरणेवाला सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे उन (राम) की दुःखमय दशा को देखकर स्वयं दुःखी होकर सहानुभूति दिखा रहा हो । (१-१०१)



अध्याय ३३

कबन्ध पटल

वे (राम-लक्ष्मण), प्रभात के समय उस कलापी-हृत्य रूपवती, पतिव्रता (सीता) देवी का, जिसकी कृमा की तुलना में पृथ्वी का कृमा-गुण भी निस्तार-सा लगता था, अन्वेषण करते हुए गये । पक्षी इस प्रकार शब्द कर रहे थे, मानों वे उनके दुःख को देखकर रो रहे हों ।

वे दोनों धनुर्धर बीर, पचास योजन-पर्यंत अरण्य को पार करके गये और कबध नामक उस राक्षस के बन में जा पहुँचे, जो एक ही स्थान पर पड़ा रहता था और अपनी दीर्घ वाँहों को दूर तक फैलाकर सब प्राणियों को हाथों से उठाकर अपने पेट में भर लेता था । उत्तने में सूर्य भी आकाश के मध्य आ पहुँचा ।

(उस राक्षस के हाथों में पड़नेवाले) हाथी से चीटी तक, सब प्राणी मिट जाते थे । उसकी देखने मात्र में अत्यंत भय से काँपने लगते थे । उसके चग्गुल में आकर फिर उस वधन से वे कभी छूट नहीं पाते थे ।

कबध के निकट सब प्राणी इस प्रकार काँपते रहते थे, जिस प्रकार, कुल-परपरा से आगत नीतिमार्ग को छोड़नेवाले, शामन की दक्षता से रहित, शक्तिहीन गजा के राज्य में रहनेवाले प्राणी हों । वे विखर जाते, एक साथ नम्मिलित होते, पीड़ित होकर भागते और स्तव्य हो खड़े रहते ।

वडे-वडे पर्वत भी कबध के हाथों में लुढ़कते हुए चले आते । वडे-वडे वृक्ष भी जड़ से उखड़-उखड़कर निकल आते । अरण्य की नदियाँ उमड़कर ऊँचे स्थानों एवं सब दिशाओं में फैल जाती । जल-भरे मेघ भी नीचे आ गिरते । यह सारा दृश्य उन वीरों ने देखा ।

जिस प्रकार मार्गी सुष्टि के विनाश का कारणभूत प्रलय-काल जब आता है, तब प्रभजन का थपेड़ा खाकर चतुर्दिंक्से समुद्र उमड़ उठता है और गर्जन करता हुआ सारी पृथ्वी को ढक देता है, उसी प्रकार सबकी चारों ओर मे धेनकर आनेवाली (कवंध की) उन वाँहों में वे (गम-लक्ष्मण) भी फैस हैं ।

मानो चक्रवाल पर्वत ही सिमटकर आ रहा हो, इस प्रकार आनेवाली उन प्राचीर-जैसी बाँहों में फँसकर वे दोनों वीर, यह सोचकर प्रसन्न हुए कि मधु-जैमी भीठी बोलीवाली सीता की रक्षा के उद्देश्य से रावण की सेना ही आकर उन्हें धेर रही है (और उस सेना को मिटा देने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है) ।

राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे तात ! ऐसा लगता है कि सीता का हरण करनेवाला रावण यहीं पर निवास करता है । अब हमारा दुःख मिटनेवाला है ।

तब लक्ष्मण ने (राम को) प्रणाम करके उत्तर दिया—यह राक्षस-सेना होती, तो क्या नगाड़े वजने की ध्वनि और शखनाद नहीं सुनाई देते । यह राक्षस-सेना नहीं है और कुछ है । फिर, लक्ष्मण भी सोचने लगे (कि यह क्या है ?) ।

फिर, लक्ष्मण ने (राम से) कहा—प्रलयकाल में भी अमर रहनेवाले हैं प्रभु ! यह कदाचित् वह सर्प ही है, जिससे देवों ने मदर-पर्वत को लपेटकर क्षीर-सागर को मथा था, अथवा यह कोई दूसरा सर्प है । यह (सर्प) अपने मुँह से अपनी पैঁछ को जोड़कर घेरा बनाकर हमें बाँध रहा है ।

आगे-आगे चलनेवाले (राम) ने लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर मोचा कि उसका कथन ठीक ही है । फिर (उस घेरे में) दो योजन दूर जाने पर वे दोनों उस पर्वताकार राक्षस के सम्मुख आ खड़े हुए ।

वहे राक्षस अपनी आँखों के साथ ऐसा दृश्य उपस्थित करता था, जैसे उष्ण किरणवाले दो सूर्यों से युक्त मेशपर्वत हो । उसके पेट में ही उसका मुँह था, जिसमें दौँत ऐसे थे कि उनके मध्य दो-दो ‘खात’ (दस मील का एक खात होता था) की दूरी थी और (वह मुँह) मकर-मीनों से पूर्ण समुद्र के समान था ।

उसकी बाँहे इस प्रकार पड़ी थी, जैसे देवों के द्वारा मदर-रूपी दिव्य मथानी को (क्षीरसमुद्र में) डालकर उसपर लपेटा गया वासुकि सर्प दोनों ओर से खीचा जाकर फैला हुआ पड़ा हो ।

उसकी नासिका से इस प्रकार अग्नि और धूमलता निकल रही थी, जैसे लुहार की भाथी हो । उसके सामने उसकी जिहा इस प्रकार निकली हुई थी, जैसे विशाल समुद्र को एक ही दशा में रखनेवाली बड़वाग्नि की ज्वाला हो ।

उसके मुँह के दोनों खड़ग-दत इस प्रकार लगते थे, मानो पूर्णचद्र, (राहु नामक) सर्प को अपनी ओर आते हुए देखकर भय से एक सुरक्षित स्थान को खोजता हुआ आया हो और निर्भरों से पूर्ण महान् पर्वत की कदरा के भीतर, दो खड़ होकर, छुस रहा हो ।

उसका शरीर शीतल जल, प्रभृति प्रसिद्ध पञ्चभूतों से नहीं बना था, किंतु शास्त्री में बताये गये पञ्चमहापाप ही एकत्र होकर उस आकार में आ गये थे ।

उसके कर्ण-कुहर ऐसे थे, जैसे उष्ण तथा शीतल किरणवाले ज्योतिर्षिंडो (अर्थात्, सूर्य-चद्रों) को निगलनेवाले सर्पों (राहु-केतु) के, कुछ कार्य न रहने पर, विश्राम करने के लिए योग्य विल हों । उसका उदर उस नरक का भी उपहास करनेवाला था, जिसमें असत्य भाषण आदि पाप कर्म करनेवाले नीच गुणवाले पापी रहते हैं ।

वह (कवध) अपने करो से सब प्राणियों को उठाकर अपने विशाल नाव-जैसे चड़र में भर लेता था, जिससे उसका मुँह यम-पुरी के विजयशील द्वार के समान था ।

वह ममुद्र के समान बड़ा कोलाहल कर रहा था । उसका शरीर हल्साहल विष के ममान काला और उष्ण था । उसका आकार, विष्णु के चक्र के द्वारा शिर के कट जाने पर पड़े हुए कालनेमि (नामक राक्षस) के कवध (धड़) के समान था ।

वह ऐसा लगता था, जैसे मेर पर्वत प्रभजने के भोके खाने से शिखरों के दूट जाने पर शिखरहीन हो पड़ा हो । इस प्रकार के कवध को सूक्ष्म ज्ञानवाले उन दोनों वीरों ने देखा ।

उन्होंने उसके उस फटे मुँह को देखा, जिसमें चक्रवाल पर्वतों की सीमा से घिरी हुई नारी पृथ्वी समस्त नमुद्रों-महित ध्रुम सकती थी और उन्होंने भीचा कि यह राक्षसों-जैसे किमी प्राचीरावृत नगर का द्वार है, जिसके भीतर देवता लोग भी प्रवेश नहीं कर सकते ।

उस समय, अनुज (लक्ष्मण) ने, (कवध को) भली भाँति देखकर कहा— हे वनुर्विवा में निपुण ! यह कोई बड़ा भूत है । यह सब प्राणियों को अपने हाथों से धोकर अपने मुँह में डालता है । हमको भी उन प्राणियों के साथ मिलाकर खा जायगा । अब हम क्या करें ! तब राम ने उत्तर दिया—

हे धरती को उठानेवाले आदिवराह जैसे बलवाले । हाँ, यह कोई भूत ही है; क्योंकि वह देखो, इसका शरीर इस प्रकार फैला है कि यह विशाल धरती भी इसके लिए पर्याप्त नहीं मालूम होती । इसके दाये और वायें दीर्घ बाँहें फैली हैं ।

हे भाई ! कलापी-तुल्य सीता विदुक्त हुई । पितृ-तुल्य जटायु मर गये । अपयश ने पीड़ित चित्त के साथ मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ । अतः, मैं इस (भूत) का भोजन बन जाऊँगा । तुम यहाँ से बचकर चले जाओ ।

मुझे जन्म देनेवालों को दुःखी बनाते हुए, अपने भाई को दुःखी करते हुए, युज्जनां के दुःखी होते हुए, सब अपयश का आश्रम बनकर, मैं उत्पन्न हुआ हूँ । अब मैं अपने प्राण छोड़ देविना इन अपयश को मिटा नहीं सकता ।

क्या मैं मिथिला के राजा के पास पर्वत-जैसे ढढ तूणीर तथा धनुष को लेकर वह कहता हुआ जा सकूँगा कि गृहस्थाश्रम के योग्य आपके द्वारा प्रदत्त, मधुरभाषिणी पुष्प-लता-समान सीता राक्षसों के घर में रहती है ।

‘विकमित पुष्पों से भूपित सीता की रक्षा करने के सामर्थ्य से हीन होकर, मैं, अपने अनुज की रक्षा पाकर ही जीवित हूँ’—ऐसी वात सुनने की अपेक्षा यह बचन अच्छा होगा कि ‘मैं परलोक में रहता हूँ ।’ अतः, अब इस जीवन को त्याग देना ही उचित है ।

हमारी (लेखक की) दासता को स्वीकार करनेवाले राम ने जब ये बातें कही, तब अनुज ने कहा—मैं आपके पीछे-पीछे इस कानन में आया । मेरे आने पर भी ऐसी विमटा आपको प्राप्त हुई है । किन्तु, यदि आपके पूर्व ही मैं अपने प्राण न त्यागकर अपने प्यारे प्राण लेकर लौट जाऊँ, तो मेरी सेवा क्या बहुत भली होगी ?

फिर, लक्ष्मण ने कहा—दुःख को जीतनेवाले ही तो धीर होते हैं। यदि अपने पिता, माता, ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरुजनों से पहले ही (उन गुरुजनों की रक्षा में) कोई अपने प्राण न त्याग करे, तो उसका जीवन अपयश का ही तो भाजन होगा।

‘हरिणी-तुल्य पत्नी के साथ ज्येष्ठ भ्राता अरण्य में निवास करने गया, तो उसका अनुज, निद्राहीन रहकर उनकी रखबाली करता रहा’—इस प्रकार मेरी प्रशंसा जो लोग करते थे, उनके द्वारा, ‘उस ज्येष्ठ भ्राता तथा उस भ्राता की पत्नी से अलग होकर आ गया,’—इस प्रकार का अपयश पाना कितना बड़ा पाप होगा?

मेरी माता (सुमित्रा) ने सुझसे कहा था—‘तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता की सब आज्ञाओं का पालन करते रहना। किसी भी विपदा को सहने के लिए तैयार रहना। यदि महान् यशस्वी राम का कभी विनाश होने की सभावना हो, तो उनसे पहले तुम अपने प्राण त्यागना।’ मैं यदि अपनी माता के वचन पर स्थिर न रहूँगा, तो मेरा सत्य कैसे टिकेगा?

हे सुन्दर स्वर्ण-आभरणों से भूषित कधीवाले! ‘मेरी जननी तथा मैं आपकी जननी तथा आपके मन के अनुकूल और सब सज्जनों के लिए प्रिय, व्यवहार करते रहते हैं’—ऐसी प्रशंसा के पात्र हम बनना चाहते हैं। इसके विपरीत अपने प्राणों को बचाये रखने की इच्छा करके हम अपने कर्तव्य का त्याग नहीं करेंगे।

उस प्रलय-काल में भी जब सारी सृष्टि मिट जाती है, जब शाश्वत वेदों के द्वारा प्रशंसित देवता भी मिट जाते हैं, तब भी आपका अन्त नहीं होता। ऐसे आप, हाथी आदि प्राणियों को खाकर इस बन में रहनेवाले भूत के द्वारा मारे जाकर मिट जायें, क्या यह भी सम्भव है?

सुननेवाले इस बात को न मानेंगे। देखनेवाले इसे नहीं चाहेंगे। ‘पुष्पमाला-भूषित कुतलोंवाली सीता को दुःख में न रखा, किन्तु (राक्षसों के साथ) युद्ध करके (उस सीता को) मुक्त किया’—इस प्रकार का महान् यश न पाकर, ‘युद्ध में (राक्षसों को) नहीं जीत सका और ऐसे ही मर गया’—ऐसी निंदा पाना क्या उचित है? ऐसी निंदा से बढ़कर और क्या अपयश हो सकता है?

विष के समान क्रूर इस भूत की गणना ही क्या है? यह बात नहीं है कि इस करबाल के आधात से इसके प्राण नहीं निकलेंगे। देखिए, मैं किस प्रकार, हमें घेरनेवाले इसके हाथों को और इसके विल-जैसे मुँह को काट देता हूँ। आप चिन्ता छोड़िए।—यो लक्ष्मण ने कहा।

इस प्रकार के वचन कहकर लक्ष्मण स्वयं प्रसु से आगे बढ़ने लगे। तब राम लक्ष्मण से आगे जाने लगे। इस समय लक्ष्मण ने राम को रोका। यह देखकर हाय। स्वयं देवता भी रो पड़े, फिर अन्यों के सबध में क्या कहा जाय।

इस प्रकार, वे दोनों वीर-ककणधारी वीरमुख के दो नेत्रों के समान चलकर कवंध के निकट पहुँचे। तब कवंध ने उनसे प्रश्न किया, ‘कर्म के परिणामस्वरूप यहाँ आये हुए तुम दोनों कौन हो?’ यह सुनकर वे दोनों बड़े क्रोध के साथ उसके सामने अपलक खड़े रहे।

कवध यह देखकर कि उसके प्रश्न से वे (राम-लक्ष्मण) डरे नहीं, किन्तु उसकी अवहेलना करते हुए खड़े हैं, अत्यधिक क्रोध से भर गया। उसके रोम-रोम से चिनगारी निकलने लगी। वह उन्हे निगलने की इच्छा से बढ़ा। तब उसके गगनोन्नत कधों को उन्होंने अपने करवाल से कट दिया।

उसकी दोनों बाँहों के कट जाने से उसकी देह से रक्त की धारा नीचे की ओर बहने लगी। तब वह एक ऐसे पर्वत की समता करने लगा, जिसके दोनों ओर पथरों से भरे मानु होते हैं।

प्रभु के कर का स्पर्श होने से उम (कवध) का वह शापमय रूप भी मिट गया। उमका पार मिट गया। कटे हाथोंवाले घोर आकार को छोड़कर वह गगन में इस प्रकार जाकर प्रकाशमान हुआ, जैसे कोई पक्षी अपने पिजरे से आकाश में उड़ चला हो।

गगन में खड़े होकर उसने सोचा कि यह राम ही ब्रह्मा प्रभृति सब देवों के ध्यान में प्रत्यक्ष होनेवाले हैं, और उनके गुणों का गान करने लगा। जब पुण्य-फल अनुकूल होता है तब कौन-मा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है?

कवध ने राम से कहा—हे प्रभु! मुझ, पापी के शाप को तुमने दूर किया। क्या तुम्ही सारी सृष्टि के निर्माता हो? तुम्ही अविनश्वर धर्म के साक्षीभूत हो? तुम्ही देवों की पूर्वकृत तपस्या के फल के साकार रूप हो? क्या तुम्ही वह परमतत्त्व हो, जो तीन मूर्तियों में विभक्त हुआ है?

हे कारण-रहित आदिपरब्रह्म! तुम्हारे अवतार के तत्त्व को कोई भी नहीं पहचान सकता। क्या तुम वह वटबृक्ष हो, जो प्रलय-काल में उत्पन्न होता है। या, क्या उम वृक्ष का पत्ता हो? या उम वट-पत्र में शयन करनेवाले बालक हो? या सृष्टि के आदिकारणभूत परमपुरुष हो? कहो, तुम कौन हो?

ससार में जो देखनेवाले जीव हैं और जो देखे जानेवाले पदार्थ हैं, तुम उन सबकी दृष्टि हो। तुम सब पदार्थों में सलग रहते हो, किन्तु तुम्हे सुख-दुःख से कुछ सम्बन्ध नहीं रहता। अपने दिव्य प्रभाव से तुम सब लोकों को अपने उदर में समा लेते हो और फिर उन्हे प्रकट कर देते हो। क्या तुम पुरुष हो? जी हो? अथवा उन दोनों से परे हो (अर्थात्, उभय से पृथक् हो)? अथवा और कोई हो?

सृष्टिकर्ता ब्रह्म तुम्ही हो। उम ब्रह्म का कारणभूत परमपुरुष (विष्णु) तुम्ही हो। उम परमपुरुष का भी कोई कारणभूत तत्त्व हो, तो वह भी तुम्ही हो। प्रसिद्ध वेद तुमको परम ज्योति कहते हैं। तो क्या अन्य देवता लोग उससे लजित नहीं होते (अर्थात्, अन्य देवों की परम ज्योति कहना उचित नहीं है)?

अष्ट दिशारूपी प्राकार से युक्त, चौदह मंजिलों के इस ब्रह्माड-रूपी महान् मदिर को मर्वन्न प्रकाशित करनेवाले तीनों ज्योतिर्मंडलों (अर्थात्, चद्र-मंडल, सूर्य-मंडल और नन्दन-मंडल) के ऊपर स्थित परमपट में कभी प्रफुल्ल न होनेवाले कमल-कोरक के भीतर रहनेवाला वीज ही तुम्हारा आवाम है।

हे परमेष्ठिन् (अर्थात्, परमपट के स्थान में निवास करनेवाले)! अनत अष्ट

दिशाओं में स्थित भूदेवों (ब्राह्मणों) के द्वारा किये जानेवाले उत्तम यज्ञों में हविर्भाग का भोजन करनेवाले तुम्हीं हो । वह भोजन देनेवाला (अर्थात्, यज्ञकर्ता) भी तुम्हीं हो । तुम्हारे इन दो रूपों में रहने के तत्त्व को कौन जान सकता है ?

हे परात्पर ! जिस प्रकार स्थिर जलाशय में बुद्धबूद उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक अङ्ग तुम्हें एक समान निकलते हैं और (प्रलय-काल में) तुम्हमें विलीन हो जाते हैं । इस तत्त्व को कौन ठीक-ठीक समझ सकता है ?

क्या तुम्हारी लीलाओं को देखकर ही वेद प्रकाशित किये गये हैं ? या वेदों में प्रतिपादित ढग से तुम्हीं अपने कार्य करते रहते हो ? तुमने मुझे ऐसा फल दिया है, जिसे पापकर्म करनेवाले लोग कभी प्राप्त नहीं कर सकते । न जाने, पूर्वजन्म में मैंने क्या पुण्य किये थे (जिससे यह भाग्य मुझे अब प्राप्त हुआ है) ?

प्रेत के समान मेरे पापों के आश्रयभूत राक्षस-जन्म के दोषों को मिटाकर तुमने मुझे निर्दोष दिव्य जन्म प्रदान किया । मुझे दुःख-समुद्र के पार लगाया और तुम्हारे प्रति अज्ञान-जन्य मेरे विरोध को मिटा दिया । हे मेरे प्रभु ! श्वान-सदृश रहनेवाला मैंने, न जाने कौन-सा खड़ा सुकृत किया था ?

इस प्रकार के मधुर वचन कहकर कबध यह सोचकर कि यदि मैं सारे भविष्य को स्पष्ट रूप से कह दूँ, तो वह देवताओं की इच्छा के अनुकूल नहीं होगा, माँ को देखकर प्रसन्न होनेवाले गाय के बछड़े के जैसे चुपचाप खड़ा रहा । तब धर्मनिष्ठ लोग जिनका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उन प्रभु (राम) ने उसकी ओर देखा ।

फिर, राम ने अपने अनुज से पूछा—हे भाई ! यह अत्युज्ज्वल दुर्लभ देह धारण कर खड़ा रहनेवाला क्या वही है, जो अभी हमारे हाथों मरा था ? या नहीं तो, यह कोई दूसरा प्रभावशाली व्यक्ति है ? तुम इसे भली भाँति देखो । तब लक्ष्मण ने उस (कबध) से प्रश्न किया कि तुम कौन हो ?

तब कबध ने कहा—मनोहर आमरणों तथा पुष्पमालाओं से भूषित है वीर ! मैं तनु नामक एक गधवं हूँ । शाप के कारण मुझे यह राक्षस-जन्म मिला था । तुम दोनों के कर-कमल का स्पर्श पाकर मैं अपने पूर्वस्प को प्राप्त कर सका । तुम मेरे पितामह-तुल्य^१ हो । मेरे वचन सुनो—

तुम दोनों शर-प्रयोग के लिए उपयुक्त धनुष को धारण करनेवाले हो । यद्यपि तुम्हारी सहायता करनेवाला कोई नहीं है, तथापि सीता का अन्वेषण करने के लिए तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए किसी सहायक का होना उत्तम होगा । जिस प्रकार विना नाव के समुद्र को पार करना कठिन है, उसी प्रकार विना सहायक के शत्रु-पक्ष का विनाश करना भी कठिन है ।

दोषरहित शिव के प्रताप के बारे में क्या कहें ? वह देव, पद्म में उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा बनाई हुई सारी सुष्ठि का विनाश करनेवाला है, किन्तु वे भी अवार्य वलशाली भूतों को अपने साथी बनाकर रखते हैं । यह तुम जानते ही हो ।

१. कवंध के दुःख को दूर करने के कारण वह राम-लक्ष्मण को अपने पितामह-तुल्य समझता है । —अनु०

कर्तव्य कार्य क्या है ?—इसका भली भाँति विचार करना चाहिए । धर्म क्या है ?—इसका विचार रखना चाहिए । दुर्जनों को साथी न बनाकर सज्जनों को ही महायक बनाना चाहिए । अतः तुम दोनों उम शवरी के पास जाओ, जो सब प्राणियों के लिए माता के तुल्य हैं । उसके कथन के अनुसार चलकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचो ।

वहाँ रहनेवाले सूर्य-पुत्र, स्वर्ण की कातिवाले सुश्रीव से मित्रता कर लेना । उसकी महायता मेरे, दीर्घ वाँस-जैसे कधोंवाली (सीता) का अन्वेषण करना उचित होगा । इस प्रकार कवध ने कहा । शब्दायमान वीर-वलयधारी वीर (राम-लक्ष्मण) वैसे ही करने को महमत हुए ।

फिर, कवध ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी 'जय' बोलकर गगन-मार्ग से उड़कर चला गया । मनुवश के उत्तम कुमार वे (राम-लक्ष्मण) भी दक्षिण दिशा में चलकर पर्वतों और अरण्यों को पार करते हुए गये । जब रात्रि का समय आया, तब मरणमुनि के आश्रम में जा पहुँचे । (१-५८)



अध्याय ३८

शबरी-मुक्ति पटल

सब अभीष्टों को प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षों के सदृश वृक्षों से परिपूर्ण सुराधित वह (मरणाश्रम का) उपवन उम स्वर्गलीक के समान था, जहाँ स्मृहणीय सुख ही रहते हैं कोई दुःख नहीं रहता है, और जहाँ पुण्यकर्म करनेवाले लोग ही जाते हैं ।

वे राम, जिनके मूलभूत कोई पदार्थ नहीं है, उस आश्रम में पहुँचे, जहाँ उन (राम) का ही ध्यान करती हुई तपस्या करनेवाली शवरी रहती थी । निकट पहुँचकर उन्होंने उससे प्रश्न किया—‘सुख से रहती हो न ?’

उम समय, उस (शवरी) ने बड़ी भक्ति से उन (राम) की प्रस्तुति की । अपनी बॉखों से अनु की धारा बहाते हुए कहा—‘मेरा मायामय सासारिक वंधन अब ढूँढ़ा । चिरकाल मेरे मैं जो तपस्या करती रही, उसका फल अब प्राप्त हुआ । मेरा जन्म (सकट) मिटा ।’ यह कहकर फिर उमने बड़े प्रेम से एकत्र कर रखे हुए फल-कद आदि लाकर उन (राम-लक्ष्मण) को भोजन कराया । तब—

शवरी ने राम मेरे कहा—‘हे प्रसु ! शिव, कमलभव (ब्रह्म), इद्रादि देवता आनन्द के नाथ यहाँ आये और मुझसे यह कहकर गये कि तुम्हारी पवित्र तपस्या की सिद्धि का काल आ गया है । और कुछ दिन यही रहो । जब रामचंद्र यहाँ आयेंगे, तब उनका नक्तार करके उसके पश्चात् हमारे लोकों मेरा आना ।

‘मेरे प्रसु ! तुम यहाँ आनेवाले हो—यह समाचार पाकर मैं तुम्हारे दर्शन की

अभिलाषा से यही रहती हूँ। आज ही मेरा सुकृत सफल हुआ है। इस प्रकार, शवरी ने कहा। तब उस महातपस्विनी को प्रेम से देखकर राम ने कहा—‘हे माता ! हमारे मार्ग-गमन के श्रम को तुमने दूर किया। तुम्हारा श्रेय हो।’

राम तथा उनके अनुज उस दिन वही रहे। तब पापनाशक तपस्या करनेवाली (शवरी) ने उन्हें सच्चे प्रेम के साथ देखकर शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ पर चलनेवाले और उष्णकिरण सूर्य का पुत्र सुश्रीव जिस स्थान पर रहता था, वहाँ जाने का मार्ग पूरे विवरण के साथ बताया।

शास्त्र-श्रवण से जिनके कर्ण पवित्र हुए हैं, ऐसे महात्मा लोग जिस अमृतमय आस्वाद (ब्रह्मानन्द) को अपने सूद्धम तत्त्व-ज्ञान के द्वारा प्राप्त करते हैं, उस (ब्रह्मानन्द) के साकार रूप प्रभु (राम) ने शवरी के उन वचनों को सुना, जो महान् आचार्यों के द्वारा मोक्ष-प्राप्ति के लिए दिये जानेवाले उपदेशों के समान थे।

फिर, वह शवरी बड़ी कठिनाई से सपन्न की गई तपस्या के प्रभाव से अपनी देह का ल्याग कर अनुपम मोक्ष-लोक में आनंद से जा पहुँची। उस दृश्य को उन वीरों ने आश्चर्य से देखा। और फिर, उस (शवरी) के कहे मार्ग पर अपने वीर-चलयों को झकृत करते हुए चल पड़े।

वे (राम-लक्ष्मण), शीतल वनों, पर्वतों तथा विभिन्न दिशाओं को पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ चले और उस पाप सरोवर के निकट जा पहुँचे, जो ऐसा था, मानों धरती के मानवों के प्रतिदिन आकर उसमें स्नान करने के कारण, उनके प्रभूत पाप-रूपी अग्नि से पुण्य ही पिघलकर उस सरोवर के रूप में रहता हो। (१-६)

कंब रामायण
किञ्चिकन्धाकाण्ड

मंगलाचरण

तीन वर्ण के तीनों गुण (सत्य, रज, तम) वाली मूल प्रकृति, उससे उत्पन्न सब तत्त्व, उस प्रकृति को गोचर करनेवाले नानारूपात्मक लोक तथा इन लोकों में स्थित सब पदार्थ, जिस परब्रह्म का शरीर वने हैं, वही (हमारे) सद्ज्ञान का मधुर विषय बना है, (जिसका चरित्र हम गा रहे हैं) ।

अध्याय ३

पंपा पटल

वह (पपा-सरोवर) मधुपूर्ण पुष्पों से भरा था । उसमें रक्तनेत्र एव उष्ण शुड़ से युक्त मत्तगज गोते लगाते थे, वह स्वच्छ था । वह ऐसा था, मानो जल से भरा समुद्र विजली से युक्त मेघों के सहित आकाश को भी साथ लेकर धरती के मध्य आकर विराजमान हो गया हो ।

काटकर चिकना किये गये स्फटिक-खड़ के समान अति स्वच्छ (उस सरोवर का) शीतल जल, नवविध रत्नों से जड़ित सीढ़ियोवाले घाटों पर जब-जब तरर्गें उठाकर टकराता था, तब-तब वह जल रत्नों की काति से रजित होकर, (अनेक शास्त्रों का) विवेचन करके भी सत्यज्ञान से विहीन रहनेवाले लोगों के चित्त की समता करता था ।

मुक्ताओं से पूर्ण उस सरोवर के मध्य, प्रवाल-सदृश टाँगोवाले राजहस और हसिनियाँ, एक साथ दृष्टि-गोचर होते थे, जिससे वह सरोवर उस विशाल आकाश के समान दिखता था, जिसमें अनेक राका-चद्र उज्ज्वल नक्त्रों-तहित निखर रहे हों ।

वह सरोवर ऐसा लगता था, जैसे अममान गाधिसुत (विश्वामित्र) ने समुद्र से आवृत लोक, प्राणिवर्ग तथा वेद-पारग (ब्राह्मण) आदि की प्रतिसृष्टि करते समय, शीतल लवण-समुद्र के बदले मधुर जल से पूर्ण इस (सरोवर) का सर्जन किया हो ।

वह सरोवर इतना गमीर और इतना स्वच्छ जल में पूर्ण था कि (उसके सबंध में) यह कहा जा सकता है कि सूर्य के प्रतिस्पर्धी नागों का लोक यही है (अर्थात्, उसके जल की स्वच्छता के कारण पाताल तक दिखाई पड़ता था)। कल्पवृक्ष-मद्दण तथा महाकवियों के शब्दों के अर्थ के समान ही वह सरोवर, पाताल तक अत्यन्त स्वच्छता में परिपूर्ण था।

विशाल दलों से युक्त पुष्पों में विश्राम करनेवाले और अच्यक्त मधुर शब्द करने-वाले हस आदि पक्षियों से युक्त वह सरोवर, नाना प्रकार की वस्तुओं से सपन्न किसी वडे नगर की पण्यकीथी की समता करता था।

उस सरोवर में सर्वत्र फैले हुए रक्तकमलों के मध्य जो हंस विचर रहे थे, वे ऐसे लगते थे, मानो यह सोचकर कि हम सुवासित कुतलोवाली मीता का पता नहीं लगा सके, इसलिए हम (रामचन्द्र का) सुख देखे विना ही अपना प्राण त्याग कर देंगे, वे (हंस) अपनि के मध्य कूद पड़े हों।

वह सरोवर इतना स्वच्छ था कि उसके अतर्गत (रहनेवाले) मुक्ता आदि स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। साथ ही वह यत्र-तत्र सेंवार आदि के फैले रहने से मलिन भी दिखाई पड़ता था। वह उस शान के सदृश था, जो अविद्या के स्पर्श से कलंकित ही गया हो।

उस सरोवर में जो मीन थे, वे मानो यह सोचकर छिपे हुए थे कि दुःखी मनवाले श्रीरामचन्द्र यदि हमं देख लेंगे तो, वे साकार सतीत्व-जैसी और शुकमधुर-भाषिणी देवी (सीता) के नयनों (की छाया) को हम में देखकर, कभी अशु न वहानेवाले अपने नयनों में कही अँखू न भर लावें।

वाँसों में उत्पन्न मोतियों, मदजल वरसानेवाले मेघ-सदृश हाथियों के दंतों से उत्पन्न मोतियों, तथा अन्य रत्नों को लिये हुए पर्वत-निर्भर, आभरणों से भूषित वस्तु के जैसे होकर उम सरोवर में आकर गिरते थे। अतः, वह (सरोवर) कर्णभरणों से शोभायमान बदनवाली सुन्दरियों की छवि की समता करता था।

उष्ण मदजल वहानेवाले हाथी उस सरोवर में निमग्न होते थे, जिससे उसका जल पक्किल हो जाता था। अतः, वह (सरोवर) उन आभरण-भूषित वारनारियों की समता करता था, जिनका शरीर, रात्रिकाल में मन्मथ-समर से श्रांत हो गया हो।

गगन-चुबी पर्वतों से प्रवाहित मेघ-धाराएँ और हाथियों के, अमरों को आङ्गृष्ट करनेवाले सुरभित मदजल-प्रवाह, उस सरोवर में भर जाते थे, जिससे उस जल को पीनेवाले प्राणी भी मस्त हो जाने थे। इस कारण से वह (सरोवर) मनोहर केशोवाली सुन्दरियों के विव-सदृश अधर की समता करता था।

आर्यवाणी (संस्कृत) आदि अठारहो भाषाएँ किसी एक अल्पज्ञ व्यक्ति को प्राप्त ही गई हो, (और शब्दशायमान ही गई हो) इसी प्रकार उस सरोवर में विविध पक्षी निरतर ऐसी विविध प्रकार की ध्वनियाँ करते रहते थे, जिन (ध्वनियों) को पृथक्-पृथक् पहचानना असम्भव था।

एक हस, जो प्राणों के समान ही उसका आलिंगन करके रहनेवाली अपनी

इसीनी से इस प्रकार विछुड़ गया था, जैसे शरीर प्राणों से अलग हो गया हो, देवागनाओं के (जो वहाँ स्नान करने के लिए आई थी) नूपुरों के मधु-सद्दश शब्द को कान लगाकर सुन रहा था ।

असंख्य पर्वतों से निर्भर के द्वारा बहाकर लाये गये सुगंधित अगरु, चदन इत्यादि उस सरोवर में निमग्न रहते थे, जिससे वह (सरोवर) उस पात्र के समान था, जिसमें नगर-वासियों ने चंदन इत्यादि के सुगंध-रसों को भरकर रखा हो ।

उस सरोवर के मकर, हरिणनयना वालाओं के अधर की समता करनेवाले रक्त कुमुद के सुरभित मधु का पान करके (रमणियों का अधर) पान करनेवाले पुरुषों के जैसे ही मत्त हो उठते थे । करंड पक्षी (जलकौए), मानों जन्म-मरण की प्रक्रिया को दिखाने के लिए, अपनी चोचों में मीन को पकड़े हुए बार-बार जल में छुबकियाँ लगाते और बाहर निकलते थे ।

इस, मानों यह सोचकर कि हम पुष्ट हाथी-सद्दश श्रीरामचन्द्र को, सुरभित कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी (अर्थात्, सीता) को लाकर नहीं दे सके, अतः उनकी और कोई, अल्प ही सही, सेवा करें—इरा खयाल से मनोहर पद-गति दिखा रहे थे (जिससे रामचन्द्र को सीता की पदगति का स्मरण हो आये) । वहाँ के नीलोत्पल (सीता के) नेत्रों की सुन्दरता को दिखा रहे थे और रक्त कुमुद (सीता के) अधर का दृश्य उपस्थित कर रहे थे ।

वहाँ के कुछ हस (सरोवर के) तट की पुष्पित शालाओं पर बैठे थे । वे शाखाएँ ऐसी लगती थीं, मानो उस सरोवर में अपने आभरणों की काति को चारों ओर विखेरती हुई नित्य स्नान करनेवाली देवागनाओं की चोटियाँ उनके कृत्रिम-हसों को अपने करों में लिये हुए (उस सरोवर के) तट पर खड़ी हों ।

वहाँ, पद्मराग मणियों की कांति इस प्रकार व्याप्त हो रही थी कि एक ओर लगी हुई नीलमणियों की कांति उससे दब जाती थी, जिससे वहाँ रात्रिकाल में भी दिन-जैसा प्रकाश व्याप्त रहता था । चक्रवाकों के जोड़े भी (उसे दिन समझकर) तरुणियों के स्तनद्वय के समान एक दूसरे से मिले रहते थे ।

बड़ी-बड़ी मछुलियाँ, वेग से फेंके गये खड्ग के समान झपटती थीं । क्रमशः उठ-उठकर वहनेवाली तरंगों में लुढ़क-लुढ़ककर चलनेवाले जल-नकुल, उन नटों के जैसे लगते थे, जो (अपने पैरों में पायल बाँधकर) मुखरित गति के साथ नाचते हैं । दाढ़ुर (उन नृत्यों को देखकर) ‘वाह-वाह !’ कहते-से लगते थे ।

रामचन्द्र, उस विशाल जलमय सरोवर के निकट पहुँचे । वहाँ के बालहम, कमल-पुष्प-इत्यादि को देखकर वे कोमल पल्लव-तुल्य सीता देवी का स्मरण करके द्रवित मन हो उठे । उनका विवेक भी मद पड़ गया, जिससे वे रो पड़े ।

रेखाओं से युक्त सुन्दर पैरवाले चक्रवाकों । बालहसों । कभी सुझमे अलग न होनेवाली सीता सुझसे विछुड़ गई है । अब वह (मेरे साथ) नहीं है । मैं विरह से पीड़ित हूँ । अब तुम्हारे लिए कोई वाधा नहीं रही (अर्थात्, तुम सुझे सता सकते हो) । फिर भी, यदि तुम दुःखी प्राणों पर दया करोगे, तो वह तुम्हारे यश का ही कारण होगा ।

कभी वियोग का अनुभव न किये हुए सुझ-जैसे को यदि कुछ मात्रना दोगे, तां इससे क्या तुम्हारी कोई हानि होगी ?

हे सरोवर ! सुन्दर कमलों और मध्योविकमित सुवागित नीलोत्पलों को दिखाकर तूने धाव के जैसे जलनेवाले मेरे मन पर मलहम-गा लगा दिया । तुम (सीता के) नयनों तथा उसके बदन को दिखा रहे हो । क्या उसके रूप को एक बार भी नहीं दिखाओगे ? (जो अपने लिए सभव हो, उस वस्तु को) न देकर लोभ करनेवाले व्यक्ति अच्छे नहीं होते ।

विकसित नील उत्पलों, रक्त कुसुदो, सुगंधित कोमल कमलों, 'बलै' (एक जल-लता) के पत्तों, तरगों, मीनों, कछुओं तथा ऐसे ही अन्य पटाथों को देखकर, रामचन्द्र उस सरोवर ने कह उठे—हे सरोवर ! मैं अमृत-समान उस (सीता) देवी के अवयवों को तुम्हारे अतर में देख रहा हूँ । क्या विशाल आकाश में जब बलवान् गङ्गम (सीता को) खाने लगा तब उसके ये अवयव यहाँ गिर पड़े थे ।

दौड़ते और खेलते रहनेवाले हैं मयूर । तू उम (सीता) की छवि से पराजित होकर मन मसोसकर शशु के जैसे फिरता रहता था । क्या अब आनंदित हो रहा है ? उस (सीता) को खोजनेवाले मेरे (विकल) प्राणों को देखकर तू मन में उमग से नाच रहा है ? तू सहस्र नेत्रवाला है । तुम्हे कुछ भी अज्ञात (अदृश्य) नहीं है (वर्थात्, तूने सीता के अपहरण को जान लिया होगा, इसीलिए तू आनन्द से नाच रहा है) ।

इम-मिथुनो । यद्यपि तुम मेरे निकट नहीं आओगे, तथापि (सीता के सबध में) कुछ कहो । क्या कुछ भी नहीं कहोगे ? मैंने तुम्हारा कुछ अपकार नहीं किया है, तो क्या तुम मेरा अपकार करोगे ? कटि-रहित उम (सीता) ने ही तो तुम्हारी गति की सुन्दरता को परास्त किया था । उससे (सीता से) तुम्हारा वैर है । किन्तु, मैं तो तुम्हें देखकर आनंदित हो रहा हूँ । तुम सुझपर क्यों कोप करते हो ?

सुनहले और सुरभित अर्तदलों के मध्य मकरद में रहनेवाले एवं मधुर गान करनेवाले भ्रमरों से शोभायमान है कमल ! (सीता) देवी मेरे पार्श्व में नहीं हैं । वह (सुझसे) अन्यत्र रहनेवाली भी नहीं हैं । यदि तुम भी यह कह दो कि वह तुम्हारे पास नहीं है, तो तूम सत्य को छिपा रहे हो । यों सत्य को छिपानेवालों से मित्रता कैसे हो सकती है ?

सीता के सुख की समानता करते हुए भी कुछ भी न बोलकर सरोवर में छिपे रहनेवाले रक्त कुमुद के पास पड़ी हुई है रक्तजटे ।^१ तुम मेरे सम्मुख आओ और अमृतवर्षी, अति सुन्दर विव-सदृशा (सीता के) अधर को मुझे दिखाओ । उस अधर के अमृत-रस को तथा शीतल वचनों को मुझे दो ।

हे जल-लता के पत्र । तुम तो पुष्पलता-मद्वश सुखा सीता के कान ही हो, और कुछ नहीं । अतः, सुझ दुखी की सहायता करने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? फिर भी, तुम जो स्वर्ण-कुड़ल, वक्र ताटक और मुक्तामय झुमके को छोड़कर यहाँ आये हो (सीता के सबध में) कुछ न कहकर, क्यों वैर निकाल रहे हो ?

महावर-लगी ऊँगलियों से जिसके चरण ऐसे लगते थे, मानों पदम से प्रवाल फूट

^१ रक्तजटा, पानी में फैलनेवाली एक प्रकार की लता है, जो बहुत लाल होती है ।—अनु०

निकला हो, जो मेरे हृदय-रूपी कमल मेरहती है, जो काले बादल-जैसे और पुष्पों से भूषित केशोवाली है, उस (सीता) के नयनों की समता करनेवाले है मनोहर नीलोत्पल । तू ऐसा हँसता है कि उससे विष-मा फैल जाता है । तू क्यों इस प्रकार मुझे सता रहा है ?

मन की वेदना से आह भरते हुए श्रीरामचन्द्र ने उस सरोवर के पुन्नाग-वृक्षों से पूर्ण तट पर खडे होकर फिर कहा—हे निर्दय, कठोर सरोवर । मै मिटा जा रहा हूँ, फिर भी तुम कुछ भी नहीं कहते ।—इस प्रकार वे अत्यत पीडित हुए ।

प्रभूत करुणा के जन्मस्थान उन प्रभु ने देखा—काले भ्रमरों से घिरे हुए, मदजल बहानेवाले काले हाथी, मीठे पत्ते खानेवाली बड़ी हथिनियों के मुँह में (अपनी सूँड़ से) जल उठा-उठाकर भर रहे हैं । उस दृश्य को देखते हुए वे खडे रहे ।

उस समय प्रेम नामक अपूर्व आभरण से सुशोभित अनुज (लद्मण) ने प्रभु से कहा—दिन व्यतीत ही गया । अतः, हे आर्य । इस सरोवर के दिव्य जल में स्नान करके, आप अपनी कीर्ति के समान ही सर्वत्र व्याप्त हुए भगवान् के चरणों की वदना करें ।

राजा (श्रीराम) उस स्थान से बड़ी कठिनाई से हटे और तरगों से भरे उस सरोवर के सुरभिपूर्ण जल में ऐसे स्नान करने लगे कि पर्वत-जैसे मृत्तगज भी उन (राम) की शोभा को देखकर लज्जित हो गये ।

ज्योही प्रभु उस जल में निमग्न हुए, त्योही उनकी वियोगामि की ज्वाला से वह जल ऐसा तस हो गया, जैसे लुहार ने खूब तपाये हुए लोहे की शीतल जल में डुबो दिया हो ।

हंस का रूप धारण कर (ब्रह्मा के प्रति) दुर्गम वेदों का उपदेश देनेवाले उन (विष्णु के अवतार, रामचन्द्र) ने स्नान करके अनादि वेदों में उक्त विधि से चक्रधारी (विष्णु) के प्रति अर्ध्य-प्रदान किया, फिर मुनियों से आवासित एक वन में जाकर ठहरे । उष्णकिरण (सूर्य) भी झूब गया ।

संध्या-रूपी स्त्री आ पहुँची । किन्तु, कचुक से बद्ध स्तनवती (सीता) नहीं आई । उस देवी के वियोग में रहकर अनुपम नायक (राम) उसका स्मरण करके विकल हो रहे थे । तब शीतल जल से पूर्ण समुद्र से चन्द्रमा आकाश-मध्य यों उठ आया, मानों तस्तकिरण (सूर्य) ही हो ।

उस समय विविध कमल-पुष्प बद हुए, पक्षी उद्यानों में अपने-अपने नीड़ों में बद हुए । मृग के कार्य-कलाप बद हुए । वृक्षों के पत्ते बंद हुए । शुको का बोलना बद हुआ । कलापियों के नृत्य बंद हुए । कोकिल के गान बद हुए । हाथियों के गर्जन भी बद हुए ।

धरती के प्राणी निद्रित हुए । पर्वत के प्राणी निद्रित हुए । स्वच्छ जल से भरे सरोवर निद्रित हुए । भूत भी पलक मँदने लगे । किंतु, क्षीर-सागर में निद्रा करनेवाले दोनों हाथी^१ अपनी आँखें बद न कर सके ।

विमल स्वरूप (राम) को दारूण वेदना से मुक्त करते हुए उष्णकिरण पुनः

१. राम और लक्ष्मण—दोनों, विष्णु के धन्त्र माने जाते हैं । अतः, उन दोनों को क्षीरसागर में निद्रा करनेवाले हाथी कहा गया है ।—अनु०

ममुद्र में उद्दित हुआ। रात्रि भी जो अतहीन-री लगती थी, अब उगी प्रकार मिट गई, जिस प्रकार स्वच्छ आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर धूम एवं कीचड़ के पृज-जैसे पाप मिट जाते हैं। कमल-पुष्पो का सुख विकसित हुआ।

गन्ने पेरने के कांल्ह में नहनेवाले रम-प्रवाह की धर्वानि ने युक्त (कोशल) देशवासी, वे दोनों (राम-लक्ष्मण) क्षीरमागर से उत्तर अमृत के ममान मधुगवाणी तथा हरिण-ममान नवनो से युक्त देवी का अन्वेषण करते हुए, ममुद्र जैन वनों से विरे पर्वतों तथा वहाँ के अरण्यों के दीर्घ मागों को पार करके, त्वरित गति ने आगे चले। (१-४२)



आध्याय २

हनुमान् पटल

उस प्रकार चलकर राम-लक्ष्मण, उस वडे ऋष्यमूक पर्वत पर, जिनपर टीर्धकाल तक शवरी निवास करती थी, सुगमता ने शीघ्र चढ़ गये। तब उस पर्वत पर स्थित महिमामय वानराधिप (सुग्रीव) ने उन्हें देखकर सोचा कि वे कोइं शत्रु हैं और भयभीत और कर्त्तव्य-विमूढ़ होकर अपने प्राण हेतु भागा और एक कदरा में जा छिपा।

उस सुग्रीव ने (हनुमान् में) कहा कि ‘हे वानु के बीर पुत्र ! दृढ़ धनुष धारण करनेवाले महान् पर्वत-सदृश वे दोनों हमारे बैरी वाली को आज्ञा से ही आये हैं। तुम जाकर देखो। सत्य को पहचानो।’—यह कहकर वह बिना कुछ जाने-कुम्भे ही अति व्याकुल हो, कदरा के भीतर जा छिपा।

तार, नील, तेजस्वी हनुमान् आदि बीरों के माथ, सर्यपुत्र (सुग्रीव) मेरु पर्वत ममान उस ऊँचे पर्वत के एक ओर जा छिपा। इधर हार-भृष्टि वक्षवाले वे दोनों (राम-लक्ष्मण) यह सोचकर उस पर्वत पर चढ़े कि वहाँ सीता का अन्वेषण करने का कोई उपाय विदित होगा।

वे सीता का अन्वेषण करने में तत्पर हुए। इतने ने कुछ बानरों ने उस पर्वत-कदरा में जाकर सुग्रीव से कहा—वे दोनों वाली वी आज्ञा से आये हुए नहीं हो सकते, क्योंकि वे वहुत दुखी हैं। व्याकुलमन और शिथिलप्राण हैं। तब हनुमान ने अपने (दिव्य) ज्ञान से विचार किया।

१. अरण्यकाठ में कवध-वन के प्रनग में वह उल्लिखित है कि कवध मरकर गधव का स्वल्पता है और राम से यह कहता है कि आप दक्षिण दिग्ग में जायें और श्रव्यमूक पर्वत पर सर्यपुत्र के साथ मैद्री करें। उनसे सीता के अन्वेषण में आपकों सहायता मिलेगी। रामचन्द्र उसी बात का स्मरण करके इस पर्वत पर चढ़ते हैं। —अनु०

उम समय, जब वे बानर व्याकुल तथा भयभीत हो साहस छोड़कर खड़ थे, तब हनुमान् ने सोच-विचार करके उन्हें उसी प्रकार सात्वना दी, जिस प्रकार लवी जटायुक्त रुद्रदेव ने (ज्ञीरसागर के मथुन के समय) हलाहल विष को देखकर डरे हुए देवों तथा दानवों के भय को दूर करते हुए उन्हे सात्वना दी थी।

अजनि-पुत्र एक बहुचारी का रूप धारणकर नील पर्वत-सदृश रामचन्द्र के निकट जा पहुँचा और एक स्थान में छिपकर उन्हे देखकर सोचने लगा—ये तपस्वी के वेष में हैं, किंतु हाथों में धनुष धारण किये हैं और कठोर क्रोध से भरे लगते हैं। फिर, विवेक से विचार करने लगा—

क्या इन्हें, देवों के अद्वितीय नायक त्रिमूर्ति माने ? किन्तु वे तो तीन हैं, जबकि ये दो ही हैं, ये धनुर्धारी भी हैं। इनकी समता करनेवाले सासार में कौन हो सकते हैं ? इनके लिए असाध्य कार्य ही क्या हो सकता है ? उनके स्वभाव को मैं किस प्रकार सरलता से पहचान सकता हूँ ?

इन्हें देखने से ऐसा लगता है, जैसे चित्त की किसी व्यथा से ये शिथिल हो। ये ऐसे नहीं लगते कि किसी सामान्य विषय पर ये चिंतित हो सकते हों। क्या ये स्वर्गवासी देव हैं ? पर नहीं, ये तो मानव-रूप में हैं। अपने मन को मुग्ध करनेवाली किसी वस्तु के अन्वेषण में अनन्यचित्त होकर व्यस्त हैं।

ये धर्म एव चारित्र्य को ही सर्वस्व माननेवाले हैं। इनका यहाँ आगमन अन्य किसी उद्देश्य से नहीं हो सकता। ये दोनों ओर किसी ऐसी वस्तु को ढूँढते जा रहे हैं, जो इनके लिए अलभ्य अमृत-सदृश है और वीच में ही खो गई है।

ये कोप नामक दोष से हीन हैं। करुणा के समुद्र हैं। (पर) हित को छोड़कर दूसरा व्यापार जानते नहीं हैं। ऐसी गंभीर आकृतिवाले हैं कि इन्हे देखकर इन्द्र भी सहम जाय। ऐसे चरित्रवाले हैं कि धर्मदेवता भी इनके सम्मुख परास्त हो जाय और ऐसे पराक्रमवाले हैं कि यम भी त्रस्त हो जाय।

अपने उत्तम गुणों के कारण, अपना उपमान स्वय ही बननेवाले, अन्य उपमान से रहित उस (हनुमान्) ने इस प्रकार अनेक तरह में विचार करके दोनों को व्यान से देखा। फिर, उनके प्रति अधिक प्रेम (भक्ति) से खड़ा रहा, जैसे वह अपने विछुड़े हुए मियजनों को देख रहा हो।

फिर, हनुमान् सोचने लगा—वडे मुखवाले, भय-रहित हाथी इनको देखकर ऐसे खड़े हैं, जैसे अपने बच्चों को देख रहे हैं (अर्थात्, इनके प्रति प्रेम से भरे हैं)। विजली की भी (अपनी उज्ज्वलता से) मद करनेवाले दाँतों से युक्त सिंह, बाघ-जैसे हिंस्त प्राणी भी इनके प्रति आकृष्ट होकर इनके पीछे-पीछे चल रहे हैं। भूत भी उनका आदर करते हुए द्रवितमन हो जाते हैं। तो, उनके सबध में विविध प्रकार की वार्ते सोचकर व्याकुल क्यों होना चाहिए ?

मयूर आदि पक्षी भी इनकी मनोहर देह पर धूप लगने से (मन में) पिघल उठते हैं और वितान-जैसे अपने पर्खों को फैलाकर और प्राचीर-जैसे उन्हे चारों ओर से धेनकर

माथ-साथ चल रहे हैं। गगन की घटाएँ मदगति से इनके माथ चलकर, सर्वत्र वर्षा-विदुयों को धने रूप में छिड़क रही हैं।

धूप में तपकर आग-जैसे गरम ककड़, उनके स्वच्छ रक्त-कमल जैसे चरणों का स्पर्श पाते ही मधु-भरे पुष्पों के समान मृदुल हो जाते हैं। जहाँ-जहाँ ये जाते हैं, वहाँ-वहाँ के बृक्ष एवं पौधे वदना-से करते हुए झुक जाते हैं। अतः, कदाचित् ये ही धर्म-देवता हैं।

अथवा, क्या ये वही भगवान् हैं, जो (जीवों के) मायाजन्य चिरकर्म बधन को मिटाकर, जन्मदुःख से मुक्त करके, दक्षिण दिशा के यमलोक के ददले उन्हें अपुनरावृत्ति के (मोक्ष के) मार्ग में भेजते हैं? इन्हे देखकर (मेरे मन में) अपार प्रेम उमड़ रहा है। मेरी हँड़ियाँ भी पिघल रही हैं। मेरे मन में इस प्रेम के उत्पन्न होने का क्या कारण है?

जब सन्मार्गगामी मनवाला हनुमान् इस प्रकार सोच रहा था, तब वे दोनों (राम-लक्ष्मण) उधर ही आ पहुँचे। तब हनुमान् उनके सम्मुख गया और बोला—आपका आगमन शुभप्रद हो। करुणामूर्ति (राम) ने उससे पूछा—तुम कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? हनुमान् कहने लगा—

हे सजल मेघ-सदृश मनोहर वाकारवाले! छियों के लिए विष बननेवाले (अर्थात्, छियों को अपनी ओर आकृष्ट करके उन्हें प्रेम से पीड़ित करनेवाले) तथा हिम से अम्लान रक्त-कमल की समानता करनेवाले प्रकुल्ल नयनों से युक्त! मैं वायु का पुत्र हूँ और अजना के गर्भ में उत्पन्न हूँ। मेरा नाम हनुमान् है।

उम (हनुमान्) ने, जिसकी यश का भार बहन करनेवाली भुजाएँ ऐसी है कि कुलपर्वत भी उन्हें देखकर लज्जित हो जायें, कहा—हे प्रभु! इस ऋूपमूर्क पर्वत पर रहने-वाले, उज्ज्वल महस्तकिरण (सूर्य) के पुत्र की सेवा में मैं रहता हूँ। आपको आते हुए देखकर वह व्यग्र हुया और आपके बारे में जानने के लिए मुझे भेजा है।

(हनुमान् के) वह वचन कहते ही, दृढ़ धनुर्धारी चक्रवर्ती कुमार (राम) ने मन में कुछ विचार करके वह जान लिया कि इस (हनुमान्) से उत्तम और कोई नहीं है। पराक्रम, शास्त्र-सप्ति, ज्ञान तथा अन्य सभी गुण इसमें अभिन्न रूप में वर्तमान हैं। फिर, वे (लक्ष्मण से) बोले—

हे धनुर्भूषित कंधेवाले वीर (लक्ष्मण)! कोई कला (शास्त्र), समुद्र-सदृश वेद, ऐसा कही भी नहीं है, जिसे इस (हनुमान्) ने प्रशसनीय रूप में अधीत न किया हो। इसका गमीर ज्ञान इसके वचनों से ही प्रकट होता है। मधुर भाषा से सपन्न यह क्या ब्रह्मदेव है? या वृषभवाहन (शिव) है? नहीं तो यह कौन है?

हे भाई! इसका (यथार्थ) स्वरूप एक साधारण ब्रह्मचारी का नहीं है। किन्तु, मुझे निश्चित रूप से यह जात हो रहा है कि वह सर्वलोकों के लिए आधार वन सके, ऐसे पराक्रम तथा अत्यधिक महिमा से सपन्न है। इसकी सत्यता तुम आगे देखोगे (पहचानोगे)। अतिसुन्दर प्रभु (राम) ने इस प्रकार कहा—

और, इस समार के निवासी मुनियों, तथा (स्वर्ग के निवासी) देवताओं में

कौन-ऐसा है, जो इसकी जैसी वाक्पदुता रखता हो ? समस्त वेदों में पारगत इस ब्रह्मचारी के वचनों के समुख सर्वश्रेष्ठ त्रिमूर्तियों का महान् कौशल भी कुछ नहीं है।

फिर (रामचन्द्र ने हनुमान् से) कहा—उस कपिकुलनायक को, जिसके सबध में तुमने कहा है, देखने की इच्छा से ही हम यहाँ आये हैं। यहाँ तुमसे साक्षात् हुआ है। तुम्हारे मधुवचन के सदृश ही, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त उस (कपिराज) को हमें दिखाओ।

(तब हनुमान् ने ये वचन कहे—) भूधर-सदृश कधोवाले वीरो। इस विशाल धरती पर, जो आठों दिशाओं के (चक्रवाल) पर्वत-पर्यंत फैली है, आप लोगों के समान पवित्र कौन हो सकते हैं ? यदि आप ही उस (कपिराज) से, वडे आदर के साथ मिलने आये हैं, तो उसका संयम के साथ अर्जित किया हुआ तप-रूपी धन कितना अत्यधिक है ?

पर्वत से भी अधिक पुष्ट भुजावोवाले (है वीरो)। प्रेमहीन इन्द्र-पुत्र (वाली) के कुद्द होने से रवि-पुत्र (सुग्रीव) एकाकी दुख भोगता हुआ, निर्भरों से युक्त इस पर्वत पर आकर, मेरे साथ (छिपकर) रहता है। अब आप ऐसे आये हैं, जैसे उमकी सपत्ति ही आ गई हो।

(धार्मिक व्यक्ति) इस विशाल ससार के सब लोगों के सभी अभीष्ट पदार्थों का दान देते हुए यज्ञ करते हैं तथा अन्य (तप आदि) कार्य भी करते हैं, इस प्रकार वे अनादि धर्म को स्थिर रखते हैं। किन्तु, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो मारने के लिए यम के समान आये हुए अपने कुल-शत्रु से डरकर, शरण में आया हो, उसको अभयदान देने से भी श्रेष्ठ धर्म और कोई हो सकता है ?

यह कहना कि आप हमारी रक्षामात्र करेंगे, बहुत छोटी-सी वात होगी, क्योंकि आप अपलक देवताओं से लेकर सब चर-अचर पदार्थों से भरे हुए, तीन प्रकार से वने हुए सप्तलोकों की भी रक्षा करने में समर्थ हैं, मुरुगन (कार्तिकेय) के समान सौदर्य तथा पराक्रम से युक्त हैं। आपकी शरण में आने से बढ़कर हमारा और क्या भला हो सकता है ?

सत्य (रूपी शस्य) के लिए (उसकी रक्षा करनेवाले) धेरे के जैसे रहनेवाले उस हनुमान् ने कहा—है वीर। अपने नायक को मैं यह वताऊँगा कि आप कौन हैं। अतः, आप हमसे कहें (कि आप कौन हैं)। तब वीर-कक्षण से भूषित लक्ष्मण, ठीक विचार करके, किंचित् भी सत्य से सखलित न होकर, अपना सारा वृत्तात स्पष्ट रूप में कहने लगे—

सूर्यवश में उत्पन्न आर्य चक्रवर्ती, जो एक श्वेतच्छ्रुतधारी हो, सर्वत्र अपने उज्ज्वल शासन-चक्र को चलाते थे, जिन्होंने अपने पराक्रम से असुरों के प्राण पी डाले थे, अनेक यशों को सपन्न करके स्वर्गलोक पर भी अपना प्रभाव डाला था, जो करुणामय दृष्टि-युक्त थे,

जिन्होंने मेघ के सदृश मद वर्षा करनेवाले, दृढ़ दतवाले, लाल बिंदियोवाले पर्वत-सदृश श्रेष्ठ गज पर आरूढ़ होकर अपने दृढ़ धनुष को लेकर ऐसा युद्ध किया था, जिससे मदमत्त असुर विध्वस्त हो गये थे, जो सहजात ज्ञान और राजनीति से युक्त थे, जिनकी समता मनुप्रभृति नरेशों में कोई भी नहीं कर सकता था, ऐसे दशरथ नामक वह (चक्रवर्ती) स्वर्ण-प्रासादों तथा विशाल प्राचीरों से शोभायमान अयोध्या के राजा थे।

उन्हीं चक्रवर्ती के पुत्र हैं, यह तेजस्वी पुरुष, जो अपनी माता (कैकेयी) की आशा से अपने स्वत्वभूत राज्य-संपत्ति को अपने बनुज को प्रेम से देकर वड़े वरण्य में प्रविष्ट हुए हैं, इन पुरुष का नाम है, गम । दीर्घ धनुष के प्रयोग में कुशल इन वीर पुरुष का किंकर हूँ मैं ।

इम भाँति, रामचन्द्र के जन्म से प्रारम्भ कर रावण के मायामय छुट्कार्य (सीता-हरण) तक की सारी कथाएँ, किंचित् भी त्रुटि के बिना, बताईं । मारा वृत्तांत सुनकर वायु-कुमार अत्यत आनंदित हुआ और (गम के) चरणों पर प्रणत हुआ ।

यो उमके प्रणाम करने पर, राम ने उमसे कहा—वेद-शास्त्रों के ज्ञाता है व्रह-चारिन् । तुमने यह कैसा अनुचित कार्य किया (ब्राह्मण होकर सुख क्षत्रिय के चरणों पर क्यों न त हुए) ? यह सुनकर बलबान्, सुन्दर तथा विशाल भुजावाले वीर मार्त्ति ने कहा—पक्षज-समान रक्तनेत्र तथा चक्रधारी है वीर । यह दास कपिकुल में सत्यन्न व्यक्ति है ।

फिर, धर्म को अनाथ होने से बचानेवाला वह (हनुमान्), अपना वास्तविक रूप लेकर इन प्रकार खड़ा हुआ कि स्वर्णमय में वर्त भी उसकी भुजाओं की समता नहीं कर सकता था । मानों, वेद तथा शास्त्र ही वड़ा आकार लेकर खड़े हो गये हों । सभी वड़े-वडे पठार्थ उनके सम्मुख छोटे लगाने लगे । तब उन्हें देखकर विद्युत-जैसे धनुष को धारण करने-वाले वे वीर (राम-लक्ष्मण) विस्मय करने लगे ।

तीनों लोकों को अपने चरण से मापनेवाले पुड़गीक-नयन, चक्रधारी (विष्णु के अवतार, श्रीरामचन्द्र), स्वर्णमय उज्ज्वल कुडलों से भूषित उसके सुख को नहीं देख पाते थे (अर्थात्, हनुमान् उतना ऊँचा हो गया था) । तो, अब उसके विश्वरूप का वर्णन किस प्रकार कर सकते हैं, जिसने सूर्य से प्राचीन शास्त्रों को धधीत किया था ।

ताल से पृथक् हुए कमल-मद्वश विशाल नयनवाले राम ने अपने भाई से कहा—है तात । वह मांक्ष-पद ही इस बानर का स्प लेकर उपस्थित हुआ है, जो छुट्र गुणों से रहित होकर (अर्थात्, केवल सत्त्वगुणमय होकर) अमर प्रकाश से युक्त, नित्य वेदों एवं दोष-रहित ज्ञान से भी दुर्जेय है ।

(फिर राम ने लक्ष्मण से कहा—) इस महानुभाव से भेट हुई । एक अच्छा साधन हमने प्राप्त किया (अर्थात्, सीता के अन्वेषण के लिए अच्छा साधन मिला है) । अब हमारी विपदा मिट जायगी । सुख प्राप्त होगा । हे धनुर्धर ! यदि यह महावीर, कपिकुलनायक (सुग्रीव) की आशा का पालक है, तो न जाने वह स्वयं किस प्रकार के प्रभाव से संयुक्त है ।

यों आनंदित होकर, प्रमन्नवदन रहनेवाले, पर्वत-सम पुष्ट कधोवाले वीरों (राम-लक्ष्मण) को देखकर बानर-श्रेष्ठ ने निवेदन किया—मैं अभी जाकर उस (सुग्रीव) को ले जाता हूँ । हे पराक्रमशीलो ! किंचित् समय तक आप यहीं रहें और उनकी अनुमति पाकर वह त्वरित गति से चला गया । (१-३८)

अध्याय ३

सर्व्य पटल

मदर पर्वत-सद्वश भुजाओं तथा दीर्घ यश से युक्त हनुमान् अपने ज्ञान से, मनुवश में उत्पन्न उस (राम) के सदगुणों का चित्तन करता हुआ चला और युद्धोचित क्रोधयुक्त राजा (सुग्रीव) के समीप जाकर बोला—मैं, तुम्हारा कुल और यह लोक, तीनों तर गये ।

सुरभित हारधारी, अपार बल से सपन्न वाली नामक वीर के प्राण हरण के लिए काल आ गया है । हम दुःख-सागर के पार पहुँच गये—अतरिक्षगामी (सूर्य) के पुत्र (सुग्रीव) के प्रति इस प्रकार कहा और हलाहल विष पीनेवाले (रुद्र) के समान अपूर्व नृत्य करने लगा ।

वे (राम-तत्त्वमण) इस धरती के रहनेवाले हैं । स्वर्ग के हैं (अर्थात्, सर्वत्र इनका प्रभाव है) । वे (हमारे) मन में रहते हैं, क्रियाओं में रहते हैं, वचनों में रहते हैं और नेत्रों में रहते हैं । वे शत्रुवान् हैं (अर्थात्, उनके कुछ शत्रु भी हैं) और शत्रुओं के द्वारा किये गये अनेक घावों से युक्त लोगों के अपूर्व प्राणों के लिए अमृत-समान भी है ।

वे अपने पराक्रम से समस्त लोकों को एकच्छब्द की छाया में लानेवाले विजयी शासक, मुखपट्टधारी हाथियों की सेनावाले राजाओं से बदित चरणवाले, दशरथ के श्रीकुमार हैं । वे महान् ज्ञानवाले हैं । अतिसुन्दर हैं और अनायास ही तुम्हे अपना राज्य दिलाकर तुम्हारी सहायता कर सकनेवाले हैं ।

वे नीतिमान् हैं । मधुर करणा से भरे हैं । सन्मार्ग से कभी न हटनेवाले हैं । सबसे अधिक महिमावान् हैं । बिना सीखे ही, स्वयं उत्पन्न अपार ज्ञान से सपन्न हैं । महान् कीर्तिमान् हैं । गाधिमुत (विश्वामित्र) के द्वारा प्रदत्त समुद्र-सद्वश विशाल दिव्य अस्त्र-समुदाय के स्वामी हैं ।

(उनमें से ज्येष्ठ वीर न) बड़े क्रोध से युक्त, शूलधारी ताड़का को अपने बाण से निहत किया । उसके क्रूर कर्मवाले वेटे (सुवाहु) को मारा । अपने चरण की रज से एक बड़े प्रस्तर के रूप म पड़ी हुई अहत्या को दुष्प्राप्य आत्म-स्वरूप प्रदान किया ।

उत्तम् सामुद्रिक लक्षणों से युक्त उन वीरों में ज्येष्ठ (राम) ने मिथिला नगरी में जाकर, उस शिवजी के महान् धनुष का भग किया था, जिन (शिव) ने अधकार के नाम तक को मिटा देनेवाले उज्ज्वल किरण-समुदाय से युक्त सूर्यदेव के दाँतों को गिरा दिया था ।^१

केसर से शोभायमान अश्ववाले दशरथ का वर प्राप्त करके अपार पातित्रत्य से सपन्न छोटी माता (कैकेयी) ने उन्हे (राम को) आदेश दिया, तो (उसे मानकर) शंख-भरे समुद्र से घिरी धरती का सारा राज्य अपने छोटे भाई को देकर वे यहाँ आये हैं ।

१. यह कहानी पुराण में प्रसिद्ध है कि दक्षयज्ञ के समय शिवजी ने दक्ष को मारकर उसके यज्ञ का विघ्नस किया था और उस यज्ञ में आये सब देवताओं का अपमान किया था । उस समय उन्होंने पूरा (सूर्य) को तमाचा मारकर उसके दाँतों को गिरा दिया था ।—अनु०

इस राघव ने, ससार को शत्रुहीन वनानेवाले, ज्वालामय परशु से युक्त उम गम के अमीम बल को मिटा दिया। क्रोध करके आक्रमण करनेवाले अधकार-सद्शा क्रूर विराध को मिटा दिया।

मसुद्र-जैसी सेनावाले खर आदि करुणाहीन गज्जनों के शिरों को अपने धनुष का झुकाकर (वाणों का प्रयोग कर), काट दिया। वह सब दिशाओं में रहनेवाले शत्रुओं को मिटानेवाला है। उत्तम देव शकर आदि से भी अधिक पराक्रम से युक्त है।

हे राजन्! यह (मानव) शरीर धारण कर आया हुआ पुरुष, दिव्य देवताओं से विद्वत चक्रधारी (विष्णु) ही हैं। तुम उम महानुभाव से मित्रता कर लो। यह मायामृग बनकर आये हुए राज्ञस मारीच के लिए भयंकर यम बना था।

जो कवध अपने दीर्घ करों को सब दिशाओं में फैलाकर, वहे क्रोध के साथ सब प्राणियों का विनाश करता था, उसे मारकर, उसके भागी शरीर को गिराकर, उसी प्रकार उसको मोक्षपद में जाने दिया, जिस प्रकार उसने देवताओं के द्वारा पूजित शवरी को (मोक्ष पद) दिया था। उसकी उम महिमा का वर्णन हम-जैसे लोग किस प्रकार कर सकते हैं?

हे रविकुमार। मुनि तथा दूसरे लोग अनादिकाल से इनके आगमन के लिए अपनी-अपनी शक्ति-भर तपस्या करते रहे और कर्म-वंधन से मुक्त होकर मोक्षपद को प्राप्त कर गये। मैं कैसे उम (राम-लक्ष्मण) का वखान कर सकता हूँ?

हे प्रभो! बुद्धिहीन राज्ञसराज उनकी पल्ली को माया से हरण कर भयकर अरण्य-पथ से ले गया। उभी देवी का अन्वेषण करते हुए ये बीर, तुम्हारे सत्कर्म और तुम्हारी निष्कपट्टा के कारण तुम्हारी मित्रता प्राप्त करने की इच्छा से आये हैं।

हे ज्ञान-सपन्न! उनकी करुणा हमारी ओर है। हमारे प्रतापवान् शत्रु वाली की मृत्यु निकट आ गई है। अतः, उनसे सख्य करने के लिए चलो—प्रसिद्ध नीतिशास्त्रों की रीति को जानकर मत्रणा देनेवाले (हनुमान्) ने यो कहा।

अपने सूक्ष्म ज्ञान से इस प्रकार के वचनों को ठीक-ठीक विचार कर सुग्रीव ने सब कुछ समझ लिया। फिर, यह कहकर कि हे स्वर्णपुज-सहश। जब तुम मेरे साथी बने हो, तब मेरे लिए कौन-सा कार्य वसाध्य है? ‘चलो’—यह कहकर अपने ही सहश रहनेवाले (अर्थात्, पल्ली से बच्चित) राम के चरणों के समीप आया।

सूर्यपुत्र ने प्रफुल्ल पक्ज-पुष्पों से भरे, काले मेघ से ढके हुए और उदीयमान चंद्रमा से शोभित मरकत-गिरि की समता करनेवाले (राम) के उस बदन को, जो सुन्दर कुड़लो से रहित होकर भी देखने में अति मनोहर था, तथा उनके शीतल नयनों को देखा।

(सुग्रीव ने राम को) देखा। देखता हुआ देर तक खड़ा रहा और सोचने लगा कि क्या अवर्णनीय कमलासन (ब्रह्मा) की सृष्टि में रहनेवाले प्राणियों का, आदिकाल से अवतक किया हुआ, समस्त भाग्य पुजीभूत होकर इन दोनों अस्युन्नत स्कंधवाले बीरों के आकार में उपस्थित हुआ है?

अथवा, देवों के अधिदेव आदि भगवान् (विष्णु) ने ही अपना रूप बदलकर इस अवतार में मनुष्य-रूप धारण किया है। इस कारण से मनुष्य-जन्म ने गगाधारी जटा-

बाले शिव और ब्रह्मा प्रभृति के दिव्य जन्मों को भी जीत लिया है—यो सुग्रीव ने सोचा ।

इस प्रकार सोचकर, अधिकाधिक उमड़ते हुए प्रेम-रूपी तरगायमान समुद्र का पार न पाता हुआ, अपने आनदपूर्ण नयनयुग्म से उस अनघ राम को देखता हुआ उनके निकट आ पहुँचा । उस महानुभाव ने प्रेम के साथ अपने रक्तकमल-सदृश करों को पसार-कर कहा—यहाँ आकर आराम से बैठो ।

जिसके चित्त ने कामना को समूल मिट दिया था, वह अनघ (राम) तथा कपिकुल के राजा (सुग्रीव), अमावास्या के दिन परस्पर मिले हुए चब्र तथा सूर्य के सदृश थे, मानो, वे अक्षीण बलवाले राक्षस नामक अधकार को मिटाकर पुजीभूत धर्म को सुस्थिर रखने के लिए उपर्युक्त समय पर परस्पर मिले हो ।

मित्र बनकर रहनेवाले वे दोनों वीर (राम और सुग्रीव) अभिलिष्ट कार्य की पूर्ति के लिए सयुक्त—पूर्व-अर्जित पुण्य एव वर्तमान में किये जानेवाले प्रयत्न के समान थे और क्रूर राक्षस-रूपी पाप का उन्मूलन करने के लिए सम्मिलित हुए (आचार्यों से) श्रुत विद्या एव यथार्थ विवेक के समान थे ।

जब वे दोनों इस प्रकार आसीन हुए, तब सूर्यपुत्र ने रामचन्द्र को देखकर कहा—हे सपन्न ! सब लोकों में अत्युत्तम कहलाने योग्य अनेक सदगुणों से पूर्ण तुमसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ । अतः, मुझसे बढ़कर पापनाशक तपस्या करनेवाले व्यक्ति और कौन है ? यदि स्वयं भाग्य ही कुछ देना चाहे, तो उसके लिए असभव क्या हो सकता है ?

तब राम ने कहा—हे उत्तम ! दोष-रहित तपस्या से सपन्न शबरी ने कहा था कि तुम इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहने हो । यह सोचकर कि हमारी बड़ी विषदा तुमसे दूर हो सकती है, हम यहाँ आ पहुँचे हैं । हमारा दुःख तुमसे ही दूर होगा । तब कपिकुल-नायक ने कहा—

मेरा अग्रज, मुझे छोटे भाई को मारने के लिए अपने बलिष्ठ कर को ऊपर उठाये दौड़ा और मुझे इस समार मे सर्वत्र और ससार के परे रहनेवाले तपोमय प्रदेश मे भी खदेड़ता रहा । तब मैं केवल इस पर्वत को अपना दुर्ग बनाकर बच गया । यही पर अपने प्यारे प्राणों को रखे जी रहा हूँ । मैं आपकी शरण में आया हूँ । मेरी रक्षा करना आपका धर्म है ।

तब, उस कपिकुल के राजा को कृपा के साथ देखकर, राम ने ये बचन कहे—तुम्हारे सुख-दुःखों मे से जो व्यतीत हो चुके हैं, उन्हे छोड़कर अब आगे होनेवाले तुम्हारे सब दुःखों को मैं दूर करूँगा । अब से होनेवाले सब सुख-दुःख, तुमको और मुझे एक समान होंगे (अर्थात्, हम्हारे सुख-दुःख मेरे सुख-दुःख होंगे) ।

अब अधिक क्या कहूँ ? स्वर्ग में या धरती में, तुमको दुःख देनेवाले मुझे दुःख देनेवाले होंगे । दुष्टजन ही क्यों न हों, यदि वे तुम्हारे मित्र हैं, तो मेरे भी मित्र होंगे । अब से तुम्हारे लोग मेरे लोग हैं । मेरा प्यारे बन्धुवर्ग तुम्हारे भी बन्धु हैं । तुम मेरे प्राण-समान हो ।

तब वानर-सेना यह सोचकर कि अनघ (राम) के बचन सब कुलों के व्यक्तियों के लिए वेदवाक्य से भी अधिक सत्य प्रमाणित होंगे, आनन्द से कोलाहल कर उठी । अजनि-

पुत्र की देह पुलकित हो उठी । देवता लोग पुष्ट-वर्षा करने लगे । मेघ वर्षा की दृद्धे वरसाने लगे ।

तब अजना का मिह-मद्वा पुत्र उठकर (राम के) चरणों पर नत हुआ और निवेदन किया—हे स्त्रभ-समान पुष्ट स्कंधवाले चक्रवर्तीं कुमार ! आपके मित्र (सुग्रीव) और आप चिरकाल तक जीते रहे । इस समय मेरी इच्छा है कि आप दोनों अपने आवास में (अर्थात् सुग्रीव के निवास-स्थान में) चलकर आराम से रहे । आपकी इच्छा क्या है, तब राम ने कहा—तुम्हारा विचार उत्तम है ।

रविपुत्र चल पड़ा । दोनों वीर भी चल पडे । बानर-मिह (हनुमान) भी अन्य बानरों के साथ चल पड़ा । तब धर्म-देवता भी उनका अनुसरण करके चल पड़ा और बानंद के माध उन्हें वशीर्वाद देता रहा । वे लोग पुन्नाग, नरद आदि वृक्षों तथा कमलमय सरोवर से युक्त होने से भोग-भूमि (अर्थात् स्वर्ग) को भी निर्दित कर देनेवाले नवपुष्पों से भरे उद्यान में जा पहुँचे ।

(उस उद्यान में) चदन और अग्रह के वृक्ष अधिक सख्त्या में थे । स्थान-स्थान पर स्फटिक-शिलाओं के वितान तने हुए थे, जो ऐसे लगते थे, मानों स्वच्छ जल ही खड़ा कर दिया गया है । नूतन पुष्पों से पूर्ण सरोवरों के दोनों तटों पर, दिव्य सुन्दरता से युक्त वृक्षों से, जलकीड़ा करनेवाली अप्सराओं के झूले लग रहे थे—इस प्रकार की शोभा से (वह उद्यान) युक्त था ।

वहाँ के रत्नों की काति के समुख सूर्योंतप और चंद्र की रजत-चन्द्रिका भी उसी प्रकार प्रकाशहीन हो जाती थी, जिस प्रकार प्रगाढ शास्त्रज्ञान से युक्त विद्वानों के समुख शास्त्र-ज्ञान से हीन व्यक्ति प्रकाशहीन हो जाते हैं ।

इस प्रकार के सुन्दर उद्यान में, राम-लक्ष्मण तथा कपिराज एक शुद्ध पुष्टमय आमन पर आसीन होकर स्नेहालाप करने लगे ।

बानरों ने फल, कट, शाक तथा अन्य शुद्ध रसों से पूर्ण भोजन ला दिया और पवित्र प्रभु ने स्नान आदि से निवृत्त होने के उपरात सुखासीन होकर उनका आहार किया ।

इस प्रकार, भोजन समाप्त करने के पश्चात्, सत्य स्नेह से पूर्ण होकर वे सुग्रीव के माथ बैठ गये और कुछ समय तक विचार करके सुग्रीव से पूछा—क्या तुम भी गृहस्थ-जीवन के लिए अनुकूल सहायक अपनी पत्नी से वियुक्त हो गये हो ?

जब राम ने ऐसा प्रश्न किया, तब मारुति पर्वत के समान उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ जोड़कर (राम से) निवेदन किया—हे स्थिर धर्मवाले ! इस दास को कुछ कहना है । आप सावधानी से सुनें ।

वाली नामक एक वर्मीम पराक्रमी बानर वीर रहता है जो, चतुर्वेद-रूपी समुद्र के लिए किनारे जैसे रहनेवाले, अनादि (कैलास) पर्वत पर निवास करनेवाले त्रिशूलधारी (शिव) के वर से अत्यन्त प्रबल हो गया है ।

वह इतना बलशाली है कि पूर्वकाल में उसने त्रिख्यात देवों तथा असुरों के समुख

क्षीरसागर को अकेले ही इस प्रकार मथ डाला था कि घूमनेवाला मदर पर्वत और वासुकि नर्प के शरीर घिस गये थे।^१

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन—इन चारों भूतों की समस्त शक्ति उस (वाली) में एकत्र हुई है। वह सभ समुद्रों से परे स्थित चक्रवाल पर्वत से इस पर्वत तक फॉद सकता है।

कोई उसके साथ युद्ध करने के लिए उसके निकट आ जाय, तो युद्ध करने के लिए आये हुए व्यक्ति के प्राप्त वरों का अर्धभाग उस (वाली) को प्राप्त हो जाता है।

उम (वाली) के वेग के आगे पवन भी नहीं वह सकता। उसके बज्य में स्कद का वरच्छा भी धौम नहीं सकता। जहाँ वाली की पूँछ चलती है, वहाँ रावण का अधिकार नहीं चल सकता। और, उस रावण की विजय भी उसके सामने कुछ नहीं है।

यदि वह (आक्रमण कर) उठे, तो मेरु आदि पर्वत, सब जड़ से उखड़ जायें। उसकी विशाल भुजाओं में विशाल मेघ, आकाश, सूर्य-चद्र और पर्वत सब छिप जायें।

वह आदिवराह, जिसने पूर्वकाल में भूमि को अपने दंत से ऊपर उठाया था, आदिकूर्म, जो क्षीरसागर का मथन करने के लिए उपयुक्त साधन बना था और वह नरमिह, जिसने अपने नख से हिरण्यकशिपु का बज्ज फाड़ डाला था—वे भी उस वाली की विजयमाला-भूषित भुजाओं से संघर्ष नहीं कर सकते।

आदिशेष अपने विशाल फनों को फैलाकर, उनपर भूमि का वीझ रखे, (भूमि के) नीचे में इसकी रक्षा कर रहा है। किंतु, इस पर्वत पर निवास करनेवाला (वाली) स्वय (इस भूमि पर) चलता-फिरता हुआ ही इस (धरती) की रक्षा करता है।

हे शक्ति तथा विजय से विभूषित। समुद्र निरतर गरजता है, पवन वहता है, (द्वादश) सूर्य अपने रथों पर संचरण करते हैं, तो यह सब उस (वाली) के क्रोध का लक्ष्य बन जाने के डर से ही है—अन्य किसी कारण से नहीं।

हे वदान्य! उम वाली के जीवित रहने हुए, उसकी अनुमति के बिना यम भी वानरों के प्राण-हरण करने में डरता है। अतः, पाँच सौ साठ समुद्र^२ सख्यावाले वानर, जो

१. तमिल में एक पुराण, काचीपुराणम्, है। उसमें यह कथा है कि देव तथा असुर, मदर पर्वत को मधानी, वासुकि को रस्ती तथा चद्र को मथानी का चक्राकार आधार बनाकर क्षीरसागर को मथने लगे। किंतु, उस मथ नहीं सके। इतने में वाली, जो नित्य विमिल्न दिशाओं के समुद्रों में जाकर सध्या आदि नित्यकर्म किया करता था, क्षीरसागर में संव्या करने के लिए आया। देवासुरों ने उससे प्रार्थना की कि क्षीरसागर को वह मर्ये। तब वाली ने अकेले ही एक हाथ से वासुकि का सिर और दूसरा हाथ से उसकी पूँछ पकड़कर क्षीरसागर को मथ डाला। इस घटना का उल्लेख ऋबन ने अनेक न्यानों पर किया है।—अनु०

२. एक हाथी, एक रथ, तीन अश्व और पाँच पदातियों का दल एक पक्ति का एक सेनामुख होता है। तीन सेनामुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का एक गण, तीन गणों की एक वाहिनी, तीन वाहिनियों की एक शृतना, तीन पृतनाओं की एक चमू, तीन चमुओं की एक अनीकिनी, दस अनों किनियों की एक अक्षौहिणी होती है। आठ अक्षौहिणियों का एक ‘एक’, आठ ‘एक’ की एक कोटि, आठ कोटियों का एक शख, आठ शखों का एक विंद, आठ विंदों का एक कुमुद, आठ कुमुदों का एक पश्च, आठ पश्चों का एक देश तथा आठ देशों का एक समुद्र होता है।—शुक्रनीति

इतने शक्तिमान् हैं कि मेरे पर्वत को भी ढाहकर गिरा सकते हैं, जीवित रहते हैं।

उम (वाली) से डरकर उग्र के निवास-स्थान पर मेघ भी नहीं गरजते। क्षुर सिंह अपनी कटराओं के भीतर भी नहीं गरजते। शक्तिमान् वायु इस डग ने नहीं बहता कि कही एक छोटा पत्ता न गिर पड़े।

जब वाली ने अपनी पूँछ ने बलबान् रावण की पुष्ट भुजाओं को एक नाथ वाँध दिया था, तब उम (रावण) के शरीर में जो रक्त वह चला, उमने किस लोक को मिन्चित नहीं किया । (अर्थात्, सभी लोकों में रावण का रक्त प्रवाहित हो चला ।)

हे पराक्रमशालिन् ! इन्द्र का अनुपम पुत्र वह वाली शीरल राकाचन्द्र का-सा रंगबाला है। उमकी आशा का उल्लंघन यम भी नहीं कर सकता। वह इस (सुग्रीव) का अग्रज है।

वह वाली हमारा राजा था और यह (सुग्रीव) युवराज। उस समय एक दिन नियुत्-जैसे दौतवाला एक करवाल-महशा क्षुर असुर^१ हमारे कुल का शत्रु बनकर आया और वाली पर आक्रमण किया।

युद्ध करता हुआ वह असुर वाली के पराक्रम से भीत होकर भागा और यह सोचकर कि इस धरती पर सजीव रहना असंभव है, एक दुर्गम गुफा में प्रविष्ट होकर पाताल में जा छिपा।

तब क्रोध-पूर्ण वाली, सुग्रीव में यह कहकर उस गुफा में प्रविष्ट हुआ कि हे शक्ति-शालिन् ! मैं इस गुफा में प्रविष्ट होकर शीघ्र उस असुर को पकड़ लाऊँगा। तुम इस गुफा के द्वार की रखबाली करते रहो।

गुफा में प्रविष्ट होकर वाली चौदह ऋतुओं (अष्टाइंस मास) तक उस असुर को खोजता रहा और अत में उसे पाकर उसके साथ युद्ध करता रहा। इधर उसका भाई सुग्रीव व्याकुल हो खड़ा रहा।

रो-रोकर व्याकुल होनेवाले सुग्रीव को देखकर हम सब वानरों ने आदर के साथ उसकी प्रार्थना की, कि हे प्रशसनीय विजयशालिन् ! राज्य करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। अतः, शासन का भार तुम अपने उपर लो। यह सुनकर उसने कहा—ऐसा करना अनुचित है।

फिर यह कहकर कि मैं भी इस गुफा में प्रवेश करूँगा और यदि उस असुर ने मेरे भाई को मार दिया हो, तो मैं उसको मारूँगा, नहीं तो वही युद्ध में मरूँगा—सुग्रीव उस गुफा के भीतर प्रविष्ट होने लगा।

तब वाक्चतुर मन्त्रियों ने उसको रोककर बहुत समझाया और उसके दुःख को कम किया। फिर, राज्य का भार इसे दिया। यह सुग्रीव उन वानरों की बात को नहीं टाल सका और किसी-न-किसी प्रकार से राज्य-भार को स्वीकार किया।

उस नमय, इस विचार से कि मायावी (नामक वह असुर) कही फिर इस बिल से बाहर न आ जाय, हमने, मेरे को छोड़कर, अन्य सब पर्वतों की लालाकर उस गुफा के द्वार पर चुन दिये।

^१. यह असुर मायावी नामक था।—मनु०

इस प्रकार, उस गुफा को सुरक्षित करके हम अरुणकिरण के पुत्र के साथ इस पर्वत पर रहने लगे। तब वाली उस मायावी के प्राण पीकर—

उन प्राणों को पीने से उत्पन्न नशे से मत्त होकर लौटा। गुफा-द्वार पर (अपने भाई को) पुकारता रहा। किन्तु, कोई उत्तर न पाकर यह सोचता हुआ कि मेरा भाई भी कैसी रखवाली कर रहा है, अत्यत क्रुद्ध हुआ।

फिर, उस (वाली) ने अपनी पूँछ उठाई और अपने पैरों को उठाकर ऐसा आधात किया, जैसे प्रभजन वह उठा हो। तब (गुफा के द्वार पर रखे) सब पर्वत आकाश में उड़कर समुद्र म जा गिरे।

वाली (उस गुफा से) बाहर निकलकर सबको भयभीत करनेवाले क्रोध से भरा हुआ इस पर्वत के ऊँचे शिखर पर आ पहुँचा, तब सत्य-मार्ग पर चलनेवाले और कपटहीन इस सूर्यपुत्र ने उसके समीप आकर उसके चरणों को नमस्कार किया।

प्रणाम करके वाली से सुग्रीव ने कहा—हे अग्रज! हे प्रभु! बहुत दिनों तक तुम्हारे न लौटने पर मैं बहुत चिंतित हुआ और तुम्हारे निकट आना चाहता था। किन्तु, तुम्हारी प्रजा ने इससे सहमत न होकर कहा कि राज्य पर शासन करना ही मेरा कर्तव्य है।

हे आभरणों से भूषित सुजावाले! प्रजा की आशा मानकर, राज्यभार वहन करता हुआ मैं निर्लज्ज-सा जीवित रहता हूँ। तुम मेरे इस अपराध को द्वारा करते सुनकर वैरभाव से भरे हुए वाली ने अत्यत क्रोध के साथ अनेक निष्ठुर वचन कहे।

बलिष्ठ सुजाओं से युक्त उस (वाली) से हम सब बानर यों डरने लगे कि हमारी बाँतों में हलचल मच गई। पूर्वकाल में समुद्र को मथनेवालों ने अपने करों से सुग्रीव को मारा-पीटा, जिससे यह बहुत पीड़ित हुआ।

यह बहुत पीड़ित होकर सप्त समुद्रों के पार, ब्रह्माड की बाहरी सीमा की दीवार पर जा पहुँचा। पीड़ा-हीन वाली भी पवन के समान इसके पीछे चलकर सप्त समुद्रों को मिह के समान फाँद गया।

बायुपुत्र के इस प्रकार कहने पर, प्रभु कह उठे—अच्छा! अति वेग से पीछा करनेवाले वाली के आगे-आगे भागनेवालों सुग्रीव वाली से भी अधिक वेग से फाँद सकता था।

बीर-कण्ठधारी कृपामूर्ति (राम) ने अपने भाई लक्ष्मण-समेत इस प्रकार आश्चर्य करते हुए फिर कहा—इन दोनों बीरों ने आगे क्या किया, सुनाओ। तब विजय से भूषित मारुति कहने लगा—

सुग्रीव मकरों से भरे सातो समुद्रों के पार चला गया। किन्तु, उस चक्रवाल पर्वत का भी, जहाँ सूर्य की रक्तिम किरण भी नहीं पहुँचती है, पारकर वह (वाली) वहाँ आ गया और सुग्रीव को पकड़ लिया।

भाई को पीड़ित करने के अपवाद से न डरकर उसने सुग्रीव को अपने क्रूर करों से मारने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। किन्तु, सुग्रीव मौका पाकर स्ट वहाँ से निकल भागा।

हे प्रभु! यदि वह (वाली) क्रोध करके दाँत पीसे, तो यम को भी सुरक्षित रहने

के लिए कोई स्थान नहीं मिलेगा। तो भी (वाली के प्रति) पूर्व में दियं गयं एक शाप के कारण यह (सुग्रीव) इस पर्वत पर आनंद बच गया।

हे भगवन्। इसके स्वत्व को उथा दुर्लभ अमृत-समान इसकी पत्नी को भी उसने छीन लिया। यह, राज्य और पत्नी दोनों में एक साध वच्चित हो गया। यही सारा वृत्तात है।—यों हनुमान् ने कहा।

अमत्य-हीन (हनुमान्) ने जब सारा वृत्तात कह सुनाया, तब सहस्र नामयुक्त उस अमल प्रभु के समस्त लोकों को (प्रज्ञय-काल में) निगलनेवाले सुख का अधर फड़क उठा। नेत्र-रूपी कमल रक्तकुमुद के समान लाल हो उठे।

अनेक ग्रंथों ने सुक्त वेदों को अधिगत करनेवाले व्रजा, पञ्चमुख (रुद्र) तथा अन्य देव, अपने बाहर और अन्तर में खोजकर भी जिसे पा नहीं सकते, वह भगवान् यदि अपने सुन्दर पद-कमलों को दुखाकर और उन्हें अधिक लाल करते हुए इस धरती पर अवतीर्ण होता है, तो यह धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश करने के लिए ही तो है।

करुणाहीन विमाता के कहने पर जिस प्रभु ने अपने स्वत्वभूत राज्य को, रत्न-भूषित पुष्ट भुजावाले अपने भाई को दे दिया, वे यह सुनकर भी कि एक निष्ठुर व्यक्ति ने अपने कनिष्ठ भ्राता की पत्नी का अपहरण किया है, कैसे चुप रह सकते हैं?

प्रभु ने सुग्रीव से कहा—चौदहीं भुवनों के सब प्राणी भी उग (वाली) के प्राणों को वचाने के लिए आये, तो भी मैं अपने धनुष से प्रयुक्त शर से उसे मार दूँगा और तुम्हारे राज्य के माथ तुम्हारी पत्नी को भी तुम्हें दिला दूँगा। हे विज्ञ। दिखाओ, वह कहाँ रहता है।

यह सुनकर सुग्रीव (बहुत आनन्दित हुआ), मानों वह महान् आनन्द-रूपी समुद्र की बड़ी-बड़ी तरगों के उमड़ उठने में, दुःख-रूपी समुद्र के किनारे पर आ लगा हो। उसने यह सोचकर कि वाली की शक्ति अब समाप्त हुई, आदर के साथ (वाली-घट की) प्रतिशा करनेवाले महावीर ने कहा—पहले हमें कुछ विचार करना है।

उसके पश्चात् सूर्यपुत्र, विद्या, विवेक नीति, मंत्रणा आदि में कुशल हनुमान् आदि के साथ पृथक् रहकर कुछ मन्त्रणा करने लगा। उस समय पवनपुत्र ने कहा—

हे शक्तिशालिन्! तुम्हारे मनोभाव को मैं समझ गया। तुम शका कर रहे हो कि उस (वाली) को यम के मुँह में भेजने की शक्ति इन बीरों में है या नहीं। मेरे वचन को ध्यान से सुनो। फिर, वह कहने लगा—

(श्रीराम चन्द्र के) विशाल हाथों और चरणों में शख और चक्र के चिह्न हैं। इनके जैसे उत्तम लक्षण कही किमी में नहीं हैं। अरुणनयन और धनुधारी श्रीराम, धर्म की रक्षा करने के लिए धरती पर अवतीर्ण, लक्ष्मी के बल्लभ विष्णु ही हैं।

जिन शिवजी ने लोककटक तथा अतिशक्तिशाली त्रिपुरासुरों को अपने क्रोध की अग्नि से जला दिया था और निष्ठुर क्रोध से युक्त काल को भी अपने पद के आधात^१ से

१. इस पद में मार्कण्डेय के जीवन की ओर संकेत है। मार्कण्डेय शिवमत्त था, किंतु उसको आयु की अवधि सोलह वर्ष की ही थी। जब काल उसके प्राण-हृण करने के लिए आया, तब वह शिवर्तिंग का आर्लिंगन करके शिव के ध्यान में निमग्न हो गया। काल उसको पाश से खींचने लगा, तो शिवजी ने कुदू होकर उसे पदाधात ने हटा दिया और मार्कण्डेय को अमर कर दिया।—अनु०

दूर हटा दिया था, उनके हस्त के स्वर्णमय अनुपम धनुष को तोड़ देना उस विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए सभव नहीं था ।

हे राजन् । मेरे पिता ने सुझासे कहा था—तुम इस ससार के सुष्टिकर्ता ब्रह्मा की भी सृष्टि करनेवाले भगवान् (विष्णु) की सेवा करोगे । वह सेवा ही उत्तम तपस्या है । हे तात । उससे मेरा (पिता का) भी बड़ा हित होगा । यह श्रीराम ही वह भगवान् हैं, इसका और भी एक प्रमाण है ।

मैंने अपने पिता से पूछा था—तुम्हारे कथित उस भगवान् के अवतार को मैं कैसे पहचान सकूँगा ? तब मेरे पिता ने कहा था—जब समस्त लोकों को विपदा उत्पन्न होगी, तब वह भगवान् अवतार लेंगे । उसे देखते ही तुम्हारे मन में उसके प्रति प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होगा । यही उसे पहचानने का प्रमाण होगा । हे स्वामिन् । इसी बीर को देखते ही (मेरे मन में ऐसा प्रेम उमड़ा, जिससे) मेरी अस्थियाँ भी गल गईं, जिससे उनका रूप तक पहचानने में नहीं आया । फिर, और क्या शंका हो सकती है ?

हे उत्तम ! यदि तुम अब भी उस बीर (श्रीराम) के अपार पराक्रम की परीक्षा करके देखना चाहते हो, तो उसके लिए एक उपाय है । वह यह—अतिविशाल सत्त माल-वृक्ष, जो एक ही पक्ति में खड़े हैं, उनको एक ही शर से वह बीर छेद डाले ।

यह सुनकर सुग्रीव आनंदित हुआ और कहा—अच्छा । अच्छा । उसने अपने साथी मारुति की पर्वतों को भी लज्जित करनेवाली दोनों भुजाओं का आर्लिंगन कर लिया । फिर, श्रीरामचन्द्र के निकट जाकर कहा—आपसे मेरा एक निवेदन है । श्रीरामचन्द्र ने वह सुनकर कहा—कहो, क्या कहना चाहते हो ? (१-८४)



अध्याय ४

सालवृक्ष-छेदन पटल

सुग्रीव, यह कहता हुआ कि इस ओर से जाना है, इधर से आइए (राम को) ले चला और (सालवृक्षों के निकट जाकर) कहा—गगन को छूनेवाले, आकाश छोटा करते हुए, शाखाओं को फैलाकर खड़े रहनेवाले सात सालवृक्षों को एक ही शर से आप छेद डालें, तो मेरे मन की व्याकुलता दूर होगी ।

उस निष्कलक (सुग्रीव) के यह कहने पर देवताओं के प्रभु (राम) उसका विचार जानकर सुस्करा उठे । फिर, अपने विशाल करों से अपने धनुष पर डोरी चढाई । और कल्पना से भी दुर्ज्ञ उन सालवृक्षों के समीप गये ।

वे वृक्ष ऐसे थे कि प्रलय-काल में भी अपने स्थान से विचलित नहीं होनेवाले थे । जब सब लोक विघ्नस्त हो जाते थे, तब भी खड़े रहनेवाले थे । मानों, धरती का आधार बने हुए सातों कुलपर्वत वहाँ आकर एक साथ खड़े हो गये हों ।

कमल पर आमीन रहनेवाले ब्रह्मदेव भी उन वृक्षों के बारे में इतना ही कह सकता था कि 'घोड़श कलावाले चढ़मा और सहस्र किरणवाले (सूर्य)' को भी उन वृक्षों के शिखरों को पार करके जाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। मैंने अत्युन्नत उन पर्वतों^१ के दालों को ही देखा है। इनके अतिरिक्त (वह ब्रह्मा भी) यह नहीं कह सकता था कि मैंने (उन वृक्षों के) पत्ते देखे हैं।

नित्य एक समान वेग से दौड़ते रहनेवाले सूर्य के रथ के घोड़े अन्यत्र कहीं अपनी थकावट मिटा पाते हो—यह हम नहीं जानते, किंतु (इतना हम जानते हैं कि) वे घोड़े आकाश में चारों ओर व्याप्त इन वृक्षों की शाखाओं के बीच से होकर जाते समय इनकी शीतल छाया में अपनी थकावट दूर कर लेते हैं।

वे वृक्ष इनने ऊँचे थे कि नक्षत्र तथा ग्रह, उन (वृक्षों) की शाखाओं में लगे पुष्पों-जैसे थे। आकाशगामी धबल चढ़मा में जो कलक है, वह इन वृक्षों की शाखाओं की रगड़ लगने से ही उत्पन्न चिह्न है, वों कह सकते हैं।

वे वृक्ष अनश्वर विशाल शाखा-प्रशाखाओं से युक्त होने के कारण वेदों के समान थे। स्वर्ग से भी ऊँचे थे। ब्रह्माड की सृष्टि करनेवाले उम (ब्रह्मा) का वाहन हन अपनी हसिनी के साथ इन वृक्षों में ही निवास करता था।

पवन के चलने पर उन वृक्षों के सुगवित पत्र, पुष्प, फल इत्यादि विविध वस्तुएँ धरती पर नहों गिरती थीं, कोलाहल युक्त विशाल आकाशगामा में गिरती थीं और तरगायित मसुद्र में जाकर मिलती थीं।

उन वृक्षों के शिखर, चतुर्वेदों के ज्ञाता ब्रह्मा के अडगोल से भी परे बढ़े हुए थे। अत., वे अनत विष्णु भगवान् की समानता करते थे। वे जल-मध्य-स्थित धरती पर जो मेन्द्रपर्वत खड़ा है, उससे भी अधिक भारी थे।

उन वृक्षों में हीर (निर्यास) उसी प्रकार फैला था, जिस प्रकार इद्रकुमार वाली और उसके भाई के हृदयों में परस्पर वैर फैला था। उनकी जड़ें, जल-मध्य-स्थित पृथ्वी को ढोनेवाले शेषनाग के रजत-जैसे धबल फनों को भी चीरकर नीचे चली गई थीं।

उनकी शाखाएँ सब दिशाओं को नापती थीं, जिससे देवों को यह आशका होती थी कि कदाचित् सूर्य का मार्ग ही न रुक जाय। वे वृक्ष सूर्य-चद्र जहाँ सचरण करते हैं, उन पर्वतों से भी (मेन्द्रपर्वत अथवा उदयगिरि या अस्ताचल) ऊँचे थे। किसी भी दृष्टि में वे वृक्ष उनसे कम नहीं थे और एक दूसरे से अनेक योजन दूर पर खड़े थे।

अमल (श्रीराम) ने उन वृक्षों को ध्यान से देखा और दीर्घ वाण को छोड़ने के लिए धनुष की डोरी में ऐसा टकार किया कि देवलोक और दिशाएँ वधिर हो गईं। देवों को ऐसा भय उत्पन्न हुआ, जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

वह टकार-ध्वनि सब लोकों में एक समान व्याप्त हो गई। उम समय समीप में खड़े रहनेवालों की क्या दशा हुई—यह कैसे कहें? उस ध्वनि से दिग्गज मूर्च्छित हो गये और दिशाएँ व्याकुल हो उठी। उस ध्वनि से सत्यलोक भी काँप उठा।

१ वे वृक्ष इनने विशाल थे कि वे पर्वत-जैसे लगते थे।—अनु०

ज्यों ही उस अरिंदम (राम) के धनुष की ध्वनि हुई, त्यो ही देवता इस भय से त्रस्त होकर भागे कि कही प्रलय-काल ही तो नहीं आ गया। भक्तिपूर्ण कनिष्ठ प्रभु (लक्ष्मण) ही उन (राम) के समीप दृढ़ खड़े रह सके। यदि दूसरे लोगों की दशा का वर्णन करने लगेंगे, तो उन सबकी बदनामी होगी।

असत्य-रहित मारुति आदि वीर यह सोचकर कि राम का शर-प्रयोग हमें अवश्य देखना चाहिए, किसी प्रकार उनके निकट आकर उपस्थित रहे। तब कुशल धनुर्धारी (राम) ने दृढ़ तथा दीर्घ कोदंड में लगी डोरी को भली भाँति खीचकर शर का सधान किया।

वह राम-बाण, सातों सालवृक्षों का भेदकर चला। नीचे रहनेवाले सातों लोकों को भेदकर चला। फिर, उनसे आगे सप्त-सख्या से युक्त किसी वस्तु के न होने से लौट आया। अब भी यदि वह बाण सप्त सख्यावाली किसी वस्तु को देखे, तो उसे छेदे विना नहीं रहेगा।

सप्त समुद्र, ऊपर के सप्त लोक, सप्त कुलपर्वत, सप्त ऋषि, सप्त अश्व और सप्त कन्याएँ भी यह आशका कर काँप उठी कि कदाचित् सप्त सख्या का कोई भी पदार्थ इस बाण का लक्ष्य हो सकता है।

ऐसा भय होने पर भी सब लोग, श्रीराम के उस स्वभाव को जानकर स्वस्थ हुए, जो धर्म के आधारभूत सभी पदार्थों को सुरक्षित रखता है। तब सूर्यकुमार ने स्वर्णमय वीर-कंकणों से भूषित श्रीराम के चरणों को अपने शिर पर रखकर ये वचन कहे—

तुम पृथ्वी हो, आकाश हो, अन्य सब भूत हो, पक्ज से उत्पन्न देव (ब्रह्म) हो, चीरशायी भगवान् हो, पापों का विनाश करनेवाले सद्धर्म के देवता हो। तुमने आदिकाल में लोकों को उत्पन्न किया। अब सुक्ष्म श्वान-जैसे दास को तारने के लिए यहाँ आये हो।

हे राजाओं के अधिराज ! मेरे पूर्वपुण्यों ने ही तुम्हें यहाँ लाकर मेरी सहायता की है। तुम मातृ-सदृश प्रभु के दासों का मैं दास हूँ। अब मेरे लिए सब कार्य सम्भव हो गये। कौन-सा कार्य अब असम्भव रह गया ?—इस प्रकार उस दोषहीन सुग्रीव ने कहा।

चिरकाल से दुःखी रहनेवाले सब वानर यह विचार कर कि वाली के लिए यम वननेवाले एक व्यक्ति हमें मिल गया है, आनन्द-मधु का पान करके मत्त हो गये और उनकी झुजाएँ फूल उठीं। वे नाचने लगे, गाने लगे तथा यत्र-तत्र झुड़ों में दौड़ने और कूदने लगे।

रामचन्द्र ने उस पर्वत पर, समुद्र-सदृश दुदुभि के एक दूसरे पर्वत-जैसे शरीर को (अर्थात्, उसके अस्थिपंजर को) वहाँ देखा, जो रक्तहीन होने पर भी आकाश को छूता हुआ पड़ा था, मानों सारा ब्रह्माण्ड ही अग्नि में जलकर भुलस गया हो।

श्रीराम ने सुग्रीव से प्रश्न किया—यह क्या दक्षिणदिशाधिप (यम) का वाहन महिष है ? या दिग्गजों में से कोई मरकर यहाँ पड़ा है ? या कोई तिर्मिगिल सूखकर अस्थिशेष रह गया है ? असीम प्रेमयुक्त तुम, कहो। तब सुग्रीव ने दुदुभि की कहानी सुनाई। (१-२३)

अध्याय ५

दुदुभि पटल

दुदुभि नामक असुर, जो शत्रु-विध्वसक क्रोध से युक्त था, जो इतना ऊँचा बढ़ा हुआ था कि गगन तक पहुँचकर चंद्र को भी छूता था। जिसके दो सीग थे (महियाकार थे)। वह द्वीरमागर को मटर-पर्वत के समान मथकर कालवर्ण विष्णु को ढूँढने लगा।

तब विष्णु भगवान् उसके समझुख आये और उससे पूछा—तू यहाँ किसलिए आया है? दुदुभि ने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने आया हूँ। तब विष्णु ने कहा—तुम्ह-जैसे महान् शक्तिसपन्न व्यक्ति से दुष्ट करने की शक्ति केवल नीलकठ (शिव) में ही है।

तब वह असुर शीघ्र वहाँ से चलकर शिवजी के कैलाश को अपने सींगों से ढकेलने लगा। तब शिवजी उसके सामने आये और पूछा कि तुम्हें क्या चाहिए? उसने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ ऐसा युद्ध करना चाहता हूँ, जिसका कभी अत न हो।

तब शिव ने उससे कहा—तू बड़ा है और वीरता से युक्त है। तुमसे युद्ध करना सभव नहीं। तू देवताओं के पास जा। यह कहकर (शिवजी ने) उसे वहाँ से भेज दिया। तब उसने देवेंद्र के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। देवेंद्र ने उत्तर दिया—यदि अनेक दिन तक युद्ध करने की इच्छा है, तो तू वाली के पास चला जा।

देवेंद्र से प्रेषित होकर वह प्रसन्नतापूर्वक (ऋग्यमूक पर) आ पहुँचा और यह गर्जन करता हुआ कि हे वानराज आओ, मेरे साथ युद्ध करो, पर्वतों को अस्त-च्यस्त करने लगा। तब मेरा अग्रज कुद्ध होकर उसके साथ युद्ध करने लगा।

वे दोनों ऐसा भयकर युद्ध करने लगे कि जब वे वेग से धूम जाते थे, तब यह पहचानना कठिन हो जाता था कि कौन कहाँ है। किसी भी लोक में न डरनेवाले वे दोनों कभी गिरते और कभी उठकर खड़े होते। उनके भयकर युद्ध से भीत हो असुर और देवता भी उनके निकट नहीं आ पाते थे।

जब वे अपना पद भूमि पर पटकते थे, तब ऐसी आग निकलती थी, जो आकाश को छू लेती थी। उनका निनाद दीर्घ दिशाओं में सुनार्ह पड़ता था। उनकी उस अग्नि का धूम सर्वत्र फैल गया। जलमय समुद्र तथा महान् पर्वत भी अपने-अपने रूप को खो वैठे। (अर्थात्, जहाँ पर्वत थे, वहाँ गढ़े पड़े गये और समुद्र ऊपर उठ आये।)

मेघ, आकाश, विशाल समुद्र, समुद्र से विरी पृथ्वी, मव उनके द्वारा उठाई गई धूलि से इस प्रकार आवृत हो गये कि वे अपना रूप-रग खो वैठे। मय नामक असुर का पुत्र दुदुभि और वाली दोनों वारह मास पर्यंत युद्ध करते रहे।

वैसा भयकर युद्ध करते समय, विजयी वाली ने अपनी सुजाओं के बल से उस असुर के, दिशाओं में फैले हुए दोनों सींगों को उखाड़कर (उन्हीं से) उसे मारा। तब वह असुर मेंघगर्जन के जैसे चिरवार उठा।

उसके शिर पर चोट लगी। उसकी टाँगें टूट गईं। वह पर्वत की गुहा-जैसे

अपने मुख-गहर को खोलकर रक्त उगलने लगा। तब वाली ने उसपर ऐसा धँसा मारा, जैसे पर्वत पर विजली गिरी हो। उसके शब्द से ऊपर के सब लोक काँप उठे और सब दिशाएँ बहरी हो गईं।

वाली ने उसे अपने हाथों में यो छठा लिया जैसे चामर हो, और उसे छुमाने लगा। उससे (दुदुभी का) रक्त चारों ओर छितरा गया, जिससे सब दिग्गज, जो दीर्घ दतो तथा मद से युक्त थे, लाल हो गये।

वाली ने अपने वज्रमय करों से उस असुर को उठाकर इस प्रकार ऊपर फेंका कि मेघ-मडल, सूर्य-मडल तथा देवलोक को पार कर वह (दुदुभी का शरीर) ऊपर उठ गया। फिर, उसके प्राण ऊपर चले गये और शरीर धरती पर आ गिरा।

दुर्गेंध-भरित उसका शरीर गगन की ऊपरी सीमा से टकराकर फिर नीचे आ गिरा। तब कश्चालु मरण मुनि ने जो शाप दिया, वह अब मेरे लिए सहायक बना है।—इस प्रकार (सुग्रीव ने) पूरा वृत्तात कह सुनाया।

यमल प्रभु (राम) ने सारी कथा सुनी और अपने युद्ध-कुशल भाई (लक्ष्मण) से कहा—हे वीर। इस शब्द को तुम दूर फेंक दो। लक्ष्मण ने अपने पैर के अग्नृठ से उसे उठाकर फेंका। तब वह अस्थिपञ्चर पुनः एक बार सत्यलोक तक जाकर नीचे आ गिरा।

उस समय कपि-समूह सुँह खोलकर वज्र के समान गरज उठा। जब श्रीराम उद्यान में लौटकर आये, तब सुग्रीव ने राम से कहा—हे प्रभु। मेरा आपसे एक निवेदन है। (१-१५)

अध्याय ६

आभरण-दर्शन पटल

पहले एक दिन, हम (वानर) इस स्थान पर बैठे थे, तब पापी रावण एक छी को (अपहरण करके) लिये जा रहा था, न जाने वह आपकी पक्की ही थी या अन्य कोई छी। वह छी दूर आसमान पर से इस बन की ओर देखकर विलाप कर उठी थी।

कदाचित् यह विचार करके कि उसके आभरण दूत का काम देंगे, ताटकों तक फैले हुए नयनोंवाली उस नारी ने अपने आभरणों को एक बस्त्र में बाँधकर वर्षा के समान नयन-जल के साथ धरती पर गिरा दिया। हमने उस (आभरणों की गठरी) को अपने हाथों से पकड़ लिया।

हे वदान्य! हमने उन्हे सुरक्षित रखा है। हम आपके पास उन्हें ला देंगे। आप देखकर समझें (कि वे सीता के ही हैं या नहीं)।—ये बचन कहकर धृत-मिश्रित दृध-जैसे सरूपवाले उस (सुग्रीव) ने आभरणों को अपने हाथ से लाकर दिखाया।

देवी सीता के आभरणों को (रामचन्द्र ने) भली भाँति देखा। उस समय

रामचन्द्र की क्या दशा हुई, उसका वर्णन हम कैसे कर सकते हैं? हम यह नहीं कह सकते कि उनका शरीर जलती थाग में गिरे मोम-जैसा पिघल उठा। और यह भी नहीं कह सकते कि उन्होंने अपने प्राणों को शक्ति देनेवाले अमृत का पान किया।

देवी के स्तनों को विभूषित करनेवाले वे आभरण उनको उन (आभरणों) से युक्त स्तनों-जैसे ही दिखाई पड़े। कटि के आभरण कटि ही जैसे दिखाई पड़े। अन्य अंगों पर धारण किये जानेवाले आभरण अन्यान्य अग ही जान पड़े। अब उन आभरणों से और अधिक क्या प्राप्त हो सकता था?

क्या यह कहूँ कि (रामचन्द्र की) खोई हुई सुधि को वे आभरण वापस लाये? या यह कहूँ कि उन (आभरणों) ने उनके प्राणों को वाहत किया? या यह कहूँ कि वे शरीर पर लगाये चटन-लेप के ममान शीतल लगे? या यह कहूँ कि उन आभरणों ने उन्हें जला ही दिया? क्या कहूँ?

मीतादेवी के वे आभरण (रामचन्द्र के) नामिका-आघाण के लिए सुरक्षित पुण्य वने। कवों पर धारण करने के लिए उत्तरीय बल्ल वने। उनपर (स्वर्ग और मणियों की) काति के फैलने से चटन-लेप वने तथा उनकी देह को आवृत्त करने से वे (आभरण) उनकी सुन्दर चादर बन गये।

उन (रामचन्द्र) के दोनों अरुण नयनों से जो अश्रुजल वहा, उसमें सब वस्तुएँ वह चली। रोमाच्च ने उनकी देह को ढक दिया। फूली हुई झुजाएँ, स्वेद से भर गईं या यह कहूँ कि ताप से तस हो उठी। उस ममय की उनकी दशा का मैं क्या वर्णन करूँ?

राम की देह में ऐसी वेदना उत्पन्न हुई, मानो उसमें विष व्याप्त हो गया ही, जिससे वे दीर्घकाल तक, श्वास के साथ अपनी सुध भी खोकर (मूर्छिंछत हो) पड़े रहे। तब उन विशाल-नयन को सुग्रीव ने सँभाल लिया। तब उसके शरीर पर के रोम (राम की देह में) चुभ गये।

सुग्रीव ने रामचन्द्र को सँभालकर विठाया। उनके हुःख से स्वयं भी सतस होकर द्रवितचित्त हुआ और अश्रु वहाने लगा। वह यह कहकर विलाप कर उठा कि—हे पुष्ट कधोंवाले! मुझ पापी ने उन आभरणों को देकर आपके प्राणों को हरा है।

हे श्रुति-शास्त्र-निषुण! इस ब्रह्माड से भी परे जाकर हम आपकी देवी का अन्वेषण करेंगे। हम अपना पराक्रम दिखाकर आपकी उत्तम पत्नी को ला देंगे। आप क्यों व्याकुल होते हैं?

लक्ष्मी के समान, और दिव्य सतीत्व से युक्त उस देवी को भय-विकृष्टि करनेवाले उस निष्ठुर पापी (रावण) की बीस सुजाएँ तथा दस शिर, आपके एक शर के लिए भी पर्याप्त लक्ष्य नहीं बन सकेंगे। सातों लोक भी क्या आपके एक वाण का लक्ष्य बनने की योग्यता रखते हैं?

आप यहाँ रहे। मैं अपने पराक्रम से चौदहो सुवनों में प्रवेश करूँगा और वहाँ देवी का अन्वेषण करूँगा। मेरी छोटी सेवा को भी देखिए मैं किस प्रकार आपकी पत्नी को यहाँ ले आता हूँ।

हम आपका आदेश पूरा करनेवाले आपके तुच्छ साथी हैं। यह आपका अनश्वर पराक्रमी अनुज भी यहाँ उपस्थित है। हे पुरुषश्रेष्ठ ! यदि आपमे इतना बल है, तो क्या त्रिलोक भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर सकता है ? आप क्यों अपने को छोटा समझते हैं ?

उत्तम जने, बड़े होने पर भी अपनी महिमा को स्वयं नहीं बताते। ससार उनके कार्य को ही देखता है। धर्म ही आपके रूप में साकार बना है, आपके अतिरिक्त और धर्म क्या है ? आपके लिए असाध्य क्या है ? इतने पर भी आप क्यों शोक-उद्दिग्म होते हैं ?

हे संशयहीन वचनवाले ! पंकजभव (व्रजा), कार्तिकेय के पिता एवं कोमलागी को अपने वाम भाग में धारण करनेवाले (शिव) तथा चक्रधारी (विष्णु) — ये तीनों एक साथ मिलकर आपकी समता कर सकते हैं। पृथक्-पृथक् होने पर वे भी आपकी समता नहीं कर सकते।

हे उज्ज्वल धनुष धारण करनेवाले ! मेरे छोटे-से अभाव की पूर्ति अब नहीं तो पीछे भी आप कर सकते हैं (अर्थात्, बाली का वध पीछे ही हो)। पहले हम उन दुःखी देवी को मुक्त करके लायेंगे। इस प्रकार सुग्रीव ने कहा—

उषणकिरण के पुत्र के यह कहने पर लक्ष्मी-अक्षित वक्षवाले (श्रीराम), किसी-न-किसी प्रकार मूर्छा त्यागकर सज्जा प्राप्त कर सके और अपने अश्रुसिक्त मनोहर नयनों को खोलकर स्नेह के साथ (सुग्रीव को) देखा ; फिर कहने लगे—

पर्वत-सद्वश उन्नत भुजाओवाले ! मुझ पापी के इस उज्ज्वल धनुष को हाथ मे रखकर जीवित रहने पर भी, उस (जानकी) ने अपने आभरण उतारकर फेंक दिये। क्या ताटकधारिणी, पतित्रता नारियों में इस प्रकार करनेवाली अन्य कोई स्त्री भी थी ? (अर्थात्, नहीं।)

उधर, करवाल-सद्वश दीर्घ नयनोवाली (जानकी) मेरे आगमन की प्रतीक्षा करती हुई व्याकुल बैठी है। इधर मैं बड़े-बड़े पर्वतों और सरोवरों में भटकता हुआ, उसके आभरणों के साथ रोता हुआ व्यर्थ समय व्यतीत कर रहा हूँ। डोरीवाले इस दीर्घ धनुष को ढोने पर मुझे लजित होना चाहिए।

यदि कोई किसी नारी का अपमान कर दे, तो राह चलनेवाले व्यक्ति भी उस अपमान करनेवाले को रोकेंगे और उनसे युद्ध करके अपने प्राण भी त्याग देंगे। मैं तो, अपने-आप पर भरोसा रखकर जीवित रहनेवाली (सीता) के दुःख को भी दूर नहीं कर रहा हूँ।

मेरे कुल में ऐसे राजा उत्पन्न हुए हैं, जिन्होने समुद्र खोदा था। जिन्होने व्याघ्र और हरिण को एक ही घाट पानी पिलाया था। किन्तु, उसी वश मे उत्पन्न हुआ मैं ऐसा हूँ कि आभरण-धारिणी अपनी पत्नी को दुःख-मुक्त करने का भी सामर्थ्य मुझमे नहीं है।

मेरे पिता ने उस (शवर नामक) असुर को, जो यमराज के लिए दुर्निवार था और जो त्रिलोक-कटक था, मिटाकर देवेन्द्र का दुःख दूर किया था। उनका पुत्र होकर जन्मा हुआ मैं, अपने धनुष के साथ, अत्यन्त पीड़ा देनेवाले क्रूर अपवाद को भी ढी रहा हूँ।

नव से प्रश्नसनीय महिमा से युक्त मेरे पिता का सत्य-त्रत यदि दृट जाय, तो उससे वड़ा अपवाद होगा—यह विचार करके मैंने राज्य-मुकुट धारण नहीं किया। यब यहाँ इन्द्रुरन-नद्दश बोलीवाली (पली) के शत्रु से अपहृत होने का सबसे वड़ा अपवाद मुझे प्राप्त हुआ है। अपवाद-मुक्त मैं क्व दुया ?

राम, इस प्रकार के वचन कहकर वर्णनातीत हुःख से मूर्च्छित हो गये। उनकी वेदना को देखकर सहजकिरण के पुत्र ने उन्हें जात्वना दी और उन्हें दुःख-सागर के तट पर लाकर खड़ा किया।

(तब राम ने सुनीव से कहा—) हे मित्र ! तुम्हारे वचनों से मेरा दुःख शात हुया। नहीं तो क्या मैं जीवित रह सकता था ? मेरे लिए मृत्यु ने दृढ़कर हित् वन्य कोई नहीं है। अपवाद-मुक्ति के लिए वही कर्तव्य है (अर्थात्, मर जाना ही भला)। फिर भी, जबतक मैं तुम्हारे दुःख को दूर न करूँ, तबतक मैं मृत्यु को नहीं अपनाऊँगा।

राघव ने इस प्रकार कहा। इसी समय अतिवली मार्त्ति ने (राम को) नमस्कार किया और कहा—हे उन्नत पर्वत-सदृश कधोवाले ! मुझे कुछ निवेदन करना है। आप ध्यान से सुनने की कृपा करें।

हे अपने आज्ञाचक्क को सर्वत्र चलानेवाले ! क्रूरकमीं वाली का वध होना चाहिए। सूर्यपुत्र को राजा बनाना चाहिए और फिर वड़ी सेना का संगठन करना चाहिए। तभी भयकर यात्रुधधारी राज्यों के निवास-स्थान को ढूँढ़कर हम वहाँ जा सकते हैं। अन्यथा, यह कार्य असंभव है।

हे भ्रमरों से सहुल पुष्पमालाधारी ! राज्यों का निवास धरती पर है ? कहीं पर्वतों में है ? अतिरिक्त में है ? इनसे पृथक् नागलोक में है ?—अल्पशक्तिवाले नर-जन्म^१ में उत्पन्न होने के कारण हम यह निश्चित रूप से नहीं जान सकते कि उनका निवास कहाँ है।

वे राज्यस पलमात्र में किसी भी लोक में जा सकते हैं। वहाँ अपने अभिलिप्ति किसी भी पदार्थ को ग्रहण कर सकते हैं। किसी विषदा के समान ही वे अकस्मात् आ गिरते हैं और फिर लौट जाते हैं। अतः, उनके निवास को पहचानना बासान नहीं है।

एक ही तमव में सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करना है। यदि एक-एक करके सब दिशाओं में ढूँढ़ने लगेंगे, तो उसमें वड़ी कठिनाई होगी। धरती अनंत रूप में फैली है और अन्वेषण में असंख्य वर्ष लग जायेंगे।

सत्तर 'धारा' सख्यावाली बानर-सेना युगात में उमड़नेवाले सागर के समान सर्वत्र फैल जायगी। तसुद्र को पी डालना हो, ब्रह्माड को उठाना हो, आज्ञा पाने पर वह सेना सब कुछ कर सकेगी।

अत , हे नीतिज्ञ ! यही उचित होगा—(कि पहले वाली-वध हो, फिर सीता का अन्वेषण हो)—यो हनुमान् ने कहा। तब उस सद्गुणागार प्रसिद्ध धनुर्धारी ने कहा—चलो, वाली के निवास-स्थान पर जायेंगे। फिर, वे सब चल पड़े।

^१ बानर मी नर के जैने होते हैं, अतः नर-जन्म शब्द से बानर-जन्म को भी लिया गया है।—अनु०

(सुग्रीव, उसके चार मत्री, राम और लक्ष्मण) वे सब ऐसे चले, जैसे भयकर नेत्रवाला एक शरभ (सुग्रीव), दो पराक्रमी व्याघ्र (नल और नील), शीघ्र गतिवाले दो गज (हनुमान् और तार) तथा दो सिंह (राम और लक्ष्मण) जा रहे हों। साल, हरे-भरे तमाल, ऐला, कदली, आम्र, नाग आदि वृक्षों से होकर पर्वत के सानु-मार्ग पर वे चले।

उस मार्ग में हरिणनयनोंवाली वानरियों के भूले लगे थे। जहाँ भूले नहीं थे, वहाँ हवा में स्पर्दित होनेवाले पत्रों से शोभायमान चंदन के वृक्ष लगे थे। जहाँ चंदन के वृक्ष नहीं थे, वहाँ मेघों से आवृत सानु-प्रदेश थे। जहाँ वैसे सानु-प्रदेश नहीं थे, वहाँ सुरभिमय चपक-उद्यान थे। जहाँ वैसे चपक-उद्यान नहीं थे, वहाँ स्वर्ण से भरे टीले थे।

धर्म-स्वरूप वे दोनों (राम-लक्ष्मण) वानर-बीरों के साथ उस पर्वत-मार्ग में कही उत्तरते, कहो चढ़ते हुए जा रहे थे। उनके मुखर बीर-बलय अपार शब्द करते थे। उस शब्द को सुनकर सोये पड़े रहनेवाले मेघ भी मानों जग जाते थे और आकाश में उड़ जाते थे।

मेघ छँचे आकाश में उड़ रहे थे। भरने भर रहे थे। पुत्राग-वृक्षों से भरित सानुओं में फनवाले सर्प इनकी आहट पाकर हट जाते थे। मत्तगज इधर-उधर विखर जाते थे। सिंह भाग जाते थे। सोतों में विचरण करनेवाली मछलियों के साथ जल-सर्प भी त्वरित गति से जाकर छिप जाते थे और व्याघ्रों के साथ काले मुखवाले लंगूर भी भाग जाते थे।

जब मदमत्त गज ढालो पर के वृक्षों से टकराते थे, तब वज्रमय काले रंगवाले अगरु और चदनवृक्ष दूटकर लुटक जाते थे, जिससे (उनपर लगे हुए) मधु के छुत्ते बिखर जाते थे और उनसे मधु वह चलता था, उस मधु के कारण उस विकट पर्वत-मार्ग पर चलना कठिन हो रहा था।

वहाँ चमकनेवाले रत्नसुदाय, अपनी काति को गगन तक फैला रहे थे और ऐसे लगते थे, मानों पर्वत पर अग्नि-ज्वाला फैल रही हों। स्वर्णमय टीलों की काति इस प्रकार फैल रही थी, मानों उस अग्नि-ज्वाला को बुझाने के लिए जल-धाराएँ बह रही हों।—उन धनुषर्धारियों के मार्ग पर ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

उस पर्वत पर के सब जलस्रोतों में आकाश-गगा बहती थी। जलाशयों के मीन वासपास के वृक्षों पर झपटते थे। जल-स्रोत नदियों पर झपटते थे। हाथी एक दूसरे पर झपटते थे। पक्षी शालि के पौधों पर झपटते थे और लगूर वृक्ष-शाखाओं पर झपटते थे।

स्वर्गवासियों को भी आकृष्ट करनेवाली ऐला की सुगाधि से युक्त वे पर्वत-शिखर मधु के बहने के कारण पिच्छल हो गये थे। उनपर जल के बहने से गगन के नक्त्र भी फिसल जाते थे। आकाश में दिखाई पड़नेवाला इन्द्र-धनुष भी फिसल जाता था। धबल चंद्र-बिंब फिसल जाता था और अतरिक्ष में सचरण करनेवाले ग्रह भी फिसल जाते थे।

इस प्रकार के पर्वत-मार्ग से चलनेवाले वे सब बीर दस योजन चलकर वाली के निवासभूत उस पर्वत के निकट पहुँचे, जो ऐसा था, मानों स्वर्णमय स्वर्ग ही उत्तर आया हो। फिर, वे अपने कर्तव्य का विचार करने लगे। (१-४२)



अथाय ४

वाली-वध पटल

उस समय, शत्रु-विजयी राम ने विचार कर तथा अपने निर्णय को उचित मानकर सुग्रीव से कहा—तुम जाकर वाली नामक उस अनुपम कूर विष के साथ युद्ध करो। उस समय मैं अलग एक स्थान पर रहकर (वाली पर) शर का प्रयोग करूँगा। यही मेरा निश्चित विचार है।

रामचन्द्र का बचन सुनते ही गगनगामी रथवाले (सूर्य) के पुत्र ने ऐसा खड़ा गर्जन किया कि उस शब्द को सुनकर तरंगों से पूर्ण जलधि भयभीत हो उठी। नीले मेघ लजित हो गये। भूमि के निवासी थरथराकर भागने लगे। स्वर्गवासी व्याकुल हुए। वह गर्जन ब्रह्माड-भर में गूँज उठा।

सुग्रीव किञ्चिन्धा के निकट जा पहुँचा। अपना थोंठ चबाता हुआ उसने गर्जन के साथ वाली के प्रति यह कहा—यदि तुम युद्ध करने के लिए आओगे, तो मैं तुम्हारे प्राण हर लूँगा। यह कहकर वज्र के समान शब्दों में धमकी देता हुआ, पैर पटकता हुआ और भुजाओं को ठोकता हुआ वह खड़ा रहा। यह ध्वनि किञ्चिन्धा में सौये हुए वाली के कानों में जाकर पड़ी और उसके वाम अंग फड़क उठे।

पर्यंक पर मानो एक द्वीरससुद्र ही लेटा हो, यों पढ़े हुए वाली ने सुग्रीव के गर्जन की उस महान् ध्वनि को सुना, जैसे हिंसा सिंह ने किसी मत्तगज का चिंधाइ सुना हो।

पर्वत-सदृश कधोंवाला वाली, अपने भाई को युद्ध करने के लिए आया हुआ जानकर हँस पड़ा। उसकी उस हँसी से चौदहों सुवन तथा दिशाओं के परे रहनेवाले प्रदेश भी काँप उठे।

ऊँची तरंगों से पूर्ण समुद्र प्रलय-काल में उमड़ उठा हो, उसी प्रकार वाली सल्वर उठा। तब उसके भार से वह पर्वत धूँस गया। उसकी बाँहों के हिलाने से जो हवा उठी, उससे समीपस्थ पर्वत ढह गये।

उसका शरीर रोमाचित हो उठा। तब उसके रोओं से चिनगारियाँ निकल पड़ी। उसके नेत्र यों आग उगलने लगे कि बड़वामि की आँखें भी उसकी तीव्रता को देखकर अधी हो जायें। उसके श्वास से धुआँ ऐसा उठा कि वह देवलोक के भी ऊपर पहुँच गया।

वाली ने हाथ से ताल ठोका। उसे सुनकर दिशाओं के रक्षक गज भी मदरहित हो गये। वज्र शक्ति-हीन हो गये। ऊपर के लोक थरथरा उठे। धरती पर स्थिर खड़े हुए पहाड़ भी ढह गये।

वाली का यह शब्द कि, ‘मैं आ गया, मैं आ गया’—पूर्व आदि अष्ट दिशाओं में गूँज उठा। वह उठ खड़ा हुआ। तब उसके मणिमय किरीट के स्पर्श से नक्त्र ऊँट पड़े।

उसके चलते समय हवा बड़े वेग से वह चली, जिससे पर्वत-समूह जड़ से उखड़े।

गये और दिशाओं की सीमा पर जा गिरे। उसके श्वेत रोमों से निकली हुई चिनगारियाँ ब्रह्माड की भित्ति पर छा गईं। यम भी उन चिनगारियों को देखकर त्रस्त हो उठा। अन्य देवता लोग व्याकुल हुए।

वाली के दौतों के पीसने से जो अग्नि-कण निकले, वे वर्षाकाल में विजलियों-जैसे सर्वत्र झड़ पडे। उसके अत्युत्तम भुजा-बलयों के रत्न इस प्रकार चूर-चूर हो झड़ पडे, जैसे विद्युत् ही झड़ रही हो।

वह सर्वभयकर (वाली) उस कालाग्नि की समता करता था, जो प्रलय-काल में पृथ्वी, चारों दिशाओं के समुद्र और देवलोक तथा सृष्टि के कारणभूत तत्त्वों को जला देती है। वह उस (वाली) के द्वारा मथे गये क्षीरसागर से उत्पन्न हलाहल की भी समता करता था।

उस समय, अमृत-सदृश, बाँस के जैसे कधोवाली 'तारा' नामक स्त्री (वाली की पत्नी), उसके मार्ग में आ खड़ी हुई। वाली के नेत्रों से निकलनेवाली चिनगारियों से उस (तारा) के लंबे केश मुलस गये।

हे पर्वतवासी कलापी! मुझे मत रोको। हटो। जिस प्रकार क्षीरसागर का मथन करके मैंने अमृत निकाला था, उसी प्रकार युद्ध का आह्वान देनेवाले सुग्रीव के बल को मथकर उसके प्राणों का पान करूँगा और शीघ्र लौट आऊँगा—यो वाली ने कहा। तब उसकी पत्नी ने कहा—

हे विजयी प्रभु! वह (सुग्रीव) पूर्व-जैसा नहीं है। तुम्हारी पुष्ट भुजाओं की शक्ति से आहत होकर वह भागा था। अब उसे नई शक्ति कुछ नहीं मिली है। अपना यह जन्म छोड़कर कोई दूसरा जन्म भी उसने नहीं पाया है। फिर भी, वह पुनः युद्ध करने के लिए आया है। अबश्य ही उसे कोई बड़ा सहायक मिल गया है।

अंतहीन तीनों लोकों के रहनेवाले समस्त प्राणी भी यदि एक साथ मिलकर मुझसे युद्ध करने के लिए आयें, तो भी सब मुझसे हार जायेंगे। इसके जो कारण हैं, उन्हें तुम सुनो—

मदर-पर्वत को मथानी, वासुकि सर्प को रस्सी, चक्रधारी (विष्णु) को कटावदार खोरिया, चद्र को आधार (लकड़ी का वह तख्ता, जो मथानी को खमे से लगाये रखता है) बनाकर इन्द्र आदि देवता तथा उनके शत्रु असुर, क्षीरसागर को मथने लगे थे।

किंतु, उस मथानी को धुमाने की शक्ति उनमें नहीं थी, इसलिए वे थक गये। तब मैंने उन्हें देखा और स्वयं क्षीरसागर को मथ डाला एवं उन्हे अमृत निकालकर दे दिया। ऐसी मेरी शक्ति को, हे कलापी-सदृश रूप तथा कोकिल-सदृश कठ से युक्त रमणी। क्या तुम भूल गई हो?

युद्ध मे मुझसे अनेक देव और असुर हार गये हैं। उनकी सख्या मैं कैसे बताऊँ। यम भी मेरा नाम सुनकर थरथरा उठता है। ऐसा होने पर भी यदि कोई मेरे शत्रु (सुग्रीव) की सहायता करने के लिए आया हो, तो—

वह बुद्धिहीन है। यदि मेरे साथ युद्ध करने के लिए कोई आ भी जाय, तो

वरदान के प्रभाव से उनके बल का अर्धांश मुझे मिल जायगा । अतः, कोई मेरे साथ क्या बैर कर सकता है ? तुम निश्चिन्त रहो ।—यो वाली ने तारा से कहा ।

यह सुनकर उस (तारा) ने कहा—हे प्रभु ! अपने हितचिन्तक लोगों से मैंने सुना है कि राम नामक व्यक्ति उस (सुग्रीव) का प्राण-मित्र बन गया है । अब वही तुम्हारे प्राणहरण करने के लिए आया है ।

तब वाली ने तारा से कहा—हे पापिन ! तुमने यह कैसा वचन कहा ? वह महाभाग (राम) पुण्य-पाप रूपी द्विविध कर्मों का अत न देखकर, दुखी होकर पुकारने-वाले प्राणियों को अपने आचरण के द्वारा धर्म का स्वरूप दिखाता है । ऐसे व्यक्ति के प्रति तुमने अनुचित वचन कहे । स्त्री-सुलभ अज्ञान के कारण तुमने कैसा अपराध कर दिया ।

इहलोक और परलोक, दोनों लोकों के फलों का विचार रखनेवाले उस महाभाग के लिए, तुम्हारा कथित यह कार्य क्या शोभा देनेवाला होगा ? ऐसा करने से उनको लाभ ही क्या होगा ? सब प्राणियों की रक्षा करनेवाला वह अपूर्व पदार्थ धर्म ही क्या स्वयं अपना नाश कर लेगा ?

विशाल ससार के राज्य को ग्रास करके जिम्मे अपनी माता की सपली के कहने से उस राज्य को अपार आनन्द के साथ उसके पुत्र को दे दिया, उस प्रभु की स्तुति करना छोड़कर तुम (उनके सवध में) इस प्रकार के निंदा-वचन कहने लगी ।

यदि सारे लोक एक साथ मिलकर सामना करने आयें, तथापि उनपर विजय पाने के लिए, उस (राम) के भयकर कोदण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी की सहायता आवश्यक नहीं है । वह प्रभु जिसकी समता करनेवाला वही है, अन्य कोई नहीं है, क्या कुद्रकार्य करनेवाले एक मर्कट (वर्धात्, सुग्रीव) के साथ मित्रता करेगा ?

मेरे भाइयों के अतिरिक्त मेरे अन्य प्राण नहीं हैं—ऐसी भावना रखकर चलनेवाला तथा कृपापूर्ण समुद्र-जैसा वह प्रभु (राम), क्या मैं जब अपने भाई के साथ उद्ध करता रहूँगा, तब वीच में सुझपर वाण-प्रयोग करेगा ?

तुम कुछ समय तक यही ठहरो । मैं एक पल में उस वैरी (सुग्रीव) के प्राण पीकर, उसके साथियों को भी मिटाकर लौट आऊँगा । व्याकुल मत हो ।—यो वाली ने कहा । इसके पश्चात् सुरभित केशोंवाली तारा डर से कुछ नहीं कह सकी और मौन रह गई ।

वाली, युद्ध के उत्साह से सत्वर ऊँचा बढ़ गया । उसकी बलशाली भुजाएँ देवलोक की सीमा से भी ऊपर उठ गईं । अपने कधे-रूपी दो पर्वतों के साथ, प्रकृति के बैमव से सपन्न उस पर्वत पर से वह इस प्रकार निकला, जिस प्रकार प्राची के पुरातन पर्वत पर सूर्य उठित होता है ।

अपने पुष्ट कर्घों से मनोहर और महान् पर्वत की समता करनेवाला वाली, क्रूर हिरण्यकश्यप के निर्देश पर वडे स्तम्भ से प्रकट होनेवाले महान् नरसिंह-जैसे उस पर्वत के एक भाग से ऐसे निकला कि देखनेवाले सभी मन में कॉप उठे ।

गर्जन करनेवाले अपने अनुज को देखकर वह (वाली) भी गरज उठा । उसके गर्जन में भीत होकर स्वेद से भरे हुए मेघों से बज्र गिरे । उस गर्जन की ध्वनि सभी लोगों

में इस प्रकार व्याप हो गई, जिस प्रकार कालवर्ण पर्वत-सदृश विष्णु के चरण हो, जो लोकों को नापने के लिए बढ़ गये थे।

उस समय, रामचन्द्र ने अपने प्रिय भाई (लक्ष्मण) से कहा—हे तात! भली भाँति व्यान से इसे देखो। दानबो और असुरों को रहने दो, सारे ससार में कौन समुद्र ऐसा है, कौन मेघ ऐसा है, कौन पवन ऐसा है, अथवा कौन-सी ऐसी भयंकर प्रलयाभि है, जो इसकी देह की समता कर सके?

तब उस महाभाग को देखकर अनुज (लक्ष्मण) ने उत्तर में कहा—यह (सुग्रीव) अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्राणों का हरण करने के लिए यम को बुला लाया है। वानरों के लिए महज, निंदा रहित युद्ध यह नहीं कर रहा है। यही बात मेरे मन में खटकती है।^१ इसके अतिरिक्त मैं और कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ।

अशात मन से (लक्ष्मण ने) फिर कहा—हे वीर! धर्म के विरुद्ध विश्वासघाती कार्य करनेवालों पर विश्वास करना हितकारी नहीं है। यह (सुग्रीव) किसी शत्रु के समान, अपने भाई को ही मारने के लिए सच्चद्व खड़ा है। भला यह पराये लोगों का सहायक किस प्रकार बन सकेगा?

तब रामचन्द्र कहने लगे—हे तात! सुनो, इन विवेकहीन मृगों के चारित्र्य के सबध में कुछ कहना ठीक नहीं है। यदि सभी मातायों के गर्भ से उत्पन्न कनिष्ठ पुत्र अपने बड़े भाइयों के अनुकूल ही आचरण करनेवाले होत, तो भरत अत्यत उत्तम सहोदर कैसे कहलाता?

प्रकाशमान पर्वत-सदृश मनोहर कधोचाले। यथार्थ यह है कि (इस ससार में) सपूर्ण रूप से धर्माचरण करनेवाले बहुत कम लोग हैं। विरुद्ध आचरण करनेवाले (अधार्मिक) व्यक्ति अनेक हैं। अतः, हम जिनसे मिलते हैं, उनमें विद्यमान सदगुणों का ही ग्रहण करना चाहिए। सर्वथा निर्दोष कहलाने योग्य व्यक्ति (ससार में) कौन हैं?—यो राम ने कहा।

वे पराक्रमी वीर (राम-लक्ष्मण) जब आपस में इस प्रकार के बचन कह रहे थे, तब रथ पर सचरण करनेवाले (सूर्य) का पुत्र और इन्द्र का पुत्र—दोनों, जो धरती पर चलने-फिरनेवाले महान् हिमाचल के जैसे थे, एक दूसरे से ऐसे टकराये, जैसे दो भारी दिग्गज हो।

जैसे एक पर्वत के निकट दूसरा पर्वत आ गया हो, वैसे ही वे दोनों परस्पर समीप हो गये। जैसे हिंस्त तथा विजयी दो सिंह, एक दूसरे से लड़ने के लिए खड़े हों, वे दोनों वैसे ही लगते थे। वे दोनों, अनेक बार एक दूसरे के दाइं और वाईं ओर चक्र लगाने लगे, जिस प्रकार दृढ़ वाहुओवाले कुम्हार के द्वारा घुमाया गया चाक हो।

समीप आये हुए दो ग्रहों के समान स्थित वे दोनों, क्रोधाविष्ट होकर, परस्पर की भुजाओं से टकरा उठे। उनके पैर, जिनके भार ने यह पुरातन धरती धूसी जा रही थी,

^१ भाव यह है—लक्ष्मण को यह बात खटक रही है कि सुग्रीव धर्म-युद्ध नहीं कर रहा है, वल्कि वालों को मारने के लिए रामचन्द्र को ले आया है।—अनु०

परस्पर रगड़ा उठे, जिससे अभिकण निकलकर अतरिक्ष में ऐसे उड़ चले, जैसे उज्ज्वल विद्वुत्-खड़ उड़ रहे हैं।

अत्यधिक भुजवल से युक्त, एक ही माता से उत्पन्न तथा एक ही मुख्या छोटी के लिए लड़नेवाले वे दोनों, (उनके शरीरों पर) फैली हुई रक्त रेखाओं से शोभित, उज्ज्वल नेत्रोंवाली सुन्दरी तिलोत्तमा के लिए लड़नेवाले प्राचीन काल के सुन्दर-उपसुन्दर नामक दो राक्षणों के जैसे लगते थे।

एक नमुद्र को दूसरे समुद्र से लड़ते हुए, भूमि की रक्षा करनेवाले मेरुपर्वत को दूसरे मेरुपर्वत से लड़ते हुए, क्रोध को स्वयं दो रूप धारण कर आपस में युद्ध करते हुए, हमने कभी नहीं देखा है। अत., इस ससार में उन वलवानों (वाली-सुग्रीव) के भयकर युद्ध के लिए कोई उपमान भी हम नहीं दे सकते।

उन वानरों के नायकों (वाली-सुग्रीव) के नयनों से जो अग्नि-ज्वालाएँ उठीं, उनसे मेघ जल गये, पहाड़ जल गये, दिग्गज काँप उठे, धरती के चारों प्रकार के प्रदेश^१ अस्त-व्यस्त हो गये, अतरिक्ष में रहनेवाले देवता दूर भागकर कही छिप गये।

देखनेवाले यह सोचकर विस्मय करते थे कि ये कि ये (वाली-सुग्रीव) अतरिक्ष में हैं, कैचे पर्वत पर हैं, भूमि पर हैं, चारों दिशाओं की सीमाओं पर हैं वथवा हमारे नयनों में ही हैं, वे कहाँ खड़े हैं? (अर्थात्, वे दोनों इतनी त्वरित गति से लड़ रहे थे कि यह विदित नहीं होता था कि वे कहाँ खड़े हैं)। इन प्रकार, वे दोनों वानर एक दूसरे को मुष्टि से बाहर करते थे और दाँतों से काटते थे, जिससे द्वात उत्पन्न होकर रक्त वह चलता था।

दमों दिशाओं में स्थित सातों समुद्र एक साथ गरज उठें, तो उनके उस गर्जन से भी पाँचगुना अधिक था उन दोनों वानर-नायकों का गर्जन-धोप। एक दूसरे की बड़ी भुजाओं और वक्ष पर वे तीव्र मुष्टि-प्रहार करते थे, तो उससे उत्पन्न शब्द युगार के मेघों के गर्जन की समानता करता था।

वे वलवान् वीर एक दूसरे पर झपटकर अपने कराल दाँतों से काटते थे। तब उनके द्वातों से वहकर रक्त सब दिशाओं में छिटरा जाता था, जिससे अतरिक्ष के सब नक्त्र मगल-ग्रह के नमान हो गये—(मगल-ग्रह रक्त काति से चमकता है, उसी प्रकार अन्य नक्त्रों की काति भी रक्त वर्ण हो गई)। वादल भी लाल आकाश-जैसे दीखने लगे।

जिन प्रकार अत्यधिक तपाये गये लौह-खड़ को बड़े हथौड़े से मारने पर चिनगारियाँ छिटक उठती हैं, उसी प्रकार इन्द्र-पुत्र (वाली) की भुजाओं द्वारा रवि-पुत्र (सुग्रीव) के वक्ष पर ठीर्ध करों का आधात होने से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

वे दोनों एक दूसरे को छाती से ढकेलते, टाँगों को फैलाकर लात मारते, बड़े वेग के साथ हाथों से मारते, काटते, खड़े होकर टकरा जाते, पेढ़ों से पीटते हुए चिल्लाते,

१ तमिल-साहित्य में चार प्रकार के प्रदेशों का वर्णन होता है, जिन्हें मुल्लै, कुरिंजी, मल्लम और नेयिदल कहते हैं। जो क्रमशः अरण्य-भूमि, पर्वतीय स्थान, लेती से भरी समतल भूमि और समुद्रतट का प्रदेश होते हैं, पाँचवें प्रदेश पालै, अर्यात्, मल्लमी का भी उल्लेख होता है। किंतु, वहाँ प्राणियों का निवास न होने से कदाचित् प्रस्तुत प्रसंग में उन्हें नहीं लिया गया है। —अनु०

शिलाओं को उखाड़कर एक दूसरे के शिर पर फेंकते और धमकी देकर डराते । ऐसे घूरते कि आँखों से चिनगारियाँ निकल पड़ती ।

वे एक दूसरे को पकड़कर ऊपर उठाते, दूर फेंक देते, फिर समीप आकर अपना वक्ष फुलाकर दिखाते । सुष्टि का ऐसा प्रहार करते कि हाथ शरीर में गड़ जाता । अति वेग से लट्टू के समान दायें और बायें पैंतरे बदलने, एक दूसरे को रोककर खड़े हो जाते, पीछे हटते, (परस्पर की) भुजाओं को बंधन में बाँधकर नीचे गिर जाते ।

कभी पूँछ से एक दूसरे के वक्ष को बाँधकर ऐसे खीचते कि उनकी हड्डियाँ भी चूर-चूर हो जाती । अपनी टाँग से दूसरे की टाँग को उलझाकर कष्ट देते । फिर, कुछ ढील देते । जैसे भाला तानकर मारा हो, ऐसे ही अतिवृद्ध तीव्रण नखों से परस्पर की देह को चीर देते, जिससे शरीर का चर्म ऐसा फट जाता, जैसे पर्वत की कदरा हो ।

धरती में गडे हुए पर्वत, वृक्ष तथा दृष्टि में पड़नेवाले सभी पदार्थों को वे अपने बलवान् हाथों से उखाड़-उखाड़कर फेंकते थे और उनसे आघात करते थे, जिससे वे (पर्वत, वृक्ष आदि) टूटकर कुछ अतिरिक्त में अद्वश्य हो जाते और कुछ समुद्र में जा गिरते ।

उस युद्ध में कोई किसी से हारा नहीं । दोनों उम्युद्ध-जन्य उमंग से मत्त होकर लड़ रहे थे । उनके श्वेत रोमों से रक्त वर्ण अग्नि-कण निकल रहे थे, जैसे सूखी धास से भरी भूमि पर आग फैल रही हो । (उस भयकर युद्ध को देखकर) देवता भी भय से व्याकुल हो उठे, तो अब उस युद्ध के बारे में और क्या कहा जाय ॥

जब इस प्रकार वे दोनों बडे पराक्रम से लड़ रहे थे, तब दीर्घ तथा पुष्ट भुजाओं तथा शत्रुघ्वसकारी पराक्रम से युक्त वाली ने सुग्रीव को अपने भयकर नखों तथा करों से ऐसे मारा, जैसे मिह हाथी को मारता है ।

तब रविकुमार (सुग्रीव) बहुत पीड़ित हो उठा और श्रीराम के पास गया । तब रामचन्द्र ने उससे कहा—दुःखी मत होओ । मैं तुम दोनों में कोई अंतर नहीं देख सका । अब तुम वनपुष्पों की माला पहनकर जाओ—यो कहकर उन्होंने सुग्रीव को दुबारा भेजा । सुग्रीव फिर जाकर वाली से युद्ध करने लगा ।

सुग्रीव, जिसके शिर पर की पुष्पमाला ऐसी थी, मानों उज्ज्वल नच्चों की गुँथी हुई माला हो, अपने गर्जन से भयकर व्याघ्र और मेघ-गर्जन को भी चकित करता हुआ त्वरित गति से आया और शत्रु-विनाशक वाली को मुक्कों से मार-मारकर त्रस्त कर दिया ।

तब वाली मन में आशकित हुआ । वह क्रोध के साथ इस प्रकार धूरा कि यम भी उससे डर गया । वह मदहास कर उठा । फिर, अपने दृढ़ हाथों और पैरों से सुग्रीव के मर्म-स्थानों में आघात किया, जिससे वह मूर्छित हो गया ।

सुग्रीव अपने नि-श्वासों के साथ प्राण भी उगलने लगा । उसके कानों और नेत्रों से अग्नि-ज्वालाओं के साथ रक्त की धारा भी वह चली । तब सूर्यपुत्र (सुग्रीव) चारों दिशाओं में व्याकुल होकर देखने लगा और इन्द्रपुत्र (वाली) गर्व से आगे बढ़कर अधिकाधिक प्रहार करने लगा ।

(फिर) वाली ने, यह सोचकर कि इसे धरती पर पटककर मार दूँगा, अपने

भाई की कटि और कठ में अपने करो को डालकर ऊपर उठा लिया। इतने में रामचन्द्र मेरे एक वाण लेकर अपने धनुष पर चढ़ाया और उसकी डोरी के साथ अपने हाथ को भी पीछे खीचकर (वाण को) छोड़ दिया।

वह शर जल, जल के कारणभूत अग्नि, वेगवान् वायु, नीचे की पृथ्वी—इन चारों भूतों के बल से युक्त हो वाली के बज्जे को उसी प्रकार छेदकर चला, जिस प्रकार भली भाँति पके हुए कदली फल को सूर्झे छेद देती है। अब और कहने को क्या शेष रह गया?

वह वाली, जिसने मुजबल से रहित हुए अपने अनुज (सुग्रीव) पर करुणा-रहित होकर, दृढ़ भूमि पर पटककर उसे मार डालना चाहा था, (राम का शर लगते ही) अत्यन्त व्याकुल हुआ और युगात के प्रभजन के लगने से जिस प्रकार मेशपर्वत जड़ से उखड़कर गिरता हो, उसी प्रकार गिर पड़ा।

उग्र के आधात से उखड़े हुए पर्वत के समान, धरती पर गिरे हुए, युद्ध में शत्रु-भयकर वाली ने, सूर्य-पुत्र (सुग्रीव) को पकड़े हुए अपने हाथों की शिथिल कर दिया। किंतु उग्र शर, जो उसके प्राणों को पकड़े हुए था, उसे वह ढीला नहीं कर नका।

विजयशील महावीर (राम) का वह अमोघ वाण उस (वाली) के वलिष्ठ बज्जे में जा लगा। वाली ने उस वाण को (अपने बज्जे को छेदकर पीठ की ओर से) बाहर निकल जाने के पहले ही अपने वलिष्ठ हाथ से पकड़ लिया और अपनी पूँछ और पैरों से उसे वाँधकर रोक लिया। (उसके उस बल को देखकर) विजयी यमराज भी शिर हिलाने लगा (अर्थात्, यम भी वाली की प्रशसा करने लगा।)

वाली कभी यह विचार कर कि मैं उछलकर अतरिक्ष रूपी दृक्षन से टकराकर उसे चूर-चूर करके गिरा दूँगा, ऊपर उछलता। कभी यह विचार कर कि एक उड़द के लुढ़क जाने के समय के भीतर ही (अर्थात्, क्षणार्ध में) समस्त दिशाओं को विघ्वस्त कर दूँगा, आगे लपकता। कभी यह विचार कर कि पृथ्वी को समूल खोद डालूँगा, नीचे गिर जाता। कभी यह सोचने लगता कि मेरे बज्जे में दुस जानेवाले ऐसे (तीद्वन) वाण का प्रयोग करनेवाला कौन है?

वह धरती पर अपने हाथों को पटकता। चारों ओर बाँख उठाकर यो धूरता कि उनमें चिनगारियाँ निकल पड़ती। उम उग्र वाण को अपने दोनों हाथों से पकड़कर पूँछ और पादों से दृढ़तापूर्वक खीचता। लेकिन, उस शर के न निकलने से अत्यत पीड़ित होता। फिर, पर्वत के समान लुढ़क जाता।

वह यों शका करता कि (उस शर का प्रयोग करनेवाले) कदाचित् कोई देवता ही है, फिर यह सोचता कि ऐसा कार्य करने की शक्ति क्या उन देवताओं में है? तो यह अन्य कौन है?—यह विचार कर हँसने लगता। कभी यह कहता कि यह ऐसे व्यक्ति का ही कार्य होगा, जो त्रिदेवों की समता करता है।

मेरे बज्जे में लगा हुआ यह क्या (विष्णु का) चक्र ही है? या नीलकंठ (शिव) का त्रिशूल है? यदि उनमें से कोई नहीं है, तो क्या पर्वतों को ध्वस्त करनेवाले प्रसिद्ध इन्द्र

के आयुध वज्र में इतनी शक्ति है कि वह मेरे बद्ध में प्रवेश कर सके ? यह क्या है ?—इस प्रकार सोच-सोचकर वाली व्यथित होता ।

अति वेग से अपने बद्ध में धौंस जानेवाले उस शर को देखकर वाली यह सोचता हुआ आश्चर्य करने लगता कि यह वाण एक धनुष से प्रयुक्त हुआ हो, यह असभव है । तब क्या ऋषियों ने मन्त्रों के प्रभाव से इसे प्रयुक्त किया है ? फिर, दीर्घकाल तक अपने दाँतों को पीसता रहता ।

अब उसे यह ज्ञात हुआ है कि यह एक शर ही है । अनेक शकाएँ करते रहने से क्या प्रयोजन है ? प्राणों के साथ मेरे बद्धःस्थल को छेद डालनेवाले इस अनुपम शर को दोनों हाथों, पूँछ और पैरों से निकालकर इसे प्रयुक्त करनेवाले वीर का नाम जान लूँगा—(अर्थात्, शर पर लिखे नाम को पढ़कर उसके प्रयोक्ता को जान लूँगा)—यों विचार कर वह वाण को निकालने लगा ।

अत्यधिक दृढ़ता से युक्त मनवाले तथा अत्यन्त व्याकुलता से भरे सिंह-समान वाली ने उस शर को पकड़कर थोड़ा खीच लिया । वह दृश्य देखकर देवताओं, असुरों तथा अन्य लोगों ने विस्मय में पड़कर अपनी भुजाओं को फुला लिया । वीरों के प्रति विस्मय भी न दिखावे, ऐसे कौन होंगे ?

उस समय (वाली के बद्ध से) जो रक्त-प्रवाह हुआ, वह जगलों और ऊँचे पर्वतों को लाँघकर वह चला, मानों वह समुद्र में जाकर मिलने के लिए ही बहा हो । क्या उसका ऐसा वर्णन करना उचित हो सकता है कि वह (रक्त-प्रवाह) ऊँची तरगां से पूर्ण समुद्र-जैसे गर्जन करता हुआ, सब लोकों को पार कर उमड़ चला ?

सुरभित पुष्पहारो से भूषित (वाली) के बद्ध-रूपी पर्वत से वहनेवाले शब्दायमान रक्तप्रवाह को देखकर, सहोदरत्व-रूपी बधन से बैंधा हुआ उसका भाईं सुग्रीव, अपनी पीली आँखों से प्रेमाश्रु वहाता हुआ धरती पर गिर पड़ा ।

मेरु को तोड़ने की शक्ति से युक्त वह यशस्वी (अपने शरीर से) निकाले हुए शर को अपने विशाल तथा बलवान् हाथों में लेकर पहले यह सोचा कि मैं इसे तोड़ दूँगा । किन्तु, फिर यह कहता हुआ कि मेरे प्रयत्न करने से भी यह वाण टूटनेवाला नहीं है, उपर अकित नाम को देखने लगा ।

जो तीनों लोकों के लिए मूलमन्त्र है, जो उसका जप करनेवालों को स्वयं को ही (अर्थात्, अपने वाच्य भगवान् को ही) पूर्ण रूप से दे देता है, जो इसी जन्म में सातों प्रकार की (योनियों^१ में जन्म लेने की) व्याधियों से सुक्षि देनेवाला औपध है, उस अनुपम महिमामय राम शब्द को वाली ने अपनी आँखों से देखा ।

गृहस्थ-धर्म का त्याग कर (वनवास में) आये हुए तथा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए अपने कुल-क्रमागत धनुर्युद्ध के धर्म को भी छोड़नेवाले, ऐसे वीर के उत्सन्न होने के कारण, वह सूर्यवश भी, जिसने वेद-प्रतिपादित धर्म को कभी नहीं छोड़ा था, आज सनातन धर्म से

^१, सात योनियाँ—मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, रेंगनवाले प्राणी, स्थावर और जलचर ।—अनु०

र्गहत हो गया ।—यो विचार कर वह (वाली) हँस पड़ा और फिर मन में लबा से भर गया ।

वडी पीड़ा में शिथिल हो पड़ा हुआ वह वाली, जो एक बड़े गड्ढे में गिरे हुए बलबान् मत्तगज के समान था, मन में लबा से भरकर अपने किरीट-भूषित शिर को मुकाता, अद्वास करता, फिर (मौन हो) मोचता और विचार करता कि क्या इस प्रकार शर का प्रयोग करना धर्म हो सकता है ?

यदि सब (लोकों) के प्रभु (राम) ही धर्म में च्युत हो गये, तो निम्न व्यक्तियों का स्वभाव कैसा होगा ? मेरे विषय में उस प्रभु ने अन्याय कर दिया है ।—ऐसे वचन मुँह से बोलनेवाले उस (वाली) के नम्मुख वे रामचन्द्र आ उपस्थित हुए, जो वेद-प्रतिपादित सत्य और द्विनियों के लिए विहित प्राचीन धर्म को अस्खलित न्यून में सुरक्षित रखने के लिए अवतीर्ण हुए थे ।

वाली ने अपनी आँखों के सामने उस विष्णु के अवतार (राम) को देखा, जो ऐसा था, मानों वर्पाकालिक नीलजलद-घनुष को धारण किये, अपने पाश्व में विकसित कमल-बन (लच्छण) के साथ, धरती पर उत्तर आया हो । उस (वाली) ने अपनी आँखों से, धाचों से वहनेवाले दधिर के सदृश ही रक्तवर्ण अविकणों को निकालते हुए राम को देखा और कहा—‘तुमने क्या मोचा ? क्या किया ?’ फिर उनकी निंदा में कहने लगा—

सत्य तथा कुल-धर्म की रक्षा करने के लिए अपने उत्तम प्राणों को भी छोड़नेवाले उदारगुण एवं पवित्रात्मा (दशरथ) के हे पुत्र ! तुम भरत से पूर्व (अर्थात्, भरत का बड़ा भाई होकर) जनमे । यदि दूसरों को बुरा काम करने से रोककर स्वयं बुरा काम करो, तो क्या वह पाप नहीं माना जायगा ? सनार के लिए मातृ-वात्सल्य के माध्य मित्रता तथा धर्म का भी निर्वाह करनेवाले (हे राम) । कहो तो ।

उत्तम कुल तुम्हारा है । श्रेष्ठ विद्या तुम्हारी है । विजय तुम्हारी है । उचित सत्कर्म तुम्हारे हैं । त्रिभुवन का नायकत्व भी तुम्हारा ही है न ? बल तुम्हारा । इस ससार की रक्षा करनेवाली महिमा भी तुम्हारी । तो भी सबको विस्मृत-सा करके, उस मारी महिमा को विनष्ट करनेवाला ऐसा कार्य करना क्या तुम्हारे लिए उचित है ?

हे चित्र में अर्कित करने के लिए दुष्कर सौंदर्य से विशिष्ट ! तुम्हारे कुल के सब लोगों के लिए द्विनिय-धर्म सत्त्व बना हुआ है न ? तो अब क्या तुम अपने प्राण-समान, हसिनी-तुल्य, जनक की पुत्री, जो तुम्हें अमृत के सदृश प्राप्त हुई थी, उस देवी को खोकर अपने कर्तव्य में भी भ्रात हो गये हो ?

यदि राक्षस तुम्हारा अहित करें, तो उसके बदले, उनसे भिन्न एक वानर-गजा को मार दो—क्या यही तुम्हारे मनु-धर्मशास्त्र में लिखा है ? दया नामक गुण को तुमने कहाँ खो दिया ? सुझामें तुमने कौन-सा दोष देखा ? हे तात ! तुम्हीं यदि ऐसे अपवश का भाजन हो जाओगे, तो यश को धारण करनेवाला और कौन होगा ?

हे कृपामय ! उदारचरित ! शब्दायमान समुद्र से बावृत पुर्थ्वी पर दौड़ते, उछलते रहनेवाले बानरों के मध्य ही क्या कलिकाल आ गया है ? क्या सत्कर्म तथा उत्तमशील अब

बलहीनों के पास ही रहने योग्य हो गये हैं । यदि वलवान् लोग नीच कार्य करेंगे, तो उसमें क्या उन्हें अपयश न होकर सुयश प्राप्त होगा ?

है (युद्ध में) किसी की सहायता की अपेक्षा न रखनेवाले वीर । पिता से दिये गये ऐश्वर्य को उसी समय अपने भाई का स्वत्व बनाकर तुम बनवास के लिए आये । इस प्रकार नगर में तुमने एक (विलक्षण) कार्य किया, किंतु मेरे अनुज को यह राज्य देकर बन में तुमने एक दूसरा ही कार्य किया, इससे बढ़कर भी क्या कोई कार्य हो सकता है ? (यहाँ वाली व्यग्य करता है ।)

मुखर वीर-बलय तथा विजयमाला को धारण करनेवाले वीर लोग जो भी काम करते हैं, वह वीरों के योग्य ही तो माना जायगा । सब पुरातन शास्त्रों के प्रभु बने हुए तुमने यदि मेरे विषय में ऐसा क्षुद्र कार्य किया है, तो हे क्रोधरहित ! अब लकाधिप के अधर्म-कृत्य पर तुम कैसे क्रोध कर सकते हो ?

जब दो व्यक्ति युद्ध करने में निरत हों, तब उन दोनों को समान रूप से न देखकर यदि एक पर दया दिखाओ और दूसरे पर आड़ में खड़े होकर अपने दृढ़ धनुष को भली भाँति झुकाकर तीव्र बाण को मर्म-स्थान में प्रयुक्त करो, तो क्या यह धर्म है अथवा और कुछ है ? जैसे भी हो, ऐसा पक्षपात अनुचित है ।

(तुम्हारे इस कार्य में) वीरता नहीं है । (शस्त्र में) विहित विधि भी नहीं है । वह सत्य में सम्मिलित होनेवाला कार्य भी नहीं है । तुम्हारा स्वत्व बनी हुई इस पृथ्वी के लिए मेरा यह शरीर भारभूत भी नहीं है । मैं तुम्हारा शत्रु भी नहीं हूँ । तो, सद्गुण का लाग कर ऐसा दया-गहित कार्य तुमने क्यों किया ?

द्विविध कर्मों (इस लोक के और परलोक के लिए हितकारी कर्म) का भली भाँति विचार करके, सबके लिए (अर्थात्, शत्रु, मित्र और तटस्थ—तीनों प्रकार के लोगों के लिए) समान रूप से उत्तम कार्य करना ही तो धर्म की रक्षा है और उसी में महत्व है । अन्यथा पक्षपात से एक को सहायता पहुँचाना क्या धर्म माना जा सकता है और क्या ऐसा करके कोई अपने को दोष से मुक्त रख सकता है ?

तुम्हारी रक्षा को दूरकर (सीता का) अपहरण करनेवाले शत्रु (रावण) को विनष्ट करने के लिए यदि तुम किसी दूसरे की सहायता पाना चाहते हो, तो तुम्हारा यह कैसा प्रयत्न है कि काले मेघ-जैसे हाथी के प्राण पीनेवाले, क्रोध से उमड़नेवाले सिंह को छोड़कर, तुम एक मगर को अपना साथी बना रहे हो ?

विश्व में विचरण करनेवाले चब्र में प्राचीन काल से ही कलक लगा है, कदाचित् यह देखकर ही सूर्य के वश में तुमने जन्म लेकर उस वश के लिए भी एक अमिट कलक उत्पन्न कर दिया है ।

युद्ध के लिए किसी दूसरे के आह्वान करने पर मैं यहाँ आया था । तुमने छिप-कर मेरा प्राण-हरण किया । अब जब मैं धरती पर गिरा हूँ, तब तुम दूसरों की दृष्टि में सिंह बनकर यहाँ आ खड़े हुए हो । वाह !

हे प्रतापी वीर ! शास्त्र-विधान की, अपने वश के पितृ-पितामहों के शील तथा

स्वभाव की रक्षा किये बिना, तुमने (मुझे निहत करके) वाली को नहीं, किंतु राजधर्म की बाड़ को ही गिरा दिया है।

किसी ने तुम्हारी पली का हरण किया, तो तुमने किसी दूसरे पर हाथ उठाया। तुम्हारे हाथ का भार बना हुआ वह धनुष वीरता के लिए कलंक है। तुम्हारी धनुर्विद्वा की प्रवीणता, क्या सामने न आकर आड़ में खड़े होकर एक निःशब्द के बच्चे में शर छोड़ने के लिए ही है?

यों अपने दौतों को पीसता हुआ और अपनी थाँखों से चिनगारियाँ निकालता हुआ वाली बोला। तब उसके सामने खड़े हुए महावीर (राम) कहने लगे—

जब तुम (मायावी का पीछा करते हुए) युहा के भीतर गये थे और अनेक दिनों तक नहीं लौटे थे, तब दुःखी होकर सुग्रीव भी उसी युहा में जाना चाहता था। उसे देखकर तुम्हारे कुल के दुद्धिमान् वृद्धों ने समझाया कि हे स्वर्णहार-भूषित (सुग्रीव)। हमारी बात सुनो। यब तुम्हारा राजा बनना ही उचित है।

इसपर सुग्रीव ने कहा—मेरे ज्येष्ठ भ्राता वाली को मायावी ने मारकर वीर-स्वर्ग का शासन दिया है, अतः मैं उस मायावी को उसके परिवार-सहित मिटा दूँगा। या स्वयं प्राण-त्याग करूँगा। मैं जीवित रहकर राज्य करना नहीं चाहता। आपके बच्चन मेरे लिए योग्य नहीं हैं।

तब उत्तम सेनापतियों और सर्वज्ञ तथा अनुभवी वृद्धों ने उसका मार्ग रोककर समझाया—तुम्हारा राज्य करना ही सब प्रकार से उचित है। तब उस दोषहीन (सुग्रीव) ने विजय-किरीट धारण किया।

वह (सुग्रीव) तुम्हें लौट आया देखकर वहुत प्रमन्त हुआ। उसने तुम्हें नमस्कार कर निवेदन किया—हे प्रभु, यह तुम्हारा राज्य है, जिसका भार वृद्धों ने मुझपर हठ करके रखा है। इस प्रकार, गर्वरहित सुग्रीव ने पूर्व-घटित सारा वृत्तात तुमसे निवेदन किया था। किंतु तुम उसपर कुद्द हुए और—

उसको निरपराध जानकर भी उसपर तुमने दया नहीं की। जब वह तुमसे वह प्रार्थना कर रहा था कि मैं तुम्हारी शरण में हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करो, तब भी उसको क्षमा न करके तुमने वड़े क्रोध के साथ उसे मारा-पीटा।

बल-समृद्ध सुग्रीव, वह कहकर कि मैं तुम्हारे साथ युद्ध में पराजित हो गया हूँ, अपने शिर पर हाथ लोड़े खड़ा रहा, किंतु तुम उसके प्राण यम को सौप देना चाहते थे। तब वह चारों दिशाओं में भागने लगा था।

उसे उस प्रकार भागते जानकर भी तुमने उसपर दया नहीं की। वह विचार न करके कि वह तुम्हारा अनुज है, तुम उसका पीछा करने लगे। फिर सुनि के शाप से सुरक्षित पर्वत (ऋष्यमूर्क) पर जब सुग्रीव चला गया, तब तुम वहाँ से हटे।

दया, कुलीनता, वीरता, विद्या और उसके द्वारा प्राप्त नीति—इन सबका प्रयोजन तो वही है कि पर-नारी के शील की रक्षा करे।

यदि स्वच्छ विवेकवाला भी यह नोचकर कि मैं बड़ा बलवान् हूँ, अपने मन को

कुमार्ग पर चलाये और बलहीनों पर क्रोध करे, तो वह वीरधर्म से च्युत हो जाता है। ऐसे ही यदि कोई पर-पुरुष की सुरक्षित शीलवाली छी के चारित्र्य को मिटाता है, तो वह भी धर्म से च्युत होता है।

धर्म क्या है?—तुमने यह नहीं सोचा। इहलोक तथा परलोक के फलों (यश और पुण्य) का विचार भी नहीं किया। यदि तुमने यह सोचा होता, तो क्या अधर्मता के साथ अपने छोटे भाई की प्राण-समान पत्नी की सगति प्राप्त करते?

इन कारणों से, तथा उस सुग्रीव के मेरे प्राणसम मित्र होने से, मैंने तुम्हारे प्राण हरण किये। इतना ही नहीं, पराया होने पर भी, बलहीनों के दुःख को दूर करना ही मेरा ध्येय है।

तुम्हारा यही अपराध है। जब अतिसुन्दर महाकीर राम ने इस प्रकार कहा, तब अनुचित कार्य करनेवाला वाली फिर कहने लगा—तुम्हारा यह कथन मेरे लिए लागू नहीं होता। क्योंकि, हम वानरों के लिए अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करना कुछ अधर्म नहीं होता।

वाली ने कहा—हे प्रभु! पातिन्त्रत्य धर्म तथा उसके अनुकूल अन्य सद्गुणों से युक्त कर्म, तुम्हारे असत्य-रहित कुल की स्त्रियों के लिए, कमलभव (व्रह्मा) ने जिस प्रकार विवाह का विधान किया है, उसी प्रकार हमारे कुल की स्त्रियों के लिए नहीं किया। किंतु, हमारे यहाँ जब जैसा संयोग मिले, तब वैसा ही सबध करने का विधान है।

हे शत्रुओं की मज्जा तथा धृत से लिस चक्रायुध धारण करनेवाले! हमारा मन जैसा चाहता है, वैसा ही हमारा आचरण भी होता है। इसके अतिरिक्त, हम वानरों के लिए वेद-प्रतिपादित विवाह का कोई विधान नहीं है। कुल-परपरागत गुण भी हममें वही होते।

मुझे जीतनेवाले हैं विजयशील। यही हमारे कुल की रीति है। अतः, मैंने अपने कुल-धर्म के अनुसार कोई पाप नहीं किया है। यह तुम समझ लो। वाली के यह कहने पर रामचन्द्र ने उत्तर दिया—

तुम उत्तम गुणवाले देवों के पुत्र बनकर उत्पन्न हुए हो और शाश्वत धर्म-मार्ग के ज्ञाता हो। तुम मृग नहीं हो। अतः, विजय-मालाओं से भूषित रहनेवाले तुम-जैसे वीर के लिए ऐसा कार्य अनुचित ही है।

क्या धर्म, पर्वेंद्रियों के वशीभूत शरीर से ही सबध रखता है? क्या वह विषयों का विवेचन करनेवाले विवेक से सबध नहीं रखता है? तुमने तो (शरीर से वानर होने पर भी विवेक से) धर्म के महत्व को भली भाँति जाना है। अतः, क्या पापकर्म करना तुम्हारे लिए उचित है?

वह गजेंद्र भी जन्म से मृग-जाति का ही तो था, जिसने एक मगर से ग्रस्त होकर शख्खारी विजयशील भगवान् (विष्णु) को पुकारा था और अपने अनुपम विवेक के कारण मोक्ष-पद प्राप्त किया था।

मेरे पितृ-तुल्य वह जटायु भी तो एक गृद्ध ही था, जिसने धर्म-मार्ग में अपने मन

को निरत रखकर स्वर्ण-कक्षण-धारिणी लक्ष्मी (-सदृश सीता) के दुःख को दूर करने के प्रयत्न में भयकर युद्ध किया था और इस सप्ताह से मुक्ति प्राप्त की थी।

पशुओं का स्वभाव ऐसा होता है कि वे भले और बुरे के विवेक से हीन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं। किंतु, तुम्हारे मुख से निकले वचन ही वता रहे हैं कि चिरतन धर्म का ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जिसे तुमने नहीं जाना हो।

यह उचित है, यह अनुचित है—इस प्रकार का विवेक किसी व्यक्ति में भी न हो, तो वह भी पशु ही होता है। यदि कोई पशु भी मनु के वताये मार्ग पर चले, तो वह देव-तुल्य हो जाता है।

तुमने यम के प्रभाव को भी मिटा देनेवाले, परशु धारण करनेवाले शिव के प्रति जो भक्ति की थी, उसी के फलस्वरूप, विष्णु के द्वारा सृष्टि चार महाभूतों की शक्ति प्राप्त की थी।

जन्म से नीच कहे जानेवाले, धर्म-मार्ग पर चलनेवाले, निष्पाप तपस्या करनेवाले, अनेक गुणों से युक्त देवता तथा पाप-कृत्य करनेवाले—इन सब लोगों में भी बुरे आचरण करनेवाले होते हैं।

अतः, किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति की महत्ता या ज्ञुद्रता उसके कार्य से ही होती है। यह जानते हुए भी तुमने अन्य की पत्नी के शील को मिटाया—इस प्रकार, मनु-नीति पर दृढ़ रहनेवाले (राम) ने कहा।

(रामचन्द्र का) यह कथन सुनकर कपियों के राजा वाली ने राम से पूछा—हे प्रभु! ऐसी वात है, तो तुम को युद्ध-क्षेत्र में आकर मुझसे युद्ध करते हुए बाण छोड़ना चाहिए था। किंतु, ऐसा न करके, कहीं छिपकर धनुष से शर का प्रयोग तुमने क्यों किया?—इस प्रश्न का उत्तर लक्ष्मण देने लगा।

तुम्हारा भाई (सुग्रीव), पहले ही उन (राम) की शरण में आ गया था। तब उन्होंने उसे यह वचन दिया था कि नीति से भ्रष्ट हुए तुमको वे निहत करेंगे। यदि वे युद्ध-क्षेत्र में तुम्हारे सम्मुख आते, तो कदाचित् तुम भी अपने प्राणों के मोह से उनकी शरण माँगते—यही सोचकर मेरे भ्राता ने तुम्हारे सामने न आकर छिपकर शर-सधान किया।

कपिकुल के प्रभु वाली ने, जिसने शास्त्रों का ज्ञान रूपी सपत्नि प्राप्त की थी, लक्ष्मण के कथन को हृदयगम किया और यह जानकर कि अति महिमावान् रामचन्द्र धर्म का विनाश कभी नहीं करेंगे, शात हो गया और (राम के प्रति) सिर नवाकर ज्ञुद्र विचारों से हीन वाली कहने लगा—

हे पुरुषोत्तम! तुम प्राणियों पर मातृ-समान ऐम रखते हो। धर्म, निष्पक्षता आदि सद्गुणों की साकार मूर्च्छित हो। (वेद-प्रतिपादित) सन्मार्ग के अनुसार देखा जाय, तो हम श्वान-समान हैं, और हम दोपहीन भी नहीं हैं। हमारे पापों को क्षमा करो।

फिर, रामचन्द्र से वाली ने प्रार्थना की—हे प्रभु! मुझे विवेकहीन वानर तथा श्वान-सदृश तुच्छ व्यक्ति समझकर मेरे वचनों को मन में न रखो। दुःखद जन्म-व्याधि के लिए अपूर्व औषधि-समान मेरे स्वामी। सब अभीष्टों को देनेवाले हैं उदार! मेरी एक वात सुनो—यह कहकर वाली फिर बोला—

सधान कर प्रयुक्त किये गये वाण से मुझे आहत कर, प्राण छूटने के समय, श्वान-सद्दर्श सुझ क्षुद्र व्यक्ति को तुमने आत्मज्ञान प्रदान किया। त्रिदेव तुम्ही हो। आदि परब्रह्म तुम्ही हो। पाप और पुण्य भी तुम्ही हो। शत्रु और मित्र भी तुम्ही हो। अन्य सब भी तुम्ही हो।

तुम्हारे शर ने, त्रिपुर-दाह करनेवाले (शिव) आदि देवों के द्वारा मुझे दिये गये सब वरों को निष्फल बनाकर मेरे दोषहीन दृढ़ वक्ष में प्रविष्ट होकर मेरे प्राणों को पी लिया। तुम्हारे ऐसे शर के अतिरिक्त अन्य पृथक धर्म क्या है? (अर्थात्, तुम्हारा शर स्वयं धर्म-स्वरूप है।)

हे देव! विचार करने पर ज्ञात होता है कि अति-बलिष्ठ शूल को धारण करनेवाले (शिवजी), उनकी प्रार्थना करनेवाले सब लोगों को श्रेष्ठ बनाकर देते हैं, तो वह तुम्हारे अनुपम नाम का जप करने के ही प्रभाव से ऐसा करते हैं। वैसे प्रभावशाली नाम के विषयभूत तुमको प्रत्यक्ष देखने पर अब मेरे लिए दुष्प्राप्य फल क्या रह गया? (अर्थात्, मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गई।)

तुम सब प्राणी, सब पदार्थ-समूह, सब ऋतुएँ तथा उन ऋतुओं के फल बनकर इस प्रकार व्याप्त रहते हो, जिस प्रकार पुण्य के भीतर सुगंधि रहती है। हे अनुपम! तुम कौन हो और तुम्हारा रूप क्या है?—यह मेरे ज्ञान ने मुझे जाता दिया। अब क्या शाश्वत परमपद भी मेरे लिए दुष्प्राप्य हो सकता है? (अर्थात्, वह भी सुलभ है।)

सद्धर्म को ही अपना स्वरूप बनाये रहनेवाले तुमको मैंने देख लिया है। अब मुझे और क्या देखना शेष रह गया है? मेरा बहुत बड़ा दीर्घकालिक कर्मजात आज समाप्त हो गया (अर्थात्, अब मैं उस कर्म-वधन से मुक्त हो गया)। तुम्हारा दिया हुआ यह दृढ़ ही मुझे सद्गति देनेवाला है।

हे गगन से भी उत्तर महत्व और विजय से युक्त नरेश! मेरा भाई मुझे मरवाने के लिए तुम्हे ले आया और तुच्छ वानरों की अच्छी मन्त्रणा से शासित किये जानेवाले मेरे इस चिरकालीन क्षुद्र राज्य को स्वयं लेकर मुझे मुर्का का राज्य दिया है। इससे बढ़कर मेरा और क्या उपकार हो सकता है?

हे चित्र-सद्दर्श आकारवाले! इस दास को तुमसे कुछ माँगना है। मेरा भाई (सुग्रीव) पुण्य-मधु का पान करने से कभी विकृतबुद्धि होकर कोई अपराध भी कर दे, तो उसपर तुम क्रोध मत करना और जिस शर-रूपी यम का प्रयोग सुझपर किया है, उसका प्रयोग उसपर मत करना।

एक और प्रार्थना है। तुम्हारे भ्राता लोग यह सोचकर कि उसने अपने बड़े भाई को मरवा डाला है, मेरे भाई को कभी अपमानित न करें। हे उत्तम गुणवाले! तुम उन्हें वैसा करने से रोकना। हे प्रभु! तुमने पहले इसके कार्य को पूर्ण करने का वचन दिया था, अतएव इसने जो किया है (अर्थात्, अपने बड़े भाई को मरवाया), वह भाग्य का ही खेल है। क्या भाग्य के परिणाम से मुक्त होना सभव है?

हे विजयी प्रभु! सुझसे और कुछ नहीं हो सकता था, तो भी मैं अपने वानर

जन्म के योग्य, कम-से-कम इतना कार्य तो कर दिखाता कि उन मायावी राक्षस (रावण) को अपनी पूँछ में बाँधकर तुम्हारे सम्मुख ला खड़ा कर देता। मेरा उतना भी भाग्य नहीं हुआ। पर जो वीत गया, उसके बारे में कहने से कुछ लाभ नहीं। कोई कार्य पूरा करवाना हो, या कुछ महत्व का कार्य हो, तो उने करने के लिए वह हनुमान् योग्य व्यक्ति है।

हे चक्रधारो ! हनुमान् को तुम अपने अस्त्र हस्त में रखा हुआ धनुष समझो। इनके सदृश सहायक अन्य कोई नहीं है। नभ से भी उत्तम कधोंवाले ! तुम उस देवी (नीता) का अन्वेषण करके उसे प्राप्त करो।

राम के प्रति ये वचन कहकर, उस बाली ने, अपनी दोनों बाँहों को बढ़ाकर निकट-स्थित अपने भाई का आर्तिगन किया और कहा—हे तात ! तुम्हें कहने योग्य एक हित-वचन है। उने अपने मन में ठीक ने बिठा लो। हे पर्वतोन्नत कधोंवाले ! मेरी मृत्यु पर तुम शोक मत करना। यह बहुकर वह फिर आगे बोला—

हे अधिक विवेकवाले ! जिस परम तत्त्व के बारे में देव, शास्त्र, सुनि तथा कमलासन ब्रह्मा आदि वर्णन करते हैं, वही परब्रह्म धर्म-मार्ग को सुरक्षित रखने के लिए शब्दायमान वीर-कक्षयारी राम के रूप में अवतार हुआ है और शत्रुनाशक धनुष लेकर यहाँ आया है। इसमें कोई सदेह नहीं है। तुम इसे भली भाँति जान लो।

हे स्वर्णमय पर्वत-सदृश अति उज्ज्वल कधोंवाले ! शाश्वत बानट (अर्थात्, मुक्ति) त्वपि सपत्नि की जामना करके, उसके योग्य मार्ग पर चलनेवाले सब प्राणी इसी का नाम जपते हैं। इसी का ध्यान करते हैं। इस बात को तुम जान लो। यदि इसके सामान्य गुणों का ही चिचार करें, तो भी इसके प्रभाव का प्रमाण देने के लिए इतना पर्याप्त है कि इसने सुके मारा है। इससे बढ़कर और कोई प्रमाण आवश्यक नहीं।

हे तात ! जो वचक है, जिन्होंने असरख्य असाध्य पाप किये हैं, वैसे जन भी इस उठार के शर-प्रयोग से मारे जाकर अति उत्तम मुक्ति-पद को प्राप्त करते हैं, तो उन लोगों के द्वारा मुक्ति-पद प्राप्त करने के बारे में कहना ही क्या है, जो इनके उभय चरणों की सेवा में निरत रहते हैं ?

जब भाग्य ही स्वयं सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो, तो फिर दुर्लभ वस्तु क्या हो सकती है ? अतः, इहलोक और परलोक, दोनों के फल तुमने प्राप्त कर लिये हैं। अब यही तुम्हारा कर्तव्य रह गया है कि लद्भी तथा श्रीवत्स-चिह्नों से अकिञ्चित वक्षवाले इस (राम) की आज्ञा को शिरोधार्य करके, उसी में अपने चित्त को एकाग्र बना लो। यो त्रिसुवनों में तुम उत्तमि पाओगे।

वानर-सुलभ अव्यान और चपलता को दूर कर दो। उदारमना (रामचन्द्र) के द्वारा किये गये उपकार को कभी न भूलो। उसके लिए आवश्यक होने पर अपने प्राण भी त्यागने के लिए सञ्चाल रहो। परमपद को प्रदान करनेवाले उस परब्रह्म की सभी आज्ञाओं का सुचारू रूप में पालन करके अपार जन्म-परपरा से अनायीस ही सुक्त हो जाओ।

राज्य प्राप्त करने के आनन्द से मत्त होकर इसकी उपेक्षा न कर वैठना। उसके कमल-चरणों नी छाया से कभी न हटना। इसी भाँति जीवन विताना। यह स्मरण रखना

कि नरपति जलती अभिं की उपमा के योग्य होते हैं। इसके बताये गये सब कार्य पूर्ण करना। यह न सोचना कि नरपति तुच्छ सेवकों के अपराधों को क्षमा कर देते हैं।

इस प्रकार के हित-वचन अपने दुःखी भाई के प्रति कहकर वाली ने अपने सम्मुख स्थित सुन्दर (राम) को देखकर कहा—हे चक्रवर्ती कुमार। यह (सुग्रीव) अपने सारे परिवार-सहित तुम्हारी ही शरण में है। यह कहकर अपने अनुज को राम के समीप प्रेषित किया और अपने दोनों कर शिर पर जोड़ लिये।

इस प्रकार, हाथ जोड़ने के पश्चात् अपने प्रेम-पात्र अनुज का सुख देखकर (वाली ने) कहा—तुम मेरे प्यारे पुत्र (अगद) को शीघ्र बुलाओ। सुग्रीव के बुलाने पर, अपने हाथों से समुद्र को मथनेवाले उस (वाली) का पुत्र अगद शीघ्र वहाँ आ पहुँचा।

वह अगद, जिसने कभी कल्पना में भी दुःखी मनवाते व्यक्तियों को नहीं देखा था, उज्ज्वल पूर्णचन्द्र के समान वहाँ आ पहुँचा। याकर उसने अपनी आँखों से अपने प्रिय पिता को, पुष्पमय सुगंधित शश्या के बदले रक्त-समुद्र के मध्य पड़ा हुआ देखा।

सूर्य-चन्द्र के सदृश दो उज्ज्वल लोल कुडलों से विभूषित तथा पुष्ट कधोंवाले कुमार ने अपने पिता को उस दशा में पड़े हुए देखा। देखकर अपने पिता के शरीर पर ऐसा गिरा, जैसे अश्रु तथा रक्त के प्रवाह के मध्य, धरती पर पड़े हुए चन्द्र-मङ्गल पर, गगन तल से कोई उज्ज्वल नक्षत्र आ गिरा हो।

हाय मेरे पिता। मेरे पिता। तुमने अपने मन से या कर्म से, उत्तुग तरग-भरे समुद्र से आवृत इस धरती पर, किसी को हानि नहीं पहुँचाई। फिर, भी तुम पर यह विपदा क्यों आई? खैर जो हो, किंतु यह कैसे हुआ कि तुम्हारी आँखों के सामने ही यम भी तुम्हारे पास आ पहुँचा? उस (यम) के सामर्थ्य को निर्भय होकर मिटा देनेवाले (तुम्हारे) अतिरिक्त और कौन है?

जिस रावण ने, अष्ट दिशाओं में कील के समान ठोके गये-से अविचल रहनेवाले दिग्गजों को भी परास्त किया था, उसका मन भी तुम्हारी पुष्ट मूलवाली सुन्दर पूँछ का स्मरण होने मात्र से ऐसा धड़क उठता है, जैसे पठह बजाया जा रहा हो। हाय। उसका वह भय अब समाप्त हो गया।

हे पिता! कुलपर्वतों तथा चक्रवाल नामक गगनोन्नत पर्वतों के शिखर अब तुम्हारे सुन्दर पद-चिह्नों से रहित हो जायेंगे। मदर पर्वत, वासुकि सर्प, चन्द्रमा तथा अन्य उपकरणों को लेकर तरगायमान समुद्र को मथने के लिए किसी से प्रार्थना करनी हो, तो अब कौन उसे मथ सकेगा?

रुद्ध-जैसे कोमल चरणोंवाली पार्वती को अपने अर्धभाग में धारण किये हुए शिवजी के चरणों के अतिरिक्त और किसीके प्रति कभी तुमने अजलि नहीं दी। ऐसे शासन-चक्र से युक्त हे मेरे पिता। तुम्हारे द्वारा क्षीरसागर के मध्ये जाने से ही देवगण भी मरणहीन बने हुए हैं। किन्तु, मधुर अमृत देनेवाले तुम, मृत्यु को प्राप्त हो रहे हो। तुम्हारे सदृश महामाले अन्य कौन हैं?

इस प्रकार के विविध वचन कहकर अगद रोने लगा। उसे देखकर अतिशोकातुर,

रक्त-नेत्र वाली ने, जिसका मन आग में पड़े मोम के-जैसा पिघल गया था, उसे आलिंगन करते हुए कहा—अब तुम दुःखी मत होओ । यह, प्रभु (राम) का किया हुआ पुण्य-कार्य है ।

त्रुटिहीन रूप से यदि विचार करके देखो, तो विदित होगा कि जन्मलेना और मृत्यु पाना—तीनों लोकों के निवासियों के लिए आदि से ही नियत हैं । मेरे पूर्वाङ्कृत तप के कारण ही मुझे इस प्रकार की मृत्यु मिली है । सर्वसाक्षी बने हुए महाबीर ने स्वयं आकर मुझे मुक्ति प्रदान की है ।

है तात ! है पुत्र । तुम वाल्यावस्था को पार कर चुके हो । यदि मेरी वात मानों, तो कहूँगा कि वही परमतत्त्व, जिससे परे और कोई तत्त्व नहीं है, हमारी दृष्टि के गोचर बनकर, (मनुष्य-रूप में) अपने चरणों को धरती पर रखे और कर में धनुष धारण करके उपस्थित हुआ है । अश्वन में डालनेवाली जन्म-रूपी व्याधि की यह (राम) ओषधि है । यह जान लो और इसको नमस्कार करो ।

है स्वर्णमय आभरणधारी । इसने मेरे प्राण हरण किये—यह वात किंचित् भी न सोचना । तुम अपने ग्राणों की रक्षा करो । यदि इस (राम) का शत्रुओं के साथ युद्ध छिड़े, तो तुम इसका साथी बनना । यह (राम), सब जीवों का उनके स्वरूप के अनुसार, हित करनेवाला है । इसके कमल सदृश-चरणों को अपना शिर पर धारण करके जीना ।

इस प्रकार के हित-बचन कहने के उपरात पर्वत से भी अधिक दृढ़ कथोंवाले वानर-राज ने अपने पुत्र (अगद) का अपनी दीर्घ वाँहों से आलिंगन कर लिया । फिर, स्वर्णमय, रत्नखन्चित आभरण पहननेवाले रक्षक राम को देखकर बोला—

है असल्य मनवालों के लिए बद्धय ज्ञान-स्वरूप ! यह मेरा पुत्र ऐसे कथोंवाला है, जो धृत लगे दीर्घ त्रिशूलधारी कालवर्ण राक्षस-सेना-रूपी तूल-समुदाय के लिए अग्नि-स्वरूप है । दोषहीन आचरणवाला है । यह तुम्हारी शरण में है ।—यों कहकर वाली ने उसे, राम को दिखाया । तब—

वह (अगद) राम के चरणों पर नत हुआ । कमल-सदृश विशाल नयनोवाले राम ने अपने सुन्दर करवाल को अगद के आगे बढ़ाकर उससे कहा—यह लो । तब सातों लोक उन (राम) की प्रशसा कर उठे । वाली अपना शरीर छोड़कर उत्तम लोकों के परे रहनेवाले परमपद को जा पहुँचा ।

उस समय वाली के हाथ शिथिल पड़ गये । वेगवान् वाण वाली के यम-समान कठोर बक्ष में न रहकर उसको पार करके निकल गया और ऊपर उठ गया । फिर, पवित्र समुद्र के जल में धुलकर, देवताओं के दिये पुण्यहारों से विभूषित होकर, प्रभु (राम) की पीठ से कभी न हटनेवाले विजयी तूणीर में जा पहुँचा । (१-१४३)



अध्याय ८

शासन पटल

वाली स्वर्ग को सिधारा । बटपत्र पर शयन करनेवाले (विष्णु के अवतार राम) उसको अनत आनंद (अर्थात्, मीक्ष) देकर अपने सम्मुख खड़े सूर्यपुत्र के अरुण हस्त को अपने कर मे लिये, अगद को भी साथ लेकर वहाँ से चले गये । जब शूल-जैसे नयनोवाली तारा ने (वाली की मृत्यु का) समाचार पाया, तब वह वहाँ आकर उसके शरीर पर गिर पड़ी ।

वाली के शरीर से वहनेवाले भयकर रक्त-प्रवाह से, उसके पर्वतोपम स्तन, जिनका अग्रभाग सुकुलित था, कुकुमरस-लिप्त जैसे हो गये । उसके घुँघुराले केश लाल हो गये । वह, वहाँ गिरे हुए मनोहर तथा विशाल कधोवाले वाली के बन्द पर इस प्रकार लोटने लगी, जिस प्रकार सूर्य के अरुण किरणो से आवृत विशाल गगन मे कोई विद्युत् कौंध रही हो ।

तारा विषण्ण हुई । दीन और व्याकुल हुई । आह भरी । द्रवितहृदय हुई । अपने दोनों करों को सिर पर जोड़कर रखा । शिथिल हुई । उसका केश-पाश गलित होकर विखर पड़ा । वह ऊचे स्वर में निम्नलिखित प्रकार के वचन कह-कहकर रो पड़ी । उसके कठ की ध्वनि से वाँसुरी, मधुर नादवाला याक् और बीणा के नाद भी लज्जित हो गये :

हे मेरे अत्युत्तम अपूर्व प्राण । हे मेरे हृदय । हे मेरे प्रभु । तुम्हारी पर्वत-सहश मुजाओं के मध्य, नित्य सुरक्षित रहती हुई, मैने कभी वेला-हीन दुःख-सागर को देखा भी नहीं था । अब मै तुम्हारी यह दशा देखकर वहुत त्रस्त हो रही हूँ ।

तुम कभी मेरे प्रतिकूल नहीं हुए । तुम्हारे इस दुःख को देखकर भी मै प्राण छोड़े बिना जीवित हूँ । अत., अब तुम मुझे अपने निकट नहीं बुलाओगे । हे मेरे भाग्य-देवता । ग्राणों के जाने पर क्या देह जीवित रह सकती है ?

हे मेरे प्रभु । क्या यमदेवता यह नहीं जानते कि तुम्हारे द्वारा सुरभिमय अमृत दिये जाने के कारण ही वे अमर बने हुए हैं ? क्या वे इतने ज्ञुद्र हैं कि अपने प्रति (तुम्हारे द्वारा) किये उपकार का स्मरण नहीं करते ?

तुम सब दिशाओं से जाकर, सच्ची भक्ति के साथ, न कुम्हलानेवाले पुष्पो से, अपने अङ्ग मे उमादेवी को धारण करनेवाले देव की पूजा किये बिना, इतनी देर तक यही पड़े हो । क्या यह उचित है ?

हे ग्रन्थ ! पुष्पशय्या पर, मटु वस्त्रो के आवरण पर, शयन करनेवाले तुम अब भूमि पर पड़े हो । यह देखकर मेरा मन द्रवित हो रहा है । मै तुम्हारे सम्मुख खड़ी होकर आँसू बहा रही हूँ । फिर भी, तुम मुझसे कुछ नहीं कह रहे हो । मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है ?

हे कभी अमत्य न बोलनेवाले पुण्यात्मा । मैं यहाँ रहकर इस प्रकार दुःखी हो रही हूँ और तुम सत्य-परायण देवों के लोक मे जाकर सुख भोग रहे हो । हे प्रभु ! क्या

तुम्हारा यह कथन असत्य ही है कि मैं तुम्हारा प्राण हूँ ? (अर्थात्, तुम जो यह कहते थे कि तुम मेरे प्राण हो, क्या वह कथन भूठ ही था ?)

युद्ध के अभ्यस्त कधोवाले । यदि यह सत्य है कि मैं तुम्हारे हृदय में हूँ, तो शत्रु का शर मेरे प्राण भी हर लेता । यदि यह सत्य है कि तुम मेरे हृदय में रहते हो, तो तुम निश्चय ही जीवित रहते । हम दोनों ही एक दूसरे के हृदय में नहीं थे ।

हे मेरे प्रभु ! देवताओं ने तुम्हारा यह उपकार स्मरण करके कि तुमने उन्हें अमृत ला दिया था, जिसे वे अमर बन सके, अब क्या (तुमको स्वर्ग में आये हुए देखकर) उन्होंने तुम्हे कल्पपुष्ट प्रदान करके, तुम्हें अपना मित्र तमस्कर । तुम्हारी आवभगत करके तुम्हारा सत्कार कर रहे हैं ।

तुम तो अमरता प्रदान करनेवाला अमृत भी (देवों को) ला देनेवाले हों । छिपे रहकर शर छोड़ने के लिए तैयार होकर आया हुआ राम यदि अपने सुँह से माँगता, तो क्या तुम अपना सर्वस्व भी उसको नहीं दे देते ?

मैंने पहले ही कहा था (कि राम सुग्रीव की सहायता करने के लिए आया है)। मेरा कहना न मानकर, यह कहते हुए कि वह राम वैमा अनुचित कार्य नहीं करेगा, तुम अपने भाई से युद्ध करने लगे और युगात तक जीवित रहने योग्य तुम मृत्यु को प्राप्त हो गये । मैं तुम्हें फिर कवि देखूँगी ?

यदि तुम प्रहार करते, तो मेरपर्वत भी चूर-चूर हो जाता । आह ! एक शर ने तुम्हारे सामने होकर तुम्हारे बज्ज को कैमे विदीर्ण कर दिया । क्या यह देवों की माया है ? मैं नहीं समझ रही हूँ । अथवा यहाँ जो मरा पड़ा है, वह कोई दूसरा ही बाली है ?

है नाथ ! तुम्हारे भाई ने उत्तम यश की गरिमा से युक्त रहकर तुम से वैर किया, जिसके परिणाम-स्वरूप तुम मृत्यु को प्राप्त हुए और हमारा सर्वस्व विनष्ट हो गया । हाय ! तुम हमारी यह दशा क्यों नहीं देखते ?

व्यापूर्व अमृत के समान विषटाओं को दूर करनेवाले उस राम ने अब एक बीर का अहित सोचकर क्या कार्य कर दिया ? क्या यह वचन केवल कथन ही है (किंतु, यथार्थ नहीं है) कि धर्म पर स्थिर रहनेवालों की कसौटी, उनके कार्य ही होते हैं ?

इस प्रकार के अनेक वचन कहकर, अर्ति दुःखित हो, बुद्धिभ्रष्ट हो वह निश्चेष्ट पड़ी रही । उसकी वह दशा देखकर नीतिनिपुण तथा दृढ़ पर्वत के सदृश हनुमान् ने—

वानर-न्यियों के द्वारा उसको उसके निवास पर पहुँचवा दिया और बाली के अतिम कृत्य करवाये । फिर, श्रीरामचन्द्र के पास जाकर सब वृत्तात सुनाया ।

तब सूर्यदेव, जो अपने प्रकाश से अंधकार को निर्मल कर देता है, अपने गम्य-स्थान अस्ताचल पर जा पहुँचा । वह (सूर्य) पर्वत-सदृश वानरराज (बाली) के मुख की समता कर रहा था (अर्थात्, रक्तवर्ण दीखता था) ।

सध्या के समय सूर्य अस्त हुआ । उदारशील (राम) सीता का स्मरण करते हुए, विश्रात होकर शिथिल तथा द्रवितहृदय हो उठे । और, इस प्रकार (कष्टों से) भरे हुए उस निशा-सागर को बड़ी कठिनाई से पार किया ।

सूर्य, यह सोचकर कि उसका पुत्र (सुग्रीव) स्वर्ण-सुकुट धारण करनेवाला है, बड़ी उमंग से भर गया । (उस राजतिलक के उत्सव में) सहयोग देने के लिए लक्ष्मी का भी आगमन हो—इस उद्देश्य से, उस (सूर्य) ने अपने अरुण करो से उत्तम कमल-दल-रूपी कपाट खोल दिये ।

उस समय, करुणानाथ (राम) ने अपने उत्तम मतिवाले अपने अनुज को देखकर यह आदेश दिया—हे तात ! तुम अपने हाथों से सूर्य-पुत्र को यथाविधि राज्य पर अभिषिक्त कर दो ।

आज्ञापालक, महिमावान् लक्ष्मण ने तुरत ही जाकर नीति से सखलित न होनेवाले तथा युद्ध में कुशल हनुमान् से कहा—हे वीर ! इस शुभ कार्य के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को तुम अभी ले आओ—तब,

अभिषेक के योग्य तीर्थ-जल, मंगल-द्रव्य, प्रशसनीय स्वर्णसुकुट आदि उपकरण—सब हनुमान् के द्वारा लाये गये । पुरुषोत्तम (राम) के भाई लक्ष्मण ने महिमा-भरे सुग्रीव से व्रत आदि कर्त्तव्य कराये । फिर—

ब्राह्मण लोग आशीर्वाद दे रहे थे । देव मधु-पूर्ण पुष्प वरसा रहे थे । सद्धर्म के पथपर चलनेवाले मुनि (पुरोहित बनकर) कृत्य करा रहे थे । धर्मात्माओं के वताये विधि से लक्ष्मण ने उस महाभाग (सुग्रीव) को सुकुट पहनाया ।

स्वर्णमय किरीट धारण करके सुग्रीव ने असत्य-रहित प्रभु (राम) के महिमामय चरणों को प्रणाम किया । तब प्रभु ने, जो अर्थपूर्ण वाणी के भी परे हैं, अपने सुन्दर वक्ष से उसे लगा लिया, और कहा—

हे वीर ! तुम यहाँ से अपने प्राकृतिक निवास-स्थान (अर्थात्, किष्किन्धानगर) में जाओ, और अपने द्वारा करणीय कार्यों का ठीक-ठीक विचार कर, यथाविधि उन्हें पूरा करो । यों जिस राज्य-भार को तुमने अपने ऊपर लिया है, उसके लिए आवश्यक सब कार्य करो और युद्ध में मरे हुए वालों का जो प्रिय पुत्र है, उसके साथ उत्तम ऐश्वर्य के साथ चिरकाल तक जीते रहो ।

सत्य से भरित, विवेकपूर्ण मन्त्रियों के साथ तथा दोष-रहित सदाचारी एव पराक्रमी सेनापतियों के साथ पवित्र मैत्री का भाव रखो, और तुम स्वयं भी त्रुटिहीन कार्य करते हुए इस प्रकार रहो कि वे (मन्त्री तथा सेनापति) तुम्हारे अति निकट या अति दूर न रहकर तुम्हें देवता के समान मानकर व्यवहार करें ।

ससार इतना विवेक-पूर्ण है कि यदि कही धूम दिखाई पड़े, तो यह अनुमान कर लेता है कि वहाँ जलती आग भी होगी । अतः, तुम्हे चाहिए कि तुम शास्त्रज्ञों के द्वारा कथित कूटनीति को भी अपनाओ । तुम हँसमुख रहो । मधुर वचन वोलो और दूसरों के स्वभाव को जानकर, इस प्रकार आचरण करते रहो कि उससे तुम्हारे प्रति वैर रखनेवालों का भी हित हो ।

वह दोष-रहित महान् ऐश्वर्य, जिसे देखकर देवलोग भी सुगंध होते हैं, तुमको प्राप्त हुआ है । तो उस सपत्नि के महत्त्व को ठीक-ठीक पहचानकर मदा सजग रहो । क्योंकि,

तीनों लोकों के निवासी ऐसे होते हैं, जो मुनियों के प्रति भी धनी मित्रता रखते हैं, कुछ उनके बैरी होते हैं, तो कुछ तटस्थ स्वभाव रखते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के स्वभाववालों में ने तुम किसी के प्रति अहित कार्य न करना। अपने कर्तव्य कार्य पूरा करना। यदि कोई तुम्हारी निंदा करे, तो भी उसके प्रति निंदा-अहित मधुर वचन कहना। दूसरों के धन का अपहरण करने का लोभ न रखना। ये सब धर्म किसी व्यक्ति का उसके वधु-परिवार-सहित, उद्धार करनेवाले होते हैं। अतः, तुम इसी प्रकार के धर्म वा आचरण करना।

हे पुष्ट कधीवाले ! किसी को बलहीन जानकर उसे हुँख न देना। मैं (अपने वाल्यकाल में) इन धर्म-मार्ग की भीमा को पारकर गया था और शरीर से विकृत होकर भी दुष्टि ने बड़ी हुई कुशड़ी के कारण राज्यभृष्ट हो गया^१ और कठोर हुँख-सागर में छूटा।

यह निश्चित जानो कि नियों के कारण पुरुषों को मृत्यु प्राप्त होती है। वाली का जीवन ही डम्भा प्रमाण है और उन्हीं नियों के कारण हुँख और अपवाट भी उत्पन्न होते हैं। यह तुम मेरे जीवन से जान नकते हो। इस विषय के जान से बढ़कर अन्य हित-कारी शिक्षा क्या हो नकती है ?

अपनी प्रजा की इन प्रकार रक्षा करना कि वे वह कहें कि, हमारे राजा राजा नहीं हैं, किन्तु हमारा लालन-पालन करनेवाली माता हैं। ऐसा आचरण करते हुए भी यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा अहित करे, तो उसे धर्म से स्खलित न होते हुए दड़ देना।

यथार्थ का विचार करें तो (विदित होगा कि) जन्म और मृत्यु तर्बदा, अपने-अपने कायों के परिणामस्वरूप ही होती हैं। कमलभव व्रहा ही क्यों न हो, धर्म से स्खलित होने पर विनाश को प्राप्त होता है। धर्म का अत जीवन का अत है—यह बड़े लोगों का कथन है अब अन्यों के द्वारे मे क्या कहा जाय ?

परस्पर के आधात से उन्माद उत्पन्न करनेवाले मल्लयुद्ध में कुशल वीर ! उपन्नता और निर्धनता—दोनों जीवों के पुण्य और पाप के फलों के अतिरिक्त और भी कुछ है, इसे अनुपम शाल्लों ने निषुण विद्वान् भी नहीं जानते (अर्थात्, प्राणियों के पाप-पुण्य के फलस्वरूप ही निर्धनता और सपन्नता होती है)। अतः पुण्य को छोड़कर क्या पाप को ग्रहण करना कभी उचित हो सकता है ?

यही राजाओं के योग्य कर्तव्य है। विधि के अनुसार तुम राज्य करो और समीप आई हुई वर्षा झृत्तु के व्यतीत होने के पश्चात् अपनी चमुद्र-सदृश चिशाल सेना को लेकर मेरे पास आओ। अब तुम जाओ—यों उस सुन्दर (राम) ने कहा। तब सुमीव ने कहा—

हे उद्धार ! बृक्षों तथा जलाशयों से भरा हुआ (किञ्चिन्धा के) पर्वत बानरों का निवास है, त्रेवल यही तो इनमें दोष है। अन्यथा यह स्थान सभा-मडप से विभूषित

^१ इस पद में उत्त वदना की ओर सकेत है कि रामचन्द्र वचपन में अपने अनुप से मंथरा के कूबड़ को लहव करके मिट्टों की गोली मारने थे, जिससे मथरा मन-ही-नन चिद्दती थी। इसी का बदला लेने के लिए मथरा ने ऐसा उत्त वदन किया, जिससे रामचन्द्र को राज्य-ऋष्ट होकर वन जाना पड़ा।—अनु०

स्वर्ग से भी अधिक मनोहर है । अतः, तुम कुछ दिन हमारे यहाँ आकर ठहरो, जिससे हम तुम्हारी करुणापूर्ण आज्ञा का पालन कर सकें ।

हे अरिदम ! तुम्हारी शरण मे आकर हम तुम्हारी करुणा के पात्र बने हैं । तुमसे वियुक्त होकर जो ऐश्वर्य हम पायेंगे, वह दरिद्रता से भी अधिक गर्हित होगा । अतः, जबतक तुम्हारी देवी का अन्वेषण करने का समय न आवे, तबतक तुम हमारे साथ (नगर में) आकर ठहरने को कृपा करो—यो कहकर सुग्रीव (राम के) चरणों पर गिर पड़ा ।

यह बचन सुनकर महाभाग ने मधुर मदहास करते हुए कहा—राजाओं के निवास-योग्य नगर, मेरे जैसे व्रतधारियों के लिए योग्य नहीं है और यदि मैं वहाँ आऊँ, तो मेरी सेवा में ही तुम्हारा सागा समय लग जायगा । तुम, विचार कर किये जाने योग्य शासन-कार्य से, सखलित हो जाओगे ।

हे चिरंजीव ! मैंने यह प्रण किया है कि चौदह वर्ष वन मे रहूँगा । अतः, (इस अवधि में) मैं राजाओं के निवास में नहीं ठहर सकूँगा । हे दृढ़ तथा सुन्दर कधोवाले ! वृणा-नाद-सदृश स्वरवाली अपनी देवी के विना क्या मैं सुख भोग सकूँगा ? यह तुमने कदाचित् सोचा नहीं ।

हे तात ! यह अपवाद क्या त्रिमुखनो के विनाश होने पर भी मिट सकेगा कि, राज्य के द्वारा अपनी पत्नी के बढ़ी बनाकर रखे जाने पर भी राम, स्वय, अपने प्यारे मित्रों सहित, अपार सुखों का भोग करता रहा ।

जिन लोगों ने गृहस्थाश्रम का त्याग नहीं किया है, वैसे लोगों के लिए योग्य धर्म को मैंने पूरा नहीं किया । युद्ध में धनुष लेकर किये जानेवाले कर्त्तव्य को भी मैंने पूर्ण नहीं किया । यो व्यर्थ जीवन वितानेवाले सुफ़-जैसे के लिए सब (सुग्रीव के साथ नगर में रहना इत्यादि) महत्वहीन ज्ञुद्र कार्य हैं । उत्तम गृहस्थ-धर्म को छोड़कर, वानप्रस्थ व्रत का आचरण करके मैं अपने पापों का परिहार करूँगा ।—यो राम ने कहा ।

फिर कहने के लिए सुकर, किंतु करने के लिए दुष्कर सचारित्र्य मे स्थिर रहनेवाले (राम) ने आगे कहा—हे वीर ! शासन के सब कार्यों को यथाविधि पूर्ण करके चार मास व्यतीत होने पर, उत्तुग तरगो से पूर्ण समुद्र-सदृश अपनी सेना को साथ लेकर मेरे निकट आओ । यही तुमसे मेरी प्रार्थना है ।

वानरों का नेता इसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सका । यह सोचकर कि गगनोन्तर (गभीर) आकारवाले तथा तपस्वी वैष्णवी (राम) के मन के अनुसार करना ही दोप-सुकृ वनने का उपाय है, अपने विशाल नयनो से अश्रु वहाता हुआ दड़वत् किया और अकथनीय दुःख को मन मे भरकर वहाँ से चला ।

वाली-पुत्र (अग्रद) राम के चरण-कमलो में प्रणत हुआ । उसे सकरण देखकर नीले मंध-जैसे उस महान् ने कहा—तुम शीलवान् हो । दृम (सुग्रीव) को अपने पिता का भाई जानकर उसकी आज्ञा मे स्थिर रहो ।

इस प्रकार के बचन कहकर सुग्रीव के साथ उसको भेज दिया । तब तुरत ही यशस्वी तथा गुणवान् अग्रद, उनके उत्तम चरणो को नमस्कार करके विदा हुआ । फिर,

प्रसु ने मारुति को देखकर कहा—हे सुन्दर वीर ! तुम भी उस राजा (सुग्रीव) के शासन के योग्य कार्य अपने विवेक से पूरा करते रहो ।

प्रेम से परिपूर्ण तथा असत्य-रहित मनवाले हनुमान् ने यह कहकर कि, यह दास यहीं रहकर (आपकी) आज्ञा के अनुसार योग्य सेवा करता रहेगा, उनके पदयुगल पर गिर पड़ा । तब सत्य में दृढ़ रहनेवाले प्रसु ने कहा—

एक प्रतापी राजा के द्वारा शासित अपार ऐश्वर्य से युक्त राज्य को जब दूसरा कोई वीर बलात् हस्तगत कर लेता है, तब उससे सदा भलाई ही हो, ऐसी वात नहीं। किन्तु, उससे कभी बुराई भी उत्पन्न हो सकती है । अतः, हे तात । वैमा राज्य तुम-जैसे बड़े दायित्व का वहन कर सकनेवाले विवेकी पुरुष से ही स्थिर रह सकता है ।

(गुणों से) परिपूर्ण उस (सुग्रीव) के राज्य को स्थिर बनाकर, उसके पश्चात् मेरे कार्य को पूरा कर नकनेवाला (पुरुष) तुमसे बढ़कर और कौन है ? अतः, तुम मेरी इच्छा के अनुसार, साकार धर्म-जैसे उमके पास जाओ ।

चक्रधारी के ये बचन कहने पर मारुति ने नमस्कार करके कहा—हे प्रसु ! आप विजयी हों । यदि आपकी यही आज्ञा है, तो यह दास वैसा ही करेगा । और, वहाँ से चला गया । पुरातन सृष्टि के नायक (राम) भी मुख्यपट्ठारी बड़े हाथी के सदृश अपने भाई के साथ एक छँचे पर्वत पर चले गये ।

आर्य (राम) की आज्ञा में सुग्रीव विशाल किञ्चिन्धा में जा पहुँचा और महिमावान् मन्त्रियों तथा ब्रह्मणों से युक्त होकर तारा को ग्रेणाम किया और उसको अपनी माता तथा अपने अग्रज के उपदेशों को ही अपना पिता मानकर, उत्तम रीति से शासन करता रहा ।

वह अपार ऐश्वर्य को प्राप्त कर, आनन्द से शामन करता रहा । अन्य वानर उमके अनुकूल आचरण करते रहे । उसका शामन-चक्र दिगन्तों में व्याप्त हुआ । अपार पराक्रम-युक्त अग्रद को उसने राज्य का द्युवराज-पद दिया ।

उदार (राम), वहाँ से चलकर मतग महर्षि के आवासभूत गगनस्पर्शी (ऋष्यमूक) पर्वत पर जाकर ठहरे, जहाँ उनके उस भाई ने, जिसके मन की सच्ची भक्ति को भर-भरकर लिया जा सकता है, प्रेम से पर्णशाला बनाई थी । यों वे विश्राम करते रहे । (१-५४)

अध्याय ४

वर्षकाल पटल

सूर्य, महिमा-भरी उत्तर दिशा से (दक्षिण दिशा को ओर) चल पड़ा, मानों चित्रप्रतिमा-समान उज्ज्वल तथा लावण्यद्वुक्त (सीता) देवी का अन्वेषण करने के लिए देवाधिप (राम) के द्वारा पहले भेजा गया दूत हो ।

सजल मेघ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, जिस प्रकार अनेक फनवाले सूर्यराज के द्वारा धारण की गई पृथ्वी-रूपी दीपक में शब्दायमान समुद्र रूपी तैल के मध्य मेरुपर्वत-रूपी वत्ती की सूर्य-रूपी ज्वाला से उत्पन्न अर्जन हो।

धने वादलों के छा जाने से अधकार-भरा आकाश का रंग ऐसा था, जैसे समुद्र से उत्पन्न अति भयकर हलाहल विष को पीनेवाले ललाट-नेत्र (शिव) का कठ हो। उससे सूर्य की किरणें भी तापहीन हो शीतल हो गईं।

नील आकाश, विष के समान, शीतल तथा विशाल सागर के समान, उरुणियों के अर्जन-लगे नयनों के समान, (उनके) विखरे केश-पार्श्वों के समान, मायावी राज्ञों के शरीरों के समान, (उनके) पापकर्मों के समान और (उनके) मन के समान ही कालिमामय हो गया।

वे मेघ, जिन्होंने अनेक दिनों से शीतल समुद्र के जल को अपनी जिह्वा से अधाकर पिया था और जिनमें विजलियाँ चमक रही थीं, ऐसे लगते थे, जैसे करवालधारी वीरों के युद्ध में करवालों के आघात से धायल होकर मदजलस्तावी गजराज पड़े हों।

उदर में जल से भरी हुई काली धनी घटाएँ बड़े-बड़े काले हाथियों की पक्कियों के समान थी और उनके उमड़ने से ऐसा धोर शब्द होता था, मानों तरग-समान काले समुद्र का विशाल जल ही अनन्त आकाश में छा गया हो।

कौधनेवाली विजलियाँ, इन्द्र आदि देवताओं के चमकते हुए आमरणों की जैसी थी, पर्वतों में फैलकर सब वस्तुओं को जलानेवाली अग्नि के समान थीं तथा अनिन्दनीय दिशाओं की हँसी की जैसी थी।

वर्षाकालिक काली घन-घटा एक भट्ठी की समता करती थी, जहाँ दिशा-रूपी लुहार, सब वस्तुओं से अधिक कालिमापूर्ण आकाश-रूपी कोयले की राशि में उत्तर दिशा की अतिवेगवान् पवन-रूपी बड़ी भाथी लगाकर तीव्र अग्नि-ज्वालाओं को भड़का रहा था।

आकाश में तथा दिशाओं में विजलियाँ इस प्रकार कौंध उठीं, जैसे अपने प्रियतम के वियोग में तरुणियाँ तड़प उठी हों, धरती के गर्म में स्थित सर्प जलकर तड़प उठे हों, या सूर्य-किरणों को काट-काटकर दिशाओं में फेंक दिया गया हो, अथवा वज्र की लपलपाती जिह्वाएँ-तड़प उठी हों।

वे विजलियाँ ऐसी थीं, जैसे मणिकिरीटधारी मायावी विद्याधरों के द्वारा कोश से निकालकर धुमाये जानेवाले (शत्रुओं के) रक्त-सिंचित करवाल हों, अथवा दिक्पालों के साथ यात्रा करनेवाले दिग्गजों के सुखपट्ट हों, जो हिल-हुलकर चमक रहे हों।

वे विजलियाँ यों चमक उठी, मानों अष्ट दिशाओं में धरती को धारण करनेवाले अष्ट महानागों की जिह्वाएँ व्यास हो रही हों। उस समय झंकावात यों वह चला, मानों विष्णु की काति के समान काली बनी हुई घटाएँ (अपने गर्भ के भार से) निःश्वास भर रही हों।

वह वर्षाकालिक पवन ऊँच-नीच का भेद किये विना पर्वतों, वृक्षों तथा अन्य सब प्रदेशों में वारनारियों के उस चचल मन के समान फैल गया, जो (मन) केवल धन की कामना करके धन देनेवाले किसी भी व्यक्ति के समीप जा पहुँचता है।

उत्तर दिशा का वात, अपने प्रियतमो के विरह में पीड़ित रहनेवाली उर्ध्णियों के तत स्तन-तटों को और भी तपाता हुआ बह चला और उस प्रकार बढ़ चला, मानों कोई पिशाच हो, जो (उन स्तनों को) पुष्ट मासखड़ समझकर उनको काटकर खा डालने के लिए चल पड़ा हो ।

बड़े शब्द के साथ धूलि ऊपर उठकर आकाश को झुँधने लगी, विजलियाँ तीक्ष्ण तलवारों के समान धूम-धूमकर चमकने लगीं । मेघ पुष्प-मालाओं से बलकृत बड़े नगाढ़ों के जैमे गगजने लगे । आकाश एक बड़े युद्ध-रग के समान दृश्यिगत होने लगा ।

मधुर मद्हास करनेवाली जानकी से बिछुड़े हुए रामचन्द्र पर मन्मथ पुष्प-बाण वरसा रहा हो—उसी प्रकार विजलियों ने पूर्ण मेघ-मण्डल उन स्वर्णमय पर्वत पर जल-धाराएँ बरसाने लगा ।

जल-धाराएँ मेघों के मध्य-स्थित धनुष में प्रयुक्त शरों के समान वेग से पहाड़ों पर आकर गिरती थीं, मेघों से उत्पन्न रक्तवर्ण बज्रामि के कण ऐसे गिरे, जैसे रात्रि के नमय अत्युच्चल रत्न-कण वरस रहे हों ।

योद्धा लोग शत्रुओं के बड़े हाथियों पर चमकते हुए बरछे प्रयुक्त कर रहे हो—ऐसे ही मेघ पर्वत पर जल-धाराएँ बरसा रहे थे । उन अवार्य जल-धाराओं के प्रहार से शिलाखड़ दृट-दृटकर ऐसे लुढ़क रहे थे, जैसे लाल विंदियोंवाले उत्तम लक्षण-सम्पन्न गज आहत होकर लुढ़क जाते हों ।

मेघ, मीनकेतन (मन्मथ) था, इन्द्र-धनुष ईख का क्रमान था, नरसती जल-धाराएँ पुष्प-शर थीं, पर्वत की दीर्घ धाटियाँ विरहीजन थीं, उन पर्वत-शिलाओं पर जल-धाराएँ यों गिरती थीं, जैमे मासल शरीर में शर चुभ जाने हों ।

देवता, यह कहकर कि पवित्र मूर्त्ति (श्रीगाम) तथा कपिगण दोनों मिलकर अब हमारे शत्रुओं (रावणादि राक्षसों) को शीघ्र ही मिटा देंगे गर्जन कर उठे हो—यों मेघ गग्ज उठे, जल-विन्दु पुष्प-वधाँ के समान वरस पड़े ।

सुन्दर धनुष धारण करनेवाला गक्षम रावण, जब करवाल लिये हुए (सीता को) उठाकर आकाश-मार्ग ने त्वरित गति से ले जा रहा था तब उम नारी-रत्न, वाभरण-भूषित देवी (सीता) के नवन जिम प्रकार अश्रुवर्धा करने लगे थे, उसी प्रकार मेघ वरस पड़े ।

शिर पर चन्द्र को धारण करनेवाले भगवान् (शिव) आकाश-मार्ग में उड़नेवाले तीनों पुरों को दग्ध करने के लिए अग्निसुखी शर प्रयुक्त कर रहे हों—ऐसी लगती थी चमकती हुई विजलियाँ वे मान पर रगड़कर पैनाये गये और चमकते हुए बरछों के समान ही विरह-तत पुरुषों के मन को दग्ध कर रही थीं, जिसमे विरहीजन तड़प उठे ।

वे वर्षाकालिक संपत्ति का अर्जन करने के लिए दूर देशों में गये हुए जनों के वियोग में निष्ठाण वनी हुई विरहिणियों को उनके प्रियतम-रूपी प्राणों को चकवाले रथों-पर शीघ्र ला देने थे, अत मूँछों उत्पन्न करनेवाली विरह-व्याधि-त्वपी सर्प के विनाश के लिए वे (मेघ) गहड़ के समान थे ।^१

^१ वर्षाक्षतु में प्रवास में गये हुए प्रेमी अपने घर वापस आ जाने हैं अतः मेघ विरहिणियों का, वियोग में दूसरे को दूर करनेवाला, नाथ है ।— अनु०

बड़े मेघ, बारी-बारी से गगज रहे थे, और जल वरसाते हुए एक-दूसरे के निकट आकर टकराते थे, जैसे बड़े-बड़े हाथी गरजते हुए और मदजल को बहाते हुए क्रोध के साथ छोड़कर एक दूसरे से टकरा जाते हों।

हवाएँ बारी-बारी विभिन्न दिशाओं से बहती थीं। मेघ अपने चचल तथा छोटे जल-विन्दुओं को शरों की बौछार के समान अपने लक्ष्य पर प्रशुक्त करते थे। वह दृश्य ऐसा था, जैसे एक दिशा दूसरी दिशा से दुख कर रही हो।

अपनी प्रियतमाओं को छोड़कर दूसरे राज्यों पर विजय प्राप्त करने के लिए गये हुए राजा लोग (वर्षा के आगमन पर) लौटकर आ गये हों और उनके आगमन से पहले निष्प्राण बनी हुईं (उनकी पत्नियों की) देह में प्राण के लौट आने से वे तरुणियाँ नि-श्वास भर उठी हों—उसी प्रकार बृक्षों की सूखी शाखाएँ वर्षा के आगमन से पल्लवित होकर नव सौन्दर्य के साथ विकसितमुख-सी दिखाई पड़ती थीं।

पाठलवृक्ष (पुष्पहीन हो) दरिंद्रता प्रकट करते थे। दिनकर शीतल बन गया, श्वेतकुमुद समृद्ध बन गये। कुबलय-पुष्प निर्धन बन गये। मयूर सपत्नि पाये हुए व्यक्ति के समान नाच उठे। कोकिल वियुक्त प्रियतमों के जैसे शिथिल हो चुप हो रहे।

उन पर्वत-मानुओं में जहाँ विविध रगवाले भ्रमर तथा तितलियाँ उत्तम रत्नों के समान विश्राम करती थीं, मधु के भार से मुक्कर हिलनेवाले अर्द्ध-विकसित रक्त कादल-पुष्प ऐसा दृश्य उपस्थित करते थे, मानों विशाल धरती-रूपी तरुणी वर्षाकाल के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर, यह विचार कर कि वसत को भी इस वर्षाकाल ने जीत लिया है, अपने हाथ हिलाती वसन्त झूतु का तिरस्कार कर रही हो।

करवाल-समान तीक्ष्ण दर्तोवाले सर्प, दीर्घनाल, श्वेतकुमुद की लताओं से जोड़न (सर्पों) के फन के जैसे ही पुष्पों को शिर पर धारण किये हुए थे, प्रेम से लिपट जाते थे और उनसे हटते नहीं थे। वे श्वेतकुमुद भी उन काममत्त सर्पों के समान ही होकर उनसे उलझे पड़े रहते थे।

इन्द्रगोप इस प्रकार फैले थे कि धरती पर तिल रखने का भी स्थान नहीं था, वे चिरकाल के प्रवास के उपरात लौटे हुए अपने प्रियतमों से मिलनेवाली वग्र तथा पुष्प-वासित कुतलोंवाली तरुणियों के द्वारा बार-बार थूकी हुई पान की पीक के समान ही बिखरे हुए थे।

उस गगनचुंबी मेस्पर्वत से, जिसपर मधुर जबूफलों से भरे हुए-वृक्ष होते हैं, स्वर्ण को बहाकर ले चलनेवाली (जबू-नामक) नदी जिस प्रकार बहती है, उसी प्रकार जलधाराएँ कर्णिकार, वैंगे आदि पुष्पों को बहाती हुई उस पर्वत से वह रही थी।

सुन्दर तथा दीर्घनाल रक्तकुमुद तथा कर्णिकार मनोहर इन्द्रगोपों में भरे हुए ऐसे लगते थे, जैसे पृथ्वी देवी मधुरगान करनेवाले भ्रमरों को अपने विकसित करों को दठा-कर स्वर्ण तथा रत्न प्रदान कर रही हो।

धैरत स्वर में गानेवाले भ्रमर 'याल्' के समान थे। विजली, गर्जन तथा वर्षा में युक्त मेघ चर्म से आवृत 'मर्दल' के समान थे। मयूर, ककण-धारिणी नाविकाओं के समान थे।

रक्तकुमुद नाट्य-रग पर रखे हुए दीपों की पक्कियों के समान थे। कोमल 'कर्षबिल' पुष्प दर्शकों के नेत्रों के समान थे।

भ्रमर और भ्रमरी के वेग से उड़कर आने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि, उनके टकराने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि—दोनों ध्वनियाँ—देवागनाओं के नृत्य की ध्वनि की समता करती थी। 'कूदाल' के विशाल पुष्प ऐसे विकसित थे, जैसे उन (देवागनाओं) के अमृत-समान व्यार्थभाषा (सस्कृत) के गीतों के गायन के उपयुक्त बड़े माल हों।

पुन्नाग के बनों से वहनेवाली नदियाँ अपने पुत्रों के लिए पुष्ट पर्वत-रूपी स्तनों से विवित धरतीमाता की दुर्घट-धाराओं के समान थी। कर्णिकार वृक्ष ऐसे थे, मानों धन की इच्छा से आकर याचना करनेवालों को सदा दान देने के लिए अपनी शाखाओं में स्वर्ण-खड़ों को लटकाये हुए खड़े हों।

पुष्प-भृत बनों में सर्वत्र मधुर गान करनेवाला विविध चित्तियों से युक्त भ्रमर आदि कीड़े भरे हुए थे, जो दर्शकों को बड़ा आनन्द देते थे, हरिण अपने मार्ग में पड़नेवालं वृक्षों से रगड़ खाते हुए और उस कारण से (चन्दन, अग्रह आदि) विविध सुगंधों से युक्त होकर आते थे और हरिणियाँ उन्हें (उनकी गध के कारण) कोई दूसरा मृग समझकर उनसे दृढ़ जाती थी।

अपने प्रियतम के रथास्त होकर प्रवास में चले जाने पर जिन प्रकार विरहिणी तरुणियों के भाले-सदृश नवन आनन्दहीन हो सुकूलित हो जाते हैं, उसी प्रकार दुवलय-पुष्प वद हो गये। मन्मथ-सदृश अपने प्रियतमों के आगमन पर जिन प्रकार उभग से भरी उन तरुणियों का किंचित् दत्त-प्रकाशन से युक्त मदहास छिटक पड़ता है, उसी प्रकार कुदलताएँ पुष्पित हो उठीं।

पर्वत से प्रवहमाण जलधाराएँ स्वर्ण को बहुलता से दोनों ओर विखेरने लगी, मानों आनन्द-नृत्य करनेवाले मधूरों को देखकर उन्हें नटवर्ग समझकर राजा लोग उन्हें भूरि-भूरि पुरस्कार दे रहे हों। कमललताएँ जल-मध्य उन प्रकार उठी हुई थीं, मानों गगनपथ में आनेवाले मेघों को देखकर उन्हें अतिथि समझकर आनन्दित हुई (गृहस्थ-धर्म में निरत) तरुणियों के बदन हों।

कामशास्त्र में निषुण विटों के समान ही भ्रमर सद्योविकसित मधुपुर्ण पुष्पों का आलिंगन करते हुए उनके मधु का सचय करने लगे। वे ऐसे थे, मानों कविगण भरतशास्त्र के अनुमार नाटक का निर्माण करने के उद्देश्य से सफल अर्थ-व्यवस्था के अनुकूल रस-सन्दर्भ कर रहे हों।

हरिण अत्यन्त आनन्दित हो उठे, मानों यह सोचकर ही वे ऐसे प्रसन्न हुए हो कि हम अपनी चित्तवन से परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि-युक्त अति सुन्दरी (सीता) को एक राक्षस ने हमारा ही रूप धारण कर दुःख दिया है, इस कारण से उत्पन्न अपने आनन्द को हम शब्दों में व्यक्त नहीं कर पाते।

इस छोटी नदियों से गोते लगाकर इस प्रकार आनन्दित होने लगे. मानों

दीर्घकाल के विरह से पीड़ित होने के कारण अब अति प्रेम के साथ अपनी प्रियतमाओं से मिलकर भरपूर आनन्द उठा रहे हो ।

अपार सागर से जल भरकर चलनेवाले काले मेघों के निकट ही पक्षि बाँधकर उड़नेवाले अति ध्वल वगुलों का भुण्ड कृष्ण नामक काले वर्णवाले भगवान् के बक्ष पर शोभायमान मुक्ताहार के सदृश लगता था ।

सारस पक्षी, जो पक्षि बाँधकर एक-दूसरे से सटकर वर्षाकालिक काले मेघ के निकट हो गगन में उड़ रहे थे, वे दिव्य देवों के द्वारा लक्ष्मी के नायक के रूप में वर्णित अनुपम भगवान् के बक्ष पर शोभायमान उत्तरीय बस्त्र की समता करते थे ।

अधिक ताप उत्पन्न करनेवाले धूप-रूपी राजा के हट जाने तथा उत्तम सद्गुणों से भरे वर्षाकाल-रूपी राजा के आगमन के कारण विशाल पृथ्वी देवी अपने महिमामय मन में आनन्दित और शरीर से रोमाञ्चित हो उठी हो—हरियाली इस प्रकार का दृश्य उपस्थित कर रही थी ।

मयूर ऐसे लगते थे, मानो मधुवर्षी कमलपुष्ट में उत्पन्न ब्रह्मा अति ज्ञानवान्, (देव) तत्त्व-ज्ञान के नायक (अर्थात्, वेद आदि के द्वारा प्रशसित विष्णु के अवतार श्रीरामचन्द्र) के दुःख को देखकर उनका उपकार करने के उद्देश्य से कानन में सर्वत्र अपनी आँखें फैलाये हुए देवी सीता का अन्वेषण कर रहे हो ।

कमलपुष्ट ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे तरुणियों के वे चरण हो, जिनमें (शत्रुओं के रक्त से) रक्तवर्ण हुए भालों तथा दृढ़ धनुषों को धारण करनेवाले वीर पुरुषों के केशों को भी नया रंग देनेवाले महावर का रस लगा हुआ हो । (भाव यह है कि तरुणियों के चरण महावर से अञ्जित थे । प्रणय-कलह के समय वे तरुणियाँ अपने प्रियतमों के सिर पर पदाघात करतीं, तो उससे उन पुरुषों के काले केश भी लाल रंगवाले बन जाते थे ।)

कोकिल मौन हो रहे, मानों उनके प्रति राघव के यह आदेश देने पर कि तुम अपनी जैसी ही बोलीवाली देवी को ढूँढ़कर लाओ, पृथ्वी में सर्वत्र धूम-धूमकर (देवी सीता को) बुलाते रहे हों और अब थककर चुप हो गये हो ।

वर्षा-सिंचित भूमि पर उगी हुई हरी धास को अधाकर चरनेवाली गायें यत्र-तत्र उगे हुए ‘मालान’ नामक छोटे पौधों को अपने खुरों से उखाड़ देती थीं । वे पौधे, जिनमें सफेद पुष्प लगे थे, बिखरे हुए गाढ़े दही का दृश्य उपस्थित करते थे । ‘पिंडव’ नामक पौधे के पुष्प, मधु-सदृश मीठी बोलीवाली कुड़मूल-सदृश स्तनोवाली ग्वालिनों के घटों में से छलकनेवाले दूध के झाग का दृश्य उपस्थित करती थीं ।

‘वैगें’ नामक वृक्ष, भीलनियों के केशों के समान सुरभित थे । पुन्नाग-वृक्ष मछुआ-स्त्रियों के केशों के समान गंध से युक्त थे, जिससे शीघ्रगामी भ्रमरकूल आकृष्ट हो रहा था । उत्पल-पुष्प अत्यज जाति की स्त्रियों के केशों के समान गंध से युक्त थे । सद्योचिकसित कुंदलताएँ ग्वालिनों के केश के समान महक रही थीं ।

श्रीरामचन्द्र ने देवी सीता के बदन को नहीं, किन्तु मरणदायक मन्मथ को असर्व य सहस्र पुष्पवाण प्रदान करनेवाले वर्षाकाल को ही देखा । वे दुःख-सागर का पार नहीं देख पा

रहे थे । वे मूर्च्छित हो गये, नहीं तो वे किसको देखकर अपने प्राण को वश में रख सकते थे ।

सीमाहीन वर्षाकाल के आगमन से मनुष्य शिथिलमन हो जाते हैं—यह कथन तपस्या करनेवाले मुनियों के विषय में भी सत्य सिद्ध होता है । तब उन प्रसु के दुःखी होने में क्या आश्चर्य हो सकता है, जो मधु तथा अमृत से भी अधिक मधुर वोलीवाली धबल (शख)-चलयधारिणी सीता की भुजाओं का आलिंगन-सुख प्राप्त करते रहते थे ।

नीलोत्पल, नीलकमल, अतसी-पुण्य आदि की समानता करनेवाले वे प्रसु शोकोद्धिग्न हुए, वे ऐसी आशका उत्पन्न करते थे कि कदाचित् इनकी देह में प्राण नहीं हों । इस प्रकार, व्याकुल होकर हसिनी-सदृश सहज सुन्दरी सीता देवी के सबध में निम्नलिखित वचन कह उठे—

हे काले मेघ ! राक्षसों ने कच्चुकावद्ध स्तनोवाली सीता को कहाँ ले जाकर छिपा रखा है ? उन (राक्षसों) का आवास कहाँ है ? यह भी मैं नहीं जान पाया हूँ, तो भी मैं जीवित हूँ । तुम जल से भरे हो, तो भी क्या तुम मेरे दया नहीं है ? मेरे प्राणों को क्यों व्याकुल कर रहे हो ?

तुम विद्युत्-स्पी दत्तों से भयकर हों । अपने काले रूप को गगन में सब और फैलाकर तुम बढ़ते हो । पापी तथा मायावी राक्षसों की समता करनेवाले तुम क्या मेरे प्राणों का हरण किये बिना नहीं हटनेवाले हो ?

हे मधूर ! वरछे तथा तीर के समान तीक्ष्ण नयनोवाली तथा समुद्र में उत्पन्न टिब्ब अमृत एव कोकिल के सदृश वोलीवाली मेरी देवी को हूँड़कर नहीं लाते हो । तुम बड़े कठोर हो । मुझ एकाकी तथा निद्राहीन रहनेवाले की मनोव्यथा को जानते हुए भी क्यों अपना बल दिखाकर मुझे सताते हो ?

हे लता ! वर्षाकालिक उत्तरी पवन के अनुसार तुम हिल-हुलकर मेरे प्राणों में धुस जाती हो । तुम अब पुण्यभय हो गई हो और उज्ज्वल ललाटवाली सीता की कटि के समान ही लचक-लचककर क्यों मेरे प्राणों को गला रही हो ?

हे हरिण ! किसी भी स्पृहणीय वस्तु को मैं अब नहीं चाहता हूँ । पराक्रमपूर्ण कार्य भी कुछ नहीं कर पा रहा हूँ । प्रज्ञा के मिट जाने से अब मैं कैसे जीवित रह सकूँगा ? मेरे प्राण-समान देवी मुझसे वियुक्त हो चली गयी है । तुम कहो कि वह अब कहाँ है ?

हे मेरे प्राण ! पाद-कटक से भूषित तथा रुई के समान मूदुल चरणोवाली दोषहीन जानकी के साथ ही क्या तुम भी मुझे छोड़कर जाना चाहते हो ? यदि ऐसा करना था, तो जब देवी मुझसे वियुक्त हुई, तभी तुम भी निश्शक होकर मुझे छोड़ जाते । हे मिटनेवाले, (मेरे प्राण) ! क्या तुम्हे उस देवी के साथ का अपना सम्बन्ध तब ज्ञात नहीं हुआ था ?

हे निष्ठुर ! ‘कानरै’ वृक्ष, जानकी के केशों के साथ तुम्हारा वैर था, अतः तुम मेरे माथ भी कड़ा वैर निकाल रहे हो ? तुम उस (जानकी) को मुझे नहीं ला देते । उसके बारे में कुछ कहते भी नहीं, भला तुम कव मेरे हितकारी रहे ?

कुरवक पुण्य-सदृश तीक्ष्ण एव उज्ज्वल दत्तोवाले धोर सर्प विष के समान ही यह कोमल पुण्यों से भरित कुदलता भी प्राणहारी बन गई है । दुस्सह पीड़ाग्नि को प्रज्वलित कर

मुझे निरन्तर सताते रहनेवाले यह (इन्द्रगोप) क्या एक ही हैं ? (अर्थात्, पीड़ा देनेवाले अतेक हैं)। इस 'रावणकोप' के रहते हुए यह इन्द्रगोप^१ भी क्यों मुझे सताने लगा है ?

स्वर्णमय ललाट-पट्ट (ताज) पहनने योग्य ललाटवाली सीता को धोखे से हरण करने के लिए मारीच एक स्वर्णमय हिरण के रूप में आया था । अब यम (मेरे प्राणों का हरण करने के लिए) उत्तरी पवन के रूप में आया है । अहों, अहित करनेवालों को अपने इच्छानुसार रूप धरना भी सभव होता है ।

भयकर कृत्यवाले राज्ञिसों के समान आकाश में घोर गर्जन करनेवाले हैं मेघ । तुम बार-बार चमककर कमल-पुष्प के आवास को तजक्कर (मिथिला में) अवतीर्ण हुई उस (लक्ष्मी) देवी को दिखा रहे हो । क्या तुम्हारे मन में सुखपर इतनी दया उत्पन्न हो गई है कि उस सीता को लाकर मुझे देनेवाले हो ?

हे मोर (प्राणियों को पीड़ा देनेवाला है मन्मथ) । विरह-ताप मेरे अन्तर में न समाकर उमड़ रहा है और मेरे प्राणों को जला रहा है । अब (प्राणों के जल जाने के बाद भी) तुम मेरे अन्दर मे पुनः-पुनः शर छोड़कर धाव कर रहे हो । यह तुम्हारा कार्य व्यर्थ है । प्रशासनीय विद्या से दुक्ष मेरा अनुज यदि तुम्हे एक बार भी देख ले, तो फिर उसके क्रीध को रोकना असंभव होगा ।

हे अनग । धनुष और तीक्ष्ण वाण इसलिए नहीं हैं कि भयकर युद्ध से डरे हुए योद्धाओं पर उनका प्रयोग किया जाय, उनका प्रयोग तो उनपर करना चाहिए, जो (प्रयोग करनेवाले के) पराक्रम का आदर नहीं करते हों । तुम तो निर्दय हो, यह सोचकर कि तुम्हारा बल हम जैसे दुर्बलों पर ही सफल होगा, रात-दिन हमें सताया करते हो । क्या तुम्हारा यह कार्य प्रशंसा के योग्य है ?

इस प्रकार के बचन कहकर शिथिल तथा दुखित होनेवाले, अपने भाई को, जो अपना उपमान स्वयं ही था, देखकर लक्ष्मण व्याकुल हुआ और अपने सिर पर कर जोड़कर इस प्रकार सात्वना के बचन कहने लगा—हे महात्मन् । आपने अपने को क्या समझा है ?

विवेक एवं विद्या से सुसंपन्न हैं सिंह । हे तपःसंपन्न ! वर्षाकाल का भी अन्त होता है । आप क्यों इस प्रकार दुखी हो रहे हैं ? क्या आप इसलिए चित्तित हैं कि वर्षा का आगमन हो गया है ? अथवा काले राज्ञिसों के पराक्रम का विचार करके आप दुखी हो रहे हैं ? या यह सोच रहे हैं कि वाली के द्वारा निर्मित वानर-सेना अभी तक देवी के अन्वेषण के लिए आई नहीं है ?

वेद भले ही भ्रम में पड़ जाय, चन्द्र अपने स्थान से विचलित हो जाय, गगन तथा गमीर समुद्र से आवृत धरती भी हिल उठे, किन्तु तुम्हें वैसी अस्थिरता (चाच्चल्य) कभी सभव नहीं है । अनेक चन्द्रकला-समान वडे दाँतों से युक्त अज्ञ राज्ञिसों का प्रभाव क्या तुम्हारे भव्य भृकुटि-रूपी धनुष के बक होने मात्र से विनष्ट नहीं हो जायगा ।

१. 'कोप' और 'गोप'—दोनों शब्द तमिल में एक ही जैसे लिखे जाते हैं । अत , तमिल में 'रावणगोप' और 'इन्द्रगोप शब्दों को 'रावणकोप' और 'इन्द्रकोप' भी पढ़ा जा सकता है ।—अनु०

हे ज्ञानवान् ! हनुमान् नामक वर्यात्त के (शान, शर्कि इत्यादि गुणों के) परिमाण को हमने जान लिया है । किन्तु, अगद आदि ५६० समुद्र संख्यावाले वानरों के स्वरूप को हमने देखा नहीं है । पाप के समान दुःखदायक (वर्धाकाल के) मास भी शीघ्र वीत रहे हैं, आपकी धनुष-समान भाँहोंवाली देवी सुलभता से था पहुँचेगी, यह निश्चित है, (अतः) आप शोक छोड़ें ।

हे प्रभो ! पहले जब अरण्यवासी देवों के पारगामी मुनि तुम्हारी शरण में आये थे, तब तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'तुम लोगों को सतानेवाले मायावी राक्षसों को परास्त करके तुम्हारे कष्ट दूर करूँगा ।' विधिवश तुम्हारे प्रति भी उन (राक्षसों) ने अपराध किया है, अतः उन राक्षसों का विनाश करो और मधुर यथा प्राप्त करो तथा और देवों को भी स्वर्गलोक दिलाओ । अब इस प्रकार प्रजाहीन हो रहना उचित नहीं है ।

हे मेरे प्रभु ! शत्रु-विजय करने का श्रेय तुमको ही प्राप्त होगी, अन्यथा यह यश और किसको मिल सकता ? शोक करना वीरता का कार्य नहीं है, वह तो दुर्बलता है । यह उचित है कि हम समय की प्रतीक्षा करें और उसके अनुमार कार्य करें । यदि आप अभी प्रयत्न करना चाहते हों, तो भी आपके लिए अमाध्य कार्य कुछ नहीं है । आप शोक से उद्धिन न हों—इस प्रकार (लक्ष्मण ने) कहा ।

शिथिलप्राण हो निश्चेष्ट वैठे हुए आदि भगवान् (के अवतार रामचन्द्र) अनुज के वचनों से सातवना पाकर शोक-मुक्त हुए, इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत हुए । एक रोगके शान्त होने ही द्वारा रोग उत्तन्न हो गया हो, ऐसे ही अब वर्षाकाल का उत्तरार्ध आरम्भ हुआ ।

वडे-वडे जलाशय भर गये । उनमें तरगें धनी होकर उठने लगीं । काले वर्णवाले कोंकिल दुर्वल हुए, ऊँचे पर्वत ठडे हुए, विशाल दिशाएँ अदृश्य हुईं, अपने प्रियतरों से विद्वक व्यक्ति दुःखी हुए, क्रांचों के जोड़े एकप्राण होकर परस्पर गाढ़ालिंगन में वैध गये ।

उत्तरी पवन, स्वर्णमय आभरणों से भूषित अप्सराओं के अनिंदनीय विशाल जघन-टट के बन्धों तथा उनके झूलों का स्पर्श करके उनके प्रेम से पीड़ित हुए व्यक्तियों पर ऐसे जा लगता था, जैसे जले हुए धाव में तीक्ष्ण वाण चुम गया हो ।

समुद्र भर गये, सूर्य-किरणें अपना ताप तजकर ठड़ी हो गई । जल से अँके जानेवाले घटी-यन्त्र के द्वारा ही समय का ज्ञान सभव था, अन्यथा यह जानना असभव था कि कब दिन हुआ है और कब रात ।

मधुर-सदृश तरुणियों की कोमल मधुर बोली से पराजित होनेवाले तोते धान के पौधों में जा छिपते थे, जिससे धान की बालियाँ टूट जाती थीं । (रमणियों के) धबल तथा मृदु दर्तों से पराजित मुक्ताएँ विशाल सागर की लहरों में छिपी पड़ी रहती थीं । 'नेयिदल' प्रदेश (समुद्री रटों) की युवतियों के बाँगनों में उत्तन्न होनेवाले पुष्पित 'पुन्ने' वृक्ष मानों सोने की गठी को खोल रहे थे ।

ऊँचे हाथी उज्ज्वल तथा वडी वृद्धों के गिरते रहने पर भी पर्वत के समान अचल तथा निश्चाहीन स्थिर खड़े थे, जैसे काली रात तथा दिन के समय में निरतर व्यानरत रहनेवाले दृढ़चित्त तपस्वी हों ।

शीत से कॉपनेवाले हस, चन्दन-वृक्ष के पत्तों से छायी हुई झोपड़ियों के भीतर, वेदिकाओं के निकट होम-कृष्णों में प्रातः और सध्या को जलाई जानेवाली अगरु की लकड़ियों के धुएँ में बुस-बुमकर अपनी ठड़ दूर कर लेते थे। बानरियाँ पर्वत-कदराओं में सोई पड़ी थीं। बलिष्ठ बानर ऐसे सिकुड़े बैठे थे, जैसे अष्टगयोग की प्रक्रिया के द्वारा अपनी इद्रियों का दमन करनेवाले अनुपम योगी हो।

मेघ घोर वर्षा कर रहे थे, जिससे निर्मल पर्वत निर्मरों की धाराएँ तरुणियों के केश-पाश की सुगन्धि से सुवासित नहीं हो पाती थी—(अर्थात्, तरुणियाँ उनमें स्नान नहीं करती थी)। रत्नमय स्तभों पर डाले गये भूले सुने पड़े थे। मच, चमकते हुए रलों को आकाश में नहीं फेंकते थे (अर्थात्, अनाजों के खेत में बने मचों पर खड़े होकर अब कोई पक्षियों को उड़ाने के लिए रत्नमय पत्थरों को नहीं फेंकता था।)

केतकी-वृक्षों के काले तथा शीतल पत्तों के मध्य कामोदीपक पुष्प पक्षियों में खिले थे और उनके घेरे के मध्य सारसियाँ अपने विशाल तथा सुन्दर पखों को सिकोड़े ऐसे बदी थीं, जैसे अपने प्रियतम के विरह में पीडित स्त्रियाँ हों।

नाना विहग भूदग के समान नाद कर रहे थे। विविध भ्रमर संगीत कर रहे थे। मयूर नृत्य की विविध भगियाँ दिखा रहे थे और अनेक प्रकार के नृत्य दिखानेवाली वेश्याओं की समता करते थे। और, हरिण-समुदाय, जो मेघ-गर्जन से भयभीत होकर वृक्षों के नीचे आ उहरते थे, (उस नृत्य के) दर्शक बने थे।

कोमल पुष्प-शाखा को परास्त करनेवाली कटि से शोभित तरुणियाँ तथा युवक अगरु-धूम से आवृत होनेवाले दीपों के प्रकाश में पर्यन्त पर शयन करते थे। शीत से कॉपनेवाले भ्रमर पुष्प का त्याग कर, चन्दन-वृक्ष के कोटरों में विश्राम करते थे।

मनोहर हसों के जोड़े कमल-शान्या को तजकर बड़े वृक्षों से भरे उद्यानों में आ उहरे थे। सुगन्धित लकड़ियों से बने हुए झोपड़ों में ध्वल दतोंवाली व्याघ-स्त्रियों के साथ उनके प्रियपुरुष निद्रा करते थे।

खाले लताओं से आवृत अत्युन्नत तथा छोटे पत्तोंवाले वृक्ष के नीचे वकरियों के बच्चों को गोद में लिये पड़े थे। चौरों के समान छिपकर फिरनेवाले भूत भी भूखे ही दाँत कटकटाते हुए एक स्थान में खड़े थे।

बड़े-बड़े दृढ़चित्तवाले हाथी आकाश के मेघों से वाण-सदृश पानी की बूँदों के अपने शरीर पर गिरने से मिकुड़ जाते थे और पर्वत के सानुओं के ऊपर जहाँ मधु के पुराने तथा असर्व्य छत्ते लगे थे, नहीं रह पाते थे और कन्दराओं के भीतर बुस जाते थे।

इस प्रकार के वर्षाकाल में रात्रि का अंधकार भी आ पहुँचा। तब ज्ञानवान् (रामचन्द्र) ने अजन-सदृश आँखोंवाली तथा मदहास-युक्त जानकी की याद में ज्वाला-सी निःश्वास भरते हुए लक्ष्मण से कहा—

आभरण-भूषिता, पीनस्तनी वह (सीता) मेघ के सदृश काले रगवाले तथा विजली के सदृश दाँतोंवाले राज्ञस की माया का लक्ष्य बनकर पीडित हो अपने प्राण छोड़ेगी। मेरे लिए भी जीवित रहना सर्वथा यसम्भव है। आह। यह कैसी अवस्था है।

कब रामायणे

४६०

शुभ्र वर्णवाले तथा विनाशकारी शर मेरे तूनीर मे सोये पड़ हैं। मे गगनोत्रत मुजावाला होकर भी इम प्रकार की पीड़ा भोग रहा हूँ। मेरी ऐसी दशा है, मानो मेरे कठ में वरछा चुभा हो, फिर भी मैं निष्प्राण नहीं हुआ हूँ।

पच्छी जोड़ो के भीतर चमकते हुए जुगनुओं के प्रकाश मे अपनी संगिनियों के माथ मोरहे हैं। (मन्मथ के द्वारा) चुनकर फेंके गये पुष्पवाणों से मेरा हृदय छिन्ह हो गया है और दुःमह पीड़ा से पीडित हो रहा हूँ। फिर भी, मैं जीवित हूँ।

मध्य में विद्युत् की काँध की ओर वज्र के गर्जन को देखता तथा सुनता हुआ मैं विषदतवाले सर्प के समान पीडित होकर चुप पड़ा हूँ। वनवास मे मैंने जो कार्य किये हैं, उनपर स्वर्गवासी (देवता) और धरतीवासी (मनुष्य) हँसेंगे। अब (मेरे अपमान के लिए) और क्या आवश्यक है ?

वेदना से पीडित होता हुआ मैं (सीता को) भूलकर जीवित नहीं रह सकता हूँ। यदि वर्षा इसी प्रकार रहेगी, तो मेरा प्राण त्याग कर स्वर्ग पहुँचना निश्चित है। तो क्या मैं इस अपयश को अगले जन्म में ही मिटा सकूँगा। कदाचित् अगले जन्म में भी मैं गृहस्थी से सन्यास लेकर ही यह अपयश मिटा सकूँगा।

हे वीर ! इस स्थान पर रहकर यदि हम राज्यों का पता लगावें, तो बहुत समय व्यतीत होगा। अतः, यह प्रयत्न (सीता का अन्वेषण) आवश्यक नहीं। मेरे लिए इसी मे यश है कि मैं (सीता की) विरह-पीड़ा मे प्राण त्याग दूँ।

मैं शुर-सद्वश उच्चल कटाक्ष-पूर्ण नयनोंवाली तथा श्रेष्ठ आभरणों से भूषित (सीता) के प्रवाल वर्णयुक्त तथा कुमुद-सद्वश अधर का अमृतपान करता रहा। यह वर्षा मानों ताँवे को पिघलाकर वरमा रही है और मेरे शरीर को जला रही है। तो, क्या अब ऐसे ही मरना मेरे लिए उचित है ?

धृति की आहुति देकर प्रज्वलित की हुई अग्नि के समक्ष, जनक ने मुझसे कहा था कि यह (सीता) तुम्हारी शरण मे है। उनके उस वचन को मैंने असत्य कर दिया है। ऐसे मुझ अधार्मिक व्यक्ति मे सत्य कैसे टिक सकता है ? अतः, अब मुझे मर जाना ही उचित है।

सात्वना देने के लिए तुम हो। सात्वना पाकर सहन करने के लिए मैं हूँ। कक्षण-धारिणी (सीता) अब यहाँ आ जाय—यह सभव नहीं है। इस पीड़ा को कौन दूर कर सकता है ? क्या इस पीड़ा का कभी अन्त भी होनेवाला है ?

मैं श्रेष्ठ शरों को चुन-चुनकर प्रयोग करूँ, तो उनसे जब सत्यलोक जल जाय, देवता प्रभृति सृष्टि के अतिप्राचीन व्यक्ति मिट जायें तथा सभी लोक एवं वहाँ के प्राणी अशेष रूप से ध्वस्त हो जायें, तभी क्या मैं मयूर-सद्वश उस (सीता) को देख सकूँगा ?

वज्र-निर्धोष-सद्वश टकार-से युक्त धनुष को धारण करनेवाले हे वीर ! इस प्रकार मैं सब लोकों तथा वहाँ के प्राणियों को न मिटाकर पीड़ा का अनुभव करता हुआ बैठा हूँ, तो यह डमी डर से कि (बैसा करके) मैं धर्म की रक्षा नहीं कर पाऊँगा, अन्यथा शत्रु-राज्यस सब देवताओं के साथ मिलकर मेरे विरुद्ध आवें, तो भी वे मुझसे वच नहीं सकते।—राम ने इस प्रकार कहा।

तब अनुज ने कहा—हे आज्ञा-रूपी चक्र से युक्त प्रभु ! जिस वर्षा ऋतु को हमने यहाँ व्यतीत करना चाहा, वह अब व्यतीत हो चुका है। शरद-काल भी अब समाप्ति पर आ गया है। अतः, उस चोर (रावण) के आवास को खोजकर पहचानने का समय आ पहुँचा है। अब आप क्यों शिथिलमन हो रहे हैं ?

अरुण न यनवाले विष्णु भगवान् के यह आज्ञा करने पर कि तुम अमृत-तरणों से पूर्ण विशाल क्षीरसागर से अमृत को दें सकते थे, फिर भी वैसी आज्ञा देना उचित न समझ-कर, पर्वत आदि सभी मंथन-उपकरणों के द्वारा उसे मथकर ही अमृत को निकलवाया था।

चक्रधारी भगवान् यदि मन में संकल्प-मात्र कर लें, तो समस्त लोकों के दुकड़े-दुकड़े करके उन्हें अपने मुँह में ढालकर चबा डालें, तो भी वह वैसा नहीं करता, परन्तु अनेक बड़े शास्त्रों को लेकर युद्ध करके ही सब (दुर्जनों) को वह विजित करता है।

हे महाभाग ! ललाटनेत्र तथा परशुधारी शिव भगवान्, जब कुद्ध होकर, आकाश में सच्चरण करनेवाले त्रिपुरों को ध्वस्त करने लगे, तब उन्होंने जो-जो उपाय किये थे और जो-जो उपकरण जुटाये, उन्हे कौन जान सकता है ?

यदि हम अपने अनुकूल रहनेवाले सब (मिंत्रों) को अपना साथी बना लें, मत्रण करने योग्य सब विषयों को भली भाँति विचार कर निर्णय करें, फिर उचित समय को पहचानकर उचित ढंग से कार्य करें, तब ‘विजय’ नामक वस्तु क्या हमसे दूर रह सकती है ?

बलवान् राक्षसों ने धर्म-मार्ग से विमुख होकर अधर्म-मार्ग को ही अपने लिए ग्राह्य मान लिया है, उचित सन्मार्ग से जब वे (राक्षस) अष्ट हो गये हैं, तब यश और विजय दोनों (तुम्हारे सिवा) अन्य किसके पास होंगे ।

स्वर्ण-आभरण पहननेवाली उन देवी के कष्टों को दूर करने का समय धीरे-धीरे आ पहुँचा है। अब आप दुःख-मुक्त हो जायें । ऋषि-मुनियों की सहायता करनेवाले हम क्या राक्षसों के (शस्त्रों के) लक्ष्य बनेंगे ? हे मनोहर धनुष धारण करनेवाले ! आप ही कहिए।—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा ।

युगों के अधिपति (विष्णु भगवान् के अवतार रामचन्द्र ने) लक्ष्मण के वचनों को उचित समझा । इसी प्रकार, जब वे यह सोचते हुए कि क्या इस वर्षाकाल का भी कभी अन्त होनेवाला है, कृश हो रहे, तब वर्षाकाल भी समाप्ति पर आ गया ।

महान् दान-कार्य में निरत कोई उदार व्यक्ति, धरती के सभी लोगों को उनके इच्छानुसार सभी पदार्थ का दान देकर निर्धन हो गया हो और फिर, किसी उत्तम याचक के द्वारा कुछ माँगे जाने पर उसे दान देने के लिए अपने पास कुछ न होने से लजित हो गया हो । इसी प्रकार सब मेघ श्वेत वर्ण हो गये (अर्थात्, शरत्काल आ गया) ।

पाप-पुण्य नामक दो कर्मों के फल को जानने से सद्विवेक के प्राप्त होने पर जिस प्रकार अविद्या के तम मिट जाते हैं, उसी प्रकार (शरत्काल के आगमन पर) वर्षाकाल का गाढ़ अन्धकार मिट गया ।

जिस प्रकार धोर युद्ध के समाप्त होने पर युद्ध की भेरी नि.शब्द हो जाती है, उसी प्रकार जल-भरे मेघ भी गर्जन करना छोड़कर नि शब्द हो गये । भयकर वाणों के सद्वश

वर्षा की वौछार भी थम गई। जैसे करवाल कोपो में वद करके रख दिये गये हो, वैमे ही विद्युत् भी अदृश्य हो गई।

विशाल प्रान्तवाले ऊचे पर्वत अपने सानुओं के निर्करों से रहित हो गये। उनके केवल कुछ जल-स्रोत ही वहते रह गये। वे (पर्वत) ऐसे लगते थे, मानों वे यज्ञोपवीत और उत्तरीय के साथ श्वेत वस्त्र भी कटि में धारण किये हो।

पर्वतों के ऊपर से मेघों के हट जाने से दिगतों तक प्रवाहित होनेवाली नदियाँ जल-रहित हो गईं। अतः, वे (नदियाँ) सन्मार्ग पर न चलनेवाले उस व्यक्ति के समान थी, जो उत्तम पुण्य के घट जाने पर निर्धन हो गया हो।

गड़-स्थलों से मद-जल वहानेवाले हाथियों के समान स्थित काले मेघ गगन के प्रदेश को उन्मुक्त छोड़कर उड़े जा रहे थे। चन्द्रमा इस प्रकार चमक उठा, जिस प्रकार यवनिका के उठने पर विविध नाव्य-भगियाँ दिखानेवाली नर्तकी का वदन हो।

उत्तरी पवन पुष्प-मकरन्द को विखेरता हुआ इस प्रकार प्रवाहित हो उठा, जिससे स्वर्णमय आभरण धारण करनेवाली तरुणियों के विशाल तथा मनोज्ज स्तनों पर अक्रित चन्दन, कस्तूरी, कुकुम आदि का लेप सूख गया।

इस गगन में सभी दिशाओं में मानों यह सौचकर उड़ रहे थे कि दशरथ चक्रवर्ती के कुमार (श्रीराम) के दुःख को दूर करने के लिए उचित समय अब आ गया है। अतः, हम भी (सीता) देवी का अन्वेषण करने चलें।

सरोवरों का जल छल-कपट से रहित तपस्वी जनों के मन के सहश स्वच्छ हो गया। उन जलाशयों में विचरनेवाले मौन, 'रुई पर चलना है'—इस कथन को सुनने मात्र से जिनके कोमल चरण लाल हो जाते हो, ऐसी सुन्दर युवतियों के अजन-लगे नयनों के समान धूम रहे थे।

नालों पर विकसित कमल-पुष्प रुठी हुई तरुणियों के वदन की समता करते थे। 'किंडे' नामक पौधे, जिनमें अतिसुन्दर, सुगंधित तथा रक्तवर्ण पुष्प भरे थे, सुरत-श्रात युवतियों के रक्त अधरों का दृश्य उपस्थित करते थे।

अनेक प्रकार के मेढ़क जो (वर्षाकाल में) शिक्षा देने में चतुर अध्यापकों के पास पाठ सीखनेवाले कोलाहल से पूर्ण बढ़ुकों के समान बोल रहे थे, अब उन बुद्धिमानों के समान ही मौन हो गये, जो अपना वचन जहाँ फलप्रद होता हो, वही बोलते हैं और अन्यत्र मौन रहते हैं।

मेघों की विशाल वर्षा से हीन होकर मयूर अपने पखों को सिकोड़े हुए दुःखी बने हुए और मन में कोई भी उमग या फल की कामना से रहित होकर मिथिला-नगर के हंस (अर्थात्, देवी सीता) के समान ही व्याकुल हो दबे पड़े रहे।

समुद्र, मानो अपने तरग-रूपी करों से नदी-रूपी अपनी पत्नियों के उमड़ते हुए जल-रूपी सुन्दर अँचल को पकड़कर खीच रहे थे और वे नदियाँ मानों अपने बलवान् पति का वालिंगन करके मंदहास कर रही थी, जो (मंदहास) मुक्ताजल का दृश्य उपस्थित करते थे।

गुवाक (सुपारी)-बृक्षों के फल, शास्त्रों के ज्ञानमय वचनों का श्रवण करनेवाले

पुरुषों के समान तथा विरह से पीड़ित रसणियों के समान ही धीरे-धीरे अपने पूर्व रग का त्याग कर अनिन्दनीय सुनहले रग को प्राप्त करने लगे ।

मगर नामक प्राणी, अनेक दिनों तक जल में रहने से शीत की पीड़ा से व्याकुल होकर जलाशयों से बाहर धूप में ऐसे पड़े हुए थे कि सूर्य की काति उनके शरीर पर बिखर रही थी । इस प्रकार, जलाशयों के तटों पर अनेक स्थानों में अपने सुख को बन्द किये वे सोये पड़े थे ।

‘बजी’ नामक लताएँ, जिनमें (बैठकर) तोते मधुर स्वर में बोल रहे थे, जिनमें मनोहर पखोवाले भ्रमर देशों का दृश्य उपस्थित करते हुए उड़ रहे थे, जिनमें अतिसुन्दर पत्लव थे (जो कान की समता करते थे) और जो कटि के समान ही लचक-लचक जाती थी, तरणियों के समान शोभायमान थी ।

घोंघे, जिनकी पीठ झुकी हुई थी, अपने नेत्रों को सिकोड़कर कीचड़ में धौंस गये, मानों उनके द्वारा उत्पन्न किये गये मोती के (रसणियों के दाँतों से) पराजित हो जाने से वे हरिण-सद्वा रसणियों के सम्मुख प्रकट होना नहीं चाहते हों ।

बर्षा के कारण पुष्ट हुए समतल प्रदेशों के कमल-पुष्पों के विशाल पत्तों की छाया में विश्राम करनेवाले दोषहीन केंकड़े अब अपनी स्त्रियों के साथ अपने बिलों में उनके द्वारों को बन्द करके ऐसे पड़े थे, जैसे लोभी व्यक्ति हों । (१-१२१)



अध्याय ३०

किञ्चिकन्धा पटल

इस प्रकार शरत् काल जब व्यतीत होने लगा, तब वीर अग्रज राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे वीर ! निश्चित अवधि व्यतीत हो गई । किन्तु, निद्रा में पड़ा हुआ वह राजा (सुग्रीव) अभी तक नहीं आया । उसका यह कैसा कार्य है ?

वह (सुग्रीव) दुर्लभ राज्य-सपत्नि को पाकर हमारे उपकारों को भूल गया है । अतः उत्तम सदाचार से वह भ्रष्ट हो गया है, धर्म को सुला दिया है, इसके प्रति किये हमारे स्नेह की बात छोड़ दो, वह हमारे पराक्रम को भी भूल गया है । इस प्रकार वह सुखी जीवन में मन्त्र हो गया है ।

जो कृतम होकर अपूर्व रूप में प्राप्त स्नेह को भी सुला दे, उचित सत्य को मिटा दे एवं अपने प्रण को पूर्ण न करे, उसको मारना दोष नहीं है । अतः, तुम जाओ और उसकी मनोदशा को जानकर लौट आओ ।

तुम जाकर यह मेरा सदेश उस (सुग्रीव) को दो कि घोर पापियों को युद्ध में निर्मल करके स्वर्ग भेजने तथा (लोक में) धर्म को सुरक्षित बनाने के लिए मैंने जो धनुष

उठाया है, वह अभी वर्तमान है। भयकर वाण भी है। तुमलोगों को मारनेवाला वाण भी मेरे पास है।

विष के समान व्यक्तियों को दण्ड देना पाप नहीं है। मनु का यही विवान है। इस बात को तुम उम (सुग्रीव) के हृदय में विठा दो, जिसने पाँच वर्ष (की आयु) में कुछ नहीं जाना।

तुम उससे यह सत्य बचन भी कहना कि यदि वह चाहता है कि नगर, प्रजा, राज्य तथा अपने बन्धुजन—इन नवके साथ स्वयं भी राज करता हुआ सुखी रहे, तो अविलब यहाँ चला आये। यदि वह इस प्रकार नहीं आयगा, तो समार में बानरों का नाम तक जेप नहीं रहेगा।

यदि सुग्रीव प्रभृति बानर, हमसे भी अधिक बलवान् वीर को खोजने का विचार करें, तो उनसे कहना कि तुमको (वर्थांत्, लक्ष्मण को) जीतनेवाला तीनों भुवनों में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

तुम पहले उन्हें नीतिमार्ग को समझाना। यदि उस बचन से उनका मन न बदले, तो तुम कुद्र न होना और वही उन्हें मिटा न देना। किन्तु, उनके दिये उत्तरों को मेरे पास आकर कहना।—यों कहकर यशोभूषित (रामचन्द्र) ने लक्ष्मण को विदा किया।

रामचन्द्र की आज्ञा को सिर पर धारण करके, उनके चरणों को नमस्कार करके, किंचित् भी बिलब न करके अपनी विशाल पौठ पर तूणीर बाँध तथा शर-प्रयोग के लिए अतिश्रेष्ठ धनुष को कर में लिये हुए, अनन्यचित्त से वह (लक्ष्मण) दुर्गम मार्ग पर चल पड़ा।

(राम की) आज्ञा से चलनेवाला वह (लक्ष्मण) सुकुमार होते हुए भी (पूर्व में सुग्रीव जिस मार्ग में उन दोनों को किञ्चित् धनुष की ताक ले गया था उसी) पूर्व-प्रसिद्ध मार्ग से नहीं गया, किन्तु वृक्षों और शिलाओं को चूर-चूर करके उन्हें दूर फेंकता हुआ एक नया मार्ग बनाकर उसपर चला। (भाव यह है कि सुग्रीव ने प्रसिद्ध मार्ग में कोई स्कावट अथवा हानिकारक उपाय कर रखा होगा, इस विचार से लक्ष्मण उस मार्ग से नहीं गये।)

वीर-कक्षण से भूषित लक्ष्मण के अरुण चरणों की चाप से, स्वर्ग को छूनेवाले मेव पर्वत-जैसे ऊँचे उठे हुए पर्वत धरती में धैंसकर समतल हो गये। पाताल में स्थित कर्ण-नेत्र (वर्थांत्, सर्प या आदिशेष) भी लोगों की दृष्टि में आ गया।

वलिष्ठ वाली के भाई के पास जानेवाला मनुकुल श्रेष्ठ का अनुज, भयकर अरण्य को भेदकर अतिवेग से आगे बढ़ता हुआ, गगन-चुम्बी सालवृक्षों को छेदनेवाले (राम के) वाण की समता करता था।

किसी दिग्गज के ऊँचे के खो जाने पर उसे दूँढ़ता हुआ, उसके प्रद-चिह्नों का अनुसरण करके दूसरा कोई दिग्गज चल पड़ा हो—सुग्रीव को दूँढ़ता हुआ जानेवाला वह लक्ष्मण वैसे ही लगता था।

जिस प्रकार सर्य ऊँचे उदयाचल में अस्ताचल पर जा पहुँचा हो, उसी प्रकार स्वर्ण की काति से युक्त शरीरवाला लक्ष्मण एक ऊँचे उज्ज्वल पर्वत में (ऋष्यमूक से) दूसरे पर्वत पर (किञ्चित् धनुष की ताक ले गया था) शीघ्र जा पहुँचा।

अपने रक्षक अग्रज के अनुपम शर के समान वह अत्युन्नत किञ्जिन्धा-पर्वत पर जा पहुँचा। वह एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर फाँदकर जानेवाले स्वर्णरंग के सरी की समता करता था।

उसे देखकर वानर, ऐसे भागे, जैसे यम को देख लिया हो। वे वालिकुमार के निकट जा पहुँचे और उससे कहा—हे प्रभु! अतिकुद्ध रामानुज चडवेग से यहाँ आ रहा है। यही सुनते ही—

वह कुमार भी, माहसिक कृत्य करनेवाले लक्ष्मण के आगमन का कारण जानने के लिए (लक्ष्मण के) समीप आया और उस चक्रवर्ती कुमार के मन का भाव पहचानकर स्वर्ण का वीर-ककण धारण करनेवाले अपने पितृव्य (सुग्रीव) के प्रासाद में जा पहुँचा।

नल (नामक वानर-शिल्पी) के द्वारा निर्मित प्रासाद में पुष्प-दलों की शब्दा पर पड़े उस सुग्रीव के निकट जा पहुँचा, जो दीर्घ कुतलों तथा बाल-स्तनोवाली रमणियों के द्वारा अपने सुन्दर पैरों को सहलाये जाते हुए, निद्रा का अतिथि बनने की इच्छा कर रहा था।

जो स्वच्छ ज्ञानवाले राम-लक्ष्मण के द्वारा प्रदत्त उस विशाल राज्य-सम्पत्ति-रूपी मंदिरा का पान करके अतिमत्त हो गया था, जो अति उज्ज्वल स्वर्ण-पर्वत के मध्य ठहरे हुए कँचे रजत-पर्वत के समान शोभायमान था।

जो, सिंधुवार, साखू, अगरु, चदन तथा सुगन्धित लताओं तथा सुरभित पुष्पों का स्पर्श करके वहनेवाले बाल-पवन के कारण सुख-निद्रा में मग्न था।

जो मधुर 'किडै' (नामक फूल) के समान अधिखिली स्त्रियों के, धवल हास करनेवाले मुक्ता-सहश ऐने दंतों से मधु-समान जो रम उत्पन्न होता था, उसका पान करके उन्माद, मूच्छां तथा अन्य (तद्रा, शिथिलता आदि) गुणों के बढ़ जाने से मत्त गज के समान पड़ा था।

जो, सुकुट, कुडल आदि के काति-पुजों के व्यास होने से ऐमा उज्ज्वल लगता था, जैसे सूर्य-किरणों से आवृत हिमाचल हो।

वह सुग्रीव लेटा था। तारा के गर्भ से उत्पन्न वीर अगद पहले उसके समीप गया और अपने विशाल करों को जोड़े, उसे निद्रा से जगाने के लिए मृदु बचन कहने लगा—

हे मेरे पिता! मेरे बचन सुनिए। उन रामचन्द्र का अनुज, अपने सुख से अपने मन के महान् क्रोध को प्रकट करते हुए अवार्य वेग से आ पहुँचा है। अब आपका विचार क्या है? कहिए।

वह (सुग्रीव) राज्य-सम्पत्ति के मोह मे भूला हुआ था और सुगन्धित मदा-रूपी विष भी उसके शिर पर चढ़ा हुआ था। अतएव प्रजा-रहित हो कोमल पर्यंक पर पड़ा था, अगद के बचनों को वह सुन नहीं सका।

यह दशा देखकर करिशावक एव केमरी की समता करनेवाला वह युवराज (अगद), यह मोचकर कि अब सुग्रीव के सम्मुख खड़े रहने से कुछ न होगा, दोपरहित चित्तवाले हनुमान् को बुलाने के लिए उसके पास गया।

इद्रपुत्र का सुत (अगद) मन्दण में अतिकृशल वायुकुमार को साथ लिये हुए उग्र सेनापतियों के साथ चलकर (सुग्रीव के प्रासाद से) बाहर निकलकर अपनी माता के प्रान्माट की ओर चला ।

वहाँ पहुँचकर उसने (तारा से) प्रश्न किया कि अब क्या करना चाहिए ? तब तारा ने उत्तर दिया—तुमलोग न करने योग्य पाप-कर्म सुलभता से कर डालते हो, फिर उन कर्मों के परिणाम को अनायास ही दूर करने का उपाय भी करना चाहते हो । क्या उपकार को भूलकर (कृतज्ञ होनेवाले) तुमलोग (पाप से) सुक्ष हो सकते हो ?

उसने फिर आगे कहा—विजयी (रामचन्द्र) ने तुम्हें सेना-सहित आने की जो अवधि दी है, यदि वह व्यतीत हो जायगी, तो तुम लोगों के जीवन की अवधि भी समाप्त हो जायगी—यों मेरे कहने रहने पर भी तुमलोगों ने कुछ सुना नहीं । अब देखो, तुमलोग कैसे फँस गये हो ।

जिन बीर ने अपने धनुष को ऐसा झुकाया कि यम ने वाली के अपूर्व प्राणों का हरण कर लिया और जिन्होंने तुमलोगों को अतुलित राज्य-सम्पत्ति प्रदान की, वे भी आज तुम्हारी उपेक्षा-योग्य हो गये हैं । तुम्हारे जैसे स्वभाववाले लोगों के लिए यह कायं (रामचन्द्र की उपेक्षा करना) ठीक ही तो है ।

देवतायों से भी उत्तम वे (राम) अपनी पली के वियोग में निष्प्राण-से हो मूर्च्छित पड़े हैं । इधर हुम उनकी उस व्यथा को मन में भी न लाकर सद्योविकसित नीलोत्पल-समान नेत्रवाली रमणियों के प्रेमाभूत का पान कर रहे हो ।

(तुमलोग) सत्य से सुकर गये हो, कृतज्ञ हो गये हो । तुमलोगों के पापों का परिणाम अब दीख रहा है । तुमलोग इस प्रकार गुणहीन हो गये हो । यदि उन महावीर (राम) से युद्ध मोल लोगे, तो विनष्ट हो जाओगे ।—जब तारा इस प्रकार उनकी भर्त्ता करती हुई बोल रही थी, तब—

उधर वडे-वडे पराक्रमी वानरों ने नगर के विशाल कपाट को, जो बड़ी अर्गला ने बंद करने योग्य था, बन्द करके भीतर से अर्गला डाल दी और बड़ी शिलाओं को लाकर (उस कपाट के पीछे) चुन दिया ।

वे वानर-बीर इस प्रकार नगर-द्वार को सुरक्षित करके और यह विचार कर कि (यदि कवाचित् लक्ष्मण भीतर प्रविष्ट हो जाय तो) उनसे युद्ध करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, वृक्षों को तोड़कर एवं बड़ी शिलाओं को उखाड़कर हाथ में लिये हुए, प्राकार के समीप खड़ रहे ।

राजपुगव (लक्ष्मण) ने यहे सोचने हुए कि ये हमसे बचना चाहते हैं, क्रोध से मद्वास करके, लक्ष्मी के निवास कमलापुष्प की समता करनेवाले अपने चरण से, उस नगर के कपाट पर अनायास ही आधात किया ।

उनके दिव्यचरण का स्पर्श पाते ही वह नगर-कपाट, मुरक्षा के लिए द्वार पर रखी शिलाएँ तथा दृढ़ प्राचीर सब ऐसे विघ्नस्त हो गये, जैसे अस्पृश्य पाप-पुज हों ।

वह दृढ़ कपाट, वह पुरातन नगर-द्वार, शिलाओं से निर्मित प्राचीर, सब सहज ही

दहकर सब दिशाओं में दस योजन तक विखर गये। तब वानर भय से विहृल हो उठे।

उस दृढ़ तथा उन्नत प्राचीर और उस विशाल नगर-द्वार के दहकर गिरने से पत्थरों के प्रहार से शिर में चोट खाये हुए वानर व्याकुल होकर दीर्घ दिशाओं में भागकर अपने अपूर्व प्राणों को बचा पाये।

अकथनीय घोर दुःख पाकर, अपना स्थान छोड़कर भागे हुए दोषहीन वे वानर, भयभीत होकर घोर शब्द करने लगे। उस ध्वनि से वह (किष्किन्धा) नगरी, उन्नत शिखरवाले मदर-पर्वत से मध्ये जानेवाले मीन-भरे तथा शब्दायमान समुद्र की समता करने लगी।

अनेक वानर, भयभीत होकर, किष्किन्धा पर्वत से हटकर समीपवर्ती वनों में जा छिपे। उससे वह ऊँचा (किष्किन्धा) पर्वत, ऐसा लगने लगा जैसा नक्षत्रपूर्ण आकाश नक्षत्रहीन होने पर दीखता है।

उस समय प्रतापी (रामचन्द्र) की आज्ञा-रूपी चक्र के जैसे लगनेवाले वे (लक्ष्मण) उम स्वर्णमय नगर की वीथियों में प्रविष्ट हो चलने लगे। तारा को घेरकर खड़े रहनेवाले (अगद आदि) वानर कह उठे—अहो! वे आ गये हैं। अब क्या करें?

है उत्तम कक्षण धारण करने गली। उन (लक्ष्मण) का हृदय पुष्प के समान कोमल है। यदि आप राजप्रासाद के द्वार पर जाकर उन्हें रोक दें, तो वह वीर, जो विचारवान् हैं, उम और आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। यही उत्तम उपाय है।—यों हनुमान् ने कहा।

तब तारा ने (उनसे) यह कहकर कि, तुम सब लोग जाओ। मैं जाकर उन वीर (लक्ष्मण) के मन को शात करूँगो—पाहस के साथ पुष्पालंकृत केशोंवाली अन्य सखियों-सहित चल पड़ी। इधर अन्य वानर उनसे हटकर दूर पर खड़े हो गये।

कठ में रस्सी (का आभरण) धारण किये हुए हाथी-जैसे लक्ष्मण, प्रसिद्ध वानरों के आनन्दपूर्ण आवास किष्किन्धा की राजवीथियों को पार कर विशाल राज-सौध में ज्यो ही प्रविष्ट होनेवाले थे, खों ही सहज सुग्राध-भरित केशोंवाली तारा उनके मार्ग के मध्य उन्हे रोककर खड़ी हो गई।

मनोज्ज लावण्य, ध्वल चद्र-सद्वश मदहास, सुन्दर कटि, उत्तम तथा नित्य यौवन-पूर्ण मृदु स्तन—इनसे युक्त उत्तम मयूर-तुल्य रमणियों के साथ वह तारा उस श्रेष्ठमार्ग को रोके खड़ी रही।

रमणियों की सेना ने दृढ़ता में (लक्ष्मण को) इस प्रकार घेर लिया कि (लक्ष्मण के) धनुष तथा करवाल उनके आभरणों में चमक उठे। उन (रमणियों) के मजीर, जिनमें छोटे-छोटे ककड़ भरे थे, वज उठे। मेखलाएँ भी बड़ा कोलाहल कर उठी। सर्वत्र विविध भ्रू-लताएँ फैल गईं।

शब्दायमान नूपुर नगाड़े बने थे। रमणियों के जघन वडे रथ थे। परस्पर अनुरूप नयन-युगल बरछे थे। कठोर भौंहें युद्ध करनेवाले धनुष थी। इस प्रकार, जब वे रमणियों घेरकर खड़ी हो गईं, तब स्वयं गौरव से भी गुरु होनेवाली भुजाओंवाले उन (लक्ष्मण) का

शात न होनेवाला क्रोध भी शात हो गया । वे अपने सिर को झुकाकर उनकी ओर दृष्टि उठाने से भी सकोच करते हुए खड़े रहे ।

लद्धमण, अपना कमल-बटन नीचा किये, अपने विशाल धनुष को धरती पर टेके, ऐसे खडे रहे, जैसे अपनी साँसों के बीच खड़े हो । तब मनोहर कधों, परिशुद्ध हृदय और दीर्घ नयनोवाली तारा, उन वानर-रमणियों में से, जो धरती की अप्सराएँ जैसी थी, पृथक होकर गदगद स्वर में ये वचन कहने लगी—

‘हे वीर ! हमारा यह बढ़ा भार्य है कि हम हमारे इस घर में पधारे हो । अनतकाल तक तप करने पर ही ऐसा भार्य प्राप्त होता है, अन्यथा इन्द्र आदि के लिए भी ऐसा भार्य दुर्लभ है । (हम्हारे आगमन से) हम कर्मरहित हो उत्तम-गति प्राप्त कर चुकी । इसमें बढ़कर अन्य क्या सुझूत हो सकता है ?

फिर, सगीत से भी मधुर लोलीवाली उस तारा ने प्रश्न किया—हे वीर ! हम उग्र लृप धारण करके यहाँ आये हो । हम्हे देखकर वानर-सेना (हम्हारे) आगमन का कारण न जानने से भयभीत हो रही है । हम्हारा क्या उद्देश्य है ? हे प्रभो ! आज्ञा-रूपी चक्र को प्रवर्त्तित करनेवाले (चक्रवर्ती श्रीराम) के चरण-युगल को कभी न छोड़नेवाले हम अब (उन्हें छोड़कर) किस कार्य से यहाँ आये हो ?

पुष्पहार-भूषित वक्षवाले (लद्धमण) कसणा से आर्द्ध हुए । उनका क्रोध कम हुआ । यह सोचते हुए कि कौन यह वचन कह रही है, उस तारा के सुख को, जो मानों दिन में धरती पर अवतीर्ण उज्ज्वल पूर्ण चन्द्र-जैसा था, निहारकर देखा । तब उसे देख-कर उन्हें अपनी माताओं का स्मरण हो आया, जिससे वे व्याकुल हो उठे ।

मगल-सूत्ररहित, रत्नमय अन्य आभरणों से हीन, सुगंधित मधुपूर्ण पुष्पहार से आभूषित, कुकुम, चदन आदि के रस से अलिस, पीन एवं तापमय स्तनों तथा क्रमुकवृक्ष-सहश अपने कठ को (अपने आँचल से) ढके हुए उस नारीरत्न (तारा) को देखकर उदार स्वभाववाले वे (लद्धमण) अपने नयनों में अश्रु-भरे खडे रहे ।

उन (लद्धमण) के मन में यह विचार उठने से कि मेरी दोनों माताएँ (अर्थात्, कीमत्या और सुमित्रा) इसी वेश में रहती होंगी, वे शिथिलचित्त होकर दीर्घकाल तक वैमे ही खडे रहे । फिर, यह सोचकर कि उनसे पूछे गये प्रश्नों का उन्हें कुछ उत्तर देना है, सुन्दर कुतलोंवाली उस (तारा) को देखकर अपने उद्दृष्ट कार्य के बारे में यो कहने लगे—

सूर्यपुत्र सुग्रीव, मनुषुल के श्रेष्ठ नरेश (राम) के प्रति दिये अपने इस वचन को कि ‘मैं अपनी सेना के साथ आपकी देवी का अन्वेषण कर उनका समाचार प्राप्त करूँगा’ भूल गया है । मेरे अग्रज ने आदेश दिया है कि हम शीघ्र जाकर उस सुग्रीव का हाल जानकर आओ । इसलिए मैं यहाँ आया हूँ । उसके उत्तम राज्य-शासन का हाल तुम बताओ—लद्धमण ने कहा ।

‘हे प्रभु ! क्रोध न करो । छाँटे लीगों के अपराध को क्षमा करके तुम शांत हो जाओ । इस प्रकार क्षमा वर सकनेवाला हम्हारे अर्तिरक्त और कौन है ? वह अपने वचन

को भूला नहीं है। उसने समार में सर्वत्र अपने अनेक दृतों को भेजा है और सब स्थानों से बानरों की सेना के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। (तुम लोगों के) उपकार का प्रत्युपकार भी क्या संभव है ?

सहस्र कोटि बानर-दृत, सेनाओं को बुला लाने के लिए (सुग्रीव की) आजा से गये हैं। उनके लौट आने का समय भी आ गया है। हम जो शरणागत के लिए माता से भी अधिक हितकारी हो, अपने क्रोध को शात करो। यही धर्म है, यदि अपराधी ही न हो, तो दडनीय कौन होगा ?^१

तुम लोगों ने अपने शरणागत को अभयदान देकर जो अपार सपत्ति प्रदान की है, उसे प्राप्त कर यदि वह कभी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करे, तो वह भी तुम्हारे ही कार्य का परिणाम होगा न ? ज्ञी के निमित्त होनेवाले युद्ध में (अपने मित्र के साथ जाकर) यदि कोई अपना शरीर न लाग करे, तो क्या उम्मीद मित्रता टिक सकेगी ?

तुम सरल स्वभाववाले ने उग्र शत्रु को मिटाकर (सुग्रीव को) राज्य का वैभव प्रदान किया और उम्मीद के साथ शाश्वत रहनेवाला महान् उपकार किया है। यदि वही तुम्हारी उपेक्षा करे, तो अपनी इस ज्ञुदता के कारण वह अपना महत्व ही नहीं खो देंगा, किंतु इसी जन्म में दारिद्र्य को पाकर इह एव पर दोनों लोकों के सुख से बच्चिर हो जायगा।

उस समय, युद्ध-कुशल वाली के प्रताप को मिटानेवाला एक ही बाण तो था। अब (यदि तुम इस सुग्रीव को मिटाना चाहो तो) हमें किसकी सहायता अपेक्षित है ? तुम्हारे धनुष से बढ़कर तुम्हारा अन्य सहायक कौन है ? हमें तो देवी का अन्वेषण करनेवाले लोगों की आवश्यकता है। तुम्हारे चरणों की शरण में आये हुए (सुग्रीव आदि) जन तुम्हारा कार्य करके कृतार्थ होंगे।

तारा के ये वचन सुनकर वहुश्रुत लक्ष्मण, कर्त्तार्द्वं होकर मन में लजा का अनुभव करता हुआ खड़ा रहा। उसको इस दशा में देखकर और समझकर कि, इनका क्रोध शात हो गया, घोर युद्ध में सहायक बननेवाले दृढ़ कधों से युक्त हनुमान् उनके समीप आया।

क्रोध के समय में भी अकुरित प्रेमवाले लक्ष्मण ने अपने समीप आकर चरणों को नमस्कार करके खडे हुए हनुमान् को देखकर कहा—तुम तो अपार शाष्ट्र-श्रान से युक्त हो। तुम भी कैसे पूर्व-घटित वृत्तात को भूल गये ? तब वचन-चतुर हनुमान् ने उत्तर दिया—हे प्रभो ! सुनो—

अविकृत प्रेमवाली माता का, पिता का, गुरु का, दिव्य शक्ति से उक्त ब्राह्मणों का, गाय का, शिशुओं का और स्त्रियों का वध करनेवालों का भी बुछ प्रायश्चित्त हो सकता है। किन्तु, अनश्वर उपकार को भूल जाने का भी क्या कोई प्रायश्चित्त हो सकता है ?

हे स्वामिन् ! आप और बानराधिप सुग्रीव में जो सच्चा म्नेह उत्पन्न हुआ, वह

¹. भाव यह है कि जो अपराध करे और दंड के योग्य हो वही ज्ञामा के योग्य भी होता है। यदि कोई अपराधी न हो और दडनीय भी न हो, तो ज्ञामा का भाव कहाँ रहेगा ? —अमृ०

मेरा ही तो कार्य था । यदि वह मैत्री मिट जाय, तो उस पाप से क्या कोई सुक्त हो सकता है ? उस कारण से हमारा भी चित्त मलिन हो जायगा न ?

हे हमारे प्रभु ! (हमारे) तप, सुकृत, धर्म-देवता तथा अन्य सब कुछ आप ही हैं । ऐसा मेरा सुदृढ़ विश्वास है । पर, यह सब रहने दीजिए । यदि त्रिलोक की रक्षा करनेवाले आप क्रोध करें, तो हमारे लिए अन्य आश्रय क्या रहेगा ? (आपकी) करुणा ही (हमारे लिए) गति है ।

वानरराज (आपके कार्य को) भूले नहीं हैं । उन्होंने बलवान् वानर-सेनाओं को एकत्र करने के लिए स्थान-स्थान पर दूत भेजे हैं और उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं । इसीलिए विलंब हो रहा है । आप स्वयं धर्म के रक्षक हैं । यदि वह आपको दिये हुए अपने वचन को तोड़ दें, तो इस लोक में उसका जन्म ही व्यर्थ होगा और नरक में भी उसको मुक्ति नहीं मिलेगी ।

हे मत्तगज-सदृश वीर ! हमसे उपकार पाये विना ही जो हमारा उपकार करता है, उसके लिए, यदि आवश्यकता पड़े, तो युद्ध में उसके सहायतार्थ जाकर, उसके शत्रुओं को निहत करना हमारा धर्म है । यदि हम उसके शत्रु का नाश न भी कर सकें, तो कम-से-कम उन शत्रुओं से आहत होकर अपने प्राण तो त्याग सकते हैं । इससे बढ़कर ससार में क्या उपकार हो सकता है ?

हे प्रतापी मिह-सदृश ! यहाँ अब आपका खड़ा रहना उचित नहीं है । यदि हमारे शत्रु जान लेंगे, तो उससे आपकी और हमारी मित्रता भग हो जायगी । आपकी प्रदान की हुई सप्तिको तथा आपके ज्येष्ठ भ्राता (राम-सदृश) वानराधिप को अब चलकर देखें ।

हनुमान् के वचन सुनकर पर्वत-समान पुष्ट सुजाओवाले लक्ष्मण ने अपना क्रोध शात करके मन में विचार किया—यह सुग्रीव, नई सम्पत्ति के प्राप्त होने से बेसुध हो गया है और अन्यत्र जाना नहीं चाहता है, अतएव सकीर्णवुद्धि हो गया है यह राम की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला नहीं है ।

यों सोचकर फिर वीरकक्षण-भूषित चरण तथा वलिष्ठ सुजाओवाले राजकुमार (लक्ष्मण) ने हनुमान् को देखकर कहा—अभी तुमसे एक बात और कहनी है, यह तुमसे कहना ही उचित है, तुम इसपर विचार करो, यह कहकर वह आगे कहने लगा—

मैंने अपनी आँखों देखा है कि (सीता) देवी के अपहरण के कारण उत्पन्न क्रोध तथा मानमग से उत्पन्न अग्नि किस प्रकार उनके प्राणों को सता रही हैं, राजधर्म छोड़कर दूसरों पर अत्याचार करनेवाले पापियों को उचित दड़ देने का मैंने निश्चय कर लिया है । उसमें सुर्खे भले ही अपयश प्राप्त हो, फिर भी सुर्खे उसकी कोई चिन्ता नहीं है ।

अपने कोप को शात करके मैं जीवित रहता हूँ, तो यह अपने प्रभु को मात्वना देने के लिए ही, अनेक दिन व्यर्थ व्यतीत हो गये हैं, अन्यथा (हम दोनों के क्रोध से) त्रिसुब्न भी दग्ध हो जायेंगे, देव भी मिट जायेंगे, इतना ही नहीं, उत्तम धर्म भी विनष्ट हो जायेंगे, अविनाशी प्रारब्ध कर्म को कौन मिटा सकता है ?

प्रभु ने (पहले) तुमको देखा , (तुम्हारे द्वारा मित्रता करके) आपत्ति के समय मे तुम्हारे स्वामी (सुग्रीव) की सहायता की और मेरे समान ही उस (सुग्रीव) को भी अपना भाई समझा , इसी कारण से उन्होंने इतने दिन यहाँ व्यतीत किये हैं , अन्यथा एक धनुष की सहायता से ही विद्युत्-सदृश देवी का अन्वेषण करना कोई बड़ी बात नहीं थी ।

केवल आकाश में ही नहीं, किंतु इस सारे ब्रह्माड में । जिसमें चतुर्दश सुबन, सात बडे पर्वत और सात कुलपर्वत हैं । जहाँ भी सीताजी हो, उस स्थान को पहचान कर, उन्हे सुक्त करके लाना (श्रीराम के शर के लिए) कोई असंभव कार्य नहीं है , फिर भी, उस दिन तुमलोगों ने जो वचन दिया था, उसकी उपेक्षा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं ।

तुम लोगों ने विलब-मात्र नहीं किया । किन्तु, चिरकाल से गर्व से फूले हुए राज्ञसों को जीवित रहने दिया । देवताओं को दुःखी होने दिया । परम्परा से आगत शास्त्रज्ञान तथा होमाग्नि से युक्त मुनियों को विपदा में पढ़ने दिया, पाप को बढ़ने दिया । क्रोध न करनेवाले (श्रीराम) को क्रुद्ध कर दिया । तुम्हारा तो इससे अंत ही हो जायगा—यो (लक्ष्मण ने) कहा ।

उत्तम कुल मे अवतीर्ण (लक्ष्मण) के यह कहते ही मारुति ने उनको नमस्कार करके कहा—हे प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता । बीती वातो को मन में न रखो । यदि हम लोग अपने ऊपर लिये हुए कार्य को पूर्ण नहीं करेंगे, तो हम मरण के योग्य हैं , इसका साक्षी धर्म ही है । आप भीतर आइए और अपने ज्येष्ठ भ्राता (सुग्रीव) से मिलिए ।

स्वर्ण-चलयों से भूषित धनुष को धारण करनेवाले (लक्ष्मण) यह कहकर कि, पूर्व में हमने तुम्हारे कहे अनुसार कार्य किया और अब भी हम तुम्हारे कहे अनुसार करने को तैयार हैं, सुग्रीव के मन की थाह लेने के लिए हनुमान् के संग चल पडे ।

तारा भी, भाले-सदृश नयन, रक्तकुमुद-सदृश अधर, धनुष-सदृश ललाट, हस की गति, कलापी-तुल्य छवि, ध्वजायुक्त रथ-सदृश जघन, मुक्ता-सदृश दत, बलिष्ठ वाँस-जैसी मृदु सुजाएँ, कोकिल सदृश ध्वनि, स्वर्ण-कलश-तुल्य स्तन, विजली-जैसी कटि, कुमिल (नामक) पुष्ण-सदृश नासिका, कालमेघ-तुल्य केश—इनसे युक्त रमणियों के साथ वहाँ से (अंतःपुर में चली) ।

बालिपुत्र (अगद) भी चतुर मन्त्रियों के साथ जाकर वीर (लक्ष्मण) के कमल-सदृश चरणों पर नत हुआ और भयमुक्त हो खड़ा रहा । तब धनुर्धारी (लक्ष्मण) ने उससे कहा—हे वीर, तुम शीघ्र जाकर अपने पिता को मेरे आगमन का समाचार दो । अंगद ‘हाँ’ कहकर उन्हे नमस्कार करके चला गया ।

दीर्घ बाहुवाला (अगद) वहाँ से चलकर अपने चाचा के सौध में प्रविष्ट हुआ । वहाँ सुग्रीव के सुन्दर चरणों को दृष्टा से पकड़ लिया और उसे निद्रा से जगाकर कहा—उस महान् (राम) का अनुज आपके सौध के द्वार पर उपस्थित है । उसका क्रोध मीनों से भरे समुद्र से भी विशाल है । फिर, उसने सारा वृत्तात भी सुनाया ।

अविसुक्त निद्रावाला (सुग्रीव) रमणियों के चलने से उत्पन्न कोलाहल को सुनकर जाग पडा । पूर्वघटित किसी भी वृत्तात को न जानने के करण उसने अगद से प्रश्न

कैव रामायणी

५०२

किया । घने स्वर्णहारों तथा पुष्पहारों से विभूषित हे वीर ! हमने कोई अपराध नहीं किया । ऐसी अवस्था में उनका हमपर क्रोध करने का क्या कारण है ?

(तब सुग्रीव से अगद ने कहा —) हे पिता ! निश्चित तिथि को आप (श्रीरामचन्द्र के समीप) गये नहीं । अपार सपत्नि प्राप्त करके गर्व में फूल गये । उपकार को भूल गये । इन कारणों से (लक्ष्मण का) क्रोध भड़क उठा है । नीतिशास्त्र के पढ़ित हनुमान् ने उनका क्रोध शात करने के लिए उनसे प्रार्थना की, तब (लक्ष्मण ने) हमें जीवित रहने दिया ।

वानर-वीरों ने (लक्ष्मण के) आगमन का वंग (उग्रता) देखकर किञ्चिन्धानगर के गगनचुंबी दरवाजे को बद कर दिया और आसपास के एक भी पर्वत को छोड़े बिना, सब पर्वतों को लाकर (दरवाजे पर) रख दिया । एव उमड़तं क्रोध के साथ उन (लक्ष्मण) से दुद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो खड़े रहे ।

पोरुषवान् (लक्ष्मण) ने (वानरों का) वह कार्य देखकर अपने सुन्दर कमल-मद्वश चरण से (फाटक को) छुआ — (अर्थात्, पदाधात् किया) । उनके छूने के पहले ही, दक्षिण से उत्तर तक फैली हुई, शिला-निर्मित प्राचीर, सुट्ट नगर-द्वार तथा फाटक पर चुने गये पर्वत, नव टूटकर विखर गये और चूर-चूर हो गये ।

यह देखकर बलवान् वानर-सेना किस दशा की प्राप्त हुई — मैं क्या कहूँ ? कहाँ भागकर छिपी — मैं क्या कहूँ ? (वानरों की) वह दशा देखकर माता (तारा) आभरण-भूषित रमणियों के साथ, विजली-मद्वश तथा पत्राकार वरछा धारण किये हुए (लक्ष्मण) के समुख जाकर (उनके) मार्ग में खड़ी हो गई ।

कुमार (लक्ष्मण) ने छियों की ओर याँख उठाकर भी नहीं देखा, मन-ही-मन उमड़नेवाले क्रोध के माथ खड़े रहे । तब नारी-रत्न (तारा) ने मधुर वचन कहकर प्रश्न किया — हे उत्तम ! हमारे यहाँ आपका यो आगमन कैसे हुआ ? तब उन कुमार ने अपने आगमन का कारण कह सुनाया ।

माता (तारा ने) उनके आगमन का प्रयोजन ठीक-ठीक समझ लिया । उनके क्रोध को शात करते हुए ये वचन कहे — (सुग्रीव) आपकी आज्ञा को नहीं भूला है । भद्रकर सेना को शीघ्र लाने के लिए दूतों को पर्वतों तथा पत्थरों से भरी विविध दिशाओं में प्राप्ति कर दिया है और उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है । यही अब घटित हृत्तात है । — यो (अगद ने) कहा ।

(अगद के यो) कहते ही, सर्वपुत्र कह उठा — यदि वे (राम-लक्ष्मण) क्रोध-करके उठ आयेंगे, तो इस धरती में तथा स्वर्ग में कौन उनके समुख खड़ा रह सकेगा ? बनुवीर वह कुमार (लक्ष्मण) जब इस प्रकार क्रोध के साथ, शीघ्र गति से आया, तो सुर्मे नमाचार दिये बिना तुम लोगों ने क्या किया ?

तब अगद ने उत्तर दिया — विविध पुष्प-मालाओं से भूषित बलिष्ठ तथा उन्नत सुजात्राले हैं मेरे पिता । मैंने पहले ही आपसे निवेदन किया था । किंतु, तब आप भर्त होकर पड़े थे । अत, आपने व्यान नहीं दिया । फिर, अन्य कोई उपाय न देखकर मैंने

हनुमान् से जाकर कहा। अब शीघ्र ही थाप जाकर (लक्ष्मण से) मिलें—यही कर्तव्य है।

(राम-लक्ष्मण के प्रति) स्नेह से पूर्ण मनवाले (सुग्रीव) ने कहा—हे कुमार। उन्होंने मेरा जैसा उपकार किया है, क्या वह अन्य किसी के द्वारा सम्भव है? मुझे जो संपत्ति प्राप्त हुई है, क्या उसका कोई अत भी है? उन्होंने (रामचन्द्र ने) मुझसे अपने जिन कष्टों को दूर करने की आशा की थी, उन्हे मैं मदिरा के नशे में पड़कर भूल गया। अब मैं उन्हे (लक्ष्मण को) देखने के लिए लुभित हो रहा हूँ।

मुझमे जो कार्य हुआ है, इससे बढ़कर अज्ञान-भरा कार्य और क्या हो सकता है। (मद्य पीने से) यह पत्ती है, यह माता है—ऐसा विवेक भी जब नहीं रह जाता, तब अन्य धर्म के विषय मे क्या कहना? यह (मद्य-पान) पञ्च महापापों में एक है। यही नहीं, हम तो पहले ही से माया मे पड़े हुए हैं, उसपर मद्य के नशे मे भी चूर हो जायँ, तो फिर क्या कहना?

अविनश्वर ज्ञान से युक्त महात्माओं तथा वेदों ने कहा है कि जो माया-वशीभूत न होकर विवेक के साथ पापों से दूर रहते हैं, जन्म-मरण के दुख से मुक्ति पायेंगे। पर, हम तो ऐसे हैं, जो मदिरा मे पड़े हुए कीड़ों को निकालकर मद्य पी लेते हैं। हम ऐसे हैं, जैसे घर मे लगी आग को धी डाल-डालकर बुझाने की चेष्टा करते हैं।

वेद-शास्त्र तथा अन्य सब यही कहते हैं कि यदि कोई अपना स्वरूप पहचान लेगा, तो उसका क्षुद्र जन्म मिट जायगा। हम तो पहले से ही, आत्म-स्वरूप को न पहचानने के कारण व्याधिपूर्ण गदे शरीर को पाये हुए हैं। फिर, ऊपर से मद्य पीकर मति-भ्रष्ट भी हो जायँ, तो क्या यह उचित होगा?

अभयदान देकर (शरणागत की) रक्षा करनेवाले, पचेन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने-वाले, तत्त्वज्ञान (के समुद्र) मे निमग्न रहनेवाले, सुख-दुख के द्वन्द्व को मिटानेवाले ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर क्या वे लोग सद्गति पा सकते हैं, जो दूसरों की आँख बचाकर मद्य पीते हैं और सासार के सम्मुख प्रकट रूप मे हँसते-खेलते रहते हैं?

शत्रुओं के द्वारा कृत हानि को, मित्रों के द्वारा कृत उपकार को, अधीत विद्या को, प्रत्यक्ष देखे पदाथों को, शास्त्रज्ञों के उपदेशों को, अपने को प्राप्त गौरव के कारण को, अपने को प्राप्त दुख को—यदि कोई जान ले, तो इससे बढ़कर हितकारी ज्ञान उसके लिए और क्या हो सकता है?

मद्यपान करनेवाले मे वचना, चौर्य, असत्य, मोह, परपरा के विरुद्ध विचार, शरणागत को छोड़ देने का स्वभाव, दम—ये सब (दुर्गुण) आकर निवास करते हैं। कमल-पुष्प मे निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हे तजकर चली जाती है। विष तो केवल खानेवाले के प्राण हरण करता है, किंतु नरक मे नहीं पहुँचाता—(मद्यपान नरक का निवास भी देता है)।

मैंने सुना था कि मदिरा-पान से इानि होती है, वह सुना हुआ वचन अब प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया। अब फिर कहने को क्या जेप रह गया है? हनुमान् की नय-निपुणता

से मैं वचा । अन्यथा उग्र गति से आनेवाले वीर के क्रोध से मेरी मृत्यु होने में क्या सदेह था ?

हे तात ! इस मद्यपान^१ से उत्पन्न होनेवाले दुष्परिणाम से मैं भीत हो रहा हूँ । उसका कर मे स्पर्श ही नहीं, मन से स्मरण करना भी अच्छा नहीं है । यदि मैं फिर, कभी उस (मद्य) की इच्छा करूँ, तो वीर (राम) के रक्त कमल-समान चरण मुझे विनष्ट कर दें—इस प्रकार सुग्रीव ने कहा ।

फिर, अनेक सद्गुणों से पूर्ण (सुग्रीव) ने उपयुक्त प्रकार से कहकर अंगद को यह आज्ञा देकर प्रेपित किया कि तुम लक्ष्मण के स्वागतार्थ आवश्यक सामग्री लेकर स्वयं उनके समीप जाओ । वह स्वयं भी अपनी महाधर्मिणी पत्नियों तथा परिवार के व्यक्तियों के साथ विशाल सौध-द्वार पर जा पहुँचा ।

(लक्ष्मण के आगमन के समय) चदन-तेप, पुष्प, सुगंधित चूर्ण, (बगरु वार्दि) का सुरभित धूम, पक्षियों में रखे हुए स्वर्ण-कलश, दीपों की आवलियाँ, श्रेणियों में लटकने-वाले मुक्ताहार, वितानों में हिलनेवाले मधुरपञ्च, ध्वजाएँ, छेंची ध्वनि करनेवाले शख तथा मृदग—ये सब चीयियों में भरे थे ।

वह किञ्चिन्धानगर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था कि उसकी शुद्ध, दृढ़ स्फटिकमय भित्तियों के मध्यभाग में तथा चारों ओर उत्तम रत्नों के बने स्तंभों के मध्यभाग में (लक्ष्मण की) परछाई पड़ने से दर्शकों के मन में सदेह होता था कि क्या सहस्रों वीर हाथ में धनुष लिये आ रहे हैं ।

बंगद उस समय समीप आकर (लक्ष्मण के) चरणों पर प्रणत हुआ । तब लक्ष्मण ने उनसे पूछा—हे तात ! तुम्हारे महाराज कहाँ हैं ? अंगद ने उत्तर दिया—हे वीर केसरी ! वे पुण्यवान् आपका स्वागत करने के लिए मेघस्पर्शी सौध-द्वार पर खड़े हैं ।

चूंडियों और कक्कणों से भूषित करोवाली वानर-रमणियाँ सुगंधित चूर्ण और बच्चों को उछाल रही थीं और विशाल चामरों को हिला-हिलाकर हवा कर रही थीं । श्वेत छत्र ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा पूर्ण उज्ज्वल चन्द्रमा आसमान में चमक रहा हो—इस प्रकार कपिकुलराज, सुन्दर धनुष को धारण करनेवाले पराक्रमी वीर (लक्ष्मण) के समुख आया ।

पलाश-पुष्प-समान अधरोंवाली रमणियाँ अर्ध इत्यादि के लिए उपयुक्त सामग्री लिये आ रही थीं । नगाड़े मेघों के समान गरज रहे थे । ऋषिगण वेद-पाठ कर रहे थे । सगीत-नाद सब दिशाओं में फैल रहा था । इस प्रकार सुग्रीव आ रहा था, तो उसके नवीन वैभव को देखकर देवता लोग भी विस्मय में पड़ गये ।

महिमावान् (लक्ष्मण) का स्वागत करने के लिए श्रीयुक्त सुग्रीव आ पहुँचा । (उसके साथ आनेवाली) स्थृहणीय स्तनोंवाली वानर-छियाँ नक्षत्रों के समान चमक रही थीं और सुग्रीव स्वयं उद्याचल पर उदित होकर आकाश में दृष्टिगत होनेवाले, कलाओं से

१. मद्यपान-समर्थी ऊपर के कुछ पथ प्रक्षिप्त-से लगते हैं ।—अनु०

परिपूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित था तथा उस उदयाचल पर उदित होनेवाले अपने पिता (अर्थात्, सूर्य) के समान प्रकाशमान था।

वीर लक्ष्मण ने अपने सम्मुख कपिकुल के राजा को प्रकट होते देखा। तब उनका क्रोध भड़क उठा। किन्तु, उन्होंने धर्म की व्यवस्था का विचार करते हुए अपने क्रोध को निर्मल विवेक से शात कर लिया।

उन दोनों ने लोह-स्तम्भी तथा पर्वतों से भी भारी भुजाओं से परस्पर आलिंगन किया। फिर, वानर-स्त्रियों तथा वानर-बीरों के समुदाय के साथ स्वर्ण-निर्मित सौध के भीतर जा पहुँचे।

कपिकुलाधिप न पहले से तैयार किये हुए एक उत्तम आसन को दिखाकर (लक्ष्मण से) कहा—हे वीर! इसपर आसीन होओ। तब (लक्ष्मण) मन में सोचने लगे कि जब लक्ष्मी के नायक (राम) तृणमय पृथ्वी पर विश्राम करते हैं, तब ऐसे आसन पर बैठना मेरे लिए उचित नहीं है।

फिर (सुग्रीव से) कहा—पत्थर-जैसे (कठोर) मनवाली कैकेयी के लिए उत्त्वल रत्न-किरीट को त्यागकर बन में आये हुए मेरे स्वामी (राम) जब तृण-शब्द्या पर सोते हैं, तब क्या स्वर्ण-विनिर्मित, पुष्पालकृत मृदुल आसन पर बैठना मेरे लिए उचित है?

लक्ष्मण के यों कहने पर सूर्यपुत्र अपने कमल-सदृश नयनों में आँख भरकर खड़ा रहा। तब मनु के बंश में उत्पन्न उत्तम क्षत्रियकुमार (लक्ष्मण) पर्वत-जैसे ऊँचे उठे हुए उस प्रासाद की फर्श पर बैठ गये।

युवक, वृद्ध, असर्व श्वियों—सब उस समय अश्रुमय नयनों और मलिन दृष्टि के साथ, कुछ कह न सकने के कारण मौन रहे। मन की व्यथा से बिछल हो रहे और पचेंट्रियों का दमन करनेवाले मुनियों के समान स्थित रहे।

महाराज (सुग्रीव) ने (लक्ष्मण से) कहा—आप यथाविधि स्नान करके मधुर भोजन करें, तो हम सब कृतार्थ हो जायेंगे। उसके यह कहने पर अजनवर्ण (राम) के अनुज कहने लगे—

दुःख और अपवाद हमारे पेट को भर रहे हैं। इसीसे हम जीवित हैं, तो अब हमें मधुर लगनेवाला अन्य पदार्थ क्या चाहिए? अत्यन्त द्वुसुक्षा के होने पर भी, यदि दुःख के कारण मन फ़िरा हुआ रहता है, तो अमृत भी तो कहुआ ही लगता है।

प्रभु की देवी का अन्वेषण करके उनका पता लगा दोगे, तो तुम मानों हमारे अपयश-रूपी अग्नि को द्रुकाकर हमें गगाजल में स्नान करानेवाले होओगे। समुद्र में उत्पन्न अमृत पिलानेवाले होओगे और हम अन्य कोई दुःख नहीं रह जायगा।

पत्ते, कद, शाक-फल आदि प्रभु के आहार करने के पश्चात् शेष का आहार मैं करता हूँ। वही मेरा भोजन है। उससे अन्य कुछ मैं नहीं खा सकता। यदि वैसा कुछ खाना चाहूँ, तो वह कुत्ते के जूहन के बराबर होगा। इसमें सन्देह नहीं।

हे राजन्। इतना ही नहीं, एक बात और सुनो। यहाँ से जाकर मैं शाक-कद

आदि लाकर सन्नद्ध करूँगा, तो तुम्हारे मित्र (राम) भोजन कर सकेंगे, इसलिए अब एक क्षण भी मेरा यहाँ विलव करना उचित नहीं है—यो लद्धमण ने कहा ।

बानगपति ने यह कहकर कि जब वह मनुकुलाधिप दुःख में हुआ है, तब मैं सुखी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—यह कर्म वानर-जाति में उत्पन्न हम-जैसे लोग ही कर सकते हैं, व्याकुल होकर अत्यन्त दुःखी हुआ ।

सूर्यपुत्र तब कट उठा, अश्रु वहाता हुआ, ऐश्वर्यमय जीवन से विरक्त होकर, अत्यत दुःखी तथा व्याकुल चित्त के साथ, उत्तम (राम) के निकट जाने की इच्छा से हनुमान् को देखकर कहने लगा—

हे नीति-निपुण ! गये हुए दूतों के द्वारा जो सेना लाई जायगी, उसको तुम अपने माथ ले आना । उम समय तक तुम यही रहो ।—यों हनुमान् को आदेश देकर शीघ्र प्रभु के आवास के लिए चल पड़ा ।

अरुण किरणवाले (सूर्य) का पुत्र आशका से मुक्त चित्तवाले (लद्धमण) का आलिगन करके शीघ्रता से अपने भाई (राम) के आवास की ओर चल पड़ा । उसके साथ अग्रद भी चला । वानर वीर आगे-आगे जा रहे थे । वानर-रमणियों का मन उनके पीछे-पीछे जा रहा था । मार्ग पीछे-पीछे छूट रहा था ।

नौ सहस्र कोटि वानर उसके आगे और पीछे और दोनों ओर जा रहे थे । यति उत्तम वन्मुजन समीप में चल रहे थे । विजली के समान उज्ज्वल आभरण धारण किये हुए सुग्रीव यों जा रहा था । उस समय—

ध्वजाओं के समुदाय सर्वत्र भर गये । वजनेवाले नगाड़ों की ध्वनि सर्वत्र भर गई । शख सर्वत्र बज उठे । चमकनेवाले आभरणों की काति-रूपी विद्युत्-पूज सर्वत्र भर गये । (धरती से) धूल उठने लगी और आकाश में सर्वत्र छा गई ।

स्वर्ण, मुक्ता, मनोहर एव महीन बह्नों, उज्ज्वल रल्लों, स्फटिक-खड़ों तथा रजत-खड़ों से निर्मित शिविकाएँ समीप में आ रही थीं, श्वेत छत्र आकाश में ऊचे उठे मनोहर ढग से आ रहे थे ।

रामचन्द्र के अनुज के उज्ज्वल अरुण चरण धरती पर चलने से, सूर्य-पुत्र भी, अपने चरणों के वीर-बलयों को शब्दित करता हुआ, अपनी पालकी के पीछे-पीछे (पैदल ही) धरती-रूपी रथ पर जा रहा था ।

वीर-कक्षण तथा मनोहर धनुष धारण करनेवाले लद्धमण तथा सुग्रीव, इतनी शीघ्रता से चलकर रामचन्द्र के आवास-पर्वत पर पहुँचे कि वानरों की सेना पीछे रह गई, अगद भी उनके पार्श्व से पीछे रह गया । किन्तु, उनका (रामचन्द्र के प्रति) प्रेम आगे-आगे जा रहा था ।

स्मृहणीय अपार सपत्नि की आसक्ति ल्यागकर प्रभु के चरणों की सेवा करने के लिए भक्ति-सहित आगत सुग्रीव, नित्य धर्म-स्वत्प (राम) के चरणों की नित्य सेवा करते रहनेवाले भरत की समता करता था ।

अपने से कमी पृथक् न होनेवाले (अनुज लद्धमण) के चले जाने से एकाकी

रामचन्द्र इस प्रकार स्थित रहे, जिस प्रकार वे समस्त सुष्ठि के विनष्ट हो जाने पर एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। उन प्रभु के रक्त कमल-जैसे चरणों को सुग्रीव ने अपने शिर से यों स्पर्श किया कि उसके बन्ध पर के रत्नहार तथा मुक्ताहार शब्द करते हुए धरती पर लोटने लगे।

इस प्रकार, सुग्रीव के प्रणाम करने पर, प्रभु ने अपनी दीर्घ, लबी, मनोहर वाहुओं को फैलाकर उसे अपने बन्ध से गाढ़ालिंगन कर लिया। तब उनके बन्ध पर स्थित लक्ष्मी भी पीड़ित हो उठी। प्रभु का उमड़ता हुआ क्रोध शात हो गया और पूर्ववत् प्रेमभाव उमड़ आया। फिर, उससे आसीन होने को कहा।

रामचन्द्र ने (सुग्रीव को) अपने निकट सुखासीन करके पूछा—तुम्हारा शासन ठीक चल रहा है न ? कोई विरोध नहीं है न ? तुम्हारी मेघ-सदृश भुजाओं के द्वारा सुरक्षित सब प्राणी, तुम्हारे श्वेत छत्र की छाया में तापहीन होकर रहत है न ?

अर्थ-गर्भित उन बच्चनों को सुनकर गगनचारी एक चक्रवाले रथ पर चलनेवाले (सूर्य) का पुत्र कह उठा—युगातकालिक धने व्रघकार से आवृत पृथ्वी के लिए जब आप सूर्य बने हुए हैं और मैं आपकी कृपा का पात्र बना हूँ, तो ये कार्य (शासन आदि कार्य) असाध्य कैसे हो सकते हैं ?

सुग्रीव ने फिर कहा—हे महिमाशालिन्। हे प्रभु ! आपकी मधुर कृपा से मै सपत्ति प्राप्त कर सका। किन्तु, आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर मैंने अपनी छुद्र वानर-बुद्धि को प्रकट किया।

दीर्घ दिशाओं में जाकर, अन्वेषण कर (देवी सीता को) लाने की शक्ति रखकर भी मैंने उस प्रकार नहीं किया। किन्तु, उत्तम आभरणधारिणी (सीता) के वियोग में जब आपका निर्मल अतःकरण व्याकुल हो रहा था, तब मैं सुखी जीवन व्यतीत करता रहा।

बीर-ककण तथा दृढ़ धनुष धारण करनेवाले हैं उदारमना प्रभु। जब मेरा स्वभाव और विचार ऐसा है और आपकी मनोदशा ऐसी हैं, तो मैं भविष्य में क्या कर सकता हूँ। क्या पराक्रम दिखा सकता हूँ ? इनके बारे में आपसे क्या कहूँ ? (अर्थात्, अपने कार्य के बारे में मैं आपसे कुछ निवेदन करने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ।)

लक्ष्मी का निरतर आवास बने बन्धवाले प्रभु ने सुग्रीव से कहा—वड़ी कठिनाई से व्यतीत होनेवाला वर्षकाल भी बीत गया। तुम्हारा यह अधिकार-पूर्ण बचन भी ऐसा है कि उससे (देवी सीता का अन्वेषण) कार्य पूरा करने की तुम्हारी दृढ़ता व्यक्त होती है। अतः, वह (बचन) छुद्र कैसे हो सकता है ? तुम (मेरे लिए) भरत-समान हो। ऐसे (दीनतापूर्ण) बचन कैसे कह रहे हो ?

फिर, आर्य ने पुनः प्रश्न किया कि विशद ज्ञानवाला मारुति कहाँ है ? तब सूर्य-पुत्र ने कहा—वह जल-भरे समुद्र के समान विशाल सेना को लेकर आ रहा है।

एक सहस्रकोटि दूत विशाल वानर-सेना को लाने के लिए शीघ्र गति से गये हैं। मैंना को जुटाकर लाने की अवधि भी पूरी होनेवाली है। अतः, आज या कल, वलवान वानर-सेना के साथ वह (हनुमान्) भी आ जायगा।

आपकी नौ सहस्र कोटि की एक विशाल सेना अब मेरे साथ है। दूसरी मैंना भी

अब मेरे साथ है। दूसरी सेना के आने की अवधि भी कल ही है। वह सेना भी आ जाय, तो तब आगे के कर्तव्य के बारे में विचार करना उचित होगा।—यों सुग्रीव नं कहा।

प्रेम-भरे रामचन्द्र ने कहा—हे बीर! तुम्हारे लिए यह (सेना-सगठन) कोई कठिन कार्य नहीं है। तुम्हारी विनम्रता भी अच्छी है। फिर, आगे कहा—अब दिन का अधिक भाग बीत गया है। अब तुम जाओ, अपनी सेना के आने के पश्चात् आओ—यों प्रसु के आदेश देने पर उन्हे प्रणाम करके सुग्रीव विदा हुआ।

अरुण कमलदल-सदृश नेत्रवाले (रामचन्द्र) ने अग्रद के प्रति मधुर बचन कहकर यों आदेश दिया कि हे तात! तुम भी जाकर अपने पिता (सुग्रीव) के साथ विश्राम करो। फिर, अपने भाई तथा अपने ध्यान में स्थित (सीता) देवी के साथ स्वयं भी उस रात को वही विश्राम करते रहे।

अति महान् कीर्तिवाले ने (अपने अनुज के प्रति) आदेश किया कि सुग्रीव के पास तुम्हारे जाने तथा वहाँ घटित अन्य सभी घटनाओं का वृत्तात् सुनाओ। तब सबको सत्य रूप में समझने की शक्ति रखनेवाले पराक्रमी लक्ष्मण ने (सारा वृत्तात्) कह सुनाया।
(१-१३६)



अध्याय ३४

सेना-संदर्शन पटल

उस दिन रात को वे (रामचन्द्र) वही ठहरे। प्राची दिशा के स्वर्णमय उन्नत गिरि पर सूर्य का प्रकाश फैलने के पहले ही किस प्रकार, बलवान् वानर-दूतों के द्वारा लाई गई पर्वत-समान सेना वहाँ आ पहुँची—अब यह हम उसका वर्णन करेंगे।

शतवली नामक वानर-बीर, दस लाख गजों के बल से युक्त एक सहस्र वानर-सेनापतियों को तथा सुचारू रूप से दलों में विभाजित, शरख-समान उज्ज्वल, अति मनोहर दस सहस्र कोटि सख्यावाली वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

सुप्रेण नामक उत्तम वानर-बीर, मेर पर्वत को उखाड़नेवाली, सचेत होकर मदिरा का पान करने से स्वच्छ मनवाली शत सहस्र कोटि वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

अमृत-सदृश बोलीवाली रूपा का पिता, अड़तालीस सहस्र कोटि वानर-सेना को लेकर आ पहुँचा, जो अपार समुद्र को भी क्षणमात्र में कीचड़ बना सकती थी।

इस धरती तथा ऊपर के लोकों में भी अपनी कीर्ति को सुस्थिर बनानेवाले उत्तम (हनुमान्) को जन्म देनेवाला केसरी (नामक वानर-बीर) पचास लाख कोटि, उन्नत पर्वत-सदृश कधोंवाले वानरों की सेना को लेकर ऐसे आ पहुँचा, मानो कोई समुद्र ही आ गया हो।

क्रोध करने पर एक-एक वानर सूर्य को भी प्रतापहीन कर देने तथा अपने बल का

अभिमान करने पर एक-एक वानर अकेले ही सारी धरती को मिटा देने की शक्ति रखनेवाले प्रमन्न चित्तवाले चार सहस्र वानर-बीरों की सेना को सचालित करते हुए, गवाच्च आ पहुँचा।

अति बलवान् धूम्र नामक ऋक्षपति, दो सहस्र कोटि भालुओं की विशाल सेना को माथ लिये आ पहुँचा। ये ऋक्ष उज्ज्वल दतवाले उस आदि वराह के सदृश वलवान् थे, जिसने अपने दाँत पर धरती को उठा लिया था और रक्ष, जो इतने भयकर रूपवाले थे, मानों कैचे तथा विशाल, पर्वतों को अपने एक रोम-कूप में समा सकते थे।

चलते फिरते किसी पर्वत के सदृश स्पवाला, क्रोध के कारण स्मरण करने मात्र से विष एव वज्र-जैसे ही कॅपा देनेवाला, पनस नामक बीर, वारह सहस्र कोटि, कठोर क्रोधवाले वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

नील नामक बीर, वज्रधोष तथा समुद्रधोष को भी परास्त करनेवाली अपार कोलाहल ध्वनि से युक्त, अतिविशाल, वलवान् तथा कठोर यम की समानता करनेवाले पचास करोड़ वानरों की सेना लेकर आया।

दरीमुख नामक वानर-बीर, भारी भुजावाले, दृढ़ बद्धवाले, वलशाली, स्थिर (स्वभाववाले), उग्र, कठोर नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले, तथा पर्वत से भी अधिक विशाल आकारवाले तीस करोड़ वानरों की सेना-रूपी समुद्र को लेकर आ पहुँचा।

प्रख्यात गज नामक वानर बीर, तीस हजार कोटि की सख्या में, ससार-भर में फैले हुए कठोर क्रोध से मिंह-समूह को भी कॅपा देनेवाले (सेना-रूपी) समुद्र के साथ आया, जिसकी सेना को देखकर ऐसा विचार होता था कि इसके लिए यह धरती भी पर्याप्त नहीं है। और दूसरी एक विशाल धरती की आवश्यकता है।

विशाल पर्वत के सदृश कधोवाला जाववान् समुद्र की वीचियो-जैसे लपककर चलनेवाली एक महस्त साठ सो करोड़ सख्यावाली, समस्त प्रदेश पर छाई हुई चलनेवाली बड़ी वानर-सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

असमान बल से युक्त दुर्मुख नामक वानर-बीर, कमल में उत्पन्न ब्रह्मा के यह आदेश देने से कि तुम जाकर राक्षसों को मिटा दो, दस लाख के दलों से विभाजित दो करोड़ वानर-सेना को साथ लेकर आया।

पुष्प-मालाओं से अलकृत, पर्वत-समान विशालकाय द्विविध नामक बीर, कठोर क्रोधवाले अनेक लाखों वानरों को लेकर ऊपर के गगन और पृथ्वी को धूल से आवृत करता हुआ आ पहुँचा।

साकार विजय-जैसे स्पवाला, प्रभूत पराक्रमवाला, मैन्द नामक वानर, मल्युद्ध में श्रेष्ठ गजगोमुख नामक बीर के साथ तथा अति क्रोधवाली शतलक्षसख्य वानर-सेना के साथ आ पहुँचा।

कुमुद नामक बीर, चरखी-जैसे (दंग से) चलनेवाली, पवन से भी अधिक वैगवाली तथा यम से भी अधिक कठोर, इस प्रकार चलनेवाली, जैसे उज्ज्वल वीचियोवाला समुद्र अपने स्थान से उमड़कर जा रहा हो—ऐसे नौ करोड़ वलवान् वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

युगात में समुद्र के उमड़ आने पर भी नाश न होनेवाला, पञ्चमुख नामक वानर, उनचास कोटि वलवान्, सुन्दर तथा दीर्घ भुजावाले वानरों की सेना लेकर ऐसे आ पहुँचा कि धरती की धूल उड़कर गगन में छा गई ।

ऋषभ नामक वीर, नौ सहस्र कोटि सख्यावाले ऐसे वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, जिनकी भुजाएँ युगात में भी विनष्ट न होनेवाले कँचे पर्वतों के समान बलवान् थीं ।

दीर्घपाट, विनत और शरभ नामक वानर-वीर तरगों में पूर्ण नीले महासमुद्र से भी अधिक विशाल स्पष्टवाले, किसी के लिए भी गणना करने में अमाध्य, काले सुखवाले करोड़ों वानरों की सेना को लेकर, एक के पश्चात् एक ऐसे आ पहुँचे कि ब्रह्मांड के अंतर में और उसके बाहर भी धूलि व्याप्त हो गई ।

मनोहर सहस्र किरणोवाले सूर्य को देखकर भी भयभीत न होनेवाला हनुमान्, पच्चीस सहस्र कोटि वानरों को लेकर ऐसे आ पहुँचा कि सारी दिशाओं का अंतर छोटा ज्ञात होने लगा और धरती एक ओर झुक गई ।

देवशिल्पी विश्वकर्मा का मनोहर तथा सत्यनिष्ठ नल नामक पुत्र, शीघ्र एकत्र हुए लक्ष कोटि वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, तो देवता भी अनुमान नहो कर नके कि उसकी सीमा क्या है और यम भी भ्रात तथा व्याकुलचित्त हो उठा ।

कुम, शख इत्यादि वानर-सेनापतियों के साथ आनेवाली वानर सेना की गणना करना इम संसार के लोगों के लिए असंभव है । यों कह सकते हैं कि वह सेना उत्तीर्णी थी, जितनी राघव के तृणीर में वाण थे । इसके अतिरिक्त दूसरे दण से उसका वर्णन करना असंभव है ।

यदि वह वानर-सेना निमज्जित हो, तो सप्त महासमुद्रों का भी जल सूख जायगा और उसके स्थान में श्वेत धूलि फैल जायगी । यदि (वह सेना) एक ओर झुके, तो भूमङ्गल और महामेर भी एक साथ झुक जायेंगे । यदि (वह सेना) उठकर चलने लगे, तो इस पृथ्वी में तिल भर भी स्थान नहीं रह जायगा । यदि क्रोध कर उठे, तो कठोर अग्नि तथा सूर्य भी झुलन जायेंगे ।

धरती पर एकत्र हुई उस वानर-सेना की गणना करने लगें, तो सत्तर सहस्र ब्रह्माओं में भी उसकी गणना नहीं हो सकती । यदि (वह वानर-सेना) खाने लगे, तो सभी अडगोल उनके लिए एक-एक मुट्ठी भरकर खाने के लिए भी पर्याप्त नहीं होंगे । यदि (वह सेना) बाँख उठाकर ढेखे, तो ललाट में अग्निमय नेत्रवाले (शिव) को भी मार कर ढेगी ।

वह वानर-सेना यदि तो दृढ़ने लगे, तो उत्तर के मेर को भी तोड़ देगी । यदि टकराना चाहे, तो विशाल आकाश के ढक्कन से भी टकरा जाय । यदि पकड़ना चाहे, तो महान् प्रभजन को भी पकड़ ले । यदि पीना चाहे, तो सप्त समुद्रों के जल को भी अजलि में भरकर पी जाय ।

वे वानर प्रख्यात दिशाओं के उम पार भी कूट जा सकते थे । अपने प्रसु अनुपम सुग्रीव के सोचे हुए प्रत्येक कार्य को तुरत कर देने की क्षमता रखते थे । ऐसे सङ्गठ

सख्या में वानर-सेनापति उत्तरोत्तर उमड़ आनेवाली विशाल सेना को एकत्र करके अनायाम ही आ पहुँचे ।

वे वानर-सेनापति ऐसी वानर-सेना को लेकर आये, जो सत समुद्रों की विस्तीर्णता से भी अधिक विशाल थी । ‘एक चक्र तथा उत्तम अश्ववाले रथ पर चलनेवाले सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) के चरण जीते रहे ।’—यो जयघोष के साथ उन्होंने प्रणाम करके पुण्य वरसाये ।

उस प्रकार की वानर-सेना के आ पहुँचते ही सूर्यपुत्र, दशरथ-पुत्र के निकट शीघ्र जा पहुँचा और कहा—पाप-कर्मों के लिए यम-सदृश आपकी यह विशाल सेना विचार करने के पहले ही (अर्थात्, अति-शीघ्र ही) आ एकत्र हुई है । आप उसे देखने की कृपा करें ।

प्रभु, प्रसन्न हुए और उनके मन के समान ही उनका मुख भी विकसित हो उठा । वे इस प्रकार आनंदित हुए, जैसे देवी को ही देख रहे हो । वहाँ स्थित एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर वे जा पहुँचे । सूर्य-कुमार फिर, उस सेना के मध्य लौट गया ।

सुग्रीव ने उस अपार वानर-सेना को यह आदेश दिया कि वह पद्रह योजन के विस्तार में, उत्तर से दक्षिण की ओर पक्कियों में खड़ी हो जायें । फिर, अतिक्रोधी वानर-सेनापतियों को साथ लेकर वह (रामचन्द्र के निकट) लौट आया ।

सुग्रीव लौटकर रामचन्द्र के समीप आ पहुँचा और बोला—हे पराक्रमी, विजय-शील शूल धारण करनेवाले । आप उम और दृष्टि डालें—यों कहकर क्रमशः (अपने सेनापतियों का) परिचय कराया और वही खड़ा रहा । इधर एकत्र वानर-सेना तरगायमान क्षीर-सागर के समान बड़े कोलाहल के साथ बढ़ चली ।

अष्ट दिशाओं, धरती के विस्तृत प्रदेश, देवताओं के आवासभूत ऊपर के वत्तुलाकार लोक तथा वीचियों से पूर्ण सत समुद्रों को भी आवृत करके धूलि नीचे से ऊपर तक उठ चली, जिससे यह ब्रह्मांड धूलि से भरे हुए कुम के समान दीखने लगा ।

यदि कहे कि (इस सेना का) समुद्र उपमान हो सकते हैं, तो (यह कथन अनुचित होगा, क्योंकि) उन समुद्रों के परिमाण को पहचाननेवाले लोग भी हैं—(किन्तु उस वानर-सेना के परिमाण को जानना कठिन था ।) अब विद्वान् उम वानर-सेना का अन्य क्या उपमान दे सकते हैं ? वीस दिन पर्यंत, दिन-रात लगातार देखते रहने पर भी राम-लक्ष्मण उस सेना के मध्य को भी नहीं देख पाये । फिर, उसकी अतिम सीमा को कैसे देखा जाय ?

रामचन्द्र—जो ऐसे थे कि विजय प्राप्त करने में उनके उपमान वे स्वय ही थे और ऊपर के लोकों म, सुन्दर समुद्र से आवृत धरती पर तथा नागों के लोक में उनका उपमान अन्य कोई नहीं था, अपनी आँखों से, मन से, शास्त्र-ज्ञान से तथा सहज ज्ञान से भली भाँति विचार करके, महिमापूर्ण अपने अनुज को देखकर कहने लगे—

हे विकसित पुण्यों की माला धारण करनेवाले । हमने अपनी बुद्धि से, इस विशाल वानर-सेना के कुछ भाग को तो किसी प्रकार देख लिया । इसकी सीमा को देखने का भी

कोई उपाय है ? लोग कहते हैं कि उन्होंने इस भूलीक में समुद्र की सीमा को देखा है । किन्तु, इस सेना-समुद्र की सीमा को भली भाँति देखनेवाले कौन है ?

हे सुग्रिव पुण्यमाला को धारण करनेवाले ! ईश्वर के स्वरूप को, दम दिशाओं को, पञ्च महाभूतों को, सूक्ष्म ज्ञान को उच्चारित शब्दों को, विभिन्न धर्मों के परस्पर के विमेद को तथा यहाँ एकत्र इस दोषहीन वानर-सेना को, सपूर्ण रूप से कोन देख सकता है ?

यदि हम इस विशाल सेना को यहाँ रहकर सपूर्ण रूप से देख लेंगे और फिर कार्य करने लगेंगे, तो उनीमें अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे । अतः, ठीक-ठीक विचार करके कर्तव्य कर्म पर मन लगाना ही उचित होगा—रामचन्द्र के यों कहने पर लक्ष्मण ने हाथ लोड़कर कहा—

हे देव ! यहाँ एकत्र इन वानर-वीरों के लिए जिम लोक में जो कार्य करना है, वह अत्यन्त सुलभ है । इनके लिए असुक कार्य कठिन है—वह कैसे कह सकते हैं ? देवी वा अन्वेषण करना (इनके लिए) अत्यन्त सुलभ है । इस सेना से पाप परास्त हो गया और धर्म जीत गया ।

तरणों से भरे जल में उत्सन्न कमल से उद्भूत ब्रह्मदेव ने इस विशाल लोक में जिन महान् प्राणियों की सृष्टि की है, वह इसलिए ही कि वे सजीव पर्वत जैने इन वानरों की सेना को गिनने के लिए सख्यासूचक चिह्न बन सकें ।

हे महान् शास्त्रों में निपुण ! आठों दिशाओं में अन्वेषणार्थ जानेवाले इन वानरों को सत्तर न भेजकर यहाँ रोक रखना ठीक नहीं—यों लक्ष्मण ने कहा । तब महिमामय (प्रसु) ने अलङ्घत रथवाले सूर्य-पुत्र से कहा । (१-४०)



अध्याय ३३

अन्वेषणार्थ प्रेषण पटल

(श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव को देखकर कहा—) यह सेना श्रेणियों में विभाजित है । (इनके सैनिक) अहकार और परस्पर के वैगमाव से रहित हैं । अतः, विशाल रूप में एकत्र यह सेना किसी से भी अभेद्य है, क्या इसका परिमाण भी कुछ है ?

(सुग्रीव ने उत्तर दिया—) इद्विसानों के द्वारा विचार कर निश्चय किया हुआ एक सख्यावाचक शब्द है—‘वेल्लम’ (१८,३५,००८ करोड़ का एक वेल्लम होती है) । वैसे सत्तर वेल्लम के परिमाण में यह सेना है । इसको छोड़कर, यह कहना असभव है कि इस सेना के परिमाण को सूचित करनेवाला अन्य कोई शब्द है ।

इन सेना के वीरों में मङ्गठ वरोड़ विजयी सेनापति हैं । इन सेनापतियों में सब में प्रसुत महामेनापति कठोर यम को भी भत्त्म करने की शक्ति रखनेवाला नील (नामक) वानर है । यों (सुग्रीव ने) कहा ।

यो कहनेवाले उप्पकिरण के पुत्र को देखकर विजयी धनुषरी ने कहा—यहाँ खड़े रहकर बातें करते रहने से क्या प्रयोजन है ? अब चलकर आगे के कार्यों के सवध में विचार करें ।

तब उस (सुग्रीव) ने महानुभाव हनुमान् को देखकर इस प्रकार आज्ञा दी—हे तात ! तुम अपने पिता (पवन) के समान ही त्रिमुखन में सच्चरण करने की शक्ति रखते हो, तो भी उस शक्ति को न पहचान कर व्यर्थ ही विलब कर रहे हो । क्या तुम पहले दृसरे बड़े वेगवान् वानरों का कार्य देखना चाहते हो ?

तुम अब जाओ । उत्तम आभरणधारिणी देवी कहाँ है, इसका पता लगाओ । पहले तुम नागों के लोक (पाताल) में जाकर खोजो । धरती पर खोजो । तुम्हारा वेग तो ऐसा है कि तुम भोगभूमि स्वर्ग में भी जा सकते हो । तुम्हारा वह वेग भी तो अब प्रकट होना चाहिए ।

मेरी बुद्धि कहती है कि रावण का विशाल (लका) नगर दक्षिण दिशा में है । हे मारुति ! अब इस वलपूर्ण दिशा को जीतकर यश पाने का अधिकारी तुम्हें छोड़कर और कौन है ?

हे स्वच्छ शानवाले ! मेरा ख्याल है कि उदारशील (प्रभु) की देवी का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर ले जाते हुए हमने रावण को देखा था । तुम इसपर विचार करो ।

तारा पुत्र (अगद), जाववान् आदि अनेक बीर बड़े गौरव के साथ तुम्हारे सग जावें । दो 'वेल्लम' सख्यावाली वानर-सेना भी अपने साथ ले जाओ ।

पश्चिम दिशा में ऋषभ, कुवेर की उत्तर दिशा में शतबली तथा इन्द्र की प्राची दिशा में विनत, बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर जायें—यो सुग्रीव ने कहा ।

फिर, सुग्रीव ने उन ऋषभ आदि वानरों से कहा—हे विजयी वीरो, विजय करने-वाली दो 'वेल्लम' वानर-सेना के साथ घूम-घूमकर देवी का अन्देषण करना और एक मास व्यतीत होने के पूर्व ही यहाँ लौट आना ।

फिर, दक्षिण दिशा में जानेवाले वानरों को देखकर सुग्रीव ने कहा—तुम यहाँ से चलकर उस विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ, जो अपने अतिसुन्दर सहस्रों उज्ज्वल शिखरों के कारण विष्णु के विराट् रूप-सा दिखाई पड़ता है और आगे बढ़कर प्रणाम करने योग्य है ।

उस (विन्ध्य) पर्वत पर खोजने के पश्चात् नर्मदा नदी पर जाना, जिसमें देवता भी स्नान करते रहते हैं । जहाँ भ्रमर (पुष्पों के) मधु का पान करके पच्चम स्वर में गाने रहते हैं तथा जहाँ के विविध गत्तों (के प्रकाश) से अधकार दूर होता रहता है ।

फिर, हेमकूट नामक पर्वत पर जाना, जहाँ धूम्रवर्ण के अशुण पक्षी (जो सगीत सुनकर तल्लीन हो जाते हैं) मनोहर मेखलाधारिणी देव-रमणियों के, आनन्द से गाये जानेवाले सगीत-रूपी मधु का पान करते हुए निद्रा लेते हैं ।

शीघ्र ही उस (हेमकूट) पर्वत से चलकर वहाँ के अपने साथी वानरों के साथ आगे बढ़ जाना । फिर, काले रगवाली पेन्ना नदी के तटों में उत्तम गुणवाली देवी को ढूँढ़ना और वहाँ से सत्तर आगे बढ़ जाना ।

दुगन्धित दीर्घ अगस्त्य कथा और लंचे चंद्र हुए चबन-वृक्ष, जिन देश की बाह
वते हुए हैं उसे धीरे-धीरे पार आना और अनेक अन्य देशों को भी पीछे छोड़कर जल से
नमृद्व दृढ़जाप्य में जाना।

दृढ़जाप्य में सुडकोपवन नाम ने प्रभिद्ध एक चन है, जहाँ प्राचीन अगस्त्य मुनि
निवास करते हैं। तपस्या-निगत मुनियों से युक्त होने के कारण वह उपवन, दर्शन-मात्र से मन
की जीड़ा को दूर करनेवाला है। तुमलोग वहाँ भी देखना।

पुष्प-भग्नि वह उपवन, उत्तम धार्मिक व्यक्तियों की सर्पति के समान शोभाय-
नान है जिसका उपभोग नारे संसार के लाग करते हैं। वहाँ के वृक्ष उत्तम शील-सुपन्न
मुनियों के अवर्गों के समान अकाल में भी फले रहते हैं। वह दृश्य भी हम लोग देखना।

वहाँ के निवासी सदा अपलक रहते हैं। कभी गाढ़ी निद्रा में नहीं मीते। वह
न्यान सूर्य के लिए भी दुर्गम है। उम्मी प्रकार की भोग्य वस्तुएँ वहाँ प्राप्त होती हैं।

उस स्थान को पार कर, उसमें आगे पाहुर्गिरि नामक पर्वत पर जाना, जो गगन
में स्थित चन्द्र को छूता है और जिसे देखकर अस्तकिरण सूर्य भी वह विचार करता है कि
इसमें किंचित् विश्राम करके ही आगे बढ़ना चाहिए।

उस पर्वत के नमीप एक नदी बहती है जिसकी वनादि धारा मांतियों को बहाती
हुई, स्वप्न-धूलि को बटोरती हुई, रत्नों को लुढ़ाती हुई ज्वलों के आँगनों से मथानियों
नों नमेटती हुई, छक्कों को ढहाती हुई पर्वत-शिलाओं नों दक्षेलती हुई मृगों को भी
खोंचती हुई बहती है। वह धारा किसी भी व्यक्ति नो, पुत् नामक नगक में जाकर व्लेश
भोगने ने बचाती है। उस पावन धारा का नामक गोदावरी है।

उस नदी को पारकर उसके आगे सुवर्ण नामक नदी पर जाना, जो धर्म-मार्ग के
समान है, निर्मल कशण के अमिलधणीय मार्ग के समान है, जिसके दोनों कूलों पर
शीतल तथा विक्षित पुष्पों ने प्र्यं धने वृक्ष यों छाये रहते हैं कि सूर्य की किरणें भी उसके
भीतर प्रवेश नहीं पाती। जिसमें रक्त ऐसे चमकते हैं कि अवकार का नाम भी मिट जाता है
और जहाँ देवदाओं की प्रार्थना से छह मुखवाला विलक्षण देव (कार्तिकेय) एकांत में
रहदा था।

सुवर्ण नदी को पारकर उस सूर्यकात पर्वत को जाकर देखना, जहाँ की (कृषक)
वालाएँ जब फंडे में रखकर पत्थर के टुकड़े फेंकती हैं, तब वे पत्थर धूप-जैमी काति को
छिखन्ते हैं। वहाँ ने आगे चलकर चढ़कात पर्वत नो भी देखना। उन पर्वतों को
लाँचकर अनेक विशाल देशों को पार करना। फिर, कोकण देश में जाना, जहाँ आदि-
शेष, पंक्षिराज (गरुड) ने डरा हुआ, छिपकर अपना जीवन विताता है। फिर, कुलिन्द
देश ने जाना।

जो इस बात पर क़सग़ड़ते रहते हैं कि शिव वड़े हैं वा विश्व को नापनेवाले हरि
वड़े हैं, ऐसे जान-हीन लांगों के लिए जिन प्रकार सुगति दुर्गम होती है, उम्मी प्रकार दुर्गम
नहेनेवाला अस्त्वति नामक एक पर्वत वहाँ है, जो आकाशगग्न के अति निकट रहता है।
जिसके गगनोन्ति शूगों पर दोनों ज्योतिर्ष्पष्ट (सूर्य-चन्द्र) विश्राम करते हैं, जिसमें ऐसी

शक्ति है कि उसको नमस्कार करनेवालों को वह सब अभीष्ट प्रदान करता है। उसको प्रणाम करके आगे बढ़ना।

भयकर तथा जलते हुए रेगिस्तानों, नदियों, विशाल जल-स्रोतों, ऊँचे पर्वतों, जो अगरु, चंदन आदि वृक्षों एव मेघों से आवृत रहते हैं, तथा समृद्धि-युक्त देशों को पीछे छोड़कर आगे के मार्ग पर बढ़ जाना। फिर, मरकत पर्वत के पास जाना, जहाँ गरुड़ ने विषमुख नागों को अमृत देकर अपनी माता विनता को (दासता से) मुक्त किया था। उस (पर्वत) को नमस्कार करके उसके पाश्वमार्ग से आगे जाना।

फिर, उस ऊँचे वेंकटाचल पर जाना, जो उत्तरी भाषा तथा दक्षिणी भाषा (तमिल) की सीमा-रेखा बना है, जिसपर स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं, जो वेटों तथा शास्त्रों में प्रतिपादित सब पदार्थों की सीमा है, जो स्वयं सब धर्मों की पराकाष्ठा है, जिसका उपमान बनने योग्य कोई वस्तु नहीं है, जो ऐसा शोभायमान है, जैसा माकार यश हो और जिसके सानुओं में मधु के छत्ते भरे रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर ऐसे महात्मा लोग रहते हैं, जो दोनों प्रकार के (पाप और पुण्य) फलों से सबद्ध कोई कर्म नहीं करते, जो देवताओं से प्रशसित सपन्न जीवन तथा दूसरों पर निर्भर रहनेवाला दरिद्र जीवन—दोनों को समान मानते हैं तथा जो ऐसे अपार आत्मज्ञान से सपन्न हैं, जिससे इस जन्म के कारणभूत कर्म-बधन मिट जाते हैं। वे ऐसे महान् हैं कि हमारे द्वारा यहाँ से भी नमस्कार करने योग्य हैं।

वहाँ ऐसी नदियाँ हैं, जिनमें कपटहीन उत्तम ब्राह्मण स्नान करते हैं। ऐसे आश्रम हैं, जिनमें वेद तथा प्राचीन शास्त्रों के जाता सुनि निवास करते हैं। ऐसे रत्नमय पर्वतशृंग हैं, जिनके मध्य मेघ विश्राम करते हैं। ऐसे स्थान हैं, जहाँ देव-रमणियों के सगीत के उपयुक्त किन्नरवादी की तत्रियों से उत्पन्न नाद से गजों तथा व्याघ्रों के बच्चे सो जाते हैं।

ऊँचे शिखरों से युक्त उस वेंकटाचल के निकट जाओ, तो हम लोगों के सभी पाप मिट जायेंगे और मोक्ष प्राप्त कर लोगे। अतएव (उस पर्वत के निकट न जाकर) वहाँ से दूर हटकर जाना। फिर, वहाँ से आगे स्थित जल से समृद्ध 'तोड़े' देश में जाना। वहाँ खोजने के पश्चात् फिर, गमीर गतिवाली, 'पोन्नि' नामक महिमामय शीतल जल से पूर्ण दिव्य कावेरी नदी के किनारों पर जाना।

तुम उस चौल देश में जाना, जहाँ (कावेरी नदी का) जल इतना स्वच्छ है, जितना स्वर्ग को प्राप्त किये हुए महात्माओं का मन होता है। जहाँ प्रारब्धकर्म से मुक्त पुश्प गुप्त रूप से निवास करते हैं। उसे पार करके हम लोग भत्तर आगे बढ़ जाना और निद्राशील व्यक्ति किम परिणाम को पहुँचते हैं; उसका स्मरण करके वहाँ से हट जाना। फिर, रत्नमय पर्वतों से युक्त मज्जय देश में जाकर ढूँसा। उसके पश्चात् विशाल तमिल देश—पाड्यदेश में जाना।

दक्षिण में स्थित, तमिल देश में विशाल पोदिय नामक पर्वत है, जहाँ मुनिश्रेष्ठ (अगस्त्य) का तमिल-सघ है। वहाँ जाकर उस मुनि के निरतर आवासभूत उस पर्वत को नमस्कार करके आगे बढ़ना। फिर, सुन्दर जलधारा से युक्त ताम्रपर्णी नदी को पार करके

गजों के आवाम बने ऊँचे जानुओं से शोभित महेंद्र पर्वत को एवं दक्षिण के समुद्र को देखोंगे ।

उन स्थान को पार कर आगे जाना और वहाँ सर्वत्र खोजकर, एक मास की अवधि में तुम यहाँ लौट आना । अब हुम लोग शीघ्र विटा हो—(सुग्रीव के) इस प्रकार आज्ञा देने पर, त्रिविक्रम (के अवतारभूत राम) ने मारुति को कृष्ण-भरी दृष्टि से देखकर कहा—हे नीनिनिषुण ! मीता के लक्षण सुनो, जिनसे हमें उसका अन्वेषण करने में सुविधा हो । फिर, आगे कहने लगे—

हे तात ! (मीता की) पादागुलियाँ ऐसी हैं, मानों क्षीरसागर में उत्पन्न प्रवाल के खड़ों से महावर लगाकर उनके ऊपरी भाग में अनेक चट्ठों को रख दिया गया हो । प्रसिद्ध कमल तथा अन्य पदार्थ भी उन पादों के उपमान नहीं बन सकते । इतना कहने के अतिरिक्त उन पादशुगल का उपमान क्या कहा जाय ?

हे तात ! जिस कच्छुप को, वृद्धिमानों ने कक्षण-पक्षियों से भृषित रमणियों के चरणों के ऊपरी भाग का उपमान बताया है, उससे रात्रिकाल की वीणा से भी अधिक मधुर वोलीबाली भीता के चरणों भी उष्मा देना उस (चरण-युगल) का उपमान करना है । इसे निश्चित जानो ।

हे गत्यनिरत ! चित्रकारों के लिए जिनके चित्र खींचना दुस्माध्य है, वैसे केश-पाशों से विशिष्ट उस देवी की जानुएँ ऐसी हैं कि वहुत सोच-विचार करने पर भी कोई उनका उचित उपमान नहीं पा सकता । विद्वान् लोग, गर्भिणी 'वराल' (नामक मछली), तृणीर, पुष्ट धानका गाभा,^१ इत्यादि को जानुओं के उपमान कहते हैं । ऐसा तो कोई भी कह मिलता है । उसे पुनः मैं कहूँ, तो इसमें क्या रस है ?

केशपाश से सुशोभित सुन्दरियों की जाँधों के अति उत्तम उपमान बननेवाले जो कटली-वृक्ष हैं, वे भी जब उन (मीता की) जाँधों से परास्त हो गये हैं, तब उन जाँधों की अन्य उपमा क्या दी जाय ? वीणा की ध्वनि को, अमृत-समान मधु को और जल से पूर्ण खेतों में उत्पन्न ईख के रस को भी परास्त करनेवाली बोली में युक्त उस (मीता) की जाँध इतनी सुन्दर है ।

हे उत्तम ! कन्तुक-वद्ध, चक्रवाक एवं कलश-समान स्तनों से युक्त, 'वजि' लता-समान (पतञ्जी) कटिबाली उस (मीता) के, मेखला-भूषित, चक्राकार बन्नावृत जघन-रूपी समुद्र का क्या उपमान हो सकता है—यह मैं तुम-जैसे को क्या कहूँ, जिसने मसुद्रावृत धरती का शिर पर धारण करनेवाले वादिशेष के फन ओं देखा है तथा हिम को दबाकर ऊपर उठनेवाले एक चक्रवाले (सर्व के) गथ को भी देखा है ।

वह ऐसी है कि उसके बाकार को देखकर ही (ब्रह्म) अन्य किसी सुन्दरी का निमोन कर नक्ना है । उसकी सद्म कटि के आकार का वर्णन यदि तुम सुनना चाहो, तो उसके लिए उपमान दूँढ़ना व्यर्थ है । उस कटि को थाँखों से नहीं देखा जा सकता है, केवल मैं हाथ के स्पर्श से ही उसे जान सकता हूँ । अन्य किसी उपाय में उसका वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं है ।

^१, धन का डठन, जिसमें भी अमीं बाली नहीं निकल आई हो, जानु का उपमान होता है । —अनु०

साधारण दृष्टि से यह कथन कि (सुन्दरियों के) उदर, बटपत्र, चित्र से अकित सूक्ष्म चित्र-फलक, दुग्ध-सदृश मृदुल रजत-फलक, वर्तुलाकार दर्पण—ऐसे ही अन्य पदार्थों के समान होते हैं, अत्युक्तिपूर्ण कथनमात्र होता है। किंतु, सीता का उदर इतना सुन्दर है कि उन वस्तुओं के साथ उसकी उपमा देना भी उचित नहीं है।

हे ममुद्र से भी अधिक विस्तृत ज्ञानवाले ! यदि (सीता देवी की) नाभि का उपमान निर्दोष ‘कुदालि’ (नामक पुष्प) तथा ‘नदि’ (नामक पुष्प) को कहे, तो वे भी कुद्र ही होगे। हाँ, मैं सोचता हूँ कि नदी की भाँत उसका उपमान हो सकती है। गगा (की भाँत) को देखकर तुम यह बात समझ सकते हो।

लता-सदृश उस (देवी) के उदर पर जो रोमाबली है, वह मेरे प्राणों की वारा ही है। यदि उसकी कोई उपमा देनी हो, तो उस अलान से दी जा सकती है, जिसपर दोषहीन कटि के तुल्य कोई छोटी लता स्थिर होकर लिपटी हो।

वह सीता, यह सोचकर कि कमल-दल पर रहने से उसके कोमल शरीर को कष्ट होता है, कमल का आसन छोड़कर धरती पर अवतीर्ण हुई है। उसके उदग पर स्वर्णवर्ण की त्रिवली ऐसी है, मानो मन्यथ ने तीनों भुवनों की सुन्दरियों की (सीता से) पराजय को सूचित करने के लिए ही तीन रेखाएँ अकित कर दी हो।

उमके स्तनों के उपमान रल-सपुट (रल की डिविया) कहुँ, स्वर्ण-कलश कहुँ, रक्तवर्ण कोमल नारिकेल कहुँ, प्रवाल को मान पर चढ़ाकर बनाई हुई चौमर की गोटी कहुँ, दिन में प्रकट हुए चक्रवाक कहुँ ? क्या कहुँ ? उसके स्तनों का कोई भी उचित उपमान मैंने नहीं देखा है।

गन्ने को देखने पर या सुडौल बाँस को देखने पर, मेरी आँखों से अशु की वर्पा होने लगती है। इस प्रकार पीड़ा का अनुभव करने के अतिरिक्त, भ्रमरों से गुजरित पुष्प-माला को धारण करनेवाली उस (सीता) की भुजाओं के उचित उपमान खोजने या कहने की दृढ़ता मुझमें नहीं है। अब और क्या कहुँ ?

(सीता के) करों के सदृश कोई पदार्थ त्रिसुवन में कही है—ऐसा कहना भी अनुचित है। यदि कुछ उपमान कहने भी लगें, तो क्या ‘कादल’ पुष्प को उसका उपमान कहे ? वह तो (सीता के करों के सामने) अत्यन्त कठिन है। यदि मकरवीणा को उसका उपमान कहे, तो कुछ गुणों में समान होने-पर भी अन्य गुणों में वह उसके अनुरूप नहीं है। जो स्वयं अत्यन्त सुन्दर है, उससे भी अधिक सुन्दर क्या वस्तु हो सकती है ?

मनोहर अशोक-वृक्ष के पल्लव तो दूर रहे। कल्पवृक्ष के नवपल्लव या कमल-लता के कोमल दलवाले पुष्प भी उमकी हथेली के उपमान नहीं हो सकते। वे, सूत्र-सदृश सूक्ष्म कटिवाली उस सीता के नूपुरी से मुखर, चरणों के भी उपमान जब नहीं बनते, तब उसकी हथेली के उपमान कैसे हो सकते हैं ?

धबल दत, अरुण अधर और चमकते आभरणों से युक्त, यौवनपूर्ण, मनोहर पुष्प-शाखा-सदृश उस सीता के नोकदार हस्त नखों के उपमान कहना असभव है। तोते, पलाश-पुष्पों पर इसलिए कुद्र गहने हैं कि उन्हीं के कारण (जो सीता के नखों के उपमान

बनते हैं) उन (तोतो) के चञ्चु सीता के नखो के उपमान नहीं रह गये हैं, और उन (पलाश-पुष्पो) को फाड़ते रहते हैं। अब उन नखो के और क्या उपमान कहे ?

है उत्तम । (नीता के) अवृण कर एव अवृण चरण देखकर जिस प्रकार तुम्हें लाल कमल स्मरण आयेंगे, उसी प्रकार रक्त कुमुद-सदृश मदभरे दिव्य नयनोवाली उस (सीता) का कठ देखकर, यदि तुम्हें बढ़नेवाला क्रमुक-वृक्ष तथा जल में उत्पन्न होनेवाला शख स्मरण आयें, तो तुम उन्हीं को उपमान मान लेना ।

नील कुचलय के समान, काजल-लगे नयनोवाली सीता का मनोहर मुँह ऐसा है कि 'किडै' (नामक लाल सेवार), विवफल, नवीन रक्तकुमुद, इन्द्रगोप, पलाश-पुष्प इत्यादि उपमान के योग्य पदार्थ भी, उस मुँह के सम्मुख इवेत-से पड़ जाते हैं । ऐसे रक्त तथा वस्त्र-भरे उन मुख का उपमान वही मुख है ।

रक्तवर्ण का अमृत नहीं होता । उस रग का मधु भी नहीं होता । यदि वैसा अमृत और मधु कही होने भी हों, तथापि उनका पान करने पर ही वे मधुर लगते होंगे । स्मरणमात्र में वे अनददायक नहीं होने । अत.. उज्ज्वल ललाटवाली सीता के प्रवाल-सम वधर के उपमान यदि हम अपने मन की पसुद के कोई पदार्थ बतायें, तो क्या वे उचित उपमान हो सकते हैं ? (अर्थात्, नहीं हो सकते) ।

है बनुपम महिमावान् ! (सीता के) दत्त कुद मार-पखो के मूल, मुक्ता इत्यादि की समता करते हैं—यह कथन ऐसा ही है, जैसा यह कहना है कि उसकी वाणी अमृत, दुर्घट तथा मधु की समता करती है । वास्तव में, उन दाँतों के उपयुक्त उपमान कुछ नहीं हैं । यदि (दिव) अमृत का कोई उपमान हो सकता है, तो उन (दाँतों) का भी उपमान हो सकता है ।

है व्यापार ज्ञानयुक्त । गिरगिट (की नाक), तिल-पुष्प, रम्ब-सहित कुभिल (नामक पुष्प) सीता की नासिका के उपमान हैं—यदि ऐसा कहे भी, तो वे सब उपमान, निखारे गये स्वर्ण तथा उज्ज्वल गल की समता नहीं करते (सीता की नासिका तो स्वर्ण एव रल के समान भी है) । वह (नासिका) निपुण चित्रकार के लिए भी अक्रित करने को दुस्साध्य है । उम इसका विचार कर स्वयं समझ लो ।

'वल्लै' लता के पत्र और कौची—ये कानों के उपमान होते हैं ।—यह वचो का वधन-मात्र है । यदि वडे लोग भी इसी को ढुहरायेंगे, तो वह उनका पागलपन होगा । हम यह समझो कि शुक्रतारा के समान उज्ज्वल ताटकों ने जो तपस्या की थी, वह तपस्या (सीता के कानों और प्राप्त कर) सफल हुई । जो ससार की सब वस्तुओं के स्वयं उपमान हैं, उनके उपमान वहाँ मिल सकते हैं ।

(सीता के) करवाल-सदृश दीर्घ नयनों के, जो देवाधिदेव (विष्णु) के समान काले हैं तथा इवेत वर्ण से भी युक्त हैं, अति-विशाल समुद्र भी उपमान नहीं हो सकते । अहो ! यदि कोई दूसरा उपमान खोजना भी चाहे, तो वे नयन किनीके मन में ही नहीं समाते ।

यदि करवाल-सदृश नेत्रवाली सीता की भौहों का वर्णन करने लगें, तो क्या उपमान दें ? यदि ऐसा उपमान दे जो पूर्ण रूप से उपसेय की समता न करें, तो वह अघम होगा । यदि किनी पदार्थ को नुन्दर मानकर उसे उपमान कहें, तो भी उससे (सीता की भौहों

की) सहधर्मिता सिद्ध नहीं हो सकेगी । दोनों छोरों पर भुके हुए दो मन्मथ चाप नहीं होते । अतः उमके भोंहों के उपमान भी कही नहीं हैं ।

शुक्लपक्ष की प्रथमा का चन्द्रमा, यदि उस सीता के ललाट की शोभा का अनेक दिनों तक ध्यान करता रहे और पूर्णिमा के दिन भी पूर्ण न होकर अर्ढ ही वना रहे, तो उस सीता के ललाट की कुछ-कुछ समता कर सकेगा, जिसके चरणों की सुन्दरता से दिन में प्रफुल्ल कमल-प्रभा भी लजा जाती है ।

हमारे अरण्य-बास में आने के उपरान्त (सीता के केशों को) सजाने के लिए कोई (दासी) नहीं रही । ऐसा होने पर भी उन केशों की सुन्दरता घटी नहीं । कंधी करने से नहीं, किन्तु स्वभाव से ही उसके केश धुँधराले हैं । नीलरत्न के समान वे अलक नित-नवीन रहते हैं । अतः, उनका कोई उपमान नहीं है ।

ब्रह्मदेव ने, काले मेघ के टुकडे को, लाल कुमुद को भुके हुए धनुषों को, 'बल्लै' (नामक लता) के पत्तों को, उत्तम मीनों को, तथा उज्ज्वल मुक्ताओं को चन्द्रमा में जोड़कर उसको सीता का वदन वना दिया । जब उस पुड़रीक (-सदृश वदन) के दर्शन तुम करोगे, तभी इस कथन को सच्चा मानोगे ।

अनेक सूद्धम केशों से भारी वना हुआ अति सुगन्धित उसका केशभार ऐसा है, मानो काले मेघ को काटकर उसपर मधु, अगर-धूम आदि की सुगन्ध चढ़ा दी गई हो, फिर उसे घने अधकार के द्रव में डुबो दिया गया हो और उसे ही घने तथा दीर्घ केश-पाश का नाम दिया गया हो ।

दिव्य कमल-पुष्प में भी आवरण के दल लगे रहते हैं । सौदर्य की सीमा वना हुआ चन्द्र भी कलक से दुक्त है । इनके अतिरिक्त अन्य सभी उत्तम पदार्थों में कोई ऐसा नहीं है, जिसमें कुछ-न-कुछ दोष न हो । हसिनी-समान मनोहर गतिवाली सीता के अग्र में सब गुण-ही-गुण हैं । कही कुछ दोष नहीं है ।

हे तात । विचार कर देखने पर (विदित होता है कि) उत्तम नारी के सभी लक्षण मनोहर तथा सुरभित कमल में निवास करनेवाली लद्धी में भी नहीं होते । किन्तु, कोकिल-सदृश मधुर बोली, मनोज मीन-सदृश नयनों, अरुण अधर तथा अप्सराओं को भी लड्जित कर देनेवाले स्तनों से दुक्त उस (सीता) में सभी लक्षण विद्यमान हैं ।

कमलासन (ब्रह्मा) ने वाँसुरी, वीणा, पिक, शुक, तोतली बोली आदि की सृष्टि करके अच्छी कुशलता प्राप्त करने के पश्चात् ही हार युक्त स्तनोवाली (सीता) की मधुर-वाणी की सृष्टि की है । उस निर्दोष वाणी का कोई उपमान उस ब्रह्मदेव ने नहीं उत्पन्न किया है । क्या भविष्य में कभी करेगा भी ?

स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनों भुवन अतिविशाल रूप में फैले हैं । इनमें कही मीन-सदृश नयनवाली उस (सीता) की मधुरवाणी का उपमान कोई वस्तु नहीं है । यदि कह सकते हैं, तो एक मतु है और एक क्षीर है । तो भी वे दोनों श्रवण को मधुर नहीं लगते । एक दूसरा उपमान अमृत भी है, पर वह भी देवल रसना को स्वाद देनेवाला ही है, (श्रवण-सुखद नहीं है) ।

है उत्तम गुणवाले । कमल-पुष्प में निवास करनेवाली मधुर बोलीवाली राजहंसिनी तथा मनोहर वालकरिणी ऐसी सुन्दर गतिवाली होती हैं कि उन्हें देखकर देवता भी विस्मय करते हैं । किन्तु, मुझे (यह) निश्चय नहीं होता है (कि वे सीता के उपमान हो सकती हैं या नहीं) । हाँ, कविता करने में निषुण, प्राचीन कवि द्वारा विरचित सरस शब्द-गुफन से युक्त कविता की गति ही उस (सीता) की गति की समता कर सकती है ।

(सीता की देह-काति का क्या उपमान दें ?) धाम्रबृक्ष का कोमल पत्तलब भी (सीता के भम्मुख) गाढ़ा दीख पड़ता है । नीने का रग मद पड़ जाता है । रत्नों की काति-पूर्ण समता नहीं करती । विद्युत् की चमक (सीता से) लज्जित होकर छिप जाती है और बाहर नहीं निकलती । कमल का रग पीछे रह जाता है । तो, अब अन्य कौन-सा रंग उपमान के योग्य है ? सीता की देह की काति का उपमान उनकी देह ही है ।

है उत्तम गुणवाले । उस (सीता) की समता करनेवाली स्त्री कोई भी नहीं है—केवल इस विचार को ही मन में दृढ़ रख लो और अपने चित्त से सीता को, उसके स्थान में पहचान लो, फिर उसके समीप जाकर ये अभिज्ञान-वचन कहो—यो कहकर (रामचन्द्र) आगे कहने लगे—

मैं पूर्व में (विश्वामित्र) मुनि के सग जल-संपन्न प्राचीन मिथिला नगरी में दीर्घकेशधारी जनक महाराज के यज्ञ को देखने के लिए गया था । तब उस परिखा के समीप, जिसमें हस खेल रहे थे, कन्या-निवास के मौध में स्थित सीता को मैने देखा । यह बात तुम उम्मे कहना ।

अपार समुद्र से भी अधिक (विशाल तथा गमीर) पातिव्रत्य धर्म से दुक्त सीता ने प्रतिज्ञा की थी कि पर्वत-समान धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति, यदि वह मुनि के सग आया हुआ राजकुमार (राम) न होगा, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी । यह बात उसे सुनाना ।

उस दिन, जनक महाराज की सभा में मैने उस सीता को देखा । वह अपने मनोहर स्तन-रूपी गिरि-युगल का भार बहन करती हुई इस प्रकार आई, जिस प्रकार कोई मत्तगज, मुखपट्ट से आवृत परस्पर तुल्य दत्तद्वय को लिये आ रहा हो । वह (स्तन-भार के कारण) गगन की विद्युल्लता के समान लचकती हुई आई थी ।

‘तुम उस (सीता) से मेरे ये बचन कहना, जिन्हें मैने उससे पहले कहा था—‘हे मुख्य ! तुम मेरे सग ऐसे भयकर कानन में जाना चाहती हो, जिसे पहले तुमने देखा भी नहीं है । अबतक तुम मेरे लिए मुझे सुख देनेवाली रही । मेरे अपूर्व प्राणों के अनुकूल बनी रही । अब क्या तुम दृख देनेवाली बनना चाहती हो ?’

तब सीता ने कहा—‘हे अपने स्वत्न-राज्य-को भी त्यागकर बन में जानेवाले प्रभु ! क्या अब मेरे अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ आपके लिए आनन्ददायक हो गये ?’ और वह अपने मीन-मद्वश तड़पने हुए विशाल कमल-दल की समता करनेवाले नयनों से अश्रु वहाती हुई, शरीर से निकलने के लिए तड़पने हुए अपने प्राणों के समान ही अत्यत व्याकुल हो गई और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी ।—यह भी उससे कहना ।

जब हम समृद्ध (अयोध्या) महानगर को छोड़कर चले थे, तब चन्द्र को छूनेवाली

पत्थरों के बने कँचे प्राचीर के सुन्दर द्वार को पार करने के पूर्व ही वह (सीता) कह उठी—सीमाहीन धोर अरण्य कहाँ है ?—यह भी उससे कहना ।

(रामचन्द्र ने हनुमान् से) इस प्रकार के बच्चन कहे । फिर, यह कहकर कि सुख से जाओ, उत्तम रत्न से जड़ी मुँदरी भी दी और कहा—‘हे बुद्धिमान् । तुम्हारे सब कार्य सफल हों’—ऐसा आशीष देकर रामचन्द्र ने हनुमान् को विदा किया । हनुमान् वीर-बलयधारी (रामचन्द्र) की कृपा को आगे करके चल पड़ा ।

अगद प्रभृति वीर वानर, जिनका क्रोध शत्रुओं को विनष्ट कर सकता था, सूर्यपुत्र के प्रति नतशिर होकर फिर उत्तम धनुर्धारी (राम-लक्ष्मण) को भी नमस्कार करके, विशाल समुद्र-सम सेना के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले । (१-७४)



अध्याय ३३

बिल-निष्क्रमण पटल

अगद प्रभृति वे वीर, दक्षिण दिशा की ओर चले । उनके चले जाने के पश्चात् सूर्यपुत्र दक्षिण के अतिरिक्त सब दिशाओं में अन्य वानरों को भेज दिया । वे वानर आदेश दिये हुए कार्य (सीतान्वेषण) को संपन्न करने के लिए सारे सासार को भी जीतनेवाली विशाल सेना को लेकर, एक मास की अवधि के भीतर लौट आने का निश्चय करके, प्रवल गति से चल पड़े ।

पर्वत-सदृश कधोवाले वानर, विद्युलता-समान कटिवाली (सीता) का अन्वेषण करते हुए किस प्रकार पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में गये—यह न कहकर, हम समृद्ध तमिल (भाषा और साहित्य) से सपन्न दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों के कार्यों का वर्णन करेंगे ।

वे वीर, सिंहूर और पुजीभूत माणिक्य की काति फैलने से सध्याकालिक गगन की समता करनेवाले तथा सपों से, चद्र से एव नदियों से सयुक्त रहने के कारण शिवजी की जटा की समता करनेवाले विघ्य-पर्वत के सानुओं पर शीघ्र जा पहुँचे ।

उन दोष-रहित वीरों ने, उस दीर्घ पर्वत के मध्य उज्ज्वल रत्नों से पूर्ण शिखरों पर, मनोहर धाटियों में स्थित कदराओं में, पर्वत के सानुओं तथा दीर्घ एव सुन्दर प्रान्त-प्रदेशों (तलहटियों) में इस प्रकार ढूँढ़ा कि अनेक दिनों तक अन्वेषण करने का कार्य एक ही दिन में समाप्त कर लिया ।

(धरती की) सीमाओं पर स्थित समुद्र ही जिसके उपमान हैं, ऐसी वह वानर-सेना उस सीता के, जो समृद्ध भूमि को निष्पाप करने के लिए अवतीर्ण हुई थी और जो सोने की पट्टी से अलकृत अधकार-सदृश केशोवाली थी—रहने के स्थान को खोजते हुए उस भू-प्रदेश

में (विद्यु-प्रात में) ऐसे फैल गई कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी के लिए वहाँ स्थान ही नहीं रहा ।

उत्तम बुद्धिवाले वे वानर, पृथक्-पृथक् होकर चलते । कुछ (धार्टियों में) उत्तर-कर चलते । कुछ (शिखरों पर) चढ़कर चलते । कुछ गगन-मार्ग से उछलकर चलते । उस पर्वत के पेड़ों के मध्य तथा जल की धाराओं में रहनेवाले जीवों में से कही कोई ऐसा नहीं रहा, जिसे उन वानरों ने नहीं देखा हो । ऐसा कोई हो, तो वह ब्रह्मा की सृष्टि में ही नहीं है ।

धरती के शिरोभूपण के समान रहनेवाली दक्षिण दिशा (देश) में शीघ्र गति से जानेवाले वे वानर-वीर, चौदह योजन दूर गये और उस नर्मदा नदी पर जा पहुँचे, जहाँ भैंसों के बछड़े काले मेघों की पक्कियों के मध्य मिले पड़े रहते हैं ।

हसों के कीड़ा-स्थल, देव-रमणियों के स्नान के घाट, स्वर्गस्थ देवों के विहार-स्थान, मधुपान से मत्त भ्रमर-कुलों के गान से गुजरित प्रदेश—सर्वत्र धूम-धूमकर उन वानरों ने (सीता का) अन्वेषण किया ।

वे वानर, जो अपूर्व नारी (सीता) का अन्वेषण करने के लिए चले थे, काली मिट्टी-रूपी केश-पाश को, अलक-रूपी भ्रमरों से आवृत सुगंधित कमल-रूपी बदन को तथा (लहरों से छिटकाई जानेवाली) मुक्ता-रूपी दाँतों को देखते थे, किंतु कही सीता के पूर्ण रूप को नहीं देख पाते थे ।

युद्ध करने के उत्ताह से पूर्ण शरीरवाले, अनन्य चित्तवाले, धर्म एव करुणा से पूर्ण स्वभाववाले वे वानर, उस नर्मदा नदी को पार करके गये, जिसमें मत्तगज और करिणियाँ पैठकर कीड़ा करती थीं ।

फिर, हेमकूट नामक एक ऊँचे पर्वत पर आ पहुँचे, जिसके उज्ज्वल शिखरों से लहराती हुई जल-धाराएँ वह रही थीं, जिसपर काति-पुंज से भरे हुए रत्न-जल पड़े थे और जो प्रसिद्ध दक्षिण दिशा की रक्षा करता है ।

वह पर्वत अपने चारों ओर इतना महान् प्रकाश फैलाता था कि आस-पास के सभी पर्वत, वृक्ष तथा अन्य पदार्थ भी तपाये हुए सोने के समान चमक रहे थे । वह मुक्तों के लोक (स्वर्ग) से भी अधिक ज्योतिर्मय था ।

वह पर्वत सब वस्तुओं पर अपनी धनी स्वर्ण आभा को इस प्रकार फैलाता था कि उसमें उस पर्वत पर निवास करनेवाले पक्षी तथा विविध मृग, स्वर्ण-धूलि से अक्रित रहनेवाले अत्युन्नत मेरु के निवासियों के समान बन जाते थे ।

सर्वत्र फैलनेवाली स्वर्ग-काति के ब्यास होने से स्वच्छ कातिवाले लाल पद्मराग समूह के साथ मट्ठनेवाले निर्भर एव नदियाँ ऐसी लगती थीं, जैसे भड़कती अग्नि-ज्वाला में पिघला हुआ स्वर्ण वह रहा हो ।

(उस पर्वत पर आये हुए) विद्याधरों के सगीत का नाद, स्वर्ण से उत्तरी शख-समान (धवल) बलवधारिणी एव स्तु-सदृश कोमल चरणोवाली अप्सराओं के नत्य एव ताल का नाद, हाथियों का चिंघाड़, बांधमान मृदग के समान मेघ-ध्वनि—ये सब मिलकर उस पर्वत में गूँज रहे थे ।

वानरो ने उस पर्वत को देखा । भ्रम से यही सोचकर कि यह पर्वत तीक्ष्ण शूलधारी रावण का निवास है, उमग से भर गये और क्रोध से आँखें लाल करके चिनगारियाँ उगलने लगे ।

इस पर्वत में हम सुधा हरिणी (समान देवी सीता) के दर्शन करेंगे और प्रभु के मन के ताप को दूर करेंगे ।—यो विचार कर हर्ष से उत्कुल्ल हो निश्चंक उस पर्वत पर चढ़ने लगे ।

(उन वानरों को देखकर) हाथी और शरभ डरकर भागने लगे । सर्वत्र व्यास हिंस सिंह अस्त-व्यस्त होकर भागे । पर्वत पर सर्वत्र ढूँढ़ने पर भी सीता को कही न देखकर वे वानर समझ गये कि (वह रावण का आवास नहीं, किन्तु) यह दूसरा कोई स्थान है । तब वे वहाँ से चले गये ।

वे वानर, शत योजन विस्तीर्ण, स्वर्ग को छूनेवाले उस स्वर्णमय पर्वत में दिन-भर खोजते रहे । वहाँ देवी सीता की टोह न पाकर फिर वहाँ से उत्तर चले ।

अगद आदि सेनापतियों ने दो 'वेल्लम' संख्यावाली अपनी सेना को आज्ञा दी कि तुमलोग स्वच्छ जल के पूर्ण दक्षिण दिशा के सारे भू-भाग में खोजकर महेद्र पर्वत पर आ जाओ । फिर, वे उस उन्नत हेमकूट पर्वत से पृथक्-पृथक् दिशाओं में चल पडे ।

बज्रमय कंधोवाले उत्साही तथा विजयी हनुमान् आदि वानर-बीर झुड वाँधकर चल पडे । उस मार्ग में वे एक ऐसे मरु-प्रदेश में जा पहुँचे, जहाँ जल का नाम तक नहीं था और जिसे देखकर सूर्य भी भयभीत हो जाता था ।

वहाँ कोई पक्षी नहीं था । कोई जतु भी नहीं था । मधुपूर्ण पुष्पोवाले चृक्ष और धास का चिह्न तक नहीं था । वहाँ पत्थर भी जलकर भस्म बन गये थे । वहाँ शून्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं था । वहाँ सब वस्तुएँ धूल बनकर उड़ती थीं ।

वहाँ पहुँचने पर उन वानरों की सब इन्द्रियाँ काँप उठीं । उनकी मति ब्रष्ट हो गई । उनके शरीर तपकर पसीने पसीने हो गये और वे दक्षिण दिशा में स्थित (कुभी-पाक आदि) अग्निमय नरक में पडे हुए अस्थिहीन कीटों के समान तड़प उठे ।

वे अपनी जिहा को निकाले हुए थे । ज्यो-ज्यों अपने चरण धरती पर रखते थे, त्यों-त्यों ताप से उनके पैरों में छाले निकल आते थे । उनके शरीर वहाँ की वालू से भी अधिक तप उठे, जिससे वे यो तडपने लगे, जैसे जले हुए पत्थर से चिनगारियाँ निकल रही हों ।

कही विश्राम करने के लिए थोड़ी भी छाया न देखकर वे ऐसे व्याकुल हुए कि उनके प्राण शरीर से निकलने को हाँ गये । उनकी वह वेदना अपार थी । उस ताप से बचने के लिए उपाय करके अत में एक विवर के विशाल द्वार पर आ पहुँचे ।

उन्होंने विचार किया—अब उस रेगिस्तान में मरने के सिवा आगे जाना असम्भव है । यदि इस विवर में प्रवेश करेंगे, तो कम-से-कम इस उष्णता से तो बच जायेंगे । यो उस विवर के भीतर देखने का निश्चय करके वे उसमें उत्तर पडे ।

उस विवर के भीतर जाकर वे एक ऐसी कटरा में प्रविष्ट हुए, जिसमें चारी

दिशाओं तथा धरती का सारा अधकार, यो एकत्र हुआ था, मानो वह भूखे सूर्य से त्राण पाने के लिए ही वहाँ आ छिपा हो ।

वे बानर वहाँ से हट नहीं पाते थे । आगे भी पग नहीं बढ़ा पाते थे । उन्हें यह जान भी नहीं होता था कि आगे जाने के लिए कोई मार्ग भी है, या नहीं । वे उस गाढ़ अधकार में इस प्रकार छिप गये, जैसे जमे हुए धी में पड़ गये हो । उनके बाकार भी अदृश्य हो गये और वे नि-श्वासमात्र भरते खड़े रहे ।

अपने अगले कर्त्तव्य का कुछ निर्णय न कर पातं हुए स्वच्छ खड़े होकर तथा सुमृप्तु-से बनकर सब बानरों ने हनुमान्-से प्रार्थना की कि हे अतिवली मार्श्ति । क्या तुम हमें इस विषदा से नहीं बचाओगे ।

तब हनुमान् ने उन बानरों कहा—मैं तुम्हे बचाऊँगा, व्याकुल मत होओ । तुम सब मेरी पूँछ को क्रमशः दृढ़ता से पकड़ लो, छोड़ना नहीं । फिर, वह उस उत्तम मार्ग को अपने हाथों से टटोलता और शीघ्र गति से पैर बढ़ाता हुआ चला ।

दीर्घ स्वर्ण-पर्वत-सदृश कधीवाला वह (हनुमान्) वारह योजन तक गया । उस ममय उसके कानों के दो विद्युत्-खड़-महश प्रकाशमान कुंडल, अपनी काति से घने अधकार को दूर कर रहे थे ।

उस विवर के भीतर जाकर उन बानरों ने एक अति सुन्दर नगर को देखा । वह नगर ऐसा था, मानो कमल को विकसित करनेवाली किरणों से युक्त सूर्यमङ्गल ही वहाँ आ छिपा हो । उसके प्रकाश से देवपुरी भी लजित होती थी । वह नगर कमल में निवास करनेवाली (लक्ष्मी) के बदन के समान भासमान रहता था ।

उस नगर में कल्पतरु के समान वृक्ष थे । कमल-बन शोभायमान थे । उसके प्राचीरों में स्वर्ण-निर्मित गुवज शोभा डे रहे थे । उन्हें देखकर देवता भी आश्चर्य-चकित हो जाते थे । असुर शिल्पी मय के द्वारा अति परिश्रम से वह निर्मित किया गया था ।

देवेद्र का नगर (अमरावती) भी उस नगर की समता नहीं कर सकता था । गगन में चमकनेवाले ज्योतिष्पिण्ड (सूर्य-चन्द्र) उस नगर की भूमि पर अपने प्रकाश नहीं फैलाते थे, तथापि उसके प्रासादों में लगे हुए गत्न एव स्वर्ण, अपनी काति से दुर्निवार अधकार को मिटाते रहते थे ।

ससार में प्रशसित राजाधिराज कुलोक्तुग चौल की कीर्ति का गान करनेवाले कपियों के प्रासादों के समान ही वहाँ के प्रासादों में स्वर्ण-राशि, अमूल्य तथा प्रकाशमान बच्चों का ढेर, कोमल चडन-रस, पुष्पहार, उज्ज्वल आभरणों की राशियाँ, ये असीम रूप में वर्तमान थे ।

उस नगर में मुखरमान नूपुरों से भूषित चरणोवाली रमणियाँ और सच्चरित्र पुरुष एक भी संचरण नहीं करते थे । अत., वह नगर उस चित्र के समान था, जो न निद्रा कर सकता है, न देख सकता है और न जिसमें प्राण ही होते हैं ।

उस नगर में अमृत को जीतनेवाले भौज्य पदार्थ थे । तमिल-भाषा-सदृश (मधुर)

मतु था । अनुपम शीतल मदा था । मीठे फलों की राशियाँ थीं । इसी प्रकार की अन्य अनेक वस्तुएँ वहाँ भरी पड़ी थीं जौर सर्वत्र सुरभि फैली हुई थीं ।

बानर-वीरों ने इस प्रकार के अचिनश्वर तथा विशाल नगर को अपने सम्मुख देखा और यह सोचा कि यही शत्रु रावण की नगरी है । वे परस्पर यही बात करते हुए आनन्द और आश्चर्य से भर गये और उस स्वर्णमय नगर के द्वार में होकर उसमें प्रविष्ट हुए ।

उस नगर में प्रविष्ट होकर वे सर्वत्र (सीता को) ढूँढ़ने लगे । उन्होंने धूम-धूमकर देवताओं, मनुजों तथा त्रिभुवन के अन्य प्राणियों के चित्र-मात्र देखे । किन्तु, किंगी मजीव प्राणी को नहीं देखा ।

वहाँ तालाब थे, सरोवर थे । दिव्य सुगंधि से पूर्ण उद्यान थे । नील कुवलय-तुल्य नयनोंवाली रमणियों की कठ-ध्वनि-जैसे गानेवाले कोकिल-वाल थे । शुक एवं मनोहर पर्वत-वाले हस थे । किन्तु, वहाँ मधूर-सदृश आकारवाली (नारी) एक भी दिखाई नहीं पड़ी ।

उन्होंने उस नगर के भीतर जाकर उसकी दशा देखी और सोचा—यह कोई मायापुरी है । फिर विचार किया—हमें पाताल का कठोर जीवन प्राप्त हुआ है । फिर सदैह किया—कदाचित् हमलोग पवित्र स्वर्गलोक में पहुँच गये हैं ।

फिर सोचा—हम तो भरे नहीं हैं, नहीं, हमने इस स्वर्ग को पाने के लिए कुछ प्रयत्न ही किया है । हम पिछली (जीवन की) घटनाओं को भूले भी नहीं हैं । हमारे मन में अब भी सशय उत्पन्न हो रहा है (यदि हम देवता होते, तो सशयहीन होते) । हम पलकें भी मार रहे हैं । मूर्च्छित व्यक्तियों जैसे व्यापार भी हम में नहीं हैं । हम किस दशा में हैं—यह हम कैसे जान सकते हैं ?—यों कहते हुए वे भ्रात-से खड़े रहे ।

उस समय जाववान् कहने लगा—जिस राज्ञस (रावण) ने अपनी सहज वचकता से नवोत्पन्न वाँस के समान भुजोंवाली (सीता) देवी का अपहरण किया है, उसीने हमें फँसाने के लिए यहाँ ऐसा एक यत्र बना रखा है । इसका कही कोई अत नहीं दिखाई पड़ता । (ऐसा जान पड़ता है कि) प्राचीन पापों के परिणामस्वरूप, अवतक का हमारा सारा उत्साह मिट जायगा ।

तब जाववान् को देखकर हनुमान् ने क्रोध से कहा—यदि इस विवर में हमारा बाहर निकलना असम्भव हो जाय, तो हम सगर-पुत्रों से भी अधिक बलवान् होकर इस पृथक्षी को खोद डालेंगे और उस पार निकल जायेंगे । वैसा न हो, तो इस प्रकार हमें धोखे में डालनेवाले सब राज्ञसों को मिटाकर हम उपर उठ जायेंगे । हम किंचित् भी भव मत करो ।

हनुमान् के बचन से दृढ़चित्त होकर बुँछ बानर-वीर नगर में गये । वहाँ एक स्वयं-प्रभा नामक तपस्विनी को देखा, जो ऐसी थी, मानों मारी तपस्या स्त्री के उस रूप में माकाग वनी बैठी हो और जो स्वर्णमय जटा धारण किये हुए थी ।

उसका वदन सोलहों कलाओं से पूर्ण चन्द्र के समान था, कटि म आभृपण पहने थीं । रेखावाले चक्रवाक तथा म्बर्णकलश-सदृश उसके स्तन धूलि-धूसरित हो रहे थे । उच्चवल, अस्त्र तथा काले रगवाले मीन-सदृश उसके नयनों की दृष्टि नामांग्र पर स्थिर थीं ।

वह अपने रथ-सदृश जघनभाग को, परस्पर तुल्याकार कदली के समान जाँधों के

नाथ संयुत करके, (मब अगो को) समेटकर, श्वास को रोककर बैठी थी, जिससे उसकी अत्यन्त कपनशील सूक्ष्म कटि विलकूल निःस्पन्द हो गई थी, और उभरे स्तनों का भार थम गया था ।

कमज़ू-पुष्पो के उपमान वननेवाले उसके अति सुन्दर पल्लव के समान कर, मनोहर स्वर्ण-जाँघों के मध्य स्थिर रूप में संयुत पड़े थे । (उसके हृदय में) कामादि अतःशत्रु का समूल विनाश हो गया था । उसमें कामना का नाम तक नहीं रह गया था । उसकी इद्रियाँ सद्ग्रान में निमग्न हो गई थीं ।

धने, दीर्घ तथा काले रगवाले उसके केश-पाश धनी जटा वनकर पृथ्वी पर लोट रहे थे । काम-वधन उसे छोड़कर चला गया था । मन का पाश (आसक्ति) भी छूट चुका था । उसके नयनों से करुणा फूट रही थी ।

वह तपस्विनी इस प्रकार आसीन थी । उसके समीप पहुँचकर वानरों ने उसको प्रणाम किया और अस्त्विती कहने-योग्य सीता ही समझकर उतावले हो उठे । फिर, हनुमान् से उन (वानरों) ने कहा—क्या यही (सीता) देवी हैं ? (राम के द्वारा) बताये चिह्नों को देखकर कहो ?

मारुति ने उत्तर दिया—(देवी सीता का) कौन-सा गुण, कौन-सा चिह्न इसमें है—मैं क्या बताऊँ ? (अर्थात्, कोई भी चिह्न इसमें नहीं है) । क्या इस प्रकार के लक्षणवाली कहीं राम की पत्नी हो सकती है ? यदि अस्थियों की माला मुक्ताहार की समता कर सके, तो वह त्री भी सीता की समता कर सकेगी ।

उस समय, उस दिव्य त्री ने अपना ध्यान भग करके उन वानरों को देखा । उनका अपने सम्मुख याना अनुचित समझकर वह कुद्र हो उठी और उनसे प्रश्न किया—मेरे इस नगर में किसी का प्रवेश करना असम्भव है । तुम इस नगर के निवासी भी नहीं हो, तो तुम यहाँ क्यों आये ? कौन हो तुम ? बताओ ।

वानरों ने उत्तर दिया—उपद्रवी राक्षसों ने माया और वंचना करके सीता का अपहरण किया है । दोपरहित धर्ममार्ग की रक्षा करनेवाले रामचन्द्र के हम दूत हैं और उस स्थान की खोज में इस समार में घूम रहे हैं, जहाँ राक्षस ने सीता को छिपा रखा है ।

वानरों के यह कहते ही, बैठी रहनेवाली वह (स्वयंप्रभा) उठकर खड़ी हो गई । उसके हृदय में उन (वानरों) पर दया उत्पन्न हुई और वह पर्वत-सदृश आनन्द से फूल उठी । फिर, उन (वानरों) से यह कहकर कि आप मवका स्वागत हैं, (आपके आगमन से) मैं आनन्दित हुई—दोनों नयनों से आनंदाश्रु बहाने लगी ।

नवीन तथा मनोहर हरिण के सदृश दीर्घ नयनोंवाली उस तपस्विनी ने प्रश्न किया—रामचन्द्र कहाँ रहते हैं ? तब कठोर आसक्ति से हीन मारुति ने (रामचन्द्र का) सारा वृत्तात, आदि से अत तक, कह सुनाया ।

उन वच्चनों को सुनकर वह बोली—अपने दोपरहित तप के प्रभाव से आज मुझे आप से विमुक्ति प्राप्त हुई । यह कहकर उन वानरों के प्रति बादर-भाव दिखाने लगी ।

उन्हे सुगठित जल से स्नान कराकर, अमृत-समान सुखादु भोजन दिया और मन को मोद देनेवाले मधुर वचन कहे ।

मारुति ने उस तपस्त्रिनी के पुष्ट-चरणों को नमस्कार करके प्रश्न किया—सार्व-भौम यश के योग्य तपस्या करनेवाली है देवी । आप मुझसे कहें कि इस नगर के अधिपति कौन है ? तब घनी जटाधारिणी उस तपस्त्रिनी ने सारा वृत्तात कह सुनाया ।

है उत्तम । हरिणमुख मय ने, शास्त्रोक्त विधान से, अपना मुँह ऊपर की ओर उठाये, धूप और बायु का ही आहार करते हुए कठीर तपस्या की थी । उसी के फलस्वरूप चतुर्मुख ने यह विशाल नगर उसको प्रदान किया ।

इसी प्रकार यह नगर उत्पन्न हुआ । उस दानव (मय) ने आसराओं में मे एक सुन्दरी का सग प्राप्त करना चाहा । वह सुन्दरी मेरी प्राण-सखी थी । उस असुर की प्रार्थना पर मै स्वर्णनगर (अमरावती) से उस सुन्दरी को इस विवर के भीतर ले आई ।

वह अप्सरा और वह दानव—दोनों चक्रवाक के जोड़े के समान समागम-सुख में मत्त होकर, सब कुछ भूलकर अनेक दिनों तक इस विशाल नगर में निवास करते रहे । ताटक-धारिणी उस अप्सरा के साथ गाढ़े स्नेह-पाश में बँधी हुई मै भी यही रहने लगी ।

है बलशालिन् । जब अनेक दिन व्यतीत हुए, तब देवेंद्र उस उत्तम आभरण-धारिणी अप्सरा का अन्वेषण करने लगा । फिर, क्रोधी होकर उसने उस बलवान् असुर को मिटा दिया और मयूरपक्ष के मूल भाग के समान धवल-हासवाली उस अप्सरा से क्रोध से कहा कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त त्तुद्र है ।

देवेंद्र ने यों क्रुद्ध होकर उससे कहा—तुम सारी घटनाओं को कह सुनाओ । भली भाँति पके हुए विवफल-जैसे अधरवाली (हेमा नामक) उस आसरा ने आँखों के संकेत से सूचित किया कि इस मेरी सखी के कारण ही यह अपराध हुआ । तब इन्द्र ने मत्य को जानकर सुझसे कहा—तुम इसी नगर में इसकी (नगर की) रक्षा करती हुई पड़ी रहो ।

उसकी यह आज्ञा होते ही, उसे नमस्कार कर मैंने उससे पूछा—इस दुख से मुझे कब मुक्ति मिलेगी ? कुछ अवधि निर्धारित कीजिए । तब इन्द्र यह कहकर अद्वश्य हो गया कि जब राम की आज्ञा से बलवान् वानर इस नगर में आयेंगे, तब तुम्हारी विपदा का अत होगा ।

है उत्तम । यहाँ मेरे भोजन के लिए फल आदि हैं, लेप के लिए चटन आदि हैं, पुष्प हैं, इतना ही नहीं, मनोहर वर्णवाले अनेक वस्त्र हैं, अन्य (आभरण आदि) वस्त्रहैं भी हैं । किंतु इन सबका त्याग कर, आपके आगमन की ही प्रतीक्षा करती हुई चिरकाल से मै तपस्या करती रही हूँ ।

है उत्तम । यह विवर शत योजन विस्तीर्ण है । इस विवर से बाहर के लोक में जाने का मार्ग मैं नहीं जानती । यदि तुम लोग मेरी महायता करो, तो मेरे द्वार का मार्ग निकल आयगा । उसका कोई उपाय अपने मन में सोचो—यो उसने कहा ।

स्वयंप्रभा के इस प्रकार कहने पर हनुमान् ने इन्द्रियों पर दमन करनेवाली इस

तपस्विनी के कमल-समान चरणों को प्रणाम करके कहा—तुम्हें मैं देवताओं के निवासभूत स्वर्ग प्रदान करूँगा ।

अन्य वानरों ने हनुमान् से बिनती की—हे महिमामय ! तुमने इस विवर के द्वार के घने अधकार में प्रवेश करके मृत्यु के मुख से हमें बचाया । अब आगे का कर्तव्य भी तुम्हीं सोचो । अवर्णनीय महिमावाले हनुमान् ने वैमा ही करने का निश्चय किया ।

हनुमान् ने अन्य वानरों से यह कहा कि तुम लोग डरो नहीं और मंदहास के साथ सिंह-जैसे उठ खड़ा हुआ । उसने अपने हाथों को ऊपर उठाकर, अपने शरीर को गगनतल तक यों बढ़ाया कि वह विवर, जो ऊपर के गगन से बहुत नीचे स्थित था, फट गया और गगन से एकाकार हो गया ।

वायुपुत्र के दोनों हाथ दो उज्ज्वल दतों के समान ऊपर उठे हुए थे । जब वह विवर को भेदता हुआ ऊपर की ओर उठा, तो देखनेवालों के मन भय में भर गये । (उस समय) वह क्रोध के साथ पृथ्वी को उठा लानेवाले महावराह के समान दृष्टिगत हुआ ।

उस समय वह (हनुमान्) उस वामन भगवान् के सुन्दर चरण की समता कर रहा था, जिस (वामन) ने (बलि से) तीन पग वसुधा माँगकर, दो पग से सारी सृष्टि को मापते हुए, कमल में निवास करनेवाले, उत्तम स्वरूपवाले ब्रह्मा की सृष्टि (अर्थात्, ब्रह्माण्ड) को आवृत करनेवाले आकाश-रूपी आवरण को छेद दिया था ।

हनुमान् ने एक शत चतुर्दश योजन दूर तक उस विवर को भेद दिया और विवर में स्थित उस नगर को उखाड़कर पश्चिम के समुद्र में फेंक दिया । फिर, मेघ के समान गरज उठा । वह दृश्य देखकर देवता भी कौप उठे ।

हनुमान् के द्वारा फेंका गया वह नगर अब भी पश्चिमी समुद्र में, विवर-द्वीप के नाम से प्रख्यात है । विशाल ललाटवाली स्वयंप्रभा के साथ, पर्वत के समान कधोवाले वानर-बीर बहाँ से बाहर निकले और अपने मार्ग पर आये । सुन्दर ललाटवाली स्वयंप्रभा स्वर्णमय स्वर्ग में जाने के लिए उद्यत हुई ।

मेरु-मद्वश सुन्दर स्तनोंवाली वह अति सुन्दरी स्वयंप्रभा, अत्युत्तम हनुमान् की अनेक प्रकार से प्रशसा करने के पश्चात् कल्प वृक्षों से युक्त स्वर्णमय स्वर्गलोक में जा पहुँची जहाँ हैमा नामक उमकी सहेली निवास करती थी ।

पराक्रमी वानर हनुमान् के बल-विक्रम की प्रशसा करते हुए चल पड़े । वे दिन-भर चलकर एक जलाशय के तटपर जा पहुँचे । उस समय रथारूप प्रतापी सूर्य भी अन्ताचल पर जा पहुँचा । (१-७४)

अध्याय ३४

मार्ग-गमन पटल

बानरों ने उस सुन्दर जलाशय को देखा । उसके मधुर जल को अजलि में भर-भर कर पिया । उसके तट पर स्थित मधुर फल और मधु का आहार किया । वहाँ एक मनोहर स्थान पर सुखद निद्रा की । उनके सोते समय, एक असुर वहाँ आ पहुँचा ।

वह पर्वत की समता करता था । विशाल समुद्र की वरावरी करता था । कठोर हिंसक यम की तरह लगता था । क्रूरता का आगार जान पड़ता था । किंचित् भी सद्गुण से निरान्त विहीन था । गगनगत चन्द्रकला के सदृश एवं विष-समान दाँतोवाला था और अपनी आँखों से कोपामि उगलत रहा था ।

वडे-वडे मेघ, जो सृष्टि के आदिकारण थे, उसकी बाँहों पर एवं उसके महदाकार शरीर पर फैले हुए थे, जिससे उसके शरीर पर अनुपम जल-धारा बहती रहती थी । अतः, वह निर्करों से युक्त पर्वत के समान था ।

वह दुष्ट असुर इतना प्रतापी था कि देव और असुर—दोनों के लिए वह अजेय था, तो अन्य कोई उसके साथ युद्ध करने का विचार तक कैसे अपने मन में ला सकता था ।

चमकते हुए लाल-लाल केशोंवाला, अपनी गति से चाक की समता करनेवाला वह असुर अपने हाथों को मलता हुआ उन बानरों के पास, जो धर्म से पूर्ण चित्तवाले थे और मार्ग-गमन से श्रात होकर निद्रा में मग्न पड़े थे, जा पहुँचा ।

यम-सदृश उस (तुमिर नामक) असुर ने, यह कहता हुआ कि यह मेरा जलाशय है, यह जानते हुए भी यहाँ आनेवाले ये क्लुद्र प्राणी कौन हैं? यह कैसा आश्चर्य है? उत्तम अगद के पुष्पालकृत बच्च पर हाथ से प्रहार किया ।

बीर अगद निद्रा से जगकर और यह सोचकर कि यह असुर ही लकेश्वर है, अपने को मारनेवाले उस असुर को ऐसा मारा कि युद्ध में निपुण वह असुर निष्पाण हो गिर पड़ा ।

उस समय, विजली गिरने से टूटनेवाले पर्वत के समान, आहत होकर चिल्लाता हुआ जब वह असुर गिरा, तब भूतग्रस्त-से होकर सोये पड़े रहनेवाले सब बानर अगद नामक आभरण से भूषित अपनी झुजाओं पर ताल ठोकते हुए उठ खड़े हुए ।

मारुति ने तारा-पुत्र से पूछा—यह कौन है? इसने क्या किया? अगद ने उत्तर दिया—हे सत्यनिरत! मैं कुछ नहीं जानता ।

तब जावबान् ने कहा—मैंने भली भाँति सोचकर जान लिया कि यह असुर कौन है। मांस-लगे शूल को धारण करनेवाला यह असुर तुमिर नामधारी देत्य है और इस गमीर सरोवर का रक्षक है ।

मार्ग-गमन से विश्रांत वे बानर-बीर, यह सोचकर कि इस असुर के समान ही यहाँ और भी कई असुर होंगे, अपनी मीठी निद्रा त्याग कर उठ बैठे और जब अरुणकिरण

प्राची दिशा मे निकला, तब सद्योविकमित कमल पर आसीन लक्ष्मी (के अवतारभूत सीता) को ढूँढ़ने लगे ।

सीता का अन्वेषण करनेवाले वे वानर पेन्ना (उत्तर पेन्नार) नदी-स्पी सुन्दरी के पास जा पहुँचे, जो चक्रवाक को लज्जित करनेवाले पुलिन (सैकत-राशि) स्पी स्तनों, बमृतरस से पूर्ण, जल से स्थित रक्तकुमुद-त्पी बधर, मनोहर तथा उज्ज्वल दतों एवं ग्रकाशमान बदन से युक्त थी ।

जान की सीमा पर पहुँचे हुए उन वानर-बीरों ने, पर्वत की घाटियों मे, जहाँ मध्य नृत्य करते थे, नदी के मध्य में स्थित टापुओं मे, पुष्प-बाटिकाओं में, शीतल किनारों-वाले पोखरों मे, शुभ्र पुष्पों से भरे हुए सरोवरों मे और निर्मल त्फटिक-शिलाओं में— नर्वत्र (सीता को) खोजा ।

फिर, वे उम नदी के (दक्षिणी) तट पर आ ठहरे, जो (नदी) अपने जल मे स्नान करनेवाले लोगों की जन्म-व्याधि को वहा देती थी और अपने अलघ्य भैंवरों में उत्तम रलों को विद्वेष्टी थी ।

(सीता के) अन्वेषण मे लगे वे वानर, स्नान करने के योग्य उस नदी को तैरकर अनेक अरण्यों एवं पर्वतों को पारकर, लहराती जलधाराओं से युक्त उस (दशनव नामक) देश मे जा पहुँचे, मानों वे मुक्तिलोक में ही पहुँच गये हों ।

चपक-वनों से युक्त तथा सस्यों से समृद्ध उस दशनव (दशार्णव) नामक देश को पार कर, अति प्रख्यात उस विदर्भदेश में जा पहुँचे, जहाँ उशनस् नामक कवि (शुकाचार्य) उत्तन्न हुए थे ।

वे वानर, वैदर्भ की भूमि मे आकर, वहाँ के सब ग्रामों मे गये और वहाँ दर्भ-एवं वज्रोपवीत से शोभित शरीरवाले सुनियों के दर्शन करते हुए (सीता का) अन्वेषण करते रहे ।

वे ज्ञानवान् वानर-बीर, इस प्रकार अन्वेषण करते हुए, रक्त धान की फसलों से भरे विदर्भ देश को भी शीत्र पारकर उस दडकारण्य मे जा पहुँचे, जहाँ बात्सध्यान मे निरत अनेक सुनि तप करते थे ।

जहाँ सुनि, अपने शरीर मे विषयों का उपभोग करते हुए निवास करनेवाले पचेंट्रिय-स्पी शत्रुओं के लिए कठोर यम वनकर उपस्था करते रहते थे, ऐसे दडकारण्य मे जाकर (सीता को) ढूँढ़ते हुए सुडकसर नामक स्थान मे पहुँचे ।

उम भरोवर का जल देवलियों के पीनस्तनों पर चदन-लेप एवं पुष्प-मालाओं के नमर्न से अत्यन्त सुगंधित हो रहा था । उममे स्थित पक्षी भी वहाँ की (सुगंधि से भरी) मछलियों को नहीं खाते थे ।

वहाँ विद्याधरों के विरह मे पीडिन स्त्रियाँ, वीणा-वाद्र का श्रवण कर, मन मे अत्यन्त द्रवित होकर, व्याकुलता से काँप उठती थीं और उनकी आँखों से अश्रुजल यों वह चलता था कि हाथी भी उसमें छूट सकते थे ।

रक्तकुमुद के समान सुँहवाली, कोकिल को लज्जित करनेवाली, मन्मथ के शरपेंज-

सदृश दृष्टियो एवं उस (मन्मथ) के धनुष के सदृश ही भौहों से शोभित एवं अमृत-सदृश संगीत गानेवाली सुन्दरियाँ क्रमुक-वृक्षों पर लगे भूलों में बैठकर भूलती रहती थीं।

इस प्रकार के सुन्दर मुडकसर के तट पर पहुँचकर वे वानर-बीर मन से भी अधिक तीव्र गति से ढूँढने लगे। किंतु (पचविधि) शैलियों^१ में सजाने योग्य सुन्दर केश-पाशोवाली लहमी के अवतार सीता को कहीं भी न देखकर अत्यन्त खिन्न होकर त्वरित गति से आगे बढ़ चले।

फिर, वे वानर, विशाल गगन को व्यापकर रहनेवाले उस पाहुपर्वत पर जा पहुँचे, जो ऐसा लगता था, मानो त्रिविक्रम के दीर्घ चरण के कारण (आकाश के छिद्र जाने से) गगन-तल से गगा की धारा ही नीचे उतर रही हो।

वह पर्वत अपनी काँति से समस्त अधकार को मिटा देता था। आकाश के चद्रमा को भी मद कर देता था। वह करुणाहीन बलवान्-राक्षस (रावण) को दवानेवाले कैलाश-पर्वत की समता करता था।

उस गगनोन्तर उज्ज्वल पर्वत के पास पहुँचकर वानर-बीर दत्तचित्त हो सीता को ढूँढने लगे। किंतु, कहीं भी मधुर राग-सदृश बोलीवाली सीता को न देखकर मन में अत्यन्त व्याकुल और शिथिल हुए।

पवन के समान वेगवाले, निष्ठुर दृष्टियुक्त व्याघ्र के समान बलवाले, वे वानर-बीर उस पाहुपर्वत के प्रदेश को छोड़कर आगे बढ़े। फिर, वे गोदावरी नदी के समीप जा पहुँचे, जो राक्षस के द्वारा अपहृत हो जानेवाली सीता के केश-पाश से धरती पर खिसककर गिरी हुई पुष्पमाला से समान लगती थी।

उस गोदावरी नदी की तरगायमान जलधारा, मुक्ता के सदृश स्वच्छता लिये हुए वह रही थी। वह ऐसी थी, मानों पृथ्वी देवी, सर्वपूज्य जनक के द्वारा वेदपाठ के साथ यजार्थ धरती को जोतते समय उत्पन्न अनुपम सीता के दुख से व्याकुल होकर अश्रु वहा रही हो।

वह (गोदावरी) नदी, जो रत्नों को और स्वर्ण को बहाती हुई अनेक अरण्यों से होकर मनोहर गति से प्रवाहित हो रही थी, ऐसी थी, मानो इस धरती को नापने का सूत्र हो। या जटायु के साथ युद्ध करते समय रावण के बक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खींचकर फेंका गया रत्नहार हो।

वे वानर-बीर, जो भले-बुरे का विवेचन करने में चतुर थे, उस गोदावरी नदी में भली भाँति ढूँढकर, उत्तम ककण-धारिणी सीता को कहीं भी न पाकर आगे बढ़ चले और बहुत दूर चलकर, सब पापों को मिटानेवाली सुवर्णनदी के तट पर पहुँचे।

स्वर्णकीट, मधुमक्खी, काले भ्रमर, हस तथा अन्य पक्षिगण—सबके समीप से होकर जानेवाले वानर, लाल धान तथा कमल-युक्त सरोवरों से भरे हुए जल समृद्ध समतल

१. तमिल के प्राचीन ग्रन्थों में केश को सजाने की पांच शैलियों का वर्णन है। — अनु०

प्रदेशों को पार कर, अमृतमम जल से पूर्ण नारिकेल-फलों के बागों से भरे कुलिंद-देश को पार कर गये।

उन्होंने सतकोंकण-प्रदेशों को पार किया। पश्चिमी सुन्दर तट पर उन प्रदेशों को, जहाँ मुक्ताराशियों, शंख, नीलोत्पल आदि से पूर्ण अनेक जलाशय थे, पार किया। फिर, उन अवधती-पर्वत के निकट पहुँचे, जिसके शिखर की परिक्रमा चंद्र की कला करती थी और देवता जिन्हे प्रणाम करते थे।

अवधती-पर्वत के निकट जाकर, वहाँ सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली सीता को कहाँ न देखकर वे आगे बढ़ चले। फिर, उस मरकत-पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ गोपागनाएँ आकर (पार्वत त्रियों से) दधि के बट्टे में मधु ले जाती थीं। फिर, वहाँ से चलकर (तमिल-देश की उत्तरी) सीमा वनी हुई वेंकटाचल-पर्वत पर जा पहुँचे।

उस वेंकटाचल-पर्वत के निर्मारों में मुनि, वेदज्ञ ब्राह्मण, पूर्वजन्म के पापों को मिटानेवाले तत्त्ववेत्ता, देव, अमरत्रियाँ, सिंह—सभी नित्य आकर स्नान करते हैं।

उन पर्वत पर देवता अपनी पचेन्द्रियों को, तीव्र काम-बासना को, दूसरों के निंदा-वचनों को, रमणियों के सुन्दर दृष्टिवाणों को, जीतकर उत्तम तपस्या का आचरण करते रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर, जो विजयी चक्रधारी कालमेघ-सहश्र भगवान् के उज्ज्वल चरणों को धारण किये हैं, निवास करनेवाले जीव-जटु भी मोक्ष-पद प्राप्त करते हैं, तो उन तपस्त्रियों के सबध में क्या कहा जाय, जो सत्य ज्ञानवाले हैं!

इस प्रकार के उस वेंकटाचल को अपूर्व तपस्या-सुपन्न भाग्यवान् लोग ही प्राप्त करते हैं। वे बानर-चीर, शाश्वत सुख को प्रदान करनेवाले प्रभु (श्री-निवास) के चरणों की नित्य सेवा करनेवाले उन तपस्त्रियों के चरणों पर ग्रन्त हुए।

कामहृप धारण करनेवाले उन बानर-चीरों ने (उन तपस्त्रियों की) चरण-धूलि को शिर पर धारण करने के पश्चात् उस वेंकटाचल पर, धूँधराले केशोवाली, कलापितुल्य (सीता) देवी को ढूँडा और फिर, ब्राह्मण का वेष धारण कर उस तोडमडल प्रदेश में जा पहुँचे, जो स्वच्छ एवं तरंगायमान जलाशयों से भरा है।

वहाँ (तोडमडल) के सब प्रदेशों में, पर्वतों की धाटियों, गोपों के बाँगनों को घेरे हुए उद्यान, प्रभूत जल से संपन्न प्रदेश और स्वच्छ बीचियों से युक्त सुन्दर से आवृत विशाल खेत हैं।

वहाँ कुपक मुँड वाँधकर हल जोतते हैं। जब वे अपने हाथ की छड़ी हिलाकर हाँक लगाते हैं, तब चर्ममय फैरोंवाले हम उड़कर उन खेतों में भाग जाते हैं, जहाँ शालिधान, कटहल के पेड़ों की जड़ में लगे (पके) फलों से प्रवाहित मधु से सिंचित होते हैं। वे हम अपने फैरों से धान के अकुरों को रीढ़ देते हैं।

सुन्दरियों के केशों तक फैले हुए नवनों-जैसे मधु-भरे नीलोत्पल-समुदाय जिन खेतों के प्रातों में उगे रहते हैं, उनमें खालिनों के जाँधों के सहश्र कदली-वृक्ष लगे रहते हैं और उन कदली-वृक्षों पर सारस एवं कोकिल सीधे रहते हैं।

वीथियो मे अनेक वादो की बड़ी ध्वनि को सुनकर मयूर, (ससार की) वृद्धि के कारणभूत मेघ का धोष समझकर नाच नहीं उठते ।^१ नृत्य करनेवालो के मृदंग की ध्वनि को सुनकर हंस भी (उसे मेघ-गर्जन समझकर) उड़ नहीं जाते । क्योंकि (ऐसी ध्वनियो से) चिर परिचित रहनेवाले प्राणी उनको सुनकर ग्रम कैसे कर सकते हैं ।

अलंकृत रथ-सदृश नारिकेल-वृक्ष के कोमल तथा सुकुलित पुष्पो को देखकर मीन उन्हे सारस समझते हैं और भय से कपित हो उठते हैं । मेढ़क, नुकीले कोरवाले शीतल कुमुद पुष्पों को देखकर, उन्हे अपने को निगलने के लिए आये हुए सर्प समझ लेते हैं और डर से चिल्ला उठते हैं ।

केंकड़ी को पकड़नेवाली पचम जाति की युवतियाँ, अति धबल शखो से उत्पन्न मातियों को देखकर उन्हे चित्तियोवाले सारस पक्षियो के अडे समझ लेती हैं और उन्हे (खाने के लिए) कछुए की पीठ पर तोड़ने लगती हैं ।

शिशु-मर्कट के अत्यन्त छोटे हाथ में, शाखाओं पर पकनेवाले कटहल का कोया है । उसपर पुष्पों से भरे उद्यान मे जिस प्रकार भौंरे मँडराते रहते हैं, उसी प्रकार मक्खियाँ मँडरा रही हैं ।

उस तोड़मंडल-प्रान्त मे निवास करनेवाले लोग—सपन्न, संस्कृत एव तमिल के पारगत विद्वान् हैं, दुष्टों को दमन करनेवाले हैं, दानी हैं—इत्यादि विशेषताओं से प्रशंसित होते हैं । अतः, क्या कामधेनु भी ऐसे गृहस्थ-जनों की समता कर सकती है ?

वे अनुपम वानर-बीर उस सुन्दर तोड़मडल को पारकर विशाल कावेरी नदी से सयुत चौल देश में जा पहुँचे और लाल धान, ईख, सुपारी आदि से सकुल मार्गों से होकर कठिनाई से आगे बढ़ने लगे ।

वहाँ के उन जलाशयो के तटो पर, जहाँ उभरी चौचवाले सारस पक्षी निवास करते हैं, नारिकेल के वृक्ष बढ़े हुए हैं । वानर, कभी उन वृक्षों के कठभाग पर से खूब पक्कर नीचे गिरे हुए अति मनोहर मधुर फलों से टकराकर गिरते, तो कभी वहाँ प्रवाहित होनेवाली मधुधारा में फिसलकर गिर पड़ते थे ।

काले रगवाले जलकौवे, वाजो की-सी ध्वनि करनेवाले ईख के कोल्टुओं के पास इक्कुरस से भरे बड़े-बड़े पात्रों को देखकर उन्हे जलाशय समझ लेते थे और पक्षियों से जाकर उनमें गोते लगाते थे ।

पुष्पों से भरे, भ्रमर-समूहों से सकुल उद्यानों से मधु की धारा वहती रहती थी । उन प्रवाहों के यथार्थ रूप को न जानकर वानर, उन्हे मीनों से पूर्ण सरोवर समझकर उनसे हट जाते थे और वृक्षों पर जाकर विश्राम करते थे ।

वहाँ के केतकी-वृक्ष फूलों के गुच्छों से लदे रहते हैं । उनके पास उगे हुए बाम के पेड़ों के झुके हुए फल, केतकी-फूलों के पुष्प-रज मे भर जाने से बैसी ही गध से महँकने

^१ भाव यह है कि वहाँ सदा वादों के धोप तथा मृदग की ध्वनि होती रहती है और मयूर तथा हस उन शब्दों से भली मांति परिचित रहते हैं ।—अनु०

लगते हैं। सस्य के अकुरों के समीप का कीचड़ लाल कुमुदपुष्प की गध से सुगंधित रहता है।

पाप से रहित वे वानर-चौर, कावेरी नदी से मिञ्चित चौल देश को पारकर गृहस्थ धर्म से सुशोभित पर्वतमय चेर देश (मलयदेश) मे जा पहुँचे। फिर, वहाँ से मधुर तमिल भाषा से युक्त दक्षिण (पाढ्य) देश में पहुँचे।

वह (पाढ्य) देश सप्तलोकों में विख्यात मुक्ताओं को एव त्रिविधि तमिल^१ को प्रदान करने की महिमा से पूर्ण है। धतः, यदि यह कहें कि वह देश देवलोक के सदृश है, तो यह उपमा कैसे उचित होगी?

सरल चित्तवाले वे वानर, इस प्रकार के पाढ्यदेश मे सर्वत्र ढूँढ़कर और घने केशपाशोवाली (सीता) देवी को कही भी न देखकर दुःखी हुए और ऐसे शिथिल होकर चलते रहे, जैसे उनकी मृत्यु ही निकट आ गई हो।

फिर, वे वानर, दक्षिण समुद्र से चलनेवाले पवन से युक्त भूभाग को तय करके अत में दिग्गज-सदृश प्रसिद्ध महेंद्र पर्वत पर जा पहुँचे। (१—५५)



अष्टव्याय शै

संपाति पटल

वानर-चौरों ने दक्षिण के समुद्र को देखा, जो जल-भरे वादलों से पूर्ण आकाश के समान गरज रहा था और गगन को छूनेवाली छँची तरग-हृषी हाथों को उठाकर उन वानरों के सम्मुख आकर उनका यथाविधि स्वागत कर रहा था और कह रहा था कि हरिण-सदृश विशाल नयनोवाली सीता लका में है।

अग्रद आदि वीरों ने जिस सेना-समुदाय को अज्ञा देकर चारों ओर भेजा था कि तुमलोग याठों दिशाओं मे अन्वेषण करके महेंद्र-पर्वत पर आ जाओ, वह सेना-समुदाय भी छँची तरगों से पूर्ण एक दूसरे समुद्र के तमान वहाँ आ पहुँचा।

सब वानर विना कुछ वाधा के वहाँ आ पहुँचे। बिन्तु, व मल मे उत्पन्न धुँधराली अलझी से भूषित, अनुपम पातिव्रत्य से युक्त लद्धी को कही नही देखा। वे अपने अगले कर्तव्य को न जानते हुए अटपटे शब्दों से कुछ कहने लगे।

(सुग्रीव के द्वारा निश्चित) एक मास की अवधि बीत गई। हम अपने कार्य मे सफल नही हुए। अब श्रीरामचन्द्र भी अपने प्राण छोड़ देंगे। हमने अपने राजा (सुग्रीव)

^१ त्रिविधि तमिल : तमिल में साहित्य के तीन अग माने गये हैं—इवल् =कविता, इशै =मगीत और नाटकम् =नाटक।

की आज्ञा का तो पूरा पालन किया (अर्थात्, सीता का अन्वेषण किया)। अब हमारे लिए करने को और कुछ नहीं रह गया है—यो कहते हुए अनेक प्रकार से विचार करने लगे।

| क्या हम यही रहकर तपस्या करें? यदि वह न हो, तो असाध्य विष को पीकर प्राण-त्याग करें? इन दोनों में से जो उचित हो, वही करेंगे। वे वानर, जिन्हें अपने प्राणों का भी भय नहीं था, यों सोचने लगे।

बलवान् सिंह के सदृश युवराज अंगद वहुत खिन्चित्त हुआ और उन वानरों को देखकर जो तट पर टकराती हुई बड़ी वीथियों से युक्त समुद्र के निकट रहनेवाले महेन्द्र-पर्वत पर ऐसे खडे थे, जैसे अनेक मेरु-पर्वत पक्कि बाँधकर खडे हो, कहने लगा—तुमलोगों से मुझे कुछ कहना है।

हमलोगों ने पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समक्ष, बड़ी भक्ति रखनेवालों के जैसे ही, प्रण किया था कि हमलोग आकाश से आवृत विश्व में सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करेंगे। हमारा वह प्रण केवल 'गर्वमात्र' नहीं था। उससे हम बडे अपयश के पात्र हो गये हैं।

'हम पूरा करेंगे'—यों कहकर जो कार्य हमने अपने ऊपर लिया, उसे पूरा नहीं कर पाये। अवधि के भीतर ही लौटकर यह कहना भी हमसे नहीं हो सका कि हम ढूँढकर भी सीता को कही नहीं देख सके। अब आगे भी यह कार्य पूरा हो सकेगा—इसका भी कोई लक्षण नहीं दीखता, ऐसी अवस्था में हमारा जीवित रहना क्या उचित है?

(अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात्, यदि हम लौटकर भी जायें, तो) मंरे पिता (सुग्रीव) कुछ होंगे। हमारे प्रभु राम को भी वहुत दुःख होगा। उस दशा को मैं अपनी आँखों से नहीं देख सकूँगा। अतः, मैं अपने प्राण त्याग देना चाहता हूँ। हे शानवान् लोगों! मेरे इस निश्चय के बारे में तुमलोग अपनी सम्मति दो—यो अगद ने कहा।

तब जाववान् ने कहा—हे लौह-स्तम्भ तथा पर्वत की समता करनेवाली भुजाओं से युक्त। तुमने ठीक कहा, पर यदि तुम अपने प्राण छोड़ दोगे, तो क्या हम यहाँ तुम्हारे लिए रोते वैठे रहेंगे? या प्रेमहीन होकर लौट जायेंगे और (सुग्रीव की) सेवा में लग जायेंगे?

हे युवराज तथा पौरुषवान् वीर! लौट आकर कहने के लिए हमारे पास है ही क्या? हमारा भी यही निर्णय है कि हम भी अपने प्राण त्याग देंगे। अतः, तुम्हारे लिए जीवित रहना ही उचित है।

जाववान् का कथन सुनकर अंगद ने वानरों से कहा—हे पर्वत-तुल्य कधीवाले वीरो! तो क्या यह उचित है कि तुम सब यहाँ मृत्यु को प्राप्त होओ और अक्षेत्रे मैं लौटकर आऊँ? क्या ससार को यह भायगा?

इस विशाल ससार के निवासी यह कहे कि बडे लोगों के अपवाद से डरकर जब इसके प्राण-प्रिय साथियों ने प्राण त्याग दिये, तब यह जीवित ही लौट आया, इससे पहले ही मैं स्वर्गलोक में जा पहुँचूँगा। यह कहकर उसने फिर आगे कहा—

तो, मृत्यु-समाचार कोई-न-कोई मेरी माता और मेरे पिता सुग्रीव को देंगा ही। यह समाचार पाकर कदाचित् वे अपने प्राण त्याग देंगे। वह देखकर धनुर्धर वीर (गम)

एव उनके अनुज भी निष्प्राण होंगे। फिर, वह समाचार जब अयोध्या में विदित होगा, तब भरत आदि क्या जीवित रह सकेंगे?

भरत, उनका अनुज, उनकी माताएँ, (अयोध्या) नगर के निवासी—सब मर जायेंगे, वह निश्चित है। हाय। मैं मिटा। हाय। जानकी नामक जगत्-प्रसिद्ध तपस्या-सपन्न दीप-समान नारी के कारण सप्तराम के सब लोगों को कैसी अपार विपदा उत्पन्न हो गई है।—यों कहकर अगद दुःखी हुआ।

पर्वत-समान दृढ़ कधों तथा युद्धोत्साह से उक्त सिंह-सद्वश अगढ़ के बच्चों से जाववान् के मन में ऐसी व्याकुलता उत्पन्न हुई, जैसे किसी ने अवार्य ज्वाला को उभाड़ दिया हो। भालुओं के राजा ने वडे प्रेम से अगढ़ को देखकर कहा—

तुम और तुम्हारे पिता (सुग्रीव) दोनों को छोड़कर तुम्हारे वश में और कोई पुत्र नहीं है (जो शासन-कार्य संभाल सके), यही सोचकर हमने कहा (कि तुमको जीवित रहना है)। यदि यह कारण न भी हो, फिर भी नायक की मृत्यु की वात जिहा पर लाना उचित नहीं है।

हे विजयशील ! तुम जालो। राम और सुग्रीव जहाँ रहते हैं, वहाँ पहुँचकर उन्हें बताना कि सीता का पता नहीं मिला और हम सबने प्राण त्याग दिये—तुम उन लोगों के दुःख को त्रात करने का प्रयत्न करना—यों अपार पराक्रमवाले जाववान् ने कहा।

जाववान् के यो कहने पर हनुमान् ने कहा—हे सूर्यसदृश वैगवालो ! हमने अभी तक त्रिमुखन के एक भाग में भी पूरा-पूरा दृढ़कर नहीं देखा है; तो भी तुम लोग क्यों इस प्रकार शिथिल हो रहे हो, जैसे आगे चलने की शक्ति ही नहीं रह गई हो या कुछ सोचने का सामर्थ्य नहीं रह गया हो ?

फिर, हनुमान् कहने लगा—पाताल में, ऊपर के लोक में, स्वर्गमय मेरु के शिखर पर तथा व्रक्षाड के अन्य स्थानों में यदि हम उज्ज्वल ललाटवाली सीता का अन्वेषण करेंगे, तो हमारे राजा अवधि के व्यतीत हो जाने पर भी कुछ न कहेंगे।

अतः, अब भी सीता का अन्वेषण करना ही अच्छा है और इसी कार्य में, जिस प्रकार पुष्पालकृत केशोवाली देवी की विपदा को रोकने के लिए जटायु ने प्राण त्याग किये थे, उसी प्रकार हमें भी अपने प्राण छोड़ना उचित होगा। वैसा न करके यदि हम सभी प्राण छोड़ देंगे, तो इससे अपयश ही होगा—यों हनुमान् ने कहा।

हनुमान् के यह कहते ही, गद्धों का राजा सपाति, यह सुनकर कि उसका अनुज, अमोघ शक्तिवाला जटायु, मृत्यु को प्राप्त हो चुका है, शोक से भर गया और एक पर्वत के ममान चलकर उन वानरों के निकट आ पहुँचा।

वह यह सोचकर कि हाय, नीतिवान् मेरा भाई मर गया, विज्ञुब्धमन हो रहा था। उसका शरीर काँप रहा था। वह ऐसे चल रहा था, जैसे देवेंद्र के कुलिश से पखों के कट जाने पर कोई पर्वत पैदल ही जा रहा हो।

मेरे बलवान् भाई का वध करने की शक्ति रखनेवाला ऐसा शस्त्रधारी इस धरती

पर कौन है ?—यो सोचता हुआ वह अपनी आँखों से इस प्रकार अश्रु वहाने लगा, जो धारा के रूप में वहकर समुद्र को भी भर दे ।

वह सपाति ऐसा था कि उसके आभरणों में स्थित, सान पर चढ़ाये गये रत्न विद्युत् की काति विखेर रहे थे । मद्दिम कातिवाली उसकी आँखों से अश्रु-विदु झर रहे थे । मन की व्यथा के कारण वह मुँह खोलकर रो रहा था । वह ऐसा था, मानो कोई मेघ गरजता हुआ धरती पर चल रहा हो और वरस पड़ा हो ।

वह शीघ्र गति से इस प्रकार चल रहा था कि उसके पैरों के नीचे आकर लता, वृक्ष, पर्वत आदि चूर-चूर हो रहे थे । उसका आकार ऐसा था, मानो रजताचल (कैलास-पर्वत) अति प्रबल प्रभजन के चलने से लुढ़कता आ रहा हो ।

इस प्रकार वह (सपाति) आ पहुँचा । वहाँ स्थित बानर उसे देखकर भयभीत हो कप्पने लगे । केवल ज्ञानवान् हनुमान्, अपनी आँखों से अग्नि-कण निकालता हुआ क्रोध-पूर्ण वचन कह उठा कि हे धूर्त ! तुम कोई कपटी राक्षस हो, जो मायावेष धारण करके आये हो । मेरे सामने पड़कर अब कैसे वच सकते हो ? और उस (सपाति) के समुख जाकर खड़ा हो गया ।

किन्तु, हनुमान् ने उसकी सुखाकृति से पहचान लिया कि यह पापहीन चित्त-बाला है । मन में दुःखी है । वर्षा के समान आँखों से अश्रु वरसा रहा है, अतः निष्कपट है ।

उस (संपाति) को आते हुए देखकर सूक्ष्म-शास्त्र ज्ञानबाला हनुमान् खड़ा हुआ । वह अपने मुँह से एक शब्द निकाले, इसके पहले ही सपाति ने प्रश्न किया—किसके लिए अजेय जटायु को किसने बड़ी बेरता से आहत किया ? विस्तार के साथ सारा वृत्तात बताओ ।

तब हनुमान् ने कहा—यदि तुम अपना यथार्थ परिचय दोगे, तो मैं सब घटनाएँ सविस्तर तुम्हे सुनाऊँगा । तब गृध्रराज अपना वृत्तात कहने लगा ।

हे विद्युत्-समान दाँतोवाले ! मैं अभी तक मृत प्राणियों में सम्मिलित नहीं हुआ और फिर भी मेरा भाई सुझसे वियुक्त हो गया है, ऐसा दुर्भाग्य है मेरा । मैं उस (जटायु) का पूर्वज (वड़ा भाई) होकर उत्पन्न हुआ हूँ—यो अपने जीवन के बारे में (सपाति ने) कहा ।

उसके कहे वचनों को सुनकर, दोषहीन हनुमान् दुःख के समुद्र में झूँकने-उत्तराने लगा और बोला—वैरी रावण की तलवार से तुम्हारे अनुज की मृत्यु हुई ।

हनुमान् का वचन सुनते ही सपाति ऐसे गिरा, जैसे ब्राह्महत पर्वत ढह गया हो । फिर, उष्ण निःश्वास भरकर व्याकुलप्राण हो निम्नलिखित वचन कहकर रोने लगा—

हे मेरे अनुज ! मेरे दीर्घ पख (सूर्य के ताप से) भुलसकर नष्ट हो गये । पख खोकर वँधे हुए-से पड़े रहने की अपेक्षा प्राण जाना ही उचित था । किन्तु, अविनाशी एक रथवाले (सूर्य) के अति उथ आतप से भी भयभीत न होनेवाले (हे मेरे अनुज) । यह कैसा आश्चर्य है ? (कि मेरे पहले ही तुम्हारी मृत्यु हो गई ।)

कमल में उत्पन्न ब्रह्मदेव स्थिर है, धरती और आकाश स्थिर हैं, अविनश्वर धर्म भी अभी बना है, शाश्वत कल्पवृक्ष भी मिटा नहीं है । किन्तु, तुम नहीं रहे, यह कैसी दशा है ।

हे वेगवान् गद्द से भी अधिक वेगवाले ! पूर्वकाल में दो अंडों के एक साथ उत्पन्न होने पर, हम दोनों एक साथ ही जन्मे थे, हम दोनों दीर्घकाल तक जीवित रहे। किन्तु, अब मुझे जीवित ही छोड़कर तुम अकेले वीरता-पूर्ण कार्य करके मृत हो गये। यह क्या उचित था।

हे वीर ! रावण ने, यद्यपि त्रिभुवन में अपने शत्रुओं का वध किया था, तथापि क्या वह तुम्हारे सामने टिक भी सकता था ? उसने तुम्हें मार डाला । यह कैसा समाचार है।

इस प्रकार कहकर रो-रोकर संपाति अत्यन्त शिथिल पड़ गया और मरणासन्ध हो गया। तब अतिवली पर्वत-समान कधोंवाले हनुमान् ने समय के अनुकूल सात्वना के बचन उससे कहे।

हनुमान् की सात्वना पाकर संपाति कुछ शान्त हुआ। पूछा—यमतुल्य जटायु ने, उसको मारनेवाले करवालधारी रावण से किस कारण से युद्ध किया ? तब वायु-पुत्र यह वृत्तात सुनाने लगा।

हमारे प्रभु की देवी, नीति से अस्खलित शासनवाले (जनक) महाराज की पुत्री और उत्तम लक्षणों से पूर्ण भीता, कठोर मायावी के कपट के कारण अपने पति से विद्युत ही गई।

धर्म-मार्ग से कभी न हटनेवाले तुम्हारे भाई ने सीता का अपहरण करके ले जानेवाले राक्षस को देखा और (रावण से) यह कहकर कि भ्रमरों से अलङ्कृत कुतलोवाली देवी को छोड़कर तुम हट जाओ, वलवान् रथ से युक्त उस रावण के साथ कुद्द होकर युद्ध करने लगा।

उस सत्यव्रत (जटायु) ने उस निष्ठुर पापी के रथ को व्यस्त कर दिया। उसकी सुजाओं को छिन्न कर डाला। यों धीरे-धीरे जब इस प्रकार उसने उस (रावण) की शक्ति को भग्न किया, तब उसने महादेव के द्वारा प्रदत्त करवाल का प्रयोग किया, जिससे जटायु निहत हुया—यों हनुमान् ने कहा।

हनुमान् का कथन सुनकर वशु-भरित नवनोवाला संपाति, यह कहकर अत्यत प्रसन्न हुआ कि हे सत्यपूर्ण ! निर्मल अत्त-करण से ही जिसकी पवित्र मूर्ति जानी जा सकती है, ऐसे प्रभु के निमित्त मेरे भाई ने प्राण छोड़े। यह कार्य उत्तम है। उत्तम ही है !

हे वीर ! मेरा भाई, नव-पुष्पधारी हमारे रामचन्द्र की देवी, अरुण चरणोवाली एवं 'वजी'-लता सदृश भीता की रक्षा के निमित्त अपने प्राण छोड़े। अतः, अनन्त कीर्ति का भाजन वनकर अमर ही गया। उसे मृत मानना उचित नहीं है।

धर्म-हृष प्रभु से प्रेम के साथ वधुत्व स्थापित करके मेरे भाई ने अपनी इच्छा से प्राण-त्याग दिये। ऐसे दुर्लभ पुरुषार्थ से युक्त उस जटायु की मृत्यु से क्या हानि हो सकती है ? इस भाग्य से बढ़कर सुखदायक वस्तु और क्या हो सकती है ?

वह (संपाति) यों अनेक प्रकार से रोता रहा। फिर, शीतल जलाशय में जाकर अनुपम वलवाले उस संपाति ने स्नान किया। तदनंतर धनी मालाओं से भूषित वानरों के प्रति ये बचन कहे—

हे वीरो ! तुमलोग बहुश्रुत हो, इसलिए पापहीन हो गये हो। तुमलोग असत्य-रहित भी हो। तुमलोगों ने यहाँ आकर मुझे जीवन ही प्रदान किया। मेरे भाई की मृत्यु का समाचार देकर मुझे दुःख-सागर में नहीं छुबोया, किन्तु मेरी विपदा ही दूर की।

हे मधुरभाषियो ! सत्य की वृद्धि करने की महिमा से युक्त हे वीरो ! तुम सब उत्ती राम-नाम का जप करो। वैसा करने पर उस प्रभु की अत्युत्तम करुणा मुझे प्राप्त होगी।

सपाति ने यो कहा। तब वानर यह सोचकर कि हम इस कथन की परीक्षा करेंगे, वैसे ही खड़े रहकर नीलवर्ण उस प्रभु के हितकारी नाम का उच्चारण करने लगे। तब बलवान् भुजावाले सपाति के पख निकल आये।

उज्ज्वल शरीरवाला संपाति, सब लोकों में व्यास महाविष्णु (के अवतार राम) की कृपा को प्राप्त कर पखो से युक्त हुआ। उसको पख क्या मिल गये, मानों धुँआधार अग्नि को उगलनेवाले करवाल को कोष मिल गया हो।

सभी वानर, प्रख्यात रामचन्द्र का नाम उच्चारण करने से, पहले लुढ़कते हुए आनेवाले (संपाति) का हित होते हुए देखकर विसमय से भर गये। वे प्रसन्न हुए और स्तब्ध भी हो गये। फिर, देवाधिदेव (राम) की प्रशस्ति गाने लगे।

उन वानरों ने उस (सपाति) को नमस्कार किया। फिर, प्रश्न किया कि तुम अपना सारा पूर्व-वृत्तात् कह सुनाओ। उनका बचन सुनकर सपाति अपने जीवन के बारे में कहने लगा।

हे मातृ तुल्य मित्रो ! हम दोनों, (सपाति और जटायु) तरगायमान समुद्र से आवृत धरती के अधकार को मिटानेवाले सूर्य के सारथी अरुण के पुत्र होकर जन्मे और मनोहर रंगवाले पखों से युक्त अति वेगवाले गिर्दो के राजा बने।

हम दोनों, स्वर्ग में स्थित देवलोक का दर्शन करने का विचार करके आकाश में वहुत ऊपर उड़े, किन्तु उष्णकिरण (सूर्य) का रथ देखकर भी पूर्ण रूप से उमे नहीं देख पाये। तब अग्नि को भी तपानेवाले दिव्य अरुण किरणों से युक्त सूर्य हम पर कुद्ध हो उठा।

ऊपर उड़े हुए मेरे अनुज के शरीर को, सूर्य का आतप अत्युग होकर तपाने लगा। तब वह बोला—हे मेरे बड़े भाई ! मुझे बचाओ। तब मैंने अपने पखों को उस (जटायु) पर फैला दिया और वह मेरी छाया में आ गया। मैं मरा तो नहीं। किंतु मेरे पख भुलस गये और मैं धरती पर आ गिरा।

सुक्ष धरती पर गिरे हुए को आकाश में चमकनेवाले सूर्य ने देखा और अपार करुणा से भर गया। उसने यह कहा कि जनक की प्रिय पुत्री का अपहरण हो जाने पर (उसका अन्वेषण करते हुए) आनेवाले वानर जब राम-नाम का उच्चारण करेंगे, तब पहले-जैसे ही तुम्हारे पख निकल आयेंगे।

जब मेरे पख भुलस गये, तब मैं उष्ण नि श्वास भरता हुआ, लोकसारग नामक महान् तपस्वी के निवासभूत पर्वत के सानु पर आ गिरा। मेरा शरीर और मन शिथिल हो गये थे। पीड़ा के बढ़ने से प्राणों का भार भी मैं वहन नहीं कर सकता था। मैंने प्राण लाग

करने का निश्चय कर लिया । इतने में अपूर्व तपस्या-सपन्न लोकसारग मुनि ने मेरे सम्मुख आकर मुझे सात्वना दी ।

(उन्होने कहा—) अशिक्षित मूढजनों के समान मन के (अनुचित) उत्साह के कारण तुमने देवताओं के सुरक्षित लोक से जाने का प्रयत्न किया । तुम्हारे बहुत ऊपर उड़ जाने से तुम्हारे पश्च भुलस गये और तुम धरती पर आ गिरे हो । अब और कुछ दिनों तक अपने प्राणों को सुरक्षित न रखकर उनको त्यागने की चेष्टा करना उचित नहीं है । (अर्थात्, खूब्य के कथनात्मक वानरों के आगमन तक तुम्हें प्राण रखे रहना ही उचित है) ।

फिर सपाति ने कहा—हे अति वलान्य वीरो । उम दिन उन मुनिवर ने कस्ता करके मुझसे वह भी कहा था कि जो घमडी होता है, उसका विनाश निश्चित है । मायावी (रावण) के द्वारा जब सीता हरी जाकर अद्वश्य हो जायगी, तब उमका अन्वेषण करते हुए वानर लोग आयेंगे । उनके राम-नाम का उच्चारण करने पर तुम्हारे पश्च निकल आयेंगे । अतः, तुम दुःखी मत होओ ।

हे देवविस्मयकारी कार्य करनेवाले, उत्तम वीरो । मेरे दुःख से दुःखी जटायु, मेरी आज्ञा का भूग करने से डरकर, गगनगामी गिर्दों का राजा बना । यही हमारा वृत्तान्त है । अब तुमलोग इस स्थान पर आने का अपना वृत्तात भी सुनाओ ।

सपाति के यह कहने पर वानरों ने राम के प्रति नमस्कार करके उससे कहा—हे मातृ-तुल्य ! नीच कृत्यवाला राक्षस (रावण) दक्षिण दिशा में सीता देवी को ले गया है । यही सीचकर हम उस (देवी) को ढूँढ़ते हुए यहाँ आये हैं । वानरों का यह कथन सुनकर सपाति ने कहा—तुमलोग चिंता मत करो । मैं इस सवव में तुम्हें कुछ बातें बताऊँगा ।

शर्करा-रस के समान मधुर वोलीबाली सीता को जब वह पापी राक्षस ले जा रहा था, तब मैंने उसे देखा । वह उसे लका में ले गया है । व्याकुल चित्तवाली उस देवी को घोर बघन में डाल रखा है । वह देवी बब भी वहीं है । तुम लोग जाकर देखो ।

शब्दायमान समुद्र से आवृत वह लंका यहाँ से सौ योजन पर स्थित है । उस लका पर, कठोर पाश से युक्त यम भी अपनी दृष्टि नहीं डाल सकता । उस कुद्रगुणवाले राक्षस का क्रोध अभि की भी शान्त करनेवाली दूसरी अभि है । हे दोपरहित एव सद्गुणों से पूर्ण वीरो । तुम्हारे लिए उस लका में जाना कैमे सभव होगा ?—यों सपाति ने पूछा ।

आगे उसने कहा—चतुर्मुख और अर्द्ध नारीश्वर की बात तो दूर, क्षीर-समुद्र में शेषनाग पर शयन करनेवाला विष्णु भी हो और यम भी हो, तो उनके लिए भी विशाल समुद्र के पार-स्थित उम लका में प्रवेश करना असभव है । हे चिरजीवियो ! भावी कायों के परिणामों को सोचकर आगे बढ़ो ।

उम प्राचीन (लका) नगरी में तुम भवका प्रवेश करना असभव है । यदि किसी में सामर्थ्य हो, तो वह अकेले बहाँ जाय । अद्वश्य त्वप में, वहाँ रहकर सीता देवी को (प्रसु का दिया हुआ) सदेश देकर उमके दुःख को शात करे और लौट आये । यदि ऐसा सामर्थ्य तुममें से किसी में नहीं है, तो मेरी बात पर विश्वास करो और रामचन्द्र के पास जाकर उन्हे समाचार दी ।

शासक के न होने से सारा गृध्र-समाज अपने आवास को छोड़कर विखर जायगा । उस दुर्दशा को रोकने के लिए सुझे शीघ्र जाना आवश्यक है । हे मित्रो ! जिसमें हित हो, वही कार्य करो ।—यों कहकर सपाति अपने पखों से आकाश को टकता हुआ उड़ चला । (१-६६)

अध्याय ३६

महेन्द्र-शैल पटल

कुछ वानर, यह निश्चय कर कि गृध्रराज भूठ बोलनेवाला नहीं है, अन्य वानरों से कहने लगे—कर्तव्य को शीघ्र संपन्न करनेवाले हैं वीरो । हमने (सीता के समाचार को) हाथ के आँखेले के समान पूरा जान लिया है । जीवन देनेवाला एक वचन हमने सुन लिया । अब कर्तव्य का ठीक-ठीक विचार करके कुछ करो ।

यदि हम सूर्यपुत्र और उज्ज्वल धनुष को धारण करनेवाले को नमस्कार करके सारा वृत्तात उन्हे सुना दें, तो हमारा कर्तव्य पूरा हो जायगा । फिर, भी वीरता का कार्य तो यही होगा कि हम स्वय समुद्र को पार कर सीता के दर्शन करें । हममें से समुद्र को पार करने का सामर्थ्य रखनेवाला कौन है ?—यों परस्पर प्रश्न कर वे एक-एक करके अपनी-अपनी शक्ति का वर्णन करने लगे ।

पहले हमने मरने का साहस किया । सदा अमिट रहनेवाले अपयश को लेकर लौटने का भी साहस किया । अब उन दोनों कायों से छुटकारा पाने का एक अच्छा मार्ग (सपाति के द्वारा) हमने प्राप्त किया है । अब समुद्र को पार कर काले राज्ञों को मिटाने का सामर्थ्य रखनेवाली ! हमारे प्राणों को बचाओ ।

युद्ध में विजय से भूषित होनेवाले नील आदि उत्तम वीरो ने, समुद्र पार करने की अपनी असमर्थता को स्पष्ट कह दिया । वीरता से पूर्ण युद्ध में विजयी बाली-पुत्र ने कहा—मैं समुद्र के उस पार तो जा सकता हूँ, किंतु लौट आने की शक्ति मुझमें नहीं है ।

चतुर्मुख (ब्रह्मा) के पुत्र (जाववान्) ने कहा—हे भुजवल से पूर्ण वीरो । वेदों के लिए भी दुर्जय भगवान् (विष्णु), सारी धरती को एक ही पग से नापने लगा था । उस समय, मैं आठों दिशाओं में उस (त्रिविक्रम) की परिक्रमा करता हुआ गया और (उस भगवान् के अवतार होने की) धोषणा करता हुआ धूमने लगा था । मेरु के आधात से मेरे पैर दुखने लगे थे । अतः, अब इस महान् समुद्र पर उछलकर जाने और लका की परिखा के पार बने हुए प्राचीर पर कूदने और उस नगर के राज्ञों को भयभीत कर सीता का अन्वेषण करने की शक्ति मुझमें नहीं रह गई है ।

फिर, ब्रह्मपुत्र जाववान् ने अंगद से कहा—वानर-चीरों में उत्तम सिंह-सदृश है कुमार। हम अब अत्यन्त दुःखी होकर किसके पास जाकर प्रार्थना करें कि तुम समृद्ध के पार जाओ। ऐसा विचार करने से भी तो हमारा यश मिटता है।

अब हमारे यश को सुरक्षित रखनेवाला वह मारुति ही है, जिसने पूर्व में रामचन्द्र के समुख जाकर (सुग्रीव को) उनका सखा बनाया था। वही (मारुति) कर्तव्य का ठीक-ठीक विचार करके उने पूरा करने का सामर्थ्य रखता है। उसकी समानता करनेवाला और कोई नहीं है। इस प्रकार कहकर फिर, जाववान् हनुमान् के सुजवल की प्रशसा करते हुए ये बचन कहने लगा।

(जाववान् हनुमान् को देखकर कहने लगा—) ब्रह्मदेव भी मर सकता है, किन्तु तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी। तुमने नर्वशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। विषयों का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने की शक्ति भी तुममें है। तुम्हारे बल और क्रोध को देखकर काल भी काँप उठता है। तुममें कर्तव्य कर्म करने की दृष्टा है। विष का पान करनेवाले शिवजी के समान ही तुममें घोर युद्ध करने की शक्ति भी विद्यमान है।

अत्युष्ण रक्तवर्ण अग्नि से, जल से तथा वायु से भी तुम मरनेवाले नहीं हो। अनेक-विधि प्रसिद्ध दिव्य आयुधों से भी तुम्हारा विनाश नहीं हो सकता। तुम्हारा उपमान कुछ बताना हो, तो केवल तुम्हीं अपने उपमान हो। एक बार कूदो, तो तुम इस ब्रह्माड से परे भी जा पहुँचोगे।

अच्छे गुणों को ही नहीं, बुरे गुणों को भी पहचान कर स्पष्ट कहने की सामर्थ्य तुममें है। स्वयं ही कर्तव्य को जानकर उसे पूर्ण करने की शक्ति तुममें है। तुम (शत्रुओं पर) विजय पा सकते हो। (लकड़ में जाकर) लौट आने की शक्ति भी तुम रखते हो। यदि वे अपना बल दिखावें, तो उन्हें मारने की शक्ति भी तुममें है। तुम्हारा सुजवल कभी घटता नहीं।

तुम्हारी महिमा मेर से भी ऊँची है। मेघ से बरसनेवाले जल की बूँद में भी प्रवेश कर जाने की शक्ति तुममें है। घरती को भी उठा लेने का बल तुममें है। कोई भी पाप-भावना तुममें नहीं है। तुम्हारी ऐसी शक्ति है कि सूर्य को भी अपने सुन्दर करों ने छू सकते हो।

तुमने उचित उपायों को ठीक-ठीक सोचकर, धर्म का नाश किये विना, सुद्ध-कुशल वाली का वध करवाया। तुम्हारा बुद्धि-कौशल ऐसा है। प्रसिद्ध देवेन्द्र ने जब बज्र से तुम पर आघात किया था, तब तुम्हारा एक छोटा-सा रोंया भी टूटकर नहीं गिरा।

तुम्हारी सुजाओं में ऐसी शक्ति है कि यदि तीनों लोक भी तुम्हारा सामना करने वाये, तो उन सुजाओं के लिए त्रिसुवन की वस्तुएँ भी कुछ चीज नहीं होंगी। घरती के अधकार को मिटानेवाले सूर्य के निकट, उसके रथ के आगे-आगे चलते हुए, तुमने सर्कूर (के व्याकरण) का ज्ञान प्राप्त किया था।

तुम नीति में स्थिर हो, सत्य-पूर्ण हो, मन में कभी स्त्री-संगति का विचार

तक नहीं लाते। सब वेदों का अध्ययन किया है। ब्रह्मा की आयु से भी अधिक आयु-वाले हों। तुम भी ब्रह्माओं में से एक कहलाते हो।

उस महिमामय प्रभु (राम) की शक्ति में युक्त हो। अपने कर्त्तव्य का पूर्ण ज्ञान रखते हो। तुमने अपने ऊपर (सीता का अन्वेषण करने का) दायित्व लिया है। विना किसी वाधा के उसे पूर्ण करने का सामर्थ्य भी तुममें है। तुमने अपने मन में दृढ़ रूप से यह स्थापित कर लिया है कि एकमात्र पुण्य ही सदा स्थिर रहनेवाला है।

समय अनुकूल न होने पर तुम दबकर रह सकते हो। यदि युद्ध छिड़ जाय, तो उसमें सिंह के समान शक्तिमान् हो सकते हो। सोच-विचार करके जो कार्य आरम्भ किया ही, केवल उसी को नहीं, किंतु, किसी भी कार्य को पूर्ण करने की शक्ति तुममें है। कठिन वाधाएँ उत्पन्न होने पर भी तुम पीछे हटनेवाले नहीं हो।

विजयशील इन्द्र से लेकर, सब व्यक्ति तुम्हारे चारित्य को ही आदर्श मानकर चलते हैं। तुम अत्यन्त सहनशील हो। अतः, सब कार्यों को ठीक ढग से सोचकर करने का सामर्थ्य तुममें है। सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त करने की शक्ति भी तुममें है।

तुम्ही इस समुद्र को पार करने की शक्ति रखते हो। अतः, यहाँ से शीघ्र जाओ और हम सबको जीवन देकर यश प्राप्त करो। इसमें तुम्हारी माता-तुल्य सीता देवी भी प्रमन्त्र होगी और विपदा-रूपी अपार सागर को पार कर सकेंगी—इस प्रकार ब्रह्मपुत्र (जाववान्) ने कहा।

जाववान् ने जब ऐसा कहा, तब अत्यन्त ज्ञानवान् हनुमान् के दीन मुख पर मंदहास इस प्रकार विकसित हुआ, जिस प्रकार कमलपुष्प के मध्य रक्तकुमुद विकसित हो उठा हो। उसके कमल-जैसे कर सुकुलित हो गये। सब वानरों के आनंदित होते हुए, उसने अपने भावों को इन शब्दों में प्रकट किया—

तुम लोग ऐसे हो कि कुछ सोचने के पूर्व ही, ऊँची तरगों से पूर्ण सातों समुद्रों को पार कर सकते हो, सब लोकों को जीत सकते हो और सीता देवी का अन्वेषण करके उन्हे ला सकते हो। ऐसा होने पर भी मुझ ज्ञानहीन की लघुता को प्रकट करने के लिए ही तुमने मुझे यह आदेश दिया है। अब मेरे समान भारयवान् और कौन होगा?

यदि तुम लोग कहोगे कि लकापुरी को उखाड़कर ले आओ, या यदि कहोगे कि लोक-कटक राज्यों को मिटाकर, स्वर्णमय ताटकधारिणी कलापी-तुल्य सीता को ले आओ, तो मैं तुम्हारे आदेश के अनुसार ही वह कार्य करूँगा। शीघ्र ही तुम अपनी आँखों से देखोगे।

जिस प्रकार विष्णु भगवान् ने धरती को नापा था, उसी प्रकार एक शतयोजन को एक पग में समाता हुआ मैं इस विशाल समुद्र को पार करूँगा। यदि इन्द्र आदि देवता भी आकर (गवण की ओर से) मेरे साथ युद्ध करेंगे, तो भी लका में निवास करनेवाले सब राज्यों का विनाश करके अपने कार्य को मैं अवश्य पूरा करूँगा।

यदि समुद्र उमड़कर मारी धरती को डुबोने लगे, या यह सारा ब्रह्मांड ही टूटकर अतरिक्ष में उड़ जाय, तो भी मैं मेरे प्रति दिखाई गई तुम्हारी कृपा और प्रभु की आज्ञा इन-

दोनों को दो पख बनाकर गद्ध के समान इस समुद्र को पार कर जाऊँगा । तुम लोग देखोगे ।

मैं तरगाथमान समुद्र के मध्य स्थित लंकापुरी में जाऊँगा । मेरे लौट आने तक तुम लोग यही शाति से रहो । मुझे शीघ्र (जाने की) आज्ञा दो—यों हनुमान् ने कहा । तब वानर आनंदित होकर आशीष देने लगे और देवता पुष्प-वर्षा करने लगे । हनुमान गगनोन्नत शिखरवाले महेंद्र-पर्वत पर जा पहुँचा ।

अनुपम समुद्र को पार करने का विचार करके हनुमान् इस प्रकार ऊँचा बढ़ा, जिस प्रकार त्रिभुवन को नापने के लिए विराट्-त्यधारण किये हुए त्रिविक्रम का पैर ही । वह ऐसा हो गया, जिससे लोगों को विदित हुआ कि वह नाम से ही नहीं, किंतु, आकार से भी ‘विष्णुपाद’^१ ही है ।

इसके पहले ही कि ससार में प्रकाश फैलानेवाली उष्ण किरणों से युक्त सूर्य—जो युद्ध में पराक्रम दिखानेवाले के यश के समान सर्वत्र सचरण करता रहता है—विशाल समुद्र में जा पहुँचे, सध्या की काति को फैलानेवाली स्वर्णवर्ण सुजाओं से युक्त हनुमान जलमय तथा मनोहर लका में जा पहुँचने को सञ्चाद हुआ ।

विशाल वदनवाले सिंहों के आवासभूत महेंद्र-शैल (हनुमान् के भार से) दब गया । पक्षियों में खड़े रहनेवाले, दूर-दूर पर रहनेवाले शिखर नमीप आये हुए-से लगने लगे । हनुमान्, विष्णुपाद उगलनेवाले सर्प-समान अपनी पूँछ को लपेटे, विराट् आकार धारण करके ऐसा खड़ा रहा, मानो महाकच्छुप पर मदर पर्वत खड़ा हो ।

अतरिक्ष के विद्युत-भरे मेघ हनुमान् के पाद-वलय (वीर-कक्षण) जैसे शब्द कर रहे थे । उसका विराट्-त्यध देवलोक के निवासियों के दृष्टि-पथ में पहुँच गया था । महान् तथा वलवान् शिखरों से युक्त वह महेंद्र-पर्वत ऐसा लगा, मानो ब्रह्मांड के विशाल स्वर्ण-स्तंभ (हनुमान्) का पादपीठ हो, यों शोभायमान होकर हनुमान्-खडा रहा । (१—२६)

^१, तमिल में हनुमान् का एक नाम है ‘तिरुवडि’, अर्थात् विष्णुपाद । — अनु०

